Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SAHITYE
SANDESH

BHAG
29

LIB. GKV

Foundation Chennai and eGangotri
Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या R 8
पुस्तक संख्या आ. ८. सा. मा. २८
आगत पंजिका संख्या 20020

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

113020

GULZAR BOOK BINDING HOUSE
DHARI BAZAR ROORKEE

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-संदेश

(आलोचना मासिक)

५००१०

CHECKED 1973

नव-वर्षाङ्क

जुलाई-अगस्त १९६७

स्वक आर्तीकरण १९८४–१९८५

प्रकाशक :
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा-२

सम्पादक :
महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सं०......
आगत सं०......
तिथि......

हिन्दी की विविध विधाओं पर प्रकाशित

हमारी नवीन पुस्तकें

१.	हिन्दी आलोचना	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
२.	हिन्दी उपन्यास	: सिद्धान्त और विवेचन	५.५०
३.	हिन्दी कहानी	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
४.	हिन्दी नाटक	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००

अभी चार पुस्तकों का सैट बनाने की योजना बनाई है जो सभी तैयार हैं। सभी पुस्तकें जिल्ददार हैं और बड़े आकार में बढ़िया सफेद कागज पर छपी हैं।

इनमें उस विषय के

चोटी के विद्वानों के चुने हुए लेख संग्रहीत हैं।

उ प यो गि ता

को देखते हुए हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और विवेचन तो छपते ही आगरा विश्वविद्यालय ने अपनी बी० ए० की परीक्षा में स्वीकृत करली है।

चारों को एक साथ मँगाने पर विशेष रियायत

चारों पुस्तकों का मूल्य २०.५० रु० है। लेकिन जो सज्जन चारों पुस्तकों का रियायती मूल्य १५.०० पेशगी मनीआर्डर से भेज देंगे उनको पोस्टेज और रजिस्ट्री का खर्च भी नहीं देना पड़ेगा।

यह रियायत—

३० नवम्बर १९६७ तक है।

साहित्य रत्न भण्डार, साहित्य कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113020

वर्ष २९, अङ्क १-२

साहित्य-सन्देश

जुलाई-अगस्त १९६७

20090

विषय-सूची

१—हमारी विचारधारा		१
२—प्रतीक और बिम्ब का मनोविश्लेषण	डा० प्रेमप्रकाश गौतम	५
३—लक्षण-ग्रन्थों का अर्थ तथा उद्देश्य	डा० तपेश चतुर्वेदी	११
४—आचार्य वाजपेयी और रस-सिद्धान्त	डा० कन्हैयालाल सहल	१४
५—अनुसन्धान की प्रविधि	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	१६
६—चन्दायन एवं उसका रहस्यवाद	श्री कामता गुप्त 'कमलेश'	२२
७—सन्देश रासक की भाषा	श्री द्विजराम यादव	२७
८—नन्ददास का दर्शन	डा० सन्तोष गोयल	३२
९—राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' और हिन्दी गद्य	श्री विष्णुनारायण दुबे	३६
१०—बघेलखण्डी : एक संक्षिप्त परिचय	श्री अयोध्याप्रसादसिंह	४१
११—प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार	श्री रामनरेश शुक्ल	४४
१२—महादेवी के काव्य में गीति-तत्व	डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	४८
१३—अंचल और नव स्वच्छन्दतावाद	डा० नरेन्द्रदेव वर्मा	५४
१४—आधुनिक हिन्दी-उर्दू कविता में स्वाधीनता की आकांक्षा	डा० सुषेश	५८
१५—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	श्री निगम शर्मा	६२
१६—क्रान्ति द्रष्टा सूर्यमल्ल मिश्रण	श्री वेदव्यास	६६
१७—शिकार-साहित्य के प्रवर्त्तक पं० श्रीराम शर्मा	श्री सुरेशचन्द्र शर्मा	६९
१८—पन्तजी का नवचेतना काव्य	डा० कृष्णकुमार शर्मा	७३
१९—पुस्तक परिचय	विविध	
२०—सन् १९६६-६७ की विषय-सूची		

❋ वार्षिक मूल्य ६.०० ❋ इस अङ्क का मूल्य १.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्टूबर मास में प्रकाशित

जैनेन्द्र की तीन कृतियाँ

अकाल पुरुष गांधी

संस्मरण, गांधी-विचार विषयक चिन्तन-परक कृति सर्वथा अप्रतिम व सर्वश्रेष्ठ कृति

डिमाई साइज सम्भावित पृष्ठ २५०

आकर्षक छपाई, कलात्मक आवरण।

डिलक्स संस्करण १५ पेपर बैंक १०.००

अनाम स्वामी—

जैनेन्द्र जी के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' के नायक की अगली कहानी।

'और—प्रबोध १ वह अनाम स्वामी हैं।'

मूल्य ५.००

काश्मीर की वह यात्रा—

यात्रा-संस्मरण के प्रसंग में—

जैनेन्द्र जी की सर्वप्रथम कृति

अत्यन्त रोचक मर्मस्पर्शी शैली।

मूल्य ३.००

सर्वत्र उपादेय, पठनीय

एवम् संग्रहणीय

पूर्वोदय प्रकाशन

८ नेताजी सुभाषमार्ग,

दिल्ली—६

उपन्यास—

मुक्ति बोध	४.५०	जयवर्धन	८.००
यामा	६.००	सुखदा	४.५०
विवर्त	४.५०	व्यतीत	३.५०
सुनीता	३.५०	त्यागपत्र	३.००
कल्याणी	३.००	परख	२,००

कहानी संग्रह—

जैनेन्द्र की कहानियाँ

भाग दस प्रत्येक ४.०० — ४०.००

संस्मरण—

ये और वे ४.००

निबन्ध—

समय और हम	२०.००	इतस्ततः	१०.००
परिप्रेक्ष	८.००	राष्ट्र और राज्य	३.००
प्रश्न और प्रश्न	७.००	पूर्वोदय	५.००
मंथन	५.५०	सोचविचार	६.००
श्रेय और प्रेय	८.००	काम प्रेम परिवार	३.५०
प्रस्तुत प्रश्न	४.५०	सुक्ति संचयन	३.००

नाटक—

पाप और प्रकाश ३.०० — मग्दालिनी १.५०

कथामाला—

१४ भाग, पूर्ण सैट १२.६०

नये प्रकाशन—

प्रेमचन्द : एक कृति व्यक्तित्व	१२.००
कहानी : अनुभव और शिल्प	७.००
भयभीता उपन्यास	३.००

महात्मा भगवानदीन का साहित्य—

अपनी पहचान	४.००	जवानो	३.००
जवानो राह यह है	३.००	जीवन झांकी	१.००

साहित्य अकादेमी से प्रकाशित—

केरलसिंह उपन्यास के. एम. पाणिक्कर	३.००
मिट्टी का पुतला—कालीचरण पाणिग्रही	२.००
अन्ततः अन्य कहानी संग्रह—हिमांशु जोशी	३.५०
नीति की ओर मनुसुखा	१.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी, १९६७
से
अगस्त, १९६७
तक
प्रकाशित

पुस्तक-विक्रेताओं के लिए
विशेष लाभप्रद

20080

हमारे श्रेष्ठ प्रकाशन

प्रत्येक लाइब्रेरी, शिक्षण-संस्थान एवं पुस्तक-प्रेमी के लिए संग्रहणीय

धर्म-दर्शन

प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार :
डा० राधाकृष्णन् १५.००

शोध-ग्रन्थ

संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद :
डा० देवेन्द्रकुमार १३.००

निबन्ध-संस्मरण

सरगम : कृशनचन्दर १.५०

हिन्दी के लोकप्रिय कवि

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : भवानीप्रसाद मिश्र ३.००

गांधी-विचारधारा

सौ सवाल एक जवाब : डा० प्रभाकर माचवे १.००
भारत एक है : सीताचरण दीक्षित १.००

स्त्रियोपयोगी

शिशुपालन : डा० युद्धवीरसिंह ३.५०

ज्ञान-विज्ञान

रोमांचकारी वैज्ञानिक यात्राएँ : २.५०
प्रसिद्ध आविष्कारों की कहानी
सुखदेवप्रसाद बरनवाल २.५०

बालोपयोगी

१८५७ की कहानी : प्राणनाथ वानप्रस्थी १.५०

उपन्यास

अपने-पराये : गुरुदत्त ४.५०
मधुर स्वप्न : राहुल सांकृत्यायन ६.००
वैशाली की नगर वधू : आचार्य चतुर सेन १०.००
वयं रक्षामः : आचार्य चतुर सेन १०.००
घरौंदा : डा० रांगेय राघव ६.००
पराया : " " ३.५०
कुणाल की आँखें : आनन्दप्रकाश जैन ७.००
दिल्ली की गलियाँ : अमृता प्रीतम ३.००
वापसी : मुल्कराज आनन्द ८.००
एक औरत का चेहरा : हेनरी जेम्स ६.००
अनु०—मोहन राकेश

कहानी-संग्रह

एक किरण चाँदनी की : कर्त्तारसिंह दुग्गल ३.५०
ललक : कुलभूषण ४.००
एक लड़की एक शाप : अमृता प्रीतम ४.००
करुणा की कहानियाँ : ठा० राजबहादुरसिंह १.००
अमेरिका की श्रेष्ठ कहानियाँ : अनु० बालकृष्ण ५.००

स्थायी ग्राहक सहयोगी पुस्तक-विक्रेताओं के लिए विशेष लाभप्रद सुविधाएँ।

हमारे सम्पूर्ण प्रकाशनों के नए सूचीपत्र और नियमावली के लिए कृपया पत्र लिखें।

राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन (१९६५-६७)

भक्ति-काव्य में माधुर्यभाव का स्वरूप	डॉ० जयनाथ 'नलिन' (शोध-ग्रन्थ)	२५.००
निबन्ध और निबन्ध	डॉ० इन्द्रनाथ मदान (आलोचनात्मक निबन्ध १९६७)	१५.००
श्रद्धाराम ग्रन्थावली	डॉ० सरनदास भनोट (सम्पूर्ण कृतित्व, जून, १९६६)	८.००
जीवन-रेवा	डॉ० राजेश्वर 'गुरु' (सुमधुर काव्य, अगस्त, १९६६)	५.००
कुरुक्षेत्र: एक सांस्कृतिक परिचय	बालकृष्ण 'मुज़तर' (सांस्कृतिक विवेचन, १९६६)	१२.५०
एकांकी-सरोवर	सम्पादक—रघुवीर शरण बंसल (१९६७)	५.००
NEHRU : Philosophy of Life and Education	Dr. R. L. Ahuja (1965)	7.00

साहित्यिक प्रकाशन

आलोचना तथा हिन्दी साहित्य

विद्यापति	डॉ० जयनाथ 'नलिन'	११.००
रामचन्द्र शुक्ल	" "	६.५०
हरिकृष्ण 'प्रेमी'	विश्वप्रकाश दीक्षित	६.५०
वृन्दावनलाल वर्मा	डॉ० कमलेश	५.००
राधिकारमण प्रसादसिंह,	"	६.००
हिन्दी गद्य विकास और परम्परा	"	२.५०
शुक्ल : एक समीक्षा	डॉ० जयनाथ 'नलिन'	३.००

कथा-साहित्य

गोमती के तट पर	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	६.५०
पाकिस्तान मेल	खुशवन्तसिंह	५.००
मिट्टी की लोथ	हरिप्रकाश	४.००
रक्षाबन्धन	रघुवीरशरण बंसल	५.००

नाटक-साहित्य

शीशदान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	३.५०
सांपों की सृष्टि	" "	२.५०
कंजूस	आर० एम० डोगरा	२.००

एकांकी-साहित्य

अजय आलोक	डॉ० महेन्द्र भटनागर	२.४०
पुनर्जीवन	दुर्गादत्त शर्मा	२.५०

विभिन्न साहित्य

जीवन-ज्योति	क्षेमचन्द्र 'सुमन'	२.५०
जय भारत विशाल	राजेन्द्र शर्मा	२.००

बाल तथा प्रौढ़ साहित्य

हम आजाद हुए	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१.२५
मैं दिल्ली हूँ	रामावतार त्यागी	१.००
ईसप की नीति कथाएँ —१	देवर्षि सनाढ्य	१.२५
ईसप की नीति कथाएं —२	देवर्षि सनाढ्य	१.२५
मीठी तानें	श्री नाथसिंह	१.००
हमारा भारत	प्राणनाथ सेठ	१.२५
राम राज्य की ओर	राजेन्द्र शर्मा	१.००
खजाने की खोज	श्यामसुन्दर व्यास	१.२५
स्वाधीनता संग्राम की कहानी	रघुवीरशरण बंसल	१.२५

ग्राहकों, पुस्तकालयों तथा पुस्तक विक्रेताओं को विशेष सुविधाएं

हम अपने प्रकाशनों के अतिरिक्त बाहरी प्रकाशन भी सप्लाई करते हैं।

बंसल एण्ड कम्पनी

टेलीफोन : 212292 नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

40040

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग—२६ अङ्क—१-२

सम्पादक
महेन्द्र
विश्वम्भर 'अरुण'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

जुलाई-अगस्त—१९६७

वार्षिक मूल्य ६.००

एक अङ्क का मूल्य .६०

हमारी विचारधारा

हवा का रुख बदला—

हिन्दी के मामले में हवा का रुख किस ओर चल रहा है, यह उस दिन विधि मन्त्रियों के सम्मेलन में दिल्ली में मालूम हो गया जिसमें केन्द्र के उप प्रधान मंत्री ने यह घोषणा की कि देश के कानूनों का हिन्दी अनुवाद आगामी पाँच वर्ष में करा दिया जायगा। श्री देसाई ने उस दिन जिस दृढ़ता के साथ मद्रास के विधि-मंत्री को समझाया, वह भी ध्यान देने की बात है। उन्होंने कहा कि देश ने, जिसमें सभी राज्य शामिल हैं, अपना संविधान स्वीकार कर लिया है, और उस संविधान में हिन्दी को देश की सम्पर्क भाषा घोषित किया गया है। देश के सभी विधान सभाई और मन्त्री यह प्रतिज्ञा लेते हैं कि वे संविधान में विश्वास करते हैं और उसका पालन करेंगे। इस प्रतिज्ञा के बाद भी अगर किसी को हिन्दी के मामले में कोई शंका या विरोध है तो उसे अपने स्थान से त्यागपत्र देकर अलग हो जाना चाहिए।

40040

हवा के रुख का दूसरा दृष्टांत अभी रिजर्व बैंक के रवैये से मिला। रिजर्व बैंक को यह खुली नीति रही है कि उसका सारा काम अँग्रेजी में होगा और जो पत्र हिन्दी में आवेंगे, उनका उत्तर नहीं दिया जायगा। लेकिन उत्तर प्रदेश के एक मन्त्री श्री रामस्वरूप वर्मा ने यह चुनौती दी कि यदि बैंक मेरे हिन्दी के पत्र का उत्तर नहीं देगी तो मैं अपने मन्त्री पद को छोड़ दूँगा। वर्माजी को इस प्रतिज्ञा का पालन करने की जरूरत पड़े उससे पहले ही यह समाचार प्रकाशित हो गया कि रिजर्व बैंक में हिन्दी का प्रचलन करने के लिए बैंक अधिकारियों ने हिन्दी का प्रचलन करने के लिए कई हिन्दी के विद्वानों की नियुक्ति कर दी है।

हवा के रुख का तीसरा दृष्टान्त केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री की यह घोषणा है कि वे अगले पाँच वर्षों में उच्च शिक्षा की सभी विषयों की पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित करा देंगे। हवा के इस रुख को हम कब से देख रहे हैं। हमने कई बार यह लिखा है कि हिन्दी वालों को कोई जल्दी या जल्दबाजी न करके केवल अपना सब काम हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शुरू कर देना चाहिए। अगर उन्होंने अपना काम हिन्दी में करना शुरू कर दिया तो शेष सब काम समय अपने आप करा लेगा। और हम यह देख रहे हैं कि ऊपरी विरोध के बावजूद हिन्दी की गाड़ी चली जा रही है। अब उसे कोई कितना भी रोकना चाहे, रुकेगी नहीं। हिन्दी राष्ट्र-भाषा है और होकर रहेगी।

केवल हिन्दी ही सम्पर्क भाषा—

दिनांक ६ अगस्त को भोपाल में रविशंकर हिन्दी भवन का उद्‌घाटन करते हुए मैसूर के मुख्य मंत्री श्री एस० निजलिंगप्पा ने कहा कि 'जनता को चाहिये कि वह अपने छोटे-छोटे मत भेदों को भुलाकर राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने का प्रयत्न करे, जिसके लिये हिन्दी का विकास आवश्यक है। हम भविष्य को उज्वल तथा सम्पन्न भारत बनाने के मार्ग पर अग्रसर हैं। इस कार्य में हमारी सब की एकता बनाये रखने में हिन्दी का बड़ा योगदान है।'

'जब हमने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया है, तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसके विकास एवं उन्नति के लिये प्रयत्न करें। हिन्दी अब कोई केवल उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश की ही भाषा नहीं रही। वह अब दक्षिण के राज्यों की भी भाषा बन गई है। हिन्दी की यदि स्पर्धा आयोजित की जाय, तो मुझे विश्वास है कि प्रथम दस स्थान दक्षिण को प्राप्त होंगे।'

केवल हिन्दी में आदेश—

राजस्थान के मुख्य सचिव श्री के० पी० यू० मेनन ने एक आदेश जारी करके कहा है कि नियुक्ति, पद वृद्धि और अवकाश ग्रहण सम्बन्धी वे ही प्रशासकीय आदेश सरकार द्वारा अधिकृत समझे जायेंगे जो कि केवल हिन्दी में जारी किये जायेंगे।

आदेश में कहा गया है कि समय-समय पर ये आदेश जारी किये गये हैं कि सभी प्रशासकीय आदेश परिपत्र और पत्र हिन्दी में लिखे जाने चाहिये लेकिन इन आदेशों का अभी तक परिपालन नहीं हुआ है।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की सरकार ने भी घोषणा की है कि २६ जनवरी १९६८ से राज्य का सारा काम हिन्दी में होगा। इस घोषणा को क्रियान्वित करने के लिए सरकार की ओर से कदम उठाए जा रहे हैं और हमारा विश्वास है कि अब वह घोषणा कोरी घोषणा ही न रह कर कार्य रूप में परिणत होती दिखाई देगी। बिहार सरकार ने भी अपना अधिकांश काम हिन्दी में करना प्रारम्भ कर दिया है। यह सब शुभ लक्षण हैं जिनसे प्रकट होता है कि हिन्दी का भाग सूर्य अब धीरे-धीरे चमकने लगेगा। अब जबकि डा० राव, मुख्यमंत्री श्री निजलिंगप्पा जैसे समर्थ दक्षिणवासी हिन्दी का इस प्रकार समर्थन कर रहे हैं तो हिन्दी को अपने लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हमारा तो विश्वास है कि निकट भविष्य में ही दक्षिण वासी हिन्दी के इतने प्रेमी और हिन्दी भाषा में इतने निपुण हो जायँगे कि वे प्रतियोगिता होने पर हिन्दी वालों को नीचे छोड़ जायेंगे। हम उसी दिन का स्वागत करने को उत्सुक हैं।

मद्रास में हिन्दी का विरोध—

ऊपर हमने वे सब बातें लिखी हैं जो हिन्दी के पक्ष में हैं। उसके विरोध का स्वर भी सुन लीजिए। विरोध बहुत पहले से ही मद्रास प्रान्त से चल रहा है। अब भी वहीं का स्वर ज्यादा सुनाई देता है। वहाँ के मुख्य मन्त्री ने भी हिन्दी के विरोध में आवाज उठाई है। अब की बार इस विरोध में एक बात बड़ी विचित्र कही गई है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) को यह चेतावनी दी गई है कि सभा हिन्दी के प्रचार का अपना काम बन्द कर दे। सब लोग जानते हैं कि सभा ने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का यह काम आज से कोई ३५ वर्ष पहले शुरू किया था और उसके प्रेरक थे स्वयं महात्मा गांधी। महात्माजी की प्रेरणा से पचासों लोग हिन्दी प्रचार के लिए वहाँ गए। महात्माजी के सुपुत्र श्री हीरालालजी गांधी भी उन लोगों में से थे जो सेवा की भावना और हिन्दी-प्रचार के लिए दक्षिण गए थे। तब से हजारों-हजारों सेवाभावी प्रचारकों द्वारा दक्षिण के गाँव-गाँव में हिन्दी प्रचार का काम हुआ जिसके फ़लस्वरूप लाखों-लाखों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। आज भी द० आ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी प्रचार सभा की ओर से हिन्दी की जो परीक्षाएँ होती हैं उनमें प्रति वर्ष लक्षाधिक दक्षिण भारतीय युवक और युवतियाँ सम्मिलित होकर हिन्दी की योग्यता प्राप्त करते हैं। द० भा० हिन्दी प्रचार सभा के आधीन जो प्रमाणित प्रचारक काम करते हैं उनकी संख्या ही आठ-दस हजार है। ऐसे पुनीत काम में लगे हुए इन प्रचारकों का योग बड़ा स्तुत्य है। वे आजीविका के लिए ही नहीं देशभक्ति की भावना से सेवा वृत्ति का यह काम कर रहे हैं। हिन्दी के विरोधी चाहते हैं कि हिन्दी-प्रचार का यह काम बन्द कर दिया जाय। विरोधियों की यह माँग नैतिक और राजनैतिक सभी दृष्टियों से अनुचित है। हमारा विश्वास है कि उनकी यह अनैतिक माँग स्वयंमेव मन्द पड़कर मिट जायगी। गनीमत है, यह माँग छात्रों के एक समुदाय के द्वारा उठाई गई हैं। इसी प्रकार मद्रास में हिन्दी फिल्मों को और आकाशवाणी के विविध भारती कार्यक्रमों को बन्द करने की माँग भी अनुचित है। क्योंकि मद्रास में भी अनेक लोग हिन्दी फिल्मों को देखना पसन्द करते हैं—यदि हिन्दी प्रिय नहीं है तो वहाँ दर्शकों के अभाव में हिन्दी-फिल्में चलना स्वतः ही बन्द हो जायेगा। इसी प्रकार आकाशवाणी के मद्रास के केन्द्र से 'विविध भारती' कार्यक्रम रिले करने की माँग करना हास्यास्पद है। क्योंकि एक तो 'विविध भारती' अपने नाम के अनुरूप भारत की विविध भाषाओं से अपने कार्यक्रम को सजाता है, दूसरे यदि उसमें हिन्दी को प्रमुखता दी भी गई है तो उसे पसन्द करने वाले मद्रास केन्द्र से विविध भारती के प्रसारण के बन्द हो जाने पर भी अन्य केन्द्रों से सुन ही लेंगे। ऐसे अविवेकपूर्ण माँगों की भर्त्सना होनी ही चाहिए और इसीलिए मद्रास के मुख्यमन्त्री ने छात्रों की इन माँगों का समर्थन नहीं किया है।

राजाजी का अँग्रेजी मोह और चागला का त्याग-पत्र—

१५ अगस्त ४७ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ था तब अँग्रेज श्री सी० राजगोपालाचार्य को ही राज्य-भार सौंप गये थे। भारत में गण-तन्त्र की स्थापना होने से पूर्व उन्हींने ही वायसराय के रूप में यहाँ का राज्य-कार्य सम्हाला। गणतंत्र स्थापित होने के बाद उन्हें पद-मुक्त कर दिया गया किन्तु आजकल वे अंग्रेजों द्वारा मिली विरासत अँग्रेजी की रक्षा बड़ी तत्परता से कर रहे हैं। पहले वे अँग्रेजी के प्रभुत्व को बनाये रखने के लिये हिन्दी का विरोध करते थे किन्तु अब तो वे अँग्रेजी के अंध मोह से ग्रस्त होकर प्रादेशिक भाषाओं का ही विरोध करने लगे हैं। उन्होंने ३० अगस्त को प्रकाशित अपने लेख में स्पष्ट कहा है कि अँग्रेजी के स्थान पर क्षेत्रीय भाषाओं को लाना एक बहुत ही गैर जिम्मेदारी का काम होगा। ऐसा करने से देश का बौद्धिक जीवन विच्छिन्न हो जायगा। यदि हम देश को दुनिया से अलग नहीं रखना चाहते हैं तो विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहना चाहिये। विदेश मन्त्री चागलाजी को भी प्रादेशिक भाषाओं को लाना और अँग्रेजी के प्रभुत्व को समाप्त करना एक बहुत ही गैर जिम्मेदाराना कार्य लगा। अतः राष्ट्रीय एकता के लिये उन्होंने विदेश-मन्त्री के पद से अपना त्याग पत्र दे दिया। चागलाजी के पद-त्याग से सबको भारत के पुराने त्यागी राजाओं और सन्तों का स्मरण हो आना चाहिये। देश की दुरावस्था से निराश होने वाले व्यक्तियों को अब तो प्रसन्न हो जाना चाहिये कि देश में अभी भी राजाजी और चागलाजी जैसे जिम्मेदार लोग हैं जो देश को एक शताब्दी तक गुलाम रखने वालों की भाषा को हटाये जाने की आशंका से इतने चिंतित हो उठे हैं।

अभी हाल में हुए शिक्षामन्त्रियों के सम्मेलन में केन्द्रीय शिक्षामन्त्री श्री त्रिगुणसेन ने कहा था कि जब मैं युवक था तब स्वाधीनता-आन्दोलन के नेता महात्मा गांधी और राजगोपालाचार्य के विचारों का मुझ पर गहरा असर पड़ा था। तब श्री राजगोपालाचार्य ने अनेक विश्वविद्यालयों में दिये अपने भाषणों में शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने पर बारम्बार जोर दिया था। यह दुःख की बात है कि उनके जैसे विद्वान ने अपना विचार बदल दिया।

सचमुच इतिहास ही बतायेगा कि इन 'कथित देशभक्तों' की यह देशभक्ति देश की उन्नति में कहाँ तक सहायक सिद्ध हुई।

विश्व विद्यालयों में हिन्दी—

यह बड़े सन्तोष की बात है कि कई विश्वविद्यालयों ने बी० ए० की शिक्षा में अंग्रेजी को ऐच्छिक विषय मानकर हिन्दी को अनिवार्य माना है तथा अपने शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही रक्खा है। दीर्घकाल से चली आ रही भाषा-समस्या अब एक नया मोड़ लेकर जनता के समक्ष उपस्थित हुई है। आखिरकार जन-भाषा और मातृ भाषा का वियोग हम कब तक सहते रहेंगे। हिन्दी की महत्ता और उसका विस्तार, संकुचित एवं पाश्चात्य धारणाओं के व्यक्तियों को अब परिवर्तित करने में सफल प्रमाणित हुई। परीक्षाओं में दिन प्रतिदिन अंग्रेजी का मोह कम होता जा रहा है और हिन्दी की प्रबल आवश्यकता को अनुभव किया जाने लगा है। वयोवृद्ध विचारक काका कालेलकर ने भारतीय युवकों के मानस को टटोलकर ही अजमेर में भाषण देते हुए कहा था कि अँग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देना और शासन चलाना अत्याचार है। आज का छात्र वर्ग अँग्रेजी के बंधन से अपने आपको मुक्त करने के लिये आकुल हो उठा है। अनेक विश्वविद्यालयों के अधिकारियों ने समय की इस मांग को पहचाना है और सामान्य अँग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त करने का महत्वपूर्ण निर्णय किया है। उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त ने प्रदेश की हाई स्कूल तथा इन्टर परीक्षाओं से अँग्रेजी के अध्ययन की अनिवार्यता को समाप्त करने की उद्घोषणा की है। उत्तर-प्रदेश के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में कला वर्ग की स्नातक और स्नातकोत्तर परीक्षाओं को हिन्दी माध्यम से देने की सुविधा प्राप्त है। इसी प्रकार कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद आदि विश्वविद्यालयों ने अँग्रेजी को वैकल्पिक विषय बना दिया है। मेरठ विश्वविद्यालय ने भी अभी कुछ ही दिन पूर्व अँग्रेजी को वैकल्पिक विषय के रूप में घोषित कर दिया है। आगरा विश्वविद्यालय में बी० एस० सी० परीक्षा में अँग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया है किन्तु अभी बी० ए० परीक्षा में उसे अनिवार्य ही रहने दिया है। हम पहले भी लिख चुके हैं कि आगरा विश्वविद्यालय में बी. ए. के लगभग ९५% छात्रों की परीक्षा का माध्यम अँग्रेजी न होकर हिन्दी है। अतः उनके लिये सामान्य हिन्दी का अनिवार्य होना लाभप्रद रहेगा। अँग्रेजी को अनिवार्य बनाना उनके लिये हानिप्रद ही सिद्ध हुआ है। राजस्थान विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इसीलिये बी. ए. की द्वितीय तथा तृतीय वर्ष की परीक्षाओं में अँग्रेजी को वैकल्पिक विषय के रूप में घोषित कर दिया है। वहाँ जयपुर, कोटा, अलवर आदि नगरों में छात्रों द्वारा बी. ए. से अंग्रेजी को बिल्कुल ही हटा देने की माँग की गई है। अतः उचित यही रहेगा कि हवा के रुख को पहचान कर हिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालय अपनी परीक्षाओं से अँग्रेजी के अध्ययन की अनिवार्यता को समाप्त कर दें। वास्तव में यह राष्ट्र और शिक्षा के हित में उठाया गया कदम होगा।

ये हस्ताक्षर मिट गये—

इस वर्ष का अगस्त मास हिन्दी साहित्य के लिए अभिशाप बन कर आया और अपने क्रूर करों से हिन्दी के तीन सशक्त हस्ताक्षरों को बलात मिटा गया, डा० श्री कृष्णलाल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एवं पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी। ये तीनों माँ-भारती के ऐसे त्रिकोण थे जिनसे भाषा के त्रिकाल पर प्रभाव पड़ा। डा० श्री कृष्णलाल ने आलोचना में मौलिक चिन्तन का समावेश किया तो आचार्य वाजपेयी ने समालोचना साहित्य की प्राचीन परम्परा का सम्यक निर्वाह करते हुए भी, नवीन प्रतिमाओं को सदैव स्थापित करने का प्रयत्न किया। और पं० शान्तिप्रिय

(शेष पृष्ठ ९१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीक और बिम्ब का मनोविश्लेषण

डा० प्रेमप्रकाश गौतम

अनुभूति को सीधे व्यक्त करने की अपेक्षा प्रतीकों के माध्यम से प्रकट करने में अभिव्यक्ति अधिक संप्रेषण-समर्थ, सुन्दर और चमत्कारपूर्ण होती है। शब्दों का अभिधात्मक रूप उतना प्रभावशाली नहीं होता जितना प्रतीकात्मक या व्यंजनात्मक रूप। प्रतीक को अमूर्त्त वस्तु का मूर्त्त चिह्न कहा जा सकता है। वह अभिव्यक्ति का एक समर्थ माध्यम है और भाषा की क्षमता तथा अर्थवत्ता के विकास का एक महत्त्वपूर्ण साधन। वह संक्षिप्त अभिव्यक्ति का—विस्तृत बात को संक्षेप में कहने का भी एक सशक्त माध्यम है।वस्तुतः प्रतीक अलङ्कार का ही एक रूप है। पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में प्रतीक साहित्य-शिल्प का एक विशेष अङ्ग माना गया है। जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों का कहना है, प्रतीकवादी कविता उन संवेदनाओं को संवेद्य बनाने का प्रयास है जो साधारण शब्दों में समाहित न हो पाने से प्रतीक द्वारा व्यक्त होते हैं। प्रतीकों का प्रयोग बहुधा तब होता है जब अभिधा-पद्धति असफल हो जाती है, जब कवि अपनी अनुभूति को सीधे शब्दों में प्रकट नहीं कर पाता। अतः एक ओर प्रतीक-विधान जहाँ कवि की सामर्थ्य का द्योतक है, वहाँ दूसरी ओर वह उसकी असामर्थ्य का—'ठीक' शब्दों में स्पष्टतः अपनी बात न कह पाने की विवशता और दुर्बलता का परिचायक है और इस कारण अस्पष्टता का कारण भी।

प्रतीक मानसिक स्थिति को व्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। प्रतीक आरोपित या वाह्य नहीं होते, उनका सम्बन्ध कलाकार अपने मन की स्थिति को, अपने मनगत वस्तुतत्त्व को व्यक्त करता है। वस्तु-तत्त्व प्रायः अस्पष्ट होता है, उसका एक पक्ष छिपा रहता है। इस कारण भी प्रतीक विधान में अपेक्षित स्पष्टता का अभाव होता है।

प्रतीक एक ओर रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अलङ्कारों के निकट है, दूसरी ओर व्यंजनावृत्ति के। उक्त अलङ्कारों में भी प्रतीक-पद्धति की भाँति केवल अप्रस्तुत (उपमान ही प्रयुक्त होते हैं परन्तु प्रतीक-विधान में अप्रस्तुत (उपमान) प्रायः नये, अप्रतिष्ठित और कवि के गढ़े हुए होते हैं। जब उपमान-रूढ़ अर्थात् लोक-प्रसिद्ध और परम्परागत होते हैं तभी उनका प्रयोग अलङ्कार (अन्योक्ति, रूपकातिशयोक्ति या ऐसा कोई अन्य अलङ्कार) होता है।

प्रतीक से व्यक्त अर्थ प्रायः अनिश्चित, संदिग्ध और सन्दर्भ—सापेक्ष होता है। प्रतीकों में नये-नये अर्थ नये सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं। कारलाइल के अनुसार प्रतीक अपने भीतर के निहित अर्थ को तत्काल खोलता है और छिपा लेता है। प्रतीकात्मक शब्द अनेक प्रकार के भाव और मानसिक चित्र उत्पन्न करता है। कॉलरिज के अनुसार प्रतीक की विशेषता यह है कि वह व्यष्टि में किसी विशेष सत्ता का, अथवा विशेष में किसी सामान्य सत्ता का, या सामान्य में किसी सर्वव्यापी सत्ता का आभास देता है।

यूरोपीय प्रतीकवाद ने काव्य में अनेक नयी बातों का प्रवर्त्तन किया। अभिव्यक्ति-सम्बन्धी नये प्रयोग करते हुए कविता को रूढ़ि से मुक्त किया गया, अतुकान्त तथा मुक्त छन्द का प्रवसन किया गया, साहित्य को राजनीति से आक्रान्त होने से बचाया गया और सौन्दर्य तथा कला पक्ष का महत्त्व स्थापित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। संक्षेप में मुख्य प्रतीकवादी प्रवृत्तियाँ हैं—सौन्दर्य के प्रति तटस्थ दृष्टि, जगत् को पूर्ण जगत् की पूर्ण जगत् की प्रतिच्छाया मानकर भावना, बुद्धि और इन्द्रिय से उसकी संवेदना ग्रहण करते हुए उसे अभिव्यक्ति देना, स्वप्न तथा सत्य, अनुभूति और इन्द्रिय-बोध को वैचित्र्य से संयोजित कर वर्ण्य विषय को कवि द्वारा भावोन्मेष का प्रतीक बनाने का यत्न; अनुभूति की आन्तरिकता एवं वैयक्तिकता, प्रतीकों और बिम्बों द्वारा अर्थ-व्यंजना, कला में ही शुद्ध सौन्दर्य की सत्ता मानना, रूपगत पूर्णता पर बल, भाषा में अर्थ संगति का अभाव, जन-भाषा के शब्दों और लोक-गीतों की धुनों के प्रति आग्रह और मुक्त छन्द का अधिक प्रयोग।

प्रतीकवादी कविता का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी की प्रयोगनिष्ठ कविता पर है। इतना प्रभाव नयी कविता पर भी नहीं है। नयी कविता की सौन्दर्य-दृष्टि सर्वत्र तटस्थ नहीं है। स्वप्न और सत्य को वैचित्र्य से संयोजित कर वर्ण्य वस्तु को अपने भावोन्मेष का प्रतीक बनाने की प्रवृत्ति नयी कविता में भी है। परन्तु नये कवि मात्र इसी के लिए घटनाओं और प्रतीकों की योजना नहीं करते। युग-जीवन की विभिन्न स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए भी उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया है। नयी कविता को यह प्रतीकवादी मान्यता स्वीकृत नहीं है कि शुद्ध सौन्दर्य प्रकृति में नहीं, कला में है। अभिव्यक्ति को सशक्त समीचीन और सुगम बनाने के लिए ही नये कवि प्रतीकात्मक प्रयोगों का आश्रय लेते हैं। उसमें वे कहाँ तक सफल होते हैं, यह दूसरी बात है।

प्रतीकवादी मान्यताएँ नयी कविता में पूर्णतः स्वीकृत नहीं हैं। उनमें परिवर्तन संशोधन भी नये कवियों ने किया है। प्रतीकवादियों और अन्तश्चेतनावादियों के प्रभाव से प्रयोगवादियों ने स्वप्न-प्रतीकों और यौन-प्रतीकों का भी उपयोग किया था। नयी कविता बहुत कुछ वर्जना-मुक्त होने से जीवन-जगत् के अनेक क्षेत्रों से अप्रस्तुतों को ग्रहण करती है। अनेक नये मौलिक प्रतीक इस काव्यधारा ने प्रस्तुत किये हैं। नयी कविता में स्वप्न-प्रतीकों और यौन-प्रतीकों का उपयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है।

प्रतीक और बिम्ब का अन्तर समझ लेना आवश्यक है। प्रतीक उस शब्द, शब्दचित्र, रूपक, पुराण-कथा या अन्यविध आख्यान को कहते हैं जो अपने अर्थ को छोड़कर किसी अन्य समान और सम्बद्ध अर्थ को व्यंजित करता है और कवि की किसी विशिष्ट अनुभूति के संप्रेषण में सहायक होता है।[1] काव्य सम्बन्धी प्रतीक के लिए, जैसा कि डा० बच्चनसिंह का कहना है, तीन बातें आवश्यक हैं—उसका कवि की निजी दृष्टि की सृष्टि होना, काव्य संदर्भ से युक्त होना, मूल्यों का अन्तर सम्बन्ध स्थापित करना। बिम्ब मानसिक चित्र को, अनुभूति के मूर्त्त रूप को कहते हैं। गोचरता उसकी मुख्य विशेषता है। उसके लिए विषय के प्रत्यक्ष चित्रण आवश्यक शब्दों के प्रयोग अर्थात् संक्षिप्त रचना और प्रभाव-शक्ति पर बल दिया जाता है।

---

[1] संस्कृतज्ञों की दृष्टि में प्रतीक का लक्षण है—"तद भिन्नत्वे सति तदबोधकत्वम् प्रतीकत्वम्" अर्थात् किसी वस्तु से भिन्न होने पर भी उसकी बोधक अन्य वस्तु प्रतीक है। डा० धीरेन्द्र वर्मा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार प्रतीक किसी अदृश्य अथवा अगोचर वस्तु या विषय का प्रतिनिधान करने वाला कोई दृश्य अथवा गोचर चिह्न या संकेत है। 'द लिटरेरी सिम्बल' के लेखक विलियम यार्क टिंडाल के कथनानुसार प्रतीक किसी अनुभूति या विचार या दोनों का सूचक बाह्य संकेत है—'आउटवर्ड साइन ऑव ऐन इनवार्ड स्टेट'। प्रतीक बिम्ब से तो साम्य रखता ही है, मिथ और संकेत (साइन) से भी मिलता है। प्रतीक और मिथ में अन्तर यह है कि मिथ अनेक आदिम प्रतीकों का गुच्छ होता है, उसमें (मिथ में) मिथ्यात्व रहता है। वह सामूहिक चेतना का फल होता है। प्रतीक और संकेत में यह अन्तर है कि प्रतीक में कलात्मकता भी होती है जबकि संकेत में मात्र सांकेतिकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेसिलडे लेविस के कथनानुसार बिम्ब ऐसा ऐन्द्रिय शब्द-चित्र है जिसमें आलंकारिकता और भावावेग का संदर्भ होता है। और जो पाठकों में भावोत्तेजन पैदा करता है।

प्रतीक अनुभूति के संप्रेषण का साधन है। प्रतीक योजना करते हुए कवि का उद्देश्य अपने अर्थ की अभिव्यक्ति, अपने अनुभव का प्रेषण करना होता है। प्रतीक विधान में लक्ष्य और प्राधान्य अर्थ (अर्थात् कथ्य) की अभिव्यक्ति का होता है, अर्थ-प्रेषण ही कवि का अभिप्रेत होता है, बिम्ब प्रस्तुत करना नहीं। बिम्ब यदि प्रतीक विधान से बनता है तो वह कवि का अभीष्ट या उसके लिए प्रधान नहीं होता। बिम्ब योजना में बिम्ब अर्थात् चित्र की सृष्टि कवि की अभिप्रेत होती है। उसका लक्ष्य मानसिक चित्र-सर्जन होता है। बिम्ब-विधान करते हुए काव्यकार या तो केवल चित्र प्रस्तुत करता है या चित्र प्रस्तुत करते हुए उसका प्रतीक रूप में उपयोग करता है। उसके द्वारा अनुभूति का प्रेषण करता है। इस प्रकार बिम्ब कभी तो मात्र वाक्चित्र होता है, कभी चित्र प्रतीक। प्रतीक विधान में कवि का लक्ष्य चित्र प्रस्तुत करते हुए अर्थाभिव्यक्ति करना नहीं होता। प्रतीक से पाठक के मन में चित्र भी प्रस्तुत हो जाए, यह दूसरी बात है। 'सौन्दर्य शास्त्र के तत्व' के लेखक डा० कुमार विमल ने भी बिम्ब और प्रतीक के इस अन्तर की चर्चा की है—'बिम्ब विधान में जहाँ सम्मूर्त्तन और चित्रोपमता को प्रधानता दी जाती है वहाँ प्रतीक विधान में एक अभिव्यक्ति लाघव के साथ किसी सूक्ष्म सत्य सौन्दर्य या प्रभाव की संकेत-व्यंजना की जाती है।

परम्परा और वैयक्तिकता की दृष्टि से प्रतीक दो प्रकार के माने जाते हैं—स्वच्छन्द वैयक्तिक अर्थात् कवि के अपने गढ़े हुए नये प्रतीक और परम्परागत प्रतीक। परन्तु तथाकथित परम्परागत प्रतीक, प्रतीक न होकर रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति या इस प्रकार का कोई अलङ्कार होता है। स्रोत की दृष्टि से प्रतीक कई प्रकार के हो सकते हैं—संस्कृत सम्बन्धी, प्रकृति-सम्बन्धी, विज्ञान-सम्बन्धी और व्यावहारिक जीवन-सम्बन्धी। सांस्कृतिक प्रतीक, चार-पांच प्रकार के होते हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक। वैज्ञानिक प्रतीकों के भी अनेक भेद किये जा सकते हैं—भौतिक विज्ञान सम्बन्धी, मनोविज्ञान-सम्बन्धी, राजनीति सम्बन्धी। काव्य में बिम्ब-विधान या रूप विधान का प्रतीक से भी अधिक महत्व है। ड्राइडन ने बिम्ब-विधान को कविता का प्राण कहा है। परन्तु बिम्ब कविता की सजीवता, श्रेष्ठता या उच्चता का एक मात्र उपकरण नहीं है। कल्पना और बिम्ब-विधान का महत्व असंदिग्ध है। परन्तु अनुभूति या भाव उससे उच्चतर और अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अनुभूति के अभाव में रूप-विधान प्रायः निरर्थक है। अनुभूति होने पर ही उसकी सार्थकता है। अनुभूत्यात्मक बिम्ब ही कविता की सृष्टि करता है। अनुभूति जितनी तीव्र होगी, रूप विधान उतना ही सशक्त और स्पष्ट होगा।

बिम्ब-विधान का सम्बन्ध काव्य के अन्तरंग से अधिक है। बहिरंग-परक होने पर बिम्ब केवल चमत्कार उत्पन्न करता है। बिम्ब का मुख्य उद्देश्य अनुभूति को मूर्त्त करना है, अनुभूति की अभिव्यक्ति करना है। बिम्ब-योजना के लिए सर्जनात्मक शक्ति, भाव-प्रवणता और तत्वों के एकीकरण की क्षमता अपेक्षित है। कवि के स्वनिर्मित मौलिक बिम्बों में अनुभूति को व्यक्त करने की शक्ति अधिक होती है। परन्तु नवीनता के नाम पर विचित्रता उत्पन्न करना अनुचित है। कल्पना चित्र या बिम्ब एक छोटा-सा शब्द-चित्र भी हो सकता है और बड़ा शब्द-चित्र भी। जिन वस्तुओं का प्रभाव या संवेदन कवि के मन पर अंकित होता है उनका बिम्ब उनके मन में बनता है। वह बिम्ब काव्यगत होकर पाठक तक पहुँचता है। काव्य के अनुशीलन से पाठक के भी मन में लगभग वैसा ही बिम्ब बन जाता है।[1]

[1] बिम्ब की रचना, जैसा कि डा० कुमार विमल का कहना है, किसी दृश्य वस्तु संवेदन प्रतिक्रिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्ब-विधान एक वाद (इमेजिज्म) के रूप में काव्य में प्रतिष्ठित हो चुका है। प्रारम्भ में टी० ई० ह्यूम ने अपनी रचनाओं में बिम्बवाद के संकेत दिये थे। एज़रा पाउण्ड ने भी इस प्रवृत्ति का पोषण किया। अपनी बिम्बात्मक रचना का नाम उन्होंने 'इमेज़' बताया। आगे चलकर इमेज़ के तीन सिद्धान्त स्थिर किये गये—विषय या विषयी का प्रत्यक्ष, आवश्यक शब्दों का ही प्रयोग, रचना का आधार छन्द न होकर संगीत होना। बिम्बवाद के पोषक विषय को मूर्त रूप में ग्रहण करते हैं। उनके विचारानुसार रचना छोटी होनी चाहिये जिससे पूरा चित्र शीघ्र ही पाठक के मन में उभर आये और उसे अविलम्ब प्रभावित कर सके। सेसिल डे० लेविस के अनुसार काव्य-बिम्ब एक प्रकार का ऐन्द्रिय शब्दचित्र है जो कुछ अंशों तक आलंकारिक होता है, जिसके मूल में कलाकार की संवेदना निहित होती है और जो पाठक के मन में विशिष्ट रागात्मक भाव जागरित करता है। एच० कुम्वे ने बिम्ब को एक प्रकार का 'फिगर ऑव स्पीच' कहा है। डा० स्पर्जियन का कहना है कि कल्पना-चित्र या बिम्ब वे चित्र हैं जिनका निर्माण उपमा या रूपक से होता है। वस्तुतः बिम्ब अर्थात् कल्पना-चित्र और अलंकारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कल्पना स्थूलतः तीन प्रकार की होती है—बौद्धिक, सौन्दर्य-परक और व्यावहारिक। जब कल्पना बुद्धि के स्तर पर विकसित होती है तब उसमें बौद्धिकता अधिक होती है। सौन्दर्यात्मक कल्पना सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न करती है। व्यावहारिक कल्पना जीवन और उपयोगी कला में सहायक होती है।

बिम्ब कल्पना और स्मृति की वह क्रिया है जो शब्दों द्वारा रूप (चित्र) प्रस्तुत करके पाठक के मन को प्रभावित करती है। बिम्बविधायक कल्पना पुनरुत्पादक कल्पना होती है। कवि अतीत घटनाओं, स्थितियों और अनुभूत पदार्थों को उनके रंग, ध्वनि, गति, आकार-प्रकार के साथ शब्द-चित्रों के रूप में उपस्थित करता है। घटनाओं, तथ्यों और वस्तुओं को कवि बिम्ब-रूप में ग्रहण करता है और रूपकों, उत्प्रेक्षाओं, अन्य अलंकारों, प्रतीकों और इतर साधनों द्वारा अपने भावों को बिम्ब-रूप में प्रस्तुत करता है।

वे बिम्ब जो हमारी कल्पना में दृश्य उपस्थित करते हैं साधारण बिम्ब होते हैं। जो बिम्ब दृश्य उपस्थित करने के साथ हमारी अन्य इन्द्रियों (जिह्वा, घ्राणेन्द्रिय, स्पर्श-चेतना, और नाद-चेतना) को भी प्रभावित करते हैं वे काव्य-दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट होते हैं। काव्य बिम्ब की प्रमुख विशेषता, जैसा कि डा० नगेन्द्र का कहना है, उसका भावस्पर्शयुक्त (रागात्मक अनुभव से प्रेरित) होता है। कवि-कल्पना बुद्धि प्रेरित न होकर, राग-प्रेरित होनी चाहिए। काव्य में 'ऐसे उपमान और बिम्ब अधिक उपयोगी होते हैं। सहृदय समाज के साथ जिनका रागात्मक सम्बन्ध है' औचित्य (प्रसंगानुरूपता) तथा चारुत्व (वस्तु तथा प्रमाता की चित्तवृत्ति का तादात्म्य) डा० नगेन्द्र के अनुसार बिम्ब के दो आवश्यक गुण हैं। बिम्ब-विधान के लिए यह भी आवश्यक है कि बिम्ब और उसके विधायक उपमान आदि उपकरण जीवन से सम्बद्ध हों, लोक-सामान्य अनुभव से विच्छिन्न या दूर न हों।[1]

बिम्ब प्रक्रिया की पहली स्थिति और उसकी प्रथम आवश्यकता निरीक्षण है। बिम्ब सर्जना निरीक्षण के ही अनुसार होती है। परन्तु उसका विशिष्ट गुण, जैसा कि डा० रामयतनसिंह भ्रमर का कहना है, चेतना है। भाव या विचार का चेतन मूर्त्त रूप ही बिम्ब है। 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व' के लेखक डा०

विचार, धारणा, विशेषार्थ-द्योतक घटना अथवा अलंकार से होती है। जहाँ तक अनुभूति का प्रश्न है बिम्ब वास्तविक अनुभूति से तो बनता ही है और वही उचित भी है काल्पनिक अनुभूति और विचार से भी उसका निर्माण होता है।

---

[1] डा० नगेन्द्र—'ये उपमान मैले हो गये हैं' शीर्षक लेख (धर्मयुग २२ जन, १९६७ का अङ्क पृ० १६–१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार विमल ने भी ऐन्द्रिय चेतना को बिम्ब का प्रमुख गुण माना है। बिम्ब के अन्य गुण हैं—वस्तु-निष्ठता, संक्षिप्त शब्द-योजना और विशेषत्व। बिम्ब के लिए बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष अनिवार्य है। शब्द भी यथा सम्भव कम और आवश्यक ही प्रयुक्त होने चाहिए। विशेषत्व भी बिम्बविधान में अपेक्षित है। कविता या कोई भी कला विशेष का ही चित्र प्रस्तुत करती है, सामान्य का नहीं।

आचार्य शुक्ल के अनुसार रूप विधान या चित्र-विधान तीन प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष रूपविधान, स्मृत रूप विधान, कल्पित रूपविधान। काव्यगत रूप-विधान प्रायः कल्पित होता है। कल्पित रूप विधान दो प्रकार का हो सकता है—प्रस्तुत और अप्रस्तुत। प्रस्तुत रूप-विधान से विभावों, अनुभावों, संचारी भावों का सम्बन्ध है। अप्रक्तुत रूप-विधान अलंकारों से सम्बद्ध है। अप्रस्तुत बिम्ब-विधान के वस्तु-पक्ष और कलापक्ष के अनुसार अनेक भेद किये जा सकते हैं।

बिम्ब-विधान वस्तु की दृष्टि से दो प्रकार का हो सकता है—परम्परागत और आधुनिक। परम्परागत बिम्ब-विधान चार प्रकार का माना जा सकता है—सांस्कृतिक, पौराणिक, और प्राकृतिक। आधुनिक रूप-विधान के प्रकार हैं—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, दैनन्दिन, यान्त्रिक, वैज्ञानिक आदि। सांस्कृतिक बिम्ब विशेष भावना या संस्कार से युक्त होते हैं और पौराणिक शास्त्रीय या ऐतिहासिक उपकरणों—वाद्य, संगीत, नृत्य यन्त्र आदि ये सम्बद्ध होते हैं।

बिम्ब-विधान की नवीनता की दृष्टि से डा. नगेन्द्र ने चार प्रकार के बिम्बों की चर्चा की है—औचित्य और चारुत्व की उपेक्षा करते हुए उपमान आदि की नवीनता के आधार पर निर्मित नवीन बिम्ब, संवेदना (रागात्मक स्पर्श) से रहित ऐसे बिम्ब जिनमें नयी कल्पना द्वारा प्रस्तुत अप्रस्तुत के बीच रूप साम्य, गुण साम्य और अनुपात की रक्षा की जाती है, जीवन में आगत परन्तु काव्य में अप्रयुक्त नवीन उपकरणों को उपमान आदि के रूप में प्रस्तुत कर निर्मित किये गये बिम्ब और रागात्मक स्पर्शयुक्त परिचित उपकरणों के नवीन प्रयोग से निर्मित बिम्ब ! नूतन बिम्ब विधान का यही रूप जैसा कि डॉ० नगेन्द्र का कहना है 'अधिक काव्योचित है।'[1]

बिम्ब की रचना शब्दों से, अलङ्कार से, वस्तु-व्यापार और गुण-साहश्य से और प्रतीक के माध्यम से हो सकती है। डॉ० कैलाश वाजपेयी ने भाव-व्यञ्जना और अलङ्कार के आधार पर बिम्बों के तीन वर्गों का निर्देश किया है—वस्तु-प्रधान विम्ब, भाव-प्रधान बिम्ब और अलङ्कार-प्रधान बिम्ब। वस्तु-प्रधान बिम्ब के उन्होंने दो भेद स्वीकार किये हैं—प्रतिचित्रात्मक विम्ब और व्यापार-व्यञ्जक बिम्ब। वस्तु-चित्रण में छाया-चित्रों जैसी स्थिरता होती है। कवि वर्णन करने में निरपेक्ष होता है। ऐसे बिम्बों को यथा-तथ्य विम्ब कहा जा सकता है। गति के आभास वाले बिम्ब गति-व्यञ्जक या व्यापार-व्यञ्जक बिम्ब कहे जा सकते हैं।

भाव-बिम्बों में अनुभूति अधिकतर अस्पष्ट होती है। भावात्मक बिम्ब-विधान में प्रायः सभी कवियों की प्रवृत्ति होती है। इनके द्वारा विरह-मिलन, सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्कण्ठा आदि की विभिन्न परिस्थितियों और मनःस्थितियों की व्यञ्जना होती है। गुणपरक स्पर्श बिम्ब आज के काव्य में कम हैं। अलङ्कार-बिम्बों की विशेषता उनकी आलङ्कारिता में होती है। अलङ्कार की दृष्टि से बिम्ब संक्षिप्त व्यञ्जक बिम्ब और शिथिल प्रसृत बिम्ब दो प्रकार के होते हैं। बिम्ब के इन भेदों के अतिरिक्त सान्द्र (सघन) एवं विवृत्त (विस्तृत) अर्थात् विवरणपरक बिम्ब भी होते हैं। विवृत बिम्ब के लिए व्यापक कल्पना और रचना का दीर्घ आकार अपेक्षित है। विवृत बिम्ब और वस्तु बिम्ब प्रायः लम्बी वर्णनपरक समस्यापरक कविता में होते हैं।

---

[1] डा:० नगेन्द्र—'ये उपमान मैले हो गये हैं' धर्मयुग २२ जन०, १९६७ में प्रकाशित। पृ० १६–१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्बों का वर्गीकरण और भी कई प्रकार से किया जाता है। विनियोग की दृष्टि से बिम्ब तीन प्रकार के होते हैं—प्राथमिक बिम्ब, विकसित बिम्ब व्युत्पन्न बिम्ब। मूर्त्तता की दृष्टि से बिम्ब मूर्त्त, अमूर्त्त दो प्रकार के माने जाते हैं। डॉ० कुमार विमल ने उपमात्मक, रूपकात्मक, रूपकमय, चिह्नात्मक, प्रतिलेखात्मक संकेतात्मक और प्रतीकात्मक—इन बिम्ब प्रकारों की भी चर्चा की है। ऐन्द्रिय बोध के आधार पर बिम्ब के चाक्षुष, श्रावण, स्पार्शिक, घ्राणिक, रासनिक, आंगिक (जैव) वेगोद्भेदक (किनेस्थेटिक) और गत्वर—ये भेद किये गये हैं। ऐन्द्रिय संवेदन से सम्बद्ध दो अन्य भेदों की भी चर्चा डा० कुमार विमल ने की है—सह-संवेदनात्मक संश्लिष्ट बिम्ब और समानुभूतिक बिम्ब। सह-संवेदनात्मक संश्लिष्ठ-बिम्ब में अनेक प्रकार के ऐन्द्रिय संवेदन संवेग अथवा अनुभव मिश्रित या समीकृत होते हैं। समानुभूतिक बिम्ब जिन्हें अँग्रेजी में 'इम्पैथिक इमेज' कहते हैं। इन्द्रिय गम्य संवेदनात्मक तादात्म्यपरक बिम्ब होते हैं।[1]

[1] 'सौन्दर्य-शास्त्र' के तत्त्व' (१९६७) पृ० २१२-२१७-२२४-२२५ राविन स्केलटन के अनुसार बिम्ब-शब्दाश्रित होता है और उसके प्रकार हैं—सरल बिम्ब, आशु बिम्ब, विकीर्ण बिम्ब (डिफ्यूज इमेज) अमूर्त्त बिम्ब, संयुक्त बिम्ब, मिश्रित बिम्ब, संयुक्त भावात्मक बिम्ब, मिश्रित अमूर्त्त बिम्ब, 'संयुक्त' अमूर्त्त और मिश्रित अमूर्त्त बिम्ब (एब्सट्रैक्ट कम्प्लैक्स इमेज)।

मनोविज्ञान और बिम्बवाद के अनुसार अवचेतन में अगणित इच्छाओं और अनुभूतियों का क्रमहीन विस्फोट होता है। इसलिए एक खण्डचित्र के बाद तुरन्त दूसरा खण्ड-चित्र सामने आ जाता है। मनोविश्लेषण-शास्त्र और बिम्बवाद की अनुयायिनी प्रयोगवादी कविता और नयी कविता में इस सिद्धान्त की स्वीकृत के कारण खण्डित रूप-विधान की भरमार है। सेसिल डे लेविस का कहना है कि इस कारण आज की कविता में असम्बद्धता और दुरूहता आ गई है। पाठक को प्राय: ऐसा लगता है कि वह किसी सोये हुए व्यक्ति का प्रलाप सुन रहा है। मानव-व्यक्तित्व के आज जटिल-संश्लिष्ट होने के कारण, अचेतन प्रतिक्रियाओं के विशृङ्खल हो जाने से, ये कवि सम्पूर्ण चित्र न देकर प्राय; उसके खण्ड-चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनमें क्रम-योजन पाठक को करना पड़ता है। श्री लेविस का कहना है कि अँग्रेजी की आधुनिक नई कविता के बिम्ब रागात्मक सम्पर्कों से शून्य हैं और इसलिए काव्यात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाते। इन बिम्बों का प्रभाव क्षणिक होता है। नयी कविता के बिम्ब सामान्य जन-कल्पना के लिए दुर्ग्राह्य होते हैं। किसी एक अनुभूति में आवद्ध न होने से वे कोई स्पष्ट और समन्वित प्रभाव पैदा नहीं करते। ये दोष हिन्दी को समसामयिक नयी कविता की बिम्ब-योजना में भी प्रचुरत: प्राप्त होते हैं।

—सनातन धर्म कालिज, नई दिल्ली।

ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक महानुभाव अपनी ग्राहक संख्या लिख देंगे तो उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त हो सकेगा। अन्यथा ग्राहक संख्या तलाश करना और आज्ञा का पालन करना सहज सम्भव नहीं है।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लक्षण-ग्रन्थों' का अर्थ तथा उद्देश्य

• • •

डा० तपेश चतुर्वेदी

लक्षण-ग्रन्थ का सामान्य अर्थ हो सकता है—वे ग्रन्थ जिनमें किसी वस्तु के लक्षणों का निर्देश किया गया हो। साहित्य-क्षेत्र में लक्षण-ग्रन्थ अपना रूढ़ अर्थ ग्रहण किये हुए हैं। साहित्य में लक्षण-ग्रन्थ उन ग्रन्थों को कहते हैं जिनमें काव्य के लक्षणों का निर्देश हुआ है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि रीति के अनुसार काव्य-रचना के नियमों को बतलाने वाले ग्रन्थों को साहित्य में लक्षण-ग्रन्थ माना गया है।

यदि संस्कृत में लक्षण-ग्रन्थ के मूल नाम की खोजबीन की जाय तो ज्ञात होगा कि कुछ विद्वानों के मतानुसार इसे आरम्भ में, अर्थात् दंडी, भामह से पूर्वकाल में, क्रियाकल्प के नाम से अभिहित किया गया है।[1] क्रिया से तात्पर्य है 'काव्य क्रिया' और कल्प का अर्थ है 'विधि'। अतः उक्त शब्द का अर्थ हुआ काव्य-क्रिया की विधि। डा० राघवन ने अपने तर्क की सहायतार्थ वात्सायन के 'कामसूत्र' तथा रामायण के उत्तरकांड में 'क्रियाकल्प' शब्द को उद्धृत किया है। काणे महोदय ने इस तर्क को अशुद्ध प्रमाणित कर दिया है। उनके अनुसार क्रिया का अर्थ 'काव्यक्रिया' नहीं माना जा सकता।[2] अतः काणे महोदय ने यही माना है 'सर्व प्रथम जो नाम इसे दिया जा सकता है वह है दंडी द्वारा काव्यादर्श में प्रयुक्त शब्द 'क्रियाविधि'[3]। नवीं शती से कुछ पूर्व राजशेखर ने काव्य मीमांसा में साहित्य के अनुसार शब्द तथा अर्थ के साहित्य विद्या शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के अर्थ में किया।[1] राजशेखर की उक्ति के अनुसार शब्द तथा अर्थ के साहित्य को विशेष रमणीय बनाने की विद्या को साहित्य विद्या कहेंगे और इस रमणीय साहित्य को काव्य की संज्ञा दी जावेगी। इसी अर्थ में भामह ने 'शब्दार्थों सहितो काव्यं'[2] लिखा है।

उपर्युक्त दोनों नाम प्रचलित न हो सके। अतः यही सर्वमान्य है कि संस्कृत लक्षण-ग्रन्थों को आरम्भ में काव्यालङ्कार कहा गया। भामह, वामन तथा रुद्रट ने अपने लक्षण-ग्रन्थों को यही नाम दिया है। कारण यह हो सकता है कि अधिकांश लक्षण ग्रन्थों में अलंकारों को प्रमुख स्थान मिला है। यों तो अलंकार एक पृथक विषय के रूप में विवेचित है जिसे काव्य की शोभा का आधायक तत्त्व (Figure of Speech) माना गया है; परन्तु इसका एक और व्यापक अर्थ है जिससे यह काव्य-शोभा का विधायक (A thing of Beauty) माना जा सकता है। वामन ने इन दोनों के लिए क्रमशः 'अलंक्रियते अनेन' तथा 'अलंक्रियते' शब्दों का उल्लेख किया है। व्यापक अर्थ को ग्रहण करते हुए ही लक्षण-ग्रन्थों को 'काव्यालङ्कार' की संज्ञा दी गई है। काव्यालंकार सूत्र में लिखा है 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः[3] जो इस

---

[1] सम कन्सेप्ट्स आफ दि अलंकारशास्त्र—राघवन पृ० २६४।

[2] हिस्ट्री आफ संस्कृत पोइटिक्स पृ० ३४३।

[3] वाचां विचित्रमार्गानां निबबन्धुः क्रियाविधिम् पृ० ११६।

[1] शब्दार्थ योर्येथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविधा पृ० ५।

[2] काव्यालंकार १।१६।

[3] काव्यालंकार सूत्र १. १।१-२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य की पुष्टि कर देता है। लक्षण-ग्रन्थ को चाहे काव्यालंकार भले ही कहा हो परन्तु ग्रन्थकार को 'काव्यलक्षण विधायिनः' कहा गया है। इसी प्रकार भामह ने यद्यपि आरम्भ में अपने ग्रन्थ को काव्यालंकार कहा है तथापि अन्त में लिखा है "अवलोक्य मतानि सत्कवीनामवगम्य स्वधिया च काव्यलक्षणं"[1] अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि अलंकारशास्त्र काव्य-शोभा के वर्धनात्मक तत्वों का प्रतिपादक शास्त्र हुआ। इसका नाम अवश्य अलंकारशास्त्र था और इसके अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थों का नामकरण काव्यालंकार हुआ किन्तु वास्तव में इनका कार्य था काव्य-लक्षणों का प्रतिपादन।

हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों को रीति-ग्रन्थ अथवा काव्यशास्त्र की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। लक्षण का अर्थ रीति भी होता है।[2] अतः लक्षण-ग्रन्थ को रीति-ग्रन्थ कहना अशुद्ध न होगा। मिश्र-बन्धुओं ने 'रीति-ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग लक्षण-ग्रन्थ के अर्थ में ही किया है, यथा—"केशवदास भाषा-कविता के अरुणोदय काल में हुये हैं, अतः इन्होंने एक रीतिग्रन्थ भी बनाया है। अब रीतिग्रन्थ बनाने की परिपाटी सी चल पड़ी है।[3] यदि रीति का व्युत्पत्ति अर्थ लिया जाय तो इसका संकेत 'मार्ग' अथवा 'प्रस्थान' की ओर मिलेगा। रूढ़ अर्थ में इसे पद्धति, ढंग, प्रणाली, विधि आदि का पर्याय मान सकते हैं। संस्कृत के आचार्यों ने इसे विभिन्न नाम दिये हैं। परन्तु सब नामों से तात्पर्य यही निकलता है कि काव्य-रचना के मार्ग-निर्देशन हेतु नियमों को बतलाने वाले ग्रन्थों को रीति-ग्रन्थ कहा जाता है। लक्षण तथा रीति में जो सूक्ष्म अन्तर है वह केवल इतना है कि लक्षण पूर्वरचित साहित्य के आधार पर बनाये या गिनाये जाते हैं और रीति लक्षण के आधार पर आगामी रचनाओं के लिये मार्गदर्शन कराती है। अतः संस्कृत अथवा हिन्दी में इस प्रकार के जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं उन्हें मैं लक्षण-ग्रन्थ कहना ही समीचीन समझता हूँ।

रीतिशास्त्र तथा काव्यशास्त्र में अधिक भेद नहीं है। भामह ने रीति को 'काव्य' बतलाया है।[1] इसके अतिरिक्त वामन ने भी रीति के अन्तर्गत ही काव्य की समस्त रूपविधियों को मान लिया है।[2] अतः रीति-शास्त्र या रीतिग्रन्थ को काव्यशास्त्र के समकक्ष रखना अनुपयुक्त न होगा। रीतिशास्त्र तथा काव्यशास्त्र के विषय में एक विद्वान का मत दृष्टव्य है, यथा—"रीतिशास्त्र का तात्पर्य उन लक्षण देने वाले या सिद्धान्त-चर्चा करने वाले ग्रन्थों से है जिनमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के स्वरूप, भेद, अवयव आदि के लक्षण दिये गये हों।[3] वामन ने और अन्य आचार्यों ने रीति की जो परिभाषाएँ दी हैं उनसे भी यही तात्पर्य निकलता है कि काव्य तथा रीति एक ही वस्तु के दो नाम हैं। इसीलिये डा० नगेन्द्र ने वामन की परिभाषा—"काव्य शोभायाः कर्त्तारा धर्मा गुणाः"[4] पर आपत्ति उठाई है। उनका मत है कि—इसमें एक तो काव्य शब्द अनावश्यक है क्योंकि यह तो समस्त प्रपंच ही काव्य है।[5] इन्होंने आगे चलकर परिभाषा को संक्षिप्त रूप देते हुये यह निष्कर्ष निकाला है कि वामनकृत परिभाषा को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—सुन्दर पद-रचना या सम्यक् पद-रचना का नाम रीति है। अतः जो रीतिशास्त्र है वही काव्यशास्त्र है। और उन्हीं को सूक्ष्म भेद मिटा देने से—लक्षण-ग्रन्थ कहा गया है। हम काव्यशास्त्र का प्रयोग उस वैज्ञानिक निरूपण के

[1] काव्यालंकार ६।६४

[2] हिन्दी शब्दार्थ पारिजात पृ० ६२१—चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा।

[3] हिन्दी नवरत्न पृ० २६२।

[1] काव्यालंकार १।३१–३२

[2] काव्यसूत्र वृत्ति १।२।१३

[3] हिन्दी रीतिशास्त्र : भगीरथ मिश्र, पृ० २०

[4] का० सू० वृ० ३।१।१

[5] भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका पृ० ३६–३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये कर सकते हैं जिसमें काव्य अथवा कविता के स्वरूप, भेद, समस्याओं आदि पर व्यापक रूप से विचार किया गया हो।[1] यों तो उक्त समस्त बातों पर विचार तभी हो सकता है जबकि पूर्वरचित साहित्य उपलब्ध हो, परन्तु लक्षण-ग्रन्थों में इन सिद्धान्तों का भी समावेश हो सकता है जो समकालीन होने के नाते आगामी साहित्य का मार्ग निर्देशन कर सके।

उक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि 'काव्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों, नियमों तथा उसके स्वरूप तथा अवान्तर अंगों के लक्षणों की सूचना देने वाले ग्रन्थों को ही हम लक्षण ग्रन्थों की संज्ञा देते हैं।

आँग्ल साहित्य में काव्यशास्त्र अथवा लक्षण-ग्रन्थों को पोइटिक्स (Poetics) कहते हैं। पोइटिक्स की विभिन्न परिभाषाएँ उपलब्ध हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि लक्षण-ग्रन्थ तथा पोइटिक्स समानार्थी शब्द है। डा० एम० कृष्णमाचारी के अनुसार 'पोइटिक्स अथवा अलङ्कारशास्त्र' का अर्थ है 'कविता का विज्ञान'। इसके अन्तर्गत कविता का सिद्धान्तवाद उसकी उत्पत्ति, कविकर्म का रूप एवं वैविध्य, उसके दोष-गुण तथा अनेक अलङ्करणों का ऐसा विवेचन आता है जो काव्यात्मक-अकाव्यात्मक रचनाओं के भेद को स्पष्ट कर देता है।[2] अन्य परिभाषाओं के अनुसार 'पोइटिक्स' साहित्यिक आलोचना का वह अंग है जो कविता सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त यह कविता पर साहित्यिक निबन्ध भी है,[3] 'पोइटिक्स' आलोचना की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध कविता से होता है,[1] यह कविता के पन्थ तथा सिद्धान्तों का समूह है,[2] यह वह आलोचना है जो काव्य की प्रकृति तथा नियमों पर विचार प्रकट करती है,[3] यह कविता पर कला के रूप में विचार करने वाला साहित्यिक निबन्ध है, यह काव्य का सिद्धान्त-वाद है, यह काव्य-रचना को अध्ययन का विषय बनाता है, जैसे अरस्तू का काव्यशास्त्र।[4] पीटर मार्क रोजेट ने इसे शैली (Style) माना है।[5]

उक्त समस्त परिभाषाओं के अध्ययन से दो निष्कर्ष निकलते हैं—पहला यह कि आंग्ल काव्यशास्त्र कविता से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत करता है और दूसरा यह कि ये विचार कविता के सृजन-सिद्धान्तों अथवा कवि-पंथ का विवेचन करते है। हिन्दी में काव्यशास्त्र का भी यही अर्थ है। अतः सिद्ध होता है कि काव्यशास्त्र तथा पोइटिक्स एक ही वस्तु हैं। दोनों के उद्देश्य भी समान हैं। उद्देश्य दो हो सकते हैं—प्रथम पूर्वरचित काव्य के गुण-दोषों को स्पष्ट करते हुये उसके द्वारा उपलब्ध आनन्द में बृद्धि करके उसे सुलभ बनाना और द्वितीय आगामी रचनाओं का पथ-प्रदर्शन करना ताकि सुन्दर रचनाओं को जन्म दिया जा सके।

—२०, विजयनगर कालोनी, आगरा।

[1] डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र, पृ० ३

[2] भामाज् काव्यालंकार—प्राक्कथन

[3] दि ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी—भाग ७

[1] चेम्बर्स डिक्शनरी

[2] यूनीवर्सल प्रोनाउनसिंग एण्ड डिफाईनिंग डिक्सनरी आफ द इंगलिश लैंग्वेज, पृष्ठ ३३८

[3] कोलिनिस ग्राफिक इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ६४३

[4] वेबस्तर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी, आफ द इंगलिश लैंग्वेज, पृ० १९०२

[5] थिसोरस ऑफ इंगलिश वर्ड्स एन्ड फ्रेजेज, पृ० ५५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य वाजपेयी और रस-सिद्धान्त

डा० कन्हैयालाल सहल

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी रस में अलौकिकता के विरोधी थे। उन्हीं के शब्दों में "रसवादी काव्य की आत्मा रस को अलौकिक मानते हैं। यह अलौकिकता का पाखण्ड केवल यहीं तक रहता तो एक बात थी। यह जिस असत्य आधार पर स्थित हुआ, उसने साहित्य का बड़ा अनिष्ट किया है। अलौकिकता के नाम पर बेधड़क लौकिकता ही बढ़ती गई और धीरे-धीरे उसने जो स्वरूप धारण किया, वह बड़ा ही हेय हुआ। एक बार अलौकिकता की प्रतिष्ठा कर न जाने कितने उच्छृङ्खल कवियों ने, न जाने कितनी सप्तशतियों की सृष्टि की, जिनमें आदि से अन्त तक अलौकिक भाव का सम्पूर्ण अभाव रहा।"........आज जो साहित्यिकों की एक जाति ही अलग बनती चली जा रही है, उसका कारण भी साहित्य की अलौकिकता है। हम 'कला के लिए कला' वालों को व्यर्थ ही दोष देते हैं। हमारा अलौकिकानन्द विधायक रसवाद भी उससे कम नहीं रह गया था। मध्यकाल के ग्रन्थों में देखिए, कवि को पान खाने, अच्छी पोशाक पहनने, सुगन्धि-सेवन करने आदि की जो विधियाँ बतलाई गईं, वे आगे चलकर उन दरबारी कवियों की सृष्टि करने में सहायक हुईं जिन्हें हम कवि कहना भी कवित्व का तिरस्कार मानेंगे।"

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि स्व० आचार्य वाजपेयी निरी शास्त्रीय पद्धति से हटकर चलने वाले जीवन-द्रष्टा समीक्षक थे जो अपनी दृढ़ता और अटलता के बल पर विपथगामिनी धारा को रोक कर साहसपूर्वक साहित्य को सन्मार्ग की ओर उन्मुख कर देने की क्षमता रखते थे। हिन्दी साहित्य में जिस समय छायावादी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, सौभाग्य से उस समय वाजपेयीजी जैसा स्वच्छन्दतावादी समीक्षक साहित्य को मिल गया जिससे छायावादी काव्य-धारा का उसके उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्याङ्कन हो सका।

ऊपर इसकी अलौकिकता के सम्बन्ध में वाजपेयी जी के विचार उद्धृत किए जा चुके हैं। रस को लेकर पाश्चात्य समीक्षकों की भी मुख्य आपत्ति यह रही कि ब्रह्मानन्द सहोदर रस काव्य को एकाङ्गी बना देता है। काव्य का सीधा सम्बन्ध जीवन के चित्रण से है, न कि रस की उद्भावना से। कीथ का यह भी कहना है कि रस-सिद्धान्त पर भारतीय दर्शन की छाप है। श्रेष्ठ कार्य का श्रेष्ठ और बुरे कार्य का बुरा फल मिलता है, इस कर्म-सिद्धान्त का काव्य पर भी प्रभाव पड़ा। नियति का भयानक सङ्घर्ष और प्रकृति की अज्ञेयता भारतीय नाटक और काव्य से बहिष्कृत कर दी गई। इस कारण भारतीय कविता रसमय तो रही पर जीवन-स्पर्शी न हो सकी।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वाजपेयीजी को भारतीय रस-सिद्धान्त मान्य नहीं है। स्थूल शास्त्रीयता से ऊपर उठकर रस के सम्बन्ध में दृष्टिकोण की व्यापकता के वे पक्षपाती थे। काव्य में अनुभूति की तीव्रता को ही उन्होंने प्रधानता दी है। इस सम्बन्ध में रस के आत्यंतिक मूल्य के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी की विज्ञप्ति में श्री वाजपेयीजी ने समीक्षा विषयक अपनी निम्नलिखित मुख्य चेष्टाओं का उल्लेख किया था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—रचना में कवि की अन्तर्वृत्तियों (मानसिक उत्कर्ष-अपकर्ष) का अध्ययन।

२—रचना में कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता-विशालता (कलात्मक सौष्ठव) का अध्ययन।

३—रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्याङ्गों का अध्ययन।

४—समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन।

५—कवि की व्यक्तिगत जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन (मानस-विश्लेषण)

६—कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आदि का अध्ययन।

७—काव्य के जीवन सम्बन्धी सामंजस्य और सन्देश का अध्ययन।

उक्त सूत्रों से स्पष्ट है कि कवि की अन्तर्वृत्तियों का अध्ययन रस सिद्धान्त का ही नये सिरे से मनोवैज्ञानिक अध्ययन है तथापि शेष सूत्रों को देखते हुए यह भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य वाजपेयी रस को ही आत्यंतिक मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं करते थे।

श्री विद्यानिवास मिश्र ने भी कल्पना के जुलाई अङ्क में यह प्रतिपादित किया है कि रस काव्य का आत्यन्तिक मूल्य नहीं है। उनके मतानुसार "रस-सिद्धान्त भारतीय कलादृष्टि को समझने के लिए एक अच्छा उदाहरण है पर उसकी अमूर्त्तता-केन्द्रित रमणीयता को समझने के रस के अलावा अब और बहुत-सी चीजों को समझने की जरूरत है जिसमें वाचिक परम्परा की निरन्तरता और अनवच्छिन्न प्रवहमानता तथा जगत् के प्रति सच्चे अर्थ में विज्ञानमय दृष्टि अर्थात् बौद्धिक निःसंगता और सांसारिक जीवन की (अभिशाप के रूप में नहीं) स्पृहणीय वरदान के रूप में स्वीकृति, ये सारी बातें रस-सिद्धान्त से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।"

रसानुभूति की प्रक्रिया पर भी यदि हम दृष्टिपात करें तो अभिधा, भावकत्व व्यापार (जिसमें भाव प्रेरित कल्पना द्वारा प्रसूत काव्यात्मक बिम्बों का भी अन्तर्भाव हो जाता है) तथा व्यंजना द्वारा रसानुभव होता है। अलङ्कार, वक्रोक्ति, रीति तथा ध्वनि—ये चारों सम्प्रदाय रसानुभूति में अपने-अपने ढंग से योग देते रहते है। इस प्रकार रस-सम्प्रदाय भी रस-सिद्धि के लिए कल्पना तथा व्यंजना का साधन रूप में प्रयोग अनिवार्य मानता है।

अन्त में, हम काव्य-मूल्यों का बाह्य तथा आन्तरिक, इस प्रकार द्विविध वर्गीकरण करें तो आन्तरिक मूल्यों की दृष्टि से रस-सिद्धान्त को महत्त्वपूर्ण मान सकते हैं किन्तु बौद्धिक निःसंगता तथा सांसारिक जीवन स्वीकृति एवं कल्याण शोभा सम्पन्न अर्थ आदि को यदि हम काव्य के आन्तरिक मूल्य न मान कर बाह्य मूल्य भी मान लें, तो भी हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इस प्रकार के बाह्य मूल्यों के समावेश से काव्य की जीवनी शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार काव्यगत आत्यन्तिक मूल्य के सम्बन्ध में हमें बाह्य तथा आन्तरिक, दोनों प्रकार के मूल्यों को दृष्टि में रखना होगा।

—बिड़ला कालेज, पिलानी।

यदि आप चाहते हैं कि भारतवर्ष में प्रकाशित
हिन्दी की उत्कृष्ट पुस्तकों की जानकारी आपको मिले—
तो कृपया हमें लिखें।
हम आपकी सेवा में शीघ्र ही वृहत सूचीपत्र भेजेंगे—
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसन्धान की प्रविधि

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त

अनुसन्धान-कार्य में प्रवृत्त होने पर शोधार्थी को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके मूल में स्वच्छन्द विचार-प्रवाह की अपेक्षा प्रविधि का अनुशासन रहता है। भावुकता, कल्पना, कलात्मक अलंकरण आदि को अनुसन्धान के क्षेत्र में गौण स्थान प्राप्त रहता है तथा शोधकर्त्ता की दृष्टि तथ्य-संग्रह पर केन्द्रित रहती है। इस सन्दर्भ में यह जिज्ञासा प्रकट की जा सकती है कि क्या अनुसन्धान की प्रविधि इतनी अधिक वैज्ञानिक होती है कि उसमें व्यक्तिगत संस्पर्शों के लिए स्थान ही नहीं होता ? इसका उत्तर स्पष्ट है—आलोचना में व्यक्तिगत संस्पर्श के लिए जितना अवकाश रहता है, उतना अनुसन्धान में नहीं रहता, किन्तु इस प्रवृत्ति का सर्वथा बहिष्कार भी नहीं किया जा सकता। अभिप्राय यह है कि प्रमाणों की खोज, सन्दर्भों के उल्लेख, तुलनामूलक प्रवृत्ति आदि की अनिवार्यता होने पर भी अनुसन्धाता के समक्ष यह स्वतन्त्रता तो रहती ही है कि वह अपने व्यक्तिगत विवेक के आधार पर मूल सामग्री के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँचे। इस प्रकार निर्णयात्मकता अथवा मूल्यांकन की प्रवृत्ति अनुसंधान में होती तो है, किन्तु वह भावुकता से प्रेरित न होकर नियमों में अनुबद्ध रहती है। अनुसन्धान की प्रविधि अथवा नियमों के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्वों की गणना की जा सकती है—रूपरेखा, आरम्भिक पृष्ठ, भूमिका, विषय-सूची, विषय-प्रवेश, प्रबन्ध का मध्य-भाग, उद्धरण, उपसंहार, परिशिष्ट, प्रबन्ध-सार, टंकन।

रूपरेखा—शोध के लिए विषय का निर्धारण हो जाने पर अनुसन्धाता का प्रथम दायित्व रूपरेखा के निर्माण का होता है। इसके लिए उसे सर्वप्रथम उन सब समस्याओं अथवा मूल विषयों की ओर ध्यान देना चाहिए जिन्हें वह उस सन्दर्भ में उपयोगी समझता है। रूपरेखा के अन्तर्गत ऐसी सभी समस्याओं के आधार पर कुछ शीर्षकों और उपशीर्षकों का चुनाव करके व्यवस्थित विषय-विभाजन प्रस्तुत किया जाना चाहिए, क्योंकि बिना किसी योजना के अनुसन्धान में प्रवृत्त होना उचित नहीं होता। शीर्षकों का निर्धारण करते समय विषय के सम्बन्ध में मन में उभरने वाली विविध विचार-तरंगों का उपयुक्त विश्लेषण किया जाना चाहिए। आरम्भ में शोधार्थी को यह विदित नहीं होता कि अध्याय विशेष के लिए उसे किन विशिष्ट तथ्यों की प्राप्ति होगी अर्थात् अध्याय के आरम्भ की भूमिका और मूल सामग्री का क्या रूप होगा। सामग्री-संकलन के साथ-साथ इन स्थितियों की जानकारी भी बढ़ती है, अतः पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर किसी अध्याय को पूर्वनिर्धारित मान्यताओं के अनुसार आरम्भ कर देने, सामग्री को ज्यों-त्यों करके जुटा लेने और उसी के आधार पर सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत कर देने से अनुसन्धाता का दायित्व पूरा नहीं हो सकता। वस्तुतः एम० ए० तक के अध्ययन-काल में शोधार्थी को विषय की इतनी जानकारी तो हो ही जाती है कि इस सम्बन्ध में उसके मन में कुछ धारणाएँ अवश्य विद्यमान रहती हैं। इन्हें अलग न मानकर विषय से सम्बद्ध सामग्री का पुनः अनुशीलन किया जाना चाहिए तथा अपनी स्वतन्त्र विचार-शक्ति के अनुसार कुछ ऐसे तत्त्वों अथवा समस्याओं की स्थापना कर लेनी चाहिए, जिनसे विवेचन में मौलिकता और तथ्यात्मकता आ सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपरेखा के निर्धारण में शोधार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहना चाहिए, अर्थात् उसे अपनी रुचि और शक्ति की परिसीमाओं में ही रूपरेखा का निर्माण करना चाहिए। यदि आरम्भ में ही यह प्रतीत हो कि उक्त रूपरेखा के अनुसार कार्य करना कठिन होगा तो किसी अन्य विषय पर शोध-कार्य करना कहीं अधिक अच्छा होगा। रूपरेखा बना लेने पर उसे शोध-निर्देशक को दिखा लेना चाहिए और उनके द्वारा सुझाए गये परिवर्तन यदि अपनी शक्ति और सीमा के अनुकूल प्रतीत हों तो कार्य आगे बढ़ाना चाहिए अन्यथा ग्रन्थानुशीलन, विचार-विमर्श आदि के माध्यम से उक्त दिशा में अपनी रुचि का विकास करना चाहिए। वैसे, रूपरेखा को अन्तिम मानकर नहीं चला जा सकता। यद्यपि बाद में उसमें बड़े परिवर्तन सम्भव नहीं होते, किन्तु यत्र-तत्र सामान्य परिवर्त्तनों के लिए अवकाश अवश्य रहना चाहिए। रूपरेखा के निर्धारण से पूर्व शोधार्थी को एक ओर तो सम्बद्ध ग्रन्थों की सामान्य जानकारी द्वारा विषय के इतिवृत्त को समझ लेना चाहिए और दूसरी ओर विषय के मर्मज्ञ विद्वानों से परामर्श कर लेना चाहिए। फलतः आरम्भ में निर्धारित की गई रूपरेखा के अधिकांश भाग को बाद में परिवर्तित करने की सम्भावना नहीं रहेगी। जैसे-जैसे शोधार्थी का शोध-विषय सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे उसकी प्रतिक्रियाएँ भी स्पष्ट होती जायेंगी और रूपरेखा को सामान्य विधि से संशोधित करने की सुविधा प्राप्त होती रहेगी। आरम्भ में बहुत-सी बातें विदित न होने के कारण जहाँ रूपरेखा में बाद में यत्किंचित परिवर्त्तन सम्भव हुआ करते हैं वहाँ भी कोई सन्देह नहीं कि यदि आरम्भ में रूपरेखा निर्धारित न की जाये तो अनुशासित ढंग से शोध-कार्य में प्रवृत्त नहीं हुआ जा सकता। अभिप्राय यह है कि रूपरेखा की सहायता से शोधार्थी को निश्चित कार्यक्रम के अनुसार किसी निश्चित दिशा में कार्य करने की सुविधा प्राप्त रहती है।

शोध-ग्रन्थ की रूपरेखा अनुमान पर आधारित नहीं होनी चाहिए। उसके लिए सामग्री की प्रामाणिकता का आधार आवश्यक है। रूपरेखा के निर्धारण में निम्नलिखित बातों पर बल देना उचित होगा—(१) पूर्वज्ञात सामग्री के अनुशीलन के आधार पर ऐसी सभी दिशाओं की खोज कर लेनी चाहिए जिनके आधार पर अनुसन्धाता को आगे कार्य करने में सुविधा प्राप्त हो सके। (२) सभी दिशाओं में सोचने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि शोध-कर्त्ता केवल उन्हीं तत्त्वों को ध्यान में रखे जिनकी प्राप्ति की उसे आशा हो। अभिप्राय यह है कि कभी-कभी शोधार्थी को ऐसा अनुभव होता है कि वह कुछ निश्चित दृष्टियों से शोध-कार्य कर सकेगा, किन्तु बाद में कुछ बातें मिथ्या अनुमान मात्र सिद्ध होती हैं। अतः रूपरेखा में ऐसे तत्त्वों का समावेश नहीं किया जाना चाहिए जिनके सम्बन्ध में आरम्भ में प्रामाणिक जानकारी न हो। (३) रूपरेखा के अन्तर्गत ऐसे शीर्षकों का निर्धारण अवश्य कर लिया जाना चाहिए जो बाद के अध्ययन में सुविधाजनक सिद्ध हो सकें और जिनके आधार पर सामग्री का संकलन करते समय अनुसन्धाता भिन्न-भिन्न कार्ड बना सके अथवा फाइलें रख सके।

रूपरेखा को सभी दृष्टियों से पूर्णता प्रदान करने के लिए यह उचित होगा कि जब अनुसन्धाता अपने अध्ययन अथवा दूसरों के परामर्श के आधार पर कुछ समस्याओं का चुनाव करले तो उनके सम्बन्ध में अपने मत में कुछ आशंकाओं को स्थान दे। किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन क्यों, कैसे और किन परिस्थितियों में किया जा सकता है; यदि इन विषयों पर रूपरेखा के निर्माण के समय जागरूक दृष्टि से विचार कर लिया जाये तो शोधार्थी की कार्यविधि निश्चय ही अधिक वैज्ञानिक हो सकेगी, क्योंकि इस प्रकार के तर्क-वितर्क से समस्याएँ उलझे रूप में नहीं रहेंगी, अपितु उन्हें सुलझाने के लिए एक कार्यक्रम को सुव्यवस्थित ढंग से ग्रहण किया जा सकेगा। इस प्रकार की समस्याएँ अथवा प्रसंग जब भी मन में उभरें तभी उन्हें लिख लेना चाहिए। अनुसन्धान में केवल स्मृत्ति को महत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दिया जा सकता, अतः यह दृष्टिकोण उचित नहीं होगा कि इन बातों को कभी बाद में लिख लिया जाए। वस्तुतः अनेक बार ऐसा होता है कि जो समस्या शोधार्थी के मन में किसी विशेष परिस्थिति में उदित होती है वह उसके बाद प्रायः नहीं सूझती और इससे कार्य में अनावश्यक विलम्ब होता है। इसीलिए रूपरेखा में निर्धारित किये गये अध्याय-क्रम और उनके अन्तर्गत बताये गये शीर्षकों पर अत्यधिक बल न देकर जब जिस विषय में रुचि हो तब उसी के सम्बन्ध में सामग्री-संकलन उचित होगा। रूपरेखा के वृत्त से बाहर जाकर कार्य करने से भी कभी किसी ऐसी दिशा का बोध सम्भव होता है जिसके आधार पर अनुसन्धाता की कार्यविधि ही बदल जाती है। फलतः आरम्भ में निर्धारित किये गये शीर्षकों को बदलना पड़ जाता है अथवा कुछ शीर्षकों को छोड़-कर नये शीर्षकों का समावेश करना पड़ता है। वैसे शोधार्थी के मन में रूपरेखा इस प्रकार अंकित रहनी चाहिए कि वह उसके अनुशासन से मुक्त न हो पाए, यद्यपि नई दिशाओं की खोज में संलग्न रहना भी अपेक्षित है। वस्तुतः उपयुक्त रूपरेखा के अभाव में सामग्री-संकलन में यह निर्णय करने में असुविधा रहती है किस अंश को ग्रहण करें और किसका त्याग किया जाये। अतः यह उचित होगा कि रूपरेखा के अनुवर्तन से प्राप्त सामग्री का समय-समय पर विश्लेषण किया जाये और उसे सम्बद्ध अध्यायों के लिए वर्गीकृत करके यथास्थान टिप्पणियाँ लिख ली जायें।

आरम्भिक पृष्ठ—प्रत्येक शोध-ग्रन्थ के आरम्भ में एक शीर्ष-पृष्ठ होता है जिस पर प्रबन्ध के शीर्षक, शोधकर्त्ता के नाम, उसकी शैक्षणिक उपलब्धियों अथवा उपाधियों का उल्लेख रहता है। सामान्यतः इस सन्दर्भ में उसके व्यवसाय का उल्लेख नहीं होना चाहिए, किन्तु प्रबन्ध का मुद्रण कराते समय इसके उल्लेख में अनौचित्य न होगा। इसी पृष्ठ पर शोध-ग्रन्थ को उपाधि के लिए विचारार्थ प्रस्तुत करने के वर्ष का उल्लेख किया जाता है तथा उस विश्वविद्यालय का नाम भी अङ्कित रहता है जिसके तत्त्वावधान में शोध-कार्य किया गया हो। कुछ विश्वविद्यालयों में यह परम्परा है कि शोधार्थी शीर्षक-पृष्ठ पर अपने शोध-निर्देशक का नाम भी अङ्कित करा देते हैं, किन्तु यह पद्धति उचित नहीं है। शोध-निर्देशक के नामादि का उल्लेख भूमिका के अन्तर्गत ही किया जाना चाहिए।

भूमिका—शोध-प्रबन्ध की भूमिका को 'प्राक्कथन', 'उपोद्घात', 'अवतरणिका' आदि भी कहते हैं तथा यह 'विषय-प्रवेश' से सर्वथा भिन्न होती है। प्रस्तावना का विस्तार प्रायः २—३ पृष्ठों में सीमित रहना चाहिए और इसके अन्तर्गत विषय का सामान्य परिचय देते हुए उसकी उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की जानी चाहिए। प्रायः प्रस्तावना को पढ़कर ही शोध-ग्रन्थ के प्रतिपाद्य का पूर्वानुमान कर लिया जाता है, अतः इसके अन्तर्गत शोधार्थी की सीमाओं और उपलब्धियों का प्रत्यक्ष रूप में संकेत किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में शोध-कार्य के निरीक्षक, महत्वपूर्ण सुझाव देने वाले विद्वानों, सामग्री-संकलन में सहायक पुस्तकालयों के अधिकारियों आदि के प्रति संक्षेप में आभार-निवेदन किया जाता है। किन्तु, कृतज्ञता-ज्ञापन का अर्थ भावुकतापूर्ण स्तुति मात्र नहीं है। इस प्रसङ्ग में केवल ऐसे ही व्यक्तियों का उल्लेख किया जाना चाहिए जिन्होंने शोध-प्रबन्ध में विशिष्टता लाने में वस्तुतः महत्वपूर्ण योग दिया हो। कुछ अनुसन्धाता १५—२० व्यक्तियों तक के प्रति आभार प्रकट किया करते हैं। यह संख्या जितनी ही सीमित और मर्यादित होगी उतना ही उचित है। प्राक्कथन के अन्तर्गत वाक्य-गठन सरल होना चाहिए तथा अनावश्यक विवरण नहीं दिये जाने चाहिए। अतिभावुक होकर ऐसी बातें नहीं लिखी जानी चाहिए जिनसे शोधकर्त्ता की सामर्थ्य के विषय में ही सन्देह किया जाए। उदाहरणार्थ, 'मुझ में यह कार्य करने की सामर्थ्य नहीं थी; यदि निर्देशक महोदय ने पग-पग पर सहायता न की होती तो यह कार्य कदापि सम्पन्न न हो पाता, आदि वाक्य उचित नहीं होंगे। कभी-कभी कुछ विद्वानों के नामों का उल्लेख केवल इस उद्देश्य से किया जाता है कि इससे वे प्रसन्न होंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है तथा बौद्धिक जगत में इसे प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए। विभाग के अध्यक्ष, विभाग के अन्य प्रमुख प्राध्यापकों, शोध-निर्देशक आदि के प्रति आभार निवेदन में भाषा-संयम बहुत ही आवश्यक है। जिस प्रकार यह अपेक्षित नहीं होता कि शोध-प्रबन्ध के प्राक्कथन में किसी पर लांछन लगाया जाये उसी प्रकार यह भी अपेक्षित नहीं होता कि किसी की अनावश्यक स्तुति की जाये।

विषय-सूची—प्रस्तावना के उपरान्त शोध-ग्रन्थ में विषय-सूची को स्थान दिया जाता है। स्पष्ट है कि विषय-सूची बहुत-कुछ उस रूपरेखा के अनुरूप ही होगी जिसे शोध-कार्य आरम्भ करने के पूर्व अनुसंधाता ने निर्धारित किया होगा। मूल प्रबन्ध में निर्धारित किए गए शीर्षक-उपशीर्षकादि का विषय-सूची में यथावत् उल्लेख रहना चाहिए और यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि कौन-सा शीर्षक किस पृष्ठ पर उल्लिखित है। मूल प्रबन्ध में दिये गये शीर्षकों की शब्दावली में परिवर्त्तन उचित नहीं होता। इसी प्रकार यह भी भली भाँति देख लेना चाहिए कि शीर्षकों के साथ दी गई पृष्ठ-संख्या ठीक है अथवा नहीं। सूची में स्पष्टता का होना भी आवश्यक है, अतः प्रत्येक अध्याय और उसकी अन्तर्भुक्त सामग्री का स्पष्ट निर्देश होना चाहिए। मुख्य शीर्षकों को रेखांकित किया जाना चाहिए ताकि उपशीर्षकों से उनके अन्तर को समझा जा सके। यदि कोई शीर्षक इतना लम्बा हो कि उसे दो पंक्तियों में टंकित कराना पड़े तो ऐसी पंक्तियों को पृष्ठ के मध्य में उचित ढंग से स्थान दिया जाना चाहिए। विषय-सूची को टंकित कराते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्न पंक्तियों के मध्य में तथा दोनों ओर के हाशियों में उपयुक्त स्थान छोड़ा गया हो। वस्तुतः सूची स्वयं में इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि ग्रन्थ के सम्बन्ध में उठने वाला सामान्य जिज्ञासा का उसके अवलोकन मात्र से शमन हो जाए। कभी-कभी अनुसन्धाता विषय-सूची को रूपरेखा की भाँति ही बहुत विस्तार प्रदान करते हैं, जिसके मूल में उनकी यह धारणा होती है कि यदि विषय-सूची दीर्घ होगी तो इसका परीक्षक पर अधिक प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यह धारणा उचित नहीं है, अतः विषय-सूची में अनावश्यक विवरण नहीं दिये जाने चाहिए।

विषय-प्रवेश—शोध-ग्रन्थ के आरम्भ में अपने उद्देश्य और कार्यविधि को स्पष्ट करने के लिए अनुसन्धाता द्वारा विषय-प्रवेश की योजना की जाती है। क्योंकि अनुसन्धान का लक्ष्य ज्ञान-क्षेत्र की सीमा का विस्तार करना है, अतः अनुसन्धाता को विषय-प्रवेश के अन्तर्गत यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उक्त विषय पर पूर्ववर्ती अनुसन्धाता और समीक्षक क्या कार्य कर चुके हैं। इससे प्रबन्ध को रूपरेखा के निर्धारण में सहायता मिलेगी तथा यह स्पष्ट किया जा सकेगा कि अनुसन्धाता का लक्ष्य अब उस विषय को किस प्रकार आगे बढ़ाना है। वस्तुतः शोध-प्रबन्ध का लेखन आरम्भ करते समय सर्वप्रथम विषय-प्रवेश ही लिखा जाना चाहिए। कुछ अनुसन्धाता इसे सबसे अन्त में लिखते हैं। किन्तु, हमारे विचार से इसे पहले लिखना ही उपयुक्त होगा, क्योंकि इससे प्रबन्ध सम्बन्धी पूर्ववर्ती समीक्षात्मक सामग्री का अनिवार्यतः अनुशीलन करना होगा और कार्य-दिशा भी भलीभाँति निर्धारित की जा सकेगी। केवल अनुमान के आधार पर किसी दिशा में उपयुक्त अनुसन्धान-कार्य नहीं किया जा सकता। अतः आधारभूत सामग्री का सामान्य परिचय और उससे सम्बद्ध समीक्षात्मक सामग्री का विशिष्ट परिचय प्राप्त करके विषय-प्रवेश लिखना आवश्यक है। इसीलिए अनुसन्धाता को उपलब्ध सामग्री के अन्तर्गत केवल सामग्री की सूची ही प्रस्तुत नहीं करनी चाहिए, अपितु इस सम्बन्ध में अपनी टिप्पणियाँ भी देनी चाहिए। कुछ अनुसन्धाता ऐसी सामग्री की केवल सूची दिया करते हैं, कुछ इसे सर्वथा अपर्याप्त मानकर चलते हैं, कुछ इस पर अति संक्षिप्त टिप्पणियाँ देते हैं और कभी-कभी ऐसी सामग्री का विधिवत् परीक्षण भी किया जाता है। इस दिशा में सामान्यतः समन्वयात्मक दृष्टि अपनाई जानी चाहिए। कभी-कभी कार्य आरम्भ करने के दो-तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष बाद ऐसी सामग्री के सम्बन्ध में धारणाएँ बदल जाती हैं। ऐसी अवस्था में विषय-प्रवेश को यथास्थान परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होते-होते समीक्षा-जगत् में उसी विषय से सम्बद्ध एक-दो कृतियों अथवा महत्वपूर्ण लेखों का प्रकाशित हो जाना भी सम्भव होता है, जिनकी चर्चा बाद में की जा सकती है। कभी-कभी यह मत व्यक्त किया जाता है कि विषय-प्रवेश की रचना प्रबन्ध समाप्त होने के बाद ही की जानी चाहिए, क्योंकि इसके लेखन में जिस कोटि की प्रौढ़ता अपेक्षित होती है वह पहले अनुसन्धाता को प्राप्त नहीं रहती। यह दृष्टिकोण निश्चय ही उचित होता, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि आरम्भ में विषय-प्रवेश लिखने से अनुसन्धाता को ऐसी सजग दृष्टि प्राप्त हो जाती है जो भावी कार्य को अनुशासित और प्रभावित करती है। अतः उचित यह होगा कि विषय-प्रवेश की रचना आरम्भ में ही की जाए और प्रबन्ध को पूर्ण करते समय उसे एक बार पुनः संशोधित तथा परिवर्द्धित कर लिया जाए।

विषय-प्रवेश के अन्तर्गत अनुसन्धाता को विषय से सम्बद्ध मूल दृष्टि को सर्वथा स्वच्छ अभिव्यक्ति प्रदान करनी चाहिए जिससे यह स्पष्ट हो सके कि लेखक के अध्ययन की मूल दिशा क्या है। अतः विषय पर कार्य करने की आवश्यकता को विश्लेषणात्मक और निर्णयात्मक ढङ्ग से प्रस्तुत करके तर्कपूर्वक यह सिद्ध करना चाहिए कि इस विषय पर कार्य करने का महत्त्व क्यों है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख भी उचित होगा कि शोध-प्रबन्ध में विषय सम्बन्धी किन सीमाओं को अपनाया गया हैं, अर्थात् अनुसन्धाता को सभी विषयों की चर्चा का दावा न करके यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि किन दिशाओं में अध्ययन की ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक रही है। वस्तुतः विषय-प्रवेश के अन्तर्गत सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध की झांकी प्रस्तुत करदी जाती है। अध्यायों का विभाजन किस रूप में किया जायेगा, इसके लिए अनुसन्धाता के पास क्या औचित्य है तथा केवल यही प्रणाली क्यों उपयोगी है आदि प्रश्नों का उत्तर इसमें निहित रहता है। इसमें ऐसे सभी तथ्यों का उल्लेख रहना चाहिए जिनसे परिचित होने पर शोध-प्रबन्ध के अध्यायों के अनुशीलन में सुविधा हो। इसीलिए जब किसी शोध-ग्रन्थ में काल-विशेष के सम्पूर्ण साहित्य का विवेचन न करके ५०–१०० वर्षों के साहित्य का ही अनुशीलन प्रस्तुत किया जाए तो यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि ऐसा दृष्टिकोण क्यों अपनाया गया है। विषय-प्रवेश का विस्तार कितना हो, यह भी सापेक्षिक प्रश्न है। उसका अनुपात ऐसा होना चाहिए कि वह शोध-प्रबन्ध के किसी अध्याय से दीर्घ न हो, अर्थात् २५–३० पृष्ठों तक का विस्तार उचित होगा। वस्तुतः इसके अन्तर्गत प्रत्येक तथ्य को सूत्र-रूप में इस भाँति कहा जाना चाहिए कि सभी महत्वपूर्ण बातों का समावेश भी हो जाये और कथन में जटिलता भी न आने पाए। इसीलिए शोधार्थी की दृष्टि विषयनिष्ठ रहनी चाहिए तथा काव्यात्मक अथवा प्रशस्तिपरक भाषा का प्रयोग न करके अपनी बात को पक्षपात-रहित तथा तर्कपूर्ण रीति से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि विषय-प्रवेश को सन्तुलित ढङ्ग से लिखा जायेगा तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाद में शोध-प्रबन्ध में भी अनावश्यक बातें नहीं आयेंगी और अस्पष्ट बातों का उल्लेख भी नहीं होगा।

प्रबन्ध का मध्यभाग—शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत अनुसन्धाता का पहला दायित्व यह होता है कि वह अपनी बात को किसी ऐसी विधि से कहे जिसका पहले अवलम्बन न लिया गया हो। फलस्वरूप अध्यायों के शीर्षकों में नवीनता लाने से लेकर सामग्री प्रस्तुत करने तक की सभी विधियाँ नवीनता की खोज पर आधारित रहती हैं। किन्तु, यह ध्यान रखना होगा कि न तो प्रबन्ध की प्रत्येक पंक्ति में नवीन तथ्यों का प्रतिपादन सम्भव है और न ही ज्ञात तथ्यों का पुनराख्यान सर्वत्र किया जाता है। अपनी बात की पुष्टि के लिए अनुसन्धाता द्वारा अन्य विद्वानों के मन्तव्य भी उद्धृत किये जाते हैं, किन्तु ऐसी उक्तियों की स्वयं खोज की जानी चाहिए। कभी-कभी सुविधा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अनुसन्धाता इन्हें अन्य शोध-प्रबन्धों अथवा समीक्षा-ग्रन्थों से उद्धृत कर लेते हैं, किन्तु यह पद्धति उचित नहीं है क्योंकि मूल ग्रन्थों के अनुशीलन के अभाव में शोध-प्रबन्ध के विषय-विवेचन में भी मौलिक दृष्टि का अभाव बना रह सकता है। अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ-विशेष का अनुशीलन करते हुए उससे उक्तियों का स्वयं चयन करने पर उनके अनुरूप ही शोधार्थी का दृष्टिकोण भी प्रभावित हुआ करता है, जबकि अन्य विद्वानों द्वारा उद्धृत की गई उक्तियों को ज्यों का त्यों उद्धृत कर देने से यह सुविधा न होगी।

अनुसन्धाता की दृष्टि निर्भ्रान्त होनी चाहिए। फलतः उसे पूर्वाग्रह न रखकर सामग्री के पक्ष-विपक्ष में स्वच्छ दृष्टि से विचार करना चाहिए। किसी नवीन तथ्य की खोज कर लेने पर उसके प्रति इतना मोहाविष्ट नहीं होना चाहिए कि प्रबन्ध के अन्तर्गत उसका बारम्बार उल्लेख अथवा स्पष्टीकरण किया जाये। ऐसे सन्दर्भ में अनुसन्धाता नवीन सामग्री के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है, किन्तु इसे आवश्यकता से अधिक महत्व देना निश्चय ही उचित नहीं है। अनुसन्धाता को इस बात पर भी बल देना चाहिए कि सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध में आरम्भ से अन्त तक अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित रहे अर्थात् विभिन्न अध्यायों में परस्पर-सम्बद्धता रखते हुए विषयान्तर की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। कुछ अनुसन्धाता प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसके आधार पर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करने पर बल देते हैं और अगले अध्याय का आरम्भ उन्हीं निष्कर्षों के आलोक में करते हैं। इस प्रणाली को सर्वत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता। अध्याय के अन्त में उसमें प्रतिपादित महत्वपूर्ण उपलब्धियों अथवा कवि के दृष्टिकोण के अभावों की ओर संकेत करना निश्चय ही महत्वपूर्ण होता है, किन्तु प्रत्येक अध्याय में उनका उल्लेख आवश्यक नहीं।

शोध-प्रबन्ध में विषय के स्पष्टीकरण के लिए कहीं-कहीं सारणी भी दी जा सकती है, किन्तु इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा कि क्या उसे स्थान देना अनिवार्य है। यद्यपि सारणी से कभी कभी अनावश्यक उलझन भी उत्पन्न होती हैं, तथापि सामान्यतः इससे विषय को समझने में सहायता मिलती है। कुछ शोधार्थी प्रबन्ध के आरम्भ में संकेत-सूची देते हैं, जिसके अन्तर्गत सहायक ग्रन्थों के संक्षिप्त रूप (उदाहरणस्वरूप 'अभिनवभारती' के लिए अ० भा०) आदि दिये जाते हैं। किन्तु, सन्दर्भोल्लेख के अन्तर्गत शब्दों को पूर्ण रूप में ही लिखा जाना चाहिये, 'अग्निपुराण' के लिए अ० पु० अथवा 'रस-सिद्धान्त के लिए र० सि० लिखना उचित न होगा, क्योंकि इससे प्रबन्ध के अनुशीलन में पाठक को असुविधा होगी। भाषाविज्ञान, लोक-साहित्य, पाठानुसन्धान आदि से सम्बद्ध शोध-ग्रन्थों में अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए शोधकर्त्ता को प्रायः कोष्ठकों, दृष्टान्त-चित्रों, रेखाओं, अङ्कों आदि का समावेश करना होता है। इस ओर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि विषय के स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार के चित्र आदि सुस्पष्ट और सार्थक होने चाहिए। शोध-कार्य में वैज्ञानिकता और स्पष्टता लाने के लिए प्रत्येक अध्याय को शीर्षक-उपशीर्षकों में विभाजित करना भी उपयोगी रहता है। सामान्यतः शीर्षकों को पृष्ठ के मध्य में और उपशीर्षकों को बाईं ओर स्थान दिया जाना चाहिए; तथा इस दृष्टि से सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक ही क्रम का निर्वाह रहना चाहिए। विषय-निरूपण करते समय प्रायः साहित्यशास्त्र, मनोविज्ञान, आचारशास्त्र, समाजशास्त्र आदि से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या अपेक्षित होती है। ऐसे अवसरों पर केवल उन्हीं शब्दों की व्याख्या दी जानी चाहिए जिनके सम्बन्ध में सामान्यतः यह सम्भावना हो कि वे पाठकों को पूर्वज्ञात न होंगे। इसी प्रकार कभी-कभी सामान्य कथन प्रस्तुत करते समय भी उसकी पुष्टि के लिए प्राप्त ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। इससे रचना में अनावश्यक विस्तार आता है। अतः अति-परिचित शब्दों अथवा विषयों की न तो व्याख्या की जानी चाहिए और न ही उनके लिए प्रमाण देने की तत्परता में अतिवादिता होनी चाहिए।

—३ सी/२५, रोहतक रोड, नई दिल्ली–५

113020

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दायन एवं उसका रहस्यवाद

कामता गुप्त 'कमलेश'

हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य का प्रारम्भ कब से हुआ और उसका आदि ग्रन्थ, प्रथम कवि कौन था, इत्यादि बातों के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद रहा। आलोचक-प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल 'मृगावती' के रचयिता कुतुबन को इस परम्परा का आदि कवि एवं ग्रन्थ मानते हैं। पर अब तक के खोजों एवं रिपोर्टों के आधार पर कहा जा सकता है कि न तो कुतुबन ही आदि कवि थे और न उनकी 'मृगावती' ही प्रेमाख्यान की प्रथम रचना। कुतुबन से १३० वर्ष तथा जायसी से १५८ वर्ष पहले ही १४वीं शताब्दी में मौलाना दाऊद कृत 'चन्दायन' की रचना हो चुकी थी। अभी हाल तक इस ग्रन्थ के बारे में लोगों को भ्रम सा रहा था क्योंकि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्रथम तीनों लेखकों ने इसके बारे में कुछ भी नहीं लिखा। ये तीनों इतिहासकार थे—(१) फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी, (२) अंग्रेज विद्वान ग्रियर्सन और (३) आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।

इससे साफ प्रमाणित है कि आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल तक के समय तक इसके बारे में लोगों को कुछ भी ज्ञान न था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अलबदायूनी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि—"दाऊद ने 'चन्दायन' में नूरक और चन्दा की प्रेम कहानी लिखी थी। पर हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों में इस प्रसिद्ध कृति का केवल उल्लेख ही पाया जाता है।" 'चन्दायन' के बारे में विस्तृत रूप से लिखते हुए बदायूनी लिखते हैं—"सन् ७७२ हि० में मलिक मकबूल, जिसका लकब (उपाधि) खानेजहाँ और ओहदा वजीर था, मर गया। उसके लड़के जूनाशाह को भी वही खिताब मिला और किताब चन्दायन, हिन्दवी जबान में लोरक और चाँदा नाम के आशिक और माशूक के इश्क के बयान में, उसे बहुत आनन्द आता था। मौलाना दाऊद ने उसके नाम से नज्म (काव्य) तैयार किया, इस इलाके में इसकी इतनी शोहरत है कि उसकी तारीफ करने की जरूरत नहीं है।"[1]

सन् १९२८ ई० में सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं ने 'चन्दायन' एवं उसके रचयिता मौलाना दाऊद की ओर हिन्दी प्रेमियों का ध्यान आकर्षित किया। मिश्रबन्धु-विनोद के प्रथम प्रकरण में ही उन्होंने लिखा—"मुल्ला दाऊद अमीर खुसरो का समकालीन था। उसका कविता काल संवत् १३८५ के लगभग था। इसने नूरक एवं चन्दा की प्रेमकथा हिन्दी में रची। यह ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया।"[2] इसके उपरान्त हरिऔधजी ने अपने 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' नामक पुस्तक में इसका वर्णन किया। फिर डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एवं डा० रामकुमार वर्मा ने इसकी चर्चा की। किन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक रूप में श्री ब्रजरत्नदास ही कुछ कह सके। उन्होंने सन् १९४० में अपनी पुस्तक में लिखा कि—"दाऊद के 'चन्दायन' की रचना फीरोजशाह तुगलक के शासनकाल में हुई थी।"[3] इन विवादों के के मध्य यह तो निष्कर्ष है ही कि दाऊद ने चन्दायन की रचना की। दाऊद सबसे प्राचीन प्रेमाख्यानक कवि

[1] मुन्तखब-उ-तवारीख, पृ० ९९।
[2] मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, सं. १९७१, पृ. २४९
[3] खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ९४-९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उनकी रचना का उनके जीवन में ही काफी प्रचार हो गया था।

दिल्ली के शेख तकीउद्दीन वायज रब्बानी अपने धार्मिक प्रवचनों में इस काव्य का निरन्तर पाठ करते थे। उनका मत था इसमें प्रेम और भक्ति की जिज्ञासा की तृप्ति है और धार्मिक तत्त्व निहित हैं। इसकी लोकप्रियता के बारे में श्री अब्दुर्कादिर बदायूनी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इस ग्रन्थ की अधिकांश उपलब्ध प्रतियों का सचित्र होना भी इस बात का समर्थन करता है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'वर्ण-रत्नाकर' में जिसकी रचना १४वीं विक्रमीय में हुई थी, लोरिक नाच्यो का उल्लेख किया है। यह उत्तर भारत में अनेक नामों से प्रचलित था। जैसे—चन्दायन, चन्द्रैनी, चनैनी, चनवा, लोरकहा, लोरिकी आदि। आज भी यह अपने स्फुट रूपों में विद्यमान है। मूलरूप से यह रचना प्रेम-प्रधान ही है किन्तु प्रेम के माध्यम से ईश्वर तक पहुँचना, फिर आत्मा-परमात्मा का एकात्म। उस समय जो आनन्दानुभूति साधक को होती है, वह उसे वर्णित नहीं कर सकता, क्योंकि—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत।'

तभी तो एक बार शेख रब्बानी से कुछ आलिमों ने पूछा—"इस हिन्दवी मसनवी को अपनाने का क्या सबब है ?" उन्होंने जवाब दिया—'इसमें जितनी बातें हैं वे सब हकीकी व पुरमानी साहबे जौक के लिये हैं और अहले शौक व इश्क के नजदीक बाजे कुरानी आयतों के मुताबिक हैं। हिन्दुस्तान के अच्छे मधुर स्वर वाले गायक आज भी इसे गाकर लोगों का चित्त अपनी ओर खींच लेते हैं।[1]

चन्दायन की कथा, लोक-जीवन में प्रचलित कथा का ही साहित्यिक रूप है, जब हम नायक लोरक, नायिका चाँद और उपनायिका मैना माँजरि के ताने-बाने के साथ बुनी गई इन लोक कथाओं को देखते हैं जो पूर्वी उत्तर-प्रदेश, बिहार, बंगाल और छत्तीसगढ़ के प्रदेशों में बिखरी मिलती हैं। तब इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। इतना विशाल क्षेत्र कदाचित् ही किसी लोक गाथा का रहा हो। चन्दायन का नायक लोरक एवं नायिका चन्दा अलग-अलग विवाहित होते हुए भी दोनों आपस में प्रेमपाश में आबद्ध थे। फारसी प्रेमाख्यानों में वस्तुतः ऐसे उदाहरण अनेक मिलते हैं। लैला-मजनूँ, शीरी-फरहाद आदि की नायिकाएँ लैला एवं शीरी विवाहिता होते हुए भी इश्क हकीकी रखते थे। चन्दायन इसी शृङ्खला की पहली एवं प्राचीनतम कड़ी है, जिसमें सूफी तत्त्वों का पाया जाना अवश्यम्भावी है। मौलाना दाऊद सूफी सम्प्रदाय के अभिन्न साधक ही नहीं उसके अग्रणी प्रतिनिधि भी थे। सूफी साधक प्रेम के माध्यम से परमात्मा का नैकट्य प्राप्त करते हैं निराकार ईश्वर के लिए, उसका वर्णन प्रतीकों एवं रुपकों द्वारा ही संभव है। इसीलिए कुशल कवि इस प्रेम के वर्णन के लिए लौकिक प्रेम-प्रदर्शन का बाना पहन कर नाचते हैं। दाऊद ने भी लोरक एवं चन्दा को रूपकों में चाँद एवं सूरज कहा है, यथा—

चाँद बिरस्पत कैं पाँ परी।
काल्ह सुरुज देखेउ एक घरी।।[1]
× × ×
सुरुज कहा मइँ चाँदा बुलाउव।
शुक्र बाज दै पुरुब चलाउब।।[2]

जिस प्रकार चन्दायन के अस्तित्त्व, रचना, कथा-वस्तु, कालक्रम, एवं भाषा के बारे में अभी तक विवाद चला आ रहा है, उसी प्रकार उसके सूफी-दर्शन एवं रहस्यवाद पर भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग उसे सूफी-काव्य से एक दम अलग रख कर केवल लोक प्रचलित गाथा मात्र ही मानते हैं, और उसकी गहराइयों में गोता लगाने से दूर भागते हैं, दूसरी ओर कुछ विद्वान् उसे सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का आदि रूप मानकर, उसमें रहस्यात्मकता

[1] मुन्तखब-उ-तवारीख, पृष्ठ १००।

[1] चन्दायन, सम्पादक डा. परमेश्वरीलाल गुप्त, कड़वक सं० १४९।४।

[2] लोककहा, संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, कड़वक सं० १०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रथम झलक देखते हैं। प्रो० अस्करी तो इसे बिलकुल रहस्यात्मक कृति नहीं मानते। उन्होंने लिखा है, "जायसी से भिन्न, जिनके पद्मावत में सूफी रहस्य-वाद पर्याप्त मात्रा में है।.........हमारे १४वीं शताब्दी के मौलाना ने अपने को केवल लोक-प्रचलित विश्वासों तथा हिन्दुओं के धर्माख्यानों तक ही सीमित रक्खा है।[1] किन्तु चन्दायन की निम्न पंक्तियों के देखने से प्रतीत होता है कि प्रो० अस्करी के कथन में तथ्य नहीं है।

दाउद कवि जो चाँदा गाई।
जेइँ र (रे) सुना सो गा मुरुछाई।।
धनि ते बोल धनि लेखन हारा।
धनि ते आखर धनि अरथ विचारा।।
हिरदइँ जानि सो चाँदा रानी।
साँप डँसी हउँ सोइ बखानी।।५६।।[2]

प्रो० अस्करी के ही विचारों से प्रभावित हो डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने भी इसमें रहस्यपरकता का अभाव बताया है—"दाऊद के समय काव्य-रचना के समय कोई सूफी-दर्शन नहीं था, लोक प्रचलित कथा को काव्य रुप में उपस्थित करना ही अभीष्ट था।[3] किन्तु यदि हम चन्दायन में वर्णित 'प्रेम के पीर' की भी उपेक्षा कर दें तो क्या चाँद के प्रतीक को भी भुला सकते हैं। जिसे पार्थिव पक्ष का प्रतीक मान कथा का रूप दिया गया है। यथा—

बिन करिया मोरी डोले नाया।
नीक सुनार कन्त न आवा।।
× × ×
आ तो बीर जो आ सोइ परस।
सरज बीन जो जरत संघारस।।

डा० विश्वनाथ प्रसाद ने इन्हीं पंक्तियों के आधार पर इसमें रहस्य के तत्वों की सम्भावना दिखाई है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने लोरकहा संस्करण में 'हिरदइँ जानि सो चाँदा रानी' के आधार पर इस कृति को रहस्य परक होने का निर्देश किया है। वस्तुतः चन्दायन में अन्य अनेक स्थल हैं जिनमें केवल रहस्य की झलक ही नहीं वरन् उसकी ठोस सामग्री भी मिलती है, यथा—

बिरहा मेलि सरग चढ़ि धाएउँ।
सिर सिउँ खेलि चाँद लइ आयउँ।।३७।।
× × ×
जरम न छूट परम (पेय) कर बाँधा।
परम (पेम) काँड आहइ बिस साँधा।।
जेहिं हिय चोट लागि सो जानी।
कइ लोरिक कइ चाँदा रानी।।४६।।
× × ×
जेहिं र (रे) परम (पेय) तेहिं बिरह सतावा।
जेहिं र (रे) विरह तेहिं नींद न आवा।।
परम (पेम) सेल आहइ अनियारा।
परगन न जाइ परम (पेम) कर-मारा।।५०।।
—लोरकहा

इस तरह लोरकहा के ५६, ६२, ६५ आदि कड़-वकों में यत्र-तत्र सूफी भावनाएँ एवं दर्शन के तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं।

अपनी अन्तःस्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य, परम तत्त्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है। यह प्रवृत्ति मनुष्य की प्रकृति का एक अवियोज्य अङ्ग रही है और रहस्या-नुभूति संभवतः मनुष्य की श्रेष्ठतम एवं उदात्ततम अनुभूति है। इसकी अभिव्यक्ति उतनी ही पुरातन है जितनी मानवता। इसीलिए चन्दायन के नायक एवं नायिका एकमात्र सूरज एवं चाँद के प्रतीक स्वरूप ही हैं क्योंकि ये ही प्रतीक आध्यात्मिकता के भी प्रतीक हैं। लोरक एवं चन्दा के विवाह को यदि रहस्यवादकी अन्तिम एवं तीसरी स्थिति मान लें तो सहज ही इस-का झंझावात समाप्त हो जाय। विवाहोपरान्त लोरक

[1] प्रो० सैयद हसन अस्करी रेयर फ्रेगमेन्ट्स आफ़ चन्दायन एण्ड मृगावती।
[2] लोरकहा, सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, कड़वक सं० ५६।
[3] चन्दायन संपा०—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं चन्दा प्रेम पूर्वक रहकर जीवन बिताते हैं। सूफी अध्यात्मवाद में 'फना' की यही परिणति है। सूफी साधना के अनुसार आत्मा-परमात्मा के मिलने के मार्ग में नाना प्रकार की बाधाएँ आती हैं। लोरक को भी चन्दा को सम्पूर्ण रूप से पाने में अनेक बाधाएँ आती हैं। चन्दा के क्लीव पति बावन से युद्ध, साँप द्वारा चन्दा का डसा जाना, टूँटा जोगी द्वारा चन्दा का अपहरण आदि अनेक ऐसी ही घटनाएँ हैं।

उपर्युक्त सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि चन्दायन का रहस्यवाद, शुद्ध रहस्यवाद है क्योंकि रहस्यवाद की विवेचना अत्यन्त मनोरंजक होने पर भी दुस्साध्य है। वह हमारे समक्ष एक गहन-बन-प्रान्त की भाँति फैली हुई है। उसमें जटिल विचारों की कितनी काली गुफाएँ हैं, कितनी शिलाएं हैं। उसकी दुर्गमता देखकर हमारे मन का निर्बल व्यक्ति थककर बैठ जाता है। सागर की भाँति इस विषय का विस्तार विश्व-साहित्य भर में विस्तृत है। न जाने कितने कवियों के हृदय से रहस्यवाद की भावना निर्झर की भाँति प्रवाहित हुई है और उन्होंने उसके अलौकिक आनन्द का अनुभव कर मौन धारण कर लिया है, न जाने कितने योगियों ने इस दैवी अनुभूति के प्रभाव में अपने को बहा दिया है। इसी प्रवाह में हमारे वर्ण्य मौलाना दाऊद भी बह गए जिसका ज्ञान अभी तक हिन्दी साहित्य के अध्येताओं को बहुत ही कम है।

चन्दायन के सम्पूर्ण पाठ को समझने के लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यह ग्रन्थ एक जगह पूर्ण रूप में नहीं मिलता। स्फुट रूपों से इसकी भिन्न-भिन्न प्रतियाँ देश एवं विदेशों में बिखरी पड़ी हैं। इन सबको एक साथ रखने पर भी कथा का पूरा अंश नहीं प्राप्त होता। फलस्वरूप पुस्तक अधूरी ही रह जाती है। अतएव यह नितान्त सम्भव है कि शायद अलभ्य एवं अब तक न मिलने वाली प्रतियों एवं शेष पृष्ठों में रहस्यवाद के प्रखर तत्त्व हों।

पद्मावत में रहस्यवाद की प्रचुरता को देखते हुए यह निश्चय रूप से कहना पड़ता है कि चन्दायन में रहस्यवाद का मौलिक एवं प्रथम रूप था जिसका अनुकरण परवर्ती कवि कुतुबन एवं जायसी ने अपने काव्यों में निःसंकोच किया। डा० माताप्रसाद गुप्त अपने लोरकहा संस्करण में कहते हैं कि—"फलतः इसमें संदेह नहीं कि 'लोरकहा' प्रायः सभी अर्थों में 'पद्मावत' की एक यशस्विनी पूर्वज है और हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अप्रतिम महत्त्व रखती है।"[1] यद्यपि जायसी ने अपने को अनुकरण दोष से बचाने के लिए चन्दायन का कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। फिर भी आश्चर्य है कि 'पद्मावत' में चन्दायन की कुछ पंक्तियाँ ज्यों की त्यों मिल जाती हैं:

चन्दायन

१—लंका छांड़ि पलंका धावउँ।[2]
२—नाउ मुहम्मद जगत पियारा।
३—एक बाट गयी हरदीं, दोसर गयी महोब।
४—चकवा चकयी केरि कराहैं।
५—चाँद धौरहर ऊपर गयी।
६—पंडित बैंद सयान बुलाये।
७—तिलक दुआदस मस्तक काढ़ा।

पद्मावत

१—लंका छांडि पलंका धावउ।
२—नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा।
३—एक बाट गौ सिंघल दोसर लंक समीप।
४—चकई चकवा केलि कराही।
५—पदुमति धौराहर चढ़ी।
६—ओझा बैंद सयान बोलाये।
७—तिलक दुआदस मस्तक दीन्हे।

सूचना मात्र के लिए इतनी ही पंक्तियाँ पर्याप्त होंगी, वैसे अन्य विषयगत, भावगत, शैलीगत, क्रमगत आदि अनेक बातें हैं जो कि 'पद्मावत' में 'चन्दायन' के आधार पर पाई जाती हैं। जहाँ इतनी बातों का एक साथ पाया जाना संभव है, वहाँ रहस्यवाद की

[1] लोरकहा—संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ १०।

[2] कुतुबन में भी बिल्कुल यही पंक्ति मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना का उद्धृत करना भी सम्भव है। अतएव जायसी द्वारा भी अप्रत्यक्ष रूप में प्रमाणित है कि चन्दायन में रहस्यवाद की भावभूमियाँ थीं जिनको जायसी ने अत्यधिक सुस्पष्टता, विस्तृतता एवं गम्भीरता के साथ पद्मावत में समाहित कर जन-समाज में ला खड़ा कर दिया।

चन्दायन की तरह परवर्ती प्रेमाख्यानक काव्यों में सर्वप्रथम ईश्वर, पैगम्बर, चार-यार, गुरु, शाहेवक्त आदि की प्रशंसा की गई है। इन सबके उपरान्त चन्दायन तथा अन्य काव्यों की कथा आती है। जिस प्रकार दाऊद ने नायिका चाँद के रूप-सौन्दर्य की प्रखरता एवं सुन्दरता के लिए नख-शिख का वर्णन किया है, उसी प्रकार अन्य सभी सूफी कवियों ने भी क्रमवार केश, अलक, शीश, ललाट, भ्रू, नेत्र, चिबुक, नासिका, अधर, दाँत, जिह्वा, श्रवण, ग्रीव, कुच, कलाई, कटि, नितम्ब, गन्ध एवं चरणों का वर्णन किया है। यही नहीं अपितु कथा-वस्तु के रूपक एवं प्रतीक भी दाऊद-शैली पर ही आधारित हैं। अतएव हमें चन्दायन को प्रेमाख्यानक आदि ग्रन्थ एवं दाऊद को आदि कवि मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[1]

चन्दायन पूर्णरूप से रूपक कथाकाव्य है जिसे अंगेजी में 'एलेगॉरिकल पोइट्री' कहते हैं। चन्दायन के रूपकों की तुलना यदि हम स्पेन्सर के रूपक काव्य ग्रन्थ 'फेयरी क्वीन' तथा ब्राउनिंग के 'आइडिल्स आफ द किंग' से करें तो स्पष्ट हो जायेगा। फ्रायड का तो मत है कि आत्मा की भाषा सदैव रूपकों में ही प्रकट होती है। दाऊद ने भी अपनी आत्मा की भाषा को सूरज एवं चाँद के रूपकों के माध्यम से वर्णित किया है। दाऊद ने लौकिक प्रेम के आवरण में अलौकिक प्रेम को व्यक्त करने वाला हजल अर्थात् रूपक ही गाया है। नायक-नायिका के नामों से इस अनुमान को पुष्टि मिल जाती है। यथा—

चाँद गुनित मैं देखी, सुरुज मन्दिर जिहँ जाऊँ।

अन्ततः हम यही कह सकते हैं, मौलाना दाऊद अपने काव्य में कहीं भी एक प्रवचक रूप में समक्ष नहीं आये बल्कि लौकिकता का दामन पकड़े उसी में सिक्त रहे। यही कारण था कि लोरक एवं चाँदा को अन्त समय में भी अपने परिवार के साथ ही रहना पड़ा तथा उन्हीं पारिवारिक उलझनों में उलझना पड़ा जिसमें साधारण जन वस्तुतः लिप्त रहते हैं। चांदा को अपनी सौत मैंना माँजरि से गृह-कलह के कारण लड़ना पड़ा और लोरक को उसकी चिन्ता सदैव बनी रही। आगे के अंशों के लिए अभी तक कोई सामग्री न मिलने से सभी विद्वान अपनी-अपनी कल्पनाओं से काम लेकर काव्य का उत्तरार्द्ध प्रमाणित करते हैं किन्तु निष्कर्ष क्या है, अभी निश्चय रूप से तो नहीं कहा जा सकता, पर इतना अवश्य ही कह सकते हैं, कि जिस प्रकार रहस्यवादी आत्मा-परमात्मा के एकीकरण पर चरम आनन्दानुभूति को प्राप्त कर सुख पूर्वक स्थिर रहता है। इस स्थिति में आत्मा-परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि उसमें कोई भिन्नता नहीं रहती। आत्मा अपने में परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणों को प्रकट करती है। जिस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में आग और लोहे का एक गोला, ये दोनों आपस में भिन्न हैं पर जब आग से तपाये जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले में वस्तुओं के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग में है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी लाल स्वरूप रखकर अपने चारों ओर आँच फेंकता रहेगा। यही हाल आत्मा-परमात्मा के संसर्ग से होता है।

सूफी लोग सोचते हैं कि रहस्यवादियों की यह दिव्य स्थिति सदैव नहीं रहती। उसे ईश्वर की अनुभूति तभी होती है जब उसे 'हाल' आते हैं। जीवन के अन्य समयों में वह साधारण मानव रहता है। इसी सूफी मत के कारण दाउद के लोरक एवं चाँद

(शेष पृष्ठ ४० पर)

[1] इस विषय पर भविष्य में कभी विस्तार से लिखा जाएगा—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देश-रासक की भाषा

द्विजराम यादव

'संदेश रासक' की भाषा पर विचार करने के पूर्व हमें इसके रचना-काल के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेना अनिवार्य जान पडता है। इसके रचना-काल के सम्बन्ध में जिन विजय मुनिजी ने कहा है कि "संदेश रासक" सिद्धराज या कुमार-पाल के समय वि० की १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या १३वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा गया माना जाना चाहिए।[१] लक्ष्मीचन्द्र की संदेश-रासक की टीका के आधार पर, जो विक्रम संवत् १४६५ में लिखी गई हैं, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि संदेश रासक की रचना १५वीं विक्रमी शदी के पहले हो चुकी थी। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य-धारा' में अब्दुर्रहमान का समय १०१० ई० निश्चित किया है।[२] परन्तु इसके प्रमाण में उन्होंने कोई ठोस सामग्री नहीं दी है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेद्वी ने इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है—"भाषाशास्त्र की दृष्टि से ग्राम्य अपभ्रंश भाषा अधिक अग्रसर हुई भाषा है। संदेश रासक इसी प्रकार के अपभ्रंश में बारहवीं-तेरहवी शताब्दी में—अर्थात् लगभग उसी समय जब पृथ्वीराज रासो लिखा जा रहा था—रचित हुआ था।"[३] परन्तु श्री अगरचन्द नाहटा संदेश रासक को १२वीं शताब्दी के आस-पास की रचना मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनका मत है कि संदेश रासक की रचना यदि बहुत पहले भी हुई होगी तो हम १५वीं शताब्दी के प्रथमचरण तक खींच सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संदेश रासक के रचना-काल पर अभिव्यक्त उपर्युक्त तीन विद्वानों के मतों में प्रायः मेल है, केवल श्री नाहटाजी का मत भिन्न है। यद्यपि संदेश रासक के रचना-काल को निश्चित करने के लिए उपर्युक्त प्रमाणों का अभाव है तथापि श्री मुनिजी के कुछ ऐतिहासिक आधारों पर प्रमाणित संदेश-रासक के रचना-काल को १२वीं शताब्दी के आस-पास मान लेने में संप्रति किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

संदेश रासक की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं बल्कि 'ग्राम्य अपभ्रंश' है, यह बात मुनिजी ने भी स्वीकार की है।[१] संदेश रासक में रचनाकार ने अपभ्रंश के साथ-साथ कुछ प्राकृत के छन्द भी लिखे हैं; लेकिन प्राकृत भी थोड़ी-बहुत अपभ्रंश से प्रभावित है। भाषा पर विचार करने से पहले हमें दो बातों की जानकारी कर लेना आवश्यक है। पहली बात यह है कि देश (स्थान) विशेष की लिपि परम्परा के कारण कहीं-कहीं शब्द-रूपों में परिवर्तन हो जाया करते हैं। संदेश रासक के सभी पाठों में थोड़ा-बहुत अन्तर मिलता ही है जिसका एक कारण यह भी हो सकता है। जैन हस्तलिखित ग्रन्थों में 'य' और 'इ' अक्षरों में परस्पर स्थान-परिवर्तन हो जाया करता है। संदेश रासक के पाठों में यह प्रवृत्ति यत्र-तत्र दिख

---

[१] संदेश रासक—सं० जिन विजय मुनि—श्री हरिवल्लभ भायाणी-आमुख पृष्ठ १३।

[२] हिन्दी काव्य-धारा-राहुल सांकृत्यायन; प्रथम सं०; पृष्ठ २९२।

[३] हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी; तृतीय सं०; पृष्ठ ४५।

[१] संदेश रासक—सं० जिन विजय मुनि—श्री हरिभल्लभ भायाणी-प्रीफेस; पृष्ठ १४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। जैसे—

कहउ पहिय किण कहउ कहिसु कि **कहिययण**।[1]

यहाँ पर कहिययण का प्रयोग मियनयणि के तुकानुसार किया गया है। इसी प्रकार कयवरिहि के तुकानुसार दयवरिहि का प्रयोग हुआ है।

कहव ठाइ आसीसिय चाइहिं **दयवरहिं**,
रामायणु अहिणविवियइ कत्थवि **कयवरिहिं**॥
(सं० रा० ४४)

इसी प्रकार 'य' के स्थान पर 'इ' का और 'इ' के स्थान पर 'य' का आगम हो जाता है, जैसे--रयहरु > रइहरु (अणुराइय **रइहरु** कामियमणहरु। सं० रा० २२)। मंथरगइ> मंथरगय (**मंथरगय** सरलाइवि उत्तावलि चलिय। सं० रा० २६।); कइवर > कयवर (रामायणु अहिणविवियइ कत्थवि **कयवरिहि**। सं० रा० ४४।); छाइउ > छायउ (झंपवि तम बद्दलिण दसह दिसि **छायउ** अंबरु। सं० रा० १४८।); पाइउ > पायउ (अह **पायउ** णहु पढ़इ कोइ सुललिय पुण राइण। सं० रा० १८३।)। तीसरी **प्रवृत्ति** ण और न के मध्य परिवर्तन की है। अर्थात् जब न् ह के साथ संयुक्त रहता है जब 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' हो जाता है, जैसे—चिह्न > चिण्ह। **चौथी मुख्य प्रवृत्ति है** अपभ्रंश की पोथियों में 'व' और 'ब' दोनों अक्षरों के लिए 'व' लिखा जाता है, लेकिन कुछ प्रतियों में दोनों लिखे जाते हैं। संदेश रासक की विभिन्न प्रतियों में यह भेद भी मिलता है। उदाहरणार्थ हम 'अकलंक माइ वयणं वासरणाहस्स **पडिबिंब**' (३३) को और 'मुच्छिज्जाहि पविसंतय **बेसाबाडइहिं**' को ले सकते हैं। इस प्रकार के भेद संदेश रासक में मिलते हैं, लेकिन डॉ० द्विवेदी द्वारा संपादित 'संदेश रासक' में प्रायः 'ब' 'व' का भेद कर दिया गया है।

ध्वनि-विषयक परिवर्तन—संदेश रासक की भाषा में प्राकृत के समान ही ध्वनि-परिवर्तन हुए हैं। इतना ही नहीं ये ध्वनि परिवर्तन अपभ्रंश में भी होते हैं। कुछ ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी विशेषताएँ अवश्य पाई जाती हैं, जो प्राकृत और अपभ्रंश में भिन्न-भिन्न होती हैं। परन्तु अपभ्रंश भी प्राकृत का ही एक भेद माना जाता है।[1] कहीं-कहीं तो छन्दों के कारण ध्वनि परिवर्तन अनिवार्य ही जाता है, फलस्वरूप ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। जैसे अलंकृत 7 अलंकिअ > **आलंकीयउ** (अन्नह भालु तुरक्कि तिलक आलंकियउ। सं० रा० ४८); प्रवासहत > पवासहत > **पावासहत** ; प्रसाधन > प्रसाहन > **प्रासाहण** (रहसुच्छलि कीरइ **पासाहण**। सं० रा० १७६); सहकार > सहआर > **साहार** (हउ किय णिस्**साहार** पहिय **साहार**वणि सं० रा० १३४); अतिरम्य > अइरम्म > **अइरम्मा** (जालंधरिथंभजिया उरु रेहंति तासु **अइरम्मा**। सं० रा० ३८) कल्लोल > कल्लोला (अइ-कुडिल माइपिहुणा विविहतरंगिणिसु सलिल**कल्लोला**। सं० रा० ३२); मुखरहित > मुहरहिय > **मुहरहिया** (सिहणा सुयण-खला इव थड्डा लिच्चुन्नया या **मुहरहिया**। सं० रा० ३६)। इसके अतिरिक्त परवर्ती वर्णों को द्वित्व करने की प्रवृत्ति प्रायः अपभ्रंश ग्रन्थों में पायी जाती है। यह प्रवृत्ति प्राकृत भाषाओं से ही आरम्भ हो गई थी। तुषार 7 तुसार > तुस्सार। इसी प्रकार दिज्जइ, इक्कल्लिय और गंधक्करसु आदि शब्दों को देख सकते हैं। यह प्रवृत्ति अधिकांशतः छन्दानुरोध के कारण होती है। जैसे—पेसियउ 7 पहुआए-सियउ (रवंभाइत्तिहि वच्चउँ पहु आए सियउ। सं० रा० ६५)। अपभ्रंश और प्राकृतों में प्रायः अनुस्वार के स्थान पर चन्द्रविन्दु का आगम होता है, परन्तु चन्द्रविन्दु का आगम कभी-कभी स्वतः हो जाता है, जैसे—जाणइँ, काइँ।

[1] संदेश रासक—सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ; पृष्ठ २२।

[1] "प्राकृतमेवापभ्रंशः" नमिसाधु कृत काव्यालंकार की टीका (२/१२) "भूयांसोऽयशब्दाः अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः।" [पातञ्जल-महाभाष्यम् (प्रदीपोद्द्योतसमन्वितम्] पृष्ठ १७; सन् १९३५।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर परिवर्तन के कारण अपभ्रंश में प्रायः 'आव' के स्थान पर 'अव' रह जाता है। जैसे आइयउ (कहि जाइसि हिव पहिय कहँव तुह आइयउ, सं० रा० ४१); णिम्मा>णिम्मविय; बोल्ल>बोल्लवियउ>बोलावियउ। कभी-कभी 'अ' का 'इ' में तथा 'इ' का 'अ' में परिवर्तन स्वाभाविक ढङ्ग से होता रहता है। जैसे— शशधरवदन>ससहरवअण>ससिहरवयणि; (गद्गद) गग्गर>गग्गिर; विरहिणी>विरहणि; णिविड>णिवड, निविड>णिविड>णिवड। कभी-कभी 'अ' के स्थान पर 'उ' श्रुति हो जाती है। जैसे—अंजलि>अंजुलि; पउदण्डउ>पददन्डकः; सूरोद्गम>सूरग्गउ। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है कि 'अ' के स्थान पर 'उ' हो जाता है और 'उ' अकारान्त पुलिंगसंज्ञा की कर्त्ता एकवचन की विभक्ति है परन्तु उसका भी कहीं-कहीं लोप हो जाता है।

सन्देश रासक में भी अपभ्रंश भाषा की प्रवृत्तियाँ अविरत रूप से पाई जाती हैं अर्थात् सभी प्रकार के व्याकरण सम्बन्धी परिवर्तन इसमें भी मिलते हैं। इस प्रकार 'ए' का 'इ' में और 'ओ' का 'उ' में परिवर्तन होता रहता है, जैसे—दृश्यते>जोइज्जे>जोइज्जइ; प्रेक्षते>पेक्खइ>पेक्खइ।

सन्देश रासक की भाषा में कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि दो स्वरों के स्थान पर एक स्वर ही रह जाता है, जैसे—साहार>सहआर। य के स्थान पर इ हो जाता है, जैसे—तीय>तीइ। 'इय' के स्थान पर 'इ' हो जाता है, जैसे—प्रत्यलीक>पड़िलिउ। या 'इउ' के स्थान पर केवल 'उ' रह जाता है। इस प्रकार के स्वर-परिवर्तन मिलते हैं।

व्यंजन सम्बन्धी परिवर्तन—सन्देश रासक की भाषा में अघोष वर्णों का सघोष रूप अधिक मिलता है; परन्तु ऐसा कुछेक स्थलों पर ही किया गया है, जैसे—अनेक>अनेग; वक>वग। शब्द के मध्य में आने वाला 'म' सन्देश रासक की भाषा में व हो गया है, जैसे—डवण>दमन; उन्नवियइ>उन्नमित; परन्तु साथ ही व म में बदलता हुआ दिख जाता है। जैसे—एव>एम। शब्दों के मध्य में आने वाले व का कहीं-कहीं लोप भी हो जाता है। जैसे—सइवि, होना चाहिए था सविवि। उ और ओ अक्षरों के मध्य में आने वाला 'व' 'उ' में परिवर्तित हो जाता है, जैसे—रव>रउ, सताप>संताउ। कहीं-कहीं व का य[1] भी होता है, जैसे—त्रिभुवण>त्रिहुयण, भुवन>भुयण, ध्रुव>धुय। आजकल व्रजभाषा या खड़ीबोली में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। मध्यवर्ती 'ह' का कहीं-कहीं लोप हो जाता है, जैसे—तूँ>तुँह, परन्तु इसे असाधारण परिवर्तन कहते हैं। दीर्घोष्ण>दीहुन्ह>दीउन्ह। कहीं-कहीं श (स) का ह हो गया है, जैसे—संदेश>संदेश>संदेस>सन्नेह।

संयुक्त वर्णों का प्रयोग—सन्देश रासक की भाषा में जहाँ पर 'ज्ज' हैं मध्यवर्ती कर्मवाच्य के लिए वहाँ 'झ' हो गया है, जैसे—क्षीयन्ति>क्षीज्जन्ति>झिझति। इसी प्रकार 'ज' और 'व' के स्थान पर झ या 'ज' हो गया है। जैसे—ज्वाल>झाल, झलक्किय, झलंकिय। ल अक्षर में महाप्राण का संयोग हो जाता है. जैसे—मुंच>मिल्ह। जहाँ कहीं तालव्य 'श' और स्पर्श व्यंजनों के मेल हुए हैं वहाँ दोनों स्पर्श वर्ण हो गए हैं; जंसे—आश्चर्य>अच्चरिय, चतुष्क>चउक्क, दुत्तर>दुष्तर, दुष्कर>दुक्कर आदि। जहाँ पर अनुनासिक और अन-अनुनासिक व्यंजनो के संयुक्त रूप मिलते हैं वहाँ दोनों एक साथ मिल जाते हैं और उनका द्वित्व नासिक व्यंजन हो जाता है। जैसे—संभोर>साम्मउर; अश्रु>अंसु। कहीं-कहीं संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर सरलीकरण द्वारा रूप बदल दिया गया है, जैसे— निस्सरति>नीसरइ; बिस्सरति>बीसरइ। कहीं-कहीं बीच में स्वर-भक्ति का भी आगम हो जाता है।

उदाहरणार्थ – स्नेह>सनेह, स्मरन्त>समरन्त इत्यादि। सरलीकरण की यह प्रवृत्ति आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी पाई जाती है। मध्ययुगीन आर्य-

[1] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाय तो 'य' में अर्द्ध स्वर भी शामिल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में दो स्पर्श व्यंजनों के बीच में एक और व्यञ्जन आ जाता है। जैसे—मनमथ>मरामत्थ, ततक्षणे>तत्तखरो। सन्देश रासक की भाषा में इस प्रकार के कुछ प्रयोग मिलते हैं, जिनके लिए कोई विशेष नियम नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार के नियम का अपवाद तुरन्त मिल जाता है; जैसे—पूगफल>फोफल; विह्वल>विंभल। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि शब्द के उच्चारण के कारण अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे—दीर्घोष्ण>दीउन्ह। आधुनिक भाषाओं में एक प्रवृत्ति मिलती है कि अपभ्रंश शब्दों में यदि दीर्घ हो तो उसके स्थान पर ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्राकृत-काल में ही दीखने लगी थी, जैसे—कावि, सीवि, वेवि आदि।

रूप-रचना—अपभ्रंश भाषा में शब्दों की एक-रूपता के लिए छन्द में अन्त्य-शब्दों को अकारान्त बना दिया जाता है अथवा अन्त में 'क' स्वार्थे प्रत्यय आ जाता है, जैसे—अनुरागिन>अणुराइ। विभिन्न संज्ञा रूपों को एक रूप में लाने की यह प्रवृत्ति है—जैसे—कामिन>कामिक। पुल्लिग अकारान्त शब्दों के समान स्त्रीलिंग अकारान्त और इकारान्त शब्दों में भी 'इ' उपसर्ग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। शब्द-रूपों को बदलने के लिए विशेष परसर्ग उपयुक्त होते हैं जैसे—'क' अलक्क, तडक्क, चमक्कउ; 'इर' उक्करि-वणुइर, कंक्किखिइर,। इसके अतिरिक्त जो 'यर' प्रत्यय मिलता है वह कारक या धारण करने के अर्थ में आता है। जैसे—दीवयर, संजीवयर, उल्लावयर। इस प्रकार के संयुक्त संज्ञा और क्रिया के दोनों रूप और प्रवृत्तियाँ एक होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिल गई हैं। शब्द रूपों को बड़ा करने के लिए स्वार्थे प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

परसर्ग—कहीं-कहीं निषेधवाचक परसर्ग 'अरण' मिलता है और कहीं-कहीं 'स'; परन्तु इसका उद्देश्य केवल बल प्रदान करना मात्र ही है—जैसे—सगग्गिर, सविलक्षण।

शब्दों को स्त्रीलिंग में परिणत करने के लिए कुछ प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है। पुल्लिग शब्दों के लिए 'अय' का तथा स्त्रीलिंग के लिए 'इय' का प्रयोग हुआ है; जैसे—करन्तउ, स्त्री० करंतिय। विशेषण और वर्तमान कालिक कृदन्त के अकारान्त शब्दरूप पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में मूल रूप में पाए जाते हैं। वर्तमानकालिक कृदन्तों में पु० करन्त और स्त्री० करन्ति रूप मिलते हैं और इसके विस्तृत रूप करन्तउ, करंतिय भी मिलते हैं। संकोच के कारण इसका रूप स्त्रीलिंग में करन्ति भी हो सकता है। इस प्रकार करंत रूप दोनों के मूल में मिलता है। इसका दूसरा रूप भी मिलता है। पुल्लिङ्ग रूपों के बहुत व्यतिक्रम भी मिलते हैं। नपुंसक लिंग की विभक्तियों के लिए संदेश रासक की भाषा में कोई चिह्न नहीं मिलता है।

कहीं-कहीं इसमें परिवर्तन भी मिलता है—झुणि (ध्वनि), कुसुम सरारुह। संज्ञा की विभक्तियों पर विचार करते समय संदेश रासक की भाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार लिखी जा सकती हैं। **संबंध कारक** की विभक्ति का चिह्न 'ह' है। यही 'ह' इकारान्त शब्दों में 'हि' हो जाता है। इसका प्रधान कारण ध्वनि परिवर्तन भी हो सकता है। अकारान्त शब्दों में कोई विभक्ति चिह्न नहीं मिलता है। यह प्रवृत्ति डिंगल में भी मिलती है। **करण-अधिकरण** में भी कहीं-कहीं मूल रूप का ही प्रयोग हुआ है; जैसे—विरह, नवय। यह अपभ्रंश भाषा की अग्रसरी-भूत प्रवृत्ति है, जो बाद की आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी मिलती है, जैसे—धुय, सुललिय, कन्दप्प। इसी प्रकार अधिकरण में भी विभक्ति का कोई चिह्न नहीं मिलता है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि संदेश रासक में निर्विभक्तिक प्रयोग आगे बढ़ी हुई अपभ्रंश (अवहट्ट) भाषा के द्योतक नहीं, आधुनिक भारतीय भाषाओं के रूप हैं।

प्रत्ययों के कारण जो विभक्तियाँ आई हैं उनमें एक अक्षर का समावेश और मिलता है। इसमें 'ई' वाले रूप अधिक मिलते हैं। दूसरी प्रवृत्ति सामासिक रूपों की हैं. जैसे—दीहरनयणि, कणयंगि, तिरुलच्छि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि करण कारक के एक वचन के रूप हैं। इसी प्रकार इकारान्त शब्दों के निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं। पुल्लिङ्ग इकारान्त और उकारान्त की विभक्तियाँ इस प्रकार हैं। कर्त्ता और कर्म की विभक्ति 'इ' और 'उ' दो हैं। करण में 'इय' या 'इ' और सम्बन्ध में 'हि' तथा अधिकरण में 'इ' और उकारान्त' 'इ' होता है।

सर्वनाम—व्यक्तिवाचक सर्वनाम प्रायः उत्तम पुरुष के रूप में मिलता है, कर्म का 'मइ' करण में मइ और करण में मय हो जाता है। मैं के मह, मज्झ, अम्हिहिं, अह्म आदि रूप हो जाते हैं। मध्यम पुरुष मैं के कर्ता का 'तुह', करण का तै, सम्बन्ध का तुअ, तुज्झ,, तुझेहि, तुम्हि आदि रूप मिलते हैं। संकेतवाचक सर्वनामों में धु, सो, तिरिण, तेण, तणु, तह, तहि, सा, तम, तह, ते आदि रूप मिलते हैं। दूरवाचक सर्वनामों में 'ए', 'एउ', 'इय' आदि मिलते हैं। संबंध वाचक सर्वनाम के लिए जु, जो, जया, जिण, जिरिण, जसु, जासु आदि रूप मिलते हैं। प्रश्नवाचक के कवणु, कह, कसु, कइ आदि रूप मिलते है। अनिश्चय वाचक में कुइ, कोइ, किवि, कावि, किम्मि, किमि, केंणो, किवि रूप प्रयुक्त हुए हैं, संख्यावाचक के लिए एक्क, एग्य, वे, ति आदि रूप। को देख सकते हैं।

क्रिया रूप—अपभ्रंश में केवल अगम धातु के क्रिया रूप मिलते हैं। कहीं-कहीं इकारान्त क्रिया रूप भी मिल जाते हैं। जैसे :—करे 7 करेइ, साहेइ, हावेइ। कुछ क्रिया रूप अकारान्त भी मिलते हैं, जैसे—जा, ठा, भा।

सामान्य वर्तमान काल की क्रिया के लिए विभक्तियाँ इस प्रकार प्रयुक्त हुई हैं। एकवचन उत्तमपुरुष, में अउ या अमि मिलता है। मध्यपुरुष में अहि या अणु। प्रथम पुरुष में 'अइ' मिलता है। बहुवचन में अहिं, इहिं, अइ मिलता है। आसार्थक क्रिया में इ, हि, इहि, उ विभक्तियाँ लगी मिलती हैं, कहीं-कहीं असु, अहं भी मिलता है। मध्यपुरुष की विभक्तियों के लिए अउ मिलता है।

वर्तमानकालिक कृदन्त—इसमें 'अंत' जोड़कर बताया जाता है। जैसे—उग्गिलन्तो, बोलंतउ। विधिलिंग के रूप इज्जस, पठिज्जस आदि मिलते हैं। **भूतकालिक कृदन्त** :—"इय प्रत्यय का दीर्घ इ य उ लगा कर बनाया जाता है। इस नियमित रूप के अतिरिक्त भूतकालिक कृदन्तों के कुछ अनियमित रूप भी मिलते हैं, जिनमें 'इय' प्रत्यय लगाया गया है। 'इय' प्रत्यय का संक्षिप्त रूप 'इ' है और कहीं-कहीं इसका प्रयोग भी मिलता है। जैसे—चटिइ, तुटिइ आदि। इसके अतिरिक्त कृदन्तों के कुछ अतिरिक्त प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे—पमुक्कउ, पलुट्ट, ढुक्कउ।

संस्कृत के तव्य या अनिद प्रत्ययों के समान संदेश रासक में इब्बउ, इय, इज्ज आदि प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। जैसे—पाढब्बउ। नामधातु का प्रयोग भी संदेश रासक में यत्र-तत्र मिल जाता है, जैसे—सरलाइवि, सीयलन्तु।

परसर्ग—परसर्गों का प्रयोग आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषता है। कारक प्रत्ययों के लिए धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप से परसर्गों का प्रयोग होने लगा। संदेश रासक में कुछ परसर्ग इस प्रकार मिलते हैं—सथिथहि, सोहइसत्थ तरुपिजन सत्थिहि। अपादान के लिए हुन्तउ, ठियउ, रेसि, लग्गि के प्रयोग मिलते हैं।

अव्यय—क्रिया विशेषण अव्यय तीन प्रकार के मिलते हैं—उकारान्त, इकारान्त और बिना किसी प्रत्यय के।

समास—संदेश रासक के संस्कृत तथा प्राकृत की भाँति सामासिक पदों का प्रयोग हुआ है, जैसे —नेवरचरण।

वाक्य रचना—विशेष्य तथा विशेषण की विभक्तियों में आवश्यक सन्तुलन नहीं हैं, जैसे पहिण पवयंतयह के स्थान पर होना चाहिए था पहियह पवयन्तयह। जहाँ-जहाँ एकवचन का प्रयोग बहुवचन के लिए हुआ है, वहाँ वाक्य पूर्ण होने पर भी अर्थ अस्पष्ट रह जाता है। आधुनिक भाषाओं की भाँति

(शेष पृष्ठ ४० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्ददास का दर्शन

डा० सन्तोष गोयल

नन्ददास पुष्टिमार्ग के अनुयायी भक्त थे। उनके काव्य में पुष्टि मार्गीय दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि नन्ददास के दार्शनिक विचारों एवं आचार्य बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में आश्चर्यजनक समानता है। वास्तव में दर्शन कवि का क्षेत्र नहीं, उसका कार्य है। कवि हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता है, जिससे उसे आनन्द प्राप्त होता है। दार्शनिक भाव तो स्वतः आ जाते हैं। नन्ददास के दर्शन की अभिव्यक्ति मुख्यतः 'भ्रमरगीत' तथा 'रास-पंचाध्यायी' में हुई है किन्तु 'रूपमंजरी' तथा 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' दर्शन से बिल्कुल विमुक्त नहीं है। उक्त सभी रचनाओं में ब्रह्म, जीव, संसार, माया, जगत, मोक्ष, गोकुल अथवा वृन्दावन, रास, गोपियां, वेणु इत्यादि का स्वरूप मिलता है।

ब्रह्म का स्वरूप—यह शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार ही व्यक्त किया गया है। नन्ददास अद्वैत ब्रह्म को मानते हैं और उस ब्रह्म के अतिरिक्त मनुष्य के लिए कोई ठौर नही है—

"नाम रूप गुण भेद जे, सोई प्रगट सब ठौर।
ता बिन तत्त्व जु गान कछु, कहे सो अति बड़ बौर।।"
(मानमंजरी)

कृष्ण ही परब्रह्म हैं। यह रसमय है एवं संसार का आधार है—

"नमो नमो आनन्दघन सुन्दर कुमार।
रसमय रस कारन रसिक जग जाके आधार।"

नन्ददास कृष्ण के इसी रसरूप के उपासक थे। यही ब्रह्म कृष्ण के रूप में गोकुल में अपनी शक्तियों सहित लीला के हेतु जन्म लेते हैं और इसी लीला में मग्न रहते हैं।

यह ब्रह्म अजन्मा है, उसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया।

"अज कहिए जगदीश"

यह ब्रह्म अनन्त रूप होते हुए भी एक है—

"हरि अनन्त अस एक"

यही इस जगत का निमित्त और उपादान कारण है। यही ज्योतिरूप है, प्रेम रूप है और रूपनिधि है। व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों विरोधी धर्मों का धर्मी है।

नन्ददास ने कृष्ण के अतिरिक्त ब्रह्म के अन्य अवतार राम, नृसिंह इत्यादि में अपनी आस्था प्रकट की है और कृष्ण की आनन्दशक्ति राधा की भी उपासना की है।

जीव का स्वरूप—नन्ददास चूँकि अद्वैत ब्रह्म को मानने वाले हैं अतः उन्होंने ईश्वर को ही जीव रूप में माना है तथा ईश्वर और जीव की अद्वैतता को स्वीकार किया है। ईश्वर ही सम्पूर्ण सृष्टि रूप में है—

"व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप
वेद वदत प्रभु तुमरो रूप
तुम सब भूतनि कौ विस्तार
देह प्राण इन्द्रि अहंकार।"

ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति अग्नि से स्फुलिंग के समान होती है।

"तुम तैं हम सब उपजत ऐसे,
अग्नि तैं स्फुलिंग गण जैसे।"

इस प्रकार जीव ब्रह्म-प्रसूत हैं।

ब्रह्म में तीन तत्त्व हैं—सत्, चित् और आनन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव में इसी आनन्द तत्त्व का तिरोभाव रहता है। माया ब्रह्म की मोहिनी शक्ति है, जो काले आवरण के समान दोनों के मध्य में आजाती है। इस प्रकार जीव काल, कर्म और माया के चंगुल में फँसा हुआ है और इसी संसार सागर में फँसे हुए जीव की दशा पर करुणा करके भगवान् नन्दनन्दन के रूप में प्रकट हुए हैं :—

"परम तरुण करुणा करि प्रकटे श्री नन्दनन्दन"

जो जीवात्माएँ पुण्य और पाप से निर्मित गुण मय शरीर के धर्मों को छोड़ कर ईश्वर के नैकट्य का काम करती है, अथवा ब्रह्म का परिचय प्राप्त कर लेती है। तभी वह उस आनन्द रूप ईश्वरीय गुणों को धारण करती है और यही रूप गोपियों ने धारण किया।

जगत का स्वरूप—ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द तत्त्व में से सत् के आविर्भाव से तथा चित् और आनन्द के तिरोभाव से प्रकृति अथवा जगत का निर्माण बताया है। ब्रह्म ही जगत का निमित्त और उपादान कारण है। वही एक तत्त्व अनेक रूपों में बदलता है और अविकृत परिणामवाद के अनुसार फिर उसी रूप में मिल जाता है—

"एकै वस्तु अनेक हेवे जगमगात जग धाम,
जिमि कंचन ते किंकिनी कंकन कुण्डल नाम"
(अनेकार्थ मंजरी)

"ज्यों अनेक सरिता जल बहे,
आन सवहि सागर में ररें।
× × ×
अग्नि ते अनगण दीपक बरे
बहुरि आप सब तिन में ररें।
ऐसे ही रूप प्रेम रस जो है,
तुम ते हैं तुम ही कर सोहें।"

चूँकि जगत् ब्रह्म प्रसूत है और ब्रह्म सत्य है। अतः जगत भी सत्य है।

संसार का स्वरूप—संसार अविद्या माया जन्य, सारहीन तथा देह सुखों सहित जो अनित्य है, माना गया है। नन्ददास ने संसार को एक प्राण घोंट देने वाला फन्दा कहा है :—

"बहै जात संसार धार, जीए फंदे फन्दन।"

और इसी संसार रूपी फन्दे को खोलने के लिए ब्रह्म कृष्ण के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेते हैं।

जगत और संसार में अन्तर—बल्लभाचार्यजी ने जगत ईश्वरकृत तथा संसार जीवकृत बताया है। जगत एक सत्य तत्त्व का अविकृत परिणाम है, जबकि संसार को जीव ने अपनी अविद्या कल्पना और भ्रम से रचा है। जब जीव ज्ञानयोग अथवा भगवद्भक्ति द्वारा अविद्या से छूटता है तभी यह संसार भी छूट जाता है, पर उस अवस्था में भी वह इस जगत से अलग नहीं होता। जीव की मुक्ति में संसार का लय है परन्तु जगत का लय कभी नहीं। सुख दुख केवल संसार के साथ लगे हुए हैं, जगत के साथ नहीं। बल्लभाचार्य जी के उक्त मत का प्रतिपादन ही नन्ददास जी ने किया है।

माया का स्वरूप—नन्ददास ने माया के दो रूपों को स्वीकार किया है। प्रथम स्वरूप ब्रह्मा की आदि-शक्ति स्वरूपा माया का है जो सृष्टि का सृजन-पालन और संहार तीनों करती है। इसे विद्या माया कहा गया है। द्वितीय माया अविद्या माया है। यही माया मनुष्य को मोह, माया, ममता इत्यादि के बन्धन में फँसाती है। यही जीव के ईश्वरीय गुणों को आच्छादित कर लेती है। यह सृष्टि विद्या माया का परिणाम है और माया भगवान् के आधीन है। स्वयं भगवान् कृष्ण को भी गोपियों की प्रेममयी माया ने वश में कर लिया था। 'रास पंचाध्यायी' में कवि कृष्ण की मुरली की समता भगवान की आदि शक्ति योगमाया से करते हुए कहता है—

"तब लीनी कर कमल योग माया की मुरली
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरन रस मुरली।"

गोपियों की प्रेममयी माया के सम्बन्ध में देखिये :—

"सकल विसव अपवस करि मोह माया सोहति है,
प्रेममयी तुमरि माया मो मन मोहति है।"

अविद्या माया का भ्रम हटा कर भगवान की सृष्टिकारिणी सत्, चित् और आनन्द शक्ति रूपिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया का दर्शन होता है।

मोक्ष का स्वरूप—वल्लभ सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त अभेद मुक्ति के स्थान पर भेद मुक्ति पर बल देते हैं जिसमें ब्रह्म का सामीप्य, सालोक्य और सारुप्य आनन्द तो प्राप्त होता है किन्तु सायुज्य नहीं। नन्द-दास जी भी स्पष्ट कहते हैं कि कृष्ण के सामीप्य का आनन्द अन्य करोड़ों स्वर्गों से भी अधिक है। संसार की माया के दुख से छूट कर प्रेमभक्ति की संयोग तथा वियोग दोनों मानसिक अवस्थाओं का नन्ददास ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर चित्रण किया है। आप मानते हैं कि देह गुणमय है। पाप और पुण्य के कर्मों से बनी हुई है। प्रेमभक्ति की दुस्सह विरहाग्नि में सभी प्रकार के कर्मों का भस्मीकरण हो जाता है और इसके पश्चात् भक्त को सान्निध्य मुक्ति मिलती है। 'रूप मञ्जरी' में कवि नायिका को कृष्ण के नित्य रास में प्रविष्ट कराकर सायुज्य मुक्ति का भी समावेश कर देते हैं। जो आनन्दमय रस 'रूपमंजरी' को प्राप्त होता है उसकी देवता भी कामना करते हैं। यह सुख अद्भुत सुख है—

"यह अद्भुत रस रासि कहत कछु नहिं आवै।
सुक सनकादिक नारद सारद अतिसय भावै"।

गोलोक, गोकुल अथवा वृन्दावन का स्वरूप—नन्ददास ने अपने कई ग्रन्थों में तथा पदों में ब्रज और कृष्ण की रासस्थली वृन्दावन की शोभा का वर्णन किया है। नन्दगांव उसे 'नीका' लगता है। जहां कृष्ण-गोपियां, ग्वाल-बाल बसते हों उस स्थान को छोड़कर कवि वैकुण्ठ की भी इच्छा नहीं रखता। वृन्दावन की शोभा वर्णित नहीं की जा सकती :—

"श्री वृन्दावन चिद्घन कछु छवि वरनी न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज धरी रह्यो जड़ताई"।

और

"या बन की बरबानिक, या बन ही बनि आवै
सेस महेस सुरेस गनेस नहि पारहि पावैं।"

यह बन अलौकिक है। यहाँ सदा बसन्त रहता है। कवि लौकिक वृन्दावन में ही दिव्य वृन्दावन के दर्शन करता है। वो ब्रह्म जो गोलोक में नित्य रास-लीला करता है, वही भक्तों के हेतु इस पृथ्वी पर अवतार लेता है और अपनी शक्ति द्वारा ब्रज, वृन्दा-वन, गोकुल आदि को भी प्रकट करता है। कृष्ण की लीला के कारण ही वृन्दावन ने जड़ता को धारण किया है अन्यथा वह चैतन्य स्वरूप है। वृन्दावन के के साथ-साथ वहाँ बहने वाली यमुना नदी का भी कवि अति सुन्दर वर्णन करता है। यह यमुना भी कृष्ण के प्रति प्रीत का दान देने वाली है—रसखान की भाँति। 'मानुस हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज-गोकुल गाँव के ग्वारन' के समान नन्ददास भी ब्रज-भूमि के प्रति अपने अटूट प्रेम और श्रद्धा को समर्पित करते हुए कहते हैं—

"जो गिरि रुचे तो बसों श्री गोवर्द्धन,
गाँव रुचे तो बसों नन्द गाँव।"
नगर रुचे तो बसों श्री मधुपुरी
शोभा सागर अति अभिराम।"

रास का स्वरूप—पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के नित्य रास और इस लोक में कृष्णावतार के समय के के नैमित्तिक रास दोनों का एकीकरण करते हुए अष्टछाप के कवियों ने गोपी कृष्ण रास का वर्णन किया है। नन्ददास ने भी रासलीला का चित्रण विस्तार के साथ किया है। रास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए नन्ददास कहते हैं :—

"नित्य रास रस नित्य, नित्य गोपीजन बल्लभ,
नित्य निगम जो कहत नित्य तब तन अति दुल्लभ।"

और

यह अद्भुत रस रास कहत कुछ कहि नहिं आवै
सेस सहस मुख गावे अजहुँ पार न पावै।"

यह रास का रस तीन प्रकार का है। प्रथम, लौकिक विषयानन्द। द्वितीय, अलौकिक विषयानन्द तथा तृतीय, काव्यानन्द। लौकिक विषयानन्द तथा काव्य रस से इतर रस रूप श्रीकृष्ण के संसर्ग की की लीलाओं में जो रस समूह मिले, वह रास है और यह रस समूह शरद शक्ति को गोपी कृष्ण लीला में स्थित बताया गया है। नन्ददास में गोपी कृष्ण रास आध्यात्मिक दृष्टि का आरोप कर उसे दिव्य रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है तथा शृङ्गारिक भावों को परब्रह्म कृष्ण के संसर्ग के कारण निर्दोषी बताया है। 'रास पंचाध्यायी' और 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में कवि पाठकों को बार-बार इसके लिए सचेत करता है कि वे इस उज्ज्वल रास लीला को सावधान होकर समझे—

"जो पण्डित शृङ्गार ग्रन्थ मत या में साने
ते कछु भेद न जाने, हरि को बिषयी माने।"

रास के तीन रूप माने जाते हैं—नित्य रास, अवतरित रास या अनुकरणात्मक रास। नित्य रास नित्य गोलोक में होता रहता है, नैमित्तिक रास में ब्रह्म कृष्ण के रूप में गोकुल में अवतार लेते हैं तथा अपनी लीलाएँ करते हैं, वास्तव में यही रास है जिस में भाग लेकर इस धरती का मानव तर जाता है।

गोपियों का स्वरूप—वल्लभ सम्प्रदाय के मतानुसार गोपी-भाव में कई भावों का समावेश है। इस में गोपियों के दो स्वरूप मिलते हैं :—

१—ईश्वर की आनन्द और सृष्टिकारिणी शक्ति का रूप।

२—कान्ता भाव से ईश्वर की भक्ति करने वाली अनन्य भक्ति का रूप।

यह दोनों स्वरूप राधा नाम की गोपी का है। यह राधा कृष्ण की जगत उत्पादिका शक्ति है। इस सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का सम्बन्ध चन्द्र और चाँदनी का है।

इस रास रस की अधिकारिणी भी दो प्रकार की गोपियाँ है। एक अन्यपूर्वा तथा दूसरी अनन्यपूर्वा। नन्ददास ने 'रासपंचाध्यायी' और 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' ग्रन्थों में गोपियों के स्वरूप और उनकी भक्ति के विषय में विचार प्रकट किये हैं। इनकी गोपियाँ सिद्ध अवस्था पर पहुँची हुई आत्माएँ भी तथा कृष्ण की कृपा एवं स्वरूपानन्द की विशेष अधिकारिणी भी हैं :-

"शुद्ध प्रेममय रूप पंचभूतन तें न्यारी
तिन्हें कहा कोऊ कहि जोति सी जग उजियारी।"

वेणु का स्वरूप—वेणु शब्द व+इ+अणु वर्णों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है—जिसके समक्ष सारा संसार अणु मात्र है अर्थात् कृष्ण की मुरली। नन्ददास ने मुरली को योगमाया और शब्द ब्रह्म के रूप में वर्णित किया है। 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में वह कहते भी हैं :—

"सबद ब्रह्म में बेनु बनाई सबहि जन मोहे।"

नन्ददास की यही मुरली अघटित घटना है, चतुर योगमाया है और नाद ब्रह्म की जननी है—

"तव लीनी कर कमल योग माया सी मुरली।"

यही मुरली भगवान की शक्ति भी है। इसी से यह सारे संसार को वश में करते हैं। गोपियाँ इसकी दीवानी हैं। साथ ही यह कृष्ण और गोपियों के प्रेम को दृढ़ भी करती है। इसका प्रभाव अलौकिक है तथा यह कृष्ण के अधरों पर सदा विद्यमान रहती है।

नन्ददास के दर्शन में जहाँ ब्रह्म, माया, जीव तथा आत्मा का समावेश मिलता है, वहाँ पर जीवन के साथ रहने वाले गोप, गोपिकाएँ, रास, वंशी आदि की भी उपेक्षा नहीं की गई है अपितु उसी के माध्यम एवं प्रतीकों से उन्होंने अपने भावों को गतिमान बनाया है।

जीवन के साथ अन्य उपकरणों की परिलक्षिता की अनुभूति स्वयं साधक को होती है जिसे नन्ददास जी स्वयं जानते थे। अतएव उनका अलग अस्तित्व नहीं झाँका जा सकता।

इस प्रकार पुष्टि मार्ग के सभी सिद्धान्तों और विधि-विधानों को नन्ददास ने अपनाया है और अपने काव्य को प्रश्रय दिया है। सच तो यह है, यह नन्ददास ही थे जिन्होंने वल्लभाचार्य के मतों का पूर्णतः विवेचन किया, उन्हें समझा और फिर किसी न किसी रूप में अपनी रचनाओं में व्यक्त कर दिया, अतः यह कहना अनुचित न होगा कि अष्टछाप के दार्शनिक सिद्धान्त एवं नन्ददास के दार्शनिक सिद्धान्त मूलतः समान हैं।

—मिरान्डा हाउस, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' और हिन्दी गद्य

श्री विष्णुनारायण दुबे

उन्नीसवीं शताब्दी की गद्य-भाषा का अध्ययन राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के मूल्यांकन के अभाव में अपूर्ण समझा जायगा। राजा साहब द्वारा फारसी मिश्रित खड़ीबोली का एक महत्वपूर्ण प्रस्तुत सन्दर्भ का गलत अर्थ लगाया गया था कि ब्रिटिश शासन के संकेत से वे हिन्दी-गद्य-स्वरूप को क्षत-विक्षत करना चाहते थे किन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो राजा साहब की दूरदर्शिता का स्वरूप संकीर्ण नहीं था। वे चाहते थे कि फारसी मिश्रित शब्दों को हिन्दी खड़ीबोली में स्वीकृत कर उसे समाहित कर लिया जाय। राजा लक्ष्मणसिंह आदि की साम्प्रदायिक दृष्टि के कारण ही उर्दू व हिन्दी पृथक दो जातियों की भाषा बनी। राजासाहब ने भी अन्त में झुँझला कर उर्दू को मान्यता दी, जब उनकी मान्यता को झुठलाया गया।

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने सन् १८४५ में 'बनारस अखबार' का प्रकाशन आरम्भ किया था। राजासाहब का झुकाव उर्दू की ओर अधिक था, इसलिए इस अखबार में उर्दू-अरबी के शब्दों का समावेश अधिक हो गया, तब राजासाहब की इस भाषा-नीति के विरोध में आगरे से 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र का सम्पादन शुरू हुआ। यह पत्र विशुद्धतः हिन्दी का ही पक्षपाती था। किन्तु श्याममुन्दर सेन की पत्रिका की भाषा उस समय के दैनिक जीवन की चलतू भाषा थी जिससे यह अधिक लोकप्रिय हो गयी।

ग्रामों के शैक्षणिक केन्द्रों में देशी भाषाओं का उपयोग होता था किन्तु हिन्दी-प्रदेश में हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी क्योंकि शिक्षा के माध्यम के बारे में सरकारी नीति पूर्णतः अस्पष्ट थी। सरकारी दफ्तरों में उर्दू अपने पूर्ण विकास में थी जिससे जनता और सरकार की भाषा क्रमशः हिन्दी-उर्दू होने के कारण एक दूसरे के विपरीत थी। आशय यह है कि हिन्दी और उर्दू के प्रश्न को लेकर जनता और अंग्रेजी सरकार के बीच तनाव की स्थिति बनी रहती थी। १९वीं शताब्दी में हिन्दी गद्य की दृष्टि से जो कार्य हो रहा था वह साहित्यिक रूप ग्रहण कर रहा था परन्तु सरकार इसको विकसित करने के लिए किसी भी प्रकार की सहायता न प्रदान कर सकी।

फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना सन् १८०० में हुई थी। प्रथम प्राचार्य के रूप में श्री गिलक्रिस्ट नियुक्त हुए। ईसाइयों ने जनता की भाषा को अपनाना शुरू किया, क्योंकि इससे वे अपने धर्म का प्रचार करना चाहते थे। सरकारी कर्मचारी कम्पनी की ही भाषा नीति के अनुसार अपना काम चलाने में विश्वास करने लगे थे। सरकारी कर्मचारी और सरकार हिन्दी को उपेक्षित भाषा मानते थे क्योंकि शासन उर्दू को ही प्राथमिकता दे रहा था। पं० चन्द्रबली ने हिन्दी-उर्दू के वाद-विवाद को इस प्रकार व्यक्त किया है—

"यदि हिन्दी-उर्दू द्वन्द के इतिहास को देखा जाय तो सिविल सर्विस के लोग किंवा फोर्ट विलियम कालेज के छात्र प्रायः उर्दू के पक्ष में रहे। ऐसी अवस्था में सरकार के पालतू प्राणी हिन्दी का विरोध नहीं करते तो और क्या करते ?"[१]

---

[१] पं० चन्द्रबली पाण्डेय—हिन्दी गद्य का निर्माण, सं० २००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी को पढ़ाने की व्यवस्था की गई किन्तु विद्यार्थियों की रुचि न होने के कारण इसका विकास न हो सका। संवत् १८३५ में सरकारी दफ्तरों में फारसी का उपयोग होने लगा था इसलिए विरोध करने के लिए आन्दोलन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इसी समय अंग्रेजों ने हिन्दी और उर्दू की समस्या में इतनी जटिलता ला दी कि हिन्दुओं और मुसलमानों में वैमनस्यता आ गई। यह वैमनस्यता स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी किसी न किसी रूप में बनी आ रही है। यद्यपि हिन्दी को राष्ट्रभाषा भी बना दिया है परन्तु अपने-अपने धर्म को प्रधानता देने के पक्ष में यह वाद-विवाद चलता ही आ रहा है।

हिन्दी और उर्दू का प्रश्न क्रमशः जटिलता की ओर अग्रसर हो रहा था। शैक्षणिक संस्थाओं में हिन्दी-उर्दू दोनों का माध्यम उपलब्ध था। कचहरी में अरबी-फारसी खड़ी बोली के साथ मिश्रित थी। आम जनता की भाषा हिन्दी थी किन्तु उर्दू का ही प्रयोग किया जाता था परिणामस्वरूप देवनागरी का पतन होने लगा और हिन्दी दुर्बलता की श्रेणी में आने लगी। इसी समय राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का उदय हुआ।

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के पिता मुर्शिदाबाद के रहने वाले थे किन्तु कासिमअली के अत्याचारों के कारण बनारस आ गए और यहीं पर १८२३ ई० में राजा साहब का जन्म हुआ। जब हिन्दी अपनी जर्जर अवस्था से गुजर रही थी तब उसके उत्थान के लिए शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' साहित्यिक क्षेत्र में आये। हिन्दी-उर्दू, फारसी, बंगला और संस्कृत के ज्ञाता होने के कारण राजा साहब भरतपुर के राज दरबार में नौकर हो गये। राज दरबार में नौकर होने के कारण राजा साहब ने तृतीय सिक्ख युद्ध में सरकार की जी खोलकर मदद की और स्कूल इंस्पेक्टर हो गये। शिक्षा विभाग में रहने के कारण राजा साहब ने अनेक रचनाऐं प्रस्तुत कर सरकारी अफसरों को ही भेंट कर दीं।

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की कृतियाँ भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। राजासाहब ने सोच-विचार कर संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी और ठेठ हिन्दी सभी को मिलाकर एक सर्वमान्य भाषा बनाने की चेष्टा की। उनकी दृष्टि में 'आमफहम' और 'खासपसन्द' भाषा थी।[1]

सन् १८७२ में राजासाहब की सेवाओं से प्रसन्न होकर अंग्रेजी सरकार ने सी० एस० आई० की उपाधि तथा १८८७ ई० में 'राजा' की उपाधि प्रदान की। इसके लगभग ८ वर्ष बाद २३ मई, १८९५ में राजा साहब का निधन हो गया। यदि राजा साहब ने थोड़ी भी सतर्कता से काम लिया होता तो हिन्दी गद्य के व्यावहारिक रूप के जनक हो गये होते जिसका कि विकास देवीप्रसाद मुन्सिफ और उपन्यासकार बाबू देवकीनन्दन खत्री की कृतियों में हुआ।

---

१ राजा साहब ने अपने भाषा-सम्बन्धी सिद्धान्त का १८६८ में लिखित 'भाषा का इतिहास' (कुछ बयान अपनी जुबान का) में उल्लेख किया है। उसका अध्ययन करने से उनका झुकाव अरबी-फारसी शब्दों और उर्दू की ओर साफ मालूम होता है। जहाँ तक सार्वजनिक संस्थाओं से सम्बन्ध था वहाँ तक 'मानवधर्मसार' या 'भूगोलहस्तामलक' की भाषा आदर्श और स्वीकृत भाषा नहीं थी। सर्वप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु जिन अरबी-फारसी शब्दों को राजा साहब आम जनता की बोल-चाल के शब्द समझते थे, कभी भी जनता के बीच नहीं बोले जाते थे। चन्द ने भी उनकी जैसी भाषा का प्रयोग नहीं किया। यदि वे भारतीय जनता के जीवन, उसकी संस्कृति और हिन्दी साहित्य की परम्परा पर ध्यान रखकर अपनी नीति निर्धारित करते तो यह भूल उनसे कदापि न होती परन्तु शिक्षा-विभाग का उन पर ऐसा रंग चढ़ा कि फिर वे सम्हल न सके।—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ११३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना न होगा कि राजा साहब हिन्दी के उत्थान के लिए अग्रसर हुये किन्तु सरकारी कर्मचारी होने के कारण वे सफल न हो सके। आपकी रचनाओं में उर्दू-अरबी शब्दों का समावेश अधिक है इसलिये हो सकता है कि हिन्दी जनता की भाषा होने के कारण अपनी स्थिति सरकार और जनता के बीच सुदृढ़ बनाने के लिए राजा साहब हिन्दी के हिमायती बने। राजा साहब की उर्दू शैली द्रष्टव्य है—

"कौंट लासी ने भी जो १७५८ में फ्रान्सीसियों की तरफ से यहाँ का गवर्नर जेनेरल होकर आया था डुप्ले की तरह अंग्रेजों को उखाड़ना और फ्रान्सीसियों की अमलदारी को फैलाना चाहा यहाँ तक कि अंग्रेजों ने मौसलीपट्टन उनसे छीनकर दखन के सूबेदार सलावत जंग से उसकी और कई जिलों की अपने नाम सनद लिखवा ली।"[1]

उन्नीसवीं शताब्दी तक उर्दू गतिमान रही। मुसलमान उर्दू का पक्ष लेते थे और अंग्रेजी सरकार की राजनीति इनके परिप्रेक्ष्य में समर्थन कर रही थी। उर्दू के प्रधान समर्थक सर सैयद अहमद खाँ थे जो हिन्दी को उज्जड (गँवारू) भाषा समझते थे। सैयद साहब ने अपने धर्म का अंग्रेजों के धर्म से सम्बन्ध बताकर हिन्दू धर्म का विरोध किया फलस्वरूप आंदोलन शुरू हो गया। हिन्दी के विरोध के आन्दोलन का समर्थन फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासी ने भी किया। गार्सा द तासी ने हिन्दी और उर्दू के इस वाद-विवाद को समझने का प्रयत्न तो किया किन्तु जान बीम्स ने इसे रूढ़िवादी व गतिहीन निरूपित कर दिया।

तत्पश्चात् एस० एस० गाउज और वाराणसी के राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने उर्दू का कड़ा विरोध किया। राजा साहब ने उस समय की परिस्थितियों का मनन कर देवनागरी लिपि के माध्यम से हिन्दी को निखारना चाहा किन्तु शिक्षा-विभाग में नौकरी करने के कारण उनकी भाषा सम्बन्धी नीति सफल नहीं हो सकी। राजा साहब को अपनी नौकरी के कारण अँग्रेजी सरकार और उर्दू के समर्थकों को खुश रखने का प्रश्न उपस्थित होता था। डा. वार्ष्णेय का कथन द्रष्टव्य है—

"हिन्दी के इस संकट काल में राजा शिवप्रसाद साहित्यिक क्षेत्र में आये। सरकारी दफ्तरों में उर्दू घुस चुकी थी। राजा साहब 'इंसपैक्टर आव स्कूल्स' थे और सरकारी कर्मचारी की हैसियत से उन्हें सरकारी नीति का समर्थन करना पड़ता था। विद्या-व्यसनी होने के कारण भाषा की ओर स्वभावतः उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। तब उनसे पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के लिए कहा गया तो उन्हें सरकारी नीति का ही व्यवहार करना पड़ा। जहाँ तक लिपि से सम्बन्ध था वे देवनागरी के पक्ष में थे। कचहरी में फारसी लिपि का प्रयोग होते देखकर उन्हें दुःख होता था।"[1]

राजा साहब की भाषा नीति स्पष्ट तो थी नहीं साथ ही उर्दू के गतिशील होने के कारण उन्हें स्कूलों में पढ़ने वाले हिन्दी और मुसलमान विद्यार्थियों का भी ध्यान रखना पड़ता था। शिष्ट समाज और संभ्रान्त घरानों में फारसी लिपि और उर्दू भाषा ने अपना स्थान बना लिया था। राजा साहब ने उसे इस प्रकार उद्धृत किया है—

"हिन्दू लोग न केवल आपस के बीच फारसी में चिट्ठी-पत्री जारी रखते थे, वरन् अपने घर का हिसाब भी फारसी में रखते थे—साहब मौसूफ लिखते हैं कि हिन्दू मुसन्निफ तसनीफ में कोई बात ऐसी नहीं है जिससे उसकी कौम और उसका मजहब जाहिर हो सके।"[2]

राजा साहब ने जब उर्दू को उठाने में अपने को असमर्थ पाया तो उन्होंने नागरी लिपि में सरल हिन्दुस्तानी का प्रचार कर अंग्रेजी सरकार को प्रसन्न करना चाहा तब राजा साहब ने 'बैताल पच्चीसी' को

[1] सितारे हिन्द—इतिहास तिमिरनाशक, भाग २, पृ० १७

[1] डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १०१–१०२

[2] शिवप्रसाद सितारेहिन्द—भाषा का इतिहास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना आदर्श बनाया और फारसी लिपि में लिखी गई उर्दू को जनहित के विपरीत निरूपित किया।

'सितारेहिन्द' के भाषा के इतिहास में फारसी-उर्दू का मिश्रित रूप है और 'राजा भोज का सपना' भी संस्कृत शब्द प्रधान शैली में लिखा गया लेख हैं। 'गुटका' (तृतीय भाग) में राजा साहब ने जो रूप पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है वह केवल इनकी भाषा-नीति का आदर्शमात्र ही है। भाषा की झलक निम्न प्रकार से निरूपित की है—

"कम्पनी सनद में जो मीआद गुजरने पर सन् १८५३ में नयी मिली। नयी बातें तीन दर्ज हुईं। पहले यह कि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के मिम्बरों की तादाद तीस से अठारह हो गयी। उनमें भी छः की मुकर्ररी शाही अलंकारों के इख्तियार में रही।"

राजा साहब की भाषा के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठ सकते हैं। इन्होंने उस समय की सामाजिक भाषा, मुसलमानों का उर्दू के प्रति लगाव, अधिकारियों का रुख तथा अपनी नौकरी को प्रधानता देते हुये अपनी भाषा नीति का स्थान निर्धारित किया होगा। राजा साहब हिन्दी को भी उर्दू के समान निरूपित करना चाहते थे इसलिए उन्हें अरबी-फारसी के शब्दों को सहायता के रूप में स्वीकार करना पड़ा। इस आदान-प्रदान का उल्लेख उन्होंने 'भाषा के इतिहास' में किया है।

विशुद्ध हिन्दी के लिए योग्य वातावरण नहीं था यह राजा शिवप्रसाद का सिद्धान्त था। यदि राजा साहब सरकारी नौकर न होते तो वे हिन्दी-आन्दोलन का संचालन भी करते। राजा साहब हिन्दी को परिष्कृत कर कचहरी की भाषा से जन सम्पर्क रखना चाहते थे इसलिए वे हिन्दी की सेवा करते-करते उर्दू-के पक्षपाती हुए। डा० विययमोहन शर्मा के शब्दों में—

"वे उर्दू लिपि और थोड़े-बहुत अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नीति की दृष्टि से करते थे परन्तु लोगों ने उनकी नीयत पर सन्देह करना आरम्भ कर दिया तब उनके हृदय में जबरदस्त प्रतिक्रिया पैदा हुई और वे कट्टर उर्दू पंथी बन गये।"[1]

डा० शर्मा के उक्त कथन के समर्थन में ही मेरा भी मत है कि राजा साहब को सही न समझ सकने के कारण ही उन्हें प्रतिक्रियावादी बनना पड़ा।

आशय है कि अन्त में राजा साहब हिन्दी के विरोधी और उर्दू के हिमायती जनता द्वारा घोषित कर दिये गये।

जब हिन्दी का रूप अरबी-फारसी युक्त हो रहा था तभी राजा लक्ष्मणसिंह शुद्ध संस्कृतमय रूप लेकर हिन्दी क्षेत्र में आये और राजा साहब के अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग को रोककर संस्कृत प्रचलित शब्दों के प्रयोग करने की भाषा-नीति को अग्रसर किया।

राजा लक्ष्मणसिंह ने अरबी-फारसी से विहीन विशुद्ध भाषा का निर्माण किया। उनके सामने राजा साहब के समान नौकरी का प्रश्न नहीं था। राजा लक्ष्मण-सिंह ने राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की भाषा शैली का विरोध किया और कहा कि हिन्दी-उर्दू पृथक-पृथक भाषायें हैं और न इन दोनों के मेल से कोई पृथक भाषा बनाई जा सकती।

मैं समझता हूँ कि राजा साहब की नीति-विरोध का ही परिणाम[2] था कि वे अन्त में उर्दू का पक्ष लेते हैं क्योंकि उनके समकालीन लेखकों ने उर्दू की खड़ी-बोली स्वरूप में मिला लेने की बात स्वीकार नहीं की। राजा साहब ने कहा कि चूँकि उर्दू कोर्ट की भाषा है, उत्तरभारत में वह एक बोली रूप में भी मान्य है, उसका मातृभाषा के रूप में अस्तित्व है। इस प्रकार राजा द्वय के बीच हुए संघर्ष का परिणाम भविष्य में राजनीति के माध्यम से भयंकर रूप में प्रगट हुआ। वस्तुतः राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' हिन्दी की फारसी प्रचलित तद्भव शब्दों द्वारा समुन्नत

[1] डा० विनयमोहन शर्मा, साहित्य-सन्देश, सन् १९५०, पृ० २०२

[2] इतिहास तिमिरनाशक (१८८३ सं०) भाग १ की भूमिका से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने की योजना[२] रखते थे।

राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी को केवल लिपि के रूप में उर्दू से अलग करने का प्रयत्न किया किन्तु शुद्ध रूप प्रदान करने का श्रेय राजा लक्ष्मणसिंह को मिला। हिन्दी का शुद्ध एवं स्वतन्त्र रूप उपस्थित करने का कार्य राजा लक्ष्मणसिंह ने किया। इसलिए हिन्दी गद्य के उन्नायकों में राजा लक्ष्मणसिंह का नाम सर्वोपरि रहेगा।

हिन्दी जब फारसी एवं उर्दू के मध्य पिस रही थी, उस समय 'सितारे हिन्द' का प्रबल समर्थन मिलने से तत्कालीन समाज में उसके प्रति भी रुचि का आविर्भाव हुआ। ये उस समय के जीवन के लिए परम आवश्यक था। 'सितारे हिन्द' के ही कारण न जाने कितने हिन्दी प्रेमी अपनी अन्तरात्मा में उस के प्रति आदर का भाव समाये उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते रहे।

इन दृष्टिकोणों से राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का परिश्रम भावी हिन्दी के नींव का अविचल प्रस्तर है जिस पर आज का समृद्ध हिन्दी प्रासाद खड़ा है।

—६, उपरेनगंज, जबलपुर (म० प्र०)

२ इतिहास तिमिरनाशक (१८८३ सं०), भाग १ की भूमिका से।

(शेषांश पृष्ठ २६ का)

भी एकीकरण होने के उपरान्त भी अपने कौटुम्बिक-जीवन में साधारण मानव मात्र रह जाते हैं। अन्यथा अन्य स्थलों एवं कालों में वे आत्मा-परमात्मा के उपमित पात्र हैं।[१]

क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

१ (क) अभी हाल में प्रसिद्ध पाठ-विशेषज्ञ डा० माताप्रसाद गुप्त ने दाऊद की इस कृति का नाम 'चांदायन' कल्पित किया है और इसी नाम से अपनी नवीन एवं संशोधित कृति 'चांदायन' का सम्पादन भी किया है।

(ख) डा० श्याममनोहर पाण्डेय, अमरीका सरकार की आर्थिक सहायता से 'चन्दायन' के मौखिक रूपों के संकलन की एक परियोजना में विगत कई वर्षों से रत हैं। आशा है कि उनकी परियोजना के पूर्ण होने के उपरान्त 'चन्दायन' के कुछ नवीन तत्त्व हिन्दी-साहित्य-संसार को प्राप्त हो सकेंगे।

(शेषांश पृष्ठ ३१ का)

संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग सन्देश रासक में मिलते हैं—तक्खरु बक्खरु हरिगउ।

सब मिलाकर कह सकते हैं कि सन्देश रासक की भाषा में आधुनिक बोलियों, प्राचीन राजस्थानी, ब्रजभाषा के पूर्वरूप मिलते हैं। पश्चिमी अपभ्रंश का रूप भी इस कृति में मिलता है। छन्द के दोहों की भाषा अन्य अपभ्रंश दोहों की भाषा से भिन्न है। इसकी भाषा हेमचन्द्र की भाषा से अधिक मिलती-जुलती है।[१]

—विश्व-भारती विश्वविद्यालय,
शान्तिनिकेतन, (प० बंगाल)

१ प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने भयाणीजी की पुस्तक से विशेष सहायता ली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बघेलखण्डी : एक संक्षिप्त परिचय

अयोध्याप्रसादसिंह

'बघेलखण्डी' बघेलखन्ड-प्रदेश की बोली है। बघेल राजाओं के कारण ही इस प्रदेश का नाम बघेल-खण्ड और उनके द्वारा व्यवहृत बोली का नाम 'बघेल-खण्डी' पड़ा। इसमें आधुनिक मध्य-प्रदेश के रीवाँ, सतना, सीधी और शहडोल के जिले शामिल हैं। कुछ विद्वान इसका क्षेत्र प्रयाग के दक्षिण से जबलपुर तक के मध्य भाग को मानते हैं। अन्य बोलियाँ, जो इस की सीमा बनाती हैं, इस प्रकार हैं—उत्तर में अवधी, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी, पूर्व में भोजपुरी और पश्चिम में बुन्देलखण्डी या बुंदेली।

'बघेलखन्डी' को कुछ विद्वान् अवधी का ही एक रूप मानते हैं, अलग बोली नहीं। इसके अपने क्षेत्र में सर्वत्र, नगरों और ग्रामों में, प्रायः एक ही प्रकार की बोली का प्रयोग होता है। आस-पास की सीमा वाले क्षेत्रों में अन्य आंचलिक बोलियों के प्रभावानुकूल कुछ सम्मिश्रण भी जरूर है।

अन्य प्रान्तीय भाषाओं की भाँति 'बघेलखण्डी' में भी संस्कृत के अविकल या तत्सम् शब्दों के अगणित उदाहरण पाये जाते है। जैसे—अधम, आचार, आदर, चतुर, चिन्ता, नीच, दानी, निरादर, परिवार, पुरोहित, पूजा, पण्डित, मद, मान, मोह, विचार, सुख, संसार आदि।

इनके अतिरिक्त 'बघेलखण्डी' में तद्भव तथा देशज शब्दों का भी अत्यधिक बाहुल्य है। सामान्य परिवर्तन की प्रवृत्तियों के कुछ साधारण नियम नीचे दिये जाते हैं—

१—'बघेलखण्डी' में 'य' का 'ज' तथा 'ल' का 'र' होते देखा जाता है। जैसे—जजमान (यजमान), जोगी (योगी), जमुना (यमुना), जस (यश) और हर (हल), हरदी (हलदी), कटहर (कटहल), उज्जर (उज्ज्वल), मछरी (मछली), पीपर (पीपल) आदि।

२—'बघेलखण्डी' में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' के स्थान पर दन्त्य 'स' ही उच्चरित होता है। जैसे—सब्द (शब्द), देस (देश), दसा (दशा), हरस (हर्ष), बर्स या बरस (वर्ष)। कहीं-कहीं मूर्द्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' भी होता है, जैसे रामहरख (राम-हर्ष), बरखी (वर्षी), बरखा (वर्षा) आदि।

३—मूर्द्धन्य 'ण' की जगह बघेलखण्डी' में प्रायः दन्त्य 'न' का प्रयोग होता है। जैसे—चरन (चरण), हरन (हरण), कारन (कारण), बिचरन (बिचरन), धारन (धारण), साधारन (साधारण), कल्यान (कल्याण) आदि। परन्तु 'ड़' के स्थान पर प्राय; 'र' का प्रयोय किया जाता है। जैसे—पहार (पहाड़), गुर (गुड़) आदि।

४—'क्ष' 'बघेलखण्डी' में प्रायः 'च्छ' होते देखा जाता है। जैसे—अक्षर से अच्छर, भिक्षा से भिच्छा, लक्षण से लच्छन, रक्षा से रच्छा आदि।

५—हिन्दी के तत्सम् तथा तद्भव आदि शब्दों के स्वर गुण-वृद्धि अर्थात् 'इ' 'ई' का 'ए' तथा 'उ' 'ऊ' का 'ओ' होते देखा जाता है। जैसे—विकार का बेकार, बीमार का बेमार या बेराम, बुखार का बोखार आदि। इसके प्रतिकूल कहीं-कहीं स्वर-लाघव भी पाया जाता है। जैसे—बजार (बाजार), अहार (आहार), अकास (आकाश), पताल (पाताल), दुकान (दूकान) आदि।

अन्य भाषाओं की तरह 'बघेलखण्डी' में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्ताक्षर-गर्भित शब्दों के उच्चारण को सरल और सुविधाजनक बनाने के लिए विविध प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जाता है :—

१—संयुक्ताक्षरों के उच्चारण-जन्य काठिन्य को दूर करने के लिये संयुक्त-व्यंजनों के बीच प्रायः स्वर का आगम हो जाता है, जिसे भाषा-वैज्ञानिक स्वर-भक्ति (Anaptyxis) या विप्रकर्ष (Diacresis) कहते हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत के पदार्थ, क्रिया-कर्म, परमार्थ, तीर्थ, व्रत, भक्त, परमेश्वर के लिये 'बघेलखण्डी' में पदारथ, किरिया-करम, परमारथ, तीरथ, बरत, भगत, परमेसर जैसे रूप व्यवहृत होते है। इसी प्रकार 'श्री' और 'स्नेह' के विकृत रूप 'सिरी' और 'सनेह' हो जाते हैं। कभी-कभी शब्दों के बीच नये स्वर या व्यंजनों का भी आगम हो जाता है। जैसे—सराप (शाप), बाँदर (वानर) आदि।

२—संयुक्त व्यंजनों से आरम्भ होने वाले शब्दों के आदि में किसी स्वर का उपजन या आगम हो जाता है, जिसे भाषा-विज्ञान में Prothesis नाम दिया गया है। जैसे—अस्नान (स्नान), इस्कूल (स्कूल) आदि।

३—'बघेलखण्डी' में वर्ण-विपर्यय (Metathesis) के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। जैसे—'बेराम' (बीमार), मतबल (मतलब) आदि।

४—कभी-कभी पार्श्ववर्ती दो वर्णों में से एक के प्रभाव से दूसरा वर्ण तद्रूप हो जाता है। इसे समीकरण (Assimilation) का नियम कहा जाता है। यह पुरोगामी और पश्चाद्गामी दो प्रकार का होता है। 'बघेलखण्डी' में उज्जर (उज्ज्वल), पत्ता (पत्र) आदि पुरोगामी और ऊख (इक्षु), अन्न (अद्+न) आदि पश्चाद्गामी समीकरण के उदाहरण मिलते हैं।

५—'बघेलखण्डी' में कहीं-कहीं ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनके मध्य में आने वाले व्यंजनों के बीच का स्वर या आदि स्वर लुप्त हो जाता है। जैसे—एरण्ड से 'रेंड़ी' आदि स्वर-लोप की भाँति व्यंजन-लोप भी पाया जाता है।

६—जब किसी शब्द में दो अक्षर प्रायः एक समान होते हैं तो उनमें से एक का लोप हो जाता है। जैसे—अँगपोछा से 'अँगोछा', पुस्तक से 'पोथी', मयूर से 'मोर' आदि।

इस प्रकार प्रयत्न-शैथिल्य या प्रयत्न-लाघव की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण 'बघेलखण्डी' में भी अनेकानेक वर्ण-परिवर्तन पाये जाते हैं। भाषा के विकास में यह प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, क्योंकि 'अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरण' वाली उक्ति यहाँ भी चरितार्थ होती है।

'बघेलखण्डी' में 'हिन्दी' की तरह कारकों के भेद दिखलाने के लिए शब्दों के साथ अधिकतर अन्य शब्द 'के', 'से', 'पर' आदि कारकों के चिन्ह जोड़े जाते हैं, जबकि संस्कृत आदि में कारकों की विभक्तियाँ शब्दों के साथ ही अभिन्न रूप से संश्लिष्ट रहती हैं; जैसे—रामाय (राम के लिए), रामस्य (राम का) इत्यादि। किन्तु कहीं-कहीं संस्कृत की भाँति 'बघेलखण्डी' में भी संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है; जैसे—सर्वनामों के सम्बन्धकारक में 'हमार', 'तोहाँर', 'आपन', 'ओकर' आदि।

'बघेलखण्डी' की अव्यय-शब्दावली भी बड़ी महत्वपूर्ण है। स्थानवाचक अव्यय 'यहाँ', 'वहाँ' के लिए 'बघेलखण्डी' में 'हिअन', 'हुँअन' का प्रयोग होता है। 'कहाँ', 'जहाँ' अपने मूल रूप में व्यवहृत होते हैं। कालवाची अव्ययों में 'आजु', 'कालिह', 'परसों', 'नरसों' का विकास क्रमशः संस्कृत के 'अद्य', 'कल्य', 'परश्वस्', 'अन्य त्रिश्वस्' से हुआ प्रतीत होता है। 'राम तो वहाँ जायेगा ही'—इस वाक्य को बघेलखण्डी में कहेंगे—'राम त हुँअन जावइ करी।' इसमें आया हुआ 'त' शब्द अव्यय है और इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'तु' से है। संस्कृत के बहुत से श्लोकों में 'च' और 'तु' नाम के अव्यय शब्द प्रायः मिलते हैं।

असावधानी के कारण कई शब्दों के उच्चारण में ध्वनि-भेद से बहुत अन्तर आ गया है। कभी-कभी विजातीय भाषा का प्रभाव भी सम्पर्क के कारण पड़ जाता है। जैसे अँग्रेजी का 'रिपोर्ट' शब्द बघेलखण्डी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आकर 'रपट' बन गया है। अक्षरलोप के आधार पर 'राम दुहाई' का 'राम दे' हो जाता है। वर्णागम के कारण 'स्त्री' का 'तिरिया' और 'माता' का 'महतारी' हो जाता है। वर्ण-विकास के आधार पर 'नर्मदा' का 'नरबदा' हो जाता है। महाप्राण या अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति से 'सीधा' का 'सूध' और 'पहचानना' या 'जानना' का 'चीन्हना' हो जाता है।

बघेलखण्डी में कई ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग खड़ीबोली में या तो होता ही नहीं या जिनका अर्थ न्यायसङ्गत और ग्राह्य नहीं रह गया है। जैसे 'बिरिया' का अर्थ बघेलखण्डी में 'समय' होता है, 'किरिया' शब्द का अर्थ 'कसम खाने' से है, पर खड़ीबोली में 'किरिया' का अर्थ 'क्रिया' होता है। इसी प्रकार जबकि खड़ीबोली में 'गुजरना' का अर्थ 'To pass' होता है, बघेलखण्डी में इसका अर्थ 'मर जाना' होता है।

'बघेलखण्डी' बोली का एक नमूना द्रष्टव्य है:—जिसमें चाकघाट के आस-पास बोले जाने वाले शब्दों की सूची है।

"कालिह ऐतबार रहा। हमार कुछ दोस जंगल घूमइ ग रहें। हम नहीं पहुँचि पाँएन, एका हमका बहुतइ दुक्ख हइ, कुछ लोग कहत हएँ कि सान्तउ गइ रही, पइ हमका त नहीं लागत कि ओकर महतारी ओका जाइ दिहिस होई। अ फेर दूसर बाति ई कि ऊ हमका छांड़ि कइ कइसे जाइ सकति हइ ? अब जब कबउ मोका मिली हमहूँ लोग जाबइ।"

(कल इतवार था। मेरे कुछ दोस्त जंगल घूमने गये थे। मैं नहीं पहुँच पाया, इसका मुझे बहुत ही दु:ख है। कुछ लोग कहते हैं कि शान्ता भी गयी थी, लेकिन मुझे तो नहीं लगता कि उसकी माँ ने उसे जाने दिया होगा। और दूसरी बात यह कि वह मुझे छोड़कर कैसे जा सकती है ? अब जब कभी मौका मिलेगा, हम लोग भी जायेंगे।)

चाकघाट के आस-पास की बोली के शब्द—

१—**संज्ञा**—१–बहरा (नाला) २–गोदी (पतली-पतली लकड़ियाँ, ३–तारा (तालाब), ४–साफरी (अमरूद), ५–गदेला (Child), ६–जनगाथी (कुम्हड़ा) ७–कनगुरिया (सबसे छोटी उँगली) ८–गदोरिया (हथेली), ९–मोखारी (दातून), १०–चिरई (चिड़ियाँ), ११–लहिला (चना)।

२—**विशेषण**—१–ओद (गीला), २–चिबिल्ला (चंचल), ३–घिनहा (खराब), ४–तात (गर्म), ५–चावल (चौड़ा), ६–सकेत (सकरा), ७–गलत (ठंढा), ८–बुढ़ान (वृद्ध), ९–लसा (पका), १०–झूर (सूखा)।

३—**क्रिया**—१–चीन्हना (पहिचानना), २–गोहराना (पुकारना), ३–नेरिआना (चिल्लाना), ४–काँखना (कराहना), ५–बिदुराना (मुस्कुराना), ६–मूँदना (ढँकना), ७–बूढ़ना (डूबना), ८–पैरना (तैरना) । ९–डाँकना (कूदना), १०–डपटना (डाँटना)।

अस्तु, उक्त विवेचन से 'बघेलखण्डी' की प्रकृति एवं प्रवृत्ति का एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है।

—शोध-छात्र, हिन्दी वि०, सागर विश्वविद्यालय, सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार

• • •

रामनरेश शुक्ल

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजी युग प्रवर्त्तक उपन्यासकार थे। हिन्दी के प्रथम, सशक्त और सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार के नाते उन्होंने उपन्यास जगत को वह प्ररणा प्रदान की जिससे अनेक उपन्यासकार आज तक प्रभावित होते रहे हैं। उपन्यास के क्षेत्र में जो मौलिक उद्भावना प्रेमचन्दजी ने दी उसको लेकर अनेक लेखकों ने अपने उपन्यासों को सजाया और सँवारा है। फिर भी यह समर्थ लेखक अपनी मौलिक उद्भावना, सूझ-बूझ और अनोखी कलात्मकता लिये हुये आज भी अकेला खड़ा है, कोई भी अन्य उपन्यासकार उसे स्पर्श तक नहीं कर सका है।

प्रेमचन्दजी में भारतीय सांस्कृतिक चेतना कूट-कूट कर भरी थी। वे जीवन के अत्यधिक निकट थे। बट वृक्ष की भाँति जीवन का बहुमुखी विस्तार उनके साहित्य में लक्षित होता है। उन्होंने जीवन की विषमताओं, समस्याओं एवं कठिनाइयों को भली भाँति पहचाना था। ग्राम्य जीवन से वे अधिक प्रभावित थे अतः ग्रामीण समस्याओं का समावेश पूर्णरूप से उनके उपन्यासों में हुआ है। राष्ट्रीय भावना के वे प्रतीक थे। उनकी इन मान्यताओं से अनेक उपन्यासकार प्रभावित हुये और इनकी प्रेरणा से हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक ऐसा दौर (जो लगातार २५ वर्ष तक तक अबाध गति से चल रहा) आया। आज भी अनेक उपन्यासकार प्रेमचन्दजी के साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर साहित्य सर्जना में संलग्न हैं। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों में प्रमुख उपन्यासकार ये हैं—जयशङ्कर-प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन शास्त्री, उग्रजी, ऋषभचरण जैन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सियारामशरण गुप्त, राधिकारमणप्रसादसिंह एवं श्रीनाथसिंह आदि।

प्रेमचन्दजी का 'सेवासदन' १९१८ में एक नवीन मान्यता और दिशा का सूचक होकर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आया। इससे तथा प्रेमचन्दजी के अन्य उपन्यासों द्वारा हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन रूप तथा आदर्श की स्थापना हुई और वह जीवन की सम्यक अभिव्यक्ति का साधन बना। इसी समय अन्य समर्थ लेखक भी इस क्षेत्र में आये और उपन्यास के साहित्यिक रूप, वस्तु एवं कलात्मक विविधता को प्रौढ़ता प्रदान की। इसके साथ ही सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव भी इस क्षेत्र में पर्याप्त रूप से पड़ा। इसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में एक नवीन चेतना एवं आत्मगौरव की भावना का विकास हुआ। संक्षेप में दो दशकों का यह काल सामाजिक उद्बोधन, राष्ट्रीय जागृति, आध्यात्मिक एवं लौकिक आदर्शों के परीक्षण, नवीन मानवतावादी विचारधारा के प्रचार, वर्गचेतना के उदय, एवं मानव मन के विश्लेषण का युग रहा है। इस युग में प्रणीत हिन्दी-उपन्यासों में इन युगीन प्रभावों की स्पष्ट छाप पड़ी है तथा अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। विषय निर्वाचन, जीवन दर्शन तथा चित्रण कला (वस्तु पक्ष और कलापक्ष) आदि में उपर्युक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कल्पना, रोमांस, चमत्कार प्रदर्शन से मुक्त होकर यथार्थ जगत की कठोर भूमि पर खड़े होकर इस युग के उपन्यासों ने अपने युग का सच्चा प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निधित्व किया है।

तत्कालीन उपन्यास साहित्य ने (जिसके प्रवर्तक प्रेमचन्दजी थे) इस जन जागरणवादी आन्दोलन के विभिन्न पक्षों को अपना विषय बनाया—सम्मिलित कुटुम्ब की विषमतायें, नारी वर्ग की विभिन्न समस्यायें, धर्म एवं जातिगत भेदभाव, परम्परागत सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक नैतिक बाह्याडम्बर, अन्ध विश्वास, किसानों मजदूरों की शोचनीय सामाजिक आर्थिक स्थिति, जमींदार पूँजीपति की निरंकुशता, सरकारी कर्मचारियों के अन्याय अत्याचार तथा अनेक अन्य सामाजिक बातों में से एक या अधिक को अपनी कथावस्तु का प्रतिपाद्य विषय बनाया।

यह शोषण और शोषित का युग था। शोषण दमन और दासता अपनी चरम सीमा को स्पर्श कर रही थी। इसका प्रभाव भी इन युगीन उपन्यासकारों पर अत्यधिक रूप से पड़ा तथा यह भी उनका एक प्रतिपाद्य विषय बना। प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न वर्गों की आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों एवं पारस्परिक संघर्ष की कहानी को बड़े ही कलात्मक एवं सजीव रूप में चित्रित किया है। किसानों की मनोवृत्ति तथा उनकी जीवन पद्धति, जमींदारों एवं उद्योगपतियों के विभिन्न रूप, स्वभाव, संस्कार, रहन सहन एवं शोषण के ढङ्ग, पुलिस की धांधली एवं अमानुषिकता, अफसरों का अहंकार एवं उनकी गुलाम मनोवृत्ति, किसान मजदूरों के आन्दोलन, मारपीट मुकदमा, पैरवी आदि अनेकानेक बातों का का बड़ा ही सूक्ष्म, हृदयग्राही और यथार्थ वर्णन प्रेमचन्दजी के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास कलात्मक ढङ्ग से स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जीवन का सच्चा इतिहास प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्दजी के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी उपर्युक्त विषयों को अपना प्रतिपाद्य बनाया है। ऋषभचरण जैन कृत 'सत्याग्रह' और 'भाई' निरालाकृत 'अलका' प्रसाद की 'तितली', श्रीनाथसिंह का 'जागरण' आदि उल्लेखनीय हैं यद्यपि इनमें वह सूक्ष्म निरीक्षण, कलात्मकता एवं प्रवाह नहीं है जो प्रेमचन्दजी में है।

साहित्य की अन्य विधाओं की भांति उपन्यास भी मूलतः प्रेम व्यापार से ही अधिक प्रभावित रहा है और इस प्रेम व्यापार में मर्यादित दाम्पत्य प्रेम के स्थान पर प्रणय के स्वच्छन्द चित्र ही उपन्यास के क्षेत्र में भी अधिक देखने को मिलते हैं। 'प्रेम' मानव का सबसे प्रिय एवं व्यापक मनोवेग है। प्रेमकथा में जो आकर्षण है वह अन्य किसी कथा में नहीं। प्रेम में भी दाम्पत्य प्रेम की अपेक्षा स्वच्छन्द प्रेम में अधिक आकर्षण है। प्रेमचन्दजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों में वर्णित प्रेम में वह प्राणवत्ता एवं गाम्भीर्य नहीं है जो प्रेमचन्दजी के प्रेमवर्णन है। प्रेमचन्दजी द्वारा सामाजिक यथार्थ प्रथम बार अपने कलात्मक रूप में हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त हुआ और स्वच्छन्द प्रेम के सजीव वर्णन को एक नवीन ठोस दिशा प्राप्त हुई। स्वच्छन्द प्रेम भी जाति वर्ग एवं सम्प्रदाय द्वारा स्वीकार्य न होने से एक समस्या है। इन उपन्यासों में भी यह एक समस्या बनकर ही आया है जिसका समाधान संयोग न होकर चिर वियोग ही बना है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के अधिकांश उपन्यासों में स्वच्छन्द प्रेम का ही चित्रण हुआ है, किन्तु सामाजिक निषेधों के कारण उसकी परिणति चिर वियोग में ही हुई है। गढ़ कुंडार, प्रेम की भेंट, कुण्डली चक्र, बिराटा की पद्मिनी आदि प्रायः सभी उच्चकोटि के स्वच्छन्द प्रेम के दुखान्त उपन्यास ही हैं। उग्रजी का 'चन्द हसीनों के खतूत', निराला कृत 'निरुपमा' कौशिकजी कृत, 'भिखारिणी' तथा स्वयं प्रेमचन्दजी के 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्म भूमि', तथा 'गोदान' में इस स्वच्छन्द प्रेम के दर्शन होते हैं किन्तु अधिकतर यह असफल ही रहा है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में आकर इस स्वच्छन्द प्रेम में अधिक गाम्भीर्य और बहुमुखीपन आया है।

हिन्दी के प्राथमिक उपन्यासों में धार्मिक और नैतिक उपदेशों का आधिक्य था उनमें सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रधानता थी। प्रेमचन्द युग में इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधारवादी दृष्टिकोण को अधिक सूक्ष्म एवं कलात्मक बना लिया गया उसमें तर्क और यथार्थ का समावेश करके सप्राणता—प्रतिष्ठित की गई। उस युग के प्रवर्तक प्रेमचन्द पर आदर्शवादी संस्कार अत्यधिक गहरे पड़े थे और वे साहित्य को 'शिव' के रूप में देखते थे किन्तु उनमें कलाकार का विवेक एवं मौलिक प्रेरणा थी जिससे उन्होंने युगीन सामाजिक जीवन का सत्यता से यथार्थ चित्रण करते हुए ही आदर्श की ओर संकेत किया है। सामाजिक यथार्थ का इतना सूक्ष्म, सहज, स्वस्थ एवं सजीव वर्णन प्रेमचन्दजी के पूर्ववर्ती लेखकों में तो है ही नहीं—परवर्ती लेखकों में भी कम ही देखने को मिलता है। वे भावना में आदर्शवादी थे किन्तु चित्रण भूमि में आकर यथार्थ जीवन की अनुभूतियों प्रेरणा ग्रहण करते थे। वे श्रेष्ठ कलाकार थे उनकी कला का आग्रह सदैव सजग और सचेत रहा है। अतएव युग की सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक विषमताओं की ओर से उन्होंने आँखें बन्द नहीं की हैं किन्तु संस्कार जन्य आदर्शवादिता का अंकुश भी कठोर था। इस द्वन्द्व के परिणामस्वरूप ही उनके उपन्यासों के अन्त में आदर्शवाद यथार्थ पर विजयी हुआ है। जीवन एवं साहित्य के प्रति प्रेमचन्दजी का यह दृष्टिकोण ही अधिकांश साहित्यकारों का पथ प्रदर्शक बना। प्रसादजी 'तितली' में, वृन्दावनलाल वर्मा, ऋषभचरण जैन, के भाई एवं सत्याग्रह' जैसी आरम्भिक कृतियों में, सियारामशरण गुप्त तथा जैनेन्द्रजी कृत 'परख' में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है। उपर्युक्त कलाकारों की कृतियों में यद्यपि सामाजिक यथार्थ की अनेक भूमियाँ मिलती हैं किन्तु प्रवृत्तियों पर संयम, सामाजिक मर्यादा के अनुशासन एवं धार्मिक नैतिक विधि निषेधों के महत्त्व आदि को सभी ने स्वीकार किया है। सुधारवादी युग होने के नाते यथार्थ की भूमि पर चलते हुए भी उपन्यासकारों की दृष्टि लक्ष्य प्राप्ति की ओर लगी हुई थी।

प्रेमचन्द युग में भी यथार्थ की बदलती हुई अनेक भूमियाँ मिलती हैं। स्वयं उनके गोदान में जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण है वह अन्य कृतियों में नहीं है। गोदान के यथार्थ पर आदर्श हावी नहीं हो पाया है जो कुछ जैसा है वही है, क्या होना चाहिए यह बताने का प्रयत्न नहीं किया गया है। वस्तुतः गोदान सामाजिक यथार्थ का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रसादजी ने 'कङ्काल' में प्रायः इसी यथार्थवाद को ग्रहण किया है। इसके विपरीत उग्र, ऋषभचरण जैन आदि लेखकों ने सामाजिक दुराचार के एक भयावह रूप को भाषा की सम्पूर्ण रंगीनी में ब्योरेवार चित्रित किया है। दुराचार के अड्डों, वेश्यालय, मदिरालय, अनाथालय तथा चकलों आदि में चलने वाले स्त्री के अनैतिक व्यापारों का रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत करने का इन लेखकों ने प्रयास किया है। 'दिल्ली का दलाल', 'दुराचार के अड्डे' जैसे उपन्यासों में नग्न यथार्थ देखने को मिलता है इसमें न प्रेमचन्दजी के आदर्श का अंकुश है और न प्रसादजी के कलात्मक संयम का। यह यथार्थ का नितान्त विकृत एवं संकीर्ण रूप है।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग की सबसे महत्वपूर्ण देन, चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता का समावेश है। इस युग में ही ऐसे पात्रों की निर्माण कला का विकास हुआ, जिनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है। विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है तथा अपने स्वभाव, संस्कार के अनुसार व्यवहार करता हुआ मनुष्य किस प्रकार नवीन परिस्थितियों का निर्माण करता है, इसका आरम्भ प्रेमचन्दजी द्वारा हुआ जो निरन्तर कलात्मक पूर्णता की ओर बढ़ता गया। प्रेमचन्दजी के उपन्यास बहिर्मुख वर्णन प्रधान है। जीवन का बहिर्मुखी वर्णन करने वाला उपन्यास, पात्र एवं उसके क्रिया-कलापों को सामाजिक भूमिका में देखता है उसका आधार भौतिक होता है और इसीलिये उसमें जीवन के व्यावहारिक पक्ष का ही समावेश होता है। प्रेमचन्दजी की इस उपलब्धि का मर्म है उनकी व्यापक संवेदनशीलता। वाह्य जगत् के समस्त व्यापार उनके संवेदनशील अन्तःकरण का सहज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्पर्श प्राप्त कर नितांत प्रेषणीय बन गये हैं। उनकी वर्णन प्रणाली सीधी-सादी तथा कथा वस्तु सुगठित होती है। प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, कौशिक, उग्र, ऋषभचरण जैन आदि इस युग के प्रमुख लेखकों में वहिर्मुखी प्रवृत्ति की ही प्रधानता है। प्रसादजी के पात्रों में अपेक्षाकृत अधिक आन्तरिकता हैं। वे केवल भौतिक स्तर पर ही न रहकर सांस्कृतिक स्तर पर भी हैं उनके उपन्यासों में वर्ग की अपेक्षा व्यक्ति पर अधिक आग्रह है। जैनेन्द्र जी के 'परख' और सुनीता जैसे उपन्यासों से चित्रण-कला को एक नवीन दिशा मिली। वह अन्तर्मुखी है अन्तर्मुखी उपन्यासों में व्यक्ति के जीवन को लक्ष्य बनाकर व्यक्ति के मानसिक संघर्ष तथा उसकी परि-स्थिति जन्य समस्याओं के चित्रण को ही प्रधानता दी जाती है। इस अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रेरक शक्ति आधुनिक मनोविज्ञान है। इसके पात्र आत्मलीन होते हैं जिससे लम्बे विचारात्मक स्थल स्वयं आ जाते हैं। आगे चलकर इस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व प्रधान उपन्यासों का पर्याप्त विकास हुआ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर देखते हैं कि प्रेमचन्दजी ने उपन्यास को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का वास्तविक कलात्मक माध्यम बनाया और उसमें जीवन की विभिन्न भूमियों के चित्रण का श्रेष्ठतम रूप विकसित हुआ। समाज के प्रायः सभी अंगों तथा वर्गों का वर्णन इस युग के उपन्यासों में हुआ है वस्तुतः कोई भी अंग एवं वर्ग अछूता नहीं बचा है। मानव-जीवन की व्यापक व्याख्या इस युग के उपन्यासकारों ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत की है। इस युग के उपन्यासों में महान गांभीर्य, विस्तार और व्यापकता है। तत्कालीन समाज का सच्चा चित्र इन उपन्यासों में देखने को मिलता है।

—२८१, पन्नालाल पार्क, उद्धाव।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की

प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा

परीक्षाएँ २६ दिसम्बर ६७ से आरम्भ होंगी इन परीक्षाओं की नई गाइडें छप कर आ गई हैं

इन परीक्षाओं की सभी पाठ्य पुस्तकें, तथा सहायक पुस्तकें हमारे यहाँ मिलेंगी। ५) रु० पेशगी भेजें।

मनीआर्डर भेजने का पता:—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी के काव्य में गीति-तत्व

डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'

वेदना एवं उल्लास के अतिरेक से मानव-हृत्तन्त्री स्पन्दित होकर जो स्वर-विधान करती है, वह गीति-काव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, प्रसन्नता-पीड़ा तथा मिलन-वियोग का उल्लास एवं वेदना जब हृदय की सहनशक्ति की सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं, तो उनका प्रस्फुटन या तो आनन्द के मुक्ताकणों या व्यथा के अश्रुओं या गीतिमय स्वर-लहरी के रूप में होता है। यदि ऐसा न हो तो वह विदीर्ण हो जाये, उसकी गति बन्द हो जाये और मानव अभिव्यक्ति की शक्ति सदा के लिए खो बैठे। अतः गीतिकाव्य या गीत उसके हृदय को हर्ष एवं विषाद के क्षणों में ऐसी क्षमता प्रदान करता है कि वह अन्य मानवों को समानभागी बनाकर हलका हो जाता है।

गीति का उद्गार स्वाभाविक है। मनोवेगों या भावों की तीव्रता स्वतः ही गीति के रूप में प्रभावित होकर मानस-लहरी को कण्ठ के द्वारा अधरों पर थिरकने लगती है। अतः उसमें वैयक्तिकता का, एकान्तिकता का भाव पाया जाता है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"[1] विशेषतः लोकगीत तो जनमानस के सुख-दुःख, आशा-निराशा घृणा-प्रेम, व्यथा-उल्लास एवं संयोग-वियोग के भावों के प्रतिबिम्ब होते हैं। उनमें जहाँ जीवन के मादक उल्लास की मनमोहक व्यंजना होती है, वहाँ जीवन की विषम घड़ियों में प्रवाहित अश्रुधारा भी छलकती है। साहित्यिक गीत उसी प्रेरणा का परिष्कृत रूप है। भाव गीतिकाव्य के रूप में स्वतः ही निःसृत होता है, वह प्रयत्न का परिणाम नहीं। इसीसे गीतिकाव्य में भावाकुलता, मार्मिकता एवं प्रेषणीयता होती है। एक ही भाव या आवेग अपनी तीव्रता या उद्दामता के कारण गीति के रूप में व्यक्त होता है। अतः उसमें संक्षिप्तता एवं एकनिष्ठता पाई जाती है। इस प्रकार गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्व माने जा सकते हैं—(१) आत्माभिव्यक्ति, (२) गेयता या संगीतात्मकता, (३) भावाकुलता, (४) भावान्विति या अनुभूति की एकता, ५. संक्षिप्तता, (६) भावानुकूल भाषा।

आत्माभिव्यक्ति—गीतिकाव्य में कवि अपने 'आत्म' की अभिव्यक्ति करता है। उसकी अनुभूति स्वतः ही काव्य के रूप निःसृत हो उठती है। अतएव स्वानुभूति गीतिकाव्य का प्राण है। कवि किसी भावना से विभोर होकर उसे गीति के रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए विवश हो जाता है। अतः गीति-काव्य में कवि का व्यक्तित्व उद्भासित हो उठता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का भी कथन है—"प्रगीत में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है—वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है। कवि के अन्तस्तल का उद्घाटन प्रगीत में ही सम्भव है।"[1] महादेवी वर्मा का करुणापूर्ण व्यक्तित्व उनके गीतों में सफलता के साथ व्यक्त हुआ है। बाह्य-जीवन में उनके हृदय की जो करुणा दोनों और असहायों के प्रति दया, ममता और सेवा के रूप में निःसृत होती दृष्टिगत होती है, वही उनके गीतों में आत्मा का रस बन

[1] साहित्यकार की आत्मा तथा अन्य निबन्ध, पृ. १२२

[1] आधुनिक साहित्य, द्वितीय संस्करण, पृ० २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर प्रस्रवित हुई है। उस करुणा का कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु वास्तव में वह प्रियतम के विरह से उद्भूत पीड़ा का प्रतिफलन प्रतीत होती है। इसी कारण कवयित्री अपने को विरह का जलजात बताती हुई कहती हैं—

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास।
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।।"

इस विरह-जन्य पीड़ा ने कवयित्री को करुणा की प्रतिमूर्ति बना दिया है और वह करुणा ऐसी है, जो मुक्त-हृदय से सब के लिए बरसती है तथा 'सुख की सिहरन' बनकर खिल उठती है। अपने परिचय में इसी भाव की व्यंजना करते हुए वे कहती हैं :—

"मैं नीर भरी दुख की बदली।
× × ×
विस्तृत नभ का कोना-कोना,
मेरा न कभी अपना होता।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।।"

• उनकी यह करुणा बौद्ध-दर्शन की प्रभविष्णुता पाकर भव्यतर हो गई है।

प्रियतम की चितवन ने पीड़ा का जो साम्राज्य कवयित्री को दिया है, उसे उसने अपनी आत्मा में बसा लिया है अथवा यों कहें कि पीड़ा उनके प्रियतम का ही प्रति रूप हो गई है। इसीलिए वे प्रियतम को पीड़ा में और प्रियतम में पीड़ा को खोजती हैं—"तुम को पीड़ा में ढूँढ़ा, तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।" जब तक पीड़ा है, तब तक ही प्रियतम के पथ को आलोकित करता हुआ उसका जीवन-दीप मधुर-मधुर जलता है। अतृप्ति, अभाव, वेदना और अवसाद ही तो प्रियतम की ओर निरन्तर प्रेरित करते हैं। अतः ये जीवन के वरदान हैं। तभी कवयित्री को ये प्रिय हैं। वे इनमें ही आनन्द का स्रोत पाती हैं। इसी कारण उन्हें अपनी साधना की परिणति के रूप में अमरों का लोक भी नहीं चाहिए। तभी वे कहती हैं :—

"ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद।
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद।।
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार।।

क्योंकि उसमें जीवन निष्क्रिय, पंगु या जड़ बन जायेगा तथा प्रियतम की प्रतीक्षा में जो आनन्द है, उसके विरह की जलन में जो मिठास है, उसके मिलन की ललक में जो उत्साह है, वह समाप्त हो जायगा तथा जीवन भावहीन एवं निस्सार बन जायेगा। इसी से उनका कहना है—"मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।" उन्हें विरह में ही मिलन की मधुमय कल्पनाएँ सूझती हैं, जिनमें विभोर होती हुई वे एकाकी और अपरिचित पंथ पर भी 'मोतियों की हाट' और 'चिनगारियों का मेला" लगाती हुई चल सकती हैं। यदि इस जटिल पंथ में जीवन-दीप बुझ भी जाय, तो भी उन्हें चिन्ता नहीं है। वे कहती हैं :—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा।।"

जिस पीड़ा के राज्य को प्रकाशित करने की उन्हें चिन्ता है, उसकी और किसे होगी, वे अपने 'सूनेपन की मतवाली रानी' हैं तथा 'प्राणों का दीप जलाकर दीवाली' करती रहती हैं। इसीलिए यह सूनापन, यह विरह, यह अतृप्ति और यह अभाव उन्हें प्रिय है। वे इस करुणा, अभाव में ही चिरतृप्ति देखती हैं, जीवन का लघु क्षण उन्हें निर्वाण के शत-शत वरदान सा प्रतीत होता है और वेदना के क्रम में वे हृदय में प्रियतम का मधुर आभास पाती हैं। यह विरह की पीड़ा होती है, जो उन्हें मुसकराते हुए संकेत भरे नभ में प्रियतम के आगमन का आभास देती है, यह विरह की पीड़ा ही तो उनके हृदय में यह कामना जगाती है :—

"जो तुम आ जाते एक बार।
कितना करुणा, कितने संदेश,
पथ में बिछ जाते बन पराग।
गीता प्राणों का तार-तार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुराग भरा उन्माद राग ।
आँसू लेते वे पद परवार ।"

इसीलिए उन्हें विरह और उसकी पीड़ा प्रिय है। यही उनका जीवन है और यही उनका प्रिय है। इस प्रकार उनके गीतों में उनका पीड़ा मय 'आत्म' भली भाँति व्यक्त हुआ है।

रहस्यवाद की सरणियों पर अग्रसर होते हुए भी कवयित्री के गीत उनके 'आत्म-भाव' का ही प्रतिबिम्ब है। प्रियतम के साथ अंश और अंशी का सम्बन्ध स्थापित करते हुए जब वे उन्हें 'बिधु का बिम्ब' और स्वयं को 'मुग्धारश्मि अजान' कहती हैं अथवा 'आत्म' की सर्वत्र व्याप्ति देखती हुई जब वे 'पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी, अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ' की घोषणा करती हैं, तब उनके गीत उनकी साधिका-अवस्था को अभिव्यक्ति देते हैं। अपने हृदय में ही प्रियतम की ज्योति का आभास पाकर जब वे कहती हैं :—

"तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर-राग तू मैं स्वर-संगम।
तू असीम में सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय।'
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या ?'

तो हम उन्हें प्रियतम में एकाकार होती हुई पाते हैं। 'आत्म' में ही 'परमात्म' की यह अनुभूति कवयित्री के अन्तस के चरम विकास की अभिव्यक्ति है। उनके गीतों में सर्वत्र उनका अन्तर्जगत छलकता दृष्टिगत होता है। उन्होंने स्वयं कहा है—"बाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय, पराजय सब मूल्यवान हैं, पर अन्तर्जगत् की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नहीं।"[1] अपने इसी अन्तर्जगत को उन्होंने अपने गीतों में वाणी प्रदान की है।

गेयता या संगीतात्मकता—गीतिकाव्य का हृदय वीणा से स्वाभाविक उद्रेक होता है। अतः गेयता उसका अनिवार्य तत्व है। यह आवश्यक नहीं कि उसमें शास्त्रीय संगीत की सैद्धान्तिकता का आग्रह हो। हृदय के तारों की स्वाभाविक झंकृति ही ऐसा स्वर-विधान करती है कि वह स्वतः ही गेय हो जाता है। काव्य में भाव-व्यंजना के लिए शब्द-साधना अपेक्षित है। अर्थ-गर्भित शब्द ही भाव-विधान में समर्थ होता है, किन्तु गीतिकाव्य में शब्द-साधना के साथ-साथ स्वर-साधना भी अनिवार्य है। संगीत में केवल स्वर के आरोह-अवरोह द्वारा भावानुभूति कराई जा सकती है। महादेवी के गीतिकाव्य की यह विशेषता है कि उसमें काव्य का अर्थ-गाम्भीर्य और संगीत का स्वर माधुर्य सन्तुलित रूप से समन्वित है। भावना का तीव्रवेग होने के कारण उनके गीतों में जहाँ साहित्यिक सौष्ठव है, वहाँ संगीत का तरल प्रवाह भी है। महादेवीजी ने स्वयं कहा है—"काव्य का वही अंश गेय कहा जायेगा, जो अनुभूति की तीव्रता को संगीत के लिए उपयुक्त शब्द-संयोजन द्वारा व्यक्त कर सके।"[1] उपयुक्त शब्द-संयोजन से तात्पर्य ध्वन्यात्मकता में गेय होने से ही है। महादेवीजी का ही ऐसा व्यक्तित्व है, जिसमें कवि, चित्रकार और संगीतज्ञ का एक साथ संगम है। उन्होंने शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होते हुए भी अपने गीतों में संगीत की अपेक्षा काव्य को ही प्रधानता दी है और उनका काव्य विशिष्ट शब्द-संयोजन के कारण गेय है। भावों के अनुकूल गीतों की गति और उनका आरोह-अवरोह उन्हें संगीतात्मकता प्रदान करता है। यथा—"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।

युग-युग, प्रतिदिन, प्रति क्षण, प्रति पल प्रियतम का पथ आलोकित कर यहाँ शब्दों की आवृत्ति और लघु वर्णों के प्रयोग ने काल की लघुता को क्रमशः युग-युग तक विस्तृत करते हुये गीत को गति प्रदान की है। सङ्गीत में प्रायः 'टेक' के अनन्तर 'अन्तरा' होता है, जो क्रमशः गति को आरोह प्रदान करता है। 'टेक' की आवृत्ति सङ्गीत को मधुर बनाती है। महादेवी के अनेक गीतों में यह विशेषता दृष्टिगत होती है :—

[1] दीपशिखा-चिन्तन के कुछ क्षण, पृ० ७

[1] संधिनी-चिन्तन के क्षण, पृ० २३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या पूजा क्या अर्चन रे ।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे"

इस गीत में 'रे' की प्रत्येक पंक्ति में आवृत्ति ने संगीत का माधुर्य भर दिया है । उनके 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ','शलभ में शापमय वर हूँ,किसी का दीप निष्ठुर हूँ', 'मुस्काता संकेतभरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं', 'जो तुम आ जाते एक बार' इत्यादि अनेक गीत गायकों की वाणी का शृङ्गार हैं - काव्य और संगीत का ऐसा माधुर्य आधुनिक कवियों में निराला के अतिरिक्त किसी में नहीं है । डा० विनयमोहन शर्मा का तो यह मत है—"प्रसाद के गीतों में भाव-प्रवणता, निराला के गीतों में चिन्तन और महादेवी के गीतों में दोनों का समावेश है।"[1]

भावाकुलता—गीतिकाव्य, तीव्र भावावेग की स्वाभाविक परिणति है । वह हृदय से निकलकर हृदय को प्रभावित करती है । अतएव चिन्तन-मनन, इतिवृत्त एवं सिद्धान्त-निरूपण के लिए उसमें स्थान नहीं है । उसमें भावना का अविरल प्रवाह अपेक्षित है । डा० नगेन्द्र कहते हैं—"जब कभी आत्मा भाव की अग्नि से पिघलकर बहने को हुई है, उसके ताप से वाणी भी द्रवीभूत हो गई है और भाव ने गीत का रूप धारण कर लिया है । अतएव जब-जब हमारे जीवन में भावना का प्राधान्य हुआ है, जब-जब हमारा जीवन-दर्शन व्यक्तिपरक अथवा भावपरक हुआ है, काव्य में गीति का महत्त्व बढ़ गया है।"[2] महादेवी का समस्त काव्य ही व्यक्तिपरक अथवा भावपरक है, इसी कारण उनकी अभिव्यक्ति गीतिमय हुई है । फिर भी महादेवी के गीतों की भाव-गरिमा के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । एक ओर श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त कहते हैं—"महादेवी की कविता भावना-प्रधान और कल्पना प्रधान है । कोई निर्मम बुद्धिवाद इस काव्य की पट-भूमि नहीं।"[1] दूसरी ओर श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' का कथन है, "कवयित्री की दृष्टि केवल कला की चमत्कार सृष्टि पर ही शेष है, भावना पीछे ही कहीं छूट गई । गीतिकार की रचना में शासन भाव का होना चाहिए, बुद्धि का नहीं।"[2] इसका तात्पर्य यह है कि प्रवासीजी महादेवी के अप्रस्तुत-विधान को बुद्धि-व्यायाम मानते हैं, स्वाभाविक नहीं । वस्तुतः यह प्रवासीजी की भ्रान्ति है । वे महादेवी के अप्रस्तुत विधान के कलापूर्ण चमत्कार से ही इतने आक्रान्त हो गये हैं कि उसमें निहित भावधारा में अवगाहन करने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिला है । जिस कवयित्री के काव्य में उस करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित है, जिसके सम्बन्ध में भवभूति ने यहाँ तक कह दिया है 'एकोरसः करुण एव' वहाँ भावना का अभाव देखना कुछ समझ में नहीं आता । महादेवीजी की तो यह विशेषता है कि उनका भाव कला-सौन्दर्य से और भी निखर उठा है । यदि कला के कारण भावोन्मेष में सन्देह किया जाये, तो तुलसी की 'विनय पत्रिका' के अनेक भावपूर्ण सुन्दर पद गीतिकाव्य से बहिष्कृत करने पड़ेंगे । महादेवी और तुलसी में अन्तर केवल इतना है कि महादेवी का प्रियतम अव्यक्त है और तुलसी के आराध्य व्यक्त राम, किन्तु जो निष्ठा, जो आत्म समर्पण तुलसी में है वही महादेवी में भी है । इसीलिए भावना का जैसा तीव्र वेग तुलसी में है, वैसा ही महादेवी में भी है । डा० सच्चिदानन्द तिवारी ने ठीक ही लिखा है—"जिसमें अपने परमप्रिया के प्रति जितनी ही निष्ठा है, उसकी भावना उतनी ही बलवती है और चूँकि महादेवी ने अपने सम्पूर्ण कवित्व का उपयोग अपने रहस्यमय आराध्य की अर्चना में ही कर दिया है, इसलिए उनके समान भावावेश अन्यत्र नहीं उपलब्ध होता।"[3] श्रीप्रवासीजी ने महादेवी के दो गीतों के

[1] महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवन दर्शन (सं० शचीरानी गुर्टू), पृ० ६०

[2] आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ७४–७५

[1] महादेवी-काव्यकला और जीवन-दर्शन, पृ० ७३

[2] गीति काव्य का विकास, पृ० ४८२

[3] आधुनिक हिन्दी कविता में गीति-तत्व, पृ० २५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशों को लेकर अपने मत की पुष्टि की है। एक पद यह है—

"प्रिय ! सान्ध्य-गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन।।"

इस सम्बन्ध में प्रवासीजी की व्याख्या है—"ये अप्रस्तुत काफी मानसिक या बौद्धिक व्यायाम की अपेक्षा रखते हैं। यहाँ अन्तिम पंक्ति में आये प्रस्तुत और अप्रस्तुत पर थोड़ा विचार कीजिए। काया है प्रस्तुत और छाया है अप्रस्तुत। साधारण धर्म कहा गया है 'वीतरागता' को। वीतराग धर्म है मन का, काया का नहीं। काया में राग कहाँ ! वह तो मन में होता है। इसी प्रकार प्रथम चरण में अप्रस्तुत क्षितिज का साधारण धर्म धुँधलापन अवश्य है, किंतु विराग में धुँधलापन कहाँ ? वह तो स्वच्छ, निर्मल और निर्लेप होता है।"[१] हमारा निवेदन है कि कवयित्री ने अपने जीवन को सान्ध्य गगन कहा है, जिसमें एक ओर वातावरण की धूमिलता, छाया का अभाव या उपेक्षा होती है, दूसरी ओर अरुणिमा और बादलों की रंगीनी भी है। कवयित्री का जीवन भी ठीक वैसा ही है। छाया के प्रति जैसे किसी का राग नहीं होता, उसके प्रति मन वीतराग होता है उसी प्रकार कवयित्री को काया से मोह नहीं है, वह अपने सौभाग्य की अरुणिमा और स्मृतियों से रञ्जित कल्पनाओं में मग्न है। उसका विराग अभी वास्तव में धुँधला या अपूर्ण ही है। यदि वह धुँधला नहीं होता, तो मिलन की ज्योत्स्ना विकीर्ण हो जाती, फिर जीवन सान्ध्य गगन नहीं रहता। कवयित्री ने अपने जीवन की बहिर्गत उदासीनता और अन्तर के प्रेम-जनित उल्लास की एक साथ व्यंजना की है। भाव को इस अप्रस्तुत योजना से उसने मूर्त्त कर दिया है। अतएव प्रवासीजी को अपनी पूर्व स्वीकृति को ही मान्यता देनी चाहिए—"महादेवीजी की यह विशेषता है कि भाव-लीनता के क्षणों से भी कला उनका साथ नहीं छोड़ती।"[१]

उनके रहस्यवादी गीत जिनमें चिन्तन भी है, भाव-भूमि पर ही आधारित हैं। उनका चिन्तन भावाश्रित है। अव्यक्त प्रियतम बुद्धि का विषय न होकर भाव का आधार बन गया है। हृदय में स्थित प्रियतम भी पूजा का पात्र बन गया तथा विभिन्न अनुभाव पूजा के उपकरण हैं, जो भावना की तीव्रता को प्रमाणित करते हैं। उनमें निहित भावना का स्वाभाविक उद्रेक सामान्य धरातल पर आकर ही हुआ है। स्वयं महादेवीजी कहती हैं : "मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।"[२] जिसका तात्पर्य यह है कि उनका प्रियतम, जो उनकी भावना का सम्बल है, अमूर्त अवश्य है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति सामान्य ही है, जिसमें प्रेषणीयता का गुण है।

भावान्वित—गीतिकाव्य भाव की प्रवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है। उसमें मंथरता नहीं, उत्तेजना होती है। अतएव गीत में एक भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है। प्रायः मूल-भाव प्रथम पंक्ति में केन्द्रित होता है तथा शेष गीत में उसी का पल्लवन किया जाता है। भाव की एक-निष्ठता, केन्द्रीयता और संकुचित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बनाती है।

महादेवी के गीतों में भी भावान्विति का अभाव नहीं है। उनके गीतों में करुणा, वेदना, आशा, जिज्ञासा, आत्मनिवेदन जो भी भाव आया है, समग्र गीत में उसी का पल्लवन हुआ है। लेकिन डा० विनयमोहन शर्मा का मत है—"महादेवीजी के गीतों में भावों की विच्छिन्नता पाई जाती है। उनका एक गीत एक ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होता। उसमें कई भाव झलक उठते हैं।"[३] शर्माजी का यह

१ गीति-काव्य का विकास, पृ० ४८२-८३

१ गीतिकाव्य का विकास, पृ० ४८०
२ दीपशिखा—चिन्तन के कुछ क्षण, पृ० ५७।
३ महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवन दर्शन, पृ० ६०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन अंशतः सत्य है। किन्तु जो अनेक भाव आते भी हैं, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता, अपितु वे मूल केन्द्रीय भाव के ही पूरक होते हैं तथा उनमें पारस्परिक शृङ्खला रहती है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' का मत इस सम्बन्ध में ठीक है—"उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी भाव-धारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमें ज्वार-भाटे के कारण तरंगों का आवर्तन-प्रत्यावर्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखने वाले दोनों तट प्रायः सुरक्षित रहे हैं।[1] अनेक भाव उन्हीं लहरों की भाँति हैं, जो जल के ही विभिन्न रूप हैं, किन्तु वास्तव में है वह जल ही। इसी प्रकार उनके एक ही गीत में बिखरे हुए अनेक भाव के ही विभिन्न रूप हैं, उससे भिन्न नहीं। प्रियतम के प्रेम पर अग्रसर होती हुई कवयित्री कहती हैं—"पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।" इस 'टेक' में साधक की दृढ़ता और एक-निष्ठता व्यञ्जित होती है तथा भावी आशंकाओं की व्यञ्जना हुई है। प्रथम 'अन्तरा' में पथ के गहन अन्धकार, द्वितीय में शूल, तृतीय में पथ की दीर्घता और चतुर्थ में भय और प्रलोभन का वर्णन करते हुए सर्वत्र आत्म-विश्वास तथा साहस को अभिव्यञ्जित किया गया है। यही गीत का मूल भाव है, जो विभिन्न रूप में पल्लवित हुआ है। इससे स्पष्ट है कि उनके गीतों में भावान्विति भी है।

संक्षिप्तता—भावान्विति, प्रभाव की तीव्रता तथा गेयता के लिए गीत की संक्षिप्तता वांछनीय है। संक्षिप्तता से गीतों में निहित अनुभूति अखन्ड एवं प्रभावपूर्ण रहती है। वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है। विस्तार से अनुभूति की अखण्डता में व्याघात उपस्थित हो जाता है। भावना के विशृङ्खल होने, आवेग के क्षीण होने तथा गेयता में शिथिलता आने की आशंका हो जाती है। इसी कारण संक्षिप्तता अपेक्षित है।

[1] वही, पृ० ४६।

महादेवी का गीतिकाव्य इस दृष्टि से पूर्णतया सफल है। उनके गीत अधिक से अधिक छः पदों वाले हैं, किन्तु ऐसे गीतों की संख्या भी कम ही है। अधिकांश गीत चार पदों में ही समाप्त हो जाते हैं। एक-दो लम्बे गीत भी हैं, किन्तु वे भी अपनी मधुरता के कारण गेय हैं और उनमें भी प्रभावान्विति है। जहाँ 'टेक' नहीं है, वे गीत की अपेक्षा काव्य अधिक हैं। पर ऐसे गीतों की संख्या नगण्य जैसी हो है।

भावानुकूल भाषा—गीति काव्य का सम्बन्ध स्वर-भावना से होने के कारण भाषा में भावानुकूलता एवं मार्दव अपेक्षित है। महादेवी के गीतों में कोमल भावों की व्यञ्जना हुई है, अतः वे माधुर्य गुणोपेत हैं। भाव की गति के अनुकूल शब्द भी गतिशील दिखाई पड़ते हैं :—

"सिहर सिहर आता सरिता उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा पर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर
सुन प्रिय की पद चाप हो गई
पुलकित यह अवनी।"

शब्दों की पुनरावृत्ति से प्रिय के आगमन के उल्लास की मधुर व्यञ्जना की गई है। ह्रस्व वर्णों के प्रयोग ने माधुर्य को द्विगुणित कर दिया है। इसी भाँति जहाँ साहस और आत्म-विश्वास है, वहाँ भाषा में भी ओज दिखाई पड़ता है :—

"दृढ़व्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।
बाँध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।।"

यहाँ संयुक्त वर्णों के प्रयोग से भावानुकूल ओज की सृष्टि की गई है।

महादेवी की भाषा की यह विशेषता है कि वह संस्कृत की तत्सम शब्दावली से पूर्ण होते हुए भी मधुर, तरल, स्वाभाविक, प्रवाहमयी एवं लयानुकूल है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य गीति-तत्व से परिपूर्ण है तथा उसमें एक प्रौढ़ कवयित्री तथा मधुर गीतिकार के दर्शन एक साथ होते हैं।

—नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर-१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंचल और नव स्वच्छन्दतावाद

डा० नरेन्द्रदेव वर्मा

छायावादी काव्य के अन्तराल में यद्यपि स्वच्छन्दतावाद की कुछ प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं, किन्तु परवर्ती काल की कविताओं में गतानुगतिकता और विजड़न का समारम्भ भी होने लगा था। छायावाद का आरम्भ बन्धनमुक्ति की कामना से हुआ था। नियमों से मुक्त होने की प्रवृत्ति छायावाद का प्रमुख काव्य सिद्धान्त बन गयी थी। वस्तुत: जब इस सिद्धांत की सक्रियता समाप्त हो जाती है तब स्वच्छन्दतावादी चेतना का अवसान हो जाता है। छायावाद के उत्तरार्द्ध में नियमों के प्रति विद्रोह की भावना शिथिल होती जा रही थी और छायावादी काव्य स्वत: आरोपित बन्धनों में जकड़ता चला जा रहा था। ऐसे समय में छायावादी काव्य के नियमों का तिरस्कार करते हुए और छायावादी वायवीयता एवं अलंकृति के प्रति अपनी प्रभूत अरुचि का प्रदर्शन करते हुए हिन्दी के कतिपय कवियों का अवतरण होता है। इन कवियों में स्वच्छन्दतावादी चेतना की तीव्रता की दृष्टि से अञ्चल का कृतित्व उल्लेखनीय है।

छायावाद के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावाद के कुछ नियमों का ही अनुसरण किया गया था। वस्तुत: प्रत्येक युग अपनी अभिलाषाओं, दार्शनिक संस्कारों और युगीन प्रतिक्रियाओं के अनुरूप काव्य-सृष्टि करता है। छायावादी युग नव जागरण की चेतना से युक्त था। नवजागरण कालीन संस्कारों ने उसे जहाँ एक ओर आदर्शोन्मुख रूप प्रदान किया था, वहाँ दूसरी ओर वह मानवीय नियति की दु:खात्मकता, निराशा, गत्यवरोध और विजड़न की मन:स्थितियों को देखने की दृष्टि प्रदान नहीं कर सका। छायावादी काव्य नवजागरण कालीन बौद्धिकता के बोझ से दब गया और वह अपनी दार्शनिकता के लबादे को उतार कर मानव जीवन के सत्यों को निरपेक्ष दृष्टि से नहीं देख सका। फलत: छायावादी काव्य लोकानुभूति और जन-संवेदन के तत्वों से दूर होता गया और जन-जीवन से उसका सम्बन्ध नष्ट हो गया।

साहित्य के इतिहास में जब कभी काव्य और जीवन के बीच अन्तराल की सृष्टि हुई है, तभी उसे पाटने के लिये कवियों की वाग्धारा नये स्तरों और जीवन, संवेदनों की नयी भंगिमाओं का आविष्कार करने में व्यस्त हो गयी है। छायावादी काव्य की वायवीयता और अशरीरी रूपविधानों को नकारते हुए अनुभूतियों की मांसलता और दैहिक संवेदनों का आग्रह करने वाली काव्यधारा का पुरस्करण भी हुआ, जिसमें रूढ़िमुक्ति की स्वच्छन्दतावादी चेतना के साथ समसामयिक जीवन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को समेटने का भाव भी भरा हुआ था। इस धारा के पुरस्कर्ता छायावाद की काल्पनिक मन:तुष्टि से तोष-लाभ नहीं कर सके थे। इनकी जिजीविषा इतनी तीव्र थी कि उसे अरूप और अशरीरी सौन्दर्य के खिलौने से बहकाया नहीं जा सकता था। ये कवि दार्शनिक नहीं थे और जीवन की कठिनाइयों को भूलकर दिवास्वप्न देखने के आदी नहीं थे। वे जीवन को पूरी तरह से जीना चाहते थे और उसके सभी स्तरों को छूना चाहते थे। वे प्रत्यक्ष की अपेक्षा अपरोक्ष, पारलौकिकता के स्थान पर ऐहिकता और वायवीयता के स्थान पर ठोस यथार्थ का आग्रह करते हुए काव्य-सृष्टि करने लगे। अंचल के काव्य में जीवन का यह नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण, इच्छाओं की काल्पनिक तुष्टि प्रदान करने के स्थान पर उसकी ज्वाला में दहकते रहने का मोह सर्वाधिक है। वे अवास्तविक सौन्दर्य की जगह ठोस, इन्द्रियभूत शरीरी, सौन्दर्य का रसपान करना चाहते हैं। इन नये कवियों की काव्यप्रवृत्तियों को व्यक्तिवादी, अहंवादी, गीतकार इत्यादि अभिधाओं से निरूपित किया गया है। किन्तु सर्वतोमुखी कान्ति के अभिलाषी कवियों के लिये ये अभिधायें अपर्याप्त हैं। वस्तुतः उनकी क्रान्तधर्मा चेतना इन संज्ञाओ की सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। कायावादोत्तर काल के इन विद्रोही कवियों की चेतना का रूपायन केवल 'नवस्वछन्दतावाद' की अभिधा से ही सार्थक हो सकता है और अचल के काव्य में नवस्वछन्दतावादी चेतना का परिपाक सम्भवतः सर्वाधिक प्रकृत रूप में हुआ है।

अंचल नवस्वच्छन्दतावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। यदाकदा सरलीकरण के मोह से अंचल को भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा और हरिवंशराय बच्चन के साथ रखा जाता है, किन्तु अंचल की काव्य-चेतना इन कवियों से पृथक है। भगवतीचरण वर्मा मूलतः निराशावादी दृष्टि के प्रवर्तक कवि हैं। जागतिक वैषम्य और हताशा की चेतना को उन्होंने इतनी आत्यंतिकता के साथ आत्मसात किया है कि उनकी दृष्टि लौकिक, संवेदनों के सौन्दर्यमूलक पक्ष की ओर नहीं जा सकी है। बच्चन के काव्य में ठोसधर्मी यथार्थ की प्रतिष्ठा के स्थान पर स्वप्नजीवी अभिलाषा की ही प्रधानता है। यद्यपि ये दोनों तत्त्व यथार्थ की प्रतिक्रिया के स्थान पर स्वप्नजीवी अभिलाषा की ही प्रधानता है। यद्यपि ये दोनों तत्त्व यथार्थ की क्रिया प्रतिक्रिया के परिणाम हैं, किन्तु ये ही यथार्थ के एकमात्र परिचायक नहीं हैं। अंचल के काव्य में अतिवादिता से बचने का प्रयास निहित है। वे निराशा को ही जीवन का दर्शन नहीं मानते और केवल विजड़न की अनुभूतियों का आख्यान नहीं करते। उनके काव्य में अनुभूति की प्रायः सभी भंगिमाओं का दिग्दर्शन निहित है।

अंचल की काव्य-रचना छायावाद के वैभव-युग से प्रारम्भ होती है। छायावादी सौन्दर्य संवेदना के प्रति आग्रह का भाव उनके आरम्भिक काव्य में विद्यमान हैं किन्तु वे स्वप्न-सौन्दर्य के अभिलाषी कवि नहीं हैं। उनका काव्य यद्यपि सौन्दर्याराधन का काव्य है पर यह सौन्दर्य दिव्य या परोक्षानुभूति की गरिमा से भारान्वित नहीं हुआ है। वे प्रकृत, मांसल और ठोस सौन्दर्य के पुजारी हैं जिनमें सौन्दर्य की वायवीयता के स्थान पर मांसलता का और आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिकता का संस्पर्श अधिक है। छायावाद जहाँ आध्यात्मिकता से ग्रस्त दीखता है वहाँ अंचल की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति उसका निराकरण कर इन्द्रियभूत सौन्दर्य की स्थापना करती है और उसे स्मृति-सन्दर्भ का विषय बनाकर उसके प्रति अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करती है।

अँचल की सौन्दर्यानुभूति के कतिपय स्तर द्रष्टव्य है। पहले सोपान पर कवि की युवा लालसाएँ सौंदर्य की आराधना करती है। यहाँ वे उद्दाम शृङ्गार की भावनाओं को उसके प्रकृत रूप में अभिव्यक्त करते हैं। छायावाद के परवर्ती काल में जहाँ व्यक्ति-मन की प्रगल्भ शृङ्गारिकता को धार्मिक या आध्यात्मिक व्यञ्जना से युक्त कर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया था, वहाँ अँचल का काव्य शृङ्गारिकता की मनःस्थिति को यथावत रूप में प्रकट करने का प्रयास करता है। आध्यात्मिकता और पारलौकिक सौन्दर्य-आराधना के युग में अकुण्ठित भाव से लौकिक एवं मांसल सौन्दर्य की अनुभूतियों को प्रकट करना साहस की अपेक्षा रखता है। साहसिकता की यह प्रवृत्ति अँचल के काव्य में प्रारम्भ से ही दिखाई देती है। छायावादी संस्कारों के बीच जीते हुए भी अपनी प्रकृत अनुभूतियों के स्वच्छल-निवेदन के मार्ग पर आने वाली समस्त बाधाओं को अँचल नकारते हैं। उन्हें वादी कविता लिखने का मोह नहीं है। वे छायावादी संस्कारों के बीच रहकर भी अपनी विशिष्टता बनाये रखते है। उनकी दृष्टि में हृदगत अनुभूतियों का प्रकाशन ही प्रमुख है और वे उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदात्तीकरण कर संतत्व की प्राप्ति का प्रयास नहीं करते।

यही कारण है कि छायावादी पीठिका पर अँचल का काव्य एक ताजगी का आभास देता है। यह ताजगी छायावादी चेतना से मुक्त होने का पुरस्कार है। कविवर अँचल की ताजगी तत्कालीन छायावादी संस्कारों वाले पाठकों और समीक्षकों को अरुचिकर लगी होगी क्योंकि उसमें स्वप्निलता के स्थान पर स्मृति-सन्दर्भ और अशरीरी सौन्दर्य के स्थान पर मांसल आकर्षण की प्रतिष्ठा थी। इसके अतिरिक्त छायावादोत्तर काव्य की परिणति अनेकानेक वादों के रूप में हो रही थी किन्तु अंचल इन समस्त वादों के मोह को अपने से अलग रखने में सचेष्ट थे। वादों के भ्रमजाल से स्वयं को बचाते हुए निरन्तर गीत-रचना में निमग्न रहना उनकी मौलिकता का परिचायक है। परम्परित भाव बोधों के परे जाकर नवीन भाव-बोध के मार्ग को प्रशस्त करना स्वच्छन्दतावादी चेतना का ही परिचायक है। इसीलिए मैंने अँचल को नवस्वच्छन्दतावाद का प्रतिष्ठापक कवि माना है।

अँचल के काव्य में नवस्वच्छन्दतावादी चेतना की अनेक विधाओं का विकास हुआ है। मोह भंग, स्मृति-सन्दर्भ, यौवन सुलभ लालसाएँ, निस्सारता और ईश्वर के प्रति विद्रोह के नवस्वच्छन्दतावादी स्तर क्रमिक रूप से अँचल के काव्य में प्रतिफलित हुए हैं। मोहभंग आधुनिक मनःस्थिति का सशक्त प्रतीक है यह संक्रमणशील चेतना का परिचायक है। कवि इस मनःस्थिति में डूबकर विपण्ण नहीं बनता, प्रत्युत वह इसके प्रति बड़ी युयुत्स प्रतिक्रिया करता है। मोह-भंग की अवस्था निगूढ़ हताशा की दशा होती है। जहाँ कवि के स्वप्न धूलि-धूसरित हो उठते हैं और वह यौवन के इन्द्रधनुषी उपवन से यथार्थ संघर्षों के वात्याचक्रों से परिपूर्ण मरुभूमि में ढकेल दिया जाता है। ऐसी स्थिति में कवि को यह अनुभूति होती है कि उसका जीवन, उसका यौवन सब कुछ व्यर्थ चला गया है। वह इस घुटन भरे संसार में एकाकी है। सभी सङ्गी-साथी बिछुड़ गये हैं। कवि अकेलेपन की अनुभूति से व्याकुल हो जाता है। मोह भंग की मनःस्थिति से उपजी भावनाओं में जहाँ वर्तमान की एक तान नीरसता का आख्यान है, वहाँ अतृप्ति का कोलाहल भी सुनाई पड़ता है:—

"वासना बस कुछ न पूछो, है विरस निष्फल जवानी,
प्रखर अनियंत्रित महाविच्चेद की जलती निशानी।
ले प्रलय-सी एक आकांक्षा विपुल बरबाद यौवन—
मिट रहा अतृप्त वंचित लख न पाई तुम अचेतन।"

मोह भङ्ग की यही मनःस्थिति अँचल के परवर्ती काव्य में अधिक तीव्रता के साथ व्यक्त हुई है। वह शारदीया सन्ध्या को दिवा की मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए देखता है। वह इस संध्या को कुआंरी, ऊसरी जर्जरित, कृश और रोगिणी के समान क्लान्त और विवर्ण पाता है। जिस सन्ध्या का सौन्दर्य-सम्भार पहले कवि—मन के सुषुप्त यौवन को झनझना' देता था वही अब निस्सार और मृत प्रतीत होता है। यह संक्रमणशीलता कवि को प्रत्यावर्तित करती है और वह स्मृतियों के पुष्पविकचित उपवन में विगत स्वर्णिम दृश्यों का अवलोकन कर तोष-लाभ करता है।

स्मृति-मोह कवि को वायवीय और आध्यात्मिक सौन्दर्य से संवलित अनुभूतियाँ प्रदान नहीं करता। वह किसी रूढ़ि में बँधकर अपनी युवा-भावनाओं को उदात्तीकृत करने के फेर में नहीं पड़ता। यहाँ भी कवि की रक्त-मांस की गंध से सनी हुई अनुभूतियाँ हैं, किन्तु इस में कवि का असंयम दिखायी नहीं देता। वह विवेक को जागृत रखते हुए विगत और वर्तमान की तुलना करता है और वर्तमान दुरवस्था के प्रति गहरे निःश्वास लेता है:—

"कल तलक मैं था तुम्हारी मुग्ध साँसों से सटा
आज लगता है तुम्हारी धड़कनों से दूर हूँ,—
रूप में अपने मुझे कल तक जकड़ जाने दिया
देखने प्रतिक्षण दिया सपना मिलन की आस का,
थी न जीवन में तनिक पहचान भी जिस तृप्ति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर दिया उससे खला दामन हृदय की प्यास का,
गन्ध बाकी है अभी तक उसे जले मधुमास की
आज रोता है कफन तक उस मरे उल्लास का।"

जब कवि मोहभंग की मनःस्थिति से छूटने का प्रयास करता है तब उसे पुनः यौवन-सुलभ लालसाएँ मोह लेती हैं और वह फिर से प्रेम और प्रणय के गीत गाने लगता है। यहाँ मोह भंग की विजड़ित अवस्था की छाया तक बाकी नहीं है। यहाँ तो कवि निर्द्वन्द्व भाव से प्रणय-कामना और प्रेमानुभूति का प्रकाशन करता है। जिस प्रकार उसकी निराशा की अनुभूतियाँ तीखी हैं, उसी प्रकार यौवनजन्य उल्लास का भाव भी तीव्र और प्रखर है। मानो कवि आनन्द के कूलहीन पारावार में डूबने उतराने लगता है:—

"यह कैसा उल्लास कि करता है तन-मन प्रतिक्षण थर-थर,
यह कैसा उच्छवास-भरा अमराई का मर्मर,
यह कैसा अभिसार कि जिसके वरदानों का अन्त नहीं
यह कैसा आकाश कि जिसकी छबि का कहीं दिगन्त नहीं—"

पर केवल यौवन सुलभ कामनाएँ, प्रणय-राग ही आधुनिक जीवन के संकेतक भाव-चक्र नहीं है। आधुनिक जीवन में जो तलस्पर्शी टूटन है, विजड़न है और सर्वग्रासी नीरसता की कुहेलिका है। कवि अंचल का काव्य-क्षेत्र पर्याप्त विशद है तथा उसमें आधुनिक जीवन की समस्त मनःस्थितियों का संचयन करने का प्रयास किया है। कवि काव्य-रचना के इस चरण पर जीवन के अन्धकारमय पक्ष का उत्तोलन करता है। जीवन के मधुस्वप्न निरन्तर स्थिर नहीं होते, पूर्ति का क्षण चिरस्थायी नहीं होता, अतृप्ति के खारे जल का आस्वाद पुनः-पुनः करना पड़ता है। कवि अञ्चल गाता है—

"आयु का रथ गिर पड़ा मूर्छित समय की रेत पर
किन्तु इतनी दूर जाने किस तरह मैं आ गया,
बीतते दुःस्वप्न जैसी हर दिशा को चीरकर,
शून्य के इस गुंजलक का दंश मुझ पर छा गया,
घूमते शनि सा विवशता की नसों में फूटकर
मंत्रिता अनुभूति की सब कतरनें फैला गया।"

अंचल का काव्य मानवीय आस्था के धरातल पर आधारित है। 'लाल चूनर', 'वर्षान्त के बादल', 'विराम चिह्न' और 'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी' की कविताएँ आस्था के धरातल पर विकसित होती हैं। किन्तु कवि की आस्था को अन्धविश्वास नहीं कहा जा सकता। वह किसी ऐसे ईश्वर पर विश्वास नहीं करता जो सात आसमान के ऊपर बैठ कर निरकुंश रूप से संसार का शासन करता है—

"ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्मप्रवंचक एक,
जिसके प्राणोंमें विस्मृति है उर में सुखश्री का अतिरेक।
जिसका ले ले नाम युगों में माँस लुटाते तुम रोये
किन्तु न चेता जो निशि-निशि भर जब न क्षुधातर तुम सोये
आज अस्त हो जाय वही अभिशाप ग्रस्त रौरव पोषक,
अरे, वही दुर्दान्त महाउन्मत्त हड्डियों का शोषक।"

कवि की यह ईश्वर विषयक धारणा मार्क्सवादी प्रभाव की व्यञ्जना करती है, किन्तु कवि शीघ्र ही इस प्रभाव से मुक्त हो गया। फलतः उसकी आध्यात्मिकता अधिक मानवीय धरातल प्राप्त कर सकी है। परवर्ती कविताओं में इसी आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं।

अंचल बहुधा व्यक्तिवादी कवि कहा जाता है। किन्तु उसका व्यक्तिवाद अहं रती कवियों का सा व्यक्तिगत नहीं है। उसका व्यक्तिवाद उसे अहं की सीपी में छिप बैठने का आग्रह नहीं करता। वह अपेक्षाकृत व्यापक कोटि का है। उन्हें व्यक्तिवादी केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि उन्होंने मानवीय भावों को अधिक निकटता से देखा है और उनकी समीपी अभिव्यक्ति की है। वस्तुतः वे हिन्दी कविता में नव स्वच्छन्दतावादी चेतना के उन्नायक कवि हैं।

—राजकीय विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर, (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी-उर्दू कविता में स्वाधीनता की आकांक्षा

डा० सुधश

सन् १८७० के आसपास हिन्दी तथा उर्दू काव्य में नव जागरण की लहर उठी। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उर्दू में अल्ताफहुसेन हाली व मुहम्मद हुसेन 'आजाद' इस जागरण के अग्रदूत थे। तत्कालीन राजनीतिक जागरण की अभिव्यक्ति हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं के साहित्य में हुई, किन्तु वह राजनीतिक चेतना बड़ी धूमिल थी। उसमें देश की पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा का स्वर व्याप्त नहीं था, केवल राजनीतिक व सामाजिक सुधारों की मांग मुखरित हुई थी। अखिल भारतीय कांग्रेस के सामने भी उस समय देश की स्वाधीनता की कोई स्पष्ट कल्पना नहीं थी। और मुस्लिम लीग का तो तब जन्म भी नहीं हुआ था।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब राजनीतिक आन्दोलनों में तीव्रता आई (विशेषत; बंगाल विभाजन के समय) तब अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने की आकांक्षा प्रतिध्वनित होने लगी। प्रथम विश्वयुद्ध में भारत को कठपुतली बनाए जाने और उसके परिणामों की प्रतिक्रिया यह हुई कि दिनोंदिन स्वतन्त्रता की आवश्यकता स्पष्ट होती गई। इस लेख में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों की हिन्दी-उर्दू कविता में व्यक्त स्वाधीन चेतना का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है।

इस युग में हिन्दी तथा उर्दू कवियों ने देश की स्वतन्त्रता को एक अनिवार्यता समझा। रामनरेश त्रिपाठी का विचार है—

इस कुतन्त्र में तो दरिद्रता कभी न होगी दूर,
यह कर देगा शीघ्र जाति को निर्बल चकनाचूर।
जब तक इस कुतन्त्र बन्धन से होंगे हम न स्वतन्त्र,
तब तक सिद्ध न हो सकता है कोई हितकर मन्त्र॥[1]

इस्माइल मेरठी ने अपनी सादी भाषा में लिखा—

मिले खुश्क रोटी जो आज़ाद रहकर,
तो वो ख़फ़ो ज़िल्लत के हलवे से बेहतर।[2]

इक़बाल ने अपने दार्शनिक अन्दाज़ में कहा—

ए ताहरे लाहूती इस रिज्क से मौत अच्छी,
जिस रिज्क से आती हो परवाख़ में कोताही।[3]

'सुरूर' के उदास लहजे में स्वाधीनता की तड़प प्रगट हुई है:—

हम कफस में कब तलक बे बालो पर तड़पा करें,
टूट भी जाए तिलस्मे कैदे हस्ती टूट जा।[4]

चकबस्त की 'होम रूल' सम्बन्धी नज्मों में यही भावना व्याप्त है। उनकी 'लार्ड कर्जन से झपट' नामक विनोदपूर्ण कविता में अँग्रेजों के प्रतिनिधि लार्ड कर्जन से 'पिंजड़ा' खाली करने को कहा गया है।

स्वाधीनता की यह आकांक्षा कई प्रकार से प्रगट हुई। कुछ कवियों ने, जैसे महावीरप्रसाद द्विवेदी,

---

[1] त्रिपाठी : 'मिलन' पृ० ५१, पंचम संस्करण।

[2] 'हयातो कुल्लियाते इस्माइल' पृ० १०६, प्रथम संस्करण १९३९।

[3] इक़बात : 'बाले जबरील' पृ० ८३, संस्करण का उल्लेख नहीं। प्रका०—रफीक मशीन प्रेस, हैदराबाद (दक्षिण)

[4] 'जामे सुरूर'—पृ० १३१ इंडियन प्रेस, प्रयाग का संस्करण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैथिलीशरण गुप्त[1] ने भारत को स्वतन्त्र करने की अँग्रेजों से प्रार्थना की (शायद उन्हें अँग्रेजों की सज्जनता पर पूर्ण विश्वास था[2]), कुछ ने देवी देवताओं की दुहाई देकर स्वाधीनता का वरदान माँगा, परन्तु अधिकांश कवियों ने उद्बोधन का ढङ्ग अपनाया। यह उद्बोधन कहीं तो अहिंसात्मक आन्दोलन की प्रतिध्वनि लगता है, और कहीं बल-पौरुष और शक्ति के आह्वान का उद्घोष।

हिन्दी जगत् में यों तो गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जैसे ओजस्वी कवियों की कमी नहीं है, किन्तु द्विवेदीकालीन हिन्दी कविता पर गांधी के अहिंसावादी दर्शन की अधिक छाप है। कवियों ने आत्मबलिदान, साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक उदारता के लिए देशवासियों का आह्वान किया। यह गांधीजी की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। गांधीवाद की तात्विक व्याख्या चाहे हिन्दी कविता में उपलब्ध न हो,[3] पर अप्रत्यक्ष रूप से उसने हिन्दी कविता तथा साहित्य ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी प्रभावित किया। डा० नगेन्द्र ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि "हिन्दी का कदाचित ही कोई कवि-लेखक इससे अछूता रहा हो।"[4] एक अन्य आलोचक ने भी हिन्दी कविता पर गांधीजी की विचारधारा का प्रभाव विस्तारपूर्वक दिखाया है।[5]

उर्दू कविता में गांधीजी की विषयक कविताएँ तो अवश्य लिखी गई, पर गांधीवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। कुछ हिन्दी कवियों की भाँति अधिकांश उर्दू कवियों के उद्बोधन का स्वर बाहुबल से क्रान्ति कर देने की प्रेरणा देता है। इकबाल और जोश मलीहाबादी इन सब से आगे हैं। हिन्दी कवि सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी शक्ति का आह्वान किया है।

मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी ने लोगों को शक्तिशाली बनाने की प्रेरणा दी। त्रिपाठीजी ने 'मिलन', 'पथिक', और 'स्वप्न' काव्यों में वीराङ्गनाओं के शौर्य का वर्णन करके भारतीय नारियों को शक्ति का अवतार बनने की शिक्षा दी, और 'मिलन' के नायक 'आनन्द' के मुख से बाहुबल के प्रयोग का समर्थन किया, किन्तु साथ ही अहिंसा के आदर्श की प्रशंसा की।[6] अतः मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश

---

१ बातें ही मीठी ज्यों ऊख,
मिटा नहीं सकती हैं भूख।
दो दायित्व हमें परिपूर्ण,
हो अनात्म विश्वास विचूर्ण।
('हिन्दू' : पृ० ३३९—द्वि० स०)

२ तभी तो मैथिलीशरण ने 'हिन्दू' काव्य में लिखा—
शासन में हैं दारुण दोष,
पर तुम गुण रत्नों के कोष।
उस पर है कितनी भी खीझ,
किन्तु हमारी तुम पर रीझ।
('हिन्दू' : पृ० ३४१)

३ डा० नगेन्द्र ने सियारामशरण गुप्त को एकमात्र ऐसा हिन्दी कवि बताया है, "जो अपनी सात्विक साधना के बल पर उसे (गांधीवाद को) अपनी चेतना का अङ्ग बना सका" और गांधीवादी "तत्व चिन्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति" हिन्दी कविता में उपस्थित कर सका। (डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—पृ० ३९, प्रथम संस्करण)

४ डा० नगेन्द्र—वही, पृ० ५१।

५ डा० सुधीन्द्र का लेख—प्रेमनारायण माथुर द्वारा सम्पादित—'गांधी ग्रन्थ' में—प्रथम संस्करण।

६ रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की,
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की।
(त्रिपाठी : 'पथिक' पृ० ६५—चतुर्थ संस्करण)
गुप्तजी ने लिखा:—
अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा निश्चि है निष्क्रिय प्रतिरोध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपाठी का प्रधान स्वर गांधीजी द्वारा प्रचारित अहिंसा, दूसरों के लिए आत्म बलिदान, धार्मिक सहिष्णुता पर बल, शत्रु को भी प्रेम से जीतने की आकांक्षा तथा उदार मानवीय चेतना में मुखरित है।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने भी आत्म बलिदान का सन्देश दिया—

शङ्कर के प्यारे उठो, उन्नति का प्रण ठान,
लो स्वराज्य-स्वातन्त्र्य को दो जीवन बलिदान।[1]

इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी कवियों में स्वाधीनता के प्रति कम आसक्ति पाई जाती है अथवा उनमें राष्ट्रीयता का उत्कर्ष एवं उसकी तीव्रता का अभाव है। डा० नगेन्द्र का यह कथन कि गांधीवाद भी भारतीय वैष्णव दर्शन की तरह "पीड़ा का दर्शन है, एक परतन्त्र देश की चिर पराजय से जिसका जन्म हुआ है"[2] पर्याप्त सत्य होते हुए भी भ्रम उत्पन्न करने वाला है। इसमें आंशिक सत्य ही निहित है, पूर्ण सत्य नहीं। गांधी का दर्शन जनमानस की पराजित चेतना से उद्भूत होकर भी आत्मा के वीरत्व का प्रतीक है। 'पीड़ा का दर्शन' कायरता की सीमाओं को छूता है, पर क्या गांधीवाद कायरता और पराजित मनोवृत्ति का प्रतीक है। वीरता का सम्बन्ध आत्मिक इच्छा शक्ति, और आत्मिक दृढ़ता से अधिक होता है, जिसका अभाव न गांधी दर्शन में है, और न उससे प्रभावित हिन्दी कविता में। कदाचित सियारामशरण गुप्त जैसे कवियों में पीड़ा की अधिक मात्रा मिले, लेकिन गांधी दर्शन से प्रभावित अन्य कवियों (जैसे मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी) ने जनता को शक्तिशाली बनने का उपदेश भी दिया।[3]

बाहुबल से क्रान्ति करने के इच्छुक, अथवा भौतिक शक्ति का आह्वान करने वाले कवियों में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (त्रिशूल), माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' प्रमुख हैं। उन्हें हिंसा की भी चिन्ता नहीं थी। परतन्त्रता को सम्बोधित कर 'त्रिशूल' कहते हैं—

क्रूरपना कर चुकी बहुत अब दूर निकल तू,
है त्रिशूल का वार अरी निश्चरी सँभल तू।

माखनलाल चतुर्वेदी लिखते हैं—

प्रहारक बाण हो कि बात,
चीज क्या, आरपार जो न हो।
दान क्या? भिगमंगों के स्वर्ग,
प्राण तक तू उदार जो न हो॥
फेंक वह जीत, या कि वह हार,
मिला बलि में प्रहार जो न हो।
चुनौती किसे और किस भाँति?
कि अरि के कर कुठार जो न हो॥[4]

'नवीन' की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ—

कवि कुछ ऐसी तान सुनादे, जग में उथल-पुथल मच जाये,
एक लहर इधर से आये, एक लहर उधर से आये।

इसी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति की ओर संकेत करती हैं। माधव शुक्ल, रामचरित उपाध्याय, सोहन्लाल द्विवेदी, बद्रीनाथ भट्ट आदि ने स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के लिए अनेक प्रयाण गीत लिखे।[5] बद्रीनाथ भट्ट वीरों को यों प्रोत्साहन देते हैं—

उठो वीरगण! उठो शस्त्र लो,
ले लो खडग, पटक दो म्यान।[6]

प्रति पक्षी भी रण में हम से पावें प्रेम, प्रसाद, प्रबोध।
(मैथिलीशरण : 'स्वदेश संगीत'—पृ० १२२ प्र० स०)

[1] शङ्कर सर्वस्व—पृ० २४८, प्रथम संस्करण।

[2] डा० नगेन्द्र : 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां', पृ० ५०, प्रथम संस्करण।

[3] मार्ग सूझता नहीं, न सूझे, किंतु अटल तुम अड़े रहो,
आगे बढ़ना कठिन हुआ तो हटो न पीछे खड़े रहो।
विविध बंधनों में जकड़े हो, रहो, किंतु तुम कड़े रहो,
जी छोटा मत करो, बड़ों के वंशज हो तुम बड़े रहो।
(मैथिलीशरण गुप्त : 'स्वदेश-संगीत'—पृ० ७३, प्रथम संस्करण)

[4] 'हिम किरीटिनी' में संकलित कविता 'मरण ज्वार'—पृ० १३५, प्रथम संस्करण।

[5] कानपुर के पत्र 'प्रताप' में इस प्रकार के ओजस्वी गीतों का अधिक प्रकाशन हुआ।

[6] कानपुर के पत्र 'प्रताप' में प्रकाशित कविता 'स्वत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता के संघर्ष में उर्दू कवियों की वाणी में अधिक तिक्तता, और आक्रोश आ गया था। उन्होंने प्रायः भौतिक बल के प्रयोग, को ही महत्व दिया। गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन, आदि की अभिव्यक्ति निस्सन्देह उर्दू कविता में हुई, तथापि उसमें अहिंसावादी सिद्धान्तों की स्पष्ट स्वीकृति नहीं मिलती। इकबाल ने कितने धड़ल्ले से कहा :—

या मुर्दा है या नजअ की हालत में गिरफ्तार,
जो फलसफा लिक्खा न गया खुने-जिगर से।[1]

× × ×

मैं तुझको बताता हूँ तकदीरे उमम क्या है,
शमशीरो सनां अव्वल, ताऊसो रुवाब आखिर।[2]

+ + +

जो कबूतर पर झपटने में मजा है ए पिसर,
वह मजा शायद कबूतर के लहू में भी नहीं।[3]

इस प्रकार के अनेक उदाहरण इकबाल के काव्य से दिये जा सकते हैं। 'सुरूर' की नज़्म 'कार जारे हस्ती', में भी शक्ति का आह्वान है,[4] लेकिन इकबाल जैसी उग्रता उसमें नहीं। चकबस्त के काव्य में स्वाधीनता के लिए आत्म-बलिदान की भावना, गांधी की अहिंसा से प्रभावित है। 'जोश' मलीहाबादी ने उर्दू काव्य में क्रान्ति का उद्घोष किया है। वे कहते हैं :—

काम है मेरा बग़ावत नाम है मेरा शबाब,
मेरा नारा इंक़िलाबो-इंक़िलाबो इंक़िलाब।

शायद तभी उन्हें 'शायरे इंक़िलाब' कहा जाता है। 'ग़द्दार से ख़िताब', 'ईस्ट इंडिया कम्पनी के फर्जन्दों के नाम', 'वफ़ादाराने अज़ली का पयाम शहन्शाहे हिन्दोस्तान के नाम' और 'शिकस्ते-जिन्दां' आदि नज़्मों से 'जोश' की क्रान्तिकारिता का पता चलता है। उनके जोशीले तरानों ने जनता में जोश भर दिया। देश का युवक वर्ग स्वाधीनता के लिए हर सम्भव उपाय सोचने लगा।

इस युग में कुछ ऐसे उर्दू कवि भी दिखाई देते हैं जिनके दिल में भारत की स्वतन्त्रता की तड़प तो थी पर वे उसे खुलकर व्यक्त नहीं कर सके। उनका उद्बोधन का स्वर भी धीमा ही रहा। ऐसे शायरों में अकबर इलाहाबादी, हसरत मोहानी, असगर गोण्डवी, अजीज लखनवी, सफ़ी लखनवी, जिगर मुरादाबादी, जैसे लोग हैं, जो (अकबर इलाहाबादी को छोड़कर) ग़ज़ल को नया रूप देने वाले हैं। शायद ग़ज़ल के लिए बड़ी कोमल भावभूमि चाहिए। इसलिए ग़ज़लगो शायरों ने प्रतीकों का सहारा लेकर ही अपनी राजनीतिक धारणाएँ व्यक्त की हैं। जहाँ कहीं उन्होंने खुल कर बात कही है, वहाँ भी उनका स्वर मन्द लगता है।

ए ! कि हिन्द की दिल से है तुझ को आरज़ू,
हिम्मते सर बुलन्द से यास का इन्सदाद का।

यहाँ हसरत मोहानी साहब निराशा से बचने की सलाह देकर रह गये।

—१।१ डी.एस.प्रेमनगर, तिलक नगर, नई दिल्ली-१८

न्त्रता की हुङ्कार' का अंश—डा० सुधीन्द्र द्वारा उद्धृत—'हिन्दी कविता में युगान्तर', पृ० २७४, प्रथम संस्करण।

[1] इकबाल : 'जर्बे कलीम'–पृ० ३७, प्रथम संस्करण।

[2] इक़बाल : 'बाले जबरील' पृ० ७७ संस्करण का उल्लेख नहीं।

[3] इक़बाल : वही पृ० १६३।

[4] 'जामे सुरूर'—पृ० ५६, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद संस्करण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

● ● ●

श्री निगम शर्मा

श्री वासुदेवशरण एक विशेष दृष्टि से युक्त अन्त-द्रष्टा पुरुष थे। सबसे अधिक कुशल लेखक वास्तव में वह है जो कि आने वाली पीढ़ी और पीढ़ियों की समस्याओं को भाँप ले तथा तदनुरूप प्रयास करके उन समस्याओं को सुलझाने के लिए सक्रिय सहयोग एवं दृढ़ चेतना दे। वास्तव में श्री वासुदेवशरण अग्रवाल कुछ इसी कोटि के तत्व-चिन्तन से सम्पन्न महापुरुष थे।

उन्होंने पाणिनिकालीन भारत का अध्ययन प्रस्तुत करके चिन्तन की एक ऐसी नयी दिशा दी जिधर किसी का ध्यान नहीं गया था। पाणिनि ने अपने सूक्ष्म-सूत्रों में देश का भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक (व्यावसायिक) जो प्रतिमान प्रस्तुत किया है उनका निरीक्षण-परीक्षण करके शुद्ध सात्त्विक भाषा में जो गहन निरूपण प्रस्तुत किया गया है वह वासुदेवशरण जैसे मनीषी एवं मनस्वी व्यक्ति से ही हो सकता था।

उनको अपने जीवन-निर्वाह के लिए इसी प्रकार की वृत्ति भी मिली, पिछले शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के तथा नाना भाव-भंगिमा से परिपूर्ण विभिन्न प्रकार की पुरानी प्रतिमाओं ने भारत के बोलते चित्र उपस्थित किये, जिस मूक भाषा को पढ़ने और समझने के लिए एक सहृदय की भावार्द्र दृष्टि अपेक्षित थी। उनको गहन दृष्टि से समझकर वासुदेवशरणजी ने भारती-जीवन का अनेक प्रकार से सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया जिससे एक ओर जिज्ञासु पाठक के लिए पूर्ति एवं तृप्ति तथा गवेषक के लिए शोधपूर्ण मार्ग का उद्घाटन हुआ। कादम्बरी एवं हर्षचरित जैसे ग्रन्थों पर सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करके अग्रवाल महोदय ने छात्रों एवं विद्वानों दोनों को अनेक विधि उपकृत किया है।

बहुत से (सहस्रों) शब्द जो कि पाणिन, वाण अथवा पुराने काल के राजाओं के समय में सामान्य रूप में प्रचलित थे, वे अब प्रयोग के विषय नहीं रहे। अब उन शब्दों का वास्तविक अर्थ एवं अभीप्सा क्या है, इस दिशा में भी निरीक्षण-परीक्षण करके सुन्दर एवं उपयोगी सुझाव तथा उदाहरण इस माननीय मनीषी ने प्रयुक्त किये हैं। उदाहरणस्वरूप हम कुछ प्रयोग दे देना उचित समझते हैं—शकन्धु=बावड़ी, कर्कन्धु=रहट, पटवास=इत्र, अधिरोहणी=निःश्रेणी (सीढ़ी), धव=राज (कलई करने वाला), लेप्यकार=खिलौने बनाने वाला, प्रग्रीवक=उठने बैठने का स्थान, पिंग या पृङ्ग=सलवार, सतुला=जाँघिया, अलिञ्जर=महाकुम्भ, अलि=कुल्हड़, वितर्दिका=बरामदा।

इन इत्यादि शब्दों के प्रयोग से कालगर्त में पड़े धूलि-धूसर शब्दों का परिचय हमें मिलता है जिन अपार शब्द-राशि की आज युग की माँग के कारण अत्यन्त आवश्यकता है। दूसरी ओर इन शब्दों के माध्यम से विविध व्यवसायों का परिचय मिलता है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी ये शब्द बहुत ही महत्त्व रखते हैं। साथ ही इस बात का भी पता चलता है कि नाना प्रकार से पिछली पीढ़ी के लोग वेष-विन्यास, केश-विन्यास एवं साज-सज्जा का किस सावधानी से प्रयोग करते थे।

इस प्रकार जनपदीय दृष्टिकोण भारतीय कला, संस्कृत-साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के गहन विषय वासुदेवशरण जी के हृदय में भरते-उभरते चले आये। संस्कृत का शिल्प-विधान एवं कला का रस-रहस्य जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
NOT TO BE ISSUED

उन्होंने समझा उसे लोकोत्तर दृष्टि से आविर्भूत किया। वास्तव में श्री वासुदेवशरणजी के कार्य एवं चिन्तन के मूल्याङ्कन करने का समय अब अधिक उभरा है।

भारतीय कला-सौन्दर्य भी रीति-नीति, साज-सज्जा, माध्यम एवं अध्यात्म की दृष्टि से अपना पृथक ममत्व एवं महत्त्व रखता है। इस सम्बन्ध में आचार्य अग्रवाल का अधिक सूक्ष्म परिचय था उन्होंने अपने अध्यवसाय एवं परख के कारण 'इण्डियन आर्ट' को जो गहन को सामग्री प्रस्तुत की है, केवल यही पुस्तक इनको ख्याति एवं कीर्ति देने के लिए उत्तम साधन है। इसमें भारतीय कला की गाथा, भारतीय मानव का ऋजु स्वभाव एवं भारतीय ऋषियों का अध्यात्म-धारा में सुस्नात दृष्टि रख दी गयी है।

महाभारत में भारत की जनपदीय वृत्ति एवं प्रवृत्ति को देखते हुए डा० अग्रवाल ने जो सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया है वह भी भारतीय जन-जीवन का मोहक आख्यान उपस्थित करता है। नाम भी 'भारत-सावित्री' देकर इसके महत्त्व एवं शील पर डा० अग्रवाल ने सुन्दर ज्योत्स्ना बिखेर दी है जिससे विषय का स्पष्टीकरण तथा लेखक की चारु बुद्धि की विशेषता से डा० अग्रवाल में एक भारतीय मनीषी ऋषि की अन्तर्दृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

प्रेम मानव के हृदय में बैकुण्ठ का द्वार खोलता है। यहाँ पर बुद्धि में कुण्ठा नहीं रहती। बैकुण्ठ के आनन्द को ग्रहण करने के लिए बुद्धि में तीक्ष्णत्व की भी अभीप्सा ऋषियों को इष्ट है "नाहीं त काह छार इक मूँठी" नहीं तो मानव शरीर की व्याख्या मुठ्ठी भर छार से और अधिक क्या है? प्रेम के सुन्दर पथ से मानव परे पार पहुँचता है और फिर इस छार में नहीं मिल पाता अपितु अपने नासा रमणीय गुण-गन्ध के कारण मानव-जाति का अन्तःकरण सुवासित करता है।

इस गहन उपनिषद् को जितना समझना चाहिये श्री वासुदेवजी ने उसे उपयुक्त धरातल पर मार्मिकता के साथ ग्रहण किया। उनकी विलक्षण भाषा-शक्ति, जीवन के गम्भीर अनुभव इस ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार बने। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी प्रीति आज पद्मावत के शब्दों में "गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई" की शक्ति सूक्ति को चरितार्थ करती है।

'पद्मावत' का शुद्ध संस्करण छाप कर एक ओर वासुदेवशरणजी ने कवि के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया तो दूसरी ओर सहृदय पाठक के लिए एक अभूतपूर्व कवि-कौशल का क्षेत्र अभिव्यक्त किया। जायसी जैसे भास्वर कवि को हिन्दी क्षेत्र में उच्च आसन दिलाना डा० अग्रवाल का ही कार्य था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी 'पद्मावत' का मूल्याङ्कन महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार संस्कृत के अत्यन्त उच्च कवि ईश्वर-दत्त, शूद्रक, श्यामिलक तथा वररुचि आदि कवियों की गम्भीर सर्वाङ्गीण, अनुभूतियों का सहृदय पाठकों से परिचित कराया। वास्तव में हास-परिहास जीवन के निखार के लिए आवश्यक है और इन कवियों ने उदात्त भावनाओं के उन्नयन के लिए समाज पर व्यंग्य-बाण छोड़ते हुए सरस अनुभूतियों का प्रदर्शन किया है। इस दृष्टि से समाज के ऐसे सामान्य स्थल तथा पात्र अपने सामान्य धरातल पर उक्तियों, सूक्तियों, एवं लोकोक्तियों का प्रवाहपूर्ण प्रयोग करके यह स्पष्ट कर देते हैं कि किसी समय संस्कृत जन-भाषा थी। इन उक्तियों में परिष्कृत मन एवं निर्मल दृष्टि की मनोहर झलक मिलती है। इन सभी ओर प्रवृत्ति दिखलाते हुए डा० अग्रवाल अपने प्रमुख विषय का प्रतिपादन यहाँ भी कर जाते हैं कि संस्कृति की दृष्टि से सामान्य जीवन के व्यवहार भी बोलते हुए चित्र हैं। लोक-सामान्य जीवन में ही अलोक सामान्य दृष्टि की झाँकी देखी जा सकती है।

भारतीय मानव को पिछली शताब्दी में विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है और यह प्रक्रिया अब भी चल रही है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने काव्य की कलात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति में अपने जीवन को समर्पण किया जबकि योगिराज अरविन्द ने अध्यात्म की उच्च धारा पर

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव के आरोहण की सुन्दर भूमिका निबाही, वासुदेवशरणजी ने मानवाभिव्यक्ति के लिए संस्कृति का धरातल चुना जिसकी कि पृष्ठभूमि ऋषि दयानन्द एवं महामना मालवीयजी तैयार कर चुके थे।

योगिराज अरविन्द ने आत्मा की अभिव्यक्ति एवं भागवत संकल्प को चरितार्थ करने में दिव्य-चेतना का मांगलिक गान गाया, जबकि वासुदेवशरण जी ने अपनी चिन्तन-धारा को भारतीय शिल्प-विधान की ओर उन्मुख किया।

ईश्वर-पूजा का यह प्रकार बिखरा हुआ है पर इस ऊसर भूमि में अथवा इस खण्डहर में पिछले भारत की जो मूक-गाथा क्रन्दन कर रही है, इस पीड़ा को वही आँक सकता है जिसके लिये मीरा ने कहा था—"अरे मैं तो दरद दीवानी, मेरा दरदो न जाने कोय।"

यदि हम एक शब्द भी यथावत् समझ सकें तो समस्त शब्दों के अन्तराल में दमक भर जाती है और इसके माध्यम से अपने भीतर भी हृदय आलोकित हो उठता है। वासुदेव शरणजी ने इस मर्म को बड़ी सहृदयता के साथ अपनाया तथा अनुरूप प्रतिष्ठा के साथ इसे अभिव्यक्त किया।

हिन्दी क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परम्परा जिन थोड़े से तत्त्व-चिन्तकों ने अपनायी तथा उसे प्रवाहित करते रहे, उनमें वासुदेवशरणजी का स्थान रमणीय हीरक मणि के समान चमकता रहेगा। अपनी विनम्रता, अथक प्रयास एवं लक्ष्य-निष्ठा के कारण समय एवं स्वाध्याय का अच्छे से अच्छा उन्होंने सदुपयोग किया। आस्था एवं ईश्वर विश्वास से भी इनको पथ पर जमे रहने एवं बढ़ते रहने के लिए रमणीय प्रेरणा मिलती रही। फलतः अपने जीवन के आरम्भ काल में जो स्वप्न उन्होंने देखा उसे चरितार्थ एवं अवगतार्थ करके पूरा किया। उन का मार्ग एक अमर हुतात्मा का मार्ग है जिसे कि वह प्रति क्षण देखता-परखता रहता है तथा अन्त में जीवन-शरीर के धरातल से ऊँचे उठ कर स्वर्गीय आनन्द का स्थिर द्रष्टा बन जाता हैं।

अपने जीवन के पश्चिम प्रहर में श्री वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने एक विशिष्ट प्रयोजन की ओर भारती प्रजा का ध्यान आकृष्ट किया। वह था मंत्रार्थ की प्रक्रिया का पता लगाना।

वेद के अन्तर्गत निहित अर्थ-सौन्दर्य अपनी अलौकिकता रखता है। केवल लोक-वाक्य को समझने की प्रक्रिया या उपलब्ध सामग्री वेदार्थ को समझने के लिए उपयोगी नहीं है अपितु कहीं कहीं अहितकर भी है।

ब्राह्मण की जिह्वा ही ज्या (धनुष की डोरी) है। उच्चरित शब्द बाण हैं, बाण के फल नाड़ी ही ब्राह्मण के दाँत हैं, ये बाण तपस्या के विष से बुझे हुए हैं, अन्तरात्मा का बल ही इस बाण की प्रक्षेपण-शक्ति है, इन्द्रिय-प्रेरणा ही दैवी-विधान की प्रेरक तत्त्व-चिन्ता है, ऐसे बाण से राष्ट्र-भक्षक दैवी विधाओं को लुप्त करने[१] वाले संहारक तत्त्वों का ब्राह्मण वध-विनाश करता है।

ब्राह्मण की गौ (वाणी) अन्न नहीं है, इसके हनन की कोई इच्छा न करे[२]। अर्थज्ञ पुरुष समग्र प्रकार के ऐश्वर्य एवं आनन्द की प्राप्ति करता है,[३] ध्यानवान् पुरुष मन से संस्कार-सम्पन्न वाणी में अपने विचार प्रकट करते हैं।[४] अपनी कान्ति की अभिव्यक्ति के लिए वाणी को प्रेरित करें।[५] हिरन्यमय रमणीय रथ में वाणी-वीणा-वाण-वणिक्-वेणु आदि का अपना पृथक् ही एवं संदृक् संप्रयोग है।[६]

उपर्युक्त उदाहरणों में सहृदय-हृदय श्लाध्य मार्मिक श्रुति पीठिका पर जिस अर्थ-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है वह अलौकिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोम-रस का समस्त रस-निष्यन्द अब भी इन ऋचाओं के मधुच्छत्र में निहित है।

---

१ अथर्व ५—१८—८
२ अथर्व ५—१८—१
३ योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते, निरु. १—६—१८
४ ऋ० १०—७१—२
५ ऋ० ५—५४—१
६ ऋ० ८—२०—८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण की 'कादम्बरी' में जिस रचना-शिल्प का सौन्दर्य दिखायी देता है, ऋषियों के सूत्रों में जो सारगर्भता है, कालिदास के रचना-सौष्ठव में जो विदग्ध-भणिति है, माघ और श्री हर्ष में जो उत्प्रेक्षित प्रतिभान उद्वेलित हो रहा है : इन सबका लोक-रंजन आदि स्रोत हमारे वेदों की ऋचायें ही हैं।

वासुदेवशरणजी ने जीवन की परिपक्वावस्था में इस वैदिक-अर्थ मीमांसा की ओर ध्यान दिया। इस ओर इनका चिन्तनशील प्रयास सहृदय विद्वानों के लिए मन्त्रार्थ-दर्शन की प्रक्रिया में सम्बल बनेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

'अस्य वामस्य' सूक्त पर दीर्घतमा ऋषि के गहन विचारों का अध्ययन श्री कुन्हन राजा ने भी प्रस्तुत किया है। अर्थ-श्लाघा की दृष्टि से कुन्हन राजा की गवेषणा बहुत सराहनीय एवं मीमांसा के योग्य समझी जायगी पर श्री कुन्हन राजा काव्यगत चमत्कार की ओर अधिक झुके हुए हैं। यद्यपि वैदिक ऋचाओं का काव्य इस अनादि निधना वाक् का अपना पृथक् सौन्दर्य है पर समस्त ऋचायें एक ॐकार के शंकु से अनुविद्ध हैं। अस्तु इनका परम एवं चरम प्रयोजन वेद की यह तत्त्व निरूपणात्मक प्रकृति ही है। इसी ओर वासुदेवशरणजी की अधिक प्रवृत्ति रही है। अपने परिपक्व अनुभव एवं पैनी दृष्टि से छिलके उतार-उतार कर अर्थ-मुक्ता को देखने की दमक भरी दृष्टि का इन्होंने परिचय दिया है।

इस सम्बन्ध में स्वयं श्री वासुदेवशरणजी के विचारों को उद्धृत करना न्याय-संगत होगा। यह अंश उनके अन्तिम पत्र में से लिया गया है जो कि उन्होंने अन्तिम क्षण से कुछ पूर्व पं० श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजी को लिखा था—

"जब से मैंने दीर्घतमा ऋषि के अस्मवामीय सूक्त की व्याख्या लिखी तब से मेरा विश्वास होगया है कि वेद-विद्या सृष्टि-विद्या है और इसके सदृश ऊँची अन्य कोई विद्या नहीं है। प्राण-विद्या या जीवनी शक्ति की विद्या ही वेद विद्या है। यही सनातनी योगविद्या या प्राण-विद्या है।[1] पर मेरी कही हुई बात को लोग अभी समझ नहीं पा रहे हैं। इस विषय पर मैंने लगभग छः ग्रन्थ लिखे हैं। यदि मैं यूरोपीय विद्वानों के सामने अपनी बात रख सकता तो वे यह जान लेते कि मानव को नित्य जीवन के लिए जो तत्त्व वेदों में कहे गये हैं, वे सबसे अधिक मूल्यवान हैं। मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे जीवन का सायंकाल वेद-विद्या के सम्पर्क में बीत रहा है।"

इस प्रकार वेदों की प्रीति तथा लोगों का आदर-अभिनन्दन एवं भारती आस्था को आँखों से बटोरते-बटोरते स्वयं भी वे आँखों से ओझल हो गये।

—गुरुकुल महाविद्यालय, कांगड़ी।

[1] ऋ० १–१६४

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ लोग ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलतः हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अतः सभी लोग अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वतः ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्ति द्रष्टा सूर्यमल्ल मिश्रण

श्री वेदव्यास

बदन सुकवि सुत मुकुट, अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये, धुरन्धर चंडीदान।।
दोला, सुरजा, विजयिका, जसा रु पुष्पा नाम।
पुनि गोविन्दा षट्प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम।।

डिंगल और पिंगल के प्रसिद्ध विद्वान चण्डीदान के पुत्र और सुकवि बदनसिंह के पौत्र सूर्यमल्ल का जन्म चारणों की 'मिश्रण' शाखा के प्रतिष्ठित कुल में कार्तिक वदी प्रथमा, विक्रम संवत् १८७२ में बूंदी में हुआ। दोला, सुरजा, विजयिका, जसा, पुष्पा और गोविन्दा नाम की उनके ६ पत्नियाँ थीं। यों तो राजस्थान के साहित्य में अनेकों उल्लेखनीय प्रवृत्तियों का परिचय हमें मिलता है, लेकिन सूर्यमल्ल मिश्रण का काव्य सृजन युगीय भावनाओं और जनचेता प्रक्रियाओं का अद्भुत समन्वय है।

विद्या प्रेमी सूर्यमल्ल का सम्पूर्ण जीवन स्वाभिमान और पारम्परिक व्यवस्थाओं से संबद्ध दिखाई देता है। 'वीर बिनोद' के रचियता कवि गणेशपुरी से प्रारम्भ में अनपढ़ होने के कारण मिलने से इन्कार कर देना और झज्जर की गणिका के प्रसङ्ग में रावराजा रामसिंह से ये कहना कि 'राजाजी अब बण बाल्यो वंश भास्कर', उनकी युक्त चिन्तन धारा की प्रतीक घटना है।

विशालकाय, दीर्घ अरुण नेत्र, पुष्ट भुजदण्ड, भौहों से मिली हुई मूँछें, सँवार कर पट्टी बैठाई हुई दाढ़ी, एक हाथ में नग्न तलवार और दूसरे में मंजुवादिनी वीणा, नस-नस में स्फूर्ति और उमंग के ओज से पूर्ण सूर्यमल्ल, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के बाद पहले कवि थे जिनकी रचनाओं में सम्पूर्ण युग मानस करवट बदलता दिखाई देता है।

वंश भास्कर, बलवंत विलास, छन्दोमयूख और वीर सतसई के अतिरिक्त कुछ विद्वान राम रंजाट एवं सतीरासो के रचियता भी सूर्यमल्ल मिश्रण को ही मानते हैं। वंशभास्कर कवि की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कृति है। चौहान वंश का प्रारम्भ से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक का वर्णन, हमें इस ग्रन्थ में मिलता है। गणित, व्याकरण, न्यायशास्त्र, ज्योतिष, इतिहास, शकुन शास्त्र, वेदान्त, दर्शन आदि अनेक विषयों का पाण्डित्यपूर्ण प्रतिपादन वंश भास्कर में सूर्यमल्ल मिश्रण ने किया है। ४३६८ पृष्ठों के इस ग्रन्थ का हर पृष्ठ बूंदी राज्य परिवार के सङ्कल्प एवं साहस की गाथाओं से युद्ध की अकल्पनीय अवस्थाओं से, भाषा, शैली और वर्णन की अलङ्कारिक विचित्रता से ओत प्रोत है।

वंशभास्कर, पुराणों, महाभारत, चम्पू, भाष, अकबरनामा, तवारीख, फरिस्ता, बड़वा भाटों की बहियों, बूंदी राज्य की ख्यातो और पृथ्वीराज रासो के विशद अध्ययन के पश्चात् लिखा गया बताते हैं। ग्रन्थ में ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से युद्ध स्थिति की सजीवता देखते ही बनती है—

लगै दृग मुच्छ फरक्कत लीन।
मनो उरझी बन सी मुख मीन।।
छलैं छत रत्त छछक्कन छुट्टि।
फबैं जनु गग्गरि जावक फुट्टि।।
झुकैं असिमत्त दुहत्थन झारि।
मनो रजकालि सिलापट मारि।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुटै फटि पेटिय लेटिय लम्ब।
तनै पट जानि कुबिंद कदम्ब।।
मचै रव टोप उड़ै फटि मत्थ।
अलाबुंव जानि अतीतन हत्थ।।
कढै दृग लग्गि कुनीनिय काल।
मनों कुव लोहित भोंरन माल।।

वंशभास्कर की रचना सूर्यमल्ल ने बूंदी नरेश कि रामसिंह की आज्ञा से विक्रम संवत १८९७ में थी। वंशभास्कर किसी एक भाषा का प्रतिनिधि ग्रंथ न होकर संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश एवं कई भाषाओं के शब्दों का प्रायोगिक ग्रन्थ है। अनेक विद्वानों के मतानुसार—"सूर्यमल्ल मिश्रण काव्य जगत के बेजोड़ रत्न हैं, जिनकी तुलना आने वाले युग कवि भी न कर पायेंगे।"

गदर के समय क्रान्ति की आवाज बुलन्द करने वालों में उनका विशिष्ट स्थान रहा है। वीर सतसई की रचना जहाँ उनकी काव्य-चातुरी, भाव-वैभव एवं व्यञ्जना शक्ति का प्रमाण है वहाँ वह अनेक मानव वृतियों की परिचायक कृति है। स्वामी के नमक का मूल्य कायरता, राजपूत की वीरता और प्रशंसा, स्त्रियोचित वीरता तथा सतीत्व, वीर व्यक्ति का स्वभाव, राजपूत का स्वभाव, चारण का कर्तव्य, धर्मयुद्ध हेतु आतुरता, कुशल सेनापति की आवश्यकता आदि अनेक विषयों के माध्यम से इस रचना को कवि ने वीरों के लिए प्रेरणा, एवं कायरों के लिये दुधारी तलवार बनाया है—

वीकम वरसां बीतियो, गण चौ चन्द गुणीस।
विसहर तिथ गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस।।

संवत् १९१४ में लिखी 'वीरसतसई' आज भी उतनी ही प्रभावपूर्ण जान पड़ती है जितनी कि उस समय थी। उदाहरण के लिए सतसई के कुछ काव्यांश प्रस्तुत हैं—

आज घरे सासू कहे, हरख अचानक काय।
बहू बलेवा हूससै, पूत मरेबा जाय।।
सहणी सबरी हूँ सखी, दो उर उल्टी दाह।
दूध लजाणै पूत सम, वलय लजाणै नाह।।
हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव।
नालो बाढण री छुरी, भपटै जणियो साव।।
इला न देणी आपणी, हालरियाँ हूलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय।।
मूछ न तोड़ो कोट में, कटिया छोड़ै काल।
कालां घर चेजो करो, मूसापण मूंछाल।।

'वीरसतसई' के अतिरिक्त संवत् १९१५ में रचित 'बलविद्ध विलास' एवं संवत १८८२ में लिखी पुस्तक 'रामरंजाट', काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। 'रामरंजाट' में हाथियों का एक चित्र द्रष्टव्य है—

रचे रज डंबर धूसर रंग।
चलावत पंखिय चोर सुचंग।।
सनीसर का हरकेंत सभाण।
प्रभागिर कज्जल कै परमाण।।
इसा गजराज दराज अभंग।
घसै नभ चाचर जेण सुचंग।।

सूर्यमल्ल मिश्रण (सूरजमल) भाषा विज्ञान में प्रवीण थे। उनके छन्द शास्त्रीय ज्ञान के सम्बन्ध में ये दोहा आज भी अत्यधिक प्रचलित है—

श्रूप कवित नरहरि छपै, सूरजमल के छन्द।
गहरी भमक गणेश री, रूपक हुकमीचन्द।।

सूर्यमल्ल मिश्रण की काव्य परम्परा को उनके शिष्यों ने, जिनमें वल्लभ बारहठ, सीताराम बारहठ, हरदान बारहठ, विजयनाथ खिड़िया, मोतीराम रत्नु, बख्शीराम बारहठ, दत्तक पुत्र मुरारीदान और गणेशपुरी प्रमुख हैं, पूरी तरह से अपनाया।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार—"क्रांति द्रष्टा सूर्यमल्ल मिश्रण दो युगों के बीच सेतु थे जो साहित्य की अपभ्रंशकाल से चली आ रही परम्परा को ईसा की बीसवीं सदी तक पहुँचा कर विदा हो गए।" राजस्थानी साहित्य की उत्कृष्ट स्थिति को जानने के लिए महाकवि सूर्यमल्ल की रचनाओं का अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन की सम्पूर्णता को जानने के लिए रामायण एवं गीता का पाठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव से अक्खड़ और संगीत प्रेमी सूर्यमल्ल वीररस की ज्योतित आभा थे। एक बार की बात है, वे बूँदी के राजमहल में बैठे, सूर्य को अर्घ्य देते हुए कह रहे थे—"हे भगवान भास्कर! एक दिन ऐसा भी उगे कि जब मेरे स्वामी का मुण्ड घोड़ों की टापों में लुढ़कता मिले।" प्रार्थना स्थल के पास ही राजा रामसिंह की नवविवाहिता रानी नगोदणी का महल था। अपने सौभाग्य की अमंगल कामना के ये स्वर जब उन्होंने सुने तो महाकवि से पूछा कि वे रोज अपने स्वामी के लिए ऐसी अनिष्टसूचक प्रार्थना क्यों करते हैं? इस पर सूर्यमल्ल मिश्रण ने कहा—"मैं यही प्रार्थना तो करता हूँ कि मेरा स्वामी दीर्घायु ही क्या, अमर हो जाये और यदि तुम भी राजा के पीछे सती हो गई तो तुम्हें भी सदैव के लिए अमर कर दूँगा।"

काव्यावतार सूर्यमल्ल ने अपनी उदार बुद्धि से काव्य रचना की। जिस प्रकार कवि वीरभाण ईख के रस का घड़ा थे, कविचन्द चषक थे, उसी प्रकार सूर्यमल्ल ने मानववाणी को सुन्दरता प्रदान की थी। जिस प्रकार सब युद्धों में, अस्त्रधारियों में अर्जुन को शिरोमणि माना जाता है, उसी प्रकार संसार के यशस्वियों को सच्चे सेवक सूर्यमल्ल थे।

'वंशभास्कर' को जहाँ अनेक विद्वान सृजन की दिशा में अंतिम कार्य मानते हैं वहाँ सूर्यमल्ल मिश्रण को विधाता के समकक्ष मानने वाले राजा-महाराजाओं ने उन्हें नवरसों से युक्त, रमणीय, उपादानरहित, विनाशविहीन, नवीन सृष्टि का चितेरा तक कहा है। रतलाम के उमराव श्रवण के ठाकुर जोरावरसिंह के शब्दों में—

अत चित दीसै ऊमदा, मत सावत मजबूत।
दूजा सुकबि न देखिया, सूजा जिसा सपूत॥
होसी हुवौ न हाल, इसड़ों सुकवि और है।
भीसण सूरजमाल, साखां सौ बीसां सिरै॥

अर्थात्—जिसका चित्र अत्यन्त श्रेष्ठ दिखलायी पड़ता है, जिसकी मति स्वस्थ और दृढ़ है, ऐसा सूर्यमल्ल जैसा सपूत कवि दूसरा देखने में नहीं आया। ऐसा कवि न तो होगा न हुआ है और न वर्तमान में उनके बराबर दूसरा कोई है। मिश्रण सूर्यमल्ल चारणों की १२० शाखाओं के शिरोमणि हैं, साहित्य एवं समाज जिसे कभी न भूला सकेगा। ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का देहान्त संवत १९२५ के अषाढ़ मास की कृष्ण पक्षीय एकादशी को हुआ माना जाता है।

—आकाशवाणी, जयपुर।

इकत्तीसवाँ संस्करण प्रकाशित हो गया

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

लेखक—बाबू गुलाबराय डी० लिट्

सामान्यतः हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन दुरूह समझा जाता है किन्तु इस पुस्तक ने इतिहास के अध्ययन में छात्रों की रुचि को जागृत किया है। परिणामस्वरूप इण्टर, बी० ए०, विशारद, प्रभाकर आदि के सहस्रों छात्र प्रतिवर्ष इससे लाभ उठाते हैं और परीक्षा में शानदार सफलता प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का सुबोध ढंग से परिचय देने में जितनी सफलता इस पुस्तक को मिली है, उतनी किसी और को नहीं। इसकी अपूर्व लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अबतक इसके तीस संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत इकत्तीसवाँ संस्करण सम्पूर्ण रूपेण संशोधित एवं संवर्द्धित है। मूल्य—३.५० मात्र

प्राप्ति स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकार-साहित्य के प्रवर्त्तक पं० श्रीराम शर्मा

• • •

श्री सुरेशचन्द्र शर्मा

किसी भी भाषा में ऐसे साहित्यकारों की संख्या जो साहित्य को भावना के सहज स्फुरण (Spont eneous overflow of Feelings) का परिणाम मान कर चलें प्रायः कम ही हुआ करती है। ऐसे साहित्यकार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से प्रायः दूर ही रहते हैं। वाणी उनकी वशवर्तिनी (वाग्वश्यैवानुवर्तते) होती है और कला उनकी चेरी। परन्तु उनकी प्रतिभा से जिस साहित्य का निर्माण होता है वही भावी साहित्यकारों के लिए आदर्श बनता है। पं० श्रीराम शर्मा ऐसे ही हिन्दी के तपःपूत एवं सशक्त साहित्यकार थे जिन्होंने कबीर की सी 'अक्खड़ बानी' में कला की उपेक्षा तो की[1] परन्तु याचिका (कला) के करुण-क्रन्दन पर अन्ततः उन्हें विवश होना पड़ा और वरदान स्वरूप जो भाव-मणियाँ उसे (कला को) प्रदान कीं वही हिन्दी साहित्य का शोभन शृङ्गार बन गईं।

यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि पं० श्रीराम शर्मा ने शिकार सम्बन्धी साहित्य लेखन में अपने निजी ज्ञान को बड़ी ही आकर्षण शैली में व्यक्त किया, संपादन कला में अपनी निजी मान्यताओं की स्थापना की, संस्मरण-लेखन में एक नई कला और आदर्श को जन्म दिया और अनुवाद के क्षेत्र में मूल लेखक की विचारधारा तक पहुँचने का उपक्रम किया।

[1] "भाड़ में जाय आपकी कला! मैं कलाकार बनने का दावा नहीं करता। जो कुछ दृश्य मैं नित्य-प्रति देखता हूँ, उन्हीं का चित्रण करता हूँ।"

—बोलती प्रतिमा—चित्रण ले० बनारसीदास चतुर्वेदी।

इस प्रकार अनेक रूपों में शर्माजी ने हिन्दी के भांडार को भरने का प्रयास किया है। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों की संख्या दो दर्जन से भी अधिक है। इनमें से कुछ प्रकाशित हो गई हैं और कुछ अभी अप्रकाशित हैं। पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१ अश्रुपात (नया नाम बेगमात के आँसू) २—झाँसी की रानी, ३—शिकार, ४—बोलती प्रतिमा (रेखाचित्र) ५—जङ्गल के जीव, ६—प्राणों का सौदा, ७—भारत के जङ्गली जीव, ८—भारत के वन्य पशु, ९—हमारी गायें, १०—पपीता, ११—वे जीते कैसे हैं, १२—संघर्ष और समीक्षा (सन् १९४२ के आन्दोलन सम्बन्धी संस्मरण) १३—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (अँग्रेजी में) १४—नेहरू पर राधाकृष्णन् के विचार (अनूदित) १५—संस्मरण-सीकर, १६—रक्तपात, १७—वनवासी, १८—रुद्र प्रयाग का आदमखोर बघेरा (अनूदित) १९—देवालय का शेर तथा कुमायूँ के अन्य आदमखोर (अनूदित) २०—ठगों की बोली रमासिया (अनूदित) २१—कैलाश यात्रा (यात्रा सम्बन्धी) २२—शब्दचित्र, २३—नयना सितमगर, २४—हमारे पड़ोसी पक्षी (सचित्र) २५—निबन्ध संग्रह, २६—तरस न खाइये (अनूदित)[2] २७—कहानी संग्रह[3] (सचित्र, दो भाग) आदि।

[2] स्टैफिन ज्वाइग के 'Beware of pity' नामक उपन्यास का अनुवाद।

[3] इस संग्रह का एक भाग पटना छपने के लिए दिया गया और दूसरे भाग बम्बई। ये कहानियाँ वि ाल-भारत में समय-समय पर छपा करती थीं। संग्रह का अभी तक नामकरण नहीं हुआ है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० पं० शर्मा का प्रबल व्यक्तित्व बहुमुखी है। परन्तु उनके व्यक्तित्व के जिस रूप का हिन्दी जगत् पर सबसे अधिक जादू है वह तो एक श्रेष्ठ शिकारी का ही है—इसमें दो राय नहीं। शर्माजी की कलम और बन्दूक दोनों का निशाना अमोघ है। उनके सम्बन्ध में पं० पद्मसिंह शर्मा ने ठीक ही लिखा है—"श्रीरामजी तो उत्तरोत्तर गजब ढा रहे हैं। बन्दूक से बढ़कर इनकी लेखनी का निशाना बैठता है, पढ़ने वाला तड़पकर आपकी दृष्टि में प्रकृति-दर्शन और रायफल का योग पाण्डित्य और योग के मिलन के सदृश है। भले ही शिकार खेलने में अनेक दोष हों' परन्तु शर्माजी को यह भली प्रकार विदित है कि 'तुन्दघटे, कछुमेद कटे' के अतिरिक्त प्रकृति का आनन्द और सूर्योदय से पूर्व उठने का मजा शिकारी हीं प्राप्त करता है।[1] पंडित शर्मा ने शिकार-क्रीड़ा को कला की दृष्टि से ही देखा है, उससे उदर-पूर्ति का काम उन्होंने नहीं लिया। 'शिकार' नामक उनकी पुस्तक का निम्नलिखित कथन इस बात का प्रमाण है—"उनमें (शिकारी मित्र पं० लक्ष्मीदत्त) और मुझ में एक भारी भेद है। उन्हें शिकार खेलने और खाने दोनों का शौक है। मैं शिकार खेलने को कला की दृष्टि से देखता हूँ।[2] वास्तविकता तो यह है कि शर्मा जी के शिकारी व्यक्तित्व के लिए बाल्य-काल से ही पशु-पक्षियों एवं पौधों से प्रेम, ग्रामीण-जीवन, तरुणावस्था का जोश, पहाड़ी इलाका एवं शिकारी मित्रों का साहचर्य आदि कुछ ऐसे प्रेरक तत्त्व रहे हैं जिन्होंने उन्हें केवल एक श्रेष्ठ शिकारी ही नहीं बनाया बल्कि शिकार साहित्य का भी एक यशस्वी एवं गण्यमान लेखक बना दिया।

इस एटम-बम के जमाने में खेल के वर्णन के अतिरिक्त वीर रस की उपलब्धि का दूसरा साधन शिकार (मृगया) वर्णन ही है। साथ ही शिकार-वर्णन अद्भुत रस की अनुभूति कराने का भी सबल माध्यम है। प्राचीन काल में क्षत्रिय राजाओं का शिकार खेलना (मृगया या आखेट) उनकी वीरता, धनुर्विद्या के अभ्यास का एक अनिवार्य अंग था। कालिदास ने अपने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शिकार (मृगया) के गुणों का वर्णन किया है। जंगलों की न्यूनता तथा सरकारी प्रतिबन्धों के कारण शिकारियों का यह शौक नित्य-प्रति लुप्त होता चला जा रहा है। यही कारण है कि शिकार सम्बन्धी साहित्य की ओर लेखकों का ध्यान कम है। हिन्दी-साहित्य के पत्र-पत्रिकाओं में ही यदा-कदा शिकारियों के द्वारा वर्णित उनके सिंह, चीते, अजगर आदि जंगली जानवरों के शिकार से सम्बन्धित रोमाञ्चकारी किस्से पढ़ने को मिल जाते हैं परन्तु पुस्तकाकार रूप में उनका नितान्त अभाव है। निस्सन्देह पं० श्रीराम शर्मा ने हिन्दी साहित्य के इस अभाव की पूर्ति की है। शिकार-साहित्य से सम्बन्धित उनकी कई कृतियाँ हैं जिनमें कुछ कृतियाँ मौलिक हैं और कुछ अनूदित जैसे—शिकार, जंगल के जीव, प्राणों का सौदा, भारत के जंगली जीव, भारत के वन्य पशु, वनवासी, रुद्रप्रयाग का आदमखोर बघेरा (अनुवाद) देवालय का शेर तथा कुमायूं के अन्य आदमखोर (अनुवाद), नयना सितमगर आदि। इनमें 'शिकार' नामक कृति में स्वयं लेखक द्वारा शिकार की हुई घटनाओं का वर्णन है। 'जंगल के जीव' नामक पुस्तक में जानवरों के जीवन चित्र हैं। मेरा अपना अनुमान है कि भारत की किसी भी भाषा में इस प्रकार की पुस्तक का अद्यावधि अभाव है। 'प्राणों का सौदा' में सच्ची शिकार कथाओं का ही लेखक ने वर्णन किया है जिन का सम्बन्ध कुछ देशी शिकारियों से है और कुछ विदेशी शिकारियों से। 'भारत के जंगली जीव' लेखक द्वारा उस समय लिखी गई जब वे पूर्ण अन्धत्व की अवस्था में थे। इस पुस्तक में यह ध्यान रखा गया है कि साधारण से साधारण पाठक को भी

पं० शर्मा कभी इसका शीर्षक 'मोटे अक्षरों की कहानियाँ' लोक-कथाएँ ही हैं। यह जानकारी मुझे पं० शर्मा की सुपुत्री कुमारी कमला शर्मा से प्राप्त हुई है।

[1] शिकार—श्मशान के सींग, पृ० १६३

[2] शिकार—मौत के मुँह में, पृ० ६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। 'भारत के वन्य पशु' कुछ उच्च स्तर के पाठकों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर लिखी गई है। 'रुद्र प्रयाग का आदमखोर बघेरा' और 'देवालय का शेर तथा कुमायूँ के अन्य आदमखोर' अनूदित कृतियाँ हैं। मूल लेखक जिम कॉर्बेट हैं। 'नयना-सितमगर' में Wide World Magazines के आधार पर विदेशी शिकारियों की सच्ची शिकार कथाओं का वर्णन है। इस प्रकार पं० शर्मा का साहित्य जंगली पशु-पक्षी और शिकार के कहानी एवं स्केचों से भरा पड़ा है। आपकी कोई शिकार सम्बन्धी पुस्तक पाठक पढ़ने को बैठ जाये तो वह पढ़ने में इतना तल्लीन हो जाता है कि जब तक पूरी किताब समाप्त नहीं कर लेगा तब तक छोड़ने की इच्छा ही नहीं होगी। यद्यपि इस प्रकार का साहित्य महिलाओं की प्रकृति के अनुरूप नहीं होता परन्तु पं० शर्मा की कलम की यह विशेषता है कि चाहे कोई स्त्री हो या पुरुष, वह ऊबता नहीं। यही कारण है कि अनेक महिलाओं ने पं० शर्मा के इस कौशल की प्रशंसा की है।

वास्तव में बात तो यह है कि पं० शर्मा एक प्रसिद्ध और अचूक निशान लगाने वाले शिकारी ही नहीं अपितु एक ऐसे उत्कृष्ट लेखक भी हैं कि उनके लेखों का निशान ठीक पाठकों के हृदयों पर जाकर चोट करता है और पढ़ने वाला लोट-पोट हो जाता है। स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा का यह कथन अक्षरशः सत्य ही है कि "आप लेखों में शिकार (बध्य पशु) और शिकारी की चित्तवृत्ति का ऐसा जीता-जागता चित्र खींचते हैं कि देखकर सहृदय पाठक आश्चर्य चकित रह जाता है—लेखक का कलम चूमने को जी चाहता है। कालिदास ने मृगया की प्रशंसा में जो यह लिखा है—'सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भय-क्रोधयोः'—(चित्तवृत्ति पशून की जानि परे भय क्रोध में लेति लपेट घने)—उसकी यथार्थता का पूर्ण परिचय आपके शिकार-सम्बन्धी लेखों में मिलता है।"

पं० श्रीराम शर्मा के शिकार सम्बन्धी साहित्य के स्थायित्व का कारण प्रायः मौलिक विषय का चुनाव ही माना जाता है। परन्तु हमारी यह दृढ़ धारणा है कि इसके लिये बहुत कुछ उत्तरदायित्व उनकी विषय परिज्ञान—क्षमता, वर्णन-शैली तथा भाषा पर है। पं० शर्मा को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान है। उनके शिकार सम्बन्धी कुछ स्केचों के उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है, जैसे—

(१) काकड़ (Barbing dear) प्रायः भयभीत होकर या बाघ को देखकर बोलता है।[1]

(२) वर्षा के दिनों में हिरन झील-झिलोर के स्थानों को छोड़कर, भूड़ों की ऊँची जगह पसन्द करते हैं।[2]

(३) मनुष्य भक्षी बाघ लाश पर दुबारा नहीं आता[3]।

(४) बाघ के नख की चोट से घाव विषैला (Septic) हो जाता है।[4]

यही नहीं, किस प्रकार बाघ को शिकारी अपने जाल में फँसाता है, शिकार करते समय शिकारी की मनःस्थिति किस प्रकार की होती है आदि का सूक्ष्म विवरण भी श्रद्धेय शर्मा की इन कृतियों में मिलेगा।

विषय को स्पष्ट और मनोरंजक बनाने में लिए शर्माजी बीच-बीच में लघु कहानियों (जिनसे सर्व साधारण परिचित है) का भी प्रयोग करते चलते हैं। कभी स्त्रियों (घसियारिनों) की मजबूरी का वर्णन करते समय वे गांधारी की कथा का उल्लेख करते हैं तो कभी अपनी बाघ से भिड़न्त के समय उन्हें दारा और औरङ्गजेब के क्रिया-कलापों का स्मरण हो उठता है।

भाषा-शैली ने भी विषय की लोकप्रियता में काफी योग दिया है। शर्माजी भाषा के सरल रूप को अपनाना ही अधिक अच्छा समझते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि क्लिष्ट भाषा का प्रयोग या संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग उनकी शक्ति के परे

[1] शिकार-मौत के मुँह में, पृ० ७०
[2] वही, बंडा और वाद-विवाद, पृ० ११२
[3] वही, करने की खोज में, पृ० ९२
[4] वही, मौत के मुँह में, पृ० ७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। जहाँ कहीं उचित वर्णन (प्रकृति वर्णन जैसे) आया है वहाँ उनकी भाषा भी विषयानुसार परिवर्तित हो गई है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग है और तद्भव शब्दों का भी। देशज शब्द जैसे घोक, ठूँठ, 'भूड़ो, थूथड़ी आदि भी आगए हैं। विदेशी शब्दों का तो जाल ही बिछा हुआ है। जैसे—कुर्बान, खयाल, रहनुमा, हजरत, अदा, कदर आदि शब्दों के इस विविध रूप का कारण पं० शर्मा का अपना निजी दृष्टिकोण है। वे भाषा को सरलता की ओर ले जाना चाहते थे। यत्र-तत्र मार्मिक सूक्तियाँ भी उनके शिकार सम्बन्धी साहित्य की प्राण हैं, जैसे, बाघ जंगल का कूटनीतिज्ञ चाणक्य है, मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन रक्षा के अनेक सहारे। शैली के तो शर्माजी सशक्त प्रयोक्ता हैं। उनकी वर्णन-शैली में एक प्रकार का 'फोर्स' रहता है और ओज भी। उनकी लेखनी और शैली की स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी प्रशंसा की है।

अन्ततः डा० सम्पूर्णानन्द के शब्दों में "शिकार साहित्य के लेखक के रूप में श्री शर्माजी की सेवाएँ हमेशा याद की जायँगी। अगर मेरा कथन अतिशयोक्ति न समझा जाय तो कहूँगा कि इस क्षेत्र में लिखने वाले ये अकेले लेखक हैं।" शिकार (मृगया) विषय पर पं० शर्मा के बाद हिन्दी के कई लेखकों जैसे 'विराज' आदि ने भी लिखा है। परन्तु शर्माजी की 'शिकार' 'प्राणों का सौद्य' और 'जङ्गल के जीव' से भी विराजजी की 'वनराज के देश में' जैसी कई पुस्तकों से तुलना करने पर स्पष्ट विदित होगा कि विराजजी में सूक्ष्म-निरीक्षण की कमी है। पुस्तकें पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उनके शिकार सम्बन्धी वर्णन "बोगस शिकार के हैं, वास्तविक खतरे का सामना जब तक मनुष्य नहीं करता तब तक उसके हृदय में चकित कर देने वाली भावनाएँ उत्पन्न होती ही नहीं।"

—हिन्दी विभाग, आगरा कालेज, आगरा।

(पृष्ठ ७६ का शेषांश)

एक और बात है जो पन्त की इन कविताओं को देखकर स्पष्ट होती है, कि पन्त का दृष्टिकोण जो भी कुछ जीवन और जगत के सम्बन्ध में है वह अरविन्द दर्शन में अपनी संपुष्टि पाता है। अतएव पन्त ने अरविन्द दर्शन को बुद्धि से ही ग्रहण किया है। अरविन्द दर्शन से परिचित होने के पूर्व पन्तजी के ये विचार असम्बद्ध थे, यद्यपि अग्रसर उसी दिशा में थे, पर अरविन्द दर्शन से परिचित होने के बाद दिशा निश्चित होगई, आधार सुदृढ़ हो गया।

पन्तजी की प्रारम्भिक रचनाओं में अर्थात् उनकी मार्क्सवादी रचनाओं से पहले तक की रचनाओं में कुछ तत्व मिलते हैं जैसे मार्क्स से प्रभावित पन्त में इनका तिरोभाव है, पर ये तत्त्व थे कवि पन्त में स्थाई, अवश्य ही कुछ समय के लिए वे हल्के पड़ गये। यही तत्त्व पुनः उभरे और अरविन्द में इन्हें दृढ़ आधार मिल गया। आचार्य डा० नगेन्द्र ने लिखा है—

"मार्क्सवाद का भौतिक सङ्घर्ष, निरीश्वरवाद अथवा अनात्मवाद, पन्त जैसे कोमलप्राण व्यक्ति का परितोष नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति के लिए आस्तिकता अनिवार्य हो जाती है और आत्मा तथा ईश्वर में ही उसे, अन्त में जीवन और जगत का समाधान मिलता है। अतएव स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण का प्रकाशन और उनमें अभिव्यक्त पन्त का परिवर्तित दृष्टिकोण हमारे लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मानव मनोविज्ञान से अभिज्ञ संस्कारों में विश्वास रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसे स्वाभाविक घटना मानेगा।" (विचार और विवेचन, पृ० १००)

—३८४ I, भूपालपुरा, उदयपुर (राज०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्तजी का नवचेतना काव्य

• • •

डा० कृष्णकुमार शर्मा

यों तो कवि पन्त में युगीन चेतना के प्रति संवेदना का भाव परिलक्षित होता है, पर उनकी परिणति इस चेतना की अभिव्यक्ति में नहीं है। पन्त ने प्रारम्भिक काव्य से लेकर नूतनतम काव्य का निरीक्षण उनके वैचारिक विकास क्रम को स्पष्ट कर देता है। पंत काव्य को सरलता से तीन भागों में रखा जा सकता है—वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुञ्जन और ज्योत्स्ना तक पन्त की विचार धारा का एक क्रम है। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में दूसरा, जो मार्क्सवाद से प्रभावित है। मार्क्सवादी विश्वासों का प्रतिफलन इन कृतियों में है। और तृतीय क्रम है—स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण और उत्तरा का। इन कृतियों में पन्त के नवीन जीवन दर्शन का दर्शन मिलता है। यह दर्शन अरविन्द के दर्शन से प्रभावित है। इस सन्दर्भ में श्री बच्चन ने लिखा है—

"१९४२ में जब वे मेरे साथ रहने को आये थे, तब भी उनकी पुस्तकों में The Life Divine के तीनों भाग थे। और वे अक्सर श्री अरविन्द और उनके आश्रम के विषय में बातें किया करते थे। अब परिस्थिति और भाग्यवश वे ऐसी जगह आ गये थे जहाँ से पाण्डिचेरी के सन्त का आश्रम बहुत दूर नहीं था। उन्होंने कई बार आश्रम की यात्रा की और माताजी और श्री अरविन्द के दर्शन किये। उन्होंने श्री अरविन्द के मानव, अतिमानव और अधिमानस सम्बन्धी विचार और दर्शन को अधिक से अधिक समझने का प्रयत्न किया।.........अबकी बार जब वे आये तो पूरे अरविन्दवादी हो चुके थे।"—(कवियों में सौम्य सन्त, पृ० ७८-७९), पन्तजी ने 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' की रचना इसीकाल में की है। 'स्वर्णकिरण' और उत्तरा में अरविन्द दर्शन के स्वर ही प्रमुख हैं। अरविन्द दर्शन के जीवन और जगत सम्बन्धी विचारों को, भावनाओं और विश्वासों को इन काव्य कृतियों में प्रतिपाद्य बनाया गया है।

वस्तुतः सत्य यह है कि अरविन्द दर्शन पन्त की प्रकृति के अनुकूल था। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि मार्क्सवाद पन्त के स्वभाव के अनुकूल न था क्योंकि पन्त के व्यक्तित्व में वह काठिन्य और दृढ़ता नहीं है जो मार्क्सवाद के लिए अपेक्षित है—(देखिये 'विचार और विवेचन' पृ० १००)

पन्त ने अपनी 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को वाणी दी थी, यह कहा जा चुका है, परन्तु इसके तुरन्त बाद ही, जब वे अरविन्द दर्शन के प्रभाव में नहीं थे उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों के साथ अध्यात्म के समन्वय का प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। पन्त की प्रारम्भिक कल्पना को, सौन्दर्य चेतना को और भावना को अरविन्द दर्शन ने एक आधार दिया। अतः उत्तर पन्त को समझने के लिए अरविन्द दर्शन की पृष्ठभूमि को जान लेना भी आवश्यक होता है। अरविन्द दर्शन ही काव्य में नवचेतनावाद कहलाता है। वैसे तो भक्ति, अध्यात्मवाद और रहस्यवाद इन तीनों में चेतना के विकास के प्रश्न का समाधान किया गया है। परन्तु अरविंद दर्शन, इन तीनों से भिन्न चेतना सम्बन्धी दर्शन को प्रस्तुत करता है, इसी हेतु उसे नवचेतनावाद नाम दिया गया है। अरविन्द दर्शन में ब्रह्म, जीव और जगत की अपनी ढंग से तर्कपूर्ण व्याख्या है। अरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन न तो एकान्त आध्यात्मिकता को पर्याप्त मानता है और न केवल भौतिकता को ही। भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय से ही जीवन का सम्यक् उन्नयन सम्भव है। जीव और जगत ब्रह्म की एक ही चेतना से युक्त हैं, क्योंकि एक ही चेतना दोनों में (जीव और जगत) है अतएव दोनों एक हैं। जीवात्मा का आगमन नहीं होता, वरन् वह इसी जगत में व्याप्त है। जीव तत्त्व का विकास होता है, यह विकास अधिमानस तक होगा। जब यह अधिमानस की स्थिति में पहुँच जायगा तब ईर्ष्या, द्वेष आदि से मुक्त होगा और अपने को पूर्ण शक्ति से युक्त अनुभव करेगा। जीव का विकास इस दिशा में हो रहा है।

कवि पन्त के नव-चेतना वाद पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूपेण लक्षित होता है। अरविन्द-दर्शन के अनुरूप, कवि पन्त भी समन्वय को महत्त्व देते हैं, अध्यात्म और भौतिकता, हृदय और बुद्धि, जड़ और चेतन इनके सम्यक समन्वय पर ही पूर्ण विकास सम्भव है। स्वर्ण किरण काव्य संग्रह की प्रथम कविता अभिवादन में अरविन्द-दर्शन की दिव्य ज्योति के अवतरण की कल्पना की अभिव्यक्ति है। यह दिव्य ज्योति जब उतरती है तो सृष्टि किस प्रकार प्रभावित होती है, इसका वर्णन पंतजी ने किया है। दिव्य ज्योति को पंतजी ने स्वर्ण किरण कहा है। क्योंकि पंतजी प्रथम तो कवि हैं अतः उपयुक्त उपमान द्वारा उस ज्योति को साकार करने का प्रयत्न किया है। जिसकी अनुभूति अधिमानसीय स्थिति में सम्भव है। कवि ने कहा है कि इस स्वर्ण-किरण (दिव्य ज्योति) के अवतरण के समय—

हँसी, तो स्वर्ण-किरण
शिखर आलोक वरण
विचरती स्वर्ण-किरण
धरा पर ज्योति-चरण
....
सरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर
(स्वर्ण किरण पृष्ठ १)

अरविन्द दर्शन सम्पूर्ण जगत्, जड़ और चेतन को ब्रह्म की शक्ति से व्याप्त मानता है। ब्रह्म की शक्ति का स्पर्श, तम् का विनाश करता है और आत्म को पहचानने की सक्षमता देता है—

युगों का तमस् हरण,
करे यह स्वर्ण किरण।
(स्व० कि० पृ० २)

हम पहले ही कह चुके हैं कि जड़ में चेतन सत्ता की स्थिति अरविन्द दर्शन मानता है। जड़ स्थित यह चेतन-सत्ता सुप्त स्थिति में रहती है। ब्रह्म की चेतना का स्पर्श प्राप्त कर यह जागृत हो जाती है। इस जागृत अवस्था का कवित्वपूर्ण वर्णन कवि पंत ने किया है—

प्राणों में संगीत दिया भर
स्वर्ण-कामना का घूंघट नव
डाल-धरा के मुख पर सुन्दर,

स्वर्ण-कामना के घूंघट के गिरने पर जीवन का कटु संघर्षण मिट जाता है। नवीन स्वप्नों की उद्भावना होती है। नवीन ज्योति के वर्षण के कारण ही यह नव स्वप्नों की कल्पना सम्भव है :—

जगजीवन के नव स्वप्नों की
ज्योति वृष्टि में स्नान कर अमर
(स्वर्ण किरण)

पंतजी को अपने जीवन में यह अनुभूति हो गई थी कि केवल भौतिकता पर आधारित जीवन पूर्ण नहीं है। इसीलिये उन्होंने कहा था—

"मैं अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की, सामन्तकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकांत परिणति व्यक्ति की जीवन मुक्ति में हुई है और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्ग युद्ध और रक्तक्रान्ति में परिणत हुई है—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।" (आ. ६ की भूमिका पृ. २४)

इसी कारण पंतजी ने आध्यात्मिक मानववाद की स्थापना की है। उनके इस आध्यात्मिक मानव वाद को 'स्वर्ण-किरण' 'स्वर्णोदय' शीर्षक कविता में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा जा सकता है—

भू रचना का भूतिवाद युग
हुआ विश्व इतिहास में उदित
सहिष्णुता सद्भाव शान्ति के
हों गत संस्कृत धर्म समन्वित
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग्भ्रम
मानवता को करे न खंडित
वहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अन्तर्दृष्टि-ज्ञान से योगित
एक निखिल धरणी का जीवन
एक मनुजता का संघर्षण
विपुल ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम कर करे उन्नयन

भौतिकता का विकास आज जिस तीव्र गति से हो रहा है, जीवन की कुरूपताएँ भी उसी गति से उजागर हो रही हैं। एकांगी भौतिक विकास के परिणाम स्वरूप जीवन में द्रोह, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि पनप रहे हैं।

कहा जा चुका है कि अरविन्द दर्शन की मान्यतानुसार जब पूर्ण समर्पित होकर मानव ऊर्ध्व चेतन की ओर उन्मुख होता है तब दिव्य ज्योति भी उसकी ओर अवतरित होती है, यही शक्ति का अवरोहण कहलाता है। स्वर्ण-किरण की कतिपय रचनाओं में इस दिव्य शक्ति के आरोहण का आख्यान भी मिलता है। 'भारत', 'स्वर्ण निर्झर', 'ऊषा' आदि कविताएँ ऐसी ही हैं। 'हिमाद्रि और समुद्र' में चेतना के दोनों स्वरूपों का कथन है। हिमाद्रि उच्च स्वरूप का प्रतीक है और समुद्र निम्न का, इस कविता में जड़ और जंगम दोनों में ही एक दिव्य सत्ता की अनुस्यूति की मान्यता प्रकट हुई है—

वह शिखर–शिखर पर स्वर्गोन्नत
स्तर पर स्तर ज्यों अन्तर्विकास
चढ़ सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद्नभ में
करता हो शुचि शाश्वत विलास।

(स्वर्णकिरण पृ० ४५)

अरविन्द की यह मान्यता, कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, पूषण कविता में व्यक्त है।

अधिमानस की अभिव्यक्ति चन्द्रोदय शीर्षक कविता में देखी जा सकती है—

"वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमनसा,
मानस के अवगुण्ठन के भीतर पूषण सा,
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर-झर
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वर्जीवन भर।"

अतिमानव के स्वरूप की व्याख्या अरविन्द दर्शन की चरम उपलब्धि है। कवि पन्त ने भी इसे अपने काव्य में प्रकट किया है। पन्तजी ने इसे 'स्थितप्रज्ञ' भी कहा है—'कौए के प्रति' रचना में यही वर्ण्य है—'सबके साथ अपापविद्ध, स्थितप्रज्ञ रहे जग में नर।"

'कला और बूढ़ा चाँद' की रचनाओं में भी अरविन्द दर्शन का प्रभाव है। 'अवरोहण' कविता में अरविन्द ने 'आरोहण-अवरोहण' का और उसके प्रभाव का वर्णन है—

"मन के समस्त दुर्ग
यम नियम की दीवारें
टूट कर
छिन्न भिन्न हो गई।
तुम्हारे उन्मत्त शक्तिपात की
रति क्रीड़ा के लिए
मेरी कोमल तृणों की देह
लोट पोट हो
बिछ-बिछ जाती है

× × ×

सौ-सौ अग्नि लपटों में उठ
मेरी चेतना
सजग हो उठती है
तुम्हारा विद्युत आनन्द
भाव प्रलय मचाकर
नयी सृष्टि करता है।"

(कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १२४-१२५)

पन्तजी के काव्य में नवचेतनावाद का एक विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया। परन्तु, एक बात जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खटकती है वह यह कि यह नवचेतनावाद आरोपित सा है। पन्तजी ने अरविन्द दर्शन को बुद्धि से ग्रहण किया है, भोक्ता की तल्लीनता और तज्जन्य अनुभूति की तीव्रता इसमें नहीं है। कहीं-कहीं तो एकदम सीधे अरविन्द दर्शन को कविता की सूरत में लिख दिया गया है। पता नहीं क्यों पन्तजी जिस दर्शन को जिस समय अपनाते है, कविता में भी उसे उतारना अनिवार्य मानते हैं। एक समय जब मार्क्स से अभिभूत थे तो मार्क्स दर्शन को कविता के माध्यम से व्यक्त करते रहे। फिर जब वे अरविन्द दर्शन से प्रभावित हुए तो अरविन्द दर्शन को अभिव्यक्ति देने लगे। पन्तजी, न जाने क्यों यह नहीं समझ पाते कि कविता, किसी दर्शन अथवा राजनीतिक मतवाद को प्रकट करने का माध्यम भर नहीं है। अरविन्द अथवा मार्क्स दर्शन का स्पष्टीकरण कविता नहीं है। मेरी अपनी मान्यता तो यह है कि काव्य में अभिव्यक्त होकर दर्शन और भी दुरूह हो जाता है। दार्शनिक जिस अनुभव को जीकर सत्य की उपलब्धि करता है, उसे वह अपने ढंग से व्याख्यायित करता है। कवि दार्शनिक के उपलब्ध सत्य को तो ले लेता है पर उसकी अनुभूति कहाँ से लाये अतएव वे सब बातें आरोपित सी ही लगती हैं। पन्तजी के साथ यह छलना ही रही है, प्रगतिवादी होकर जब वे कृषक आदि के प्रति संवेदनशील हो उठे तो यह संवेदना भी बौद्धिक अधिक लगी अनुभूत कम। जब वे अरविन्द दर्शन के प्रति आकृष्ट हुए तो यहाँ भी वही स्थिति हुई। सम्भवत: पन्तजी किसी भी दर्शन को इसीलिए अपनाते हैं कि कविता में कुछ नया कह सकें। सम्भवतः इसी कारण वे अपने पाठकों के लिए दुरूह हो जाते हैं, यह नहीं कि पाठकों की उपेक्षा से पन्तजी अपरिचित हों—वे इसे जानते है, उन्होंने लिखा है --

"स्वर्णकिरण की काव्य दृष्टि को मेरे आलोचकों ने समन्वयवादी जीवन दर्शन कहकर आत्म-सन्तोष कर लिया है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उसके पुष्कल चैतन्य की उन्होंने जान बूझकर उपेक्षा की है। नहीं, उसकी ओर उन्होंने सम्भवत: यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है। और उसे समझने की चेष्टा भी नहीं जाग्रत हुई है। सम्भवत: समय आने पर स्वर्णकिरण के युग के युग की रचनाएँ जिनमें मेरी इधर की सभी रचनाएँ सम्मिलित हैं, पाठकों एवं आलोचकों के ध्यान, अधिक आकृष्ट कर सकेंगी और उनके लिए अधिक न्याय हो सकेगा।"

(सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० २७७—श्री वि० मानव)

पन्तजी ने उपयुक्त कथन में यह आशा व्यक्त की है कि कभी उनकी स्वर्णकिरण का मूल्य आंका जायेगा। परन्तु वस्तुस्थिति को देखते हुए मुझे ऐसी आशा नहीं है, वर्तमान परिस्थितियों और समस्याओं का समाधान अरविन्द दर्शन के पास है, ऐसा सोचना ठीक नहीं है। अतः उत्तर पन्त की रचनाएँ पाठक को आकृष्ट नहीं कर पातीं। इसका एक कारण और भी है, पन्तजी की इन रचनाओं में प्रतीक योजना भी विशिष्ट है, वह अरविन्द दर्शन के सिद्धान्तों को व्यक्त करने हेतु है। जब तक अरविन्द दर्शन को पहले से न समझा जाय तब तक कवि पन्त की इन रचनाओं को समझ पाना कठिन है। इसका सीधा अर्थ यह है कि पहले पाठक अरविन्द दर्शन का अध्ययन करे, अधिमानस, अतिमानव, दिव्य-ज्योति और उसके आरोहण-अवरोहण को समझे तब पन्त का नवचेतनावाद और उससे संपुष्ट कवित्व समझ में आये। दर्शन ही यदि समझना और पढ़ना है तो सीधे अरविन्द दर्शन को ही पढ़ना उचित होगा, कोई कविता के माध्यम से क्यों पढ़ेगा? कवि बच्चन ने ठीक ही कहा है कि—

"श्री अरविन्द के दर्शन, विचार, भावों और स्वप्नों की व्याख्या स्वर्णकिरण और उत्तरा में अधिक तत्परता के साथ की गई है। मेरी सम्मति में जब तक कोई यह न जानले कि श्री अरविन्द की आस्था क्या है, उनकी दृष्टि किस ओर है, मानव जाति और संसार के भविष्य के विषय में उनकी कल्पनाएँ क्या हैं, तब तक उसके लिए इन पुस्तकों को समझना सम्भव न हो सकेगा।"

(कवियों में सौम्य सन्त, पृ० ८२)

(शेष पृष्ठ ७२ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

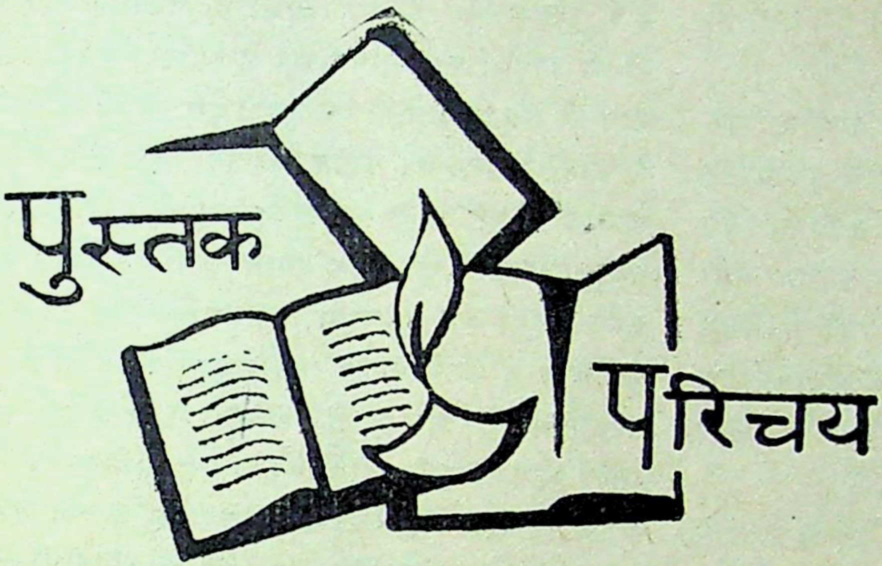

समालोचनार्थ
प्रत्येक पुस्तक
की
दो प्रतियाँ
आनी चाहिये

आलोचना

मानस अनुशीलन—

लेखक–स्व० श्री शम्भुनारायण चौबे, संपादक–श्री सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। पृ० ५३२, मूल्य १६.७५

समालोच्य ग्रन्थ तुलसी कृत 'रामचरितमानस' की प्राप्त प्रतियों के आधार पर लिखी गयी एक शोध पूर्ण कृति है। मानस की लोकप्रियता के कारण इस पर अब तक बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु रामचरित मानस के पाठों की समस्या बहुत उलझी होने के कारण लोग उसके यथार्थ से बहुत दूर थे। लेखक ने प्रस्तुत ग्रन्थ में कितनी ही हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर पूरी तरह छानबीन कर पाठभेदों को समझा है और उन्होंने अपनी टिप्पणियों में लिखा है। इस ग्रन्थ को छः विभिन्न उपांगों में विभक्त कर मानस की व्याख्या की गई है। प्रारंभ में रायकृष्णदास की भूमिका के साथ सम्पादक श्री सुधाकर पाण्डेय की एक वृहत प्रस्तावना भी है जो कि ग्रन्थ की महत्ता के बारे में अच्छा प्रकाश ही नहीं डालती वरन् उससे उसके सन्दर्भ के कुछ नवीन तथ्य सामने आते हैं। लेखक मानस मराल स्व० चौबे ने इस ग्रन्थ को सन् १९४७ में ही पूर्ण कर दिया था किन्तु उनके अकाल ही काल ग्रस्त हो जाने से यह पुस्तक ठीक २० वर्ष बाद प्रकाशित हुई है।

लेखक ने प्रारम्भ में ही मानस के प्रामाणिक मूल पाठों को प्रतियों के आधार पर एक दिशा प्रदान की है फिर सम्पूर्ण मानस की टीका टिप्पणियाँ और कुछ दोहों और चौपाइयों की विशद व्याख्या की है। इन सबके अतिरिक्त रामचरित सम्बन्धी अन्य कवियों के स्वतन्त्र ग्रन्थों पर भी दृष्टिपात किया गया है।

रामचरितमानस की कुछ अर्द्धालियों के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद सा है, और कुछ अपने अपूर्ण रूप में प्राप्त हैं। विद्वान लेखक ने इन सबका समाधान करने की चेष्टा की है। मानस के प्राचीन क्षेपकों की भी काण्डानुसार व्याख्या की गई है।

इन सबसे जो बहुत ही महत्वपूर्ण बात इस ग्रन्थ में है, वह है मानस की वर्तनी समस्या। लेखक ने बड़े ही तर्क एवं परिश्रम के साथ उनका एक मापदण्ड स्थिर किया है। सम्पूर्ण मानस की उलझी हुई वर्तनी की एक लम्बी सूची दी गई। इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने तुलसीदास के मूल रूप को पहचानने का कितना अधिक परिश्रम किया है। केवल पाठभेदों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना ही उसे यथेष्ट नहीं था वरन् उसके अन्तराल को स्पर्श करना और फिर उसमें लीन हो जाना ही उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा है।

इन सबके अतिरिक्त तुलसीदास के प्रामाणिक चित्र की भी एक समस्या है। इस ग्रन्थ में तुलसीदास जी के आठ चित्र दिए गए हैं, उनमें कौन सा चित्र कितना प्रामाणिक है, इसका भी समाधान किया गया है। साथ ही पञ्चायतनामे का चित्र भी है जिसमें तुलसीदासजी का भी हस्तलेख है। इसके अलावा अन्य प्रतियों की कुछ पुष्पिकाएँ भी दी गई हैं जोकि विषय की महत्ता को समझने में सहायता देती हैं।

मानस के पाठों की जो समस्या हिन्दी-जगत में व्याप्त थी, उसका प्रामाणिक एवं तथ्यपूर्ण निवारण प्रस्तुत करने की चेष्टा इस ग्रन्थ द्वारा की गई है। यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य है कि इतनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक बहुत दिनों तक अप्रकाशित रही। यदि इसका प्रकाशन लेखक के जीवन में ही हो जाता तो सम्भव है कि मानस के अनुशीलन में कोई और ही नवीन एवं महत्त्वपूर्ण मार्ग का संकेत प्राप्त हो जाता।

तुलसी काव्य-मीमांसा—

लेखक—डा० उदयभानुसिंह, प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ० ५०२, मू० १८.००

समालोच्य पुस्तक गोस्वामी तुलसीदास के सभी प्रामाणिक ग्रन्थों को एक ही शृङ्खला में रखकर लिखी गई है। ग्रन्थों के पाठों के निर्धारण एवं प्रतियों की प्राचीनता के लिए डा० माताप्रसाद गुप्त के ही निर्णय को उचित मानकर व्याख्या की गई है। कथावस्तु एवं काव्य-सिद्धान्तों को लेखक ने मौलिकता का रूप तो दिया है किन्तु वह प्राचीन मान्यताओं से दूर न हो सका। तुलसीदासजी के भाव एवं कला दोनों पक्षों का विशद् रूप में अध्ययन करके, फिर ग्रन्थों को दृष्टि में रख कर आँका गया है। मौलिक उद्भावनाओं, चिन्तन, दर्शन एवं राम के लिए तुलसी साहित्य का यह ग्रन्थ निश्चय ही अपने में अनूठा एवं उत्कृष्ट है।

तुलसी-साहित्य के प्रत्येक प्रकरण को अलग-अलग रखकर प्रकीर्तित करना भी इसकी निजी विशेषता है। पुस्तक के अन्तिम अंशों में तुलसीदासजी की प्रसिद्ध कृतियों का विषद् रूप में व्याख्या करना और साथ ही उसका साहित्यिक मूल्याङ्कन करने में लेखक ने अपनी विद्वत्ता का पर्याप्त परिचय दिया है। भक्तिकालीन कवियों में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य में तुलसीदासजी का प्रमुख स्थान है। जन-मानस तक अपने भावों को पहुँचाना तुलसीदासजी अच्छी तरह जानते थे। उनके काव्य की मधुरता एवं भावों की उत्कृष्टता के कारण ही उनका साहित्य युगों तक स्तुत्य रहेगा। इसी लोकपरकता एवं समन्वयवादिता के कारण उनकी कृतियों की प्रतियों के बारे में अनेक समस्याएँ एवं उलझनें हैं। पर लेखक ने बड़े ही चिन्तन एवं अध्ययन के आधार पर उनको सुलझाने का प्रयास किया है।

पुस्तक में यत्र-तत्र तुलसी के दर्शन की झलक भी मिल जाती है। तुलसीदासजी के समस्त काव्यों की व्याख्या एवं प्रामाणिकता के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। तुलसीदासजी के साहित्य को पढ़ने के लिए लेखक ने अब तक उपलब्ध प्राय: समस्त सामग्री का उपयोग कर उसका वर्णन किया है। जीवन सम्बन्धी भ्रान्तियों को तर्क के आधार पर मान्यता देना भी लेखक ने अपनी पुस्तक में पूर्ण संचेतना के आधार पर किया है। साथ ही पाठकों की सुविधा के लिए, उनके बारे में पूर्ण जानकारी देने के लिए, उसकी प्रकीर्णिका भी दी है। अतएव समग्र रूप से इस पुस्तक में तुलसी विषयक प्राय: समस्त सामग्री प्राप्त हो जाती है। हम चेष्टा करेंगे कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पर एक स्वतन्त्र लेख प्रकाशित हो।

नन्ददास : जीवनी और काव्य—

लेखक—डा० भवानीदत्त उप्रेती, प्रकाशक—रामबोध पुस्तक मन्दिर, हुड़ेती, पिथौरागढ़। पृ० संख्या ३००, मूल्य १२.००

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। अष्ट छाप के कवियों में नन्ददास की स्थिति अभी तक बड़ी ही दूरूह एवं उपेक्षित सी थी किन्तु जब से मध्य-काल का विशिष्ट अध्ययन हुआ है तब से इनके महत्व को आंका गया। कृष्ण परक कवियों में नन्ददास का अपना मौलिक एवं प्रमुख स्थान रहा है। अभी तक स्वतन्त्र रूप से, सभी सामग्रियों को उपयोग में लाते हुए कोई उपयुक्त ग्रन्थ, हिन्दी साहित्य में उपलब्ध न था। डा० उप्रेती ने इस अभाव की पूर्ति करके महा-कवि नन्ददास के महत्त्व को साहित्यानुरागियों के समक्ष प्रामाणिक रूप से रक्खा है। उनकी जन्म-तिथि कृतियों, काल-क्रम, दार्शनिक भावना, कथावस्तु आदि की मत विभिन्नता को बौद्धिकता की तुला पर न्यायिक रूप से संतुलित कर प्रासंगिक निष्कर्ष देना, इस पुस्तक की विशेषता है।

डा० उप्रेती ने नन्ददास के प्रसंग में ही विहंगम दृष्टि से पूर्ववर्ती साहित्य को भी उद्धृत करने का प्रयास किया है। एतदर्थ पाठक को पुस्तक में कुछ भक्तिकालीन साहित्य की रूपरेखा प्राप्त हो जाती है। तद्युगीन भक्ति-भावना, काव्य का कला एवं भाव पक्ष दोनों का पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के सन्दर्भ में वर्णित करना ही उनका उद्देश्य है। भाषा, शैली, शब्दावली मुहावरे एवं लोकोक्तियों को विषय के अनुरूप बना-कर उसका कृतियों में समुचित स्थान देना भी इसकी मौलिकता कही जा सकती है क्योंकि इन्हीं के प्रयोगों से काव्य का लोक-पक्ष निखरता है।

कृष्ण-साहित्य बड़ा ही लालित्यमय है। इस दृष्टि से नन्ददास की भाषा का सरस एवं बोध ग्राह्य वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। समग्र रूप से नन्ददास एवं बहुत कुछ कृष्ण सम्प्रदाय कोसमझने के लिए यह पुस्तक विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी है।

दशम-ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि—

लेखक—डा० रत्नसिंह जग्गी, प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा दिल्ली। पृष्ठ संख्या ३८१, मूल्य १६.००।

प्रस्तुत ग्रन्थ पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। सिक्ख समाज में श्री गुरु-ग्रन्थ साहब के बाद 'दशम-ग्रन्थ' ही सर्वाधिक प्रचलित एवं सम्माननीय है। किन्तु जहाँ पर आदि ग्रन्थ श्री गुरुग्रंथ साहब की प्रामाणिकता असंदिग्ध है, दशम-ग्रन्थ की प्रामाणिकता उतनी ही उलझी हुई है। अभी तक यह तिमिराच्छन्न से आवृत थी। पर डा० जग्गी ने अपने अथक परिश्रम से इसके निष्कर्षगत भावों पर पहुँच नानक पंथियों में इसे समाहित करने का श्रेय प्राप्त किया है। वस्तुतः यह धार्मिक ग्रन्थ है पर इसकी पौराणिक गहनताओं को समझने तथा उसकी गहराइयों तक जाने के लिए इसे पुराणादि ग्रन्थ धर्म ग्रन्थों से आकलित कर इसका मूल्याङ्कन किया गया है।

इसमें सभी प्राचीन प्रतियों एवं दसखत-खास की सभी सामग्रियों का उपयोग किया गया है; जो कि सहज उपलब्ध या अवलोक्य नहीं हैं। अतएव इस दृष्टि से डा० जग्गी का अनुसंधान निश्चय ही उच्चकोटि का है। धार्मिक पुस्तकों को जन सुलभ बनाना भी इसका उद्देश्य है।

सिक्खों के चार तख्तों में जन्म स्थान हरिमन्दिर (पटना) और हजूर साहब (हैदराबाद) के तख्तों पर अब भी इस ग्रन्थ का पुरातन मर्यादा के अनुसार ही 'आदि ग्रन्थ' के साथ 'दरबार' लगाया जाता है। इसकी रचना के बारे में अब तक सिक्खों में प्रचुरता से विचारिक वैभिन्नता थी, किन्तु डा० जग्गी ने प्राप्त प्रतियों के आधार पर इसका समाधान करके सबका निपटारा कर दिया है। दशम-ग्रन्थ १४२८ पृष्ठों का वृहदाकार ग्रन्थ होने से उसके प्रति भ्रान्तियों का स्फुरण होना स्वाभाविक है पर इस शोध-ग्रन्थ से वे सभी उलझनें, शंकाएँ एवं दुरूहताएँ इतिश्री को प्राप्त हो हैं, वे तो एक मात्र गम्भीर अध्ययन के अभाव में ही उद्घोषित हो रही थीं।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह ग्रन्थ गुरुमुखी लिपि से देवनागरी लिपि में प्रतिलिखित हुआ और इसकी प्रधान भाषा ब्रज है, यही हिन्दी का गौरव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतएव यह पुस्तक अनेकानेक विवादों को सुलझाते हुए हिन्दी में आई है जिसका सर्वत्र स्वागत होना चाहिए।

मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में समाज—

लेखिका—डा० गायत्री वैश्य, प्रकाशक—प्रकाश पब्लिशर्स, जयपुर। पृष्ठ २१६, मूल्य ७.००।

प्रस्तुत पुस्तक में मध्यकालीन हिन्दी कवियों द्वारा व्यक्त सामाजिक चित्रण का छः अध्यायों में वर्णन किया गया है। जिनमें परिवार और उसका आपसी सम्बन्ध, पति-पत्नी, सास-बहू, ननद-भावज पुत्र आदि का जैसा व्यवहार रहा था, उसका उदाहरण के साथ वर्णन है। सामाजिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज, धर्म, त्योहार, संस्कार एवं दैनिक-क्रिया का भी इसी रूप में उल्लेख किया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त रीतियाँ, कुरीतियाँ, अन्ध-विश्वास एवं जादू टोने का जो वातावरण था उससे कवि हृदय दूर न रह सका। इसीसे उन्होंने अपने काव्य में स्थल-स्थल पर ऐसी बातों को दिग्दर्शित किया है। भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में संस्कारों को जानना फिर उसका व्यावहारिक रूप अपनाना ही धर्म पर चलना है। क्योंकि धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियाँ एक समय का प्रतिनिधित्व करती हैं और फिर अपना प्रभाव भावी समाज के लिए छोड़ जाती हैं। मध्यकालीन वातावरण सामन्ती भाव विलास से परिपुष्ट था, उसमें तरह-तरह की तरंगें थीं। इसीलिए युद्ध के समय भी उस प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ मानी जाती थीं और उन बातों की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में है।

समग्र रूप से पुस्तक मनोरंजक एवं तत्कालीन सामाजिक वातावरण को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुई है।

—कामता कमलेश

अपभ्रंश भाषा का अध्ययन—

लेखक—वीरेन्द्र श्रीवास्तव, प्रकाशक—भारतीय-साहित्य मन्दिर, दिल्ली। पृष्ठ ३०१, मूल्य १२.००

प्रस्तुत पुस्तक पटना विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है, जिसमें लेखक ने अपभ्रंश भाषा का ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एवं अर्थात्मक-अध्ययन किया है। अध्ययन संक्षिप्त होने पर भी उपयोगी है। भाषा-विज्ञान के सामान्य-नियमों को ध्यान में रखकर शब्द तथा अर्थ-परिवर्तन के विविध रूपों तथा शब्द-रचना का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया गया है। धातु-रूपों का भी पृथक् विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में अपभ्रंश भाषा तथा साहित्य के नमूनों का सङ्कलन किया गया है। सामान्य रूप से भाषा-विज्ञान के अनुकूल भाषा का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। अपभ्रंश भाषा पर लिखी गई यह पुस्तक भाषाविज्ञान के विद्यार्थियों तथा शोधकार्य करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। वास्तव में प्रबन्ध श्रमपूर्ण तथा व्यवस्थित है। आशा है भाषाविज्ञान के जगत् में इसे उचित स्थान मिलेगा।

संस्कृत गीतिकाव्य का विकास—

लेखक—डा० परमानन्द शास्त्री, प्रकाशक—प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ। पृ० ३२५, मू. १८.००

डा० परमानन्द शास्त्री का लिखा हुआ यह एक शोध प्रबन्ध है। इसमें गीतिकाव्य की सामान्य विशेषताओं के साथ संस्कृत काव्य में गीतिकाव्य के विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। लेखक का सम्पूर्ण अध्ययन परिचयात्मक एवं विवरणात्मक है। साधारण रूप से पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लिखी गई प्रतीत होती है। अपने आमुख में स्वयं लेखक ने यह कहा है कि "मुझे यह स्वीकार करने में संकोच नहीं कि मैं किनारे-किनारे चला हूँ। आरम्भ से अन्त तक की गहराई नापने का प्रयत्न मैंने नहीं किया" और अपने इस दृष्टिकोण के साथ लेखक को सफलता मिली है, यह कहने में कोई संकोच नहीं और इस साधारण में पुस्तक उपयोगी है। छपाई-सफाई भी ठीक है। परन्तु ३२५ पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य अठारह रुपये अधिक है।

आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अध्ययन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। पृ० २८४, मू. १५.००

हिन्दी में अभी तक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी जो आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण का समीक्षात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती। व्याकरण जैसे कठिन विषयों पर हिन्दी में लिखी गई पुस्तकों की संख्या वैसे भी बहुत कम है। लेखक ने उक्त पुस्तक में आ० हेमचन्द्र के प्रसिद्ध व्याकरण 'शब्दानुशासन' का संस्कृत के विश्रुत आचार्य पाणिनि तथा अन्य भाषा-विदों के व्याकरण शास्त्र से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर अभिनन्दनीय प्रयास किया है। विवेचन में पर्याप्त संतुलन तथा मौलिकता है। और प्रस्तावना में सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी हैं। इसमें केवल संस्कृत ही नहीं प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों ही भाषाओं के व्याकरण का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है जो प्रत्येक अनुसन्धित्सु के लिए उपयोगी है।

अभिनव प्राकृत-व्याकरण—

लेखक—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—तारा पब्लिकेशन्स। वाराणसी, पृ० ५३३, मूल्य १५.००

यद्यपि अंग्रेजी और हिन्दी में प्राकृत के व्याकरण पर लिखी हुई कई पुस्तकें मिलती हैं, जिनमें से डा० रिचर्ड पिशेल कृत 'प्राकृतों का व्याकरण' (अनु०—डॉ० हेमचन्द्र जोशी) अत्यन्त प्रामाणिक एवं व्यवस्थित है। इसमें विषय अत्यन्त विस्तृत विवेचित है। अतएव विद्यार्थियों के लिए अभी तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं थी जो संक्षिप्त होने पर भी प्राकृत व्याकरण के सभी नियमों से उपस्तकृत हो। मेरे विचार में अभिनव प्राकृत-व्याकरण इस कमी को पूरी करने वाली है। इसमें प्राकृत के व्याकरणों में दिये हुए सामान्य-नियमों की प्रक्रिया तथा पूर्ण जानकारी प्रामाणिक रूप से दी गई है। विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के लिए यह पुस्तक उपादेय है। परिशिष्ट में जोड़ी गई विविध अनुक्रमणिकाओं से प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्य और भी अधिक बढ़ गया है। एक साथ दो सुन्दर प्रकाशन के लिए मैं लेखक को हार्दिक बधाइयाँ देता हूँ। —डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

निबन्ध

दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध—

लेखक—डा० चन्द्रभान रावत, प्रकाशक—मीतल-प्रकाशन-मन्दिर, मथुरा। पृष्ठ ७०२, मूल्य ८.००

ग्रन्थ लेखक ने अपने लेखों को पाँच भागों में विभक्त करके हिन्दी साहित्य को निबन्ध के क्षेत्र में विचारों का एक सुन्दर कोश दिया है। साहित्य के सिद्धान्त एव समालोचना को लेकर अधुनातम साहित्यिक विधाओं तक, अतीत से लेकर मध्य तक भाषा से लेकर लिपि तक के निबन्ध इस ग्रन्थ में हैं। इन निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रारम्भ में ही पूरे निबन्ध के सार को ७–८ वाक्यों में रख दिया गया है, जिससे पाठक को निबन्ध पढ़ने से पूर्व ही उसके बारे में एक मूल-भावना का ज्ञान हो जाता है। साहित्य के सूक्ष्म एवं गहनतम तत्वों को आलोचनात्मक एवं सौष्ठव पूर्ण शैली में लिखना, डा० रावत की मँजी हुई लेखनी का परिणाम है।

हिन्दी के निबन्ध साहित्य में इस पुस्तक की उपादेयता स्वयं सिद्ध है। क्योंकि इसके निबन्ध, वर्ण्य-विषय का पूर्ण ज्ञान कराते हैं। एम० ए० एवं शोध के विद्यार्थियों के लिए ये निबन्ध निश्चय ही उपयोगी होंगे।

समग्र रूप से हिन्दी के मूर्त्त रूपों को समझने के लिए पुस्तक के सभी ४२ निबन्ध पठनीय एवं ज्ञानवर्द्धक हैं।

कविता

मयखाना—

सं० प्रकाश पण्डित। प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली। पृष्ठ १८४, मूल्य २.००

प्रस्तुत संकलन में उर्दू के विभिन्न कवियों की शराब सम्बन्धी कविताओं (शेरों) का संग्रह है। अधिकांश उर्दू शायर साकी और शराब की मदहोशी को अपनी शायरी में जरूर कलम बन्द करते हैं। उर्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा की प्रियता और साकी का नशा दोनों के पारस्परिक मिलन से शायरी का जो उद्गम हुआ उससे पाठक को भी तमाम बातें याद हो आती हैं। जरा इसका शायरी में ही बानगी देखिए—

जब भी आता है जाम हाथों में
सैकड़ों नाम याद आते हैं।

कहीं-कहीं नीति की भी एकाध अच्छी चीज मिल जाती है। नजीर अकबरबन्दी का यह शेर देखिए—

मय पीके जो गिरता है तो लेते हैं उसे थाम।
नजरों से गिरा जो उसे फिर किसने संभाला॥

कविताओं को समझने के लिए संकलन कर्त्ता ने कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए हैं जिससे कि उर्दू न जानने वाले पाठकों को भी उसे समझने में आसानी हो। एकाकीपन की अनुभूतियों का आनन्द लेने के लिए इन कविताओं को गुनगुनाया जा सकता है।

प्रेम और प्रकाश—

लेखक—आंद्रे जीद, अनुवादिका-सुश्री अन्नदापाटनी, प्रकाशक—मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ६६, मूल्य २.००

यह लघु उपन्यास नोबुल पुरस्कार विजेता श्री आंद्रे जीद के सुविख्यात उपन्यास 'पास्टोरल सिम्फनी' का हिन्दी रूपान्तर है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने एक नेत्रहीन लड़की गरट्रूड के माध्यम से मानव की आन्तरिक भावनाओं का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। गरट्रूड को एक पादरी सहसा अपने आश्रम में पाता है। फिर तो उसने उस लड़की के जीवन को ही परिवर्तित कर दिया।

नेत्रहीनों के लिए 'ब्रेल-शिक्षा प्रणाली' आधुनिक समय में बहुत ही उपयोगी एवं मनोवैज्ञानिक है। उसी के आधार पर गरट्रूड के जीवन में प्रकाश होता है। प्रेम एवं कर्त्तव्य के मध्य नेत्रहीन गरट्रूड भी अपनी प्रगति के लिए सदैव तत्पर रहती है। वात्सल्य एवं प्रेम गरट्रूड में समय के साथ उमड़ता आया। किन्तु नेत्रहीनता की भावना से वह अपना प्रेम स्थिर न रख सकी। साथ ही ईश्वर के प्रति भी उसका विश्वास न रहा। तभी तो वह पूछती है—"क्या अन्धी स्त्री के बच्चे भी हमेशा अन्धे ही पैदा होते हैं।" नादानी एवं वात्सल्य का कैसा सुन्दर प्रश्न है। ऐसी ही अनेक मानवीय तरंगें पूरे उपन्यास में पाई जाती हैं।

अनुवाद की भाषा ललित एवं सरस है। साथ ही बोल-चाल के रूपों में उपन्यास का वर्णन, तारीखों से समय का संकेत आदि इसकी अपनी विशेषता है। असहायों के प्रति मानवता का भाव, जीवन के प्रति मोह के सफल उदाहरण के लिए प्रस्तुत लघु उपन्यास पठनीय एवं शिक्षा-प्रद है।

—कामताप्रसाद गुप्त

उपन्यास

प्रकाश की छाया में—

मूल लेखक—नरेन्द्रपालसिंह, अनुवादक—त्रिलोक दीप, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १८८, मूल्य ४.००।

प्रस्तुत पुस्तक पंजाबी उपन्यास का अनुवाद है। समाज को नये वातावरण में रखने एवं संजोने के लिए ही व्यक्ति का अपना एक विशेष महत्त्व होता है क्योंकि वह समाज का सदस्य ही नहीं वरन् उसका निर्माता भी है। ग्रामीण एवं शहरी वातावरण की तुलना और एक दूसरे के पारस्परिक तत्त्वान्वेषण की मुखापेक्षी इसके पात्रों में निहित है। तभी तो इसकी एक सजग पात्रा श्रीमती सतीश एक स्थल पर कहती है—"आग लगादो उन पुस्तकों को जिनमें स्त्री को मर्द की दासी और पैरों की जूती कहा गया है। जलादो उन किताबों को, जिन्होंने नारी जाति की निन्दा की है।"

सम्पूर्ण उपन्यास में सरसता का भाव, प्रगति के लिए प्रयास तथा जीने के लिए कर्तव्य की आकांक्षा के त्रिकोणात्मक घेरे में कथानक को विस्तृत किया गया है। समग्र रूप से उपन्यास का दृष्टिकोण सामाजिक उन्नति के लिए एक नूतन आयाम देने का प्रयास, ललित एवं भाव भरी भाषा एवं शैली में वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अऊ का टीला—

लेखक—डा० नत्थनसिंह, प्रकाशक—साहित्यालोक प्रकाशन, भरतपुर। पृ० ३७४, मू० ६.००

प्रस्तुत उपन्यास मुगलशासक औरंगजेब के दक्षिण विजय के समय का वातावरण प्रस्तुत करता है। औरंगजेब को दक्षिण विजय की बड़ी उत्कण्ठा थी किन्तु छत्रपति शिवाजी के प्रबल अवरोध के कारण उसकी यह लालसा पूरी न हो सकी। किन्तु १६८० में शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त वह बड़े वेग से दक्षिण विजय के लिए चल पड़ा। इस कार्य के लिए उसे धन जन की बड़ी आवश्यकता थी, अतएव उसने अपार सेना लेकर दिल्ली से शीघ्र ही कूच कर दिया। इसी वाहिनी के खर्च के लिए उसने उत्तर भारत की जनता से नाजायज कर, बेगार तथा धन वसूल करना शुरू कर दिया। जनता में इसका बड़ा प्रबल आतङ्क छा गया किन्तु उसका प्रतिकार करने के लिए कोई भी तैयार न हो सका। मुगलों की असीम शक्ति के आगे निरीह शोषित जनता का मनोबल गिर गया था फिर भी सर्वप्रथम किसान गोकुलराम ने अपना बलिदान देकर इसका प्रतिकार किया। तत्पश्चात् किसान राजाराम ने जन सहयोग पर मुगलों एवं शोषक शासक का विरोध किया। इसी विरोध एवं दमन की घटनाओं पर प्रस्तुत उपन्यास लिखा गया है।

लेखक ने मुगलकालीन वातावरण को कथात्मक रूप दिया है। इस उपन्यास के पढ़ने से प्रतीत होता है कि तत्कालीन जनता में भी अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस तथा आत्मबल था। यवनों के अपरिमेय बल एवं सेना के समक्ष भी विरोध का नारा बुलन्द होता था, उसमें कहाँ तक सफलता मिलती थी, या नहीं, इसका वर्णन हमारे इतिहासकारों ने साम्प्रदायिकता एवं शक्ति के आगे विस्मृत सा कर दिया। यही कारण है कि आज का पाठक न जाने कितने शहीदों, विद्रोहियों, समाज सुधारकों एवं वीरों को नहीं जानता। उपेक्षित पात्रों को समाज के समक्ष लाने का श्रेय तो प्रस्तुत लेखक को है ही, साथ ही जन-बल के महत्व को समझने के लिए भी प्रस्तुत उपन्यास उपयोगी है। औरङ्गजेब के अत्याचारों को समझने एवं ब्रजप्रदेश की जनता के मनोबल को देखने के लिए प्रस्तुत उपन्यास का अपना विशिष्ट स्थान है। किन्तु उपन्यास में स्थल-स्थल पर प्रूफ की त्रुटियाँ पाठक को अखर सी जाती हैं, यदि इनका तनिक भी ध्यान दिया गया होता तो अच्छा रहता।

कहानी

मेरी तैंतीस कहानियां—

लेखक—विष्णु प्रभाकर, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस दिल्ली। पृष्ठ २८७, मूल्य ८.००

विष्णु प्रभाकरजी जाने माने कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में यथार्थ का चित्रण होने के साथ मानव मन की गुत्थियाँ खोलने की क्षमता भी होती है। इस संग्रह की ३३ कहानियों में अधिकांश १६६० और उसके बाद की लिखी हुई हैं। कहानियों में समय का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'पिचका हुआ केला' शीर्षक कहानी एक गरीब बुढ़िया की ईमानदारी की भावना को बड़े ही करुणापूर्ण ढङ्ग से और कहें तो वीभत्स रूप में चित्रित किया गया है। यह बुढ़िया एक स्टेशन के प्लेट फार्म पर एक लड़के को इस बेदर्दी से मारती है कि देखने वालों को भी तरस आ जाय, पर कहानी कला की विशेषता यह है कि यह अन्त में मालूम होता है कि यह बुढ़िया और लड़का माँ बेटे हैं और माँ लड़के को इसलिये मार रही है कि वह रेलवे का कोला चुरा कर भाग रहा था। इसी कहानी में एक धनी परिवार के पिता-पुत्रों का भी चरित्र अंकित हुआ है जिसमें पिता की सहृदयता या करुणा का अंकन इस रूप में हुआ है कि गरीब और अमीर का भेद और उनकी मनोभावना का अन्तर स्पष्ट दिखाई दे जाता है। इस प्रकार इन कहानियों में लेखक की चित्रांकन की क्षमता तो प्रकट होती ही है, यह भी विदित हो जाता है कि केवल यथार्थ का चित्रण ही नहीं, कुछ आदर्श की भी स्थापना आवश्यक है। समग्र दृष्टि से लेखक की यह कृति स्वागत योग्य और अभिनन्दनीय है। —महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी

भारत के रण वीर बाँकुरे—

लेखक—बाबूराम पालीवाल, प्रकाशक—ग्रात्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ १३०, मूल्य ४.००

प्रस्तुत पुस्तक सन् १९६५ में भारत-पाक युद्ध के समय शहीद वीरों की वीरगाथा से सम्बन्धित है। इस पुस्तक में भारत-पाक सीमा पर युद्ध कौशल दिखाने वाले वीरों का यशोगान है। इसमें शहीदों के ग्रतिरिक्त उन जीवित वीर सैनिकों का भी वर्णन है जिन्होंने युद्ध में प्रगाढ़ कुशलता दिखाकर भारत सरकार से पुरस्कार प्राप्त किया है। प्रारम्भ में सेनाग्रों के मुख्य-मुख्य पदाधिकारियों का भी वर्णन दिया गया है जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं बल से हमारे सैनिकों ने ग्रपनी वीरता का परिचय दिया।

समग्र रूप से यह पुस्तक देश-गौरव के लिए मर मिटने वाले वीरों की यादगारी के लिए संग्रहणीय है।

—कामता गुप्त कमलेश

संस्मरण

बोलती तस्वीरें—

मूल लेखिका—कृष्णा हठीसिंह, ग्रनुवादिका-ग्रादर्शकुमारी, प्रकाशक-सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ १३१, मूल्य ३.५०।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका के जेल-जीवन के संस्मरण हैं। तत्कालीन दासता के क्षेत्रों में बन्दियों के साथ होने वाले घृणित एवं ग्रपमान-जनक कुकृत्यों का ग्राँखों देखा वर्णन पाठकों के समक्ष उपस्थित कर लेखिका ने एक पुनीत कार्य किया है, क्योंकि ये ही बन्दी हमारे स्वतन्त्र देश के निर्माता रहे हैं जिनके बलिदान, त्याग तथा परिश्रम से ग्राज हम स्वतन्त्र देश के नागरिक होने का गर्व करते हैं।

नेहरू परिवार से सम्बन्धित होने के कारण लेखिका ने उच्च ग्रधिकारियों को निकट से देखने का ग्रनुभव प्राप्त किया है जिससे उनकी मनोवृत्तियों, मनोभावनाग्रा एवं मनो कामनाग्रों को ग्रपने सस्मरण में ग्रप्रत्यक्ष रूप से चित्रित किया है।

प्रस्तुत संस्मरणात्मक पुस्तक में सभी जेल सहबन्दी स्त्रियाँ ही हैं। इनके प्रति भी जेल में कोई सहानुभूति नहीं थी, जानवरों से भी बदतर इनका जीवन था। कठिन से कठिन कार्यों का करना भी इनको ग्रावश्यक था। भला कोमलांगी स्त्रियों ने ये सब किस लिए किए। बस, एक मात्र स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए। उनको ग्रपने तन-मन की चिन्ता न थी जितनी देश की थी।

ग्राज इन स्वतन्त्रता के संग्रामियों के स्मरण से हृदय रोमांचित ग्रौर मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता हैं। ऐसे संस्मरण को एक पुस्तकाकार देकर लेखिका ने उनकी तस्वीरों को सावाक् बना दिया है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

मनोरंजक संस्मरण—

लेखक—पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, प्रका०—इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन प्रा० लि०, इलाहाबाद। पृ० २१०, मूल्य ३.७५

इस पुस्तक में प्राचीन ग्रौर ग्राधुनिक कवियों ग्रौर साहित्यकारों के जो संस्मरण छपे हैं, वे समय-समय पर मासिक 'सरस्वती' में छप चुके हैं। हम उन्हें बड़ी रुचि से पढ़ते रहे हैं। इन संस्मरणों को पुस्तकाकार छपवा कर चतुर्वेदीजी ने बड़ा पुण्य कार्य किया है। कवियों ग्रौर साहित्यकारों ने यह संस्मरणों में वर्णित घटना ग्रभी हमारे सामने घटित हो रही हो। ऐसे संस्मरणों को पढ़ने से साहित्यिक ग्रानन्द तो ग्राता ही है, यह भी मालूम हो जाता है कि हमारे यह साहित्यकार कितने विनोदी, तीक्ष्ण बुद्धि वाले ग्रौर प्रत्युत्पन्नमति के सरस हृदयी थे। पुस्तक में लगभग २०० संस्मरण सङ्कलित किए गये हैं। इन्हें पढ़ने में इतना ग्रानन्द ग्राता है कि एक के बाद एक संस्मरण पढ़ते हुए पुस्तक को छोड़ने को जी नहीं चाहता। संस्मरण सभी साहित्य या साहित्यकारों से सम्बन्धित है फिर वे चाहे मालवीयजी जैसे शिक्षा विशारद या डा० राजेन्द्रप्रसाद जैसे राष्ट्रीय नेता के विषय में हों। पुस्तक में ग्राचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे रूखे दीखने वाले ग्रौर शंकरजी जैसे वयोवृद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों के सम्बन्धित संस्मरण पढ़कर मालूम हो जाता है कि उनमें कितनी सहृदयता और विनोद की मात्रा थी। शङ्करजी की एक पुरानी कविता (दोहे) को देखिए उसमें कितना काव्यत्व और मार्मिकता है। यह कविता किस अवसर पर सुनाई गई ? इसका भी मार्मिक दृश्य था। शङ्करजी वृद्धावस्था में अपनी आँखों के अच्छे न होने से निराश से थे। एक बार वे पं० उदित मिश्र एवं पं० पद्मसिंह के साथ आरहे थे। रास्ते में पं०मिश्रजी के आग्रह से निम्न दोहा सुनाया—

'हाथ जोड़ बूढ़े शङ्कर से कहती है कविता बाला।
होकर सूर भजो केशव को लेकर तुलसी की माला।।

परिहास के मध्य अपनी असमर्थता एवं ज्ञान-गरिमा को दिखाना शङ्कर ऐसे सहृदय कवि के सामर्थ्य की बात थी।

सूर, केशव एवं तुलसी को एक दोहे में ही पुरोकर मुद्रालङ्कार का कैसा सुन्दर स्वरूप उपस्थित किया है—यह प्रत्येक सहृदय जन समझ सकता है। साथ में, आते पं० पद्मसिंहजी ने उनकी इस काव्य प्रतिभा को देख कर वाह-वाह के नारे लगा दिए। उसके बाद भी यह दोहा कितना प्रचलित और प्रचारित हुआ है। यह कौन नहीं जानता।

शंकरजी की एक और संस्मरण इसमें है, वह दोहा भी बहुत प्रसिद्धि पा चुका है। उसमें भी मुद्रालङ्कार का अनूठा चमत्कार है।

शंकर कविता क्या करे, करना है बेकार।
पुरस्कार तो ले गया, शंकर का हथियार।।

यह संस्मरण कानपुर के धनी द्वारा प्रदत्त पुरस्कार के संकेत से है जो कविवर सनेहीजी को मिल गया था। शंकरजी ने उसी के संबंध में यह दोहा लिखा है। यहाँ शंकर का हथियार से मतलब महादेव जी के हथियार 'त्रिशूल' से ही है।

इस प्रकार इस पुस्तक के प्रत्येक संस्मरण में वाग्-विदग्धता, विनोद और मार्मिकता मिलेगी जिसे पढ़कर पाठक का मनोरंजन ही नहीं होगा उसे साहित्यिक आनन्द भी आयेगा और कवियों की अनोखी सूझ-बूझ के दर्शन होंगे। हिन्दी को ऐसी पुस्तक प्रदान करने के लिए चतुर्वेदीजी सचमुच बधाई के पात्र है।

—महेन्द्र।

विश्व के महान विज्ञान वैज्ञानिक—

अनु० प्रो० लाजपतराय एम० ए०, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। पृष्ठ २७०, मू० १०.००

यह पुस्तक अंग्रेजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'जाइंट्स आफ समिस' का हिन्दी अनुवाद है। मूल लेखक फ़िलिपकेन हैं। इसमें विश्व के वैज्ञानिकों और उनके अनुसंधानों का संक्षिप्त परिचय है। ५० वैज्ञानिकों में विश्व के प्रायः सभी प्रमुख आविष्कारक और विद्वान आ गए हैं। पुस्तक प्राक्रूपम हिन्दी निदेशालय के निदेशक श्री स० चन्द्रहासन ने लिखा है और भारत सरकार की सहायता से प्रकाशक ने यह सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की है। वैज्ञानिकों के चित्र और उनके अनुसंधानों से संबंधित अनेक चित्र और मानचित्र देकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ा दी गई है। हिन्दी में इस प्रकार की हजारों पुस्तकें निकलने की जरूरत है। अब तो कापी रायट की बाधा भी बहुत अंश में नहीं रही है। ऐसी दशा में समर्थ प्रकाशकों को अच्छी पुस्तकें प्रचुर मात्रा में प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरना चाहिए। हम इस पुस्तक को ऐसे सुन्दर रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वह भारत के सभी स्कूल कालेज के पुस्तकालय की शोभा और उपमानिता बढ़ायेगी।

रेखाचित्र

मानवता के दीये—

मूल लेखक—झवेरचन्द मेघाणी, अनुवादक—मोहनलाल भट्ट, प्रका.—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृ० १६१, मूल्य ४.५०

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध गुजराती लेखक श्री मेघाणी की पुस्तक का अनुवाद है। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में १७ रेखाचित्र हैं जो कि रविशङ्कर महाराज के आदर्शों एवं मार्ग निर्देशनों पर अपनी कथा को प्रश्रय देते हैं। प्रत्येक रेखाचित्र के पढ़ने के बाद पाठक के मानस पटल पर एक अप्रतिम प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्छाया छूट जाती है जो कि उसे सदैव नैतिकता की ओर प्रेरित करती रहती है। फलस्वरूप वह सर्वदा जीवन में अपने आदर्शों की ही ओर अग्रसरित होने का प्रयास करता है। कलुषित ईप्साएँ, लालसा की कामनाएँ उससे दूर होती प्रतीत होती हैं।

दूसरे खण्ड में 'पाँच दिन की जंगम विद्यापीठ' शीर्षक भाग में कुल ३२ मानचित्र हैं जोकि अपनी अति संक्षिप्तता के होने पर भी मोहक एवं शिक्षाप्रद हैं। लेखक ने मानव जीवन के सभी अंगों को अपनी चेतना शक्ति एवं अनुभूति के आधार पर अनुभवित कर आंका है, उसको उसने मानव समाज को अर्पित कर एक पुनीत कार्य किया है क्योंकि आज का मानव अपनी स्वार्थपरायणता के समक्ष इतना लिप्त है कि उसे अन्य किसी को आँख उठाकर देखने तक का समय नहीं मिलता। इन दृष्टियों से विद्यापीठ के आश्रम में जीवन के नूतन आयामों को अन्वेषित करना ही मानवता का सच्चा प्रतीक है।

समग्र रूप से इस नश्वर तन को अमर एवं सफल बनाने के लिए इस पुस्तक में बहुतांश में एक प्रशस्त पथ प्राप्त हो जाता है क्योंकि जीवन में मानवता की पहचान ही मानवता है।

इतिहास

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (पहला खण्ड)—

लेखक—डा० ताराचन्द, प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली। बड़ा आकार, पृ० ३६६ मू० ६.००

प्रस्तुत पुस्तक भारत सरकार ने इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डा० ताराचन्द से लिखवा कर अपनी ओर से प्रकाशित की है। इसका प्राक्कथन तत्कालीन मंत्री श्री हुमायूँ कबीर के द्वारा लिखा गया है। ३०-३२ पृष्ठ की लम्बी भूमिका में लेखक ने भारतवर्ष की स्थिति पर प्रकाश डाला है और इसमें यह बताया है कि सामन्तवाद का किस तरह प्रादुर्भाव हुआ और किस तरह पादरी और चर्चों ने हिन्दुस्तान की राजनीति में दखल जमाया। सामन्तवाद का पतन कैसे हुआ यह भी भूमिका में दिखाने की कोशिश की गई है। वाणिज्यवाद की प्रणाली और प्रौद्योगिक क्रान्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके बाद मूल पुस्तक १० अध्याय में लिखी गई है जिसमें मुगल साम्राज्य के पतन और विनाश की शृङ्खला में १८ वीं शताब्दी की परिस्थितियों का वर्णन किया है। कई अध्यायों में अंग्रेजी राज्य की स्थापना और उसके विकास का स्वरूप बताया है। अंग्रेजी शासन से हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा यह भी बताया गया है। इस प्रकार इस इतिहास के पहले खण्ड में अंग्रेजी शासन की सन् ५७ के स्वतन्त्रता संग्राम तक की चर्चा है। इतिहास का दूसरा खण्ड अभी प्रकाशित नहीं हुआ। उसमें सन् १६५७ के स्वतन्त्रता युद्ध के बाद से १६४७ में आजादी मिलने तक का वर्णन होगा। पुस्तक बहुत अंश में प्रामाणिक है, हम आशा करते हैं कि दूसरा भाग भी जल्दी ही प्रकाश में आयेगा, और उससे स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास का सही रूप प्राप्त हो सकेगा।

धर्म और नीति

परमसखा मृत्यु—

लेखक—श्री काका कालेलकर, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १२१, मू० २.२५

प्रस्तुत पुस्तक नश्वर शरीर को नष्ट करने वाली 'मृत्यु' को एक नवीन दृष्टि से आकलित करने के सन्दर्भ में मौलिक रूप से लिखी गई है। मृत्यु के रहस्य को स्वयं मृत्यु (यम) के द्वारा जानने वाले नचिकेता को समर्पित है।

संसार में मानव एकमात्र मृत्यु से ही डरता है। इसीलिए वह उसे अपना सबसे महान् शत्रु समझता है। किन्तु साधारण मानव इसके रहस्य से अज्ञान है, यही इसका कारण है। पर मृत्यु हमारे जीवन के लिए परम उपयोगी है। पूज्य बापूजी मृत्यु को मित्र कहा करते थे। इसी दृष्टि से विद्वान एवं चिन्तक प्रमुख गांधीवादी लेखक श्री काका कालेलकर ने इसे नये रूपों में अपने २४ लेखों में चित्रित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

प्रत्येक लेख पूर्ण रूप से गम्भीर एवं वैचारिक है। मृत्यु क्या है ? उसका जीवन से क्या सम्बन्ध है ? तथा वह किस प्रकार मानव सहयोगिनी है; आदि बातों को समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक बड़ी उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, जीव एवं माया के उलझनों में सारतत्व ग्रहण करने के लिए इस पुस्तक का पठन-पाठन अत्यावश्यक है।

वेद-मन्त्रों के प्रकाश में—

ले०—डा० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली। पृष्ठ ८८, मू० १.५०

प्रस्तुत पुस्तक में कुल सात आख्यायिकाएँ हैं। जिनमें से दो को छोड़ शेष पाँच का आधार वैदिक-साहित्य है। वैदिक कथाओं को जन-जन तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का पुण्य-कार्य विद्वान् लेखक ने बड़े श्रम के साथ किया है। कहानियों के प्रारम्भ में चित्रों द्वारा उसके सार को संकेतित करना इसकी अपनी निजी मौलिकता है। वेदों की कथाओं से हमारा जीवन कितना प्रवाह ग्रहण करता है यह वर्णनातीत है ? भारतीय-संस्कृति का मेरुदण्ड वैदिक-साहित्य है। स्थल-स्थल पर संस्कृत श्लोकों का आगमन कथा को मनोरम बना देता है। भाषा का लालित्यमय एवं सरल होना कथा की गहनता को समझने में सहायक होता है।

सभी कथायें शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायक हैं। संस्कृत से हिन्दी में इन कथाओं को लाकर लेखक ने जहां हिन्दी का साहित्य भरा है, वहाँ जन-मानस में वैदिक आचार-संहिता को जाग्रत करने का सफल एवं यशस्वी कार्य भी किया है।

हमारे संस्कार-सूत्र—

सम्पादक—श्री लक्ष्मीराम शास्त्री, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृ० १५५, मूल्य ३.००

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन ग्रन्थों से ३७ प्रकार के प्रेरणादायक सुभाषित दोहनरूप में लेकर संग्रहित किये गये हैं। मौलिकता को आँच न आये, इस दृष्टि से संस्कृत के श्लोकों के साथ हिन्दी में उसका भावार्थ देकर जन-सामान्य के लिए सुलभ बना देना, इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। प्राचीन समय में हमारे ऋषियों मुनियों एवं विद्वानों का रहन-सहन कैसा था, क्या उनके संस्कार को हम कुछ ग्रहण कर सकें ? आदि संस्कृति के लिये सुभाषितों को एक पुस्तक में पिरोकर सम्पादक ने अच्छा कार्य किया है। ये ही सुभाषित हमारे जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं। चरित्र को ऊँचा उठाने, ज्ञान को परिपक्वता देने के लिए सुभाषितों का पठन-पाठन लाभप्रद होता है।

दैनिक जीवन से लेकर नीति तक, जीव से लेकर ब्रह्म तक के सूत्रों को सरल हिन्दी में रखना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

समग्र रूप से यह सूत्र ज्ञानियों एवं चिन्तकों के अनमोल रत्नों का संग्रह है।

तट दो : प्रवाह एक—

लेखक—मुनि नथमल, प्रकाशक—आदर्श साहित्य संघ, चुरू, राजस्थान। पृ० १२४, मू० २.२५

प्रस्तुत पुस्तक में मुनिजी के ३८ नैतिक एवं सामाजिक निबन्ध सङ्कलित हैं जिनमें से कुछ उनके दिए गए भाषणों के सारांश भी हैं। दर्शन और बुद्धिवाद की व्याख्या तथा उसका तात्विक निरूपण इन निबंधों में किया गया है। योग के गूढ़ रहस्यों को बड़े ही सरल एवं सामान्य रीतियों से समझाना भी मुनिजी की लेखनी की सिद्धहस्तता का प्रतीक है। मानव-जीवन में सह अस्तित्व एवं अहिंसा का दिग्दर्शन भी कुछेक निबन्धों में है। आचार-संहिता एवं मानवता की परख के लिए इस पुस्तक का पठन-पाठन उपादेय होगा।

मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि—

लेखक—आचार्य तुलसी, प्रकाशक—आदर्श साहित्य सङ्घ, चुरू, राजस्थान। पृ० १२८, मू० २.२५

प्रस्तुत पुस्तक में धर्म को बौद्धिकता के मापदण्ड पर तौलने का प्रयास किया गया है। आज के तर्क प्रधान युग में प्रत्येक मानव किसी भी वस्तु को अन्धा

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो अपनाना नहीं चाहता, बल्कि उसको विश्लेषित करके सार वस्तु को ही ग्रहण करना यथेष्ट समझता है। इसीलिए आज धर्म भी बुद्धि की प्रखर वेग में प्रवाहित हो रहा है। इन्हीं बातों को आचार्य तुलसी ने अपने इस पुस्तक के २५ छोटे-छोटे भाव-निबन्धों में व्यक्त किया है। ये भाव-निबन्ध धर्म की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ हैं। क्योंकि धर्म एक सत्य है और आचार्यजी ने सत्य को ही व्यापकता का आसन प्रदान किया है। स्थल-स्थल पर भगवान महावीर के आदर्शों द्वारा सफलता का मार्ग-निर्देशन इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। जीवन में धर्म को समझने, सोचने एवं मनन के लिए इस पुस्तक का अध्ययन उपयोगी होगा।

नैतिकता का गुरुत्वाकर्षण—

लेखक—श्री मुनि नथमल, प्रका०—आदर्श साहित्य सङ्घ, चुरू, राजस्थान। पृ० ८६, मू० २.००

प्रस्तुत पुस्तिका में धर्म और नैतिक-भावना से सम्बन्धित कुल २२ छोटे-छोटे निबन्ध है। आज के युग में लोग धार्मिक प्रवृत्ति तो रखते हैं किन्तु उसके मूल में उनकी नैतिक भावनाएँ क्या हैं? इसी तथ्य को गहन रूप से परखने के लिए मुनिजी के निबन्ध हैं। नैतिकता आन्तरिक हृदय की अनुभूति का नाम है। इसका कोई रूढ़िगत मार्ग या नियम नहीं। इसी को अणुव्रत-दर्शन, सत्य के साथ समन्वित करके उल्लिखित करना ही लेखक का ध्येय है। जीवन के साथ सबका तादात्म्य सम्बन्ध ही धर्म का सिद्धान्त है। इसको भी इस पुस्तक के निबन्धों में व्यक्त किया गया है। समग्र रूप से पुस्तक पठनीय है।

भारतीय संयोजन में समाजवाद—

मूल-लेखक—श्रीमन्नारायण, अनुवादक—श्री शोभालाल गुप्त, भूमिका लेखक—स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ १६५, मूल्य ३.५०।

प्रस्तुत पुस्तक 'सोशलिज्म इन इण्डियन प्लानिंग' का हिन्दी अनुवाद है। लेखक श्रीमन्नारायणजी स्वयं पक्के गांधीवादी एवं अध्येता हैं। उन्होंने भारत में समाजवाद के भविष्य को अच्छी तरह देखा है, अपने अनुभवों, विचारों एवं दृष्टिकोणों को पुस्तक रूप में देकर, समाजवाद को नई दिशा दी है।

भूमिका में पं० जवाहरलाल नेहरू ने समाजवाद के महत्व एवं विशेषताओं का अपनी दृष्टि से आकलन कर और भी उपयोगी बना दिया है। आज के वैज्ञानिक जीवन में मानवता के प्रति श्रद्धा एवं स्नेह के वातावरण को लाने के लिए समाजवाद का प्रश्रय लेना बौद्धिक उपाय है। देश की प्रगति एवं उत्थान के लिये सबके साथ कदम मिलाकर चलना ही समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य है। इस दृष्टि से पुस्तक में स्थल-स्थल पर तालिकाओं एवं योजनाओं के समाहन से उसकी दुरूहता सरलता में परिणत हो गई है। समग्र रूप से पुस्तक पठनीय एवं सामयिक है।

विज्ञान

अणु और अनन्त —

लेखक—डा० सेठ गोविन्ददास एवं डा० ओम्प्रकाश, प्रकाशक—राष्ट्रीय साहित्य संस्थान, दिल्ली। पृष्ठ १३६, मूल्य ४.००

समालोच्य पुस्तक बृहत विश्वकोष, गांधी युग पुराण का प्रथम स्कन्ध है। इस कोष में शेष ११ स्कन्ध और हैं जिनकी संक्षिप्त रेखा पुस्तक के अन्त में दी हुई है। प्रस्तुत पुस्तक में कुल ५ अध्याय है जिनमें खगोल एवं सृष्टि के बारे में, कथोपकथन शैली में अति विद्वत्ता एवं नवीन मान्यताओं के साथ वर्णन है। पुरानी धारणाओं एवं रूढ़ियों को विद्वान् लेखक-द्वय ने वैज्ञानिकता के आधार पर खण्डन एव मण्डन किया है। शैली की मधुरता ने अति दुरूह एवं गहन विषय को भी बड़ा मनोरम बना दिया है। पृथ्वी की उत्पत्ति एवं उसकी भ्रान्तियों को समझना इसकी सब से बड़ी विशेषता है। इन सबके अतिरिक्त सम्पूर्ण पुस्तक रेखा-चित्रों से युक्त है जिनमें सभी प्राचीन एवं नवीन सौर मण्डल एवं उल्काओं के चित्र हैं। इससे पुस्तक की कलात्मकता को चार चाँद तो लग ही गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, साथ ही विषय के प्रति रुचि का भी प्रस्फुटन होता है।

सौर मण्डल को चित्रों के सहारे दिखाना और फिर उन जटिल और दुरूह विषयों को कथा का रूप देना लेखकों की कलात्मकता का परिचायक है। आशा है कि गाँधी युग पुराण के शेष ११ स्कन्ध भी ऐसे ही ललित एवं सुपाठ्य होंगे।

हास्य-व्यंग्य

पुराने प्रश्न : नए उत्तर—

लेखक—मिश्रीमल जैन, प्र०—सोहन प्रकाशन, ७४३ सरदारपुरा, जोधपुर। पृष्ठ १४४, मूल्य ३.५०

प्रस्तुत पुस्तक में अनेकों प्रश्नों के उत्तर देने की चेष्टा की गई है, पर इन उत्तरों में कहीं भी गम्भीरता का नाम नहीं है। लेखक ने इस बात की पहले से ही घोषणा कर दी है कि इसमें मनोरंजक, मार्मिक शिष्ट हास्य-व्यंग्यात्मक २०७ प्रश्नों के उत्तर हैं। इन प्रश्नोत्तरों में उक्त बातों को ढूँढ़ने की हमने बहुत कोशिश की, पर हमें सफलता नहीं मिल पाई। यह प्रश्नोत्तर कहीं-कहीं मार्मिक जरूर हो गये हैं, पर कहीं-कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि लेखक ने अपने दिल के फफोले फोड़ने का प्रयत्न किया है। एक नमूना देखिए—

प्रश्न—पुत्र-पुत्री में क्या अन्तर है?

उत्तर—पुत्र तभी तक पुत्र है जब तक वह विद्यार्थी और अविचलित है। किन्तु पुत्री याजज्जीवन पुत्री है। रात्रि पाठशाला में श्रीमती शिक्षा से पुत्र का रंग पलट सकता है, पर पुत्री ससुराल जाकर भी नहीं बदलती।

विविध

स्कूल पुस्तकालयों के विविध रूप—

मूल लेखिका—सुश्री एल० एफ० फार्गो, अनु०—सुश्री शशिप्रभा त्रिपाठी, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० ४०३, मूल्य १०.००

प्रस्तुत पुस्तक पुस्तकालय के अध्ययन एवं उससे सम्बन्धित नाना प्रकार की अवांछनीय कठिनाइयों को समझने एवं सुलझाने के परिप्रेक्ष्य में, एक उत्तम योगदान है। यह पुस्तक अमरीकन लेखिका सुश्री फार्गो के 'दि लाइब्रेरी इन द स्कूल' का हिन्दी रूपान्तर है। विदेशी वातावरण में लिखी होने पर भी वहाँ के पुस्तकालयों का वर्णन तथा विशेषताओं को बताने वाली यह पुस्तक इसलिए उपयोगी है, क्योंकि अन्य देशों से तुलना करके ही अपने देश को समृद्ध बना सकते हैं। पुस्तक की सबसे बड़ी उपयोगिता इस बात में है कि इसमें कुछ ऐसे चित्र भी दिए गये हैं जो मनोहरता एवं दृश्यपरकता के लिए महत्वपूर्ण है। पुस्तकालय ज्ञान तथा अध्ययन-अध्यापन के लिए, एक चित्रमय शैली में अपने भावों को व्यक्त करने में लेखिका पर्याप्त प्रवीण है।

समग्र रूप से पुस्तक सुन्दर है, अच्छे कागज एवं सुन्दर छपाई से युक्त है और प्रत्येक पुस्तकालय के लिए उपयोगी ही नहीं वरन् आवश्यक है क्योंकि कार्यकर्त्ता को पथ-निदर्शनी का कार्य करेगी।

भारत १९६६ (वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ)—

प्रकाशक—प्रकाशन-विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली। पृष्ठ ४११, मूल्य ३.५०।

प्रस्तुत पुस्तक भारत सरकार के गवेषणा और सन्दर्भ विभाग द्वारा अंग्रेजी में संकलित 'इण्डिया १९६६' का हिन्दी संस्करण है। भारत के राष्ट्रीय जन-जीवन में दैनिक गतिविधियों एवं समाचारों को इस सन्दर्भ ग्रन्थ में सङ्कलित किया गया है। इसमें राजनीति, व्यापार, कृषि, उद्योग, खनिज, संचार, विपणन, एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को पूर्ण अधिकृत सूचनाओं के साथ दिया गया है। इससे कोई भी नागरिक भारत के सभी पहलुओं की संक्षिप्त रूप में जानकारी प्राप्त कर सकता है। प्रादेशिक संस्कारों के सभी अंगों की नामावलि, भाषा, राजस्व एवं जन-संख्या आदि का भी वर्णन है। उनके सम्बन्ध में भी पूरी जानकारी मिलती है। सम्पूर्ण प्रदेश मिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही महान् भारत बना है। अतएव सबके बारे में जानकारी देना भी इस पुस्तक का लक्ष्य है।

इनके अतिरिक्त भारत-चीन-विवाद सम्बन्धी घटनाएँ तथा भारत-पाकिस्तान-संघर्ष की घटनाओं का विवरण भी दिया है। साथ ही अन्य वैदेशिक मामलों का भी संकेत है। इन सभी बातों को इस पुस्तक में अलग-अलग अध्यायों में सङ्कलित किया गया है।

१९६६ में भारत सरकार द्वारा प्रदत्त पुरस्कार एवं उपाधियों की सूचनाएँ भी इसमें दी गई हैं। साथ ही पूर्ण वर्ष की तिथिवार प्रमुख घटनाओं का संकेत भी है। उत्पादकता एवं उद्योग, रक्षा तथा प्रति रक्षा, खनिज एवं उत्खनन, शिक्षा एवं संस्कृति आदि का तालिका सहित वर्णन है। इससे इन विषयों पर पूर्ण निश्चित जानकारी भी प्राप्त हो जाती है। समग्र रूप से यह सन्दर्भ ग्रन्थ भारत के बारे में सभी प्रकार की जानकारी कराता है। अर्थ शास्त्र, कामर्स, राजनीति, समाज शास्त्र, शिक्षा शास्त्र, के विद्यार्थियों तथा भारत के सभी नागरिकों के लिए अपने देश की चतुर्मुखी प्रगति एवं जानकारी के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ का बड़ा साधन होगा।

प्राप्ति-स्वीकार

कहीं उजाला—

लेखक—राजेन्द्र झा, प्रकाशक—साहित्य-केन्द्र प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ १९०, मूल्य ४.००

प्रस्तुत उपन्यास से सामाजिक जीवन की कालिमा को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। किन्तु उसमें कहीं भी उजाला नहीं दिखाई देता।

रेत का महल—

लेखक—कृश्नचन्दर, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, दिल्ली। पृष्ठ १९७, मूल्य २.००

'रेत का महल' बहुत ही मनोरंजक ढंग से सरल सुबोध शैली में लिखा गया कृश्नचन्दर का नवीनतम उपन्यास है। इस उपन्यास में सामाजिक बुराइयाँ चित्रित की गई हैं।

कुछ विशिष्ट प्रकाशन

१. **केशव और रामचन्द्रिका : पुनर्मूल्यांकन**
—डा० रामगोपालसिंह चौहान ६.००

२. **जायसी ग्रन्थावली [पदमावत सटीक]**
(संशोधित संस्करण) —राजनाथ शर्मा १०.००

३. **गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन**
(शोध-प्रबन्ध) —डा० नटवरलाल अम्बालाल व्यास १२.००

४. **रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता**
(शोध-प्रबन्ध) —डा० रमेशकुमार शर्मा ८.००

५. **हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ** —डा० जयकिशनप्रसाद ८.००

६. **विद्यापति वैभव [सटीक]**
(आगरा, मेरठ, कानपुर विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत)
—डा० गुणानन्द जुयाल तथा विश्वम्भर अरुण २.५०

प्रकाशक—**विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शेषांश पृष्ठ ४ का)

द्विवेदी लक्ष्मी के सदैव अप्रसन्न रहने पर भी, अपने घोर परिश्रम एवं साधना से वीणावादिनि सरस्वती को प्रसन्न करते रहे।

डा० श्री कृष्णलाल, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में विगत कई वर्षों से अध्ययन-अध्यापन के मध्य हिन्दी के अनुसन्धान के क्षेत्र को अपने मौलिक एवं नूतन आयामों से निर्दिष्ट करते रहे। कहानी एवं गद्य की विधाओं में उनकी चिन्तन एवं मनन की प्रक्रिया से ही मार्ग का प्रशस्त होना, उनके कार्यों का सक्षम उदाहरण है। गद्य की भावभूमि, विचार-प्रविधि एवं उपयोगिता की पराकाष्ठा को उन्होंने पूर्ण रूप से अपने में समाहित कर, पाठकों को लाभान्वित किया।

वर्त्तमान वैज्ञानिक युग में भी, समर्थ साहित्यकारों में आचार्य वाजपेयी जैसे बहुत कम सूक्ष्मदर्शी समालोचक तथा विद्वान होंगे, जिनका सारा जीवन साहित्य-साधना एवं सरस्वती की उपासना में बीता हो। जीवन के अन्तिक समय तक साहित्य सेवा में रत रह कर, कई विश्वविद्यालयों से सम्मानित हो जाने पर भी और विक्रम विश्व-विद्यालय के उपकुलपति के उत्तरदायित्व एवं अनुशासन युक्त पद पर रहते हुए जो सेवा उन्होंने की है, वह अनुपमेय है।

कुछ दिन पूर्व 'वाजपेयी अभिनन्दन-ग्रन्थ' का श्रद्धा-सुमन इसी माँ-भारती के वरद् पुत्र को अर्पित करना, इसका प्रमाण है। सूर-साहित्य एवं निराला-साहित्य के चिन्तन पक्ष को अनुसन्धान की प्रविधि में ला खड़ा कर देना, वाजपेयीजी प्रखर बुद्धि का परिचायक है। आलोचकों की दृष्टि में श्री वाजपेयी हिन्दी के उन तलस्पर्शी आलोचकों में थे, जिन्होंने शुक्लोत्तर हिन्दी समीक्षा को एक निर्दिष्ट दिशा दी। उन्होंने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और निर्भीक आलोचना द्वारा छायावाद के काव्य को सहानुभूतिपूर्ण एवं बौद्धिक प्रश्रय दिया। शुक्लजी की शिष्य-परम्परा में होकर भी उन्होंने शुक्लजी की लोकवादी नीतिपरक आलोचना पद्धति की एकांगिकता का विरोध किया। उनका कहना था कि मेरा आगमन हिन्दी के छायावादी कवि प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी की नयी कविता के विवेचक के रूप में हुआ था। नये जीवन-दर्शन, नयी भावधारा, नूतन कल्पना-छवियाँ और अभिनव भाषा के रूपों को देखकर मैं इनकी ओर आकृष्ट हुआ था। इनके जीवन-दर्शन में मानवीय आदर्शों की एक सम्पूर्णता थी। इनकी भावधारा में गांभीर्य था। इनकी कल्पना छवियाँ निसर्गजात और समग्र थीं।

पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी अपने सङ्घर्षमय जीवन के मध्य भी 'कवि और काव्य' नामक अपनी कृति में काव्य चिन्तन और पूरातन काव्य, प्राचीन एवं आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद, रहस्यवाद एवं दर्शन का झंझावात आदि को बड़े ही मनोवेग ढंग से सुलझा कर सही रास्ते का संकेत किया है। पिछले वर्ष 'सरस्वती' पत्रिका में नवलेखन, नयी कविता एवं कहानी पर आपका लेख बड़ा ही तथ्यपूर्ण एवं मौलिक प्रमाणित हुआ था क्योंकि आप परम्परावादी थे, उसकी उपेक्षा इन्हें असह्य थी। शायद इसीलिए इन्होंने अपनी 'संचारिणी' कृति में विविध विषयों पर सारगर्भित एवं विवेचनापूर्ण निबन्ध भी लिखा। 'युग और साहित्य' तथा 'प्रतिष्ठान' भी इसी तरह की कृतियाँ हैं जिनमें हिन्दी का युग साहित्य तथा संस्मरण भी बड़े उपयोगी हैं। 'परिव्राजक की प्रजा' में आत्मकथा के माध्यम से देशकाल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। साहित्य के इस धरातल पर द्विवेदीजी का कार्य सर्वदा हिन्दी पाठकों को प्रेरित करता रहेगा।

साहित्य-सन्देश, इन तीनों माँ-भारती के सेवकों के अकाल ही काल-गाल में चले जाने पर अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है तथा अपने पाठकों एवं लेखकों से निवेदन करता है कि माँ भारती के इन सपूतों पर व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी लेख हमें भेजें।

भगवान उनकी आत्माओं को शान्ति दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नेशनल' के जुलाई मास के प्रकाशन

★

रस-सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र—डा० निर्मला जैन ३०–००

"तुलनात्मक सौन्दर्य शास्त्र" के इस प्रथम गम्भीर प्रयास में रस-सिद्धान्त को काव्य-सृजन से काव्यास्वाद तक व्याप्त एक समग्र-सम्पूर्ण काव्य-सिद्धान्त के रूप में पुनर्निर्मित करने का अभिनव एवं स्तुत्य प्रयास किया गया है। नयनाभिराम मुद्रण-कलापूर्ण सज्जा।

★

उधार के पंख—ए० रमेश चौधरी 'आरिगपूडि' ४–५०

वासनाओं के बहुरङ्गी पंखों से आकांक्षाओं की मीनार की ऊँचाई छू लेने के लिए विकल रंजनी की यह मार्मिक कथा यथार्थ के जितनी निकट है, उतनी ही रोचक भी बन पड़ी है। उड़ने वाले को फिर धरती पर ही आना होता है, यह रंजनी ने नहीं सोचा था पर अन्त में उसे सोचना ही पड़ा। सिद्धहस्त उपन्यासकार श्री आरिगपूडि की नई मौलिक कृति। कलात्मक आवरण—स्वच्छ मुद्रण।

★

अपराजिता—कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ६–००

सुप्रसिद्ध साहित्यकार की ४१ कविताओं का अनुपम संग्रह। कवि की भाव-प्रवणता, गहन अनुभूति एवं कल्पना का हर कविता में दर्शन होता है। संग्रह की अनेक कविताएँ सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बन पड़ी हैं। तिरंगा आवरण—नयनाभिराम स्वच्छ मुद्रण।

★

हमारा नया सूची-पत्र निःशुल्क मँगाइए

★

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

२६-ए, जवाहर नगर,

दिल्ली-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश, आगरा

की

१९६६-६७ की फाइल

की

विषय-सूची

१. नई आलोचना	डा० कन्हैयालाल सहल	५
२. हिन्दी कहानी-साहित्य का विकास और जातक कथाओं की स्थिति	डा० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	७
३. हिन्दी का प्रथम महाकाव्य : पृथ्वीराज रासो	प्रो० विश्वम्भर 'अरुण'	१०
४. हिन्दी के प्रथम गीतकार : विद्यापति	डा० गुणानन्द जुयाल	१३
५. सूरदास के काव्य में समन्वय-साधना	डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	१५
६. साकेत का महाकाव्यत्व	डा० कमलाकान्त पाठक	१७
७. 'कामायनी सम्बन्धी कतिपय भ्रान्तियाँ	डा० भँवरलाल जोशी	२०
८. आधुनिक काव्य-धारा और सामाजिक यथार्थ-बोध	डा० रमाकान्त शर्मा	२२
९. महादेवी का संस्मरण-साहित्य	डा० कृष्णकुमार शर्मा	२६
१०. छायावाद पर पाश्चात्य प्रभाव	प्रो० रमेशचन्द्र गुप्त	३०
११. डा० रामविलास शर्मा की कविता	श्री विश्वम्भर मानव	३५
१२. गुलेरीजी की कहानियाँ	प्रो० सुरेशचन्द्र त्यागी	३८
१३. सन्त-कवि रसपुञ्ज का जीवन-वृत्तान्त तथा उनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता	श्री हरफूलसिंह	४३
१४. जयशङ्कर 'प्रसाद' और लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	श्री जगदम्बाप्रसाद पाण्डेय	४७
१५. 'विनय-पत्रिका' : एक प्रपत्ति-काव्य	प्रो० सुरेशचन्द्र शर्मा	५३
१६. 'तितली' में चरित्र-चित्रण	प्रो० कर्णसिंह वर्मा	५६
१७. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन	प्रो० अम्बिकाचरण शर्मा	६१
१८. १९६५-६६ वर्ष की विषय-सूची		७१
१९. छायावाद की परिभाषा	डा० लालताप्रसाद सक्सेना	७७
२०. आधुनिक साहित्य की प्रेरणाएँ एवं प्रवृत्तियाँ	डा० नवलकिशोर मिश्र	८१
२१ सूरदास की भक्ति का स्वरूप	डा० रमणलाल व्ही० गांधी	८१
२२. कबीर का काव्य-सौष्ठव	डा० भगवत्स्वरूप मिश्र	८८
२३. 'रत्नाकर' के 'उद्धव-शतक' पर भक्तिकाल और रीतिकाल का प्रभाव	डा० सुरेशचन्द्र शर्मा	९४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६०. कविवर रत्नाकर और उनका व्यक्तित्व — पं० बनारसीदास चतुर्वेदी — २६७
६१. स्वर्गीय रत्नाकरजी : व्यक्तित्व की एक झलक — श्री उदित मिश्र — २७१
६२. सच्चे हिन्दी सेवी रत्नाकर — सरलदास सेठ — २७३
६३. गंगावतरण का काव्य-सौन्दर्य — डा० रामप्रकाश अग्रवाल — २७५
६४. 'गंगावतरण' का काव्यरूप — डा० शिवप्रसाद गोयल — २८०
६५. श्री मद्भागवत की भक्ति पद्धति और 'उद्धवशतक' — डा० विश्वनाथ शुक्ल — २८४
६६. रत्नाकर—आज के कोण से — डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय — २८९
६७. रत्नाकरजी के काव्य-सिद्धान्त — डा० सुरेशचन्द्र गुप्त — २९२
६८. व्रजभाषा के धनी कवि रत्नाकर — डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना — २९७
६९. रत्नाकर का काव्य-सौष्ठव — डा० प्रेमप्रकाश गौतम — ३००
७०. भ्रमरगीत परम्परा में 'उद्धवशतक' की मौलिक उद्भावनाएँ — डा० नित्यानन्द शर्मा — ३१५
७१. उद्धवशतक की विधा — डा० शिवबालक शुक्ल — ३२१
७२. 'उद्धवशतक' में कवि की सौन्दर्य दृष्टि — डा० नत्थनसिंह — ३२७
७३. उद्धवशतक की गोपियाँ — डा० रूपनारायण — ३३१
७४. उद्धवशतक में विरह भावना — डा० अरविन्दकुमार देसाई — ३३४
७५. रत्नाकर काव्य में भक्ति — डा० गोवर्धननाथ शुक्ल — ३३८
७६. 'उद्धवशतक' में चित्रोपमता — डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' — ३४१
७७. 'उद्धवशतक' में कहावतें, मुहावरे तथा कहावती पद : एक विवेचन — डा० कन्हैयालाल सहल — ३४७
७८. 'उद्धवशतक' का कलावैशिष्ठ्य — सुश्री राजा बुद्धिराजा — ३४८
७९. उद्धवशतक का भाषा-सौन्दर्य — डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, डी. लिट् — ३५१
८०. उद्धवशतक' में प्रकृति, सौन्दर्य और प्रेम — डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, डी० लिट् — ३५६
८१. मध्ययुगीन काव्यधारा का रत्नाकर पर प्रभाव — श्रीमती सुधाकुमार — ३६०
८२. महाकाव्य और त्रासदी के सम्बन्ध में अरस्तू के विचार — डा० राजकिशोर कक्कड़ — ३७३
८३. रीतिकाव्य का पुनर्मूल्याङ्कन — डा० रामरतन भटनागर — ३७६
८४. शृङ्गार रस के अप्रतिम कवि—सूर — प्रो० घनश्याम अग्रवाल — ३८२
८५. मिश्रजी का बुद्धिवाद — डा० ओंकारप्रसाद माहेश्वरी — ३८७
८६. प्रगतिवाद और निराला का काव्य — डा० अरविन्दकुमार देसाई — ३८९
८७. महादेवी का काव्य-सौन्दर्य — डा० एल० डी० जोशी — ३९५
८८. निबन्धकार श्री सियारामशरण गुप्त — डा० शिवप्रसाद मिश्र — ३९८
८९. 'ध्रुवस्वामिनी' में सांस्कृतिक चेतना — डा० प्रेमदत्त शर्मा — ४०१
९०. शोध और समीक्षा — डा० सुरेशचन्द्र गुप्त — ४१३
९१. सोरों-सामग्री : शंका-समाधान — डा० रामदत्त भारद्वाज — ४१८
९२. सेनापति रचित 'गुरु-शोभा' का रचना-काल — श्री वेदप्रकाश गर्ग — ४२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४. 'द्वापर'—एक मूल्याङ्कन	प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल	९९
२५. मधु संचय		१०२
२६. काव्य की आत्मा	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	११७
२७. वाङ्मय, काव्य तथा साहित्य	डा० शिवबालक शुक्ल	१२२
२८. लोक-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	श्री धनंजय	१२६
२९. राम के यशस्वी गायक—गो० तुलसीदास	श्रीमती सरला जैन	१३०
३०. अस्तित्ववाद और नई कविता	डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'	१३२
३१. 'आँसू' में अभिव्यक्त वेदना का स्वरूप	विजय 'राणा'	१३७
३२. सूर की साहित्य-साधना	डा० रामप्रकाश अग्रवाल	१४१
३३. ट्रेजेडी में अहं का विगलन	डा० कन्हैयालाल सहल	१५३
३४. हिन्दी तथा आँग्ल लक्षण-ग्रन्थों का स्रोत एवं स्वरूप	डा० तपेश चतुर्वेदी	१५९
३५. कबीर की भक्ति-पद्धति	डा० मुरारीलाल शर्मा 'सुरस'	१६३
३६. कवि भूषण : एक मूल्यांकन	डा० राजमल बोरा	१६६
३७. गुजराती का प्रथम उपन्यास : 'करणघेलो'	डा० अरविन्दकुमार देसाई	१७१
३८. महादेवी की पीड़ा का उत्स	डा० कृष्णकुमार शर्मा	१७५
३९. महाकवि जी शंकर कुरुप	श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी	१७८
४०. काव्य का स्वरूप	डा० पारसनाथ द्विवेदी	१८९
४१. शैली : स्वरूप और विवेचन	डा० नत्थनसिंह	१९२
४२. तुलसी के काव्य में हास्य	डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	१९७
४३. बिहारी सतसई में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य	डा० रमासिंह	२००
४४. मौलिक व्यक्तित्व के कवि बच्चन	डा० सियारामशरणप्रसाद	२०३
४५. हिन्दी में आलोचनात्मक निबन्ध	श्री रामकृष्ण अग्रवाल	२०६
४६. असरारे सनादिद उर्फ देवस्थान-रहस्य	श्री सुरेशचन्द्र त्यागी	२१०
४७. क्या महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण भी हैं ?	प्रो० कु० प्रेमलता	२१३
४८. अधम पात्र निष्ठ रति : रस या रसाभास	डा० प्रशान्तकुमार वेदालङ्कार	२२५
४९. वेदों के नाटक	कुमारी कमला एम० ए०	२२७
५०. परसर्ग रूप : कुछ भ्रान्तियाँ और निराकरण	कुमारी अमरकौर भारत	२३०
५१. 'चन्द्रगुप्त' में नियतिवाद	डा० कृष्णकुमार शर्मा	२३५
५२. अज्ञेय की कहानी कला	प्रो० धनश्याम अग्रवाल	२३८
५३. सूफी कवि और गो० तुलसीदास	व्यौहार राजेन्द्रसिंह	२४३
५४. सूर, नन्द एवं रत्नाकर के भ्रमरगीतों का तुलनात्मक अध्ययन	कमलकिशोरप्रसाद बर्मा	२४९
५५. वर्तमान हिन्दी साहित्य—एक सर्वेक्षण	डा० हरवंशलाल शर्मा	२५१
५६. एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा—हमारा प्राप्तव्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	२५६
५७. रत्नाकर का महत्त्वाङ्कन	आ० विनयमोहन शर्मा, डा० ओमप्रकाश	२६३
५८. कालजयी कवि—रत्नाकर	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा	२६४
५९. कविवर रत्नाकर	डा० भगीरथ मिश्र	२६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६०. कविवर रत्नाकर और उनका व्यक्तित्व	पं० बनारसीदास चतुर्वेदी	२६७
६१. स्वर्गीय रत्नाकरजी : व्यक्तित्व की एक झलक	श्री उदित मिश्र	२७१
६२. सच्चे हिन्दी सेवी रत्नाकर	सरलदास सेठ	२७३
६३. गंगावतरण का काव्य-सौन्दर्य	डा० रामप्रकाश अग्रवाल	२७५
६४. 'गंगावतरण' का काव्यरूप	डा० शिवप्रसाद गोयल	२८०
६५. श्री मद्भागवत की भक्ति पद्धति और 'उद्धवशतक'	डा० विश्वनाथ शुक्ल	२८४
६६. रत्नाकर—आज के कोण से	डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	२८९
६७. रत्नाकरजी के काव्य-सिद्धान्त	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	२९२
६८. ब्रजभाषा के धनी कवि रत्नाकर	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	२९७
६९. रत्नाकर का काव्य-सौष्ठव	डा० प्रेमप्रकाश गौतम	३००
७०. भ्रमरगीत परम्परा में 'उद्धवशतक' की मौलिक उद्भावनाएँ	डा० नित्यानन्द शर्मा	३१५
७१. उद्धवशतक की विधा	डा० शिवबालक शुक्ल	३२१
७२. 'उद्धवशतक' में कवि की सौन्दर्य दृष्टि	डा० नत्थनसिंह	३२७
७३. उद्धवशतक की गोपियाँ	डा० रूपनारायण	३३१
७४. उद्धवशतक में विरह भावना	डा० अरविन्दकुमार देसाई	३३४
७५. रत्नाकर काव्य में भक्ति	डा० गोवर्धननाथ शुक्ल	३३८
७६. 'उद्धवशतक' में चित्रोपमता	डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	३४१
७७. 'उद्धवशतक' में कहावतें, मुहावरे तथा कहावती पद : एक विवेचन	डा० कन्हैयालाल सहल	३४५
७८. 'उद्धवशतक' का कलावैशिष्ट्य	सुश्री राजा बुद्धिराजा	३४८
७९. उद्धवशतक का भाषा-सौन्दर्य	डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, डी. लिट्	३५१
८०. उद्धवशतक' में प्रकृति, सौन्दर्य और प्रेम	डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, डी० लिट्	३५६
८१. मध्ययुगीन काव्यधारा का रत्नाकर पर प्रभाव	श्रीमती सुधाकुमार	३६०
८२. महाकाव्य और त्रासदी के सम्बन्ध में अरस्तू के विचार	डा० राजकिशोर कक्कड़	३७३
८३. रीतिकाव्य का पुनर्मूल्याङ्कन	डा० रामरतन भटनागर	३७६
८४. शृङ्गार रस के अप्रतिम कवि —सूर	प्रो० घनश्याम अग्रवाल	३८२
८५. मिश्रजी का बुद्धिवाद	डा० ओंकारप्रसाद माहेश्वरी	३८७
८६. प्रगतिवाद और निराला का काव्य	डा० अरविन्दकुमार देसाई	३८९
८७. महादेवी का काव्य-सौन्दर्य	डा० एल० डी० जोशी	३९५
८८. निबन्धकार श्री सियारामशरण गुप्त	डा० शिवप्रसाद मिश्र	३९८
८९. 'ध्रुवस्वामिनी' में सांस्कृतिक चेतना	डा० प्रेमदत्त शर्मा	४०१
९०. शोध और समीक्षा	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	४१३
९१. सोरों-सामग्री : शंका-समाधान	डा० रामदत्त भारद्वाज	४१८
९२. सेनापति रचित 'गुरु-शोभा' का रचना-काल	श्री वेदप्रकाश गर्ग	४२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९३.	अमरचन्द्रिका टीका की रचना के प्रेरक कौन ?	श्री अगरचन्द नाहटा	४२२
९४.	जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की काव्य-चेतना	डा० सियारामशरण प्रसाद	४२३
९५.	ऐतिहासिक उपन्यासकार : चतुरसेन शास्त्री और वृन्दावनलाल वर्मा	डा० प्रवीण नायक	४२७
९६.	मनोवैज्ञानिक कथाकार : जैनेन्द्र और अज्ञेय	डा० नरेन्द्रदेव वर्मा	४३०
९७.	आत्मतृप्त डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	प्रो० रामस्वरूप आर्य	४३४
९८.	सच्चे पृथिवी पुत्र : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	श्रीराम शर्मा एम० ए० साहित्यरत्न	४३५
९९.	उदयराज उज्ज्वल	डा० मोहनलाल जिज्ञासु	४३८
१००.	मानव-जावाभिव्यंजन में नये मानव-उपमान	डा० ललताप्रसाद सक्सेना	४५३
१०१.	'मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में नारी'	डा० हरगुलाल	४५६
१०२.	विद्यापति और रत्नाकर की भावभूमि	डा० वीरेन्द्रकुमार बड़थ्वाल	४६१
१०३.	कबीर का काव्य : एक मूल्यांकन	डा० राजमल बोरा	४६६
१०४.	हिन्दी नाटकों में हास्य रस	डा० भगवतशरण अग्रवाल	४७०
१०५.	पन्तजी की गद्य-शैली	सुश्री चन्द्रकान्ता सूद एम० ए०	४७४
१०६.	सन्त कवि वाजींद की एक अज्ञात रचना : गुण अजब नामो	श्री अगरचन्द नाहटा	४७७
१०७.	कवि कुलपति मिश्र की दो अज्ञात रचनाएँ	श्री अगरचन्द नाहटा	४७८

इन लेखों के अतिरिक्त सैकड़ों नई और महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की अनुभवी आलोचकों के द्वारा लिखी समीक्षाएँ तथा सामयिक साहित्यिक समस्याओं पर विचारपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी सङ्कलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय, पाठकों के लिए पठनीय

हास्य-व्यंग्य साहित्य

सोने के दाँत	डॉ० संसारचन्द्र	४.३७
चाचा चौधरी	डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी	४.३७
मूँछ पुराण	,, ,,	४.३७
महामति चाणक्य राजदूत बने	,, ,,	४.३७
गणित के गणेश	भुवनेश्वरीप्रसाद 'भुवन'	४.३७
नखरे ऊपर नखरे	हिमांशु श्रीवास्तव	४.३७
खाट पर हजामत	रोशनलाल सुरीरवाला	४.३७
बिल्लू साहब	डॉ० ग्रामप्रकाश	४.३७
तिकड़म बनाम तिकड़म	प्रो० श्यामसुन्दर घोष	४.३७
थर्ड डिवीजन	ओमप्रकाश शर्मा 'आदित्य'	४.३७

नाटक

शाहजहाँ के आँसू	प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा	३.००
आदर्श एकाङ्की	सन्तराम विचित्र	४.००
चन्द्रावली नाटिका (भारतेन्दु)	भूषण 'स्वामी'	१.५०
भारत दुर्दशा (,,)	,,	१.५०
मुद्रा राक्षस (,,)	कृष्णदेव शर्मा	२.००
शकुन्तला नाटक (लक्ष्मणसिंह)	,,	२.००

उपन्यास और कहानियाँ

पुरुष और महापुरुष	हिमांशु श्रीवास्तव	३.५०
घाटी की परियाँ	खलील जिब्रान	३.५०
उन्तीस कहानियाँ	ब्रि० बंगालीसिंह	४.५०
हिन्दी कहानियाँ	भूषण 'स्वामी'	३.००

कविता

ओ अजन्मा सुनो	डॉ० बचनदेवकुमार	६.००
पाषाणी	डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी	५.००
आग और आकर्षण	जीवनप्रकाश जोशी	३.००
सुदामा-चरित (नरोत्तमदास)	कृष्णदेव शर्मा	१.५०
गंगालहरी (पद्माकर)	प्रो० दीनानाथ शरण	१.५०
प्रेममाधुरी और स्फुट कविताएँ (भारतेन्दु)	डॉ० रणधीर सिन्हा	२.५०

हिन्दी की सभी प्रकार की पुस्तकें हमसे मँगावें तथा हमारा सूचीपत्र मुफ्त प्राप्त करें।

हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-७ और पटना-४

हमारे नवीनतम प्रकाशन

साहित्यिक शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ
डॉ० देवराज उपाध्याय ५.५०

साहित्यालोचन के प्राचीन एवं नवीन सिद्धांत
डॉ० रामगोपाल शर्मा ६.५०

कहानी में औत्सुक्य का अनुतत्व
श्री रमेश वक्षी ३.७५

काव्य का प्रयोजन
प्रो० नित्यानन्दप्रसाद ३.७५

हिन्दी एकांकी : तत्व विकास और एकांकीकार
डॉ० रामचरण महेन्द्र ४.५०

भगवतीप्रसाद वाजपेयी व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डॉ० बैजनाथ गुप्त २.५०

मीराबाई की काव्य-कला और जीवनी
डॉ० नारायण शर्मा ३.७५

साकेत दर्शन } विभिन्न विद्वानों के २.००
कामायनी दर्शन } उच्चकोटि के निबन्ध २.७५

शृङ्गार रस का शास्त्रीय विवेचन (शोध-ग्रंथ)
डॉ० राजेश्वरप्रसाद १०.००

हिन्दी भाषा विकास और विश्लेषण
डॉ० चन्द्रभान रावत १५.००

कारवाँ चला गया (उपन्यास)
प्रतापचन्द २.००

अन्य उच्चकोटि की पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाएँ।

सरस्वती पुस्तक सदन
मोतीकटरा, आगरा-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पुस्तकों के लिए आप इधर उधर

क्यों भटकते हैं ?

हमें लिखें हम आपकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे ।

हमारे कालेजों एवं स्कूलों के स्तर के प्रकाशन

इन्हें पढ़कर आप अपनी परीक्षा में अच्छे नम्बर प्राप्त करेंगे ।

उच्चतर निबन्ध भारती—श्री 'सिद्धेश' और मिश्रा		५.००
निबन्ध भारती	श्री "सिद्धेश"	३.५०
सुबोध हिन्दी व्याकरण	,,	२.७५
आदर्श व्याकरण और रचना	,,	२.५०
आदर्श हिन्दी रचना	,,	१.५०
काव्यांग प्रवेशिका	,,	१.००
निबन्धालोक	श्री कमलेश	४.००
प्रबन्ध पराग	आचार्य बैजनाथराय	५.००
रचना रत्नाकर	पंडित रंगनाथ त्रिपाठी	४.००
वाद-विवाद व्याख्यान प्रवेशिका	तिवारी एवं राय	३.५०
समाज का अध्ययन	चौहान, पाण्डेय और उपाध्याय	५.५०
अर्थशास्त्र के मूल तत्व	मिश्रा	६.००
नागरिकता तथा भारतीय शासन	शर्मा	८.५०

हमारे कुछ अनमोल प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का इतिहास—
श्री सिंहाशन राय "सिद्धेश" ५.०

हमारे प्रमुख लेखक श्री सिंहाशन राय "सिद्धेश" द्वारा लिखा हुआ हिन्दी-साहित्य का इतिहास प्रकाशित हो चुका है। सभी कालों की परिस्थितियों प्रकृतियों और विशेषताओं के संतोषपूर्ण वर्णनों और लेखकों कवियों की साहित्यिक सेवाओं के अतिरिक्त उनकी लेखन-शैली का विवेचन सोदाहरण उनकी रचनाओं से प्रस्तुत किया गया है। डिमाई साइज लगभग ढाई सौ पृष्ठों की बहुत सुन्दर छपाई एवं गेटअप और बाईडिंग की पुस्तक का मूल्य केवल ५.० है। यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालयों में रखने योग्य है।

संसार की प्राचीन सभ्यताएँ एवं भारत से उनका सम्बन्ध	श्री रामकिशोर शर्मा	६.०
सूर साधना और साहित्य	त्रिलोकीनाथ प्रेमी	२.५
हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार	श्री "सिद्धेश"	३.०
अध्ययन आलोक	प्रो० विवेकीराय	२.०
बलिदान (उपन्यास)	आचार्य बैजनाथ राय	५.०
मगध की पद्मिनी (उप०)	वासदेव उपाध्याय	३.००
सीमा रेखा (उपन्यास)	शिवमूर्ति शिव	३.०
जीवन की मूल (उपन्यास)	रमाशंकर द्विवेदी	३.०
क्रान्ति (उपन्यास)	रायप्रवेश यादव	३.०
विधाता की मूरतें (कहानी संग्रह)	श्री अंचल	४.०
जय अम्बे (उपन्यास)	श्यामनारायण प्रसाद	३.०
रजनी गंधा (मौलिक कविताएँ)	प्रो. विवेकीराय	२.०
तरंगिणी (मौलिक सरस गीत)	श्री मंजुल	२.५

आदर्श पुस्तक भण्डार

प्रधान कार्यालय—
२४२ रविन्द्र शरणी
कलकत्ता–७
फोन कार्यालय ४-१८९८
फोन निवास स्थान ५५-६९२४

शाखा—
डी० ५३।८६ लक्सा रोड गुरुबाग,
वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

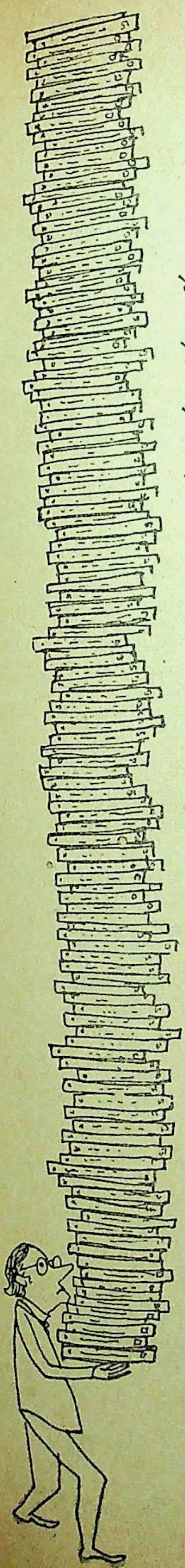

४००वीं हिन्द पाकेट बुक्स के प्रकाशन पर

हिन्द पाकेट बुक्स के लाखों पाठकों को

हमारी हार्दिक बधाई

४००—महादेवी के लोकप्रिय गीत	महादेवी वर्मा		१.००
४०१—काका की कचहरी	काका हाथरसी	(हास्य-व्यंग्य)	१.००
४०२—पड़ौसी	गुरुदत्त	(उपन्यास)	२.००
४०३—पत्थर युग के दो बुत	आचार्य चतुरसेन	(उपन्यास)	२.००
४०४—घरौंदा	रांगेय राघव	(उपन्यास)	२.००
४०५—एक म्यान दो तलवारें	नानकसिंह	(उपन्यास)	२.००
४०६—बुरे फँसे	शौकत थानवी	(हास्य-व्यंग्य)	१.००
४०७—छः लाशें	कर्नल रंजीत	(जासूसी उपन्यास)	१.००
४०८—पागल	अर्नेस्ट हेमिंग्वे	(कहानी-संग्रह)	१.००
४०९—दो शहरों की दास्तान	चार्ल्स डिकेन्स	(उपन्यास)	१.००

हिन्द पाकेट बुक्स के नियमित सदस्य बनकर हमारी घरेलू लाइब्रेरी योजना के अन्तर्गत अनेक उपहार प्राप्त करें।

विस्तृत जानकारी के लिए लिखें—

हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लि०,

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

हिन्द पॉकेट बुक्स, जो हर मास लाखों पाठकों का मनोरंजन करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अहिंसक नव-रचना के मासिक पत्र

जीवन-साहित्य

को

अवश्य पढ़िये। वह २८ वर्ष से पाठकों की सेवा कर रहा है। उसके प्रत्येक अंक में आपको—

- ★ प्रेरणादायक सामग्री मिलेगी।
- ★ चिन्तन के लिए लेख मिलेंगे।
- ★ स्वस्थ जीवन के नव-निर्माण की दिशा मिलेगी।

एक बड़ा लाभ

यह होगा कि पत्र के ग्राहक बन जाने पर आप 'मण्डल' के प्रकाशन रियायती मूल्य में पा सकेंगे।

हाल ही में दो बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तकें निकली हैं :—

१—हमारी परम्परा **२—कृषि दीपिका**

पहली पुस्तक में बड़े ही सारगर्भित ढंग से भारतीय संस्कृति तथा धर्मों की प्रागैतिहासिक काल से अब तक की जानकारी दी गई है। उसके सम्पादक हैं सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि। दूसरी में कृषि तथा पशु पालन से सम्बन्धित सभी ज्ञातव्य बातें बताई गई हैं। उसके लेखक कृषि-साहित्य के विशेषज्ञ डा० नारायण दुलीचन्द व्यास है।

'जीवन-साहित्य'

के

सम्पादक हैं हरिभाऊ उपाध्याय तथा यशपाल जैन। ※ वार्षिक शुल्क केवल ५) है।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

आलोचना प्रधान मासिक

साहित्य-सन्देश आलोचना का एक मात्र मासिक पत्र है जो विगत २८ वर्ष से लगातार निकल रहा है। इसका प्रचार भारत के कोने-कोने में है। वार्षिक मूल्य लागत से भी कम केवल ६.०० है।

उपयोगिता—(१) हिन्दी के अध्ययन के लिए साहित्य-सन्देश अनूठा साधन है। हजारों विद्यार्थी साहित्य-सन्देश पढ़कर बी. ए., एम. ए., पी-एच डी. आदि पदवीधारी बनकर आज बड़े-बड़े कालेजों में अध्यापन कर रहे हैं।

(२) साहित्य-सन्देश के निरन्तर अध्ययन से सैकड़ों व्यक्ति लेखक बन गए। आज के अनेक सम्मान्य लेखकों ने लिखने का आरम्भ साहित्य सन्देश के माध्यम से ही किया है। आज भी उसे बड़े से बड़े विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

(३) अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रचारकों के लिए तो साहित्य सन्देश एक सम्बल है जिसके सहारे वे हिन्दी का ज्ञान बराबर बढ़ा सकते हैं। इसीलिए इन प्रान्तों में भी उसकी हजारों प्रतियां जाती हैं।

मान्यता—(१) भारत के सभी प्रदेशों की सरकारों ने अपने स्कूल, कालेजों के लिए खरीदने की मान्यता साहित्य-सन्देश को दे रक्खी है।

(२) भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालय, अधिकांश कालेज और स्कूल तथा अध्यापकगण अपने पुस्तकालयों के लिए साहित्य-सन्देश खरीदते हैं।

(३) उपयोगिता समझकर ही उत्तर प्रदेश की सरकार साहित्य-सन्देश की ५०० प्रति खरीद कर अपने स्कूलों में मुफ्त वितरण कराती है। बिहार आदि प्रान्त भी इसी प्रकार साहित्य-सन्देश की सैकड़ों प्रतियाँ खरीदते रहे हैं। राजस्थान सरकार ने अपने स्कूलों में साहित्य-सन्देश खरीदना अनिवार्य कर दिया है।

आप भी छः रुपये भेजकर उसके ग्राहक बन जाएं।

साहित्य-सन्देश की

गत १४ वर्षों की फाइलें

३० नवम्बर तक मँगाने पर पौने मूल्य में

साहित्य-सन्देश को निकलते २८ वर्ष हो गए। प्रारम्भ के १४ वर्षों की फाइलें क्या एक अङ्क भी नहीं बचा है। इधर १४ वर्ष की कुछ फाइलें उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल में हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखित ५०० पृष्ठों (पुस्तकाकार में १००० पृष्ठ) की सामग्री है। ऐसी प्रत्येक सजिल्द फाइल का मूल्य केवल १०) है। पोस्टेज एक फाइल पर करीब २) पड़ेगा। किन्तु कम से कम पाँच वर्ष की फाइलें मंगाने पर रेल द्वारा बिना खर्च भेजी जायेंगी। किस वर्ष की फाइल में कौन विशेषाङ्क है—यह नीचे देखिए। चिन्हित विशेषाङ्क अलग से भी मिल सकते हैं। तुरन्त आर्डर भेजिए।

सन्	वर्ष के विशेषांक	विशेषांक का मूल्य
१९५२-५३	कहानी अङ्क	२)
१९५३-५४	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५४-५५		
१९५५-५६	अन्तःप्रान्तीय नाटकाङ्क	२)
१९५६-५७	आधुनिक उपन्यास अङ्क*	२)५०
१९५७-५८	(१) भाषा विज्ञान अङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क	१)
१९५८-५९	(१) सन्त साहित्य अङ्क*	२)५०
	(२) ऐतिहासिक उपन्यासाङ्क*	२)
१९५९-६०	(१) रीतिकाव्यालोचनाङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति अङ्क १९६०*	२)
१९६०-६१	(१) शोध विशेषाङ्क	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क १९६१*	२)
१९६१-६२	(१) निबन्ध विशेषाङ्क अप्राप्य	२)५०
	(२) निराला विशेषाङ्क ,,	२)
१९६२-६३	(१) साहित्य-शास्त्र अङ्क*	२)५०
	(२) रांगेय राघव अङ्क	२)
	(३) शिवपूजनसहाय अङ्क	१)
१९६३-६४	(१) बाबू गुलाबराय अङ्क*	२)५०
	(२) वीर काव्य विशेषाङ्क	२)५०
१९६४-६५	(१) द्विवेदी अङ्क*	२)
	(२) राष्ट्रकवि गुप्त विशेषाङ्क*	२)
१९६५-६६	(१) हरिऔध विशेषाङ्क*	२)
	(२) विद्यापति विशेषाङ्क*	२)
१९६६-६७	(१) नव वर्षाङ्क*	१)५०
	(२) रत्नाकर विशेषाङ्क*	१)५०

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

REGD. No. L 263 July-August 1967 Licence No. 16
Sahitya-Sandesh, Agra. Licensed to post without prepayment.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश की पुरानी फाइलों

की बड़ी माँग है

क्योंकि—

१—एक-एक वर्ष की फाइल में ५०० पृष्ठ ठोस मैटर के हैं जो पुस्तकाकार में १००० होते।

२—विद्वानों के इतने सुन्दर लेख एक स्थान पर अन्यत्र मिलना कठिन है।

३—यह फाइलें हिन्दी के अध्येताओं और शोध करने वालों के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

४—इन फाइलों का मूल्य बहुत ही कम है। पन्द्रह रुपये के स्थान में केवल १० रुपए।

परन्तु अभी

३१ दिसम्बर १९६७ तक

पौने मूल्य में मिलेंगी

ध्यान रखिये :

१—१९३७ से १९५१ तक की कोई फाइल नहीं बची है।

२—१९५२ से १९६६ तक की फाइलें भी पूरी नहीं मिल सकेंगी। समाप्त होती जा रही हैं।

आप अपने कालेज या स्कूल के लिए खरीदना चाहें तो तुरन्त मंगालें वरना पीछे पछताना पड़ेगा।

एक-दो मंगाने पर डाक खर्च २) प्रति फाइल, कम से कम पाँच फाइल मंगाने पर रेल का भाड़ा भी हम देंगे।

अपने आर्डर के साथ रेल स्टेशन का नाम लिखें और खर्च के लिए कम से कम ५.०० का मनीआर्डर पेशगी भेजें।

मैनेजर : **साहित्य-सन्देश, आगरा।**

Registerd with the Registrar of Newspapers for India under No. 2251/57
रामचरनलाल द्वारा साहित्य-प्रेस में मुद्रित तथा साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-संदेश

(आलोचना मासिक)

इस अङ्क में—

सितम्बर १९६७

१—हमारी विचारधारा	सम्पादक	९७
२—भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा में 'रीति विवेचन'	डा० मुरारिलाल शर्मा	१०१
३—निबन्ध का स्वरूप और उसकी परिभाषा	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	१०५
४—अनुसंधान की प्रविधि	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	१०७
५—नारी और सन्त कवि	डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी	११२
६—कवि कल्लोल एवं उनका ढोला मारू रा दूहा	डा० मोतीलाल मेनारिया	११६
७—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : एक विवेचन	शारदाकुमारी	११९
८—हिन्दी साहित्य की उपेक्षित विधा-निबन्ध	ब्रह्मस्वरूप शर्मा	१२५
९—हिन्दी के नवोन्मेष में पं० रामनरेश त्रिपाठी का मौलिक योगदान	श्री अनिलकुमार उपाध्याय	१२८
१०—पुस्तक-परिचय		१३३

प्रकाशक :
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा-२

सम्पादक :
महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

आलोचना प्रधान मासिक

साहित्य-सन्देश आलोचना का एक मात्र मासिक पत्र है जो विगत २८ वर्ष से लगातार निकल रहा है। इसका प्रचार भारत के कोने-कोने में है। वार्षिक मूल्य लागत से भी कम केवल ६.०० है।

उपयोगिता—(१) हिन्दी के अध्ययन के लिए साहित्य-सन्देश अनूठा साधन है। हजारों विद्यार्थी साहित्य-सन्देश पढ़कर बी. ए., एम. ए., पी-एच डी. आदि पदवीधारी बनकर आज बड़े-बड़े कालेजों में अध्यापन कर रहे हैं।

(२) साहित्य-सन्देश के निरन्तर अध्ययन से सैकड़ों व्यक्ति लेखक बन गए। आज के अनेक सम्मान्य लेखकों ने लिखने का आरम्भ साहित्य सन्देश के माध्यम से ही किया है। आज भी उसे बड़े से बड़े विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

(३) अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रचारकों के लिए तो साहित्य सन्देश एक सम्बल है जिसके सहारे वे हिन्दी का ज्ञान बराबर बढ़ा सकते हैं। इसीलिए इन प्रान्तों में भी उसकी हजारों प्रतियाँ जाती हैं।

मान्यता—(१) भारत के सभी प्रदेशों की सरकारों ने अपने स्कूल, कालेजों के लिए खरीदने की मान्यता साहित्य-सन्देश को दे रक्खी है।

(२) भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालय, अधिकांश कालेज और स्कूल तथा अध्यापकगण अपने पुस्तकालयों के लिए साहित्य-सन्देश खरीदते हैं।

(३) उपयोगिता समझकर ही उत्तर प्रदेश की सरकार साहित्य-सन्देश की ५०० प्रति खरीद कर अपने स्कूलों में मुफ्त वितरण कराती है। बिहार आदि प्रान्त भी इसी प्रकार साहित्य-सन्देश की सैकड़ों प्रतियाँ खरीदते रहे हैं। राजस्थान सरकार ने अपने स्कूलों में साहित्य-सन्देश खरीदना अनिवार्य कर दिया है।

• आप भी छः रुपये भेजकर उसके ग्राहक बन जाएँ।

साहित्य-सन्देश की

गत १४ वर्षों की फाइलें

३० नवम्बर तक मँगाने पर पौने मूल्य में

साहित्य-सन्देश को निकलते २८ वर्ष हो गए। प्रारम्भ के १४ वर्षों की फाइलें क्या एक अङ्क भी नहीं बचा है। इधर १४ वर्ष की कुछ फाइलें उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल में हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखित ५०० पृष्ठों (पुस्तकाकार में १००० पृष्ठ) की सामग्री है। ऐसी प्रत्येक सजिल्द फाइल का मूल्य केवल १०) है। पोस्टेज एक फाइल पर करीब २) पड़ेगा। किन्तु कम से कम पाँच वर्ष की फाइलें मंगाने पर रेल द्वारा बिना खर्च भेजी जायेंगी। किस वर्ष की फाइल में कौन विशेषाङ्क है—यह नीचे देखिए। चिन्हित विशेषाङ्क अलग से भी मिल सकते हैं। तुरन्त आर्डर भेजिए।

सन्	वर्ष के विशेषांक	विशेषांक का मूल्य
१९५२-५३	कहानी अङ्क	२)
१९५३-५४	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५४-५५		
१९५५-५६	अन्तःप्रान्तीय नाटकाङ्क	२)
१९५६-५७	आधुनिक उपन्यास अङ्क*	२)५०
१९५७-५८	(१) भाषा विज्ञान अङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क	१)
१९५८-५९	(१) सन्त साहित्य अङ्क*	२)५०
	(२) ऐतिहासिक उपन्यासाङ्क*	२)
१९५९-६०	(१) रीतिकाव्यालोचनाङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति अङ्क १९६०*	२)
१९६०-६१	(१) शोध विशेषाङ्क	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क १९६१*	२)
१९६१-६२	(१) निबन्ध विशेषाङ्क अप्राप्य	२)५०
	(२) निराला विशेषाङ्क ,,	२)
१९६२-६३	(१) साहित्य-शास्त्र अङ्क*	२)५०
	(२) रांगेय राघव अङ्क	२)
	(३) शिवपूजनसहाय अङ्क	१)
१९६३-६४	(१) बाबू गुलाबराय अङ्क*	२)५०
	(२) वीर काव्य विशेषाङ्क	२)५०
१९६४-६५	(१) द्विवेदी अङ्क*	२)
	(२) राष्ट्रकवि गुप्त विशेषाङ्क*	२)
१९६५-६६	(१) हरिऔध विशेषाङ्क*	२)
	(२) विद्यापति विशेषाङ्क*	२)
१९६६-६७	(१) नव वर्षाङ्क*	१)५०
	(२) रत्नाकर विशेषाङ्क*	१)५०

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

(आलोचना मासिक)

भाग–२९ अङ्क–३

सम्पादक

महेन्द्र

विश्वम्भर 'अरुण'

सहायक

कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक

कमलेन्दु जैन

सितम्बर—१९६७

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

प्रो० शेरसिंह का भाषण—

कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा-समिति, के पदवीदान समारोह में दीक्षान्त भाषण देते हुए भारत सरकार के राज्य शिक्षा-मन्त्री प्रो० शेरसिंह ने स्नातकों को जो उपदेश दिया है वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है। हम उसका कुछ अंश यहाँ दे रहे हैं—

"पदवी दान समारोह का बहुत प्राचीन काल से एक विशेष महत्व रहा है। तैत्तरीय उपनिषद् में इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। आचार्य उस समय विद्यार्थियों को भविष्य में वर्तन के लिए उपदेश दिया करते थे। आजकल उपदेश का युग नहीं है। सलाह परामर्श का युग है। अतएव मेरे विचार एक परामर्श के रूप में स्वीकार किये जाएँ—

उस युग में आचार्य विद्यार्थियों को जो उपदेश देते थे उनमें से एक की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। वह है "स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्।"

अर्थात् इस अभ्यास के बाद आप स्व-अध्ययन में लग जाएँ। अपने ही यत्न से अपना ज्ञान बढ़ाएं तथा इससे भी महत्वपूर्ण एक और बात करें, वह है 'प्रवचन'। आप दूसरों को पढ़ाएं, अपने विचार और अपना ज्ञान आप दूसरों को प्रदान करें। दीपक से दीपक जलाकर राष्ट्र में प्रकाश फैलाएं। राष्ट्रीयता के प्रकाश का स्नेह राष्ट्रभाषा है, अतएव उसकी मात्रा को क्षीण न होने दें। राष्ट्रीयता की परिपुष्टि में ही भारत का कल्याण और समृद्धि निहित है। एकता को प्रधानता देकर और विविधता को गौण मान कर ही हम अपने को सशक्त बना सकते हैं।

अब समय आ गया है कि अनेकता में एकता को वास्तविक अर्थ दें और विघटन के तत्वों को दबाएं। मेरी तो यह कामना है कि राष्ट्रीय समानता प्रादेशिक विविधता के अन्तराल में एक सार्वजनिक भाषा और निरन्तर संघटित होती हुई संस्कृति में व्यक्त होनी चाहिए।

आप जानते हैं कि हमने अंग्रेजी और अंग्रेजों से बहुत कुछ सीखा है। भौतिक समृद्धि के स्तर पर आज हमारी वैज्ञानिक और औद्योगिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति का द्वार अंग्रेजी रही है। परन्तु जिस देश की यह भाषा है, वहाँ की संस्कृति ने भी हमको घेरा है। इंगलैण्ड के बारे में प्रसिद्ध है कि वहाँ एक साथ, एक स्थान पर, एक ही स्थिति में यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति में परस्पर विरोधी बातें साथ-साथ कायम रह सकती हैं। राजतन्त्र और प्रजातन्त्र! सामन्तकालीन रूढ़िवाद और अनास्थावादी स्वच्छन्दता! मानव स्वतन्त्रता की विशाल कल्पना और उपनिवेशवाद! आदर्शों की पवित्रता और व्यवहार में मानव विवशताओं का एक स्वतन्त्र दर्शन। ये सब बातें वहाँ एक साथ मान्य हैं। वहाँ के लेखकों और साहित्यकारों ने इस पर बहुत तीक्ष्ण व्यंग लिखे है। प्रत्येक परस्पर विरोधी स्थिति के लिए उनके पास कोई गहन गम्भीर सिद्धान्त और तत्वज्ञान है। यह पश्चिम की संस्कृति का एक अनिवार्य अङ्ग हो सकता है। जहाँ व्यक्ति एक सतत विकासमान मुक्त चेतना का रूप न होकर परिस्थितियों का दास है। आदर्श उनके लिए तर्क और टीका की वस्तु है। परन्तु पूर्वी देशों में ऐसा नहीं है और न इस तरह की वृत्ति को पनपने ही देना चाहिए। क्योंकि जिस आधार पर हमारा समाज आज तक खड़ा रहा है, उसने व्यक्ति को समग्र रूप से देखा है। उसने नैतिक जीवन के आदर्श को सापेक्ष नहीं माना है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपनी संस्कृति और राष्ट्रीय समस्याओं को अपने ही दृष्टिकोण से देखें और अपने ही ढंग से व्यक्त करें।

किसी राष्ट्र का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण प्रतीक उसका जन-जीवन और जन-जीवन में प्रयुक्त व्यावहारिक आदान-प्रदान की भाषा होती है, इस बात को हम नजरन्दाज नहीं कर सकते। इसे ऋग्वेद में बहुत ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया गया है। उसमें भाषा अपने विषय में कहती है—'अहम् राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'। मैं राष्ट्र की जीवन-नायिका हूँ और वसुओं को मिलाने वाली हूँ। इसका प्रत्येक शब्द और विशेष रूप से 'राष्ट्रीय' और 'संगमनी' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि सारे राष्ट्र में अनेक भाषाएं हैं, परन्तु उनकी पृष्ठभूमि में मन और प्राण एक हैं। भाषा राष्ट्र की आत्मा होती है इसलिए भारतीय संस्कृति और जन-जीवन की मूलभूत एकता के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है।

जबलपुर में हिन्दी दिवस—

१४ सितम्बर को जबलपुर में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संयोजन में हिन्दी-दिवस की आयोजना की गयी। जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० उदयनारायण तिवारी अध्यक्ष थे। इस सभा में अहिन्दी भाषा-भाषी साहित्यकारों—डा० गो० मो० रानाडे (मराठी), श्रीमती हेना हालदार (बंगाली), डा० त्रिविक्रम पति (उड़िया) और श्री जयकृष्ण चौधरी हबीब (उर्दू) ने हिन्दी के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

डा० रानाडे ने कहा—जहाँ तक सम्पर्क भाषा का प्रश्न है, इसका सहज-सही उत्तर हमारे साधु सन्तों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व व्यावहारिक रूप में दे दिया था। नेहरू और शास्त्री की आड़ लेकर विधेयक लाया जा रहा है, वह एक राजनीतिक षड्यन्त्र है शासन का हठीलापन है। 'शब्द-छल' को छोड़ कर पूरी निष्ठा के साथ हिन्दी को राज-भाषा बनाना चाहिए।

डा० पति ने व्यक्त किया कि हिन्दी-प्रेमी और भारत-प्रेमी में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा हैं। विदेशी भाषाओं को हम अपने से दूर नहीं रख सकते, परन्तु हिन्दी की प्रतिष्ठा के रास्ते पर कोई भी रुकावट न आवे और हमारी राष्ट्र-भाषा उत्तरोत्तर द्रुत गति से जगत की प्रमुख भाषाओं में परिगणित हो।

बंगाल की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती हैना हालदार ने कहा कि हिन्दी-प्रसार और हिन्दी-विरोध के जो स्वर आज उभर कर आ रहे हैं, ये वास्तव में हठवादिता एवं एकांगी दृष्टिकोण के ही परिणाम हैं। इस देश का कल्याण इसी में है कि देश में स्वदेशी भाषा का प्रचार-प्रसार हो। प्रशासन और शिक्षण के माध्यम के रूप में तो इसकी उपादेयता अत्यधिक है।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर श्री 'हबीब' ने व्यक्त किया कि हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो पूरे देश में समझी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकती है। हिन्दी और उर्दू दोनों बहिनें हैं, इनमें फर्क केवल लिपि का है। हिन्दी बड़ी बहिन है, उसे राज-भाषा का स्थान मिलने से गौरवान्वित होगी।

हिन्दी दिवस पर विद्वानों के विचार—

१४ सितम्बर, ६७ को संसद-भवन के केन्द्रीय-कक्ष में हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन हुआ। उद्घाटन भाषण करते हुए केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा. त्रिगुणसेन ने कहा—जैसे कमल की प्रत्येक पंखुड़ी एक ही कमल का अङ्ग होती है उसी तरह भारत की भाषाएँ हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। हिन्दी को राज भाषा बनाने का हमारा निर्णय आज का नहीं वरन् १४ सितम्बर, १९४९ से ही इसका निर्णय हो चुका है। देशवासियों से अपील करते हुए उन्होंने कहा कि—भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने के लिए उनके पारस्परिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहन देना चाहिए। हिन्दी में मौलिक ग्रन्थों की उपलब्धि से विदेशी भी हिन्दी सीखना प्रारम्भ कर देंगे। डा. रामधारीसिंह दिनकर ने अँग्रेजी समर्थकों को करारा उत्तर देते हुए कहा कि वे अगर 'नोट' की भाषा अंग्रेजी रखना चाहते हैं तो 'वोट' की भाषा भी अंग्रेजी क्यों नहीं रखते। अँग्रेजी के समर्थक वोट भी अँग्रेजी में ही माँगे तब उन्हें वास्तविकता का पता चलेगा। अगर यही हालत रही तो या तो देश में क्रान्ति होगी या हमें अपने नेता बदलने पड़ेंगे। उन्होंने डा. सेन का समर्थन करते हुए कहा कि अगर डा० सेन अपने भाषा फार्मूला में हारे तो सारे देश का भविष्य हार जायेगा।

श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने कहा कि संसद ने हमें सारी दुनियां के सामने वचन दिया था कि भारत की राजभाषा हिन्दी होगी। अगर ससद अपने आश्वासन को क्रियान्वित नहीं करती तो दुनियां का हमारी संसद के निर्णयों से विश्वास उठ जायगा। डा० वचन ने हिन्दी को एक भाषा के बजाय देश की एकता का सपना कहा एवं खण्डों में सोचने की बात को दुर्भाग्य समझा। संसदीय हिन्दी परिषद की अध्यक्षा डा० सरोजिनी महषी ने हिन्दी को स्वतन्त्रता से पूर्व ही राष्ट्रभाषा माना।

गुजराती साहित्य-परिषद् में राष्ट्रपति—

हाल ही में दिल्ली में गुजराती-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। यह उत्सव कई दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण रहा। इसके अध्यक्ष थे गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् और शिक्षा शास्त्री उपकुलपति श्री उमाशङ्कर जोशी और स्वागताध्यक्ष का आसन ग्रहण किया मराठी भाषी प्रसिद्ध नेता काका कालेलकर ने, तथा इसका उद्घाटन किया। उर्दू-बङ्गला वाले हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने। गर्व और गौरव की बात यह रही कि इन तीनों महान् व्यक्तियों ने अपने भाषण हिन्दी में दिए। राष्ट्रपति ने अपने भाषण में शिक्षा के माध्यम की चर्चा करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि शिक्षा का माध्यम के रूप में अँग्रेजी को हमेशा के लिए जारी नहीं रखा जा सकता। आपने कहा कि विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा अभी तक विदेशी भाषा अंग्रेजी में होती है, लेकिन आज यही कार्य क्षेत्रीय भाषाओं में करना है। अतः समय का सवाल खड़ा करके काम में देरी नहीं करनी चाहिये। काम शुरू करने के समय की सीमा अपने आप तय हो जायेगी। लेकिन हमें यह जरूर महसूस करना चाहिए कि भारतीय भाषाओं के पर्याप्त विकास के लिए प्रबल प्रयास जरूरी है।

देश में चल रहे भाषायी विवाद का सीधा उल्लेख किये बिना राष्ट्रपति ने दृढ़ता से आश्वासन दिया कि हिन्दी भारत की किसी भाषा को हटाएगी नहीं और न ही उसे ऐसा करने दिया जायगा। उन्होंने कहा कि केवल एक या दो नहीं, बल्कि सभी भाषाओं का विकास करना है।

उन्होंने कहा कि देश की जनसंख्या का विशाल समुदाय हिन्दी बोलता और समझता है, इसलिए उसका भी पूरी तरह विकास किया जाना जरूरी है जिससे देश की सम्पर्क भाषा बन सके। लेकिन हिन्दी का विकास दूसरी भाषाओं को नुकसान पहुँचाकर नहीं होगा। सभी भाषाएँ एक ही शरीर की अङ्ग हैं। विभिन्न अङ्ग यदि मजबूत हुए तो हिन्दी अपने आप मजबूत होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भाषण में आपने इस बात की भी कड़ी-आलोचना की कि अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा ने हमारे सामान्य दैनिक जीवन की परम्पराओं को भी अस्त-व्यस्त कर दिया है। अंग्रेजी ने हमारे माता-पिता, पत्नी, बीबी जैसे शब्दों को भी हमसे भुलवा दिया और हम मादर, फादर, ममी, डैडी के चक्कर में पड़ गए। इतना ही नहीं एक समय ऐसा भी आया कि हमारे घरों की और हमारे घर की भाषा भी बदल गई तथा पति-पत्नी भाई-बहनें, आपस में अँग्रेजी में बोलने लगे और प्रेम-पत्र भी अंग्रेजी में लिखे जाने लगे।

गुजरात के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री उमाशङ्कर जोशी ने अपने भाषण में कवि महिमा, शब्द-शक्ति और कवि-कर्म के दायित्व पर विस्तृत प्रकाश डाला। उनका भाषण ऋग्वेद से लेकर अब तक के विश्व वाङ्मय से गुम्फित था।

अंग्रेजी का असुर—

स्वागताध्यक्ष काका कालेलकर ने राष्ट्रपति का स्वागत हिन्दी में किया। उन्होंने कहा कि गुजराती साहित्य परिषद् का दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने मुझ जैसे मराठी भाषी को स्वागताध्यक्ष बनाया है। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में अन्य भाषाओं के साथ गुजराती के अध्ययन की व्यवस्था की सराहना की।

अपने लिखित भाषण में काका साहब ने कहा कि हमारी मान्यता है कि अपने-अपने विकास के लिए क्षेत्रीय भाषाएँ और हिन्दी एक-दूसरे की सहायता करेंगी और सब देव एकत्र होकर असुर (अंग्रेजी के राज्य) को परास्त कर देंगे। परन्तु दरबारी वृत्ति के राजसी लोगों को बखेड़ा खड़ा किये बिना संतोष कैसे हो सकता है। आज हिन्दी वाले और अँग्रेजी वाले आपस में युद्ध कर रहे हैं।

गुजरात की दो महान् विभूतियों ने हिन्दी के लिए जो कार्य किया है, वह भुलाया नहीं जा सकता। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सौराष्ट्र के होते हुए भी आर्य भाषा के रूप में हिन्दी का जोरदार प्रचार किया और उत्तर भारत में हिन्दी की लहर दौड़ा दी। दूसरे नेता महात्मा गांधी ने हिन्दी के मस्तक पर राष्ट्र भाषा का मुकुट पहनाया। हम जैसे असंख्य लोगों को हिन्दी की दीक्षा दी और सारे देश को हिन्दी के अनुकूल किया। परन्तु अँग्रेजी के पक्षपाती बड़े चतुर थे। उन्होंने गांधीजी के प्रभाव को देखते हुए ऐसी योजना बनाई कि राज-मुकुट तो हिन्दी के मस्तक पर रख दिया और राजदण्ड अंग्रेजी के हाथ में थमा दिया। अब अँग्रेजी का वक्त पूरा हो रहा है। इसलिये अब वे हिन्दी के विरुद्ध क्षेत्रीय भाषा-भाषियों में आशंकाएँ पैदा कर रहे हैं।

इन्दिरा गांधी और हिन्दी—

अभी हाल में जब श्रीमती इन्दिरा गांधी पोलेण्ड पहुँचीं तो उन्होंने वहां पर अपना पहला भाषण हिन्दी में दिया। राष्ट्रभाषा के गौरव को बनाये रखने में उनका यह कार्य सर्वथा अभिनन्दनीय है। हिन्दी के सम्बन्ध में इधर उनका रुख काफी स्पष्ट और राष्ट्रीयता से प्रेरित रहा है। कुछ दिन पूर्व उन्होंने नई-दिल्ली के प्रेस क्लब द्वारा आयोजित सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था कि राज्यों को एक दूसरे से जोड़े रखने के लिए सम्पर्क भाषा का विकास बहुत आवश्यक है और हिन्दी ही सम्पर्क भाषा बन सकती है। पत्रकारों द्वारा यह पूछे जाने पर कि फिलहाल जब कि अँग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में ही आ रही है तब भविष्य में भी उसे ही क्यों न सम्पर्क भाषा का स्थायी दर्जा दे दिया जाये। इस पर प्रधान मन्त्री ने बड़ी दृढ़ता से कहा कि देश के कितने लोग अँग्रेजी जानते हैं ? वास्तव में हम लोग जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, एकमात्र देशवासी नहीं हैं। हमसे अधिक देशवासी कोई और हैं और वे अँग्रेजी नहीं जानते बल्कि हिन्दी जानते हैं या कम से कम वे हिन्दी आसानी से जान सकते हैं। वैसे सभी राष्ट्रीय भाषाओं का विकास होना चाहिये किन्तु सरकारी कामकाज की भाषा, राष्ट्रभाषा का दर्जा एक ही भाषा को जिसे देश के अधिकांश लोग समझ सकते हों, दिया जा सकता है।

(शेष पृष्ठ १४२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा में 'रीति' विवेचन

• • •

डा० मुरारिलाल शर्मा

हिन्दी में काव्यशास्त्र की रचना मूलतः रीतिकाल में ही हुई। इस काल के कवियों ने राज्याश्रम में रहकर काव्य को ललित कला के शुद्ध रूप में अपनाया। उन्होंने कविता को किसी प्रकार के प्रचार, प्रोत्साहन और सुधारादि का साधन न मानकर काव्य-कला का स्वतन्त्र महत्व स्थापित किया। यहाँ कला कला के लिए स्वयं साध्य रूप में प्रस्तुत की गई। वस्तुतः हिन्दी में रीति शास्त्र के इन आचार्यों ने काव्यों के लिए लक्षण ग्रन्थों का मौलिक रूप से प्रणयन नहीं किया बल्कि संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों—भामह, दण्डी, वामन आदि की परिपाटी का निर्वहण किया।

संस्कृत का काव्य शास्त्र ५ सम्प्रदायों—रस, ध्वनि, अलङ्कार, रीति तथा वक्रोक्ति—के परिवेश में निबद्ध है। इसके द्वारा संस्कृत साहित्यालोचन को सुष्ठु रूप प्रदान कर उसकी परीक्षा की गई। प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय का विस्तृत विवेचन किया।

रस सम्प्रदाय का मूलभूत और सर्वाङ्गीण विवेचन भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। उन्होंने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति मानी है। (विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः)। दूसरे शब्दों में इस सूत्र का तात्पर्य है कि दर्शक गण जब किसी सुन्दर नाटक का अभिनय देखते हैं तो उनमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से एक प्रकार के हर्षातिरेक का अनुभव होने लगता है, यही आनन्दानुभूति रस है। भरत मुनि के इस सूत्र में यद्यपि स्थायी भाव को स्थान नहीं मिला किन्तु उनकी व्याख्या से अभीष्ट मत यही निकलता है कि स्थायी भाव ही उत्तर विभावादि के द्वारा रसत्व को प्राप्त होते हैं,[१] नाट्यजगत् में आस्वाद की यह अनुभूति उसी प्रकार प्राप्त होती है जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजन, मिष्ठान्न और रासायनिक द्रव्यों के पारस्परिक संयोग से षट्रस का आस्वाद मिलता है। प्रो. एस. के. डे ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए बताया है कि जिस प्रकार अनेक पदार्थों और बूटियों के संयोग से मदिरा तैयार की जाती है उसी प्रकार विविध भावों के संयोग से स्थायी भाव रस की स्थिति को प्राप्त होता है। उसके रस कहलाने का कारण उसके स्वाद की अनुभूति है।[२] भरतमुनि प्रतिपादित इस सूत्र की व्याख्या में विवाद के मुख्य कारण 'संयोग' और 'निष्पत्ति' दो शब्द रहे जिनकी व्याख्या परवर्ती विद्वान् आचार्यों—भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनव गुप्त—ने की। बाद में रस सम्प्रदाय के विकास के द्वारा शृङ्गार को रसराज कहकर उसका सर्वाङ्गीण निरूपण किया गया। रस के आलम्बन विभाव नायक-नायिका की विभिन्न

---

१ एवं नाना भावोपहिता अपि स्थायिनो भावा-रसत्वामाप्नुयन्ति—काव्यशास्त्र, पृष्ठ ७१।

२ "Just as a beverage is accomplished through various seasoned artides and herbs, so the permanent mood (Sthayi Bhav) reinforced by vavious bhavas attains the state of 'rasa' and it is so called because its essence consists in its taste or relish.'—S. K. De, History of Sanskrit poetics, Pt. II (London 1925), Page 26.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थितियों का अंकन करके वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के आधार पर उनका विस्तृत वर्गीकरण किया गया जिसके फलस्वरूप नायक-नायिका भेद एक पृथक विषय ही बन गया। रसवादी विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में स्वतन्त्र रूप से रस का निरूपण किया।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है हिन्दी रीति काल के आचार्यों ने स्वतन्त्र रूप से लक्षण ग्रन्थों की रचना नहीं की बल्कि संस्कृत में लिखे गये रस सिद्धान्त के ग्रन्थों—भरत का 'नाट्यशास्त्र', भोज का 'शृङ्गार प्रकाश', भानुदत्त की 'रस मंजरी' और 'रस' तरंङ्गिणीं, को ही अपना मूलाधार बनाया।

रस सिद्धान्त और ध्वनि सिद्धान्त में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आनन्दवर्धन ने रस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए रस को भी व्यंग्य मानकर 'रस-ध्वनि' की स्थापना की है। मम्मट और जगन्नाथ के ध्वनि सिद्धान्त की विशद व्याख्या की। ध्वनिवादियों ने शब्दार्थ के ३ भेद—अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना—माने और अलङ्कार को चित्र काव्य कहकर ध्वनि एवं गुणीभूत व्यंग्य काव्य की अपेक्षा हीन माना। उनकी दृष्टि में अलङ्कार शब्दार्थ पर आश्रित है, पर ध्वनि व्यंग्य-व्यंजक भाव पर। 'शब्दार्थ के चारुत्व हेतु भूत अलङ्कार ध्वनि के अङ्गभूत हैं और ध्वनि उनकी अङ्गी है। ध्वनि काव्य की आत्मा है, अलङ्कार्य है, अतः उसमें अलंकार का अन्तर्भाव सम्भव नहीं'।

हिन्दी काव्य शास्त्र में ध्वनि सिद्धान्त का सर्वप्रथम विवेचन कुलपति मिश्र ने किया। उनका ग्रन्थ 'रस-रहस्य' मम्मट के 'काव्यप्रकाश' पर आधृत है। महाकवि देव ने भी 'शब्द रसायन' में ध्वनि सिद्धान्त का संक्षिप्त विवरण दिया है किन्तु उसका विशद विवेचन नहीं किया, मम्मट के 'काव्यप्रकाश' और आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' के आधार पर सोमनाथ ने 'रसपीयूष निधि' में भरत, अभिनव गुप्त और मम्मट के मतों का उल्लेख करते हुए ध्वनि सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की। आचार्य भिखारीदास ने 'काव्य-निर्णय' के आठवें उल्लास में अपना ध्वनिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए केवल अलङ्कार युक्त काव्य को निम्न कोटि का अलङ्कार और गुण समन्वित पर व्यंग्यार्थ प्रधान न होने वाले काव्य को मध्यम कोटि का तथा अलङ्कार और गुण के साथ-साथ रस अथवा व्यंग्य प्रधान काव्य को उत्तम कोटि का माना है।

अलङ्कारवादी आचार्यों में भामह और दण्डी प्रमुख हैं। उद्भट ने भामह के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए अलंकारवाद का ही समर्थन किया है। इन तीनों आचार्यों ने अलंकारों में काव्यों की अन्य स्वीकृति को अन्तर्भूत करते हुए रस की महत्ता स्वीकार की है। रुद्रट भामह के अलंकार सम्प्रदाय और आनन्दवर्धन के रसध्वनि सम्प्रदाय से प्रभावित हैं फिर भी उनका झुकाव रस सम्प्रदाय की ओर अधिक है। उन्होंने रस का औचित्यपूर्ण प्रयोग करने पर बल दिया और भरत मुनि के पश्चात् सबसे पहले रस की स्वतन्त्र सत्ता प्रतिपादित की और शृङ्गार के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद की भी यथेष्ट चर्चा की।

भरतमुनि ने ४ प्रधान अलंकार—उपमा, दीपक, रूपक और यमक—माने थे किन्तु परवर्ती आचार्यों ने व्याख्या करके उनका वर्गीकरण किया। इस प्रकार अप्पय दीक्षित के समय तक उनकी संख्या १२४ हो गई। वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रवर्तक कुन्तक ने 'वैधग्ध्य भंगी भणिति' कहकर अलंकार सिद्धान्त को और भी स्पष्ट किया जिसका अभिप्राय है कि कवि अपनी प्रतिभा से साधारण उक्ति में भी वैचित्र्य उत्पन्न कर देता है। उसने रीति को वक्रोक्ति का अङ्गमात्र माना क्योंकि रीति में वर्णन शैली की व्यापकता नहीं होती। वैसे दोनों में काव्य का वस्तुपरक विवेचन किया जाता है। हिन्दी के रीति आचार्यों ने वक्रोक्ति के कलापक्ष प्रधान काव्यांग का विस्तृत विवेचन नहीं किया क्योंकि ध्वनि-सिद्धान्त भाव पक्ष प्रधान काव्यांग होने से ही अधिक ग्राह्य हो सका।

हिन्दी अलंकारवादी आचार्यों में केशव की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। 'कविप्रिया' ग्रन्थ के आधार पर उन्हें अलंकारवादी आचार्य माना जाता है। केशव दंडी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकार विवेचन से अधिक प्रभावित हैं। रीतिकाल के अन्य अलंकारवादी आचार्य चिन्तामणि, जसवन्तसिंह, कुलपति, देव, सोमनाथ, भिखारीदास, मतिराम, पद्माकार आदि—मम्मट, विश्वनाथ, जयदेव और अप्पय दीक्षित से किसी न किसी रूप में प्रभावित हैं। महाकवि देव ने 'शब्द रसायन' में में अप्पय दीक्षित सम्मत अलंकारों का निरूपण करते हुए मम्मट सम्मत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है और 'भाव विलास' में दण्डी सम्मत अलंकारों का आधार ग्रहण करने पर भी वे केशव की 'कविप्रिया' से मूलतः प्रभावित हैं। केशव के लगभग ५० वर्ष बाद अलंकार सिद्धान्त पर जयदेव के 'चन्द्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' के ढङ्ग पर जसवन्तसिंह ने 'भाषाभूषण', 'मतिराम ने 'ललित ललाम' और भूषण ने 'शिवराज भूषण' ग्रन्थ लिखे।

हिन्दी में रसवादी काव्य—हिन्दी में रस सम्प्रदाय का शास्त्रीय विवेचन सबसे पहले केशव ने किया। उन्होंने भरत के 'नाट्यशास्त्र', भोज के 'शृङ्गार प्रकाश' और विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' को आधार बनाकर अपने ग्रन्थ 'रसिकप्रिया' में रस-सिद्धान्त का विवेचन किया। देव ने परम्परागत रूप में 'नाट्यशास्त्र' और 'रस तरंगिणी' के आधार पर 'रस विलास' 'भाव विलास', 'भवानीविलास' और 'शब्द रसायन' में रस सिद्धान्त की विशद व्याख्या की और कहीं-कहीं अपने मौलिक विचार भी दिये। उन्होंने नायिका-भेद का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण किया। बाद में चिन्तामणि ने 'शृङ्गार-मञ्जरी', मतिराम ने 'रसराज', रामसिंह ने 'रसनिवास' और जसवन्तसिंह ने 'शृङ्गार शिरोमणि' ग्रन्थ लिखे।

संस्कृत में 'रीति' विवेचन—दण्डी के अनुसार काव्य की आत्मा केवल अलंकार नहीं है बल्कि १० गुण हैं जो काव्य को सौन्दर्य प्रदान करते हैं। यद्यपि दण्डी ने 'रीति' शब्द का प्रयोग नहीं किया किन्तु वामन ने रीतिसिद्धान्तों की स्थापना करते हुए रीति को काव्य की आत्मा माना है और अलंकार की अपेक्षा गुणों को काव्य का अनिवार्य और आवश्यक तत्व कहा है। उनके विचार से यदि काव्य में अलङ्कार न भी हो तो कोई हानि नहीं है, किन्तु यदि गुण का मूल सौन्दर्यहीन हो तो अलङ्कार होने पर भी वह कुरूप ही रहेगा। इस प्रकार वामन ने शब्द और अर्थ के शोभाकारक धर्मों के रूप में गुणों को और उनसे अभिन्न रीति को अपने आप में सिद्धि मानते हुए 'विशिष्ट पद रचना को रीति' कहा है। वामन ने दस गुणों से भूषित रीति को वैदर्भी तथा ओजस् और कान्ति से सम्पन्न को गौड़ीया कहा है। गौड़ीया में माधुर्य और सौकुमार्य का अभाव तथा समासों का बाहुल्य होता है और पदावली कठोर होती है। पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य की प्रधानता रहती है। यह 'रीति' कुछ निष्प्राण (श्रीहीन) सी होती है। इस प्रकार श्रेष्ठतम काव्य-रचना वैदर्भी में, मध्यम गौड़ी में और निम्नतम पांचाली में मानी जाती है। रुद्रट ने रीतियों की संख्या ४ कर दी और लाटीया नाम की चौथी रीति मानी किन्तु परवर्ती आचार्यों ने प्रकार (नाम) भेद से वामन द्वारा निर्दिष्ट रीतियों को ही स्वीकृति प्रदान की। इन रीतिवादी आचार्यों ने काव्य के आन्तरिक स्वरूप पर ध्यान न देकर उसके बाह्य स्वरूप को ही महत्व प्रदान किया। इसलिए रीति सम्प्रदाय भारतीय काव्यशास्त्र में देहवादी सम्प्रदाय कहा जाता है जबकि रससिद्धान्त और वक्रोक्ति सिद्धान्त आत्मवादी और कविकौशल के पर्याय माने जाते हैं। ध्वनिसिद्धान्त में 'रीति' के बाह्य तत्वों का अन्तर्भाव कर देने से 'रीति' का स्थान गौण होगया। इस प्रकार वामन से लेकर विश्वनाथ तक रीति के महत्व में अन्तर होता गया है फिर भी उसके स्वरूप में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।

हिन्दी में 'रीति' का प्रयोग और उसका इतिहास—ऊपर संकेत किया जा चुका है कि वामन (९ वीं शती) ने 'विशिष्ट पद रचना' को रीति बताते हुए उसे 'काव्य की आत्मा' कहा। आनन्दवर्धन ने गुणों को प्रधानता देते हुए रसध्वनि को काव्य की आत्मा माना। इस प्रकार रीति रस का अंगमात्र रह गई। बाद में राजशेखर और उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकरण पर भोज ने 'शृङ्गार प्रकाश' में रीति को 'वचन विन्यास क्रम' कहा। कुन्तक ने रीति के स्थान पर मार्ग (पथ) शब्द का प्रयोग किया। भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में रीति शब्द की व्युत्पत्ति 'रीङ्गतौ धातु' से बताई तथा प्रकारान्तर से इसे मार्ग, वर्त्म, पथाः आदि का पर्याय कहा। हिन्दी के आचार्यों ने भी संस्कृत के आचार्यों की परम्परा में ही रीति का शास्त्रीय अर्थ ग्रहण किया और उसका तदनुसार ही विवेचन किया। चिन्तामणि ने 'रीति' को 'काव्य रचना पद्धति' का विशेष प्रकार माना। केशव, भूषण और दास ने रीति के लिए 'पंथ' शब्द का प्रयोग किया। इतना ही नहीं, रीतिकाल के इन आचार्यों ने रीति अथवा पंथ के साथ एक विशेषण भी प्रयुक्त किया। केशव (वर्णन पंथ), चिन्तामणि (कवित्त रीति), मतिराम (रस रीति), भूषण (कवि पथ), देव (कवि रीति), सोमनाथ (छन्द रीति), दास (काव्य रीति) मुक्तक रीति, कविता पंथ), दूलह (अलंकार रीति), पद्माकर (रस-रीति)। इस प्रकार 'रीति' शब्द काव्य शास्त्रीय विधान का सूचक न होकर शास्त्रीय विधान का वाचक हुआ। बाद में आलोचकों ने 'रीति' का प्रयोग केवल 'काव्य शास्त्र' के लिये ही किया। आचार्य शुक्ल ने तो वामन की भाँति 'रीति' को प्रकार न मानकर एक दृष्टिकोण माना जिसका अर्थ हुआ कि रीति ग्रन्थ का प्रणेता ही रीति कवि नहीं वरन् काव्य के प्रति रीतिबद्ध दृष्टिकोण रखने वाला ही वास्तव में रीति कवि है। परवर्ती युग में इसी विचार परम्परा को स्वीकार किया गया।

वस्तुतः रीति परम्परा हिन्दी साहित्य में एक बारगी ही उत्पन्न नहीं हो गई इसके प्रारम्भ होने के संकेत सूत्र हमें वीरगाथा काल के कवियों—चन्द, नरपति नाल्ह आदि तथा भक्तिकाल के कवियों-सूर तुलसी तथा नन्ददास आदि में भी मिल जाते हैं। विद्यापति के काव्य में ऐंद्रिय शृङ्गारिकता स्थूल और भावगत रूप में मिलती है जो भक्तिरस के परिवेश में होने से रीति काव्य की परम्परा से बच जाती है। कृपाराम की 'हित तरंगिणी' (सं० १५९८) वस्तुतः रीति का प्रथम लक्षण ग्रन्थ है जिसमें उसके पूर्व रचे रीति ग्रन्थों की परम्परा की ओर संकेत किया गया है। इस ग्रन्थ में नायिका भेद का विस्तृत विवेचन है। सूर यद्यपि भक्त कवि थे किन्तु उनकी रचनाओं में भी संयोग-वियोग, काव्य में चित्रात्मकता तथा नायिका भेद का संश्लिष्ट चित्रण मिलता है। रीति काल के कवियों की भाँति विपरीत रति, रस-हाव-भाव अलङ्कार आदि के पुष्कल उदाहरण सूर की रचनाओं में मिल जाते हैं। तुलसीकृत 'बरवै रामायण' रहीम कृत 'बरवै नायिका भेद' और नन्ददास की 'रसमंजरी' आदि ग्रन्थों में लक्षण बताते हुए अलङ्कार और नायिका भेद का अच्छा विवेचन किया गया है।

रीतिकाल के आचार्यों में कृपाराम की 'हित तरंगिणी' के होते हुए भी केशव को प्रमुख स्थान दिया जाता है। उन्होंने पूर्व ध्वनि तथा उत्तर ध्वनि दोनों कालों की विचारधारा को व्यक्त किया। उन्होंने 'कविप्रिया' में अलंकार्य और अलङ्कार में अभेद स्थापित किया और 'रसिक प्रिया' में शृङ्गार को रसराज मानते हुए नायिका भेद का सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया है। बाद में जसवंतसिंह, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति मिश्र और सुखदेव ने इस परम्परा को अर्जस्वित प्रवाह प्रदान किया। आगे चलकर देव ने भाव विलास, रस विलास, भवानी विलास और शब्द रसायन आदि ग्रन्थों में इसी परिपाटी का अनुगमन किया। श्रीपति भिखारीदास, भूपति, सोमनाथ और पद्माकर ने अलंकार, रस, पिंगल, गुणदोष तथा पदार्थ निर्णय आदि का विस्तृत विवेचन करते हुए अत्यन्त प्रौढ़ रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

इस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने 'रीति' की प्रवृत्तियों का व्यापक रूप से प्रयोग किया अतः इसमें ३ प्रकार के कवि मिलते हैं—(१) रीति ग्रन्थकार (२) रीतिबद्ध (३) रीति मुक्त। रीति ग्रन्थकार कवियों ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों पर काव्य रचना की, इनमें केशव, मतिराम, भूषण, देव

(शेष पृष्ठ ११५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध का स्वरूप और उसकी परिभाषा

डा० गोविन्द त्रिगुणायत

निबन्ध गद्य का एक ऐसा सरस बौद्धिक विधान है जिसमें वस्तु की व्याख्या निबन्धकार के व्यक्तित्व की चेतना से संवलित हो मुखरित होती है। साहित्यिक विधा के रूप में इसका प्रवर्तन संस्कृत-साहित्य में सम्भवतः बहुत पहले हो चुका था। किन्तु पद्य की प्रधानता के कारण यह गद्य विधा अधिक पनप नहीं पाई और कालान्तर में लुप्तप्रायः सी हो गई। यही कारण है कि प्राचीन साहित्याचार्यों ने इसके स्वरूप के निरूपण का कोई प्रयास नहीं किया। आज हम इसके प्राचीन शास्त्रीय स्वरूप का अनुमान आचार्य सुबन्धु की वासवदत्ता में उपलब्ध एक पंक्ति से ही लगा सकते हैं। वह पंक्ति इस प्रकार है—"प्रत्यक्षर-श्लेषमय प्रबन्धविन्यास वैदग्ध्य निधि निबन्धचक्रे।" यहाँ निबन्ध का शास्त्रीय स्वरूप अनायास ही अभिव्यक्त हो गया है। इसमें प्रमुख रूप से उसकी दो विशेषताएँ व्यञ्जित की गई हैं। पहली विशेषता उसका प्रत्यक्षर श्लेषमय होना है, इसमें आचार्य का अभिप्राय है कि उसे भी सर्वथा साहित्यिक या आलङ्कारिक होना चाहिये। निबन्ध की दूसरी विशेषता है उसका सब प्रकार से प्रबन्ध विन्यास-वैदग्ध्यों से विशिष्ट होना। सब प्रकार के प्रबन्ध-विन्यास वैदग्ध्यों से आचार्य को कौन-कौन सी वैधानिक विशेषतायें अभीष्ट थीं यह निर्दिष्ट करना कठिन है किन्तु इससे यह अवश्य व्यंजित होता है कि आचार्य सुबन्धु की दृष्टि में निबन्ध विविध वैधानिक एवं साहित्यिक विशेषताओं से विशिष्ट एक चमत्कार-पूर्ण शब्द-विधान था। यह शब्द-विधान सम्भवतः गद्य में ही अभिव्यक्त किया जाता था क्योंकि आचार्य ने उपर्युक्त पंक्ति में छन्द आदि की कोई चर्चा नहीं की है। यदि वह पद्यात्मक विधा होती तो प्रस्तुत पंक्ति में उसका निर्देश अवश्य किया गया होता। उपर्युक्त पंक्ति से निबन्ध और प्रबन्ध गत भेद भी स्पष्ट है। प्रबन्ध से साधारणतया 'अनुज्झितार्थ सम्बन्ध' वाली रचना का ही बोध होता है। किन्तु निबन्ध प्रबन्ध के प्रत्यक्षर-श्लेषमय रूप का वाचक था। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत में प्रबन्ध की अपेक्षा निबन्ध अधिक साहित्यिक और व्यवस्थित शब्द विधान समझा जाता था। प्रबन्ध और निबन्ध के अतिरिक्त संस्कृत में एक लेख शब्द भी मिलता है। हिन्दी में आजकल इसका बहुत अधिक प्रचलन है। उसमें इसका प्रयोग साधारणतया किसी भी विषय पर लिखी गई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने योग्य छोटी-सी गद्यात्मक रचना के लिये होता है। संस्कृत में लेख शब्द अपने उपर्युक्त अर्थ में रूढ़ नहीं था। इसका प्रयोग साधारणतया पत्र के अर्थ में किया जाता था। उदाहरण के रूप में हम मुद्राराक्षस की निम्नलिखित पंक्ति दे सकते हैं—"लेखोयंनमयेतिनेत्र रमिदं मुद्रा मदीयायतः" (मुद्राराक्षस ५।१८) इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत में प्रबन्ध, निबन्ध और लेख ये तीनों पर्यायवाची न होकर सर्वथा भिन्नार्थक थे।

अङ्गरेजी में निबन्ध के लिये 'एसे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'एसे' (Essay) का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है—प्रयत्न या प्रयास, मॉनटेन ने जिन्हें पाश्चात्य निबन्ध कला का जनक कह सकते हैं, उन्होंने अपने गद्यात्मक साहित्यिक प्रयासों की इसी अभिधान से अभिहित किया था। तब से पश्चिमी देशों में निबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये 'एसे' शब्द ही प्रयुक्त होता है। 'एसे' शब्द का प्रयोग अङ्गरेजी में मॉनटेन से पहले भी मिलता है किन्तु तब इसका प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में होता था। बड़ी-बड़ी पद्यात्मक रचनाओं को भी 'एसे' कह दिया जाता था। इसके साहित्यिक रूप का विकास सम्भवत: मॉनटेन के समय से ही प्रारम्भ हुआ। तब से इसके वैधानिक रूप का क्रमशः विकास होता गया आज उसका एक व्यवस्थित शास्त्रीय स्वरूप उपलब्ध है जिसकी अपनी अलग वैधानिक विशेषताएँ हैं। इनके क्रमिक विकास का इतिहास भिन्न-भिन्न समयों में विविध विद्वानों द्वारा दी गई 'एसे' की परिभाषाओं से प्रकट है।

अंग्रेज आचार्य जौनसन निबन्ध को एक अव्यवस्थित रचना मानते थे। उनके मतानुसार निबन्ध उस रचना को कहेंगे जिसमें लेखक अपने मन की शैलानियों को विशृङ्खल ढङ्ग से प्रकट करने का प्रयास करता है। वह उसको कोई व्यवस्थित साहित्यिक विधान नहीं मानते थे। उसको साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय फ्राँसीसी विद्वान मॉनटेन को ही है। मॉनटेन ने 'ऐसे' को एक ऐसा साहित्यिक प्रयास कहा है जिसमें निबन्धकार वस्तु-विशेष से सम्बन्धित अपने व्यक्तिगत विचारों को कलात्मक सूत्र में पिरोता है।" मॉनटेन के बाद थैंको ने निबन्धकार को परपैंचुअल-टाकर कहकर उसकी व्यक्तित्व प्रधानता वाली विशेषता की पुर्नस्थापना की। उसने लिखा है कि—"निबन्धकार एक ऐसा वाचाल है जो अपनी वाचालता के अन्तराल में अपनी दुर्बलताओं, विचित्रताओं और स्वाभिमानी चेतनाओं की प्रणिति भी कर देता है।" आचार्य हडसन ने इस विशेषता को और अधिक स्पष्ट शब्दों में प्रकट करते हुए लिखा है—"The true essay is essentially personal.' अर्थात सच्चा निबन्ध निश्चित रूप से निबन्धकार की व्यक्तिगत विशेषताओं से विशिष्ट रहता है। अलेग्जैण्डर स्मिथ नामक विद्वान ने अपने 'On writing the essay' नामक निबन्ध में उपर्युक्त विशेषता की व्यञ्जना अधिक प्रबल शब्दों में की है। उसने लिखा है कि निबन्ध काव्य से इस बात में बहुत अधिक साम्य रखता है कि उसी के सदृश वह भी किसी व्यक्तिगत अनुभूति या मानसिक परिस्थिति विशेष से चाहे वह सनकपूर्ण हो, गम्भीर हो, या व्यंग्यात्मक हो, सम्बन्धित रहता है। जिस प्रकार सिल्क के कीड़े के चारों ओर कोकून घिर जाता हैं उसी तरह से उस मानसिक स्थिति को केन्द्रित कर निबन्ध लिखा जाता है। हालवर्ड और हिल नामक विद्वानों ने भी 'एसेज़' नामक पुस्तक की भूमिका में निबन्ध की वैधानिक विशेषताओं पर बड़े विस्तार से विचार किया है। निबन्ध में उन्होंने निबन्धकार के अहं की अभिव्यक्ति को विशेष महत्व देकर उसकी व्यक्तित्व प्रधानता वाली विशेषता की अभिव्यक्ति प्रवेगपूर्ण शब्दों में की है। उसने लिखा है कि "साहित्यिक निबन्ध केवल वस्तु विशेष की संक्षिप्त व्याख्यामात्र नहीं है, उसे हम लेखक के मस्तिष्क में उद्‌भूत वस्तु विशेष के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रियात्मक चित्र की अभिव्यक्ति कह सकते हैं। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता वैयक्तिकता होती है।" इस विशेषता के अतिरिक्त उपर्युक्त विद्वानों ने निबन्ध की कुछ और विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है जिनको हम इस प्रकार निर्दिष्ट कर सकते हैं—

(१) निबन्ध एक छोटी सी रचना होती है। अङ्गरेजी में प्राचीन काल में कभी-कभी चारसौ या पाँचसौ पृष्ठों की रचनाओं तक को निबन्ध का नाम दिया गया था। लॉक की Essay on human understanding ऐसी ही रचना है किन्तु अब निबन्ध उसी लघु रचना को कहते हैं जो किसी भी अवकाश के समय सरलता से पढ़ी जा सके और मस्तिष्क में रखी जा सके।

(२) इसमें बहुत सी बातों का संग्रह किया जाता सकता है, किसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन नहीं। निबन्ध का कार्य किसी बात को सिद्ध करना नहीं, बल्कि ध्वनित करना होता है। यह ध्वनन भी चित्रात्मक शैली में किया जाना चाहिये। वर्णनात्मक शैली में नहीं।

(शेष पृष्ठ ११५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसंधान की प्रविधि

[२]

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त

अपने कथन में प्रामाणिकता लाने के उद्देश्य से शोधकर्त्ता को विविध ग्रन्थों से उद्धरण देने होते हैं। किसी-किसी प्रबन्ध में उद्धरणों की अधिकता रहती है जिनके औचित्य पर पाठकों और समीक्षकों द्वारा शंका प्रकट की जाती है, किन्तु प्रामाणिकता और रचना-सौष्ठव की दृष्टि से प्रायः इनका होना आवश्यक ही होता है। तथापि उद्धरणों की संख्या घटाने के लिए कहीं-कहीं अपने मत का समर्थन करने वाले किसी अन्य लेखक के विचारों की ओर मूल सामग्री के अन्तर्गत संकेत मात्र करना भी पर्याप्त होता है। उदाहरणार्थ विवेचन करते हुए यह कहा जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अथवा किसी अन्य आलोचक को भी यही मत मान्य रहा है तथापि यह उल्लेखनीय है कि शोध-प्रबन्ध में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में जितने भी उद्धरण अथवा अध्ययन-संकेत दिये जाएँ उनकी यथार्थता और शुद्ध रूप की पूरी परख करली जाये।

सामान्यत: शोध-ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रत्येक पृष्ठ के उद्धरणों के लिये नये सिरे से संख्याएँ अंकित की जाती हैं, किन्तु कुछ अनुसन्धाता सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये उद्धरणों की संख्याओं को ही क्रम से लिखते जाते हैं और ऐसे उद्धरणों को सुविधा के अनुसार या तो प्रत्येक पृष्ठ पर उद्धृत करते हैं अथवा ग्रन्थ के अन्त में सभी उद्धरण एकत्रित रूप में दे दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ डा० धर्मवीर भारती ने अपने शोध-ग्रन्थ 'सिद्ध-साहित्य' में इसी प्रकार क्रमिक रूप में उद्धरणों की संख्याएँ दी हैं और सभी उद्धरणों को ग्रन्थ के अन्त में एक साथ प्रस्तुत किया है। डा० सिद्धनाथ कुमार के शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी-एकाङ्की की शिल्प-विधि का विकास' में भी यही पद्धति अपनाई गई है। इस प्रणाली का गुण यह है कि इससे शोध-ग्रन्थ का अनुशीलन करते समय आंशिक विराम नहीं आते और सम्पूर्ण सामग्री को आत्मसात् करने में सुविधा रहती है। ग्रन्थ के अन्त में दिये गये उद्धरणों की सार्थकता यह रहती है कि यदि पाठक कहीं प्रमाणों की खोज करना चाहेगा तो अन्त में वे सब सुलभ होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विषय के तारतम्य को खण्डित न होने देने के लिये प्रत्येक पृष्ठ पर उद्धरण न देकर उद्धरण की संख्या मात्र दे देना एक उपयोगी विधि है। किन्तु, इसका पूर्णतः समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि इस प्रणाली के अवलम्बन से कहीं-कहीं पाठक को असुविधा भी हो सकती है। यहाँ पाद-टिप्पणी देने की विधि और उसके महत्व पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित चार तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिये।

१—किसी पुस्तक से उद्धरण लेते समय अनुसन्धाता को प्रायः लेखक, सम्बद्ध पुस्तक, अध्याय विशेष, संस्करण, प्रकाशक, प्रकाशन-स्थान, प्रकाशन-काल तथा उस पृष्ठ की संख्या का उल्लेख करना चाहिए जहाँ से उद्धरण लिया गया है। सुविधा के लिए इन सब विवरणों को इस रूप में प्रस्तुत न करके यह भी किया जा सकता है कि केवल पुस्तक, लेखक और पृष्ठ का संकेत पाद-टिप्पणी में कर दिया जाय और प्रकाशक आदि का उल्लेख सहायक-ग्रन्थ-सूची के अन्तर्गत रहे। यदि किसी पुस्तक से एक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक लेखक हों तो उन सभी का उल्लेख करना उचित होगा। किन्तु, कभी-कभी किसी ग्रन्थ के चार-पाँच सम्पादक अथवा लेखक होते हैं। ऐसी अवस्था में उन सब के नाम न देकर एक अथवा दो लेखकों के नाम दिये जा सकते हैं। इसी प्रकार 'हिन्दी-साहित्य-कोश' जैसे ग्रन्थों से उद्धरण देते समय केवल कोश-सम्पादक का नाम न देकर शब्द-विशेष सम्बन्धी टिप्पणी के मूल लेखक का नाम भी दिया जाना चाहिए। सामान्यत: अनुसन्धाता यह स्पष्ट नहीं करते हैं कि जिस कृति से उद्धरण दे रहे हैं वह मौलिक है अथवा सम्पादित। अभिप्राय यह है कि यदि कोई रचना मौलिक रूप में न लिखी गई हो तो उसके सम्पादक के नाम के साथ 'सम्पादक' शब्द का उल्लेख अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार यदि अनूदित ग्रंथ से उद्धरण लिया गया हो तो अनुवादक के नाम के साथ 'अनुवादक' शब्द का उल्लेख उचित होगा।

२—यदि शोध-ग्रन्थ में किसी पत्रिका से उद्धरण प्रस्तुत किए जाएँ तो पाद-टिप्पणी में पत्रिका के नाम सम्पादक, रचना के शीर्षक, लेखक के नाम, पत्रिका के अङ्क प्रकाशन-काल, प्रकाशन-स्थान और उद्धरण की पृष्ठ संख्या का उल्लेख रहना चाहिए। दैनिक समाचार पत्र से उद्धृत अंश में उक्त सब बातों को ध्यान में रखने के अतिरिक्त कालम की संख्या भी दी जानी चाहिए।

३—अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों अथवा पाण्डुलिपियों से उद्धरण देते समय ऐसी सामग्री की प्राप्ति के स्रोत (विश्वविद्यालय, मठ, निजी पुस्तकालय आदि) का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। ऐसे उद्धरण में रचना के पृष्ठ अथवा छन्द विशेष का संकेत अवश्य रहना चाहिए। अनेक शोध-प्रबन्धों में यह दोष लक्षित किया जा सकता है कि पाण्डुलिपियों से उद्धृत अंशों के सम्बन्ध में प्राय: ये संकेत नहीं दिये जाते। इससे अन्य अनुसन्धाताओं अथवा पाठकों को उक्त सामग्री के [illegible] रूप की खोज करने में निश्चय ही असुविधा होती है।

४—उद्धरण प्रस्तुत करते समय एक रोचक समस्या यह आती है कि यदि किसी एक ही ग्रन्थ से क्रमश: दो अथवा तीन बार उद्धरण दिये गये हों तो पाद-टिप्पणी में किस पद्धति को अपनाना चाहिए। कुछ अनुसन्धाता इसके लिए पुस्तक अथवा पत्रिका का बार-बार उल्लेख करते हैं। और कुछ 'वही' लिखकर अपने अभिप्राय को स्पष्ट कर देते हैं। हमारे विचार से ये दोनों ही प्रणालियाँ निर्दोष हैं, किन्तु वही लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसी पृष्ठ पर पूर्ववर्ती पाद-टिप्पणी में ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य हो। एक अन्य समस्या यह है कि ग्रंथ के अन्तर्गत कुछ प्रमाण तो उद्धरण देकर प्रस्तुत किये जाते हैं और कुछ का उल्लेखमात्र कर दिया जाता है, उद्धरण नहीं दिये जाते। इसके लिए पाद-टिप्पणी में भी तद्नुरूप व्यवस्था रहनी चाहिए। यदि उद्धरण प्रस्तुत किया गया हो तो पाद-टिप्पणी में ग्रन्थ के शीर्षक पृष्ठ आदि का उल्लेख होना चाहिये और यदि उद्धरण न देकर व्यक्ति विशेष के मन्तव्य की ओर संकेतमात्र किया गया हो तो पुस्तक और पृष्ठ के उल्लेख के साथ 'देखिए' शब्द का भी उल्लेख रहना चाहिए। पृष्ठ संख्या को उद्धृत करते समय भी एक समस्या यह रहती है कि यदि पृष्ठ १११-११२ लिखना हो तो कुछ अनुसन्धाता १११-१२ लिखते हैं और कुछ १११-११२ लिखते हैं। इनमें से स्पष्टता की दृष्टि से दूसरी विधि ही अधिक संगत है। कभी-कभी ऐसी पुस्तकों से भी उद्धरण देने पड़ते है जिनके आरम्भ के पृष्ठ फटे हुए होते हैं तथा लेखक, सम्पादक आदि का सही बोध नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में अपने सन्देह को व्यक्त कर देना चाहिए और उस पुस्तकालय या स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए जहाँ पर अनुसन्धाता ने ऐसी खण्डित सामग्री का अनुशीलन किया हो।

उपसंहार—प्रबन्ध की समाप्ति पर उपसंहार लिखते समय शोधार्थी को प्रत्येक अध्याय के निष्कर्षों के आधार पर प्रबन्ध की सामग्री का समन्वित रीति से मूल्याङ्कन करना चाहिए। उपसंहार के अन्तर्गत अत्यधिक विस्तार की प्रवृत्ति शोभनीय नहीं होती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः संक्षिप्त तथा अतिविस्तृत दोनों ही प्रकार के उपसंहार उचित नहीं होते। कुछ शोधार्थी यह अनुभव करते हैं कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रतिपाद्य को उपसंहार में केवल ४-५ पृष्ठों में लिख देना ही पर्याप्त होगा जबकि कुछ अन्य २०-२५ पृष्ठों का पूरा अध्याय प्रस्तुत कर देने की दृष्टि लेकर चलते हैं। वस्तुतः उपसंहार के अन्तर्गत उन सभी मूल प्रश्नों को पुनः उभारा जाता है जिनसे प्रेरित होकर प्रबन्ध-लेखन आरम्भ किया गया था। शोध-ग्रन्थ की उपलब्धियों की विधिवत् चर्चा करते हुए भावी दिशाओं का संकेत करना और उसी क्षेत्र के अन्तर्गत किये गये अन्य अनुसन्धान-कार्यों से अप्रत्यक्ष रूप में अपने कार्य की तुलना करते चलना भी उपसंहार के अन्तर्गत उपयोगी रहता है। उसके अन्तर्गत यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिये कि विषय प्रवेश में व्यक्त किये गये सङ्कल्पों का प्रबन्ध के अन्तर्गत किस रूप में निर्वाह किया गया है तथा सम्बद्ध शोध-प्रबन्ध से भावी अनुसन्धाता किस रूप में प्रभावित होंगे।

कुछ शोधार्थी उपसंहार के अन्तर्गत पहले पाद-टिप्पणी देने अथवा दूसरों के निष्कर्षों को उद्धरण के रूप में प्रस्तुत करने का मार्ग अपनाते हैं। किन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। उपसंहार शोधार्थी के निष्कर्ष का आलेखन होना चाहिए। उसके अन्तर्गत शोध की उस सामान्य प्रविधि का निर्वाह उचित नहीं होगा जिसके अनुसार प्रत्येक बात को प्रमाण सहित कहने पर ही बल दिया जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण प्रबन्ध में शोधार्थी जिन दिशाओं को ग्रहण करें और जिन निष्कर्षों पर पहुँचें, उन्हें स्वतन्त्र रूप में लिख देना ही उपसंहार में अपेक्षित रहता है। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के अन्तर्गत संलग्नता रखने पर भी उपसंहार में शोधकर्त्ता शिथिलता का परिचय देते हैं। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है—वे यह अनुभव करते हैं कि कार्य तो लगभग समाप्त हो ही चुका है अतः अन्त में अपने निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत कर देना ही पर्याप्त होगा। किन्तु जिस प्रकार आख्यानक रचनाओं में उनके आरम्भ और अन्त का उतना ही महत्व रहता है जितना कि मध्यभाग में प्रस्तुत किये गये कथ्य का होता है, उसी प्रकार अनुसन्धान में भी जो महत्व विषय-प्रवेश का होता है वही उपसंहार का भी होता है। यद्यपि यह सत्य है कि अनुसन्धान की दिशा में खोज-यात्रा विषय-प्रवेश के बाद आरम्भ होती है और उपसंहार के पूर्व समाप्त हो जाती है, किन्तु केवल यात्रा का ही महत्व नहीं होता—उसके पूर्व की पृष्ठभूमि और बाद के अनुभव भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं।

परिशिष्ट—शोध-ग्रन्थ के अन्त में प्रायः दो-तीन अथवा अधिक परिशिष्ट दिये जाते हैं जिनके अन्तर्गत शब्द-सूची अथवा 'इण्डेक्स', सहायक ग्रन्थ-सूची, पाण्डुलिपियों की फोटो-प्रतियों आदि को स्थान दिया जाता है।

(अ) शब्द-सूची—शब्द-सूची की शोध-ग्रन्थ में विशिष्ट उपयोगिता रहती है। उत्तम एवं समृद्ध शब्द-सूची से पाठक को ग्रन्थ के अनुशीलन में सुविधा रहती है, उसी कोटि के विषय पर कार्य करने वाले अन्य अनुसन्धाताओं को लाभ होता है तथा समीक्षक को भी समीक्षा में सहायता मिलती है। इस सूची को अनुसन्धाता को स्वयं प्रस्तुत करना चाहिए, क्योंकि किसी अन्य को उसकी कृति के विषय में उतनी जानकारी नहीं हो सकती। किन्तु, यदि अनुसन्धाता शब्द-सूची बनाने में कठिनाई का अनुभव करे तो किसी ऐसे व्यक्ति से परामर्श लिया जा सकता है जो इस कार्य में दक्ष हो। शब्द-सूची तैयार करते समय शोध-कर्त्ता को अपने आप को पाठक के स्थान पर रखकर देखना चाहिये कि यदि वह पाठक होता तो क्या उक्त पुस्तक में किसी पृष्ठ पर दी गई सामग्री को शब्द सूची द्वारा ग्रहण कर पाता। यदि हाँ, तो ऐसे शब्द को सूची में स्थान अवश्य मिलना चाहिये अन्यथा ऐसे शब्द को छोड़ा जा सकता है। सूची का न तो अनावश्यक विस्तार करना चाहिए और न हो महत्वपूर्ण शब्दों की उपेक्षा उपयुक्त होगी। वस्तुतः ग्रन्थ में उल्लिखित लेखकों एवं पुस्तकों की सूचियाँ पृथक्-पृथक् अकारादि क्रम से दी जानी चाहिए। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध-ग्रन्थ में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों अथवा पारिभाषिक शब्दों की सूची भी अन्त में अक्षर-क्रम से दी जा सकती है। ऐसी सूची में विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों, अन्य भाषाओं से साभिप्राय प्रयुक्त शब्दों आदि का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि एक ही विषय से सम्बद्ध दो या अधिक शब्दों को सूची में स्थान देना चाहिए अथवा नहीं। उदाहरणार्थ 'लोकमंगल' और 'लोकदर्शन' दोनों ही समानार्थी शब्द हैं, किन्तु इन दोनों का उल्लेख उपयोगी होगा। इसके विपरीत यदि कुछ चुने हुए ग्रन्थों का उल्लेख किया जायेगा तो शोधार्थी को मत-विश्लेषण की, और सहृदय को ऐसे ग्रन्थों के अनुशीलन की सुविधा रहेगी। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण समस्या तब उत्पन्न होती है जब एक ही कवि की रचनाएँ विभिन्न सम्पादित संस्करणों के रूप में सुलभ होती हैं। प्रायः शोधार्थी यह प्रभाव डालने की चेष्टा करते हैं कि उन्होंने सभी प्राचीन प्रतियों की खोज करली है। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि पाठकों को उन प्रतियों की सुलभता सन्दिग्ध होने के कारण ऐसी प्रति से ही उद्धरण देने चाहिए जो नवीनतम हो, उपलब्ध हो सकती हो और जिसमें सामग्री की प्रस्तुति का आधार वैज्ञानिक हो। उदाहरणार्थ सन्त दादूदयाल के सम्बन्ध में शोध-कार्य करने पर शोधार्थी को सुधाकर द्विवेदी प्रभृत्ति विद्वानों द्वारा सम्पादित ग्रन्थों से उद्धरण न देकर परशुराम चतुर्वेदी के सर्वसुलभ ग्रन्थ 'दादूदयाल' से उक्तियाँ देनी चाहिये।

शोध-प्रबन्ध के लेखन के समय शोधकर्ता द्वारा प्रायः विभिन्न सन्दर्भों में ऐसी ग्रन्थ-सूचियाँ तैयार की जाती हैं जिनके अनुशीलन से शोध-कार्य को गति मिलती है। ऐसी सूचियों में समाविष्ट ग्रन्थ सदैव उपयोगी ही सिद्ध हों, यह आवश्यक नहीं है। अतः प्रबन्ध के अन्त में केवल उन ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की जानी चाहिए जिनसे उद्धरण लिए गये हों। कुछ अनुसन्धाता शोध-कार्य करते समय जितनी भी पुस्तक देखते हैं, उन सभी का उल्लेख करने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते। इस दृष्टिकोण की सराहना नहीं की जा सकती। सुविधा के लिए यह उचित होगा कि जब शोधार्थी किसी एक अध्याय की सामग्री को कर ले तब उससे सम्बद्ध सहायक ग्रन्थों की सूची भी साथ-साथ बना ली जाए। इस प्रकार विभिन्न अध्यायों की पृथक्-पृथक् सहायक ग्रन्थ-सूचियाँ तैयार करने पर बाद में पुनरावृत्त होने वाले नामों को हटाया जा सकता है। सामान्यतः सन्दर्भ-सूचियों को निम्नलिखित तीन रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है—विषयानुसार, ग्रन्थानुसार, लेखकानुसार।

कुछ अनुसन्धाता ग्रन्थ-सूची के अन्तर्गत लेखकों की वरीयता के अनुसार शब्द-क्रम का निर्धारण करते हैं, किन्तु यह दृष्टि उचित नहीं है क्योंकि इससे पाठक को सूची के अनुशीलन में असुविधा होती है। अतः लेखकों अथवा पुस्तकों का उल्लेख अकारादि क्रम से होना चाहिए। कुछ शोधार्थी पुस्तकों को अकारादि क्रम से स्थान देते हुए उनके लेखकों का साथ में उल्लेख करते हैं और कुछ लेखकों को अकारादि क्रम से स्थान देकर पुस्तकों का साथ में उल्लेख कर देते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी सूची में इन दोनों को एक साथ अकारादि क्रम से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अतः इस दिशा में जो भी पद्धति शोधार्थी को उचित प्रतीत हो उसी का आश्रय लिया जा सकता है। लेखकों के अकारादि क्रम के अनुसार प्रस्तुत की जाने वाली सूचियों की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—कुछ शोधार्थी 'जगन्नाथ शर्मा' को ज वर्ग के अक्षरों में स्थान देना चाहेंगे और कुछ इसे 'शर्मा जगन्नाथ' के रूप में लिखना चाहेंगे, जिससे कि इस शब्द का उल्लेख श वर्ग के अक्षरों में होगा। इनमें से द्वितीय पद्धति पुस्तकालयों में मिलनेवाली पुस्तक-लेखकों की सूचियों की शैली पर अपनाई जाती है। शोधार्थी इनमें से किसी भी विधि को अपना सकता है—आवश्यकता केवल इतनी है कि सम्पूर्ण सूची में किसी एक ही विधि को अपनाया जाये और दोनों विधियों का मिश्रण न किया जाये।

सहायक ग्रन्थ-सूची में अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा प्रेस में मुद्रित हो रहे किसी प्रबन्ध की चर्चा भी की जा सकती है। ऐसे ग्रन्थों की चर्चा पृथक् रूप में की जानी चाहिए और उनकी प्राप्ति के स्रोत का भी स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। यदि शोधार्थी ऐसी पुस्तकों की सूची का उल्लेख भी करना चाहे जिनका उसने अध्ययन तो किया है, किन्तु उद्धरण नहीं दिये हैं तो ऐसी सूची पृथक् से बनाई जानी चाहिए और उसके आरम्भ में एक अनुच्छेद में उसके औचित्य को प्रकट किया जाना चाहिए। स्वभावतः ऐसी सूची की उपयोगिता इस तथ्य में निहित होगी कि भावी अनुसन्धाता ऐसे सम्भावित सहायक ग्रन्थों से अवगत हो सकें और शोध-प्रबन्ध के लेखक पर यह आरोप न लगाया जा सके कि उसने प्रबन्ध-लेखन के समय अनेक ग्रन्थों को छोड़ दिया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब सहायक ग्रन्थ-सूची को संस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी आदि के ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं आदि विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाये तो यदि प्रत्येक वर्ग में उल्लिखित सहायक सामग्री के सम्बन्ध में आरम्भ में पाँच-सात पंक्तियों में शोधार्थी की ओर से सामान्य टिप्पणी दी जा सके तो उचित होगा। इससे सूची का महत्त्व बढ़ेगा और विभिन्न वर्गों के सापेक्षिक महत्त्व पर भी प्रकाश पड़ सकेगा। सूची में उल्लिखित सभी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि पर क्रमांक-संख्या भी डालनी चाहिए जिससे कि यह प्रकट हो सके कि किसी वर्ग में कुल कितनी कृतियों का अध्ययन किया गया है। कुछ शोधार्थी सूची तो प्रस्तुत कर देते हैं, किन्तु अङ्क-संख्या नहीं डालते; यह विधि उचित नहीं है।

सामान्यतः सहायक-ग्रन्थ-सूची के अन्तर्गत लेखक पुस्तक और प्रकाशक का उल्लेख रहता है, किन्तु सूची तब तक अपूर्ण ही रहेगी जब तक कि पुस्तक के संस्करण और प्रकाशन-वर्ष का भी उल्लेख न हो यदि किसी पुस्तक के दो अथवा अधिक भाग हों तो यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि शोधकर्त्ता ने किस भाग का उपयोग किया है। अनूदित ग्रन्थों का उपयोग करते समय ग्रन्थ के साथ यह उल्लेख होना चाहिए कि वह अनूदित है और इस सन्दर्भ में अनुवादक का नाम भी दिया जाना चाहिए। पुस्तक के भाग और उसके संस्करण का उल्लेख पुस्तक के शीर्षक के साथ करना चाहिए और अनुवादक का उल्लेख मूल लेखक के नाम के बाद किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप पुस्तक आदि का उल्लेख निम्नलिखित रीति से किया जा सकता है—"सूर और उनका साहित्य, डा० हरवंशलाल शर्मा, प्रथम संस्करण, सन् १९५४, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।" कुछ शोधार्थी सहायक ग्रन्थ-सूची को दो भागों में विभाजित कर लेते हैं जिनमें से एक में मुख्य सहायक सामग्री का उल्लेख रहता है और दूसरे में गौण सहायक ग्रन्थों की चर्चा रहती है। यदि इन दोनों वर्गों की पुस्तकों से उद्धरण प्रस्तुत किये गये हों तब इस वर्गीकरण का औचित्य नहीं रहता। किन्तु, यदि गौण सहायक पुस्तकों से उद्धरण न लिये गये हों तो पृथक् सूची दी जानी चाहिए और यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि शोधकर्त्ता ने ऐसी पुस्तकों से भरपूर लाभ उठाया है, किन्तु उद्धरण नहीं दिये।

प्रबन्ध-सार—कुछ विश्वविद्यालयों में यह नियम है कि अनुसन्धान की समाप्ति के उपरान्त शोधकर्त्ता को प्रबन्ध के साथ-साथ उसका सार भी प्रस्तुत करना होता है। आगरा विश्वविद्यालय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय आदि में यही नियम है। ऐसी अवस्था में ग्रन्थ के उपसंहार को ही उसका सार मान लेना उचित न होगा। कुछ शोधार्थी अपना श्रम बचाने के लिए प्रबन्ध के उपसंहार को ही यत्किंचित् परिवर्तित रूप में अथवा ज्यों का त्यों प्रस्तुत करके उसे सार समझ लेते हैं। वस्तुतः सार के अन्तर्गत प्रत्येक अध्याय के प्रतिपाद्य का पुनर्लेखन करना होता है। यह कहना उचित होगा कि कभी-कभी मूल प्रबन्ध की अपेक्षा उसके सार का अधिक महत्त्व समझा जाता है क्योंकि शोधकर्त्ता की दृष्टि वहाँ पूर्णतः

(शेष पृष्ठ ११८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी और संत कवि

डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

नारी समाज की सर्जक, पोषक और प्रेरक है। वह प्रकृति है जिसके अभाव में पुरुष निष्क्रिय, वह शक्ति है जिसके अभाव में शिव शव और वह है मकरंद जिसके बिना पुष्प निष्प्राण है। मुझे तो जीवन की वीणा पर नारी का ही स्वर मुखरित ज़ान पड़ता है। किन्तु जब हम वर्तमान की ऊँचाई से अतीत के क्षितिज पर दृष्टिपात करते हैं। तब विदित होता है कि नारी-जाति को समाज ने वैदिक युग के बाद बहुत दिनों तक यथोचित् सम्मान नहीं दिया। वैदिक युग की नारी को समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद में नारी के लिए 'मेना' शब्द का प्रयोग हुआ है। यास्क ने 'मानयन्ति एनाः (पुरुषाः)'[1] अर्थात् पुरुष के द्वारा मानी जाने वाली कहकर मेना शब्द की व्याख्या की है। कालान्तर में नारी की स्थिति पुरुष के समान नहीं रही। मनु ने स्त्री को कुमार्यावस्था में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन बताकर जीवनपर्यन्त उसके परतन्त्र रहने की बात कही है।[2] भाष्यों के रचना-काल में स्त्रियों की सामाजिक मर्यादा और भी घटती हुई दिखाई पड़ती है। सम्भवतः ऐसा शकों, सीथियनों और हूणों के आक्रमण से उत्पन्न सामाजिक अस्तव्यस्तता के कारण हुआ था। प्रारंभ में आत्मरक्षा की भावना से नारी को घर के कटघरे में बन्द होना पड़ा होगा जिसके परिणामस्वरूप उसके स्वभाव, संस्कार एवं दृष्टिकोण में संकीर्णता आ गयी होगी। धीरे-धीरे वह सच्चे अर्थों में अबला बन गयी और आँचल में दूध तथा आँखों में पानी लेकर जीने के अतिरिक्त उसके लिए दूसरा कोई चारा नहीं रहा। दूसरी ओर पुरुष वर्ग में पराजय दासता एवं सामाजिक विशृङ्खलता के कारण आत्मरति एवं मुसलमान बादशाहों तथा सामन्तीय जीवन के प्रभाव से विलासिता की प्रवृत्ति प्रधान हो गयी।[3] बौद्ध सिद्धों एवं वैष्णव सहजियों की साधना में भी विषय-वासनाओं का समावेश हुआ। फिर तो नारी को विलासिता के विविध उपकरणों की पंक्ति में बैठा दिया गया। इसीलिये मध्यकाल में नारी के लिए जितनी संज्ञाएँ प्रचलित हुईं सब में युग-जीवन में व्याप्त विलासिता की छाया दिखाई पड़ती है। उसे वाम कहा गया क्योंकि वह सौन्दर्य बिखेरती है—वमति सौन्दर्यम्। उसे सुन्दरी कहा गया क्योंकि उसे देखने से (सु+उन्द (गीला करना)+अर+ङीप्) मनुष्य का हृदय गीला हो जाता है। वह ललना है क्योंकि उसमें लल अर्थात् इच्छा शक्ति की प्रधानता है। वह प्रमदा है क्योंकि वह हल्के-हल्के भाव से पुरुष को उत्तेजित कर देती है।[4] इस दोष पूर्ण स्थिति के लिए प्रधान रूप से सामाजिक वातावरण और गौण रूप से पुरुष वर्ग उत्तरदायी था किन्तु दोषी ठहराया गया नारी को। यही कारण है कि मध्ययुगीन धार्मिक साहित्य में नारी-निन्दा की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी

[1] निरुक्त ३।२१।२

[2] मनुस्मृति

[3] देखिए मध्ययुगीन काव्य साधना—डा० रामचन्द्र तिवारी, पृ० २६१

[4] कल्याण (नारी अङ्क) पृ० १२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सकल कपट अघ औगुन खानी'[१] 'अवगुण आठ सदा उर'[२] रखने वाली दुःखों की खानि[३] तथा सहज अपावनि[४] आदि कहकर नारी जाति को बहुत हीन बताया है।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में जब हम सन्त-साहित्य का अनुशीलन करते हैं तब ज्ञात होता है कि नारियों के सम्बन्ध में सन्त-कवियों की दृष्टि अपेक्षाकृत उदार, सन्तुलित और पूर्वाग्रह मुक्त रही है। वैसे तो विद्वानों ने सन्त कवियों को नारी-निन्दक के रूप में देखा है किन्तु यह बात साधार नहीं प्रतीत होती। वस्तुतः निर्गुणोपासक सन्तों ने जीवन की यथार्थता को निकट से देखा था। वे 'कागद की लेखी' के नहीं बल्कि 'आँखों की देखी' के हिमायती थे। उनके सम्मुख नारी के तीन रूप थे—कामिनी अथवा व्यभिचारिणी, माता और पतिव्रता अथवा सती। सन्त-साहित्य नारी के कामिनी अथवा व्यभिचारिणी रूप की निन्दा से भरा है। कबीरदास कामिनी को सुन्दर सर्पिणी के समान बताते हुए उससे दूर रहने का उपदेश देते हैं।[५] अन्यत्र उन्होंने कामिनी को बाघिनी की संज्ञा दी है जो अपने रूप-चाल में फंसाकर संसार को खा रही है।[६] इसी प्रकार धरनीदास ने उसे दामिनी[७] दयालुदास ने नरक-दरबार[८] तथा सुन्दरदास ने उसके शरीर को गति रूपी कुञ्जर, कटिरूपी केहरि, केश रूपी काली नागिन, कुच रूपी पहाड़ तथा कटाक्ष रूपी वाण का सन्धान करने वाले काम रूपी चोर से युक्त जङ्गल की उपमा दी है।[१] कहना न होगा नारी का यह रूप निंद्य और नारी समाज की दृष्टि में भी निंद्य है।

सन्तों ने यत्र-तत्र नारी के कामिनी रूप के अतिरिक्त सामान्य नारी जाति की भी निन्दा की है। उदाहरणार्थ पलटूदास ने नारी के नैन को शेर का पंजा तथा उसके बैन को संसार रूपी खरबूज के लिए छूरी सदृश बताया है।[२] इसी प्रकार मलूकदास ने इसे अमल की घोंटी[३] और सुन्दरदास ने विष वेलि[४] की संज्ञा दी है। सन्त मोहनशाह ने खीझकर यहाँ तक कह दिया है कि मरी हुई नारी का भी स्वप्न में विश्वास नहीं करना चाहिए।[५] यहाँ मैं बल देकर कहना चाहूँगा कि ऐसे स्थलों पर भी नारी शब्द कामिनी, व्यभिचारिणी अथवा घर जोड़ने की माया के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैसे तो जब विशाला चित्रशाला में पहुँच कर सुराही और प्याला के साथ सुबाला विलास का मसाला बन गयी तब धीरे-धीरे उसके संस्कार विनष्ट हो गये। अपनी दृष्टि में भी उसकी कोई दूसरी उपयोगिता नहीं रही। एक ओर वह स्वयं रसिक नागरिकों की विलास क्रीड़ा का अंग बनी और दूसरी ओर धाय, दासी, नाइन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, तमोलिन, चितेरिन, मनिहारिन, सुनारिन आदि के रूप में नारी-रत्नों को विलास-वृत्ति के अनुकूल सुसज्जित करने में सक्रिय हुई। ऐसी पथ-भ्रष्ट नारियों की यदि सन्तों ने निन्दा की तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इस सम्बन्ध में विचार करते समय हमें इस बात को भूलना न होगा कि सन्त अध्यात्म-साधना की झीनी डगर के पथिक थे। सांसारिक माया-जाल

---

१ रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड (ग्रन्थावली, पृ० ४६२)
२ वही, लङ्काकाण्ड (वही, पृ० ७५३)
३ वही, आरण्डकाण्ड (वही, पृ० ६४३-४९)
४ वही, पृ० ६०२
५ कामिन सुन्दर सर्पणी, जो छेड़े तेहि खाय।
सं० बा० सं०, भाग १, पृ० ५८
६ नैनो काजर लाइकै गाढ़े बाँधे केश।
हाथों मेंहदी लाइकै बाघिन खाया देश ॥ वही, पृ. ५८
७ सं० बा० सं०, भाग १, पृ० ११५
८ दयालुदास की वाणी, पृ० सं० ६७

---

१ सुन्दर ग्रन्थावली, पृ०
२ सं० बा० सं० भाग १, पृ० २२३
३ वही, पृ० १०३
४ सुन्दर ग्रन्थावली।
५ मुइउ नारि को देखिकै सपनेउ ना पतियाय।
मोहनशाह की वाणी, (हस्तलिखित)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं कर्म के बन्धन को तोड़ने से ही वे अपने गन्तव्य तक पहुँच सकते थे। इसीलिए उन्होंने स्वयं माया का परित्याग किया और अन्य प्राणियों को भी इससे बचने की सीख दी। उन्होंने नारी ही नहीं वरन् तात, मात, भ्रात, सुत, संगी सबसे दूर रहने की बात कही क्योंकि इनमें से अन्ततोगत्वा अपना कोई नहीं है, साथी तो केवल एक सांई है—

तात न मात न भ्रात सुत सगा न सुन्दरि साथ।
हरिया जासी एकलो करि बोलाई हाथ॥
बाट बटाऊ सब चले, विडले वासो होय।
जन हरिया सांई बिना यहाँ न तेरा कोय॥[1]

जहाँ तक नारी के माता और पतिव्रता रूप का प्रश्न है सन्त कवियों ने इनके प्रति श्रद्धा के भाव व्यक्त किये हैं। कबीर ने नारी के मातृत्व के कारण ही 'नारी निन्दा ना करो नारी नर की खानि' कह कर नारी-निन्दकों से ऐसा न करने का निवेदन किया है। नारी का पतिव्रता रूप सन्तों को विशेष रूप से प्रिय था। वाणी-साहित्य के 'सती' और 'पतिव्रता' के अंग शीर्षक के अन्तर्गत पतिव्रता नारी की महिमा का विशद रूप से गान किया गया है। पतिव्रता के लक्षण बताते हुए सन्त दयालुदास ने लिखा है—

पिव इग्या हिरदै रखै, आठ पहर इक ध्यान।
पतवरता सोई जानिये भूल न करे गुमान॥[2]

ऐसे पातिव्रत धर्म को सुन्दरदास ने समस्त धर्मों का मूल कहा है—

पतव्रत हा मैं योग है, पतव्रत ही मैं जाग।
सुन्दर पतिव्रत राम सों, वहै त्याग वैराग॥
सुन्दर जिन पतिव्रत कियो, तिन कये सब धर्म।
जबहि करै कछु और कृत, तबहीं लागे कर्म॥[3]

इसीलिए मैली-कुचैली पतिव्रता को भी कबीरदास ने वन्दनीय बताया है—

पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि स्वरूप॥[4]

इस सम्बन्ध में सन्तों की धारणा का सही अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इन सन्तों ने पतिव्रता को अपनी साधना का आदर्श माना है। इन्होंने अपनी आध्यात्मिक निष्ठा को पतिव्रता और सती की पतिनिष्ठा के मेल में रखा है। अपने को पतिव्रता नारी और अपने आराध्य को पति के रूप में चित्रित किया है। दयालुदास की दृष्टि में परमात्मा ही एक मात्र पुरुष है और अन्य सभी प्राणी नारी के रूप में हैं।[5] कबीर भी उसी अविनाशी पुरुष को वरण करने की चर्चा करते हैं।[6] साँई पन्थ के प्रवर्तक सन्त मोहनशाह की विरहिणी आत्मा भी उसी प्रियतम के विरह में तड़पती हुई दिखाई पड़ती है।[7] कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ पतिव्रता एकनिष्ठ भाव से परमात्मा से प्रेम करने वाले जीवात्मा या भक्त का प्रतीक है। इसीलिए सन्त दयालुदास ने 'धिन पतिव्रत धिन सन्त'[8] कह कर पतिव्रता और सन्त दोनों की समान रूप से वन्दना की है। सन्तों की वाणी में प्राप्त सती के अंग से भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। तात्पर्य यह कि सन्तों को नारी मात्र से घृणा नहीं थी। यदि ऐसा होता तो वे अपनी साधना में पति-पत्नी भाव को प्रतीक रूप में न ग्रहण करते।

इसी प्रसंग में यह भी विचारणीय हैं कि यदि समस्त नारी जाति के सम्बन्ध में सन्तों की धारणा

---

[1] श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश: पृ० ६६ (परचै को अंग—श्री हरिराम दास)

[2] दयालुदास की वाणी (हस्तलिखित प्रति) पृ० सं० ६३-६० ।

[3] सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६६१ ।

[4] सं० बा० सं०, भाग १, पृ० ४० ।

[5] पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अङ्ग ।
—दादूदयाल की वाणी, पृ० ३४ ।

[6] दुलहिन गावहु मंगलचार ।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥
—कबीर ग्रन्थावली पृ० ८७ ।

[7] सम्मेलन पत्रिका, वर्ष ४६, सं० ३-४, पृ० ४० ।
(सांई पंथ और उसका साहित्य शीर्षक लेख—डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी)

[8] दयालुदास की वाणी (हस्तलिखित) प० सं० ६५-६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ न होती तो सन्त सम्प्रदायों में नारियों को कदापि दीक्षित नहीं किया जाता; किन्तु सन्त-परम्परा पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि सन्त-मत के प्रचार और प्रसार में नारियाँ कभी भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। सहजोबाई, दयाबाई, स्वरूपाबाई ओभाबाई, उमाबाई और पुलीबाई के अतिरिक्त रामा बाई, गंगाबाई, पर्वाबाई आदि नारी सन्तों का नाम भी सन्त-परम्परा में सम्मान के साथ लिया जाता है। इन नारी-सन्तों ने न केवल निर्गुणोपासक सन्तों का शिष्यत्व ग्रहण किया, वरन् सन्त विचार-धारा का प्रचार करते हुए विभिन्न स्थानों पर अपनी गद्दियाँ भी स्थापित कीं।

स्मरण रखना चाहिए कि मध्यकाल, भारतीय धर्म साधना के इतिहास में वह समय था जब सामान्य रूप से नारी को किसी भी धर्म में सम्मानपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त था। 'बतादे कोई कौने गलिन गयो श्याम' की रट लगाती हुई ब्रजभूमि में भटकती, गिरधरनागर की साँवली सूरत पर निछावर मीराबाई को कोई भी महात्मा रात भर के लिये शरण देने को तैयार नहीं था। ऐसी स्थिति में यदि सन्तों ने नारियों को शिष्य रूप में ग्रहण किया तो यह उनके नारी सम्बन्धी दृष्टि-कोण की उदारता ही थी।

अन्त में मैं यह कहना चाहूँगा कि अधिकांश निर्गुणोपासक सन्तों ने जनक की भाँति भवन में वन का व्रत लेकर सहज साधना की थी। सन्तमत के प्रव-र्तक सन्त कबीर की धर्मपत्नी लोई ने सच्चे अर्थों में अर्धाङ्गिनी के व्रत का पालन करते हुए उनकी साधना को सफल बनाया था। सतनामी पन्थ की कोटवा शाखा के प्रवर्तक जगजीवनसाहब और उनकी परम्परा के सन्त आज तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं। रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल-खेड़ापा शाखा के आद्याचार्य हरिरामदास तथा उनके शिष्य रामदास के अतिरिक्त अन्य बहुत से सन्त भी गृहस्थ थे। पारिवारिक जीवन की नौका के सहारे भवसागर पार करने वाले सन्त नारी के निन्दक हो ही कैसे सकते थे? वस्तुतः नारी-भाव ही सन्तों की साधना का केन्द्र-विन्दु है।

—का० सु० साकेत महाविद्यालय, फैजाबाद।

(शेषांश पृष्ठ १०४ का)

आदि प्रमुख हैं। रीतिबद्ध कवियों ने प्रत्यक्षतः लक्षण ग्रन्थ न लिखकर उन्हीं के आधार पर स्वतन्त्र कविताएँ लिखीं, जैसे बिहारी। रीति मुक्त कवि उपर्युक्त दोनों प्रकार के कवियों की परम्परा से पृथक् रहे और उन्होंने भक्ति, नीति, ज्ञान, वैराग्य और वीर-रस की कविताएँ लिखीं। इनमें रसखान, घनानन्द, आलम, नागरीदास, लाल, सूदन, बृन्द, गिरिधर आदि प्रमुख हैं।

—ई० आर० १७, सिविल लाइंस, जालंधर शहर।

(शेषांश पृष्ठ १०६ का)

(३) निबन्ध को किसी एक विचार या भाव पर ही केन्द्रित रहना चाहिये। यह केन्द्रीकरण कलात्मक ढंग से निबन्ध में व्यर्थ की बातों का अव्यवस्थित वर्णन अनावश्यक माना है। कलापूर्णता और आत्मनिर्भरता निबन्ध की प्रधान विशेषतायें हैं।

(४) निबन्ध में जिस विषय का विवेचन किया गया हो उस पर लेखक अपने विचार स्वतन्त्रता से व्यक्त कर सकता है किन्तु वह अपने विचारों को पाठकों पर बलात् लाद नहीं सकता।

(५) कविता के समान निबन्ध में भी बुद्धि की अपेक्षा हृदय को प्रभावित करने की क्षमता विशेष होनी चाहिये। इसके लिये लेखक मूर्तिविधान का आश्रय ले सकता है।

(६) निबन्ध की अभिव्यक्ति विचारहीनतामय नहीं प्रतीत होनी चाहिये। साथ ही साथ ऐसा हो कि उसकी रचना बड़े चिन्तन और मनन के बाद की गई भी प्रतीत न हो। स्वतन्त्र विचारों को निर्बाध रूप में अभिव्यक्त करना ही निबन्ध का लक्ष्य होता है।

—के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि कल्लोल एवं उनका ढोला मारू रा दूहा

डा० मोतीलाल मेनारिया

राजस्थान के जिन कवियों ने डिंगल भाषा में काव्य रचना की है, उनमें कवि कल्लोल का नाम बहुत ऊँचा है। यह डिंगल भाषा के अमर कवियों में से हैं। इनका लिखा 'ढोला मारू रा दूहा' डिंगल साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। लेकिन खेद है कि इस ग्रन्थ से इनके व्यक्तिगत जीवन पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। केवल यही विदित होता है कि यह ग्रन्थ सं० १५३० में लिखा गया था :—

पनरहसै तीसै बरस, कथा कही गुण जांण।
वदि वैसाखे वार गुरु, तीज जांण सुभ वांण।।

परन्तु इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतियों में पनरहसै तीसै बरस' के स्थान पर 'पनरहसै साठै बरस'[1] पाठ भी देखने में आता है। ज्योतिष गणना के हिसाब से यह दूसरा पाठ ठीक बैठता है। सं० १५३०, वैशाख वदि तीज के दिन गुरुवार नहीं था। उस दिन रविवार था। परन्तु सं० १५६० के वैशाख महीने की तृतीया को गुरुवार था। अतः सं० १५६० को इस ग्रन्थ का रचनाकाल मानना अधिक समीचीन होगा। सं० १५३० को इसका निर्माण समय मानने में एक आपत्ति और भी है। वह यह है कि यह ग्रन्थ डिंगल भाषा का है और डिंगल भाषा में साहित्य-रचना का श्रीगणेश ही सं० १५५० के बाद से हुआ है। इससे पूर्व के डिंगल भाषा के जो भी ग्रन्थ अथवा गीत, कवित्त आदि बताये जाते हैं वे सब अप्रामाणिक हैं। उनको इतने प्राचीन मानने के लिये हमारे पास कोई ठोस ऐतिहासिक आधार नहीं है।

कल्लोल कवि रचित 'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थान का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसकी बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान में इधर-उधर लोगों के घरों में देखने को मिलती हैं। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा प्राचीन पुस्तक-भण्डार मिलेगा, जहाँ इसकी एक-दो प्रतियाँ उपलब्ध न हों। इन हस्तलिखित प्रतियों में प्राचीनतम प्रति सं० १६५१ की लिखी हुई है। इसके अलावा इस ग्रंथ की कुछ चित्रित प्रतियाँ भी पाई जाती हैं। उदयपुर के सरस्वती भण्डार में इसकी एक चित्रित प्रति उपलब्ध है जो राजस्थानी चित्रकला-चातुरी का उत्कृष्ट नमूना है।

ढोला मारू रा दूहा एक प्रणय काव्य है। इसके कई रूपान्तर मिलते हैं जिनमें से किसी-किसी में ७०० से ऊपर दोहे हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वाराप्रकाशित संस्करण में दोहों की संख्या ६७४ है। इसकी मूल कथा इस प्रकार है:—

किसी समय नरवरगढ़ पर नल नामक राजा राज्य करता था। उसके एक पुत्र था जिसका नाम था ढोला अथवा साल्हकुमार। उसने इस राजकुमार का विवाह पूगल देश के राजा पिंगल की कन्या मारवणी से किया। जिस समय यह विवाह हुआ उस समय ढोला की आयु ३ वर्ष की और मारवणी की १½ वर्ष की थी। बाल्यावस्था के कारण विवाह के बाद भी मारवणी अपने पीहर पूगल ही में रहती थी।

विवाह हुए कई वर्ष बीत गये। ढोला जवान हुआ। पूगल देश बहुत दूर पड़ता था। इसलिये उसके पिता ने उसका दूसरा विवाह मालवा के राजा की लड़की मालवणी से कर दिया और उसके पहले

[1] आकाश वाणी, जयपुर के सौजन्य से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह की बात उससे छिपाकर रखी।

इधर मारवणी जब बड़ी हुई तब उसके पिता ने ढोला को बुलाने के लिए कई दूत भेजे। परन्तु मालवणी ने कुछ ऐसा प्रबन्ध कर रखा था कि वे ढोला तक पहुँच ही नहीं पाते थे। बीच ही में मार दिये जाते थे। अन्त में दो ढाढ़ियों को संदेशा देकर भेजने की व्यवस्था की गई। मारवणी ने मारू राग में बनाकर संदेशे के दोहे ढ़ाढ़ियों को कहे और उनको सिखा दिये। पूगल से रवाना होते समय ढ़ाढ़ी कह गये:—

आज निसह म्हे चालस्यां, बेस्यां पंखी-बेस।
जो जीव्या तो आवस्यां मुया तो उण हिज देस॥[1]

अनेक प्रकार की कठिनाइयों के बाद ढ़ाढियों ने मारवणी का विरह-वेदनापूर्ण संदेश ढोला तक पहुँचा दिया। ढोला मारवणी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठा और कुछ दिन बाद पूगल जा पहुँचा। १५ दिन तक वह वहाँ रहा फिर मारवणी को लेकर घर रवाना हुआ। मार्ग में पड़ाव पर मारवणी को एक सांप ने काट खाया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। ढोला विलाप करने लगा और उसके साथ चिता में जलने को तैयार हो गया। इतने में एक योगी और योगिन उधर आ निकले। उन्होंने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया। आगे उनको डाकू ऊमरा-सूमरा मिला। उसने मारवणी को छीनने की कोशिश की, पर असफल रहा।

अन्त में दोनों नरवरगढ़ पहुँच गये और आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि इस कहानी के नल, ढोला आदि पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और इसका कथानक सचाई को लिये हुए है। भूतपूर्व जयपुर राज्य के संस्थापक दूल्हराम कछवाहा को उन्होंने ढोला माना है और सं १००० के आस पास उसका आविर्भाव काल बताया गया है। परन्तु उनका यह अनुमान ही अनुमान है। इतिहास-ग्रन्थों से इसकी पुष्टि नहीं होती। इस सम्बन्ध में अधिक टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि इस कहानी का आकर्षण इसकी कथावस्तु पर नहीं, बल्कि इसके काव्य सौष्ठव पर अवलम्बित है।

ढोला मारू रा दूहा राजस्थान का जातीय काव्य है। इसमें राजस्थान का वातावरण है। राजस्थानवासियों की भाव-भावनाओं का, उनकी चित्त-वृत्तियों का उनके सांस्कृतिक आचार-विचार का इसमें दर्पण जैसा प्रतिबिम्ब है।

इस ग्रन्थ में शृंगार रस की प्रधानता है। विशेष कर वियोग शृंगार का इसमें बहुत ही भव्य निरूपण हुआ है। ढोला के विरह में मारवणी के मुँह से जो दोहे कवि ने कहलवाये हैं, उनमें उसने नारी हृदय को निकाल कर बाहर रख दिया है। उदाहरण लीजिए—

भरै पलट्टै भी भरै, भी भरि भी पलटेहि।
ढ़ाढी हाथ संदेसड़ा, धण विललंती देहि॥
बाब हियो नै विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब ही बरसै घण घणौ, तबहि कहै पी-याव।
बिज्जुलियां नीलज्जियाँ, जलहर तूँ ही लज्जि।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरै मधुरै गज्जि।
बाबहिया निल-पंखिया, बाढ़त दे दे लूंण।
पिउ मेरा मैं पीउ की, तूँ पिउ कहे स कूँण॥[1]

कवि कल्लोल का संयोग शृंगार का वर्णन भी अति सुन्दर है। उसमें यौवन का उल्लास और उन्माद दोनों हैं पर अश्लीलता नहीं है। लोक मर्यादा का उसमें पूरी तरह पालन हुआ है। इस वर्णन की एक सर्वोपरि विशेषता है, चित्रोपमता।

---

[1] निसह=रात्रि। म्हे=हम। बेस्यां=चलेंगे। उण हिज=उस ही।

[1] भरै=कहती है। भी=फिर। विललंती=विलाप करती हुई। बाबहियाँ=पपीहा। नै=और। सहाब=एक भाव। घण=बादल। घणौ=बहुत जलहर=जलधर। निल-पंखियाँ=नीले पंखवाला। बाढ़त=काटता है। लूँण=नमक। स=सो। कूँण=कौन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा जैसे छोटे छन्द में संयोग शृंगार के जो चित्र कवि ने अंकित किये हैं, वे अपने आप में पूरे और अपने रंग-ढंग के बेजोड़ हैं। ढोला अपनी ससुराल पूगल पहुँच गया है। प्रेमोन्मत्त मार वणी के दो एक शब्द-चित्र देखिए--

सोई साजन आविया, जाँकी जोती वाट।
थांभा नाचै घर हंसै, खेलण लागी खाट।।
मारु बैठी सेज पर, पी मुख देखे तास।
पूनम-केरे चाँद ज्यों, मंदिर हुओ उजास।।
ढोलो मारू एकठा, करै कुतूहल केलि।
जांणे चन्दन रूंखड़ैं, विलगी नागर वेलि[1]।।

कल्लोल एक प्रतिभावान कवि था। काव्य में कमनीयता लाने वाले सभी गुण उसमें विद्यमान थे। यही कारण है कि उसका यह ग्रन्थ राजस्थान में इतना लोकप्रिय है तथा वृद्ध और तरुण पुरुष और नारी, धनी और कंगाल सभी इसको बड़े चाव से सुनते, सुनाते और सराहते हैं।

[1] सांई=वही। तास=उसका। पूनम-केरे=पूर्णिमा के। विलगी=लिपट गई।

—सरस्वती भवन, गनगोर घाट, उदयपुर।

(शेषांश पृष्ठ १११ का)

केन्द्रित रहती है। परीक्षक के पास प्रबन्ध की प्रति के साथ-साथ सार की प्रति भी भेजी जाती है, जिसका लक्ष्य यही होता है कि पहले सार को पढ़कर परीक्षक एक धारणा बना सके और तदनन्तर मूल प्रबन्ध का अध्ययन आरम्भ करे। अतः शोधार्थी को इस दिशा में असावधानी का परिचय नहीं देना चाहिए।

अनुसन्धान की प्रविधि के अन्तर्गत मूल उल्लेखनीय तथ्य उपर्युक्त ही हैं। शोध-विषय के अनुरूप इनके स्वरूप, 'सापेक्षिक महत्व और प्रस्तुतीकरण की विधि' में यत्किंचित् भिन्नताएँ हो सकती हैं, किन्तु शोधार्थी के मन में इन्हें श्रेष्ठतम रूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा अनिवार्यतः विद्यमान रहनी चाहिए।

—३ सी, २५ रोहतक रोड, नई दिल्ली।

भारती आटा चक्की

(ब्रास बीयरिंग)

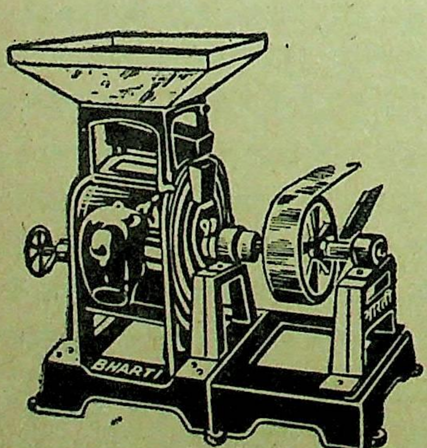

१—स्वतः आईलिंग ब्रास बीयरिंग
२—तीसरे पैडिस्टल सहित
३—डबल पिन सिस्टम
४—बाल बीयरिंग को दाब
(बाल बीयरिंग में भी उपलब्ध)

मुख्य वितरक :—

सिंघल ब्रादर्स, यमुना रोड, आगरा-४

मिल स्टोन मर्चेंट टेलीफोन : ७२९६० : ७३८२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : एक विवेचन

• • •

शारदाकुमारी

सरस्वती के वरद पुत्र आपने जीवन के ६१ वसन्त व्यतीत कर, ६२वें वसन्त की ओर कदम उठाते ही २७ जुलाई १९६६ के प्रातः चिरनिद्रा में निमग्न हो गये।

संसार के साहित्यकारों, चिन्तकों और मनीषियों में आपका नाम आदर के साथ लिया जाता था। आप अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् थे। वाङ्मय जगत् में आपका नाम मूर्धन्य पन्डितों में सदा अमर रहेगा।

लम्बा कद, दुबला-पतला शरीर, शरीर पर खद्दर की धोती-कुर्ता, सिर पर नाम मात्र को सफेद बाल, तेजोमय प्रतिभावान् चिन्तनशील गम्भीर चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी नाक, हाथ में कलम लिये हुये सरस्वती का उपासक, तपस्वी के समान तख्त पर बिछी मृगछाला पर १८-१८ घण्टे उपासना में लीन रहता था। उसके चारों ओर लगा रहता था पुस्तकों का दरबार। आपका एक सुरक्षित अध्ययन कक्ष था जिसमें आप अपनी साहित्य-साधना एकाग्रचित्त होकर करते थे। काशी में आपका निवास-स्थान क्या था, एक पुस्तकालय था, जो आपके ज्ञान-गौरव को प्रदर्शित एवं मण्डित करता था।

आप स्वभाव के नम्र एवं मृदुभाषी थे। आप सदैव राजनीतिक मामलों से दूर रहने वाले साहित्य-साधक, तत्व-वेत्ता, चिन्तक एवं प्रकाण्ड मनीषी थे। ज्ञान-क्षेत्र में आप सदैव अग्रगण्य रहे और रहेंगे। आप हिन्दी को एक समर्थ भाषा मानते थे। आपने संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य को अपनी अद्भुत प्रतिभा एवं ज्ञान से समृद्धिशाली बनाया। आपने हिन्दी को तो समृद्ध किया ही, साथ ही भारतीय साहित्य और दर्शन की भी व्यापक व्याख्याएँ कीं।

आपकी ज्ञान-प्रतिभा के कारण ही आपके पास अमेरिका और योरोप से अनेक निमन्त्रण आये किन्तु माता सरस्वती की उपासना में बाधा पड़ने के कारण भारत के मनीषी ने काशी में ही रहकर अपनी उपासना को पूर्ण करने का निश्चय किया। आपके पास भारत के केवल हिन्दी के ही शोधार्थी ही नहीं आते थे वरन् विश्व के कोने-कोने से विभिन्न विषयों के शोधार्थी मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त करने के लिए आते थे। क्या दर्शन, क्या भाषा, क्या उपनिषद, क्या पुरातत्व, क्या इतिहास आदि सभी पर उन्होंने शोध कराया। योरोप के तो बहुत से विद्वानों ने हिन्दी केवल इसीलिए पढ़ी कि वे डा० अग्रवालजी की कृतियों का रसास्वादन कर सकें। अपने अथक परिश्रम से आपने जितना कार्य ६१ वर्ष में सम्पन्न किया, उतना शायद ही कोई अन्य १०० वर्षों में कर सके।

आपने केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी की ही सेवा नहीं की वरन् संस्कृत, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं की भी सेवा की। डा० राधाकुमुद मुकर्जी द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखित 'हिन्दू सिविलीजेशन' नामक पुस्तक का आपने हिन्दी अनुवाद 'हिन्दू सभ्यता' नाम से किया। इसके अतिरिक्त आपने इतिहास, पुराण, वेद आदि का भी अध्ययन कर साहित्य-सर्जना में अमूल्य योग-दान दिया। आपके ग्रन्थों में—'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', 'कला और संस्कृति', 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'चतुर भाषी', 'विद्यापति कृत कीर्तिलता', 'मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन', 'ऋग्वेद पर व्याख्या', 'मेघदूत ; एक अध्ययन', 'पृथिवी पुत्र', 'माता भूमि', 'जायसी कृत पदमावत', मूल और संजीवनी व्याख्या प्रस्तुत हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी की उच्च पत्रिकाओं में भी आपके दार्शनिक सांस्कृतिक, कलात्मक और साहित्यिक विचारों का प्रभूत संकलन है। 'जायसी कृत पद्मावत पर आपको पाँच हजार रुपयों का राष्ट्रीय अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ में आपकी मौलिकता का प्रदर्शन है। जिसमें आपने व्याख्या के साथ ही साथ आवश्यकतानुसार शब्दों के मूल रूप सहित उनके ऐतिहासिक विकास को भी स्पष्ट किया है। इसके साथ ही आपने भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर जायसी कृत 'पद्मावत' के बहुत से शब्दों को उनके मूल रूपों से जोड़कर उनके अर्थों को स्पष्ट किया है। साथ ही शुद्ध पाठ के निर्धारण में भी भाषा-विज्ञान से पर्याप्त सहायता लेकर यह सिद्ध कर दिया कि साहित्य और भाषाविज्ञान दोनों एक-दूसरे के सहायक हैं, पूरक हैं।

'पद्मावत' में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कुछ स्थलों की व्याख्या इतने स्पष्ट शब्दों में की कि जटिल स्थल भी सरल एवं बोधगम्य बन गये। उन जटिल स्थलों की इतनी सरल एवं सुस्पष्ट व्याख्या अन्य कहीं दुर्लभ तो क्या सम्भव भी नहीं है। उदाहरण रूप में 'पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड' के अन्तर्गत उद्धृत चौपड़ सम्बन्धी स्थल को लेते हैं—

"ऐसें राजकुँवरि नहिं मानौं।
खेलु सारि पाँसा तौ जानौं। १।
कच्चे बारह बार फिरासी।
पक्के तौ फिरि थिर न रहासी। २।
रहैं न आठ अठारह भाखा।
सोरह सतरह रहे सो राखा। ३।
सतएँ ढरें सो खेलनिहारा।
ढारन ग्यारह जास न मारा। ४।
तूँ लीन्हे मन अछसि दुवा।
औ जुग सारि चहसि पुछुवा। ५।
हौं नव नेह रचौं सोहि पाहाँ।
दसों दाउँ तोरे हिय माहाँ। ६।
पुन चौपर खेलों के हिया।
जो तिरहेल रहे सो तिया। ७।
जेहि मिलि बिछुरत औ तपनि अन्त तन्त नेहि निन्त।
तेहि मिलि बिछुरन को सहै बरु जिनु मिलें निचित॥
२७।२३

—'पदमावत' ,पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड'
छन्द ३१२

डा० वासुदेवशरण अग्रवालजी ने प्रस्तुत अवतरण के तीन अर्थ दिये हैं—(१) चौपड़ीपरक अर्थ, (२) अध्यात्मपरक अर्थ, (३) प्रेमपरक अर्थ।

चौपड़परक अर्थ के अन्तर्गत आपने चौपड़ के खेल का भी परिचय दिया हैं। इसी के अन्तर्गत आपने एक ईमानदार साहित्यकार की दृष्टि से यह भी उल्लेख कर दिया है कि आपको किस प्रकार इस खेल का ज्ञान हुआ—

"मुझे स्वयं इस खेल का ज्ञान न था। श्री मैथिलीशरण गुप्त की कृपा से मुझे इस खेल का परिचय मिला और तब अर्थ समझने में सुविधा हुई।"
—पद्मावत, पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड, पृ० ३०४

इस कथन के उपरान्त आपने चौपड़ के खेल का पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया है।

"चौपई परक अर्थ' यहाँ डा० अग्रवालजी के ग्रन्थ से उद्धृत है—

"१—हे राजकुँवर, मैं ऐसे नहीं मान सकती। मेरे साथ गोट और पाँसा चौपड़ खेल लो तो जानूँ। २—कच्चे बारह का दाँव आने से तू केवल बारह पर चल सकेगा। पक्के बारह पड़ गये तो फिर स्थिर न रहेगा रुकेगा नहीं। ३—तू आठ पर नहीं जमता; आठ आने पर अठारह कहता है। सोलह, सत्रह का दाँव पड़ जाय तो वह (खिलाड़ी को) बचाता है। ४--सात पाँसे पड़ें तो खेलने वाला हारता है। ग्यारह का दाँव अगर तू लेलो तो गोट नहीं मर सकती। ५—पर मन में चाव रखकर भी तेरे पास केवल दुआ है और उतने से ही तू दो गोटें चलना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ६—मैं तो तेरे लिये नौ का दाँव चाहती हूँ पर तेरे मन में दस का दाँव है। ७—फिर हिम्मत करके तेरे साथ चौपड़ खेलना चाहती हूँ। जो तीन बाजी खेले वही तीन—तीन का दाव लेने वाला लिया होगा।

८—जुग बाँधने के बाद जुग से फूटना दुःख कारक है। फिर खेल के अन्त तक उसी की इच्छा बनी रहती है। ९—जुग बाँध कर बिछुड़ने से यह अच्छा है कि जुग मिलाया ही न जाय और प्रत्येक गोट निश्चिन्तता से चली जाय।"

—(पद्मावत, पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड पृ० ३०३)

इसी स्पष्टता के साथ आपने इन्हीं पंक्तियों का अध्यात्मपरक तथा प्रेमपरक अर्थ दिया है। इसी प्रकार के अन्य बहुत से स्थल हैं जिनकी डा० अग्रवाल जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में व्याख्या की है।

डा० अग्रवाल जी को हम केवल एक व्याख्याकार के ही रूप में नहीं पाते वरन् उनको एक महान् निबन्धकार के रूप में भी प्राप्त करते हैं। 'कला' और 'संस्कृति', 'माता-भूमि' 'पृथ्वीपुत्र', 'कल्पवृक्ष' आदि डा० साहब की प्रसिद्ध निबन्ध पुस्तकें हैं—जिनमें साहित्यकार की अन्तम्-वाणी की गूँज है।

आपके निबन्ध जहाँ गम्भीर विषयों का विश्लेषण करते हैं वहाँ दूसरी ओर उनकी अन्तः भूमिका (मूल आत्मा) भारतीय भावना से ओत-प्रोत रहती हैं। 'साप्ताहिक-हिन्दुस्तान' गुप्त बन्धु श्रद्धाञ्जलि, अङ्क, २५ अप्रल १९६५ में आपका एक लेख 'आदर्श ही जिनका ईश्वर था' प्रकाशित हुआ। इसमें बड़ी ही सरल, परिमार्जित किन्तु भाव गर्भित शैली में आपने युग-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के कृतित्व पर प्रकाश डाला था। आपने स्वयं श्री गुप्तजी को युग-कवि कहा था; इस लेख में आपने युग-कवि की प्रमुख विशेषताओं को एक वाक्य में इस प्रकार आबद्ध किया है—

"युग के आदर्श को भाव, चरित्र और जीवन की नई-नई कल्पनाओं में जो सुन्दर काव्य-कौशल से अभिव्यक्त कर सकता है, वही युग-कवि है।"

साहित्यकार का साहित्य उसके मन-मस्तिष्क का दर्पण है, जिसमें उसके भाव और विचारों का चित्र प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य का विभिन्न विधाओं में 'निबन्ध' लेखक की कसौटी है। 'निबन्ध' में लेखक की मौलिक विचारधारा प्रवाहित होती है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के भाव-विचारों का संगठित एवं पारिमार्जित रूप उनके निबन्धों में मुखरित हुआ है। भारतीय साहित्यकार सुनाम धन्य डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की लेखनी ब्रह्म के अवतार 'कृष्ण' के गुणों को देखकर शान्त न बैठ सकी। 'महापुरुष श्री कृष्ण' नामक निबन्ध में संयत एवं परिनिष्ठित शब्दावली में उस महापुरुष के प्रति उमड़ी हुई भाव-धारा के दर्शन होते है। इस निबन्ध में डा० अग्रवालजी ने संक्षिप्त रूप से कृष्ण के जीवन पर प्रकाश डाला है। 'कृष्ण' के 'राजनीतिक चरित्र' का विश्लेषण करने में आप का विशेष मन रमा। इसके अन्तर्गत श्री कृष्ण का एक वीर पुरुष के रूप में चित्र उपस्थित किया। कृष्ण की वीरता का गुणानुवाद करते-करते एकाएक वह लिख देते हैं—

"कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि अद्भुत थी। अर्जुन ने कहा था कि युद्ध न करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करें, वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा—'यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण में से एक को लेना पड़े तो मैं कृष्ण को लूँगा। आर्य विष्णु गुप्त चाणक्य को भी अपनी बुद्धि पर ऐसा ही विश्वास था। उनका मन्त्र अमोघ था। जहाँ कोई युक्ति न हो वहाँ कृष्ण की युक्ति काम आती थी। धृतराष्ट्र की धारणा थी कि जब तक एक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और अधिज्य गांडीव धनुष ये तीन तेज एक साथ हैं तब तक ग्यारह अक्षोहिणी भारतीय सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।"

('महापुरुष श्री कृष्ण')

डा० अग्रवालजी उच्चकोटि के चिन्तक थे। किसी बात को लिखने से पूर्व आप उस पर पहले मनन करते थे और तब कहीं जाकर लिखते थे। यही कारण है कि जहां आपके ग्रन्थों में साहित्यिक विवेचन है वहाँ सांस्कृतिक एवं भाषिक टिप्पणियाँ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ये टिप्पणियाँ अग्रवालजी की सारस्वत तपश्चर्या का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

डा० अग्रवालजी ने विषय के स्पष्टीकरण के लिए कहीं-कहीं कोष्ठान्तर्गत आधुनिक नामों का प्रयोग भी किया था। आप किसी शब्द को पाठक तक पहुँचाने के लिए उसका दूसरा प्रचलित नाम शब्द 'कोष्ठ' में हिन्दी या अँग्रेजी में लिख देते थे—

"इस प्रलयकारी युद्ध में दुर्योधन की ओर से गांधार, बाह्यलोक, कंबोल, केकय, सिन्धु, मद्र त्रिगर्त कांगड़ी सारस्वतगत, मालय, अङ्ग आदि देशों के क्षत्रिय प्रवृत्त हुए।" (महापुरुष श्री कृष्ण)

× × ×

"जिन्हें तामिल में पेरुम काप्पियम् पेरुम—पंच, काप्पियम्—काव्य कहते है।"

—(हिन्दी की उदारवाणी)

× × ×

"जिस पर सूर्य की किरणों की रंग-विरंगी पेटी की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है।" (महापुरुष श्री कृष्ण)

डा० अग्रवालजी का विश्वास था कि लोक ग्रामीण शब्दों को साहित्य में स्थान देने से शब्द-संकलन एवं विस्तार में बहुत सहायता मिल सकती है। अग्रवालजी ने लोक-शब्दों को साहित्य में स्थान दिया और उनका उद्धार किया। यही कारण था कि आप अपनी लोक-परक दृष्टि के लिए सुप्रसिद्ध थे और रहेंगे। जो शब्द एक बार साहित्य-मन्दिर में प्रवेश कर जाता है वह फिर अमर हो जाता है। अग्रवाल जी की लोक-शब्दावली में प्रयुक्त—ठाठ, झंझट, टिक आदि—ऐसे ही शब्द है जिनका उनके साहित्य में मात्रा में प्रयोग हुआ है। साहित्य में लोक-शब्दावली का प्रयोग अग्रवाल की शैली की विशेषता है। लोक बोली जितना माधुर्य, अर्थगरिमा एवं रागात्मकता का भाव है उतना शायद ही अन्यत्र हो।

आपके साहित्य में जहाँ भाषा की सरलता, शब्दों की सजीवता है वहाँ प्रसंगानुसार वाक्यों का स्वरूप भी लघु एवं दीर्घ है। जहाँ एक ओर केवल पाँच शब्दों का वाक्य है वहाँ दूसरी ओर पाँच-पाँच पंक्तियों के भी वाक्य हैं।

"यही जीवन का विधान है।" —(माता भूमि)

"कहा जाता है कि जब उनको 'संबोधि' प्राप्त हो गई तो मार या कामदेव चकनाचूर होगया किन्तु चलते-चलते उसने उन्हें एक चकमा और देना चाहा, और बुद्ध के मन में यह विचार उत्पन्न किया कि उस ज्ञान को अपने ही तक सीमित रखो, मनुष्यों को इसे बांटने से कोई लाभ नहीं।" —(बोधिसत्व)

श्रद्धेय अग्रवालजी अध्ययनशील सरस्वती के उपासक थे। वह कर्मठ थे। ये अध्ययनशील मनीषी अपने छात्रों को भी सच्ची अध्ययनशीलता की प्रेरणा देते थे। अनेक विदेशी शोधार्थी उनकी ज्ञान-गरिमा से लाभान्वित होने के लिए उनके पास आये और उन से मार्ग-दर्शन प्राप्त किया। आप शोधार्थी को ऐसी दिशा—संकेत ही करते थे कि शोधार्थी अन्वेषक की भाँति अपने अध्ययन में एकाकार हो जाता था। प्रकाण्ड पण्डित डा० अग्रवालजी ने अनेक ज्ञान-दीप 'ग्रन्थों' के रूप में शारदा-मन्दिर को अर्पित किये।

आपका जन्म तो सरस्वती की सेवार्चना के लिए ही हुआ था। आपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक पूर्ण मनोयोग से साहित्य-सेवी का कर्त्तव्य निभाया। आपके मन-मस्तिष्क से भारत के अतीत गौरव के प्रति अगाध श्रद्धा एवं सहानुभूति की गंध टपकती थी। आप आन्तरिक और बाह्य सभी दृष्टियों से भारतीय थे। अत्यन्त शोक का विषय है कि वह पंचतत्व निर्मित भौतिक शरीर आज हमारे मध्य में नहीं है। परन्तु उस दिवंगत का यह शरीर युग-युगान्तर तक प्रत्येक ज्ञान क्षेत्र के निवासी के लिए श्रद्धा एवं गौरव का प्रतीक बना रहेगा। जब तक वह साहित्य-संस्कृति की धारा इस पुण्यभूमि पर बहती रहेगी, तब तक वह मेधावी मूर्धन्य, सरस्वती-पुत्र श्रद्धा-सम्मान पाता रहेगा। इन शब्दों के साथ स्व० डा० वासुदेवसरणजी अग्रवाल की अमर आत्मा को मेरी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित है।

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की उपेक्षित विधा-निबन्ध

• • •

ब्रह्मस्वरूप शर्मा

किसी भी सभ्य राष्ट्र की सभ्य भाषा की सम्पन्नता का स्तर व्यक्ति की जीवन विषयक अभिव्यक्ति की सुलभता से आंका जा सकता है। सामान्यतः व्यक्ति जीवन के दो पक्षों आध्यात्मिक और भौतिक के समानान्तर चलता हुआ युग विशेष की विशिष्टताओं के कारण किसी पक्ष की ओर अधिक झुक जाता है और दूसरा पक्ष उपेक्षित सा हो जाता है। कविता व्यक्ति के अन्तकरण की भावनामयी अभिव्यक्ति है और गद्य व्यक्ति के अन्तः-करण-स्फुरण का तार्किक विवेचन। यों हृदयगत भावनाओं को साहित्यकार साहित्य की दोनों विधाओं गद्य-पद्य में अपने व्यक्तित्व के मिश्रण से बाँध सकता है किन्तु अभिव्यक्ति की प्रभावोत्पादकता विशिष्ट विधा की अपेक्षा करती है। कविता जड़ लोहे के इंजन को भयङ्कर दैत्य के रूप में ही चित्रित करती है किन्तु कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में वह मानव सहयोगी बनकर अङ्कित होता है। तथाकथित प्रगतिवादी काव्य में संयमी प्रवृत्ति अपनाकर कवियों ने भौतिक वस्तुओं को ललित बनाकर तथा प्रयोगवादी काव्य में उन्हें अवचेतन मन के साथ जोड़कर वर्णन को हृदयंगम् कराने की चेष्टा की है किन्तु समस्या निरूपण जितना सुन्दर गद्य-काव्य में बन पड़ा है उतना पद्य-काव्य में नहीं। उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि गद्य की विधाएं भौतिक जीवन की सफल अभिव्यक्ति कर सकती हैं। निबन्ध अन्य विधाओं की विशिष्टताओं से युक्त भाषा सम्पन्नता सम्बन्धी अपनी विशिष्टता रखता है। किसी भी भाषा की सम्पन्नता का स्तर निबन्ध-साहित्य की प्रौढ़ता से आंका जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है—"पद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की। उनके इस कथन से ही निबन्ध-साहित्य का महत्व स्पष्ट हो जाता है। आज के भौतिकता प्रधान जीवन की नित्य बनती मिटती समस्याओं के विवेचन में निबन्ध ही अभिव्यक्ति की शक्ति है। आधुनिक संसार की प्रायः समस्त सम्पन्न भाषाओं की सम्पन्नता का कारण उनका प्रौढ़ निबन्ध साहित्य है। विश्व भाषा अंग्रेजी की सम्पन्नता शेक्सपियर, मिल्टन से ही नहीं, बेकन, एडीसन, स्टील, लैम्ब आदि निबन्धकारों से भी है। कला प्रेमी जापानियों ने निबन्ध को क्लिष्ट विधा न मानकर उसमें मानव-जीवन की सरस अभिव्यक्ति करके भाषा और साहित्य दोनों के स्तर को बढ़ाया है।

हिन्दी में निबन्ध रचना भारतेन्दु युग की देन है। भारतेन्दु काल के लेखकों ने सुन्दर ललित निबन्धों की रचना की है। इस काल के दो प्रमुख निबन्धकार प्रताप नारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट अपनी निजी विशेषता लेकर इस क्षेत्र में आये। श्री मिश्र का निबन्ध साहित्य हास्य-व्यंग्य और चुहल की पिटारी है और श्री भट्ट का गम्भीर किन्तु मनोहारी। श्री भट्ट को निःसंकोच हिन्दी-साहित्य का लैम्ब कहा जा सकता है। भारतेन्दु-युग गद्य विधाओं का सृजन-काल था। अपने आदिकाल में साहित्य की कोई भी विधा परिपक्वता को प्राप्त नहीं कर सकती किन्तु निबन्ध विधा ने इस काल में परिपक्वता नहीं तो विशिष्टता अवश्य प्राप्त करली थी। निबन्ध अपने सही अर्थ में निबन्ध बनकर छपने लगे थे। निबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रमुख विशेषता-व्यक्तित्व की प्रधानता-इस युग के निबन्ध साहित्य में स्पष्टतः झलकती है। लेखक अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर रचना संलग्न होता है और साधारण से साधारण विषय को रोचक बना देता है। भारतेन्दु युग की यह परम्परा द्विवेदी युग में आकर शिथिल सी हो जाती है। द्विवेदीजी ने स्वयं निबन्ध साहित्य की ओर ध्यान दिया किन्तु वे साज-सँवार में ही अधिक उलझे रहे, विधा में नवीनता नहीं ला पाये। द्विवेदी युग सामाजिक समस्याओं के विवेचन का युग था। इस युग के निबन्धकार तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में सम सामयिक समस्याओं पर लिखा करते थे। इस प्रकार की रचनाओं में निबन्ध के गुण कम तथा लेख के गुण अधिक हैं। निबन्ध विधा में जो मस्ती भारतेन्दु युग में दिखाई दी वह अब पंगु सी हो गयी। अब उसमें बौद्धिकता अधिक आ गयी तथा हार्दिकता चली गयी। भारतेन्दु युग में विषय वैविध्य था तथा इस युग में साहित्यिकता। द्विवेदीजी के 'ज्ञानराशि के सचित कोष का नाम ही साहित्य है।' विश्वासानुसार निबन्धकार साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति आदि से समस्या ग्रहण करके लिखा करते थे। विविधता इस युग की तथा उपदेशात्मकता इस युग के निबन्धों की विशेषताएँ थीं।

निबन्ध साहित्य का तीसरा रूप शुक्ल-युग में दिखाई देता है। शुक्लजी हिन्दी में शीर्ष स्थान के निबन्धकार हैं। निबन्ध द्वारा हिन्दी आलोचना का विकास शुक्लजी द्वारा ही होता है। शुक्लजी जीवन से अध्यापक मस्तिष्क से आलोचक और हृदय से कवि थे। उन्होंने विविध विषयों पर लेखनी चलाई। 'चिन्तामणि' में संग्रहित मनोवैज्ञानिक निबन्धों में उनके निबन्धकार तथा 'त्रिवेणी' में सग्रहित सूरदास, तुलसीदास और जायसी निबन्धों में उनके आलोचक के दर्शन होते हैं। शैली की दृष्टि से भी शुक्लजी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः शुक्लजी के आविर्भाव से हिन्दी निबन्ध साहित्य को नवीन दिशा का ज्ञान हुआ। हिन्दी निबन्ध साहित्य में तन्मयता लाने का श्रेय शुक्लजी को ही है। शुक्ल युग के अन्य निबन्धकार गुलाबराय, शांतिप्रिय द्विवेदी, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी हैं। गुलाबराय के निबन्धों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आलोचक गुलाबराय में संग्रह की प्रवृत्ति दीख पड़ती है किन्तु निबन्धकार गुलाबराय में यत्र-तत्र मौलिकता के दर्शन हो जाते हैं। शुक्ल युग में निबन्ध साहित्य की रचना दो रूपों आलोचना और मौलिक में होती रही। द्विवेदी युग की भाँति इस युग में विषय वैभिन्य नहीं अपितु शैली भेद देखा जाता है। आलोचना और मनोविज्ञान ही शुक्लजी के निबन्ध विषय रहे हैं।

शुक्लोत्तर युग में निबन्ध का प्रमुखतः रूप आलोचनात्मक रहा है। आलोचनात्मक निबन्ध साहित्य ही इस युग में निबन्ध विधा का पर्याय बन गया है। इन निबन्धों में निबन्ध के गुण कम और लेख के गुण अधिक होते हैं। वस्तुतः निबन्ध विधा में अनिश्चितता इन्हीं निबन्धों के कारण उत्पन्न हुई। निबन्ध की निश्चित परिभाषा सदैव जटिल समस्या रही है किन्तु आलोचनात्मक लेखों को भी निबन्ध मान लेने से यह समस्या और भी उलझ गयी है। आलोचना शुद्ध साहित्यिक विधा है या नहीं, इसमें भी मतभेद दिखाई देता है। वर्तमान निबन्ध साहित्य प्राध्यापकों द्वारा कक्षा में दिये गये भाषणों का किंचित परिवर्तित रूप है। समालोचना के परिवर्तित पैमानों ने निबन्ध, लेख, आलोचना, भाषण, साहित्यिक वार्ता आदि साहित्यिक अंगों को मूलतः अथवा किंचित परिवर्तन के साथ निबन्ध मान लिया है। निबन्ध का प्रमुख 'व्यक्तित्व की प्रधानता' इन निबन्ध कही जाने वाली साहित्यिक रचनाओं में लुप्त प्राय होता है। यह सत्य है कि युग प्रवृत्ति के अनुसार साहित्य के किसी भी अङ्ग की निश्चित परिभाषा में व्यवधान आ जाता है किन्तु मूल की अवहेलना तो उसे भिन्न अङ्ग में ही ला बैठायेगी। प्रयोगवादी कविता ने कविता की परम्परागत मान्यताओं छन्द, लय, ध्वनि की अवहेलना करके भी मूल प्रभावोन्विति की रक्षा की है। अतः कविता कही जाती है। आलोचनात्मक लघु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाओं में यदि संग्रह की ही प्रवृत्ति रहे तो वे लेख ही कहे जाने चाहिए, निबन्ध नहीं । किसी कवि या युग की प्रवृत्ति पर दो-चार पुस्तकें पढ़कर उधार लिए विचार प्रगट कर देना निबन्ध रचना नहीं—साहित्यिक लेख लिखना है । निबन्धकार के लिए सर्वाधिक आवश्यक बात है—परम्परागत विचारों को पचाना और व्यक्तित्व के मिश्रण से उन्हें नवीन बनाकर प्रगट करना ।

वर्तमान आलोचनात्मक निबन्ध साहित्य इतना अधिक है कि उसे निबन्ध स्वीकार न करने पर हिन्दी में निबन्ध साहित्य कहे जाने के लिए थोड़ी-सी रचनायें रह जाती हैं । स्पष्टीकरण के लिए बालकृष्ण भट्ट और साहित्यिक पत्रिकाओं में आलोचनात्मक रचनायें प्रकाशित करने वाले किसी भी प्राध्यापक-आलोचक को ले लीजिए । पहले में मौलिकता पायेंगे, दूसरे में विवेचना । यद्यपि मौलिकता विवादास्पद विषय है किन्तु यहाँ मौलिकता से तात्पर्य साहित्यकार की मूल रचना-शक्ति, जिसे दैवीय शक्ति या प्रतिभा कहा जाता है, से है । आलोचना और निबन्ध आज इतने निकट आ गये हैं कि दोनों में भेद नहीं माना जाता। साहित्य की अन्य विधाओं में इतनी पारस्परिक निकटता नहीं दिखाई देती। यही कारण है कि आज का निबन्धकार आलोचक भी है और आलोचक निबन्धकार भी । साहित्यिक वर्गों में साहित्यिक विषयों पर विद्यार्थी जो लिखते हैं वह भी निबन्ध है और प्राध्यापक जो बोलते हैं वह भी निबन्ध है । इतना ही नहीं विद्वान आचार्यों द्वारा यत्र-तत्र साहित्यिक गोष्ठियों और सम्मेलनों में दिये गये भाषण भी सम्बोधन और धन्यवाद की पंक्तियों को छोड़कर निबन्ध नामकरण सहित पत्रिकाओं या पुस्तकों में छाप दिये जाते हैं । अब वह समय भी दूर नहीं जब कृतियों की प्रस्तावना और भूमिकाएँ भी निबन्ध मान ली जाएँगी । हिन्दी-साहित्य अनुसन्धान का बहुमुखी विकास एक दिन यह भी सिद्ध कर देगा कि परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा दिये गये प्रश्नों के उत्तर भी निबन्ध हैं ।

सम्प्रति हिन्दी में आलोचनात्मक निबन्ध साहित्य का ही सृजन हो रहा है । विद्यार्थियों की रचना पढ़ाने के लिए विभिन्न विषयों पर संग्रहित लेख पुस्तकाकार निबन्ध नामाङ्कन सहित प्रकाशित हो रहे हैं । आलोचनात्मक निबन्धों में उदाहरण प्रस्तुत करने की इतनी अधिक प्रवृत्ति है कि लेखक अपनी ओर से कम कहता है, मूल के रचयिता से अधिक कहलाता है । स्थूल रूप से देखने पर प्रायः प्राध्यापक जो साहित्यिक वर्गों में निश्चित दिन के लिए निश्चित विषय सामग्री संकलन करके भाषण देते हैं - किंचित परिवर्तन के साथ उसे निबन्ध का रूप दे देते हैं । यह अनिवार्य नहीं कि निबन्ध में उदाहरण होने ही नहीं चाहिए । लेखक मत-पुष्टि के लिए उदाहरण जुटा सकता है किन्तु अधिकाधिक प्रस्तुत-प्रवृत्ति शोभनीय नहीं । निबन्धकार से आशा की जाती है कि वह अपने विचारों को प्रगट करे । सामग्री सङ्कलन लेख या समीक्षा का गुण है. निबन्ध का नहीं । डा० नगेन्द्र की कुछ आलोचनात्मक रचनाएँ निबन्ध कही जा सकती हैं । उनकी 'अनुसन्धान और आलोचना' नाम्नी रचना में दो भिन्न पद्धतियों का इस सन्तुलन से वर्णन किया गया है कि पाठक लेखक के स्पष्टीकरण पर मोहित हो जाता है । डा० सत्येन्द्र ने अपनी दो वार्ता रचनाओं—जिनमें वे स्वयं तथा बाबू गुलाबराय छायावाद के पतन पर चर्चा करते हैं—को भी समस्या प्राधान्य के कारण निबन्ध संज्ञा दी है । इस युग के अन्य प्रमुख आलोचनात्मक निबन्धकार हैं—शान्तिप्रिय द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामविलास शर्मा, डा० शिवदानसिंह चौहान, डा० विजयेन्द्र स्नातक । इन लेखकों के निबन्ध समय-समय पर साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं । डा० सत्येन्द्र, डा० नगेन्द्र डा० विजयेन्द्र स्नातक आदि लेखकों के आलोचनात्मक निबन्ध पुस्तकाकार से प्रकाशित हो चुके हैं ।

सम्पूर्ण हिन्दी निबन्ध साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने से विदित होता है कि उसका विकास एकांगी हुआ है । साहित्य की अन्य विधाओं में एक ही समय विविधता दिखाई दे सकती है किन्तु निबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक समय एक ही प्रवृत्ति रही। उनका रुझान एक ही ओर रहा। समय विशेष में एक ही पक्ष को ग्रहण करने के कारण उसमें सम्पूर्ण मानव-जीवन की झलक नहीं है। भारतेन्दु युग के निबन्धों में जो चुहल दिखाई देती है। वह द्विवेदी युग या शुक्ल युग में निबन्धकार विभिन्न शास्त्रों के विभिन्न विषयों पर लेखनी चलाते रहे। वे विषय को प्रस्तुत ही करते हैं उसमें मौलिकता नहीं ला पाते। उनमें नवीन विषयों पर नवीन प्रणाली से विचार कर समग्र मानव-जीवन का चित्रण करने की शक्ति नहीं। शुक्ल युग में भी निबन्ध साहित्य में विविधता न आ सकी। शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों को यदि इस युग से भिन्न कर देखें तो गुलाबराय के कुछ निबन्धों के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता। शुक्ल युग विचारों का युग था। निबन्धकार समस्या को उठाता है और समाधान के उपाय खोजता है। दूसरे शब्दों में अपने मत की पुष्टि के लिए प्रमाण प्रस्तुत करता है। बाबू गुलाबराय, शुक्लजी, जैनेन्द्रकुमार, राहुल सांकृत्यायन को छोड़कर अन्य अपेक्षाकृत आलोचक ही हैं। शुक्लोत्तर युग तो आलोचना का ही युग है, अपवाद स्वरूप एक दो कृतियाँ ही ऐसी मिलती हैं जिन्हें शुद्ध निबन्ध कहा जा सकता है। संक्षेप में, भारतेन्दु युग का लालित्य परवर्ती युगों में दिखाई नहीं दिया। निबन्ध साहित्य के आदि युग में ही ललित निबन्ध रचना की प्रवृत्ति समाप्त हो गयी।

निबन्ध साहित्य के एकपक्षीय विकास का प्रधान कारण लेखकों की अदृढ़ता है। भारतेन्दु युग के निबन्धकार ही निबन्ध क्षेत्र से अपने को निकालने लगे थे। निबन्ध की क्लिष्टता उसके विकास में दूसरी बाधा है। यों निबन्ध इतनी क्लिष्ट रचना नहीं किन्तु लेखक इसे क्लिष्ट बना देते हैं। लेखक में जब पाण्डित्य प्रदर्शन प्रधान हो उठता है तब वह मूल को छोड़कर डाली और पत्तियों की साज सँवार में ही अपनी शक्ति का अपव्यय करने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि पाठक को रस नहीं मिलता और शब्दों की उलझन में पड़कर वह स्थिरता खो बैठता है।

कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि में कथा-प्रवाह के कारण पाठक को आगे जानने की जिज्ञासा स्वतः रहती है। किन्तु निबन्ध में यह जिज्ञासा जाग्रत करनी पड़ती है। निबन्ध में विवेच्य प्रथम पंक्ति में ही स्पष्ट हो जाता है। यहीं लेखक की कुशलता की परीक्षा होती है। उसे पाठक को अपने साथ अन्तिम पंक्ति तक रखना पड़ता है। विद्यार्थी परीक्षा की दृष्टि से आलोचनात्मक निबन्धों को रस मिलने या न मिलने पर भी पढ़ जाएँगे किन्तु सामान्य पाठक रस के अभाव में कृति की ओर देखेगा भी नहीं। निबन्ध में लालित्य का होना अनिवार्य गुण है। आज निबन्धकार को निबन्ध के लिए पाठक उत्पन्न करने हैं। यह तभी हो सकता है जब उसमें रुचि उत्पन्न की जाए। मैंने प्रेज़ीडेन्सी कालेज, मद्रास में बी० ए० (हिन्दी) के छात्र-छात्राओं पर निबन्ध सम्बन्धी एक प्रयोग किया था। उन्हें दस प्रश्नों के उत्तर लिखने को कहा। वे प्रश्न परस्पर सम्बद्ध थे। मुझे मेरा उत्तर मिल गया था। चालीस विद्यार्थियों में से एक ने भी निबन्ध में अपनी रुचि नहीं दिखाई थी। जब साहित्यिक वर्ग के विद्यार्थी उपन्यास, कहानी, नाटक या कविता में रुचि रखते हैं तो सामान्य पाठक से निबन्ध पढ़ने की आशा नहीं की जा सकती। सेठजी दूकान की थली पर बैठे कहानी ही पढ़ेंगे, निबन्ध नहीं। पति के कार्यालय चले जाने पर पत्नी दिन को उपन्यास पढ़ने ही में बिताएगी, नीरस निबन्ध में माथा नहीं खपायेगी।

मेरे प्रयोग का निष्कर्ष निकला कि निबन्धकार सामान्य पाठक की रुचि का निबन्ध साहित्य प्रस्तुत नहीं कर पाया है। उसने गम्भीर विषयों को गम्भीरता से ही प्रगट किया है, सामान्य विषयों को सरसता से नहीं। अंग्रेजी में जिन्हें 'पर्सनल ऐसे' कहा जाता है, ऐसे निबन्ध हिन्दी में दो-चार ही मिलेंगे। यदि वहाँ बेकन के 'आन यूथ' 'आन स्टडीज' हैं तो लैम्ब, एडीसन, स्टील, कूपर, हैजलिट के सरस निबंध भी हैं। गम्भीर निबन्धों से ऐसे निबन्धों की संख्या अंग्रेजी में अधिक ही है। हिन्दी में आज उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी, नाटक का प्रकाशन धड़ाधड़ हो रहा है किंतु निबन्ध कृति देखने में यदा-कदा ही आती है। विश्व विद्यालयों में 'चिन्तामणि' ही युगों से पढ़ायी जाती रही है उसकी टक्कर की कृति अभी नहीं आई। 'अशोक के फूल' अभी तक हिन्दी का शृङ्गार करते रहे हैं किन्तु नये पुष्प वेणी में नहीं गूँथे गये। जैनेन्द्र राहुल आदि कृतिकारों ने अपने मत की पुष्टि के लिए निबन्धों को संग्रह में बाँध दिया किन्तु नयी मेधा 'संग्रह' लेकर नहीं आई। हिन्दी आज जिस गौरव के आसन को ले रही है उसकी शोभा के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसका गद्य साहित्य प्रौढ़ हो। यह अधिकाधिक सुन्दर निबन्ध रचना से ही सम्भव हो सकता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह युग विचारों का है और विचारों को प्रगट करने का सीधा माध्यम निबन्ध ही है। किन्तु विचारों को थाली में परोसे भोजन की तरह कृति में प्रस्तुत कर देना ही लेखक की मुक्ति नहीं उसे भूख-रुचि उत्पन्न करनी है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कृतिकार मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर सम्पूर्ण मानव जीवन का चित्रण करें। उसकी दृष्टि समग्र पर रहनी चाहिए। व्यष्टि में समष्टि ही नहीं सृष्टि को लेकर चलना आज के साहित्यकार का धर्म है। हिन्दी की अन्य विधाओं में यह प्रवृत्ति दर्शित हो जाती है किन्तु निबन्ध नितांत उपेक्षित है। क्या आज के मात्र तथ्य को उपस्थित कर देने के उद्देश्य से अनुसंधान-उपाधि उत्सुक प्रांध्यापक आलोचक इस उपेक्षित विधा का किंचित शृङ्गार कर सकेंगे?

—हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज
कडलूर (मद्रास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के नवोन्मेष में पं० रामनरेश त्रिपाठी का मौलिक योगदान

श्री अनिलकुमार उपाध्याय

स्वर्गीय पं० रामनरेश त्रिपाठी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एक ऐसे कवि और लेखक के रूप में अवतरित हुआ जो न केवल अपनी कृतियों के बल पर आगे बढ़कर जनता की सेवा करना चाहता है, अपितु स्वयं आन्दोलनों में भाग लेकर एक हाथ में लेखनी और दूसरे में तलवार की उक्ति को चरितार्थ करता है। उनका आविर्भाव हिन्दी के उस आरम्भिक काल में हुआ जब वह अपने खड़ी बोली रूप के लिए ब्रजभाषा से संघर्ष कर रही थी और भारतेन्दु एवं उनके समकालीन अन्य कवि तथा लेखक ब्रजभाषा को प्रश्रय प्रदान कर चुके थे और कविता के लिए उसे ही एकमात्र भाषा स्वीकार कर चुके थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने अथक परिश्रम से खड़ीबोली को जो गरिमा प्रदान की उसे परिष्कार के साथ आगे बढ़ाने में त्रिपाठीजी का योगदान अभूतपूर्व कहा जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि त्रिपाठीजी द्विवेदी मण्डल से बाहर उन कवियों में थे जो अपनी मौलिकता से काव्य का सृजन कर रहे थे तथा जिनका झुकाव एक नवीन दिशा की ओर था। खड़ीबोली को साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर उन्होंने हिन्दी के विकास में जिन मौलिक उद्भावनाओं की सृष्टि की उनका प्रकटीकरण उनकी कृतियों के माध्यम से हुआ, फलस्वरूप उनकी कृतियाँ, विशेषत: काव्यकृतियाँ, मौलिक-नूतन तथा स्वतन्त्र परीक्षणों के समन्वय के कारण समृद्ध होकर एक नयी दिशा प्रदान करने में समर्थ सिद्ध हुईं। इनके आविर्भाव के समय शैलीगत तथा विषयगत रूढ़ियों के बन्धन में बँधकर साहित्य में मौलिकता लुप्तप्राय: हो चली थी एवं इस क्षेत्र में प्राय: लोग परिपाटी में बँधकर चलना ही अपना धर्म समझ बैठे थे। त्रिपाठीजी साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान करने के लिए छटपटा उठे, परिणामस्वरूप जब उनकी स्वतन्त्र, मौलिक अनुभूतियाँ आगे चलकर साहित्य में प्रकट हुईं तब लोगों का ध्यान स्वत: ही इनकी ओर आकृष्ट हुआ तथा समाज में ये रचनाएँ आदृत हुईं। रीतिकालीन परिपाटी का जो अंश भारतेन्दु काल में प्रवाहित हो रहा था, त्रिपाठीजी ने उसे ग्रहण नहीं किया और मानवतावादी विचारधारा को अपनाकर उन्होंने जिस नये काव्य का सृजन किया वह पूर्णतया स्वच्छन्दतावाद की ओर उन्मुख था।

काव्य के क्षेत्र में इनकी मौलिकता को परिलक्षित करने के लिए इनके तीन खण्डकाव्य—मिलन, पथिक और स्वप्न यथेष्ट हैं। जिस समय त्रिपाठीजी ने इन खण्डकाव्यों की रचना की उस समय क्षेत्र विशेष में प्रौढ़ प्रायोगिक कृति के दर्शन नहीं होते। इस प्रकार नवीनता की दिशा में बढ़ते हुए इनके खण्डकाव्यों को इस प्रकार का प्रथम प्रयोग माना जा सकता है। इन खण्डकाव्यों में जिस नवीन दृष्टि का प्रतिपादन हुआ है वह तत्कालीन वातावरण से उद्भूत प्रतीत होती है।

विषय की दृष्टि से इन्हें नितान्त नवीन कहा जा सकता है। जहाँ रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार भारतेन्दु काल तक राधा-कृष्ण को ही प्रधान पात्र के रूप में चित्रित करने की प्रथा चली आ रही थी, काव्य के विषय केवल विख्यात कथाओं पर ही आधारित होते थे, वहाँ त्रिपाठीजी ने नितान्त नवीन और मौलिक कथाओं की सृष्टि की। यद्यपि ये कथाएँ काल्पनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तथापि युग-बोध की छाप से अनुवेष्ठित होने के कारण इनकी उपादेयता बहुत बढ़ जाती है। जहाँ पूर्व प्रणीत काव्यों में शृङ्गार की भावना अश्लील धरातल तक पहुँच जाती थी वहाँ त्रिपाठीजी के काव्यों में शृङ्गारपरक रचनाएँ मर्यादित हैं। इन्होंने एक विद्रोही कवि की भाँति पूर्ववर्ती परिपाटी को तोड़कर पूरे समाज और सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधियों को अपने काव्य में स्थान दिया। उनके काव्य में समाज की प्रायः सभी समयोचित आवश्यकताओं का अङ्कन देखा जा सकता है। अपने गद्य के माध्यम से भी उन्होंने सामयिकता का सफल चित्रण किया और किसी न किसी समस्या को उभारने की चेष्टा भी की। अपने 'वफाती चाचा' नामक बाल नाटक में उन्होंने अपनी हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को जो सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है वह द्रष्टव्य है।

उनके काव्य में विलाप युक्त प्रेम का चित्रण नहीं मिलता। प्रेम के उस रूप का चित्रण करना उनका उद्देश्य रहा है जो देश प्रेम की भावना से आगे बढ़े और मातृभूमि की रक्षा में जिसकी अन्विति हो। उनके खण्ड-काव्यों में नायक-नायिकाओं के माध्यम से प्रेम के इस रूप के स्पष्ट चित्रण स्थल-स्थल पर मिलते हैं। काव्य में उन्होंने यद्यपि प्राचीन और प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है, पर उनकी भावनाएँ नितान्त नवीन हैं। प्राचीन परिपाटी की रूढ़ि से बाहर निकल कर त्रिपाठीजी ने अपनी मौलिक सृजन शक्ति का जो प्रदर्शन किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन्होंने अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रयोग किये, और कालांन्तर में ये ही परवर्ती साहित्यकारो के लिए पथ प्रदर्शक के रूप में सिद्ध हुए। भाषा की दृष्टि से इनका साहित्य खड़ी बोली को ही आधार बना कर चला है। खड़ी बोली की प्रायोगिक अवस्था को इन्होंने नवीन रूपों से संयोजित कर प्रस्तुत किया। त्रिपाठी जी ने खड़ीबोली का सरल और सुपरिमार्जित रूप अपनाकर इसे समृद्ध बनाया तथा ब्रजभाषा के विकल्प के रूप में इसे प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया।

प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी त्रिपाठीजी ने नवीनता का सूत्रपात किया। उनके पूर्व विरचित काव्यों में वर्णित प्रकृति प्रायः पात्रों से सम्बन्धित एवं रूढ़ि के रूप में चली आ रही थी। कवि प्रकृति का चित्रण प्रायः आलम्बन रूप में करते चले आ रहे थे। त्रिपाठीजी ने इस दिशा में बहुत आगे बढ़कर अपने चित्रण प्रस्तुत किये। उन्होंने प्रकृति को बहुत समीप से देखा, तथा उसके स्वरूप एवं वातावरण को उसके स्वाभाविक रूप में ही चित्रित किया, यही नहीं, उन्होंने प्रकृति का मानव हृदय से तादात्म्य स्थापित कर उसका मानवीकरण भी प्रस्तुत किया। प्रकृति के सरस वर्णन के उद्देश्य से इन्होंने भावों और घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में भी इसका वर्णन किया, जो अत्यन्त स्वाभाविक है। प्रकृति के माध्यम से इन्होंने अनेक मानवीय भावनाओं का प्रकाशन किया है। उनके प्राकृतिक चित्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने मानव के आन्तरिक सौन्दर्य को समझा है और उसके चित्रण की उनमें अदम्य उत्कण्ठा है। प्रकृति को अति समीप से देखने के कारण ही उनमें यह विशेषता परिलक्षित होती है कि उनकी काव्य रचनाओं में प्रकृति की रूपात्मक सुषमा की छटा चित्रित है, जो मनोहारी होने के साथ ही साथ नवीन भी है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' में उन्हें प्रथम राष्ट्रीय कवि स्वीकार करते हैं। आधुनिक काल में राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक के रूप में भी त्रिपाठीजी एक नयी विभूति के रूप में अवतरित हुए थे। उनके साहित्य में प्रथम बार जिस मौलिकता से राष्ट्रीयता का उद्बोधन देखने को मिला, वह नितान्त नवदृष्टि युक्त था। इनकी राष्ट्रीय भावनाओं की सर्वाधिक प्रशंसनीय विशेषता यह थी कि यह सामान्य जन की इस भावना के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं का भी प्रतिनिधित्व कर रही थी; फलस्वरूप सभी इससे आकृष्ट हुए और त्रिपाठीजी द्वारा अपनाए गए मार्ग 'गांधीवाद' को अङ्गीकार कर अन्त में स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हुए। इस भावना के अन्तरतम में निहित मानवता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद ही त्रिपाठीजी की सबसे बड़ी विभूति एवं प्रदाप्ति कही जा सकती है। इस सन्दर्भ में उन्होंने अगर कहीं कहीं भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप का वर्णन किया है तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उन्होंने आधुनिकता से मुख मोड़ना चाहा है, अपितु उन्होंने स्वर्णिम अतीत के माध्यम से आधुनिक युग की राष्ट्रीयता को मुखरित करने का प्रयास किया है। देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की इस भावना को एक नवीन-दृष्टि प्रदान करने हेतु ही उन्होंने परिपाटी और रूढ़ियों से हटकर नवीन प्रयोग किये, तथा नितान्त कल्पित पात्रों और कथाओं के माध्यम से उन्होंने अपने खण्ड काव्यों को सजा कर उनके माध्यम से राष्ट्रीय जाग्रति को एक नूतन स्वरूप प्रदान किया। उनके तीनों खण्ड-काव्यों—मिलन, पथिक और स्वप्न में उनको मौलिक उद्भावनाएँ देखी जा सकती हैं। त्रिपाठीजी गांधीजी से अत्यधिक प्रभावित थे और उनके साथ रहे भी थे। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में गांधीजी के प्रभाव से उत्पन्न भावनाओं का प्रकटीकरण यद्यपि अपने काव्यों में अनेक कवियों ने किया, पर त्रिपाठीजी की अपनी एक विशिष्ट महत्ता रही है, जो उन्हें सर्वोपरि सिद्ध कर देने में समर्थ है। जहाँ अन्य कवियों ने अपनी काव्य-विषयक भावभूमि का परम्परागत प्रचलित रूपके अनुसार चयन किया। वहाँ त्रिपाठीजी ने जिन नवीन काल्पनिक कथाओं एवं पात्रों की योजना की वे हमारे जीवन के यथार्थ, प्रतिनिधि थे तथा उनमें हमारे जीवन की अधिकांश अनुभूतियां एवं स्पंदन संचित थे। जन-जीवन के भावों को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयत्न त्रिपाठीजी ने ही किया। व्यष्टि प्रेम और समष्टि प्रेम के रूप में राष्ट्रप्रेम के बीच उठने वाले द्वन्द्व का जो चित्रण त्रिपाठीजी ने किया है वह इस काल में अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए इस क्षेत्र में त्रिपाठीजी को अगर मानव-भावनाओं का कुशल चितेरा कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

त्रिपाठीजी के साहित्य का एक विशेष पक्ष उनके द्वारा लिखित तथा संपादित बाल-साहित्य के रूप में उपलब्ध है। इस समय तक किसी ने भी बाल-साहित्य पर यथोचित ध्यान नहीं दिया था। इन्होंने बच्चों की भावनाओं का सूक्ष्म अध्ययन कर, उनकी रुचि के अनुरूप अनेक कहानियाँ लिखीं तथा अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया। इस क्षेत्र में उनकी अद्वितीय और नितान्त नवीन देन 'हिन्दी-महाभारत' जिसका सम्पादन उन्होंने बालकों की दृष्टि से किया था, उल्लेखनीय है। हिन्दी में बालकों की दृष्टि से महाभारत का सम्पादन सर्वप्रथम इन्होंने ही किया। इस को सरल भाषा तथा उपदेशात्मक रूप में सजाकर इन्होंने इसकी समयोचित उपयोगिता बढ़ा दी है। हिन्दू-मुसलिम एकता की भावना, बालकों में भरने के लिए उन्होंने 'बफाती चाचा' नामक बाल नाटक की रचना की जो बड़ा जनप्रिय हुआ। इस बाल-नाटक में समाविष्ट उनका यह गीत बहुत ही लोकप्रिय हुआ और उस समय प्राय: सभी बच्चों की जबान पर इस की पंक्तियाँ रहती थीं—

हाँके चलो, हाँ रे, हाँके चलो,
गांधी बाबा की गाड़ी हाँके चलो ॥

इस सन्दर्भ में एक बात विशेष उल्लेखनीय है जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करना समीचीन होगा— त्रिपाठीजी द्वारा कहानियों के क्षेत्र में 'आँखों देखी कहानियाँ' के रूप में एक नया प्रयोग ! इस दृष्टि से वे हिन्दी के प्रथम लेखक हैं। उनकी 'आँखों देखी कहानियाँ' अपने ढङ्ग की एक नयी उपलब्धि है। त्रिपाठीजी स्वयं स्वीकार करते थे कि वे हिन्दी के प्रथम लेखक हैं जिन्होंने 'आँखों देखी कहानियाँ' लिखीं। इन कहानियों की विशेषता यह है कि इनकी भावभूमि यथार्थ और सत्य घटनाओं से रंजित है तथा ये किसी न किसी विशिष्टता की ओर संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं। इनमें समाज को ऊपर उठाने का प्रयत्न भी निहित देखा जा सकता है।

बाल-साहित्य के साथ ही साथ इन्होंने ग्राम-साहित्य पर भी कार्य किया। ग्राम-साहित्य पर इनके परिश्रम और योगदान का ऐतिहासिक महत्त्व है। इन से पूर्व इस पर वैज्ञानिक ढङ्ग से किसी ने भी कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। इस क्षेत्र का सर्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक महत्वपूर्ण कार्य है—ग्राम-कहावतों एवं मुहावरों का सङ्कलन ! ये दोनों ही ग्राम-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ग्राम साहित्य को हृदयंगम करने हेतु, ग्रामीणों की भावनाओं का अनुभव करने के अभिप्राय से उनके मानस में पैठने के लिए इनका स्थान अपरिहार्य है, इसे इस क्षेत्र का पथ-प्रदर्शक कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। हिन्दी में ग्राम-साहित्य के परिचय देने वाले वे ही पहले व्यक्ति हैं। जिसने इस क्षेत्र का प्रथम बार सांगोपांग वर्णन उपस्थित किया। एक बार अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था कि हमारे देश में इसकी प्रगति साहित्यिक वैमनस्य के कारण ही नहीं हुई। अपने इस प्रयास के अन्तर्गत उन्होंने कहावतें, मुहावरे, ढकोसले, सखुने, मुकरियों इत्यादि पर कार्य किया। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'ग्राम गीत' तृतीय भाग द्रष्टव्य है।

हिन्दी में लोक गीतों के संग्रह का कार्य भी सर्व प्रथम त्रिपाठीजी ने ही किया। इनसे पूर्व इस क्षेत्र में किसी ने भी कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। इस नितांत अछूते-नवीन क्षेत्र को त्रिपाठी ने अपना कर हिन्दी को समृद्ध कर कृतार्थ कर दिया। त्रिपाठी जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि इस क्षेत्र में उनका कोई पथ प्रदर्शक नहीं था, रास्ता अन्धकारमय था। अपनी लगन के बल पर ईश्वर पर विश्वास कर वे इस क्षेत्र में एक अन्वेषी के रूप में निकल पड़े थे। अथक परिश्रम और लगन से संग्रहीत लोक गीतों की उपलब्धि के अद्वितीय रूप को 'कविता कौमुदी' पाँचवे भाग के रूप में देखा जा सकता है। त्रिपाठी जी ने जिस समय इस नवीन कार्य का बीड़ा उठाया उस समय उनका मार्ग कंटकाकीर्ण था। आज की भाँति उस समय सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं, फलस्वरूप उन्हें प्राय: सभी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १९२५ से १९३५ तक उन्हें प्राय: सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करना पड़ा। वे कश्मीर से लेकर रामेश्वरम् तक भ्रमण करते रहे; उद्देश्य के रूप में उनके सामने केवल दो सूत्र रहते थे—ग्राम गीतों का सङ्कलन और हिन्दी का प्रचार।

इस संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय और प्रेरक है कि वे अधिकांश समय पैदल ही यात्रा किया करते थे। इन गीतों के संकलन हेतु उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि उन्हें किसी भी कष्ट का अनुभव नहीं होता था। रात्रि में वे उस स्थान से कुछ दूर, कभी छिपकर और कभी-कभी सूचित करके हाथ में कागज और लेखनी लेकर बैठ जाते थे, जहाँ गाँव की स्त्रियाँ किसी समारोह आदि के शुभ अवसर पर गीत गाती थीं। उनके गीत चला करते थे तथा त्रिपाठीजी की लेखनी उनसे होड़ लेती सी प्रतीत होती थी। उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटी थीं, जबकि छिपकर बैठने के कारण उन्हें अँधेरे में लोग चोर समझ कर भ्रम वश शोर मचा देते थे। पर जब उन्हें पहचानते थे, या उनका परिचय प्राप्त कर लेते थे तब उनसे माफी माँगने के अतिरिक्त यह भी करते थे कि प्रायश्चितस्वरूप स्त्रियों से उन्हें दो-चार गीत लिखवा देते थे। स्त्रियों द्वारा खेत काटते समय, घुटने भर पानी में खड़े होकर या मेड़ पर बैठकर गीत लिखते जाना, जाँता पीसते समय स्त्रियों के गीत को लिखने के लिए अँधेरे मुँह ही उठ जाना और घर के पीछे अँधेरे में कलम और कागज लेकर बैठ जाना तथा किसी क्षीण प्रकाश रेखा के सहारे उनके गीत को लिपिबद्ध करते जाना उनके प्रतिदिन के कार्यक्रम थे। आलस्य तो जैसे उनमें था ही नहीं, यही कारण है कि प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 'सत्यनारायण कुटीर' में मृत्यु से पूर्व तक वे अपना कार्य बेझिझक स्वयं कर लिया करते थे।

त्रिपाठीजी ने इन लोक गीतों को ग्राम गीत कहना अधिक उपयुक्त समझा और यही कारण है कि उन्होंने अपने अनेक लेखों में इसका परिचय ग्राम-गीत के रूप में ही दिया है। इस कठिन परिश्रम के पीछे प्रमुख रूप से कुछ ऐसी बातें थीं जिनके कारण त्रिपाठीजी इधर उन्मुख हुए। उनके हृदय में देश की ग्रामीण जनता के लिए बहुत स्थान था। ग्राम-गीतों की थातियों एवं उपलब्धियों से वे अत्यधिक प्रभावित थे, फलस्वरूप उनको अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमर कसी और कंटकाकीर्ण मैदान में उतर पड़े। उनको इस बात की विशेष चिन्ता थी कि वे विदेशों में इतने आगे बढ़ने पर भी लोग लोक संस्कृति (ग्राम संस्कृति) का अध्ययन करने में अपना अमूल्य समय नष्ट कर रहे हैं और हम हैं कि अपनी बनी बनाई परिपाटी को नष्ट होते देखकर भी उपेक्षा से मुँह फिरा लेते हैं। उनका ध्यान इस ओर भी गया कि विदेशी शिक्षा और सभ्यता से हमारी परम्परागत मान्यताएँ टूटती चली जा रही है। आखिर इनको पुनर्जीवित करने के लिए कोई कार्य तो होना ही चाहिए क्योंकि इससे ग्राम साहित्य का ह्रास होता है। इन्हीं सबसे प्रेरित हो उन्होंने ग्राम गीतों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया जो ग्रामीणों की भावनाओं के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में गाँवों में प्रचलित थे। इस लगन की पृष्ठभूमि में त्रिपाठीजी की सबसे बलवती भावना यह थी कि एक भारतीय होने के कारण वे अपनी सांस्कृतिक परम्परा को मिटती हुई नहीं देख सकते थे, उसकी रक्षा करना अपना पुनीत दायित्व समझते थे।

इस दृष्टि से उनके कार्यों पर विचार करते समय एक उल्लेखनीय बात यह दिखाई देती है कि उन्होंने गांधीजी के सुझाव से तानसेन, बैजूबावरा इत्यादि के कुछ प्रचलित और शृङ्गारी अश्लील गानों का उसी रूप में स्वर, लय और ताल की दृष्टि से काया-कल्प किया। यह कार्य मुख्य रूप से हिन्दी को लोक-प्रिय बनाने तथा उसके प्रचार एवं प्रसार हेतु किया गया। इसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि देश-वासियों के नैतिक स्तर को उठाने तथा उन्हें हिन्दी की सरलता और बोधगम्यता से परिचित कराने के लिए भी उन्होंने यह प्रयास किया।

गांव का होने के कारण त्रिपाठीजी में वे सभी अनुभूतियाँ स्वतः आ गई थीं जो ग्रामवासियों के अन्तस् में उद्भूत होती हैं। उन्होंने गाँवों को बड़े समीप से देखा था; फलस्वरूप कुशल द्रष्टा की भांति उन्होंने ग्रामीणों की कठिनाइयों का अध्ययन किया। ग्रामीणों की सर्वप्रथम आवश्यकता रहने के लिए घरों की होती है। भारतीय गाँव प्रायः इतने समृद्ध नहीं होते कि सभी सुन्दर-पक्के मकान बनवा सकें; अतएव अधिकांश ग्रामीणों को मिट्टी के कच्चे मकानों में ही अपनी गुजर करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। त्रिपाठी जी ने 'सुखदायक मिट्टी के घर बनाने की कला' पर एक पुस्तक लिखी और इस बात पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला ताकि किसानों की इस समस्या को सुलझाने हेतु मार्ग प्रशस्त किया जा सके। इस प्रयास को पुस्तकाकार देकर उन्होंने मिट्टी के घरों को सुविधा-जनक और सुन्दर बनाने की कला पर प्रकाश डाला और नमूने के गांवों के निर्माण पर भी जोर दिया। गृह निर्माण के साथ ही साथ उन्होंने अपने कुछ लेखों के माध्यम से बागवानी और कृषि कार्य पर भी जोर दिया। वे स्वयं भी बागवानी और कृषि के अनन्य प्रेमी थे, परिणामतः तत्सम्बन्धी उद्गार अनेक स्थलों पर उनके फुटकर लेखों आदि में प्रतिध्वनित हुए।

इन अनेक मूर्त्त प्रयासों के अतिरिक्त हिन्दी के विकास में उन्होंने भ्रमण एवं प्रचार द्वारा भी योग दिया। सन् १९१८ में वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मन्त्री चुने गये और गांधीजी की प्रेरणा से उन्होंने दक्षिण भारत-हिन्दी प्रचार सभा का कार्य सँभाला। जिस प्रकार वे लेखनी में समृद्ध थे उसी प्रकार वाणी में भी समृद्ध थे। वे हिन्दी एवं राष्ट्रीयता के प्रचार हेतु बोलने लगते थे तो बड़ी से बड़ी सभाओं को भी मन्त्र मुग्ध कर अपने वश में कर लेते थे। अहिन्दी भाषियों में भी उनकी ख्याति एक कुशल जादूगर वक्ता के रूप में थी तथा हिन्दी के विरोधी भी उनके वक्तव्य सुनने के लिए दूर-दूर से आते थे।

यद्यपि आज त्रिपाठीजी हमारे बीच नहीं हैं तथापि उनकी कीर्ति उसी भाँति आज भी हमारा पथ प्रशस्त कर रही है। दुख की बात है कि सरकार तथा हिन्दी प्रेमियों ने उन्हें वह स्थान नहीं प्रदान किया जिसके वे वास्तविक अधिकारी थे, पर यह अपरिहार्य तथ्य है कि हिन्दी के विकास के क्षेत्र में उनके इन मौलिक प्रयत्नों का अद्वितीय स्थान है।

—प्राध्यापक, शारदा सदन कालेज, मुकुन्दगढ़ (राज.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

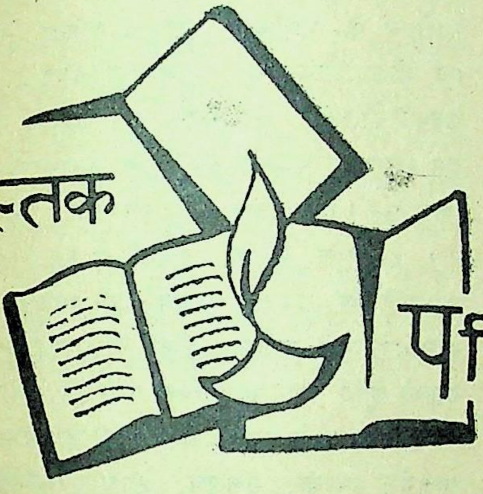

समालोचनार्थ
प्रत्येक पुस्तक
की
दो प्रतियाँ
आनी चाहिये

आलोचना

ब्रज-साहित्य का इतिहास —

ले०—डा० सत्येन्द्र, प्रकाशक—भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद । पृ० ७८१, मूल्य २५.००

हिन्दी साहित्य पर ब्रज-साहित्य का अमिट योगदान है । यदि उसे स्पष्ट रूप से कहा जाय तो हिन्दी साहित्य का मेरुदण्ड ही ब्रज-साहित्य है । क्षेत्र, सीमा, एवं विकास तीनों दृष्टियों से यह अपने को सबसे अलग रखकर अपना महत्व रखता है । डा० सत्येन्द्र ने इसकी महत्ता को देखकर एक बड़े अभाव का पूर्ति की है । क्योंकि अभी तक स्वतन्त्र रूप से ब्रज-साहित्य के ऊपर इतनी अच्छी पुस्तक प्रकाश में नहीं आई थी । छुट-पुट लेखों एवं छोटे-मोटे ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्य न था । मौलिकता तो शायद किसी में भी यथार्थ रूप में नहीं पाई जाती किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में डा० सत्येन्द्र ने ब्रजभाषा के सभी अङ्गों एवं उपांगों का वर्णन किया है और नूतन दृष्टि से अवलोकन करते हुए एक दिशा का भी संकेत किया है ।

ब्रज-साहित्य को तीन कालों में विभक्त किया है; प्रथम आदिकाल, द्वितीय मध्यकाल, तृतीय आधुनिक काल । इन कालों में हुई तमाम राजनैतिक, सामाजिक, एवं ऐतिहासिक घटनाओं को निःसंकोच अपनाया गया है जो कि साहित्य की प्रेरणाओं एवं भावों को समझने के लिए अपेक्षित ही नहीं आवश्यक थी । वास्तव में लेखक ने अपने परिश्रम से ब्रज साहित्य को कसौटी पर कसकर ही हिन्दी साहित्य को यह ग्रन्थ समर्पित किया है ।

ब्रज साहित्य के आदि से आधुनिक काल तक के कवियों, लेखकों, साहित्यकारों का परिचय, उनकी साहित्यिक गति विधियाँ, रचनाएँ उनका महत्व, काल एवं प्रभाव का भी विशद् रूप से वर्णन इसमें से मिलता है । इस ब्रज साहित्य का सम्यक् ज्ञान होने के साथ ही साथ उनकी लोक-प्रियता का भी आभास पाठक को हो जाता है ! ब्रज का जीवन भी कितना उल्लासमय एवं आनन्दप्रद होता है, इसे साहित्य में भी उसी प्रकार पिरोया गया है, प्रकृति के मनमोहक दृश्यों को प्रकृतीकरण करके, साथ ही प्रकृति में मानवीकरण करके साहित्यकारों ने दोनों की उपयोगिता में चार चाँद तो लगाये ही हैं साथ ही उनके वियोग में पाठक को भी तड़पाया है । लेखक इस बात को अच्छी तरह समझ सका है, तभी तो प्रस्तुत ग्रन्थ में उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही रूपरेखा रखकर आकलन किया है।

ब्रज साहित्य में चर्चित सभी सम्प्रदायों का भी अलग-अलग वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है जैसे वल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय आदि। अन्य धर्मों एवं साहित्य पर ब्रज का क्या प्रभाव है, इसे भी पुस्तक में दिखाया गया है। जीवन के प्रत्येक पहलू को लेकर उसका आकलन करना डा० सत्येन्द्र अच्छी तरह जानते हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता एवं पैनी दृष्टि का परिचायक है।

ब्रज साहित्य में गद्य, पद्य, नाटक, कहानी आदि सभी साहित्य विधाओं का प्रणयन हुआ है। इनका यथेष्ट परिचय इस ग्रन्थ में मिल जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रज साहित्य की तमाम बिखरी हुई सामग्रियों का एक जगह क्रमबद्ध एवं आलोचनात्मक रूप में इकट्ठी करके इस ग्रन्थ को उपयोगी बनाया गया है। इस दृष्टि से लेखक निश्चय ही हमारे बधाई का पात्र है। पाठक एवं साहित्येध्येता इससे लाभान्वित होकर ज्ञानार्जन करेंगे।

जैन साहित्य का वृहद् इतिहास (दो भाग)—

लेखक–पं. बेचरदास जोशी (भाग १), तथा डा. जगदीशचन्द्र जैन व डा. मोहनलाल मेहता (भाग २), प्रकाशक–पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-सस्थान, वाराणसी-५। पृ. ३१४ (भाग १), ४४२ (भाग २), मू. १५ रुपये प्रत्येक भाग।

इतिहास के प्रथम भाग में अङ्ग आगम पर विचार किया गया है। विशाल जैन साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास आठ भागों में प्रकाशित करने की योजना संस्थान के अन्तर्गत है। यह बात नितान्त सत्य एवं यथार्थ है कि जैन साहित्य के इतिहास को एक ग्रन्थ में शृङ्खलित करना उसके प्रति अन्याय होगा। इसी दृष्टिकोण से इसे इतने विस्तृत प्रांगण में फैलाया गया है। भारतीय संस्कृति की धरोहर जैन संस्कृति के द्वारा रक्षित ही नहीं प्राणवान भी है।

वैदिक एवं जैन धर्मों की आदर्शमयी नीतियाँ, प्राचीन यती, मुनि, श्रमण एवं तीर्थङ्करों की वैचारिक परम्परा से वर्तमान युग कहाँ तक निर्देशित है, इसका सही मूल्याङ्कन प्रस्तुत इतिहास के अध्ययन एवं मनन के उपरान्त ही निकाला जा सकता है। क्योंकि जैन साहित्य के धर्माचार, आचार-संहिता, उपदेशामृत एवं जीवन नियम का अपना दृष्टिकोण है और यही सबको नैतिकता पर चलने का सम्बल भी। किन्तु इस स्थल पर संकेतक यह है कि जैनाचारों का चिंतन किस श्रेणी एवं किस लक्ष्य को लेकर प्रसारित होता है। इतिहास के पन्ने पलटने से यह स्वतः ज्ञेय हो जाता है कि इनकी आगमों की व्याख्या पूर्णरूपेण मानसिक एवं तार्किक शैली से आबद्ध है। इसी से इसकी द्युति कभी भी धूमिल नहीं हो पाती।

इतिहास के दूसरे खण्ड में अङ्ग बाह्य आगम के अन्तर्गत उपाङ्ग, मूलसूत्र, छेदसूत्र, चूलिकासूत्र, एवं प्रकीर्णक आदि अध्यायों का विस्तार के साथ वर्णन है। अङ्ग आगम जो कि भगवान महावीर के गणधरों के द्वारा रचित हुआ जब अङ्ग बाह्य आगम का निर्माण एक समय अथवा एक साथ न होकर विभिन्न समयों में गीतार्थ स्थिवरों ने किया। दिगम्बर परम्परा में आगमों के दो भेद किये गये हैं, प्रथम अंग प्रविष्ट एवं द्वितीय अंग बाह्य। इसीलिए इनको अलग-अलग रखकर उनका सम्पूर्ण इतिहास दिया गया है। इससे उसके सभी भेद, प्रभेद, अंग, उपांग आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की घटनाओं एवं नीतियों आदि का समावेश हो सका है। इसी से प्रस्तुत इतिहास ग्रन्थ जहाँ पर उसके समस्त साहित्य का प्रकाशन करता है वहीं पर उनके प्रणेताओं के उच्च एवं आदर्श अमृत वाणियों का विधिवत् संचालन भी करता है। आज का मानव जीवन भी बोझिल एवं क्लान्तमयी परिस्थितियों से जीवन यात्रा को सुखद बनाने में असमर्थ सा रहता है। उस समय इनके सिद्धान्तों का आश्रय ही अवलम्ब बन चलने का साहस प्रदान करता है।

प्रस्तुत इतिहास ग्रन्थों में उन सभी ग्रन्थों के निर्माण काल का भी यथा प्रयास निर्धारण किया गया है जिनके बारे में किञ्चित भी मतभेद है अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कायें हैं। इस तरह जैन साहित्य के सभी अंगों एवं सूक्ष्मातीत बातों का भी विधिवत् वर्णन इन ग्रन्थों में मिल जाता है। आशा है शेष भाग भी इसी तरह उच्चकोटि के होंगे एवं उनकी सामग्री भी अनुसंधान पूर्ण होगी। इन इतिहास ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य को ऐसा बल मिलेगा जिसमें कि जैन मत एवं वैदिक विचार धाराओं की प्रवृत्ति को जानने के लिए आदि कालीन साहित्य की समस्या का बहुत अंशों तक निराकरण हो सकेगा, ऐसी आशा है। ग्रन्थ सभी पुस्तकालयों एवं साहित्यानुरागियों के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसका अध्ययन एवं अध्यापन लाभप्रद होगा।

कविता

धरती गाए रे—

लेखक—घनश्याम अग्रवाल, प्रकाशक—कृष्णमुरारी अग्रवाल १७/२६, ब्रह्मपुरी, अजमेर। पृ० १०४, मूल्य २.५०।

प्रस्तुत पुस्तक मिश्रित कविताओं का संकलन है जिन्हें काव्य की किसी भी विधा का प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। कवि स्वयं 'धरती गाये रे' शीर्षक से दो बार कविताएँ करता है और वह किस कविता को अपना शीर्षक रखता है, यह सन्देहास्पद है। स्थल स्थल पर भ्रान्तियों एवं काव्य के सभी मोड़ अपनाए गये हैं चाहे वह अतुकान्त कविता हो या तुकान्त मुक्तक। विविध भाव-भूमियों पर लिखी गई ये कविताएँ मात्र मनोरंजन कर सकती हैं।

विदुरा (कवि-सम्मेलन स्मारिका)—

सम्पादक—पराग, प्रकाशक—संयोजन समिति, अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन, बिजनौर। पृष्ठ ६४, मूल्य .५०।

प्रस्तुत स्मारिका में कुल ३८ नवयुवक कवियों की कविताओं का संकलन है जो कि बिजनौर के कवि-सम्मेलन में प्रसारित हो चुकी हैं। कविताएँ अच्छी एवं सुरुचिपूर्ण हैं। कवियों का प्रयास सराहनीय है।

विश्वास बढ़ता ही गया—

लेखक—शिवमंगलसिंह 'सुमन', प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० ११९, मूल्य ४.००।

प्रस्तुत पुस्तक में सुमनजी की २५ कविताएँ संग्रहित हैं। यह पुस्तक मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'देव-पुरस्कार' भी प्राप्त कर चुकी है। कवि का स्वयं अतीत को नये परिधानों के साथ वर्तमान में ला खड़ा कर देना ही इसकी अपनी विशेषता है। कविताएँ सभी एक मौलिक विचारधारा के साथ सँजोयी गई हैं। क्योंकि कवि ने स्वयं अपना उद्देश्य निम्न पंक्तियों में दर्शाया है—

पथ की सरलता देखकर,
दो चार डग जब बढ़ गया।
मेरी नजर के सामने,
आकर हिमालय अड़ गया॥
पग के अथक अभ्यास पर,
विश्वास बढ़ता ही गया।

कविताएँ कुछ पुरानी हैं कुछ नई किन्तु उनका रचनाकाल एकदम आधुनिक नहीं। समय के चक्र में भ्रमित होते हुए भी उनके भावों में, उष्णता नहीं वरन् तापक्रम का उतार-चढ़ाव है जो कि वातावरण से प्रभावित होता है। समग्र रूप से पुस्तक की कविताओं में नई स्फूर्ति देने की शक्ति है। भावनाओं की उमंगों की उत्ताल तरंगें हैं।

हरि शतक—

(श्री भर्तृहरिशतकम् का काव्यात्मक हिन्दी रूपान्तर, मूल सहित) रूपान्तरकार—श्री गोपालदास गुप्त, प्रकाशक—आनन्द प्रकाशन, सौम्य कुटीर, १३/३५ शक्ति नगर, दिल्ली। पृ० १९१, मूल्य ५.००

समालोच्य पुस्तक संस्कृत के भर्तृहरि शतकम् का पद्यानुवाद है। अनुवादक स्वयं एक अच्छे कवि एवं संस्कृत मर्मज्ञ हैं। इसीलिए श्लोकों के किसी भी पक्ष को हिन्दी में मूल भावों सहित लाना, एक सफल प्रयास है। इन पद्यों में वही आनन्द प्राप्त होता है जो कि संस्कृत के भावों में। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें मूल पाठ भी साथ ही साथ एक ओर दिया गया है और उसके सामने ही उसका हिन्दी अनुवाद। अतएव पाठकों को दोनों प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान एक साथ ही हो जाता है। हिन्दी में संस्कृत के काव्यों को लाने से लेखक हमारी बधाई का पात्र है। क्योंकि इससे हिन्दी साहित्य की समृद्धता भी बढ़ती है और उसका महत्व भी होता जाता है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

उपन्यास

उन्नीस सौ चौरासी—

मूल लेखक—जार्ज आरवेल, अनुवादक—श्री राधानाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि० दिल्ली। पृ० २२२, मूल्य २.००

प्रस्तुत उपन्यास विश्व प्रसिद्ध रोमांचकारी एवं काल्पनिक उपन्यास है। आने वाला १९८४ आज के वर्तमान युग से कितना भिन्न होगा, इसी की कल्पना राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को ध्येय में रखकर प्रस्तुत उपन्यास लिखा गया है। लेखक ने सभी छोटे-छोटे राज्यों का एक वृहत्त राज्य में विलीनीकरण किया है, फिर उसकी एक सत्ता ही होगी। वसुधैव कुटुम्बकम् का डिमडिमा घोष भी हो सकेगा। इसी की कल्पना लेखक ने की है। तमाम प्रकार के अनुशासन नियम, उपनियम आदि की सत्ता का ह्रास आदि में बुद्धि की क्षमता के समक्ष अस्तित्वहीन होकर महत्वहीन हो जायगी। इतिहास का दूसरा चरण प्रारम्भ होगा? नवीन सृष्टि की रचना होगी। किन्तु क्या मानव की नृशंस हत्याएँ रुक सकेंगी, विस्तारवादी नीति बदल सकेगी। आदि के प्रति संदेह ही होता है। कल्पना का साकार होना कल्पना ही है, वास्तविकता से दूर कोसों दूर। पुस्तक विचारों में भविष्य के लिए सोचने के लिए प्रेरित करती है पर पूर्णता में शंका सी होती रहती है।

ऐसा मालूम होता है कि लेखक एच. जी. वेलस की मशहूर पुस्तक 'नेक्स्ट स्टेज आफ हिस्ट्री' के आधार पर इस पुस्तक का प्रणयन किया है जिसका उल्लेख कहीं भी करना लेखक ने उचित नहीं समझा है।

बीच की कड़ी—

ले०—पार्थ, प्रकाशक—पार्थ साहित्य, २१२/५ बड़ाला, बम्बई—३१। पृ० ३३०, मूल्य ४.००

प्रथम पृष्ठ खोलने से ही इस उपन्यास एवं लेखक की वैचारिक धारणाओं का संकेत मिल जाता है। शीर्षक युक्त इस उपन्यास में लेखक प्रत्येक स्थल पर अपनी बहुज्ञता की रजिस्टर्ड मुहर लगाकर बलात् पाठक को ढकेलता है। कहीं-कहीं तो कठिन एवं अन्य भाषाओं की पाद टिप्पणियों से इतनी झुँझलाहट होती है मानो पाठक कोई गम्भीर विषय का अध्ययन कर रहा हो।

उपन्यास का प्राण रोचकता, इससे इतनी दूर पर मुँह बिचका कर खड़ी है जैसे उसे बीच की कड़ी ही बाँधने को फेंकी जा रही हो। इससे तो अच्छा होता उपन्यासकार उपन्यास न लिखकर कोई सैद्धान्तिक निबन्ध लिखता जिससे उसकी प्रखर प्रज्ञा का सही निरूपण हो पाता।

कहानी

अफ्रीका : उसके देश और देशवासी—

लेखक—जगमोहनलाल माथुर, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ १८६, मू० १२.५०

प्रस्तुत पुस्तक में अफ्रीका महाद्वीप की चित्रमय झाँकी देकर उसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। अफ्रीका के समस्त छोटे-बड़े देशों की भौगोलिक स्थिति, इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाज, धर्म, शासन-प्रणाली, अर्थव्यवस्था एवं नागरिकों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः अफ्रीका महाद्वीप अपनी आश्चर्यजनक संस्कृति एवं रीति-रिवाजों के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसके घने जंगल एवं रेगिस्तान तथा उसमें रहने वाले भयानक जंगली पशु-पक्षियों आदि को देखकर अचरज में पड़ जाना पड़ता है।

पुस्तक की प्रस्तावना डा० जाकिरहुसैन के द्वारा लिखी होने से इसकी महत्ता और बढ़ गई है। अफ्रीका के जन-जीवन को समझने के लिए यह अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है। सामान्य ज्ञान के लिए भी इसका पठन-पाठन उपयोगी होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी और संस्मरण

हिन्दी पत्रकारिता के गौरव : बाँकेबिहारी भटनागर—

सम्पादक–डा० हरवंशराय बच्चन, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली। पृ० ३२६, मू० १२.००

प्रस्तुत पुस्तक साप्ताहिक हिन्दुस्तान के भूतपूर्व सम्पादक श्री बाँके बिहारी भटनागर के द्वारा हिन्दी की गई सेवाओं के मूल्याङ्कन स्वरूप प्रकाशित की गई है। पुस्तक को दो खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम जीवनी एवं सेवाएँ, द्वितीय—निर्भीक वाणी। प्रथम खण्ड में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ-साहित्यकार, आलोचक कवि एवं आचार्यों द्वारा लिखे गए उनके जीवन-संस्मरण एवं परिचय सङ्कलित हैं। दूसरे खण्ड में स्वयं भटनागरजी द्वारा लिखी गई साप्ताहिक हिन्दुस्तान की सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं जिनका सामयिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक महत्व है। इनके चुनाव में पूरी सतर्कता बरती गई है। दूसरे खण्ड से पाठक को स्वयं यह विदित हो जाता है कि भटनागरजी की लेखनी में कितनी परिपक्वता एवं अनुभवपूर्णता है। इन सम्पादकीय टिप्पणियों से ऐसा प्रतीत होता है कि भटनागरजी की लेखनी में बड़ी ही निर्भीकता एवं बल है। भटनागरजी ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान के तीन वर्षीय बिरवे को अपने रक्त से सींचकर और मानसिक खाद देकर बड़ा किया और जब उसकी शाखाएँ स्वयं एक पेड़ का सा उद्घाटन करने लगीं तो वे उससे अलग हो गए। यह प्राकृतिक नियम है कि पौधे को तो सींचने, सँवारने, रूँधने एवं संरक्षित करने की तो आवश्यता पड़ती है किन्तु वृक्ष को नहीं क्योंकि वह स्वयं अपनी पातालीय जड़ों से अपनी खाद्य सामग्री ग्रहण करने लगता है। तब जन-मानस, पथिक, पशु-पक्षी आकर उसकी शरण लेते हैं, उसका गुणगान करते हैं, पर बेचारा माली जिसने कड़ी से कड़ी धूप में, दिल हिला देने वाली सर्दी में उसे सींचा है, सँवारा है, रूँधा है, उसको कोई नहीं पूछता। भारत में यही सबसे बड़ा दोष है। लोग पत्र की प्रशंसा करते हैं किन्तु सम्पादक के अथक परिश्रम का कभी भी सही मूल्यांकन नहीं करते। यही कारण है कि हमारे देश में पत्रकारिता एवं सम्पादन-कला को लोग उतना महत्व नहीं देते जितना अपेक्षित है। पाश्चात्य देशों में पत्र से अधिक उस सम्पादक को श्रेय मिलता है जिसके अनुभव एवं प्रयासों से पत्र का स्तर ऊँचा उठता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी अभाव की पूर्ति करती है। डा० बच्चनजी के सम्पादन में भटनागरजी के त्याग, लगन एवं सेवाओं का सही मूल्याङ्कन तो किया ही गया है साथ ही सम्पादक का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है, इसका भी संकेत इस ग्रन्थ से हो जाता है।

पुस्तक में भटनागरजी के कई चित्र भी हैं जिनसे विदित होता है कि वे प्राय: देश के उन तमाम उच्च महापुरुषों से भी अपना सम्बन्ध रखते थे जिनके ऊपर देश को गर्व है। पुस्तक छपाई, कागज एवं साज-सज्जा उच्चकोटि की है। पत्रकारिता के इतिहास, दिशा-निर्देश एवं सफल सम्पादन कला जानने के लिए प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन आवश्यक है।

पत्रकारिता विषय के सन्दर्भ में भी इसका पठन-पाठन आवश्यक है। क्योंकि इसमें सम्पादकीय टिप्पणियों की नीतियों एवं उसके उद्देश्यों पर भी उच्चकोटि की सामग्री मिल जाती है। साथ ही एक निर्भीक सम्पादक की लेखन कला का भी ज्ञान हो जाता है।

अन्तर्मन—

लेखक—देवीलाल सामर, प्रकाशक–भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, राजस्थान। पृ० ४५, मू० १.००

प्रस्तुत पुस्तिका लेखक के एक मात्र भावों, अनुभूतियों एवं स्मरणों का दिग्दर्शन है जिसमें यत्र-तत्र जीवन से युक्त, वास्तविकता से संलग्न एवं व्यवहारिकता सिक्त उद्दाम चरित्रों का मनोविश्लेषण किया गया है। संवेगों एवं मनःस्थितियों के मध्य सही मार्गों को, छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से १३ कथाओं में चित्रित किया जाना इसकी विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्म और धर्म

जैन आचार—

लेखक—डा० मोहनलाल मेहता, प्रकाशक—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, जैनाश्रम, वाराणसी—५। पृष्ठ २४३, मूल्य ५.०० ।

प्रस्तुत कृति जैन आचारशास्त्र पर लिखी गई है। लेखक ने ग्रन्थ को छः प्रमुख अध्यायों में विभक्त करके उसकी मीमांसा की है। इसके साथ ही साथ उसकी महत्ता को समझाने के लिए, समानान्तरीय हिन्दुओं के सांख्य और बौद्धधर्म से आकलन भी किया है। जैन आचार वस्तुतः कर्मवाद पर ही प्रतिष्ठित है और फिर कर्मवाद का प्रासाद आत्मवाद के ईंट और गारे से निर्मित है और उस पर अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त दृष्टि रूपी सीमेण्ट और चूने की चिकनी पुताई है। इससे जैनाचार का प्राचीन प्रासाद जगमगा रहा है। लेखक ने इसी मणि को अपने ग्रन्थ में पिरोया है।

जैन आचार का वर्गीकरण भी दो रूपों में बता कर विस्तृत रूप से उसकी व्याख्या की गई है। दिन-प्रतिदिन की आचार-संहिता का एक अनुशासित दिशा में निरन्तर चलते रहना भी इसकी अपनी निजी एवं सर्वग्राह्य विशेषता है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा पठनीय है। किसी-किसी स्थल पर कुछ संस्कृत निष्ठ शब्द साधारण पाठक को समझने में कठिनाई अवश्य पैदा कर सकते हैं। किन्तु आचार-संहिता को एक धार्मिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए परिमार्जित एवं सौष्ठव शब्दों का प्रयोग करना अनिवार्य है। सरस्वती जितनी ही संस्कृत निष्ठ होगी, आस्था उतनी ही तीव्र होगी।

हमारी परम्परा—

सं०—वियोगी हरि, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृ० ५६३, मूल्य २०.००

प्रस्तुत ग्रन्थ में भारत के धर्म एवं संस्कृति के बारे में विभिन्न विद्वान लेखकों के लेख संग्रहीत किए गए हैं जिनमें डा० राधाकृष्णन, आ० विनोबा भावे, वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० मङ्गलदेव शास्त्री, डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, श्री शौरिराजन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, एवं श्री वियोगी हरि प्रभृति उच्चकोटि के विद्वान एवं मनीषी हैं। पुस्तक १३ अध्यायों में विभक्त है और ये अध्याय इन्हीं विद्वानों द्वारा अलग-अलग लिखे गये हैं। प्राग्वैदिक से लेकर आधुनिक विभिन्न समाजों तक इनकी व्याख्या है।

धर्म की व्याख्या, सभ्यता का आकलन, नीति का पर्यावलोकन एवं दर्शन का मंथन आदि बातों का सम्यक रूप से निरूपण करना ही विद्वानों का ध्येय है। जो विद्वान जिस विषय का अधिकारी है, वही उस विषय का लेखक भी है। इस दृष्टि से पुस्तक की महत्ता और बढ़ गई है। हमारा प्राचीन साहित्य संस्कृत में है किन्तु उस विशाल साहित्य से सारतत्व को सरल भाषा और सीधी-सादी शैली में निकालकर जन-साधारण के हितार्थ प्रस्तुत कर देना, लेखकगण खूब अच्छी तरह जानते हैं। जन साधारण अपने अल्प ज्ञान एवं शिक्षा के द्वारा भी अपनी प्राचीन परम्पराओं को संक्षिप्त रूप में जान सकता है। आज के युग में समय का अभाव होने से अपना बृहत प्राचीन साहित्य पढ़ने का किसी के पास समय नहीं क्योंकि इसके लिए १०० वर्ष की आयु भी बहुत ही कम है। इस दृष्टि से प्रायः लोग इन सब के गहन अध्ययन से पलायन कर जाते हैं। वे केवल विहङ्गम दृष्टि एवं अवलोकन के पक्षपाती रहते हैं। इसी दृष्टि से और इस अभाव की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक का सफल सम्पादन किया गया है। अधिकारी विद्वानों ने अपने चिरकाल के अनुभव एवं अध्ययन से लेखों को बड़ा ही उपादेय बनाया है। भारत के प्रचलित तमाम प्रकार के दर्शन, रीति आदि का पूर्ण मनोवेग शैली में वर्णन किया गया है। जहाँ केवल सार ही सार है। अतएव आध्यात्मिक ज्ञान के लिए गृह-त्याग करने के बजाय स्वाध्याय से ही उसका सफल अवगाहन किया जा सकता है। भारत की संस्कृति विश्व में सदैव उच्च शिखर पर चढ़कर हुँकारती रही है, उसके समक्ष संसार की कोई भी सभ्यता टिक न सकी। यही कारण है कि संसार की तमाम सभ्यताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट गईं किन्तु भारतीय सभ्यता अभी भी ज्यों की त्यों बनी है। उसी के बल पर आज भारत का नीति-महल रुका है, उसकी आचार-संहिता की छत ठहरी है तथा मानवता की पताका लहरा रही है। हमारी परम्परा, हमारा धर्म, हमारा साहित्य सभी अपने हैं किसी से छीने या लिए नहीं गये हैं।

समग्र रूप से पुस्तक उत्तम एवं संग्रहणीय है। छपाई आदि भी उच्चकोटि की है। ऐसी सुन्दर पुस्तक हिन्दी को देने के लिए वास्तव में वियोगी हरिजी बधाई के पात्र हैं।

विज्ञान

अन्तरिक्ष यात्रा की कहानी—

लेखक—श्यामनारायण कपूर, प्रकाशक—साहित्य-निकेतन, कानपुर। पृष्ठ ६७, मू० २.०० ।

प्रस्तुत पुस्तक में अन्तरिक्ष में होने वाली आश्चर्यजनक घटनाओं एवं साहसिक यात्राओं का कहानी के रूप में वर्णन है। साथ ही इससे सम्बन्धित रेखा-चित्र भी दिए गये हैं। पुस्तक बच्चों के लिए बहुत उपयोगी है। भाषा सरल एवं शैली मोहक है।

राकेट की कहानी—

लेखक व प्रकाशक—उपर्युक्त, पृष्ठ ५०, मू० १.५०

आज का युग विज्ञान की प्रगति का उदाहरण है। राकेट उसकी अपूर्व कला एवं आविष्कार है। इसके बारे में जानने की सभी को उत्सुकता रहती है। इसी राकेट की कहानी को लेखक ने बड़े ही सुन्दर एवं रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। बच्चों के लिए यह पुस्तक ज्ञान के सम्बर्द्धन में सहायक होगी—ऐसा विश्वास है।

राजनीति

नेहरू : डा० राधाकृष्णन् के विचार—

प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली। पृ० ४८, मूल्य ५० पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक भारत के निर्माता स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में महान् दार्शनिक एवं भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् के विचार सङ्कलित हैं जो उन्होंने समय-समय पर स्थल-स्थल पर दिए हैं। विचार संक्षिप्त एवं गम्भीर हैं। नेहरू को समझने के लिए इनका पढ़ना उपयोगी होगा।

भारत ज्ञान कोश, (वार्षिकी १९६७)—

सम्पादक—अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, दिल्ली। पृष्ठ २०६, मूल्य दो रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक भारत के बारे में एक स्थूल जानकारी के लिए बहुत उपयोगी है। नवीनतम सूचनाओं एवं गतिविधियों से पूर्ण, ज्ञान-विज्ञान से युक्त होना ही इसकी अपनी विशेषता है। सभी तरह की सूचनाओं का यह एक संकलन है जो कि सभी वर्गों के लिए उपादेय ही नहीं बल्कि संग्रहणीय भी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ बातों की उलझने एवं उत्कण्ठाएँ आती रहती हैं, उसकी जान, कारी इस पुस्तक से हो जाती है। समग्र रूप से पुस्तक सस्ती एवं उपयोगी है।

युद्ध-मोर्चों की कहानी—

लेखिका—सावित्री देवी वर्मा, प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ १०८, मूल्य ३.५० ।

प्रस्तुत पुस्तक में गत भारत-पाक युद्ध में शहीद एवं वीरता दिखाने वाले सैनिकों की शौर्य गाथा का संक्षिप्त रूप में वर्णन है। किन्तु इसमें स्थल-स्थल पर संवाददाताओं के कथन एवं अखबार की कतरनें ही बोलती प्रतीत होती हैं। इससे साफ प्रमाणित होता है कि लेखिका ने समाचारों का सङ्कलन किया है न कि उनका प्रत्यक्ष दर्शन अथवा सैनिकों से भेंट मुलाकात आदि की हो। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर गाथा लिखी प्रतीत होती है। भारत-पाक युद्ध में न जाने कितने वीर शहीद हुए, उनका शतांश भी प्रस्तुत पुस्तिका प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। फिर भी बच्चों के लिए पुस्तक बहुत अच्छी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे रणबांकुरे—

लेखक—गिरिराज शरण अग्रवाल, प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य निकेतन, सम्भल, उ० प्र०, पृष्ठ ७६, मूल्य दो रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक गत भारत-पाक युद्ध में शौर्य दिखाने वाले वीरों से सम्बन्धित है। शहीद सैनिकों के अतिरिक्त कुछ जीवित सैनिकों का वर्णन भी दिया गया है जिन्होंने अपने अपूर्व साहस से युद्ध को सफल बनाया। कुल २६ जवानों की गाथाओं का यह संक्षिप्त सङ्कलन वीरों के प्रति श्रद्धा अर्पित करने के लिए पठनीय है।

सम्पूर्ण-गांधी वांग्मय -

खण्ड १६, पृ० ६१२, खण्ड २०, पृ० ५६१, प्रकाशक—प्रकाशन-विभाग, मिभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली। मूल्य साढ़े सात रुपये, प्रति खण्ड।

खण्ड १६ में नवम्बर १६२० से लेकर अप्रैल १६२१ तक कुल ६ महीने की अवधि का गांधीजी के महत्त्वपूर्ण कार्यों, पत्रों, भाषणों एवं सुझावों का सङ्कलन किया गया है। यह ६ महीने गांधीजी के जीवन के सबसे व्यस्त समयों में से है। इसी समय उन्होंने सम्पूर्ण देश का दौरा किया और प्रत्येक नागरिक, नेता, समाज सेवी, युवक, विद्यार्थी सबको उद्बोधन किया किन्तु सबसे अधिक युवकों एवं विद्यार्थियों के लिए इस काल का महत्व है। उन्होंने विदेशी शिक्षा का विरोध किया और भारतीय परम्परा की मांग की। बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय का भाषण उनका सबसे अधिक उपयोगी एवं सारगभित था। इसके बाद जाति प्रथा और अस्पृश्यता के निवारण के लिए भी अपना असहयोग छेड़ दिया। भारतीयों ने गांधीजी का खुले हृदय से स्वागत किया और तन, मन, धन से आन्दोलन को सफल बनाया। इसी आन्दोलन से विदेशी सरकार की नींव हिल गई। 'ड्यूक आफ़ कनॉट' की भारत यात्रा के सम्मान-स्वागत का बहिष्कार किया गया। जनता में चेतना आई और शासक घबड़ा गया।

खण्ड २० में १४ अप्रैल १६२१ से १५ अगस्त, १६२१ तक कुल ४ महीनों के क्रिया-कलापों का वर्णन है। गाँधीजी ने इसी वर्ष 'एक ही साल भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का नारा दिया था। विदेशी वस्त्रों का त्याग, एवं विदेशियों को भारत से निकालने का आह्वान उन्होंने समस्त जनता को दिया।

इन दोनों खण्डों में गांधीजी के सभी भाषण यथावत् उद्धृत किए गए हैं। कुछ तो उनके गुजराती लेखों से अनुवाद करके लाए गए हैं तथा कुछ उनके जीवन से निकट सम्बन्ध रखने वालों की डायरियों से अथवा संग्रहालयों से लिए गए हैं। अतएव सामग्री बड़ी ही तथ्यपूर्ण एवं सर्जनीय है। गांधीजी के विचारों एवं जीवन की क्रियाओं को आत्म सात करने एवं उसका अनुकरण करने के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी है। देश के तमाम अँग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि अखबारों से उनके तत्कालीन भाषण एवं लेखों को उसी रूप में रखने से, पाठक को पढ़ने में वही आनन्द आता है जो कि उस समय के पाठक को आता रहा होगा। ऐसा विदित होता है कि स्वयं समक्ष गांधीजी अपने भाषण से जनता को उद्बोधन दे रहे हैं। साधारणीकरण की इस स्थित से पाठक की अनुभूतियाँ गांधी मय हो जाती हैं, यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। इस प्रकार ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है।

जमनालाल बजाज की डायरी(१६१२–१५ प्र. खण्ड)—

सम्पादक—रामकृष्ण बजाज, प्रकाशक—जमनालाल बजाज, सेवा ट्रस्ट, वर्धा। पृ० २२४, मूल्य ४·००

स्व० जमनालाल बजाज का स्थान गाँधी-साहित्य में एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। क्योंकि उन्होंने सदैव गांधीजी के सिद्धान्तों पर अपना जीवन व्यतीत किया। प्रस्तुत पुस्तक में गांधीजी के सम्पर्क में आने के पूर्व उनका दैनिक जीवन किस प्रकार से व्यतीत होता था। उनके पूर्व जीवन की झाँकी, क्रिया कलाप एव व्यापार की सही सूचना इस डायरी से मिल जाती है।

श्री बजाज जी की सम्पूर्ण डायरी दस-खण्डों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित करने की योजना है। प्रस्तुत खण्ड में १९१२ से अप्रैल २१, १९१५ तक की चर्चा है। बीच में १९१३ की डायरी नहीं है। क्योंकि यह अप्राप्य थी। डायरी की भूमिका श्री काका कालेलकर ने लिखी है। इसमें डायरी के सम्बन्ध में उनके विचार हैं। काका-साहब पूज्य गांधी एवं बजाज साहब से निकट से सम्बन्ध रखते रहे। अतएव उनका मूल्यांकन बड़ा ही महत्त्व रखता है।

गांधीजी से पूर्व जमनालाल बजाज का जीवन किस तरह क्रम बद्ध एवं व्यापारिक था, इसे समझने के लिए डायरी बड़ी उपयोगी है।

सौ सवाल एक जवाब—

लेखक—डा० प्रभाकर माचवे, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० १२५, मूल्य एक रुपया।

गांधी शत वार्षिक के अन्तर्गत गांधी स्मारक-निधि, के सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक गांधीजी की विचार-धाराओं का समय और समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका अच्छा आकलन करती है। जीवन के परिप्रेक्ष्य में उनके मूलभूत सिद्धान्तों एवं आदर्शों का अपना निजी महत्त्व है क्योंकि आज के हिंसात्मक संसार में, सभी देश अहिंसा की दुहाई तो देते हैं किन्तु उसे पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने में प्रमाद करते आ रहे हैं। इसीलिए लेखक ने नाना प्रकार की उलझनों, समस्याओं एवं प्रश्नों के लिए गांधीजी की विचार-धारा को, उनकी अहिंसा को, उन सबका एक मात्र समाधान, मानकर 'सौ सवालों का एक जवाब बताया है। पुस्तक पठनीय एवं शिक्षाप्रद है।

रिपोर्ताज

भारत यह है—

लेखक—वृन्दावनलाल वर्मा, प्रकाशक—मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ १२७, मूल्य २.००।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री वर्माजी ने एक अमरीकी श्री अलवर्ट को केन्द्र मान भारत की यशोगाथा कथोपकथन शैली में वर्णित की है। पुस्तक में कुल १५ घटनाएँ हैं जो कि भारतीय-संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि का सम्यक् प्रतिनिधित्व करती हैं। भारतीयता के प्रति मोह एवं विदेशी भावनाओं का प्रभाव सर्वत्र मिलता है। साथ ही अलवर्ट की भाव-भूमियों पर उसके मन्तव्यों की उद्वेलना भी इसकी अपनी विशेषता है। क्योंकि लेखक भारत को सर्वगुण सम्पन्न दिखलाने का प्रयास करता है। समग्र रूप से पुस्तक के भाव सुन्दर एवं पठनीय हैं। वर्माजी की यह कृति भी उनकी अन्य रचनाओं के समान आदर की पात्र होगी।

विविध

तिल कन्या तथा अन्य कहानियाँ —

सम्पादिका—श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा, प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, पुराना सचिवालय, दिल्ली—६। पृष्ठ १२३, मूल्य १.७५।

प्रस्तुत पुस्तिका में १७ छोटी-छोटी कहानियाँ संकलित की गई हैं। वस्तुतः लोक-जीवन पर आधारित कहानियों का यह संग्रह किसी भी प्रदेश का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करने में असफल सी हैं क्योंकि कहानियों का माध्यम कल्पना के सहारे आगे बढ़ता सा प्रतीत होता है। कोई एक कथा से किसी प्रदेश की सम्पूर्ण लोक-कथा का परिचय कराना उपहास सा प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में दिल्ली के एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने प्रदेश एवं क्षेत्रगत लोक-कथा माला की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो इससे कहीं उच्च है। लेकिन भारत-सरकार का यह प्रकाशन सस्ता जरूर है।

—कामतागुप्त 'कमलेश'

सदैव 'गज्जोमल' पिसे एवं तैयार मसाले व्यवहार करें.
विशेष जानकारी के लिये लिखें—
गज्जोमल इण्डस्ट्रीज
रावतपाड़ा, आगरा
फोन नं० : ७६५३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शेषांश पृष्ठ १०० का)

आ. द्विवेदी और डा. सत्येन्द्र की षष्ठी-पूर्ति—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की षष्ठी-पूर्ति के अवसर पर दिल्ली में राजकमल प्रकाशन की ओर से अभिनन्दन समारोह किया गया जिसमें सर्वश्री रामधारीसिंह 'दिनकर', अज्ञेय, डा० नगेन्द्र, प्रो. ए० चन्द्राहासन आदि विद्वान साहित्यकारों ने आचार्य द्विवेदी की साहित्य सेवाओं का अभिनन्दन किया तथा केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डा० त्रिगुणसेन ने द्विवेदीजी को माल्यार्पण करते हुए शिक्षा जगत की ओर से मङ्गलकामना की। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी अपना मङ्गलकामना-सन्देश भेजा। वास्तव में आचार्य द्विवेदी जिस एकनिष्ठ भाव से साहित्य और संस्कृति की सेवा में सतत रत रहे हैं वह सर्वथा गौरव की वस्तु हैं। इस अवसर पर साहित्य-सन्देश भी उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ उनके शतायु होने की कामना करता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा सुविज्ञ समीक्षक डा० सत्येन्द्र ने भी इस वर्ष ३ सितम्बर को अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे किये हैं। डा० सत्येन्द्र भी गत चालीस वर्षों से साहित्य-साधना में अत्यन्त निष्ठा से लगे हुए हुए हैं। यों तो डा० सत्येन्द्र ने एकांकी, कहानी, नाटक आदि भी लिखे हैं किन्तु साहित्य जगत् उनको समीक्षक के रूप में ही अधिक जानता है। उन्होंने निरन्तर हिन्दी समीक्षा को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया है। व्यवस्थित रूप से पहली बार उन्होंने ही हिन्दी के लोक-साहित्य का अन्वेषण, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया है। इस क्षेत्र में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनको 'चक्रवर्ती' माना था। स्वास्थ्य उनका साथ नहीं दे पाता फिर भी वे बड़ी लगन से साहित्यिक कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। अभी हाल में उनकी कृति 'ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुई है जो अपने विषय की प्रथम प्रामाणिक कृति मानी जायगी। डा० सत्येन्द्र का 'साहित्य-सन्देश' से पुराना सम्बन्ध रहा है अतः इस शुभ अवसर पर हमारा पुलकित होना स्वाभाविक ही है। प्राचीन ऋषियों की वाणी में यही कामना करते हैं कि वे सौ शरद देखें और अपनी नई साहित्यिक कृतियों से माँ भारती के भण्डार को भरते रहें।

राजस्थानी को पृथक भाषा बनाने की माँग—

राजस्थान में भाषा के प्रश्न को लेकर यह समस्या ज्वलन्त होगई है कि राजस्थानी को हिन्दी से पृथक एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकृत किया जाय और केन्द्रीय सरकार उसे संविधान में स्वीकृत १६ भाषाओं की सूची में गृहीत करे। महाराज कर्णीसिंह के प्रयत्नों से राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध में एक सम्मेलन पहली नवम्बर को आयोजित किया जा रहा है। इससे पूर्व भी स्थान-स्थान पर अनेक सभाएँ आयोजित की गई हैं, जिनमें काफी जोश-खरोश के साथ राजस्थानी को हिन्दी से अलग करने की माँग की गई है।

हमारी सम्मति में यह माँग अधिक उचित नहीं कही जा सकती। राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा के रूप में गृहीत किया गया है और उसी सन्दर्भ में सर्वत्र उसके साहित्य का पठन-पाठन भी होता रहा है। यदि राजस्थानी को आज स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है तो कल ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी वाले भी माँग करेंगे कि उनकी भाषाओं को भी स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। इससे सरकार और जनता को कितनी अधिक असुविधा का सामना करना पड़ेगा—इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। राजस्थानी में भी सर्वत्र एकरूपता नहीं है—उसमें मारवाड़ी, मेवाती, हाड़ौती आदि अनेक बोलियाँ हैं। एक बोली का बोलने वाला दूसरी बोली को कम ही समझ पाता है, जबकि हिन्दी वहाँ सर्वत्र प्रचलित है। अतः उचित यही है कि राजस्थानी भाषा के आन्दोलनकर्त्ता अपने जोश को राजस्थानी भाषा के साहित्य के समृद्ध करने में तो लगाएं किन्तु अहितकारक पृथकतावादी नीति का परित्याग करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन अंक

हिन्दी के लोकप्रिय कवि डा० हरिवंशराय 'बच्चन' की षष्ठी-पूर्ति के अवसर पर
साहित्य-सन्देश नवम्बर मास में

'बच्चन अंक'

प्रकाशित करने जा रहा है। सहयोगी लेखकों से निवेदन है कि वे बच्चन-काव्य का विश्लेषण एवं मूल्याङ्कन करने वाले लेखों को हमारे पास यथाशीघ्र प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक

बाढ़ पीड़ितों की मदद कीजिये

"पिछले दो सालों में हमारे देश में जो भयंकर सूखा पड़ा, वैसा पहले कभी नहीं पड़ा था। हम सभी ने एक असाधारण साहस और लगन से उसका मुकाबला किया। अब अधिक वर्षा के कारण देश के कई भागों में विनाशकारी बाढ़ें आ गई हैं, जिनसे बड़े पैमाने पर तबाही हुई है और लोग बेघर होगये हैं। उन्हें तुरन्त सहायता की जरूरत है। मैं आपसे अपील करती हूँ कि आपमें से हरएक नागरिक प्रधानमन्त्री के 'राष्ट्रीय सहायता कोष' में उदारता पूर्वक दान दें ताकि मुसीबत में पड़े हमारे भाइयों का उद्धार किया जा सके।"

—इन्दिरा गान्धी

प्रधान मन्त्री के राष्ट्रीय सहायता कोष में उदारतापूर्वक दान दीजिये।

अपना दान इस पते पर भेजियेः—
सचिव, प्रधानमन्त्री का राष्ट्रीय सहायता कोष
प्रधानमन्त्री सचिवालय, नई दिल्ली।

डी ए वी पी ६७/एफ–४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आप जानते हैं, ये महिला कौन हैं? आप एक दफ्तर में 'आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट' हैं। खुश और जीवन से सन्तुष्ट। मेहनत और असाधारण लगन के कारण एक मामूली 'टाइपिस्ट' से बढ़कर आज ये इस पद पर पहुंच गई हैं। इस सफलता का श्रेय ये अपनी छोटी सी गृहस्थी को देती हैं: "छोटी सी गृहस्थी है मेरी। पति और तीन बच्चे। कोई परेशानी या दिक्कत नहीं होती। हम दोनों इतना कमा लेते हैं कि हमारी सारी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। तीसरे बच्चे के बाद ही हम दोनों ने फैसला कर लिया था कि अब हमें और बच्चे

नहीं चाहियें। घर में सुख-शान्ति रहती है, इसी लिये मैं दफ्तर में मन लगा कर काम कर पाती हूं।"

ये खुश हैं —

और आप ?

davp 67/185

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश की पुरानी फाइलों
की बड़ी माँग है
क्योंकि—

१—एक-एक वर्ष की फाइल में ५०० पृष्ठ ठोस मैटर के हैं जो पुस्तकाकार में १००० होते।

२—विद्वानों के इतने सुन्दर लेख एक स्थान पर अन्यत्र मिलना कठिन है।

३—यह फाइलें हिन्दी के अध्येताओं और शोध करने वालों के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

४—इन फाइलों का मूल्य बहुत ही कम है। पन्द्रह रुपये के स्थान में केवल १० रुपए।

●

परन्तु अभी

३१ दिसम्बर १९६७ तक

पौने मूल्य में मिलेंगी

●

ध्यान रखिये :

१—१९३७ से १९५१ तक की कोई फाइल नहीं बची है।

२—१९५२ से १९६६ तक की फाइलें भी पूरी नहीं मिल सकेंगी। समाप्त होती जा रही हैं।

●

आप अपने कालेज या स्कूल के लिए खरीदना चाहें तो तुरन्त मंगालें वरना पीछे पछताना पड़ेगा।

एक-दो मँगाने पर डाक खर्च २) प्रति फाइल, कम से कम पाँच फाइल मँगाने पर रेल का भाड़ा भी हम देंगे।

अपने आर्डर के साथ रेल स्टेशन का नाम लिखें और खर्च के लिए कम से कम ५.०० का मनीआर्डर पेशगी भेजें।

मैनेजर : **साहित्य-सन्देश, आगरा।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. L 263 September 1967 Licence No. 16
Sahitya-Sandesh, Agra. Licensed to post without prepayment

हिन्दी की विविध विधाओं पर प्रकाशित

हमारी नवीन पुस्तकें

१.	हिन्दी आलोचना	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
२.	हिन्दी उपन्यास	: सिद्धान्त और विवेचन	५.५०
३.	हिन्दी कहानी	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
४.	हिन्दी नाटक	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००

अभी चार पुस्तकों का सैट बनाने की योजना बनाई है जो सभी तैयार हैं। सभी पुस्तकें जिल्ददार हैं और बड़े आकार में बढ़िया सफेद कागज पर छपी हैं।

इनमें उस विषय के

चोटी के विद्वानों के चुने हुए लेख संग्रहीत हैं।

उपयोगिता

को देखते हुए हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और विवेचन तो छपते ही आगरा विश्वविद्यालय ने अपनी बी० ए० की परीक्षा में स्वीकृत करली है।

चारों को एक साथ मँगाने पर विशेष रियायत

चारों पुस्तकों का मूल्य २०.५० रु० है। लेकिन जो सज्जन चारों पुस्तकों का रियायती मूल्य १५.०० पेशगी मनीआर्डर से भेज देंगे उनको पोस्टेज और रजिस्ट्री का खर्च भी नहीं देना पड़ेगा।

यह रियायत—

३० नवम्बर १९६७ तक है।

साहित्य रत्न भण्डार, साहित्य कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registerd with the Registrar of Newspapers for India under No. 2251/57

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-संदेश

[आलोचना मासिक]

इस अङ्क में— अक्टूबर १९६७

१—हमारी विचारधारा	सम्पादक	१४५
२—कथा-साहित्य में कल्पना तत्व की स्थिति	प्रेमप्रकाश भाटिया	१४९
३—मानस के प्रारम्भ की वन्दना-प्रक्रिया	डा० रामबाबू शर्मा	१५४
४—कृष्ण की मुरली एवं उसकी ध्वनि	कु० आर० सुगन्धा	१५८
५—कश्मीरी और हिन्दी रामकथा में कौशल्या	डा० ओंकार कौल	१६०
६—भारतेन्दु के व्यंग्य-विनोदमय स्तोत्र	श्री बालेन्दुशेखर तिवारी	१६३
७—'बाणभट्ट की आत्मकथा' में चरित्र-चित्रण	श्री महेन्द्रकुमार धींगड़ा	१६६
८-महाकवि रत्नाकर—एक महत्वांकन	डा० रामप्रकाश अग्रवाल	१७१
९—पृथिवीपुत्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	डा० कैलाशचन्द्र भाटिया	१७२
१०-पुस्तक-परिचय		१७४

[प्र]काशक :
[सा]हित्य रत्न भण्डार, आगरा-२

सम्पादक
महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये इतने झल्लाये हुए क्यों हैं ?

इसकी वजह यह है कि इनका तार समय पर नहीं पहुंचा। शायद कसूर डाक व तार विभाग का हो। यह भी हो सकता है कि तार का पता ही अधूरा हो।

● तार का मतलब होता है कि खबर तुरन्त पहुंचाई जाये। यदि वह अपनी जगह तेजी से नहीं पहुंचता तो तार का उद्देश्य ही खत्म हो जाता है।

● डाक व तार विभाग तार पहुंचाने में तेजी से काम करता है, लेकिन वह ठीक स्थान पर तुरन्त पहुंचाया जा सके, इसके लिये पूरा और सही पता होना जरूरी है।

● हमेशा पता पूरा लिखिये। पते में जोन नम्बर भी लिखिये। इससे आपका पता तुरन्त ढूंढ़ने में आसानी हो जाती है। याद रखिये, जोन नम्बर के लिये पैसे नहीं लिये जाते।

हमें मदद कीजिये
ताकि हम आपकी बेहतर
सेवा कर सकें!

भारतीय डाक व तार

davp 67/105

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

(आलोचना मासिक)

भाग-२९ अङ्क-४

सम्पादक

महेन्द्र

विश्वम्भर 'अरुण'

सहायक

कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक

कमलेन्दु जैन

अक्टूबर—१९६७

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

राष्ट्रीय एकता और हिन्दी—

राष्ट्रीय एकता के विकास में हिन्दी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि हिन्दी को पहले कभी भी राजकीय प्रश्रय नहीं मिला तथापि हिन्दी देश के कोने-कोने में फलती-फूलती रही। मध्यकालीन सन्त और भक्त कवियों की हिन्दी-वाणी की गूँज देश के हर स्थान पर सुनाई दी। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा के भाव-सुमनों को सभी देशवासियों ने अपनाया किन्तु आज कुछ स्थानों से ऐसी आवाज भी सुनाई देती है कि यदि हिन्दी को देश के काम-काज की सम्पर्क भाषा बना दिया गया तो देश की अखण्डता खतरे में पड़ जायेगी। यानी इन तथाकथित लोगों के कथनानुसार हिन्दी राष्ट्रीय एकता के लिये खतरा बन गई है। इनसे पूछिये, किन आधारों पर आप कहते हैं कि हिन्दी राष्ट्रीय एकता पर चोट पहुँचाने वाली है? तो जवाब में कोई ठोस कारण आपको नहीं मिलेंगे। हिन्दी में अभी सम्पर्क भाषा के भार को वहन करने की क्षमता नहीं है, हिन्दी को दक्षिण के लोग नहीं जानते, राष्ट्र की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की भाँति हिन्दी भी एक क्षेत्रीय भाषा है अतः किसी एक क्षेत्रीय भाषा को समस्त देश पर थोपना अन्याय है—आदि-आदि बातें कही जाती हैं। हिन्दी में क्षमता है या नहीं—यह तो तभी मालूम पड़ेगा जब उसे सम्पर्क भाषा के रूप में अपनाया गया होता। क्या बिना क्षमता के ही वह देश की अधिकांश जनता के द्वारा समझी-बूझी जाती है? १४ वीं सदी में इँगलैण्ड की जनता ने अपने ऊपर थोपी गई फ्रेंच भाषा के विरुद्ध अंग्रेजी भाषा को अपनाये जाने की आवाज को बुलन्द किया था, उस समय भी वहाँ के कुछ न्यायाधीशों, अधिकारियों, वकीलों, प्रोफेसरों ने इस माँग को मूर्खतापूर्ण बताया था और कहा था कि अंग्रेजी में राज-काज चलाने की क्षमता नहीं है। किन्तु सभी ने देख लिया कि समय ने उन प्रबुद्ध लोगों की बात को झूठा सिद्ध कर दिखाया और जनता का मत प्रतिष्ठित हुआ। हिन्दी का प्रचार अब दक्षिण में भी कम नहीं है—दक्षिण के प्रत्येक प्रान्त में मातृभाषा के बाद उससे ही लोग अधिक परिचित हैं। हिन्दी को मात्र क्षेत्रीय भाषा बताना सत्य से मुख मोड़ना है। जिस प्रकार सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की जापानी, फ्रान्स की फ्रेंच आदि भाषाएँ अपने-अपने देशों के नाम पर हैं, उसी प्रकार हिन्दी भी सम्पूर्ण हिन्द की भाषा के रूप में अपना नाम चरितार्थ करती है। हिन्दी के अतिरिक्त और भी भाषाएँ हिन्द में प्रचलित हैं किन्तु वे सब क्षेत्रीय भाषाएँ हैं। जैसे बङ्गाल प्रान्त की भाषा बंगला है तो गुजरात की गुजराती, इसी प्रकार तमिलनाडु की तमिल है तो पंजाब की पंजाबी, एकमात्र हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो भारत के किसी विशेष प्रान्त के नाम पर नहीं अपितु देश के नाम पर है। इसका एक नाम 'भारती' भी है जो 'भारत देश की भाषा' का बोध कराता है।

आज हिन्दी के विरोध के सम्बन्ध में तमिलनाडु और बंगाल से ही अधिक आवाज सुनाई पड़ती है। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व इन्हीं प्रदेशों के अनेक प्रमुख नेताओं ने हिन्दी के समर्थन में अपने स्वर बुलन्द किये थे और हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये अनेक कार्य भी किये थे। हिन्दी के विरोधियों में अग्रणी चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की अभी हाल में एक पुस्तक निकली है—'एकता के लिये अंग्रेजी'। इस पुस्तक में उन्होंने जमकर अंग्रेजी की वकालत और हिन्दी का विरोध किया है। इस पुस्तक में वे एक स्थान पर लिखते हैं—"कभी मेरा ख्याल था कि इससे (हिन्दी से) काम चल जायेगा। परन्तु अब मेरी निश्चित धारणा हो गई है कि इससे एकता के स्थान में अव्यवस्था और विरोध ही उत्पन्न होगा। अब तक जो अंग्रेजी बनी हुई है वही एकता को कायम रख सकेगी और सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा।" कितने आश्चर्य की बात है कि राजगोपालाचारी जैसे विचारक और राजनीतिज्ञ हिन्दी के समर्थन के सम्बन्ध में किये गये अपने पुराने कार्यों और विचारों को स्वयं ही गलत बता रहे हैं। महात्मा गांधी के नेतृत्व में ही उन्होंने हिन्दी-प्रचार का यह कार्य किया था। समझ में नहीं आता—उस समय तो वह कार्य देश की एकता के लिये साधक था और इसीलिये उन्होंने हिन्दी विरोधी आन्दोलनों का विरोध करते हुए मार्च सन् १६३८ को कहा था—"जिस भी लिपि में लिखा जाये, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी हैं। इनके नाम से भी ऐसा ही बोध होता है। अतः ये विरोधी आन्दोलन भ्रमात्मक धारणाओं के कारण ही हुए हैं।" किन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से आज राजाजी को हिन्दी देश की एकता के लिये बाधक नजर आ रही है। राजाजी का यह हिन्दी-विरोधी रुख सन् १६३८ में कहे गये उन्हीं के शब्दों में भ्रमात्मक धारणाओं के कारण ही है। निश्चय ही काल के पंखों पर तैरता हुआ इतिहास देवता स्वतः ही यह निर्णय दे देगा कि राजाजी जैसे नेताओं का हिन्दी-विरोध भ्रामक धारणाओं पर आधारित था।

हिन्दी तो पनपी ही है विरोधों की छाया में। किन्तु जहाँ एक ओर सत्ताधारियों ने उसे अपदस्थ करने की चेष्टा की है, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्र के हित-चिन्तक नेताओं ने एक स्वर में उसके महत्व को स्वीकारा है।

हिन्दी-भाषी ही नहीं अपितु विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, सुभाषचन्द्र बोस, जैसे बंगाल के शीर्षस्थ विचारकों, साहित्यकारों और नेताओं ने हिन्दी के राष्ट्रभाषा और राजभाषा रूप को स्वीकार किया था। विवेकानन्द, टैगोर, बंकिम, सुभाष के बंगाल को भला कैसे हिन्दी-विरोधी मान लिया जायेगा, सिवाय इसके कि कतिपय स्वार्थी राजनीति के खिलाड़ी और अंग्रेजीदाँ लोग हिन्दी-विरोध की आड़ में अपनी गद्दियों और हितों को सुरक्षित रखना चाहते हैं। देश की एकता से दूर तक उनका कोई वास्ता नहीं दीख पड़ता। रानाडे, गोखले, तिलक, महात्मा गांधी, दीनबन्धु, एन्ड्रूज आदि भी अहिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी का जो समर्थन करते थे वह केवल देश की एकता को स्थापित करने के लिये। आज भी काका कालेलकर, विनोबा भावे, मोरारजी देसाई, यशवन्तराव चव्हाण, गोलवालकर, मधुलिमये आदि हिन्दी का समर्थन कर रहे हैं तो क्या ये सन्तों, मन्त्रियों, जननेताओं को देश की एकता से प्रेम नहीं है ? स्पष्ट है कि आज देश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता को बनाये रखने के लिये हिन्दी की आवश्यकता को पहले से कहीं अधिक महसूस किया जाने लगा है। अंग्रेजी को कई दशकों तक अपने से चिपकाये रखकर हमने देख लिया कि यह विदेशी भाषा न केवल हम देशवासियों के उचित विकास में सबसे बड़ी बाधा है अपितु यह देश की एकता को भी धीरे-धीरे समाप्त करने में लगी हुई है। साथ ही, इसने हमारी सांस्कृतिक जड़ों पर भी आघात करना प्रारम्भ कर दिया है जिससे हमारे देश की भारतीयता कम होकर अंग्रेजियत की विषैली हवा फैलती जा रही है। निश्चय ही हमें अपने देश की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकता को बनाये रखने के लिये हिन्दी को अपनाना होगा और अंग्रेजी का मोह छोड़ना होगा।

महात्मा गांधी और हिन्दी—

प्रतिवर्ष दो अक्टूबर को हम अपने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म दिन मनाकर उनके आदर्शों और उनके व्यक्तित्व की महानता का स्मरण कर लेते हैं। किन्तु क्या हम और हमारी सरकार गांधीजी के द्वारा बताये गये मार्ग पर चल पा रहे हैं? गांधी जी ने देश की आत्मा को समझा था और इसीलिये उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित थे। किन्तु खेद है कि गांधीजी के आदर्शों की दुहाई देने वाली कांग्रेसी सरकार ही उनके आदर्शों का पालन करने में सबसे पीछे रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में उनकी मान्यताएँ बड़ी स्पष्ट और राष्ट्रीयता के विकास में योगदान देने वाली थीं किन्तु हमारी सरकार उन्हें पालन करने में सदैव हिचकती रही। गांधीजी यद्यपि अहिन्दी भाषी थे किन्तु उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के महत्त्व को समझ लिया था, अतः अनेक स्थलों पर उन्होंने हिन्दी की उपादेयता और महत्त्व को न केवल मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया अपितु देशवासियों द्वारा हिन्दी अपनाये जाने की जोरदार सिफारिश भी की। यहाँ हम उनके हिन्दी सम्बन्धी विचारों का कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं—

"मैं हमेशा से यह मानता रहा हूँ कि हम किसी हालत में भी प्रान्तीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें। ऐसा करने से हमारा हिन्दी के प्रति कोई पक्षपात नहीं प्रकट होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने के योग्य है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्यक लोग जानते बोलते हों, और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है। यह बात यह सम्मेलन सन् १९१० से बता रहा है और इसका कोई वजन देने लायक विरोध आज तक सुनने में नहीं आया है। अन्य प्रान्तों ने भी इस बात को स्वीकार कर ही लिया है।

अंग्रेजी अन्तरराष्ट्रीय भाषा है। लेकिन राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती है। हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही हो सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।"

विदेशों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता—

हिन्दी को भारत में अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता तो है ही, किन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि विदेशों में भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार यथोचित रूप से हो। लंका, नेपाल, बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया, जापान, अफगानिस्तान आदि भारत के निकटवर्ती देशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की ओर सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी विद्यापीठ आदि हिन्दी प्रचार संस्थाओं को इस ओर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। रूस में हिन्दी का अच्छा प्रचार है किन्तु इस श्रेय की भागी रूसी सरकार ही है। अब समय आ गया है कि हमारी सरकार भी इस ओर ठोस कदम उठाये। इसी माह के प्रारम्भ में मारीशस के हिन्दी-सेवी श्री सोमदत्त बखौरी ने दिल्ली में आयोजित सभा में मार्मिक अपील करते हुए कहा था कि भारत-भूमि से दूर अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशों में बसे भारत-वंशी हिन्दी-भाषियों में न केवल इस महान भाषा के प्रति असीम अनुराग है, अपितु वहाँ साहित्य-सृजन का युग भी आ पहुँचा है। आज आवश्यकता यह है कि भारत का हिन्दी संसार प्रवासी हिन्दी-सेवियों के हिन्दी सृजन को आंचलिक या प्रवासी हिन्दी-साहित्य मानकर हिन्दी-साहित्य में उसे स्थान दे। अतः यह आवश्यक है कि विदेशों में हिन्दी सीखने वालों को अनेकानेक सुविधाएँ प्रदान की जायें, अपितु वहाँ के हिन्दी-सेवियों द्वारा रचित साहित्य को भी यहाँ की जनता के द्वारा अपनाया जाना चाहिये। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि सरकारी तौर पर ही यहीं अपितु गैर सरकारी तौर पर भी विदेशों में चल रहे हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी कार्यक्रम और योजनाओं को सहयोग देना चाहिये। हिन्दी के प्रकाशक विदेशों में स्थित हिन्दी-पुस्तकालयों आदि को अपनी प्रकाशित पुस्तकें दान में देकर सहयोग भाव दिखा सकते हैं।

हर्ष की बात है कि विदेशों में हिन्दी के प्रचार में वृद्धि करने के लिये इधर एक कदम शिक्षा-मन्त्रालय की ओर से उठाया जा रहा है—हमें उम्मीद है कि इसमें वांछित सफलता प्राप्त होगी। इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय ने हिन्दी के पत्राचार पाठ्यक्रम के लिये वित्त-मन्त्रालय अनुदान की स्वीकृति देने का अनुरोध किया है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विदेशों तथा भारत में हिन्दी को लोकप्रिय बनाना है।

शिक्षा-मन्त्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक ने बताया है कि निदेशालय तो इस योजना के विभिन्न पहलुओं को अन्तिम रूप भी दे चुका है और इस अगले वर्ष के शुरू में ही इस पाठ्यक्रम के चालू कर दिये जाने की आशा है।

शिक्षा-मन्त्रालय ने इस सम्बन्ध में परराष्ट्र मन्त्रालय की भी सहायता माँगी है और उससे अनुरोध किया है कि वह शीघ्रातिशीघ्र इस पाठ्यक्रम के शुरू होने का विज्ञापन विदेशों में करदे।

निदेशक महोदय ने बताया है कि यह पत्राचार पाठ्यक्रम इसलिये शुरू किया जा रहा है क्योंकि बहुत से लोगों के पास इतना समय नहीं होता है कि वे कक्षाओं में जाकर अध्ययन कर सकें।

दो वर्षीय पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने के लिए शुरू में ५०० छात्रों को दाखिल किया जायगा। इनमें भारतीय और विदेशों में रहने वाले दोनों ही होंगे। प्रारम्भ में इस पाठ्यक्रम के पाठ अंग्रेजी में जायेंगे। निदेशक महोदय १५ पाठ तो तैयार भी कर चुके हैं।

अन्य प्रान्तीय और विदेशी भाषाओं में भी ये पाठ भेजने की निदेशालय की योजना है। विदेशी छात्रों से प्रति मास पाँच डालर शिक्षा शुल्क लिया जायगा जबकि भारत में रहने वाले छात्रों को प्रति मास पाँच रुपये शिक्षा-शुल्क देना होगा।

दो और दुःखद वियोग—

अभी हम आ० वाजपेयी, पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा डा० लाल के निधन को भूल भी नहीं पाये थे कि हिन्दी के दो और साहित्यकारों का और देहान्त हो गया :—डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी तथा डा० हेमचन्द्र जोशी।

डा० त्रिवेदी बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। चन्दबरदाई और उनका काव्य, रेवा तट समय तथा अंग्रेजी में 'ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ राजस्थानी मेनुस्क्रिप्ट्स इन द कलेक्शन आफ द एशियाटिक सोसायटी' खण्ड १] अति प्रचलित कृतियाँ हैं। जिनसे लेखक की मौलिकता एवं चिन्तन का आभास मिलता है।

सब प्रथम हिन्दी को सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का नारा देने वाले डा० हेमचन्द्र जोशी भी ७३ वर्ष की आयु में स्वर्गस्थ हो गये। वे विश्व की ५० विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता एवं विद्वान थे। आप प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' के भी सम्पादक रह चुके थे तथा प्रसिद्ध उपन्यासकार पं० इलाचन्द्र जोशी के बड़े भाई थे।

'साहित्य-सन्देश' डा० त्रिवेदी एवं डा० जोशी के निधन पर अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा साहित्य में कल्पना तत्व की स्थिति

प्रेमप्रकाश भाटिया

कथा साहित्य में कल्पना की स्थिति बिल्कुल वैसी ही माननी चाहिए जैसे किसी अपङ्ग मनुष्य के लिए वैसाखियों का अवलम्ब, बिना इसकी सहायता के क्या कहानी, क्या उपन्यास, एक डग भी नहीं रख सकते। कहानी और उपन्यास का अस्तित्व अभी तक सुरक्षित और भविष्य परम उज्ज्वल है क्योंकि जन-मानस यह जानते हुये भी कि वे घटनायें, चरित्र, आदर्श आरोपित हैं, कल्पना द्वारा निर्मित हैं, उस पर विश्वास करते हैं, और इस प्रकार उसका पोषण करते हुए चलते हैं। यशपालजी ने कथा-हाहित्य के के सन्दर्भ में कहा था कि "सफल कल्पना वही समझी जायगी जो तथ्य और वास्तविक जान पड़े।"[१]

लेखक जीवन और जगत का तत्ववेत्ता, सूक्ष्म आलोचक और अत्यन्त सूझ-बूझ से विश्लेषण कर मर्म को पकड़ता चलता है। उसके मानस में जगत की प्रकृति और मनः प्रकृति दोनों का जागरूक निवास होता है और वह अपने मनोनुकूल उनका संयोजन-सृजन करता चलता है। कहानी-उपन्यास उसी जीवंत-रस को ग्रहण कर स्वरूप ग्रहण करते चलते हैं। अगर ऐसा न हो तो किसी भी साहित्यांग, कला, मूर्ति की संरचना असम्भव हो जाये। इस प्रकार कल्पना-प्रक्रिया वस्तु निर्माण के आदि से लेकर अन्त तक अपने को व्यस्त रखती है। डा० जगन्नाथ शर्मा ने कथा-साहित्य के संघटन की प्रक्रिया को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—"....रचनाकार के तत्पर चित्त पर जीवन और जगत् के जिस विषय अथवा व्यापार की छाप पड़ जाती है, उससे उसे एक दृश्य की सर्जनात्मक प्रेरणा प्राप्त होती है और कहानी के रूप-विधान का वही प्रेरक अथवा बीज-भाव कहलाता है। लेखक के भीतर इस प्रकार के भाव प्रायः परिवर्तन के रूप में जगते हैं। जहाँ कहीं भी उसके दृष्टि-पथ में कोई मार्मिकता को उभारने वाली बात आ जाती है और उसके भीतर किसी विशेष प्रकार की संवेदना को झंकृत कर देती है, वहीं उसकी कल्पना अपने रंग से उसी बात को नये आकार में सजाने लगती है।"[१]

कथा-साहित्य की मूल आत्मा कल्पना-तत्व ही है। कहानी और उपन्यास के निर्माण में कल्पना का जितना सक्रिय योगदान रहता है, वह अन्य किसी साहित्यिक विधा में सम्भवतः नहीं है और उसी का परिणाम है कि १९ वीं शताब्दी के पश्चात् कहानी और उपन्यास लोकप्रिय होकर जन-जीवन के इतने समीप होगये हैं, जीवन का ही एक अंग बन गये हैं।

वाल्टर एलन का कथन है : "It is the novel which is the most important vehicle of imeginative writing of our time."[२]

अर्थात् काल्पनिक रचनाओं का सबसे अधिक महत्वपूर्ण माध्यम उपन्यास ही हैं।"

बेनर्ड डी. वोटो के अनुसार "Everywhere today the novel comes so close to being the whole imaginative literature that dis-

[१] 'झूठा सच' के नारी पात्र, यशपाल की निगाह में डा० रणवीर रांग्रा, 'धर्मयुग' मई ६५

[१] डा० जगन्नाथ शर्मा : 'कहानी का रचना विधान', पृ० ३८ । द्वि० सं० १९६१

[२] बर्नार्ड डी. वोटो : 'दी वर्ल्ड आफ फिक्शन', पृ. २९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tinction in any other form is frequent as to cause surprise."

अर्थात्, "उपन्यास अन्य साहित्यिक अंगों से कल्पना सम्बन्ध को लेकर इतना समीपस्थ है कि हर स्थान पर इस अन्तर से आश्चर्य ही होता है।"[1]

नैन्सी हेल ने भी कहा है : In all fiction, the degree of success achieved is determined by the strength of the phantasy world that supplies the action.

अर्थात् "प्रत्येक कथा-साहित्य में सफलता की प्राप्ति कल्पना की शक्ति द्वारा ही होती है और उसी से उसे गति प्राप्त होती है।"

हिन्दी के कई मूर्धन्य समीक्षकों ने भी कथा-साहित्य के निर्माण में कल्पना की महत्ता को स्वीकार किया है। डा. श्री कृष्णलाल कहानी के सन्दर्भ में कल्पना का महत्वांकन करते हुए कहा—"सच तो यह है कि बिना कल्पना के कहानी की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किसी भावना को कहानी का रूप देने के लिए, किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रदर्शित करने के लिए, किसी मनोरंजक बात को साहित्यिक रूप प्रदान करने, घटनाओं का क्रम एवं घात-प्रतिघात संयुक्त कथानक की सृष्टि करना कल्पनाशक्ति का ही काम है। वास्तव में आधुनिक कहानी की प्रमुख विशेषता कल्पना के अद्भुत आरोप में है।"[2] और यह भी कि "यों तो साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र और विभाग में कल्पना का उपयोग अत्यावश्यक एवं अनिवार्य हुआ करता है परन्तु कहानी में ही शायद इसका सबसे अधिक उपयोग होता है। कल्पना ही कहानी का प्राण है।"[3]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है—"उपन्यास वह काल्पनिक कृति है, जो गद्य के माध्यम से आख्यान विशेष की सहायता लेकर सामाजिक-जीवन के किसी स्वरूप का यथार्थ आभास देती हुई उक्त जीवन की मार्मिक व्याख्या करती है।"[1]

'कल्पना निर्मित वास्तविक जीवन-कथा ही उपन्यास है।"[2]

डा० शिवदानसिंह चौहान यथार्थ और कल्पना के अन्तर को स्पष्ट कर उसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं। उपन्यास कितना भी यथार्थवादी क्यों न हो, वह एक कल्पना-जन्य कृति है, वाह्य जीवन की केवल यथातथ्य अनुकृति नहीं।[3]

उपन्यासकार या कहानीकार के लिए कल्पना का इतना सीमित रूप स्वीकार करना कि वह मात्र कल्पना करता है और कहानी उपन्यास रच डालता है, ठीक नहीं प्रतीत होता है। जिस प्रकार इतिहासकार अपने सीमित अनुभव में बँधा रहकर आस-पास से भी प्रभावित होता है, उसी प्रकार कथाकार भी अपने सीमित अनुभव में न बँधा रहकर आस-पास की सृष्टि से प्रभाव ग्रहण करता है। अगर वह ऐसा नहीं करेगा, तो अपने घेरे में सीमित संसार को भले ही प्रभावित करले, लेकिन उसका आस-पास अप्रभावित ही रहेगा, संपदित नहीं हो सकेगा। कल्पना की यह दृष्टि-सम्पन्नता ही उसे समर्थ कहानीकार अथवा उपन्यासकार बनाती है। उपन्यास-कहानी के सभी अंग उपांग, जिनमें मनुष्य व्यवहार, चरित्र का वातावरण के अनुकूल निर्माण, प्राकृतिक पृष्ठभूमि, अनुभव युक्त आदर्श सभी का नियंत्रण कल्पनाशक्ति के द्वारा होता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है : 'उपन्यास वह काल्पनिक कृति है जो गद्य के माध्यम से आख्यान विशेष की सहायता लेकर सामाजिक-जीवन के किसी स्वरूप का यथार्थ आभास देती हुई जीनव की मार्मिक व्याख्या करती है।[4]

टालसटाय भी कल्पना को मात्र अनुभव निर्मित

[1] नैन्सी हेल : 'दी रियलटीस आफ़ फिक्शन', पृ. ४६

[2] डा. श्रीकृष्णलाल : 'हिंदी कहानियाँ', संपादित पृ. ३०

[3] वही, पृ. २९

[1] नन्ददुलारे वाजपेयी : 'जयशंकरप्रसाद' पृ. १८६

[2] नन्ददुलारे वाजपेयी : "जयशंकरप्रसाद" पृ० १८६

[3] डा० शिवदानसिंह चौहान : "हिन्दी गद्य साहित्य पृ० ६३।१९५३

[4] नन्ददुलारे वाजपेयी : "प्रेमचन्द : साहित्य विवेचन" पृ० १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देने का साधन नहीं मानते, वरन् वे इसे एक अत्यन्त शक्तिशाली निर्माण शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार "It is only when his imagi. nation is more than usually stimilated by time steadily and relentlessly moviug on that the novelist is able to illuminate vividly for us the eternal moment of intense experience."

अर्थात् "उपन्यासकार कल्पना की सतत प्रवाहित रहने वाली तथा शक्ति संवेग युक्त तत्त्व से झिंझोड़े जाने पर ही अन्तरंग अनुभवों के "शाश्वत क्षणों" का निर्माण करता है।"

वाल्टर ऐलेन ने भी कल्पना के साथ समाज के सम्बन्ध को स्वीकार किया है। उसने कहा है—"Every novelist, gives us in his own personal, idiosyncratic visin of the world. The vision is acted out by images of men and women. It is, so to speak, populated and this is why we may quite legitamely talkabout a novelists world."[१]

अर्थात् 'प्रत्येक उपन्यासकार तब अपनी औपन्यासिक कृतियों में अपने व्यक्तिगत स्वानुभूत संसार के स्वप्न-चित्र दर्शन करता है। उसका यह स्वप्नचित्र सांसारिक पुरुषों और स्त्रियों का ही बिम्ब रूप है। यह उसी स्वरूप से निर्मित है और इसी कारण हम सतत् रूप से उस संसार से अपने आप को जुड़ा पाते हैं।

डा० श्यामसुन्दर दास के कथन को हम उपर्युक्त कथनों के सार रूप में ग्रहण कर सकते है। "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक छाया है। काल्पनिक कथा का अर्थ उस कथा से है जो कल्पना की सहायता से अधिक मार्मिक, सुरक्षित और ग्राह्य बनाई गई हो, जिसमें सुन्दर चयनशक्ति की सहायता से जीवन की किसी उद्दिष्ट अंश की यथा रुचि रूप-रेखा अङ्कित की गई हो, जिसमें अनावश्यक अंश भी न हो और जो अपनी ही पूर्णता में आकाश के चन्द्रमा की भाँति चमक उठे। ऐसी काल्पनिक-कथा में असत्य का अंश चन्द्रमा की कालिमा की भाँति प्रकाश में में लुप्त हो जाता है।[१]

लेकिन कथाकृति की श्रेष्ठता के लिये कल्पना और यथार्थ कल्पना और जीवन कल्पना और कृतिकार की दृष्टि में एक सम-सन्तुलन की आवश्यकता अत्यावश्यक है और उसके बीच एक स्पष्ट विभाजन-रेखा हमें स्पष्ट लक्षित होनी चाहिये, नहीं तो कथाकृति मात्र 'खेल' बनकर रह जायगी। कल्पना में 'असत्य का अंश' निश्चित रूप से विद्यमान है, लेकिन कथाकार कृति का अंग, अभिन्न अंग बनकर कृति की सम्पूर्ण गरिमा में अपने आप को व्यर्थ सिद्ध कर देता है जैसाकि 'चन्द्रमा की कालिमा' प्रकाश में लुप्त हो जाती है और वहीं कल्पना श्लाघ्य हो जाती है, वरणीय बन जाती है। प्रसिद्ध कथा आलोचक नेन्सीहेल ने कहा है—

"Too much reality and not enough phantasy renders a sterile plot. Too much imagination and too little of the real world may end up in aweful little tales, I can only call puckish. In any case, imagination is the matrix of the story idea; and what is needed if the story is to be given birth is a feeling for imagining feeling for rather than suspicion of it."[२]

अर्थात् अत्यधिक वास्तविकता और कल्पना की न्यूनता कथानक को बेजान कर देते हैं। अत्यधिक कल्पना और अत्यन्त न्यूनता वास्तव कथा को बचकाना बना देते हैं जिसे मैं केवल कौतुक की संज्ञा दे सकता हूँ। हर परिस्थिति में कल्पना कथाविचार के लिये 'साँचे' के समान है, और कथा जन्म देने के लिये जो वस्तु परमावश्यक है, वह है कल्पनों की भावना

---

१ वाल्टर एलन : "दी इंग्लिश नावेल", पृ० इन्ट्रोडक्शन, १५।

१ डा. श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन पृ० १४७

२ नैन्सीहेल : "दी रियटलीस आफ फिक्शन" पृष्ठ १२०–२१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्पर्श, उसके प्रति एक आस्था, न कि सन्देहास्पद स्थिति को इसके द्वारा जन्म देना है।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का कहना है कि "उपन्यासों में कल्पना के द्वारा जो मायालोक निर्मित हुआ है, उसमें एक साधारण कथा भी कौतूहलप्रद, विस्मयप्रद, आतंकप्रद होने के कारण आनन्दप्रद हो जाती है। उनमें कल्पना का स्वच्छन्द-विकास है, मन की कोई भी ऐसी स्थिति नहीं जो उसमें न अङ्कित की गई हो।[1]

लेकिन कथा-साहित्य में कल्पना की अनिवार्यता की चर्चा करते हुये कविता में कल्पना और कथा-साहित्य में कल्पना की संस्थिति पर भी विचार कर लिया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही साहित्यांगों की स्थिति और निर्माण में कल्पना प्रमुख तत्व है। फिर भी उसमें अन्तर अवश्य है। कविता में कल्पना अधिक स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त होती है। उसमें यथार्थ की अनिवार्यता पर उतना जोर नहीं दिया जा सकता, जितना कहानी-उपन्यास के निर्माण के लिये। कहानी-उपन्यास के लिये यथार्थ शरीर है और कल्पना उसके प्राण। उसके बिना उसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। श्री केदारनाथसिंह ने इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट करते हुये कहा है—"कवि-कल्पना और कथाकार की कल्पना में यदि कोई अन्तर हो सकता है तो केवल इतना ही कि कवि मानवीय भावनाओं तथा संवेगों पर आधारित होने के कारण तात्कालिक स्थूल सीमाओं का बन्धन नहीं स्वीकार करता जबकि कथाकार पग-पग पर घटनाओं से बँधा हुआ होता है।"[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कहानी-उपन्यास के निर्माण में 'कल्पना' जीवन-दायिनी शक्ति है, जिसके आधार के बिना कहानी-उपन्यास का एक-एक तत्त्व पंगु है, निर्जीव है। कल्पना-तत्त्व की स्थिति कहानी-उपन्यास के लिये अनिवार्य नियति है, अत्यन्त आवश्यक पोषण-तत्त्व है।

[1] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : "हिन्दी कथा-साहित्य" पृ० २१।

[2] केदारनाथसिंह : कल्पना और छायावाद', पृ० ३२

स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि कथा-साहित्य का जो सर्वाङ्गीण विकास पाश्चात्य साहित्य में १७वीं शताब्दी और भारतीय साहित्य में १९वीं शताब्दी में हुआ, उसकी परम्परा दीर्घ क्यों न हुई, इतनी अल्प क्यों है? गद्य-साहित्य का विकास भी किसी भी देश के साहित्य में मध्यकाल की अपेक्षा आधुनिक-काव्य में अधिक द्रुतगति से हुआ, क्यों? इस सन्दर्भ में श्री नारायण मिश्र की निम्न उक्ति विशेष महत्त्व की है—

"उपन्यास में····प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए भाषा और शैली में बड़ी नफासत होनी चाहिए और लेखक में बड़ा सलीका होना चाहिए। यह नफासत और सलीका सभ्य समाज में उत्पन्न होते हैं, और उसकी सभ्यता के माप समझे जाते हैं। इन प्रभावों के लिए गद्य बहुत काल में तैयार होता है। यही कारण है कि किसी भाषा के साहित्य में उपन्यास प्रारम्भिक काल में नहीं लिखा गया। जब तक गद्य उन्नति पाकर कल्पना को पूर्ण स्वतन्त्रता देने और आविष्कार के योग्य नहीं हो जाता, उसमें श्रेष्ठ साहित्य की रचना नहीं की जा सकती।"[1]

उपरोक्त कथन में अन्तिम पंक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। कल्पना के समुचित विकास के साथ कथा-साहित्य का भविष्य जुड़ा हुआ है। लेकिन एक बात विशेष महत्व की है। अंग्रेजी साहित्य में १८ वीं शताब्दी से पूर्व का कथा-साहित्य और हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचन्द पूर्व' कथा-साहित्य में कल्पना का 'स्वच्छन्द-विलास' ही विशेष रूप से देखने को मिलता है, जिसे अंग्रेजी में रोमाण्टिक इमेजिनेशन', की संज्ञा दी जाती है। इस काल का कथा-साहित्य प्रेम, शौर्य, भूत, प्रेत, परियों से ही बँधा, बुना गया है। एक पाश्चात्य आलोचक का कथन है :

"The preoccupation of eighteenth century novelists with the real relationship of novel, the epic and romance had its uses.

[1] श्री नारायण मिश्र : अंग्रेजी उपन्यास का विकास और उसकी रचना पद्धति : भूमिका, पृ. १५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It kept the creative imagination exposed to the "appeal of wonder" of the old story tellers, even in the teeth of the disapproval of reason as the moral sense with their allied demands that probability strictly kept."

अर्थात् "१८ वीं शताब्दी पूर्व के उपन्यासकारों का उपन्यास, महाकाव्य और रोमांस से सम्बन्ध अपने महत्व को अङ्कित करता है। इसने अपने प्राचीन कथाकारों का अनुगमन कर सृजनात्मक कल्पना को 'आश्चर्यवृत्ति' की परिसीमा तक ही सीमित रखा। यहाँ तक कि कार्य-कारण के औचित्य और सम्भावना-विहित आचार-सम्बन्धों तक का विजड़ित करके रख दिया।"

डा० देवराज उपाध्याय ने इस "आश्चर्य वृत्ति' के औचित्य-अनौचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :

"कथाओं में परियाँ आयें तथा जायें, इसकी कोई परवाह नहीं। पाठक को तो इतने से ही मतलब है कि ये सब एक मानव सम्पर्क से आ रहे हैं, क्योंकि वही मानव है, वे उसे ही प्रतिक्रिया तत्पर कर रहे हैं, उसमें ही कुछ प्रतिक्रियायें उत्पन्न कर रहे हैं। इस जगत का रहने वाला मानव भले ही कुछ देर के लिए उठाकर कथा के क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर दिया जाय, पर वह रहेगा मानव ही, उसका मानवीय धर्म वहाँ भी उसके साथ लगा रहेगा और वह हर हालत में उसी की तरह प्रभावित होगा, जिस तरह एक मानव होता है।"[1]

इस प्रकार पहले पाश्चात्य कथा साहित्य में भी और इधर २० वीं शताब्दी के हिन्दी कथा साहित्य में कल्पना की शक्ति को लेकर क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। कथा साहित्य में जहाँ पहले कल्पना तत्व यथार्थ को मनगढंत घटनाओं के वर्णन चित्रण से झुठलाता प्रतीत होता था, वह अधिक ठोस धरातल को स्पर्श करता प्रतीत हुआ। उसने जान लिया कहानी में सत्य प्रधान है जरूर, कल्पना गौण है, परन्तु नितांत उपेक्षा उसकी किसी भी दशा में नहीं की जा सकती। एक सर्व शक्तिमान प्रभुसत्ताधारी के समान कथाकार हमारे सामने एक सीमित रंगभूमि का निर्माण करता है जहाँ जीवन की विभिन्न लीलाओं का अवतरण किया जा सके। उस रंगभूमि पर एक नन्हा व्यक्ति प्रवेश करता है और कथाकार की प्रतिभा से धीरे-धीरे वह व्यक्ति विशाल होता-होता आकाश को छूने लगता है, उस एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में सारे विश्व का व्यक्तित्व समा जाता है, उसके हृदय का स्पन्दन हो जाता है। यह चमत्कार रचनात्मक कल्पनाशक्ति का ही चमत्कार है और उसके सीमित आकार में विश्वालोक की व्याप्ति है।

हम प्रश्न कर सकते हैं कि कथा-साहित्य में कल्पना की इतनी सशक्त भूमिका के एकाएक प्रकट होने का कारण क्या है ? अगर हम सूक्ष्मता से विचार करें तो इसका बहुत कुछ श्रेय विज्ञान की विकसित उपलब्धियों को दे सकते हैं। विज्ञान के नये नये आविष्कारों ने हमारा अनुभव इतना सुदीर्घ-पैना कर दिया है, हमारे ज्ञान को ऐसी तेज धार दे दी है, हमारे अनुभवों को ऐसे मानदण्ड प्रदान किये हैं कि जीवन चमत्कार-सा दिखाई देने लगता है। जहाँ ज्ञान का विस्तार होता है, वहाँ कल्पना भी सशक्त हो उठती है, संवेदना नुकीली और जिज्ञासायें पंखशील हो सृजन के आकाश में पर फैलाने लगती है। तभी तो आ० नन्ददुलारे वाजपेयी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य कर कहते हैं।

"कहानियों के क्षेत्र में दूसरी भारतीय प्रवृत्ति यह रही है कि उसमें कोरे कल्पनात्मक अनुरंजन की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान का अधिकांश सन्निवेश हुआ है। 'सहस्र रजनी' की-सी काल्पनिकता भारतीय कहानियों में कम देखा जाती है।...भारतीय कहानियों प्रेम चर्चा तथा कल्पना क्षेत्र में रमण की अपेक्षा विवेकपूर्ण जीवनानुभव को कहानियों में अधिक स्थान दिया है।"[1]

हिन्दी कथा-साहित्य में कल्पना के स्वरूप की यह शक्ति उसे अधिक प्रांजल स्वरूप देगी, ऐसी हमें आशा करनी चाहिए।

—कैलाश भवन नई बस्ती, रामगंज अजमेर (राज.)

[1] डा० देवराज उपाध्याय : 'कथा के तत्व', पृ. २०-२१

[1] नन्ददुलारे वाजपेयी : 'जयशङ्कर प्रसाद' पृ. २४३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस के प्रारंभ की वंदना-प्रक्रिया

डा० रामबाबू शर्मा

गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'मानस' के प्रारम्भ में वन्दना की विस्तृत योजना की है। वैसे तो प्राचीन काल से लेकर आज तक के प्रायः सभी प्रमुख परम्परावादी कवियों ने अपने प्रबन्ध-काव्यों में मंगलाचरण के रूप में सरस्वती, गणेश आदि सिद्धि प्रदाता देवताओं की वन्दना की है और उनसे प्रस्तुत कार्य के सम्पादन के लिए वांछित बुद्धि अथवा सिद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की है। लेकिन मानस के प्रारम्भ की वन्दनाएँ अधिक व्यापक तथा साभिप्राय हैं। मंगलाचरण में समाहित वाणी विनायक, भवानी-शंकर, कवीश्वर, कपीश्वर और सीताराम की वन्दनाओं के बाद (जो संस्कृत में हैं) पुनः गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वन्दना (हिन्दी में) की गई है। तत्पश्चात् वन्दनाओं का एक लम्बा क्रम प्रारम्भ होता है। इसमें ब्राह्मण-सन्त वन्दना, खल वन्दना, सन्त-असन्त वन्दना, रामरूप से जीवमात्र की वन्दना, कवि वन्दना, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिव-पार्वती आदि की वन्दना, श्री सीताराम धाम परिकर वन्दना और श्री नाम वन्दना है। इसे देखने से यह स्पष्ट होता है कि वन्दना के इस विस्तृत क्रम में तुलसी ने जिन-जिन को ग्रहण किया है उन्हें किसी न किसी रूप में रामकथा में समाहित किया है। ये सभी राम अथवा रामकथा के जानने तथा उस तक पहुँचने के साधन रूप में ग्रहण किये गये हैं। यदि तुलसी की दृष्टि में उनका ये उपयोग न होता तो वन्दना के इतने लम्बे क्रम की क्या आवश्यकता थी ? ये सब क्यों वन्दनीय हैं, इसे कवि ने साथ ही साथ संकेत रूप में स्पष्ट भी किया है। लेकिन ये संकेत कहीं-कहीं स्पष्ट नहीं हो पाये हैं इसलिए कुछ नौसिखिये वन्दना की इस लड़ी की व्यर्थता पर विचार करने लगते हैं। वे तुलसी की गुण-ग्राहकता, भक्ति-प्रवणता तथा काव्य-कौशल की ओर दृष्टिपात नहीं कर पाते।

तुलसी राम कथा लिखने बैठे हैं। रामकथा के स्रोत अनेक हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, देवता आदि उसका वर्णन तो करते रहे हैं लेकिन उनमें से कोई कथा के मर्म तक नहीं पहुँचा है। उसी कथा के लिखने का प्रयत्न करना क्या इतना सुगम कार्य है ? अपनी बुद्धि और सामर्थ्य का भी उन्हें ज्ञान है[1]—वे दम्भी कवि नहीं हैं जो सब कुछ जानने का दावा करते हैं। वे तो रामकथा का शतांश भी नहीं जानते। लेकिन लोक-कल्याण की कामना से इसका वर्णन करने बैठे हैं और चाहते हैं कि कथा का रूप ऐसा हो जो लोक-कल्याण में सहायक हो। काम बड़ा भारी है—वाह्य सहायता अपेक्षित है। यदि सहायक ऐसे मिल सकें जो इसके अनुभवी हों तो कुछ सुविधा की सम्भावना है। सबसे प्रथम समस्या वाणी सम्बन्धी है कि उचित शब्द-अर्थ सूझें जिससे भावों की सफल अभिव्यक्ति हो। सरस्वती की कृपा से ही यह सम्भव है। तत्पश्चात् रामकथा के ज्ञान की समस्या है। कोई भी उसे पूरी तरह नहीं जान पाया है। हाँ, शंकर ने उसे समझा है और उन्हीं के द्वारा उसका प्रचार हुआ है। पार्वती को अधिकारी श्रोता जानकर ही शंकर ने उन्हें रामकथा सुनाई थी। अतः रामकथा के उस मर्मी की उसके अधिकारी श्रोता के साथ वन्दना आवश्यक थी।

[1] निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। मानस १।८।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी कृपा के बिना तो सिद्धजन भी अपने हृदय में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। ज्ञानदाता शंकर के समान ही गुरु है जो शिष्य के लिए असम्भव को भी सम्भव बना देता है। वाल्मीकि रामकथा के आदि-कवि हैं और हनुमान राम के अनन्य भक्त; बिना उन दोनों की सहायता के रामचरित्र की गहनता तक पहुँचना असम्भव है। अतः उनसे सहायता लेने के लिए उनकी वन्दना भी आवश्यक है। लेकिन बिना सीताराम की कृपा के क्या अन्य देवी-देवताओं की सहायता कोई फल दे सकती है ? यही अनुभव करके कवि ने उनकी कृपा प्राप्ति के लिए उनसे भी प्रार्थना की है।

इतने सहायकों को लेकर तुलसी ने अनुभव किया कि शायद 'रघुनाथ गाथा को भाषाबद्ध' करने की दिशा में प्रयत्न किया जा सकता है। इतने कुशल 'टैक्नीशियनों' के होते हुए भी वस्तु की पूर्णता के लिए अन्य साधन जुटाने थे। 'सज्जन पीरा हरने' के उद्देश्य से ही पृथ्वी पर अवतार लेने वाले राम के चरित्र का गान करते समय महीसुर, सुजन समाज तथा सन्त समाज को कैसे भुलाया जा सकता है ? इनके यश गान तथा वन्दना के बिना तो रामचरित्र की पूर्णता ही नहीं है। यही तो वे स्थल हैं जहाँ राम-भक्ति रूपी सुरसरि बहती है—

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू ॥
रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ॥

वही १।२ ७-८

सन्तों के चरित्र रामचरित्र के प्रतिरूप हैं। अतः उनके द्वारा रामचरित्र की विशेषताओं को समझना सहज है। उनके लिए सब एक जैसे हैं—'बन्दउँ सन्त समान चित हित अनहित नहिं कोइ। १।३ क, सन्त राम के समान 'समानचित' होने से ही वन्दनीय हैं। उनसे उन्होंने 'रामचरण रति देने' की प्रार्थना की है—

सन्त सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु ॥

—वही १।३ ख

लेकिन उन्होंने तो खलों को भी वन्दनीय बताया है। वे सन्तों के प्रतिकूल आचरण वाले होने के कारण ही वन्दनीय हैं। यदि खल न हों तो सन्तों का महत्व क्या रहेगा ? सन्तों की महिमा स्थापित कराने के लिए ही उनका महत्त्व है—उनकी यह उपयोगिता ही वन्दनीय है। जितना अधिक वे सन्तों के दोषों का वर्णन करेंगे, उतना ही सन्तों को सुधरने का अवसर मिलेगा। इसीलिए तुलसी उन्हें हजार मुखों वाले शेष जैसे समझकर ही वन्दना करते हैं—[1]

बन्दउँ खल जस सेष सरोषा।
सहस बदन बरनइ परदोषा ॥ — वही

वह उन्हें दूसरों के पापों को सुनने तथा देखने के लिए दस हजार कानों वाले पृथु तथा हजार नेत्रों वाले इन्द्र के समान मानकर वन्दना करते हैं। वन्दना करने पर भी तुलसी का यह विश्वास है कि इतने पर भी दुष्ट अपना स्वभाव नहीं छोड़ेंगे और इसी में तुलसी का कल्याण है। क्योंकि जब दुष्ट ही न होंगे तो राम का अवतार भी न होगा[1] और उस समय रामकथा की वस्तु कहाँ प्राप्त होगी ? खल ही तो कथावस्तु के निमित्त हैं—इसी से वन्दनीय हैं। रामकथा के राक्षस खल ही हैं जो सुवेश धारण किए रहने पर भी कार्यों से पहचाने जाते हैं। जाम्बवन्त और हनुमान वेश से खल जैसे प्रतीत होते भी कार्यों से सन्तों की कोटि में आते हैं। खल और सन्त का भेद निरीक्षण द्वारा जाना जा सकता है। दुष्ट भी सत्संग पाने से सुधर सकते हैं और वन्दनीय हो जाते हैं। जब तक दुष्ट दुष्ट है तब तक रामकथा के कारण हैं और यदि सत्संग से सुधरते हैं तो सन्त होने के कारण वन्दनीय हो ही जाते हैं। यह मर्म की बात है—सामान्य जन इसे नहीं समझ पाते—तुलसी ने सत्संग की महिमा को समझा है, इसीलिए वे खलों की वन्दना भी कर सके हैं।

तत्पश्चात् कवि राम के नाते से जगत के सभी जड़ एवं चेतन पदार्थों को राममय जानकर उनकी वन्दना करता है। इसके अन्तर्गत देवता, दैत्य, मनुष्य,

[1] देखिए, मानस १।१२१।६-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर सभी आ जाते हैं—सभी राममय हैं, अतः राम रूप के कारण वन्दनीय हैं। दृष्टिकोण ही यही विशालता तुलसी की विशेषता है। वाह्य रूप पर उसकी दृष्टि नहीं जाती, वह तो आन्तरिक महत्त्व पर जाता है। चौरासी लाख योनियों से भरे इस जगत् की वन्दना करने का कारण यह है कि वे सीताराम मय हैं, साथ ही कवि को उन सब की कृपा के बिना अपनी बुद्धि पर भरोसा नहीं रह पाता—

निज बुधिबल भरोस मोहिं नाहीं।
तातें विनय करउँ सब पाहीं॥

वही, १।८।४

राममय सम्पूर्ण जगत् की सहायता के बिना 'लघुमति' से रामचरित का अवगाहन कहाँ संभव है?

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा।
लघुमति मोरि चरित अवगाहा॥

वही, १।८।५

सबकी सहायता लेकर यदि राम कथा का गान किया जावेगा तो कवि की अल्पता के कारण हीन-कोटि का बन पड़ने पर भी अधिक बुराई नहीं है क्योंकि उसमें वर्तमान वस्तु की श्रेष्ठता का गुण' अन्य अवगुणों को ढँक देगा। तुलसी को विश्वास है कि रामकथा सबको प्रिय होगी, उनके इस विश्वास का आधार है कि उसके गान में जब सबकी सहायता ली गई है तो सब उसे अपनी वस्तु समझकर पसन्द करेंगे ही? वाल्मीकि, व्यास, आदि पुराने कवि जो राम-चरित्र गान करके तुलसी को मार्ग दिखा चुके थे—वन्दनीय हैं। कलियुग के कवि भी इसी कारण (राम से सम्बन्धित होने के कारण) तुलसी के लिए प्रणम्य हैं—

कलि के कबिन्ह करउँ परनामा।
जिन बरने रघुपति गुन ग्रामा॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने।
भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइ इहिं आगे।
प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे॥

वही, १।१४।४–६

वन्दना करके वे उनसे वरदान चाहते हैं कि साधु-समाज में उनकी कविता का आदर हो—आदर इस-लिए नहीं कि वे वर्णन करने में चतुर हैं, बल्कि इस लिए कि वस्तु अच्छी है—'सुरसरि सम सबका हित करने वाली' है। विधि ने भवसागर का निर्माण किया जिसके कारण रामकथा गान की आवश्यकता हुई और कथा की वस्तु का समावेश वेदों में है, इसी से दोनों वन्दनीय हैं। देवता, विप्र, और पंडित मनो-रथों को पूर्ण करने में सहायक हो सकते हैं। सरस्वती और गङ्गा मनोहर चरित्र वाली होने से अज्ञान का नाश करती हैं। पार्वती शंकर तो माता-पिता ही हैं। और पुत्र तुलसी का सच्चा हित करने वाले हैं, उनकी कृपा से ही तुलसी की कविता सुशोभित हो सकती है— भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती।

वही, १।१५।६

राम तो परम वन्दनीय हैं ही! उनसे सम्बन्धित सभी स्थान, वस्तु, प्राणी आदि भी वन्दनीय हैं। अवध, सरयू, राम की कृपा प्राप्त अवध के निवासी, माता कौशल्या, पिता दशरथ, अन्य माताएँ सब वन्द-नीय हैं। राम से सम्बन्धित होने के कारण ही वे महिमा की सीमा हैं—

जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता।
महिमा अवधि राम पितु माता॥

वही, १।१६।८

राम से अटल प्रेम रखने वाले जनक, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, जामवन्त, अन्य वानर जो बिन काम राम के चेरे हैं—वन्दनीय हैं। सीताराम के चरणों की वन्दना के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है—वे तो परम वन्दनीय हैं ही। दीन-दुखियों पर कृपा करने वाला उन जैसा और कौन है—

बँदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

वही, १।१८

सबसे अन्त में कवि ने श्री रामनाम का अमित प्रभाव दिखाकर उनकी वन्दना की है। यही परम तत्व है। कवि ने प्रारम्भ से अंत तक जिनकी वन्दना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है, उन सबके लिए भी रामनाम वन्दनीय है। यह सबको प्रिय है, सबसे श्रेष्ठ है। राम से भी राम नाम बड़ा है—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥

वही, १।२३

कलियुग में रामनाम ही एक मात्र अवलम्ब है। कवि को इसके प्रताप से ही रामकथा गान में सफल होने की आशा है—

सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा।
करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥

वही, १।२८।२

अन्त में राम के शील का गानकर एक बार पुनः सबको प्रणाम करके वे याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवाद का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'मानस' के प्रारम्भ की वन्दनाएँ साभिप्राय हैं। इतने बड़े काम को प्रारम्भ करते समय इतने बड़े सहयोग की आवश्यकता भी थी। रामचरित से जिस किसी का भी किसी प्रकार का भी सम्बन्ध हो सकता था—चाहे कथा के अङ्ग हों, राम से सम्बन्धित हों, उनके प्रेमी हों, शत्रु हों—सभी वन्दनीय हैं। तुलसी के वन्दनीय राम हैं और उनसे सम्बन्ध रखने के कारण ही और सब भी वन्दनीय हो जाते हैं। 'नाते सकल राम के मनियत' वाले सिद्धान्त को वन्दना के इस क्रम में भी देखा जा सकता है।

—हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति (आन्ध्र)

(शेषांश पृष्ठ १६० का)

निबन्धकारों को भी स्तोत्र-रचना की ओर प्रेरित करते रहे। इनकी देखा-देखी अनेक स्तोत्रों की रचना हुई। पं० राधाचरण गोस्वामी रचित 'मूषक स्तोत्र', 'नापित स्तोत्र', 'मिस्टर बूट', पं० बालकृष्ण भट्ट रचित 'वधूस्तनराज' आदि इसी परम्परा की रचनाएँ हैं। स्पष्ट है कि संस्कृत की धर्मप्रधान स्तोत्र शैली को निबन्धगत हास्य-व्यंग्य की ओर मोड़ते तथा सजीवता एवं सोद्देश्यता की दृष्टि से परवर्ती स्तोत्रकारों के आदि स्तोत्र के रूप में भारतेन्दु के हास्य-व्यंग्यात्मक स्तोत्रों का विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है।

—लोहानीपुर, कदमकुआँ पटना—३

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ सदस्य ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलतः हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अतः सभी सदस्य अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वतः ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण की मुरली एवं उसकी ध्वनि

कु० आर० सुगन्धा

सूर ने मुरली के सम्बन्ध में बहुसंख्यक पद कहे हैं। सूर ही नहीं, भारत की अनेक भाषाओं के बहुत से भक्त कवियों ने कृष्ण की वंशी की मोहिनी-शक्ति का गुणगान किया है। मूल में यह प्रसङ्ग भागवत में आया है जहाँ उसे वेणु-गीत कहते हैं। वेणु तो स्वर वाली वंशी है जो मुखर होकर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। अतः वल्लभाचार्य ने कहा है कि वेणु-गीत से भगवान के नामात्मक स्वरूप का बोध होता है। उन्होंने वेणु की व्युत्पत्ति बतलाते हुए 'व' से उस ब्रह्म-सुख को ग्रहण किया है जिसके सामने 'इ' संसार का सुख 'अणु' नगण्य बनकर लुप्त हो जाता है। इस प्रकार कृष्ण की वेणु निस्साधन जीवों को ब्रह्म-सुख में लीन करने का साधन है। सूरदास तो आचार्य वल्लभ के शिष्य थे और वे स्वयं संगीतज्ञ भी थे। इन दोनों के अलावा वे भक्त-कवि थे। इसलिए उनकी कविता मुरली की ध्वनि के माधुर्य से जहां एक ओर ओतप्रोत है तो दूसरी ओर वह आध्यात्मिकता से गूँज उठती दिखायी देती है।

नाद तो शब्द-ब्रह्म का प्रतीक है। हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर जो अनहद सुनाई पड़ता है उसे वंशी ध्वनि के साथ उपमित किया जाता है। जिस प्रकार विष्णु के पास शंख था, उसी प्रकार कृष्ण के पास नाद का माध्यम मुरली है। नाद का निरपेक्ष रूप सत्य है, नाद या सङ्गीत से 'सुन्दर' तत्व जुड़ता है। कृष्णावतार में इस प्रकार 'सत्य' के साथ 'सुन्दर' का योग दिखाया गया है। कृष्ण के समान कलाविद् पौराणिक कथाओं में और कोई नहीं मिलता। यही कारण है कि कृष्ण में 'सुन्दर' तत्त्व अधिक मिलता है। भटकी गयी जीवात्माओं (गोपिकाओं) को एकत्रित करने का काम नाद या मुरली ही करती है। जब ब्रह्म के द्वारा एक दिव्य आह्वान मिलता है। तब जीव संसार के बन्धनों को तोड़कर सामीप्य-लाभ के लिए भाग जाते हैं। सांसारिक मर्यादाओं को तुड़वाने का काम स्वयं कृष्ण की मुरली करती है—

"जब मोहन मुरली अधर धरी।
गृह व्यवहार थके आरजपथ तजत न संक करी॥"

प्रत्येक भक्ति-साहित्य में ईश्वर की नाम-महिमा, रूप महिमा, गुण-महिमा इत्यादि का सांगोपांग वर्णन मिलता है। जैसा कि हमने पहले ही कहा है मुरली की ध्वनि ईश्वर के नामात्मक स्वरूप की द्योतक है। स्वयं तुलसीदास ने अनेक स्थानों पर राम-नाम पर अपने व्यापक विचार प्रस्तुत किये हैं। परन्तु सूर और तुलसी में इस सम्बन्ध में महान् अन्तर दीख पड़ता है। यह अन्तर भावात्मकता का अन्तर है। सूर की वंशी में नाम की महिमा अधिक सुरीली होकर व्यञ्जित होती है जहाँ तुलसी में भावात्मकता की अपेक्षा उपदेशात्मकता अधिक मात्रा में व्यंजित होती है। इसी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है—"तुलसी के नाम गुण-गान में निश्छल उद्गारों का एक स्वच्छ प्रवाह है और विश्वास की ऐसी लयकारी तरङ्गें हैं जो बिना सूचना दिये ही अपनी ओर खींच लेती है। किन्तु सूर की वंशी-ध्वनि में वह मोहिनी लय है जिसमें स्वेच्छा से ही जीव लीन होते, स्वेच्छा से ही तन्मय हो जाते हैं।" इस प्रकार सूर की मुरली में नाम का सौन्दर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष अधिक खिला है।

यहाँ पर यह प्रश्न उलङ्घन करने योग्य नहीं है कि कवि सूर ने 'मुरली' में सौन्दर्य-पक्ष को कैसे अधिकाधिक जुड़ाया है? यह कार्य मुरली के प्रभाव वर्णन मात्र से ही नहीं सम्पन्न हुआ, वरन् कवि ने मुरली को मानवीयता प्रदान की और अलग व्यक्तित्व का निर्माण किया है। मानवीय रूप प्रदान करने पर वेणु के प्रति गोपियों के मन में असूया इत्यादि स्त्री-सुलभ भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक हो गया है। इस प्रकार कवि ने मुरली के माध्यम से प्राकृत मानवीय भावों का स्पर्श किया है जिससे विभिन्न रसों की निष्पत्ति होती है।

यह बाँस की बाँसुरी इतना महत्त्व अधिकृत कर लेती है कि स्वयं श्रीकृष्ण इसके वश में हो जाते हैं और उसके सम्मुख अपनी प्रिय गोपिकाओं को भी विस्मृत कर देते हैं। वेणु-नाद से स्वयं कृष्ण इतने आकर्षित हो जाते है कि वे एक पैर से खड़े हो जाते हैं अपने अधरों की सेज में उसे सुलाते हैं और अपने कर-कमलों से उसे दबाते हैं। कोरे बाँस की बाँसुरी जिनमें छेद ही छेद हैं कृष्ण की इतनी प्रिय बन जाए और प्रिय बनकर चराचर पर अधिकार करले इससे जिन रहस्यों का संकेत होता है वह स्वयं ही सरस रहस्य है। सूर ने वंशी ध्वनि के प्रभाव को व्यापक रूप में सरस रीति से स्पष्ट रूप में दिखाया है--'मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि मुनि सिद्ध समाधि हरी॥ क्या जड़, क्या चेतन सब उसके आह्लादक, मनोहारी नाद से आनन्दित हो रहे हैं। इस वर्णन में सूर कहीं-कहीं इतने निमग्न हो गये हैं कि उन्हें अपना भान तक नहीं रहा जैसे मुरली में सूर और सूर में मुरली समायी हुई हो। मुरली के इसी प्रभाव को दिखाने के लिए सूर की कल्पना ने वंशी को 'व्यतिरेक' अलङ्कार के द्वारा ब्रह्मा से भी बढ़कर सिद्ध किया है।

मुरली तो गोपिकाओं की सौत बन गयी। गोवर्धन को उठाने वाले गिरिधर को भी वह झुकाती है। सचमुच मुरली कृष्ण को नचाती है। गोपियाँ मुरली को सपत्नी की ही दृष्टि से नहीं देखतीं बल्कि मानवती के रूप में भी वर्णन करती हैं। माननी मुरली के इशारे पर कृष्ण नाचते हैं। गोपियों के इस असूया भाव के द्वारा मुरली का प्रभाव विशद रूप में दिखाया गया है--'सखी री मुरली लीजै चोरी।' वंशी की इस मोहिनी शक्ति का कारण कवि सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे स्वयं कहते हैं कि मुरली का गर्व स्वाभाविक है। क्योंकि उस गर्व के पीछे कठिन तपस्या छिपी हुई है। न जाने कितनी वर्षा, कितना शीत, कितना आतप इसके सिर पर उतर गया था, फिर भी वह मुरली अविचलित बनी रही और तप का अन्त तक निर्वाह किया था--'मुरली तप कियौ तनु जारि।'

श्रीकृष्ण गायों को हाँकने के लिए मुरली बजाते थे। यह व्यावहारिक उपयोगितावादी पक्ष है। इसके अतिरिक्त अनुभूत्यात्मक पक्ष भी है। सन्ध्या के समय मुरली की ध्वनि से श्रीकृष्ण अपना आगमन सूचित करते हैं। यह ध्वनि गोपिकाओं के लिए दिनान्तर विरह के पश्चात् चाक्षुष संयोग की ही सूचना है। श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन के पूर्व ही गोपियों को इस मुरली की ध्वनि के माध्यम से 'स्मृतिगत' रूप का दर्शन हो जाता है। यहीं पर संयोग का उल्लास द्विगुण हो जाता है।

'सूरसागर' में प्रेम का चरमोत्कर्षक क्षण रास का क्षण है। शरद् की रात्रि में उस रास की भूमिका में मुरली रमण का आह्वान देती है। इस आह्वान से आन्तरिक शक्ति का जागरण होता है और ब्रजांगनाएँ 'आरज पथ' का परित्याग करके श्रीकृष्ण से महामिलन के निमित्त प्रस्तुत हो जाती हैं। अतः संयोग शृङ्गार की भूमिका में मुरली का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भागवतकार की वेणु में दार्शनिकता की ध्वनि अधिक थी। परन्तु सूरदास ने अपनी मुरली में लौकिकता का माधुर्य भर दिया। फिर भी उनकी मुरली अलौकिकता की गूँज से भक्तजनों को आह्लादित करती रही है। सूर की मुरली में काव्यात्मक स्वरूप जितना देखने को मिलता है उतना भागवतकार की वेणु में नहीं।

--१०७ ए, नार्थकार स्ट्रीट, सिरकाली, थंजौर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्मीरी और हिन्दी रामकथा में कौशल्या

डा० ओंकार कौल

रामकथा में कौशल्या पत्नी, सपत्नी, सास, विमाता, राजमहिषी और राजमाता के विविध रूपों में हमारे सामने आती हैं। दोनों कश्मीरी और हिन्दी रामकथा-काव्यों में कौशल्या के उदात्त मातृत्व एवं समवात्सल्य की भावना का ही अधिक विकास हुआ है। राम-भक्त एवं आदर्श-प्रिय कवियों ने राम-माता कौशल्या के चरित्र में उन समस्त उदात्त गुण-तत्वों का सामञ्जस्य स्थापित किया है, जिसके परिणाम स्वरूप कौशल्या का चरित्र आदर्श माता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। दोनों भाषा रामायणकारों ने कौशल्या के बहुमुखी चरित्र में से उनके 'मातृत्व' का चित्रांकन अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से किया है।

दोनों कश्मीरी और हिन्दी रामायणों में चारों पुत्रों के प्रति कौशल्या के सम-वात्सल्य का सुन्दर निरूपण हुआ है। कश्मीरी 'प्रकाश-रामायण' के अनुसार राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के प्रति उनके हृदय में तनिक भी भेद-भाव नहीं है। राम-लक्ष्मण के वनगमन पश्चात् भरत और शत्रुघ्न ननिहाल से लौटकर माँ कौशल्या के समक्ष अपनी आत्म-ग्लानि प्रदर्शित करते हुए रोते हैं, कौशल्या दोनों को स्नेह-पूर्वक गले लगाकर ममतापूर्ण शब्दों में उन्हें सान्त्वना देते हुए आश्वासन दिलाती हैं कि भरत और शत्रुघ्न उन्हें राम से भी कहीं अधिक प्रिय हैं।[1] 'मानस' में भी भरत के प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष-भाव उनके मन में नहीं है। वे भरत को राजमुकुट धारण करने का उपदेश देकर[2] अपने उदार वात्सल्य का परिचय देती हैं। इसी तरह चित्रकूट-यात्रा में भरत-शत्रुघ्न को रथ पर चढ़ने का अनुरोध करके[3] उनके प्रति अतुल सौहार्द तथा वात्सल्य प्रदर्शित करती हैं और इससे पहले ननिहाल से भरत-शत्रुघ्न के लौटने पर उनके प्रति सुहृद व्यवहार में[4] अतिशय मातृत्व और उदार वात्सल्य के दर्शन होते हैं। परवर्ती हिन्दी राम-काव्यों में 'साकेत' में कौशल्या के समवात्सल्य का उत्कृष्ट रूप मिलता है। राम और भरत को अभिन्न मानते हुए कौशल्या कहती हैं—"मुझे राज्य का खेद नहीं, राम भरत में भेद नहीं।"[5] उनकी एकमात्र आकांक्षा है—"भरत राज्य की जड़ न हिले, मुझे राम की भीख मिले।"[6] राम और भरत को अभिन्न समझती हुई उनमें केवल नाम-मात्र का अन्तर पाकर वे भरत से सम्बोधित होकर कहती हैं—

मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है भिन्न केवल नाम।[7]

दोनों भाषाओं के रामकथा-काव्यों में राम के कौशल्या के वात्सल्य की सुन्दर अभिव्यञ्जना विविध रूपों में हुई है। कश्मीरी 'प्रकाश रामायण' में राम के प्रति कौशल्या के प्रगाढ़ वात्सल्य का परिचय राम

[1] देखिए—प्र० रा०, हस्तलिखित वि० प्रति पृ० ३०–३१।

[2] देखिए—मानस- २।१७६।

[3] वही, २।१८८।

[4] वही, २।१६५।

[5] देखिए—साकेत, सर्ग ४, पृ० १००।

[6] वही।

[7] देखिए—साकेत, सर्ग ७, पृ० २०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विदाई के अवसर पर किए गये कौशल्या के रुदन-प्रलापों में मिलता है।[१] 'विष्णु प्रताप रामायण' में प्रस्तुत प्रसंग में वात्सल्य की अभिव्यञ्जना अधिक मार्मिक ढंग से हुई है। राम-लक्ष्मण और सीता के विदा होते ही माँ कौशल्या सुधबुध खोकर अचेत हो जाती हैं, जैसे राम नहीं उनके शरीर से प्राण ही चले गए हों।[२] चेतना लौटने पर कौशल्या दशरथ के साथ-साथ करुण प्रलाप करती हैं।[३] कौशल्या की विरहजन्य पीड़ा में जिस अद्भुत वात्सल्य का समारम्भ 'प्रकाश रामायण' में हुआ, उसका उत्तरोत्तर विकसित एवं परिष्कृत रूप 'शर्मा रामायण' तक आते-आते भक्ति के रूप में परिणत हुआ है। कौशल्या राम की वन्दना-स्तुति निःष्कल-निःष्काम, आनन्द-दायक, नयनाभिराम एवं दुःख-सन्ताप-विनाशक भगवान राम के रूप में करती हैं। इतना ही नहीं, निजी पापों की गणना करती हुई वे एक धर्म-भीरु अबला भक्तिन की भाँति अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई प्रतीत होती हैं।[४] परवर्ती-कश्मीरी 'ताराचन्द-रामायण' और 'अमर रामायण' में भी कौशल्या राम-नाम को सर्वोपरि समझकर राम की वन्दना-स्तुति इसी अलौकिक रूप में करती हैं। इस तरह कौशल्या का राम के प्रति अतिशय वात्सल्य भक्ति में परिवर्तित होकर वात्सल्य के स्वाभाविक माधुर्य को खो देता है। यहाँ राम-माता कौशल्या राम के परब्रह्म रूप से भली-भाँति अवगत हैं।

'मानस' की कौशल्या भी राम के अलौकिक परब्रह्म रूप से पूर्णतया परिचित हैं। इसीलिए उनके वनगमन पर वे अधिक चिन्ता न करके सीता की कोमलता देखकर उनके वन-गमन पर अधिक चिन्तित दिखाई देती हैं।[५] 'मानस' की कौशल्या अधिक विवेक और संयम का परिचय देती हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में "तुलसीदास की कौशल्या कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय की, जिसका दूसरा नाम विवेक है, सूक्ष्म वृत्ति प्रदर्शित करती है। ......राम को वन जाने की आज्ञा देने के लिए प्रार्थना के उत्तर में दिया हुआ उनका कथन विवेक, समत्व-बुद्धि, कर्त्तव्य-बुद्धि और धर्म-बुद्धि का उत्कृष्ट उदाहरण है।"[१] इस तरह मानस की कौशल्या विवेक-शून्य होकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं भूलतीं और न उनके चरित्र में अन्ध-वात्सल्य या उग्रता के दर्शन होते हैं। मानस की कौशल्या में किसी भी प्रकार की अनुदात्तता का परिचय हमें नहीं मिलता है। उन्हें राम-वियोग या वन में उनके कष्ट-क्लेशों की उतनी चिन्ता नहीं है जितनी कि दशरथ, भरत और अयोध्या की।[२] 'साकेत' में भी कौशल्या के उदार वात्सल्य के साथ-साथ कर्त्तव्यपरायणता का अद्भुत सामञ्जस्य मिलता है। मानस के आदर्श का अनुकरण करके साकेतकार ने कौशल्या के चरित्र को पुनः ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। "मूर्तिमयी ममता माया, कौशल्या कोमल काया"[३] सदृश उनका रूप-चित्रण अद्भुत एवं अद्वितीय है। कर्त्तव्यनिष्ठ कौशल्या कर्त्तव्य-पालन को प्रमुखता देकर राम को वन-गमन का आदेश देती हैं—

जाओ बेटा! वन ही, पाओ नित्य धर्म धन ही।
पूज्य पिता प्रण रक्षित हो, माँ का लक्ष्य सुरक्षित हो।[४]

राम-वन-गमन को अपने ही बुरे कर्मों का फल मानती हुई वे किसी को दोष नहीं देती हैं—"होते मेरे सुकृत कहीं, तो क्यों आती विपद यहीं।"[५] कैकेयी के प्रति उनका औदार्यपूर्ण व्यवहार द्वेष-रहित, स्वच्छन्द एवं अद्वितीय है। दशरथ से वह यही वर माँगती हैं कि कैकेयी कभी पुत्र-वंचिता न हो।[६]

१ देखिए—प्र. रा., पृ. २५।
२ देखिए—वि. प्र. रा., हस्तलिखित श्री. प्रति। पृ. १०८।१०९।
३ वही। वन.। अ. ७।
४ देखिए—शर्मा रा., हस्तलिखित श्री. प्रति, पृ. १२३
५ देखिए 'मानस' २/५८–५९

१ देखिए 'तुलसीदास' तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३००
२ देखिए 'मानस' २/५५
३ देखिए 'साकेत' सर्ग ४, पृष्ठ ९२
४ वही, पृष्ठ १०७–१०८।
५ वही, पृष्ठ १०८।
६ वही, सर्ग ६, पृ० १६८–१६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' में प्रतिष्ठित कौशल्या के उदात्त आदर्श-चरित्र के साथ 'रामचन्द्रिका' में केशवदास यथोचित न्याय न कर सके। 'रामचन्द्रिका' की कौशल्या का स्वभाव 'वाल्मीकि रामायण' की कौशल्या की भाँति अत्यधिक उग्र एवं स्वार्थमयी है। कौशल्या राम से अनुरोध करती हैं कि वह उन्हें भी अपने साथ वन ले चले। फिर अयोध्या में चाहे भरत राज्य करे या नगर पर गाज पड़े, उससे उनका कोई मतलब नहीं—

मोहि चलौ बन संग लियैं। पुत्र तुम्हें हम देखि जियैं।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज्य भरत्थ करै॥[1]

'रामचन्द्रिका' में कौशल्या के क्षोभ को शान्त करते हुए राम उपदेश भी देते हैं। किसी भी कश्मीरी रामायण में कौशल्या के आदर्श चरित्र में इस प्रकार का दौर्बल्य नहीं दिखाई पड़ता है।

—बुगाम–यारीपोरा, कश्मीर।

[1] देखिए 'रामचन्द्रिका' पृ० ९–१०।

(पृष्ठ १७० का शेषांश)

प्रतिष्ठा प्रकृत रूप में है तथा उनका सजीवता आकर्षणपूर्ण है। पात्रों के चरित्रों में मानव अन्तःकरण की विविध मनोवृत्तियों का विश्लेषण है। पात्रों के चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। जीवन की आदर्श स्थितियों के साथ उसकी यथार्थता का मनोहर रूप मनोवैज्ञानिक रूप से उसमें अंकित है।

—धींगड़ा निवास, नया कृष्णनगर,
चिलकाना रोड, सहारनपुर

सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और 'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का 'साहित्य-सन्देश' के बारे में अभिमत—

"प्रसन्नता की बात है कि आप नवम्बर में श्री बच्चन पर एक विशिष्ट अंक निकाल रहे हैं। 'साहित्य-सन्देश' का रूप-रंग काफी बदल गया है और उसकी उपयोगिता भी बढ़ी है। आशा है कि वह उत्तरोत्तर वृद्धि करेगा।"

'साहित्य-सन्देश' का नवम्बर मास में

हिन्दी के लोकप्रिय कवि डा० हरिवंशराय 'बच्चन' की षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर

'बच्चन-अंक'

प्रकाशित हो रहा है।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु के व्यंग्य-विनोदमय स्तोत्र

• • •

श्री बालेन्दुशेखर तिवारी

सन् १८५७ के विद्रोह के उपरान्त का काल, जिसे साहित्येतिहासकारों ने 'भारतेन्दुकाल' के नाम से अभिहित किया है, कठोर दमन का युग था, साथ ही सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी रूढ़िवादी और नवीन विचारधाराओं के संघर्ष का युग था। ऐसे समय किसी बात को गम्भीरता के साथ उसके वास्तविक कटुरूप में कह डालना सर्वथा असम्भव था। मनुष्य अपनी स्वभावगत विशेषताओं के कारण व्यंग्य विनोद में कही गयी बात को सह लेता है, इसी कारण भारतेन्दु एवं उनके समसामयिक साहित्य सेवियों ने हास्य-व्यंग्य का आश्रय ग्रहण किया। भारतेन्दुजी देशव्यापी अन्धकार को दूर करने के लिए नाना प्रकार के मार्ग अपनाए, हास्य-व्यंग्य उन्हीं में से एक सरल-सबल मार्ग था। कविता, नाटक आदि की भाँति उन्होंने निबन्धों में भी व्यंग्य-विनोद का झण्डा ऊँचा किया। भारतेन्तु के व्यंग्य-विनोदपूर्ण निबन्ध उनकी स्वभावगत विनोदप्रियता, युगीन परिस्थितियों एवं विदेशी शासन की कठोरता से त्रस्त जनता की मनोरंजन सम्बन्धी तृष्णा की उपज हैं। भारतेन्दु ने सबसे पहले निबन्ध की आत्मा को पहचाना और यह लक्ष्य किया कि त्रुटियों के परिमार्जन के लिए समाज पर प्रभाव डालने वाली हास्य-व्यंग्य पूर्ण शैली ही सर्वाधिक उपयुक्त है। भारतेन्दु के निबन्धगत हास्य-व्यंग्य का प्रवाह विभिन्न शैलियों में दीखता है। इन्हीं में से एक स्तोत्र-शैली है। श्री ब्रजरत्नदास ने 'भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग ३' में 'स्तोत्र-पंचरत्न' शीर्षक के अन्तर्गत भारतेन्दु के पाँच स्तोत्र शैली के निबन्धों को संग्रहीत किया है।

हास्य-व्यंग्यपूर्ण जिन स्तोत्रों की रचना भारतेन्दु ने की है, उनकी शैली का मूल स्तोत्र संस्कृत साहित्य में मिलता है। संस्कृत का स्तोत्र-साहित्य बड़ा ही विशाल, सरस तथा हृदयस्पर्शी है। प्रत्येक धर्म में भक्त अपने हृदय की बातें ईश्वर के सम्मुख प्रकट करने एवं उसकी महिमा के वर्णन में अपने कोमल तथा भक्तिमय हृदय को अभिव्यक्त करता है। भारतीय धर्म साधना के अन्तर्गत भक्तों ने अपनी इस भावना का सच्ची भावुकता एवं दीनता के साथ परिचय दिया है। अपनी दैन्यभावना और भगवान की महिमा को अभिव्यक्ति देने के लिए हमारे भक्तों ने स्तोत्र-शैली का अनुसरण किया। इस शैली के अन्तर्गत प्रथमतः स्तुत्य-देवता का ध्यान किया जाता है और तदुपरान्त मूल स्तुति की जाती है। सङ्गीत का पुट मिल जाने पर इनका प्रभाव बहुत ही अधिक बढ़ जाता है। शिवमहिम्नः स्तोत्र, चण्डीशतक, आलबन्दार-स्तोत्र, रामशतक, लक्ष्मीसहस्र एवं इसी भाँति के अनेकानेक वैष्णव, शैव, जैन एवं बौद्ध स्तोत्रों से संस्कृत का स्तोत्र-साहित्य भरा है। संस्कृत की इस परम्परा को हिन्दी साहित्य के कतिपय भक्त-कवियों ने भी ग्रहण किया था, परन्तु उनके स्तोत्र संस्कृत के अनुवाद जैसे ही हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस परम्परा को सर्वथा नवीन परिवेश में प्रस्तुत किया।

'स्तोत्र पंचरत्न' के पंचनिबन्ध संस्कृत की स्तोत्र शैली में लिखित हैं। प्राचीन परम्परा के अनुकूल ही भारतेन्दु अपने स्तोत्रों में भी पहले स्तुत्य का ध्यान करते हैं और तत्पश्चात् व्याजस्तुति द्वारा हास्य-व्यंग्य मयी शैली में मूल कथ्य-वस्तु को सामने रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के स्तोत्र जहाँ सर्वथा भक्तिरस से आप्लावित थे, वहाँ भारतेन्दु के ये स्तोत्र शैली में रचित निबन्ध हास्य और व्यंग्य की सारगर्भित, चुटीली प्रवृत्ति से ओतप्रोत हैं। 'स्तोत्रपंचरत्न' की भूमिका में भारतेन्दु बाबू ने स्वीकारा है—"यद्यपि ये स्तोत्र हास्यजनक हैं, तथापि विज्ञ लोग इनसे अनेक ही उपदेश निकाल सकते हैं।" आर्य संस्कृति की महत्ता, चरित्र एवं समाज में सुधार की आवश्यकता है तथा शासन प्रणाली की बुराइयों पर बल देना ही इनका लक्ष्य है। अतः इनमें हास्य और व्यंग्य दोनों का यथेष्ट समावेश हुआ है। भारतेन्दु के पंच स्तोत्र शैली के निबन्ध ये हैं—वेश्यास्तवराज, स्त्रीसेवापद्धति, मदिरास्तवराज, कंकड़ स्तोत्र और अँगरेज स्तोत्र।

'वेश्यास्तवराज', 'स्तोत्रपंचरत्न' का पहला निबन्ध है। वेश्यागमन से होने वाली बुराइयों की ओर संकेत करना इस स्तोत्र का उद्देश्य है। इसी बहाने निबंधकार वेश्यावृत्ति पर कटाक्ष करता है और शरीर-व्यवसाय करने वाली गणिकाओं के मुख्य कार्यों का विवरण देता है। मूल स्तोत्र तो पद्य में है, परन्तु ध्यानादि संस्कृत गद्य में लिखित हैं। ध्यान के अन्तर्गत वेश्याओं की जो व्याजस्तुति है, वह तो है ही, स्तोत्र में भी वेश्या के लिए प्रयुक्त प्रत्येक सम्बोधन उसके किसी न किसी कार्य या दुर्गुण की ओर संकेत करता है। मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक पतन में सहायक वेश्या समुदाय की भर्त्सना ही इस व्याजस्तुति पूर्ण स्तोत्र में है।

पाश्चात्य प्रभाव से स्त्री-भक्त बने जा रहे आधुनिक युवक-समाज पर भारतेन्दु ने 'स्त्रीसेवापद्धति' में व्यंग्य किया था। इस क्रम में स्त्रियों की वस्त्र-भूषणादि की लालसा, वाचालता एवं रुदन आदि मनोवृत्तियों पर भी कटाक्ष किए गए हैं। स्त्री जाति के हिन्दू-धर्म में स्वीकृत सभी देवी-देवताओं का एकीकृत रूप मानते हुए भारतेन्दु उनकी पूजा की सामग्री जुटाते हैं—'इस पूजा में अश्रुजल ही पाद्य है, दीर्घश्वास ही अर्घ्य, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सवर्णालंकार ही पुष्प हैं, धैर्य ही धूप है, दीनता ही दीपक है, चुप रहना ही चन्दन है और बनारसी साड़ी ही विल्वपत्र हैं।" इन पंक्तियों में भाषा की आनुप्रासिकता के साथ-साथ स्त्रियों पर किया गया व्यंग्य भी द्रष्टव्य है। भृकुटिधनु के सन्धान से स्त्रियाँ पुरुषों को घायल करने लगती हैं, घर की सारी व्यवस्था उन्हीं पर निर्भर है, उनकी आज्ञाओं के पालन में ही पति का कल्याण है—यह लक्ष्य कर भारतेन्दु इस निबन्ध में पुरुषों को स्त्री-सेवा की विविध पद्धतियों से परिचित कराते हैं।

'वेश्यास्तवराज' में जिस प्रकार भारतेन्दु ने वेश्यागमन के दुर्गुणों को सामने रखा है, उसी प्रकार 'मदिरास्तवराज' में मदिरा-सेवन के दूषणों को व्याजोक्तिपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है। मूल स्तवराज के पूर्व मदिरा-देवी का संस्कृत में 'शतनाम' ध्यान किया गया है। तदुपरान्त अन्य स्तोत्रों की ही भाँति मदिरा की व्यंग्यपूर्ण प्रशंसा की गयी है। 'कुलमर्यादा संहारकारिणी' इस एक सम्बोधन में ही भारतेन्दु की आत्मा पहचानी जा सकती है कि 'बोतलवासिनी' और 'सकल मादकसामग्री शिरोरत्न' मदिरा के सम्बन्ध में उनके विचार देश हितैषिता से कितने अनुप्राणित हैं। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसे अपने नाटकों में भी भारतेन्दु ने यथावसर मदिरापालन का निषेध किया है। यह स्तोत्र भी इसी तथ्य का समर्थन करता है।

'कङ्कड़ स्तोत्र' में काशी की नगरपालिका के कुप्रबन्ध पर व्यंग्य के छींटे मारे गये हैं। बरसात में सड़क के ठीक न रहने पर क्या दशा होती है, यही इस निबन्ध का वर्ण्य विषय है। सड़क के बीच और किनारे पड़े हुए कंकड़ों की महिमा भारतेन्दुजी ने निबन्ध के प्रारम्भ में ही वर्णित की है। "कंकड़ देव को प्रणाम है। देव नहीं, महादेव क्योंकि काशी के कंकड़ शिवशंकर समान हैं।" कंकड़-महिमा के प्रसंग में भारतेन्दु जी की सांस्कृतिकता, कला और अर्थव्याप्ति का सुन्दर समन्वय लक्षित होता है। "साहिब कमिश्नर, साहिब मजिस्ट्रेट और साहिब सुपरिनटेण्डेण्ट के इसी नगर में रहते और साढ़े तीन-तीन हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पुलिस-इन्सपैक्टरों और कांसटेबुलों के जीते भी गणेशचतुर्थी की रात को स्वच्छन्द रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पांव पड़कर रुधिरधारा से नियम और शान्ति का अस्तित्व बढ़ा देते हैं। अतएव हे अंगरेजी राज्य में नवाबी के स्थापक तुमको नमस्कार है।"—इस कथन के पीछे अंग्रेजी साम्राज्य की शासन-व्यवस्था पर जो करारा व्यंग्य है, उसे भारतेन्दु ही व्यक्त कर सकते थे। उनके सामने भारत की पराधीनता का चित्र था और उनकी विद्रोहिणी आत्मा स्वराज्य की प्यासी थी। कंकड़ के लिये इसी कारण भारतेन्दु ने स्थान-स्थान पर 'स्वेच्छाचारिन्', 'स्वतन्त्र' 'नवाबी संस्थापक' आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया है। इसके साथ ही कंकड़ के विविध गुणों अथवा दुर्गुणों के माध्यम से लेखक इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि शहर भर में बिछे कंकड़ नागरिकों के लिए कितने कष्टदायक हैं, यद्यपि नगरपालिका ने इन्हें हितकारी समझ कर बिछा रखा है। काशी-नगरपालिका के इस कुप्रबन्ध पर छींटाकशी करने वाले इस स्तोत्र में हास्य की अपेक्षा व्यंग्य का स्वर अधिक प्रबल है। कंकड़ जैसी तुच्छ वस्तु को लेकर निबन्धकार ने जो बातें कहीं है, वे सूक्ष्म दृष्टि की परिचायक हैं। इस प्रकार के निबन्धों में विषय की तुच्छता निबन्धकार की आत्मव्यंजना की साधिका होती है। यही कारण है कि कंकड़स्तोत्र में चमत्कार, जिन्दादिली, मनोरंजन, हास्य-व्यंग्य, समाज सुधारक भावना एवं देश-प्रेम सभी कुछ विद्यमान है।

'स्तोत्र पंचरत्न' का अन्तिम स्तोत्र 'अंग्रेज स्तोत्र' है। 'अथ अंग्रेज स्तोत्र लिख्यते' कहकर पहले संस्कृत परिपाटी में ध्यान का विधान है और तब स्तोत्र का पाठ्यांश है। इस निबन्ध का व्यंग्य अप्रत्यक्ष है, अर्थात् ऊपर से तो यह स्तुतिपरक है, किन्तु पूरा निबन्ध पढ़ने पर इसके अर्थगर्भत्व का ज्ञान होता है। विदेशी शासन से भारत की त्रस्तता एवं शासकों की चापलूसी प्रियता को स्तोत्रकार ने लक्ष्य कर लिया था। इसी को वे 'स्तोत्र पंचरत्व' के अन्य स्तोत्रों की शैली में व्यक्त करते हैं। अंग्रेज प्रभु के स्वरूप का वर्णन निबन्धकार ने इन शब्दों में किया है—"खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराट रूप अंग्रेज हम तुमको प्रणाम करते हैं।" इस वर्णन में अंग्रेजी राज्य का लालची और लुटेरा रूप अच्छी तरह प्रकट हुआ है। सम्पूर्ण स्तोत्र की आत्मा अंग्रेजी शासन के इन दुर्गुणों के प्रस्तुतीकरण में निहित है। नवीन अनुसन्धानों से यह प्रमाणित हो गया है कि 'अंग्रेज स्तोत्र' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना न होकर श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या की लिखी हुई कृति है। 'कवि वचन सुधा' से सङ्कलित कर इसे लघु पुस्तिका के रूप में सन् १८७३ ई० प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तिका के आवरण पृष्ठ पर मुद्रित है—"श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्रजी की आज्ञानुसार मिथ्या प्रशंसकों के मोक्षार्थ संचय करके मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने निर्मित किया।" स्पष्ट ही वह पंड्याजी की रचना ही है। 'स्तोत्र पंचरत्व' में इस स्तोत्र का संकलन श्री ब्रजरत्नदासजी की भ्रांति कही जाएगी।

ऐसा माना जाता है कि व्यंग्य-विनोद सम्पन्न निबन्ध समाज, साहित्य और प्रशासनिक जीवन में जो उथल-पुथल मचाते हैं, विचारात्मक-तर्कपूर्ण और दार्शनिक निबन्ध एवं लम्बे-लम्बे भाषण भी नहीं रचा सकते। भारतेन्दु विरचित स्तोत्रों में यह गुण कूट-कूट कर भरा है। इन स्तोत्रों में भारतेन्दु की जिन्दादिली, परिहास प्रियता, समाज सुधारक भावना, राष्ट्रीयता एवं व्यंग्य करने की अपूर्व क्षमता का एक साथ समवाय मिलता है। सब की भाषा संस्कृत गर्भित एवं समास प्रधान है। स्तोत्र लेखक की एक सामान्य दिशा जो इन स्तोत्रों में दीखती है, यह है कि सभी स्तोत्रों में स्तुत्य की भारतीय देवी-देवताओं से तुलना करने का मोह भारतेन्दु नहीं छोड़ पाए हैं। परन्तु इससे अर्थगत व्यंग्य को प्रश्रय ही मिला है और स्तोत्रों की श्रीवृद्धि हुई है। यही कारण है कि भारतेन्दु के ये स्तोत्र उनके समसामयिक

(शेष पृष्ठ १५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में चरित्र-चित्रण

श्री महेन्द्रकुमार धींगड़ा

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी-साहित्य-जगत में प्रमुखतः अपनी समालोचना-शक्ति के कारण ही प्रसिद्ध हैं लेकिन उपन्यासकार के रूप में भी आपने हिन्दी जगत को तीन अनुपम रत्न भेंट किये हैं। आपके उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र-लेख' और 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित 'पुनर्नवा' हिन्दी-उपन्यास साहित्य में प्रकाश-स्तम्भ के समान हैं। अरविन्द गुर्टू ने अपनी सम्पादित पुस्तक 'हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग' में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोगों में से एक माना है। वास्तव में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हिन्दी उपन्यास की यात्रा में एक 'मील का पत्थर' है।

उपन्यास की कोई भी परिभाषा स्वीकार की जाये, इसका विषय मानव और उसका जीवन ही होता है। मानव-मन अत्यन्त जटिल एवं विलक्षण है, प्रत्येक उपन्यास में उसे समझने का थोड़ा बहुत प्रयास होता है। पात्रों के चरित्र द्वारा उपन्यासकार मानव चरित्र के विविध चित्र प्रस्तुत करता हुआ उसके रहस्य की परतों को भी खोलने का प्रयास करता है। डा० रांग्रा के अनुसार "वास्तव में, मानव के चरित्र का उद्घाटन उपन्यास की मूल समस्या है, इसलिए औपन्यासिक चरित्र-चित्रण की गहराइयों में उतरने का अर्थ उपन्यास की आत्मा तक पहुँचने की चेष्टा है।" 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी लेखक ने चरित्रों के सम्यक मनोवैज्ञानिक विकास पर अधिक बल दिया है।

बाणभट्ट का जीवन चित्रण ही केन्द्र बिन्दु है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र बाणभट्ट, भट्टिनी एवं निपुणिका हैं। इनके अतिरिक्त कृष्णवर्धन, सुचरिता विरतिवज्र, महामाया, राज्यश्री, धावक, बाभ्रव्य, बाबा अघोर भैरव जैसे गौण पात्रों के चरित्रों की भी रचना हुई है। इन गौण चरित्रों का चित्रण भी इस प्रकार हुआ है कि कभी-कभी वे प्रधान पात्र होने का क्षणिक भ्रम पैदा कर देते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पात्रों को दो वर्गों—पुरुष पात्र एवं नारी पात्र—में विभाजित कर सकते हैं।

बाणभट्ट इस उपन्यास का नायक है वही इसकी आधार-शिला और मुख्य प्रेरणा है। 'आत्मकथा' में द्विवेदीजी ने बाण का चरित्र-चित्रण बड़े मनोयोग से किया है। उसके चरित्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखा को इस स्वाभाविकता से पाठक के सम्मुख लाया गया है कि पाठक मुग्ध हो उठता है। बाण के बचपन, व्यक्तिगत रुचियों-अभिरुचियों, उसकी मान्यताओं तथा मनःस्थितियों का अङ्कन द्विवेदीजी की मानव-मन की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का सहज ही परिचय दे देता है। बाहरी घात-प्रतिघात एवं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में बाण का चरित्र निखर उठा है।

बाण का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। अपने रूप के विषय में वह कहता है "भगवान ने मुझे रूप अच्छा दिया था" लेकिन बाण ने इस रूप का कभी दुरुपयोग नहीं किया। लोग चाहे उसे कुछ भी समझते रहें बाण 'लम्पट कदापि नहीं था।'

साहस बाण की नस-नस में समाया हुआ है। बाण रूढ़ियों के बँधे बँधाये रास्ते पर नहीं चलता। जीवन की समस्याओं के प्रति उसका दृष्टिकोण मौलिक है। चिन्तन की एक अजस्र धारा उसके मस्तिष्क को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोड़ित करती रहती है। वह स्वीकार करता है— "साधारणतः लोग जिस उचित-अनुचित के बँधे-बँधाये रास्ते से सोचते हैं, उससे मैं नहीं सोचता। मैं अपनी बुद्धि से उचित-अनुचित की विवेचना करता हूँ।

नारी के प्रति बाण के विचार उसके चिन्तन की मौलिकता के साथ-साथ उसके चरित्र की पवित्रता और भास्वरता को भी व्यक्त करते हैं। बाण ने 'नारी सौन्दर्य को संसार की सबसे अधिक प्रभावोत्पादिनी शक्ति' तथा 'नारी-देह को स्पर्शमणि' माना है। नारी मात्र के प्रति उसके हृदय में पूज्य भावना है। बाण का कथन देखिये—"मैं स्त्री शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ।" समाज ने "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ति तत्र देवता" कह कर भी नारी को सदैव पददलित किया परन्तु बाण मनसा-वाचा-कर्मणा अपने वचनों पर दृढ़ रहता है।

प्रेम बाण के जीवन-वसन्त की मधुरिमा है। यह प्रेम वासना मिश्रित साधारण प्रेम नहीं, निष्कलुषता और निस्वार्थता इस प्रेम की स्वाभाविक विशेषतायें हैं। यदि हम कहें कि बाण के चरित्र का वास्तविक उत्कर्ष इस प्रेम की गोद में हुआ है। तो कुछ अनुचित न होगा। जहाँ निपुणिका के प्रति उसके प्रति उसके प्रेम में सहानुभूति का पुट है वहाँ भट्टिनी के प्रति पूज्य भावना का योग बाण के प्रेम को अलौकिकता अर्पित करता है।

यह बड़े सुखद विस्मय की बात है बाण जैसा व्यक्ति जो इतना बड़ा कलाकार है, जो अविवाहित है, आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है इतना संयमित और सन्तुलित बना रहता है। उसके चरित्र में कलंक की एक रेख भी दृष्टिगोचर नहीं होती। निपुणिका तथा भट्टिनी से इतने निकट सम्पर्क में रहते हुए भी उसका चित्त लेशमात्र भी तो नहीं डोलता। नगर-वधू मदनश्री जैसी रूपसी उसे डिगाने में असमर्थ होने पर कहती है—"बाणभट्ट आदमी नहीं है, हला!" "वह देवता है, सखी" निपुणिका गर्वित स्वर में उत्तर देती है। बाण का यह संयमपूर्ण मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित किया गया है। इस संयम के मूल में द्विवेदीजी ने बाण के चित्त की निष्कलुषता तथा बाण के स्वभाव के भोलेपन को प्रस्तुत किया है।

बाण एक कलाकार है, सच्चा कलाकार। मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति उसकी कला का प्राण है। विद्वत्ता तथा कवित्व उसके व्यक्तित्व के अपरिहार्य तत्त्व हैं। इन्हीं गुणों के कारण ही वह महाराज हर्ष का सभा-पण्डित बनता है। अभिनय के क्षेत्र में तो उसका अधिकार है ही काव्य के क्षेत्र में भी वह इस आर्यावर्त का 'द्वितीय कालिदास' है। बाण की कला का ज्वलन्त प्रमाण तो उसके द्वारा लिखी गई यह 'आत्मकथा' ही है।

बाण के चरित्र का विकास अन्तर्द्वन्द्व में हुआ है। समय-समय पर बाण का अन्तर्द्वन्द्व उभर कर उसके चरित्र का उद्घाटन करता है। बाण का चरित्र 'स्वाभाविक आदर्श' के पवित्र शिखरों का स्पर्श करता प्रतीत होता है।

बाण के अतिरिक्त सभी पुरुष पात्र गौण पात्र हैं। कुमार कृष्णवर्धन महाराज हर्ष का छोटा भाई तथा राज्य का महासन्धि विग्रहिक है। वह उदारता, विनय और शील की प्रतिमूर्ति है। राजनीति को 'भुजंग से भी अधिक कुटिल' समझते हुए भी वह लोक-कल्याण के लिए इसमें आबद्ध है।

सुगतभद्र उच्चकोटि के भिक्षु, विरतिवज्र एक साधक बाबा अघोर भैरव एक सिद्ध तथा लोरिक देव परम्परागत सामन्त के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। आचार्य सुगतभद्र, बाबा अघोर भैरव तथा विरतिवज्र का चरित्र तत्कालीन धार्मिक वातावरण को हमारे सम्मुख साकार खड़ा कर देता है। धावक एक मस्त निर्लिप्त कवि है। "उसकी दुनियाँ निर्लिप्त मस्ती की दुनिया है जिस बात से अन्य कवि द्रवित हो जाते हैं उससे भी वह अपनी मस्ती का खाद्य निकाल लेता है।"

वृद्ध कंचुकी बाभ्रव्य, महाराज हर्ष आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण भी कुशलता से हुआ है। छोटे महाराज, भट्टिनी के पिता तुवर मिलिन्द, आचार्य भर्वुपाद के कार्यों का उल्लेखमात्र हुआ है। वे सशरीर हमारे सामने नहीं आते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी पात्रों का प्राधान्य है। नारी पात्रों का चरित्र चित्रण 'कैनवेस' पर हुआ है। एक ओर तो ये नारी पात्र बाण के चरित्र की विशेषताओं के उद्घाटन में सहायक हुए हैं दूसरी ओर नारी जीवन के विविध पक्षों को भी ये पाठक के सम्मुख ला देते हैं।

आदर्श की पृष्ठभूमि में भट्टिनी चन्द्रदीधित का चरित्र उपन्यास की प्रभावान्विति में विशेष सहायक बन पड़ा है। भट्टिनी का परिचय कराने में द्विवेदीजी ने अनुपम कौशल का परिचय दिया है। बड़े उत्कंठित हृदय से पाठक उसके पूर्ण परिचय की प्रतीक्षा करता करता है। भट्टिनी का परिचय धीरे-धीरे क्रम से निपुणिका, बाण, भट्टिनी स्वयं तथा आचार्य सुगत-भद्र देते हैं।

आ० द्विवेदी ने भट्टिनी को रहस्य के आवरण में इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि पाठक मुग्ध हो उठता है। रहस्यात्मकता शायद भट्टिनी की सहज विशेषता है तभी इतने निकट संपर्क रहने पर भी बाण कहने को विवश है। मैं भट्टिनी को पहचान नहीं पा रहा हूँ।

भट्टिनी के बाह्य-रूप का चित्रण भी बड़े मनोयोग से हुआ है। स्थान-स्थान पर भट्टिनी के रूप और उसके प्रभाव को चित्रित किया गया है। लेखक को जहाँ भी अवसर मिला है उसने भट्टिनी के सौंदर्य को उभारने का प्रयास किया है।

'पवित्रता की उत्स', 'शोभा की खनि', मूर्तिमती भक्ति (सुगतभद्र) 'पवित्रता की मूर्ति' (बाण) 'इस भवकानन की कल्पलता' (लोरिक देव) भट्टिनी चन्द्र-दीधित के व्यक्तित्व में एक पवित्र आकर्षण है। जो भी उसके सम्पर्क में आता है उसकी पवित्रता से बँध जाता है, उसके हृदय में जो आदर का, पूजा का भाव जाग्रत हुए बिना नहीं रहता। 'महाराव से भी अधिक पूज्य भावना' लेकर बाण उसके प्राणों की बाजी लगाने में संकोच नहीं करता। निपुणिका ने तो जीवन भर उसकी पूजा की और उसके लिए अपने प्राण न्योछावर किए। महामाया, कृष्णवर्धन, सुच-रिता, चारुस्मिता, लोरिकदेव जो भी उसके सम्पर्क में क्षण मात्र के लिए भी आया उसके पवित्र तेज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

भट्टिनी के हृदय में प्रेम ने अपनी निष्कलुष इन्द्र-धनुषी छटा बिखेरी है। वह महामाया के सम्मुख स्वीकार करती है। "भट्ट की वाणी सुनने के बाद मैंने पहली बार अनुभव किया मेरा यह शरीर केवल भार नहीं है, केवल मिट्टी का ढेला नहीं है... मैंने उस दिन अपनी सार्थकता को प्रथम बार अनुभव किया।" अनन्य तथा गम्भीर प्रेम होने पर भी इस प्रेम में कहीं स्थूलता नहीं आ पाई। वासना का तो इसमें आभास तक नहीं मिलता।

भट्टिनी का जीवन दुख की घनघोर घटाओं से घिरा हुआ है। उदासी और रुदन उसके अलङ्कार हैं। उसके हृदय से निकले हुए शब्दों को देखिए—"जगत के दुःख प्रवाह में फेन बुदबुद के समान में भी नष्ट हो जाऊँगी और प्रवाह अपनी मस्तानी चाल से चलता जायेगा।" कौन सहृदय इन शब्दों को सुनकर भावा-भिभूत न हो उठेगा। लेकिन शब्द क्या वास्तविक पीड़ा को व्यक्त कर पाते हैं? बाण के जीवन का यह अनुभव कितना सच्चा है कि "स्त्री के दुःख इतने गम्भीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते।"

जीवन के थपेड़े ने भट्टिनी को भाग्यवादिनी बना दिया है। "हम तुम तो यन्त्र मात्र हैं—मनुष्य क्या कर सकता है?" आदि उद्‌गार उसकी निराश मनःस्थिति की ओर संकेत करते हैं।

भट्टिनी की उपर्युक्त मनःस्थिति एवं उद्‌गार उसे देवत्व की कोटि से मनुष्यत्व की ओर ले आते हैं परन्तु उसका देवत्व रूप पूरी तरह ओझल नहीं हो पाता। तभी तो लेखक ने बार-बार उसके मुख से ये शब्द कहलाये हैं "लाखों कन्याओं की भाँति मैं भी एक मनुष्य कन्या हूँ।" और "मैं हूँ चन्द्रदीधिति-सी-सी बालिकाओं के समान एक सामान्य बालिका.... मैं देवी नहीं हूँ।"

भट्टिनी केवल प्रेम और दुःख के कक्ष में बन्द होकर जगत से पलायन नहीं करती। समाज तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता के प्रति वह जागरूक है। उसकी पर्यवेक्षण शक्ति अनुपम है। उसके हृदय में व्याप्त समन्वयवाद मनुष्य की जय-यात्रा के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उत्कण्ठित है। समाज के स्तर-भेद को देखकर उसे आश्चर्य होता है कि लोग कैसे जीते हैं। इसी स्तर-भेद को भट्टिनी समाज की अशान्ति का कारण समझती है। "एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है। एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है। इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है।"

भट्टिनी सम्पूर्ण पृथ्वी में एक ही रागात्मक हृदय मानती है। बाण को उद्बोधित एवं प्रेरित करती हुई वह कहती है—"तुम्हीं ऐसे हो जो नर लोक से किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो।" लेकिन इस पर कोई सक्रिय कार्य नहीं हो पाता क्योंकि भट्टिनी की निष्क्रिय भाग्यवादिता फिर सिर उठाती है और वह कहती है "छोड़ो अभी इस बात को ......कौन जाने, मेरे भाग्य में कहाँ जाना बदा है।"

बाण के बाद किसी का चरित्र यदि हृदय की गहराइयों को छूता है तो वह है निपुणिका। निपुणिका के पैर यथार्थ की भूमि पर टिके हैं। संसार की यथार्थता से वह पूर्णतया परिचित है। पान की दुकान पर बैठी हुई, बाण के हित-चिन्तन के कारण वह बड़े विनोदपूर्ण शब्दों में कहती है—"तुम इस दुकान पर अधिक देर तक मत ठहरो। यहाँ आने वाले लोग स्त्री-शरीर को देव-मन्दिर नहीं मानते।" जिस समय भट्टिनी को आश्वस्त करता हुआ बाण अकेला ही उसकी रक्षा के लिए बहुत कुछ करने की बात कहता है तो निपुणिका उसे यथार्थ की भूमि पर ले आती है "तुम अकेले क्या कर लोगे ? सोच-समझ कर प्रतिज्ञा करो।"

बाण के प्रति अनन्य प्रेम निपुणिका के जीवन की प्रमुख थाती है। निपुणिका ने सदा ही बाण की पूजा की है। बाण के प्रेम की रश्मियों से उसका हृदय आलोकित रहा है। बाण में ही उसने अपने 'जीवन की सार्थकता देखी है। जीवन भर निपुणिका अपने को बाण के आकर्षण से मुक्त नहीं कर पाती। तभी तो बाण कहता है "आज भी उसके हृदय-मन्दिर के अत्यन्त निभृत कक्ष में कोई देवता स्तब्ध बैठा है जो निश्चय ही मेरी मौन पूजा से ही सन्तुष्ट रहता है—

"हाय मुग्धा ही है यह अब तक।"

जिस प्रकार आग में जलकर स्वर्ण निखर उठता है उसी प्रकार सामाजिक आघातों में निपुणिका का चरित्र निखरा है। "जहाँ कहीं दुख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं 'नारी-तत्व है' और निपुणिका का रोम-रोम इस तत्व से परिपूर्ण है। नारी आनन्द-भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। निपुणिका के चरित्र ने इसे सिद्ध कर दिया है। भट्टिनी को छोटे राजकुल के अन्तःपुट से छुड़ाने के लिए वह अपना जीवन तक दाँव पर लगा देती है। अपने प्राणों से भी अधिक परवाह उसे दूसरे के प्राणों की रही है। भट्टिनी तथा निपुणिका साथ-साथ नदी में कूदती हैं परन्तु निपुणिका बाण से चिल्लाकर कहती है "मुझे छोड़ो, भट्टिनी को सँभालो।" बाण की प्राणरक्षा के लिए वह सम्मोहन के प्रति प्रसव की बलिवेदी पर अपने को होम कर देती है। बाण और भट्टिनी के लिए ही वह अपने प्राण विसर्जन करती है।

निपुणिका का जीवन दुःख की भट्टी में जलते ही कटा है। विवाह के एक वर्ष बाद ही वह विधवा हो गई, उसके बाद के दुखों से घबराकर वह घर से भाग निकली। बाण की नाटक-मण्डली से जाने के बाद वह छः वर्ष तक इस कुटिल दुनियाँ में असहाय मारी-मारी फिरी। इन दुःखों का उसने डटकर सामना किया किन्तु सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है।

समाज के अत्याचारों को देखकर, सहकर उसका हृदय विद्रोह कर उठता है। वह तृष्णा से पूछती है मेरा कौनसा ऐसा पाप-चरित्र है जिसके कारण मैं निदारुण दुःख की भट्टी में आजीवन जलती रही। क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका का यह प्रश्न पाठक के मर्म को छू लेता है। इस प्रश्न के रूप में, सामाजिक पृष्ठभूमि में, नारी का शाश्वत प्रश्न सम्मुख आ जाता है। क्या नारी ही अपराध है, जिसका दण्ड सदा से नारी को मिलता आया है ? किन्तु इस प्रश्न की ओट में निपुणिका ने अपने लिए कुछ नहीं चाहा। जीवन के रंगमंच पर उसने ऐसा अभिनय किया कि भट्टिनी के स्वर से स्वर मिलाकर पाठक कह उठता है—नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है, निपुणिका ने उसे स्पष्ट कर दिया है।"

महामाया के चरित्र में कौतूहल का बड़ी सुन्दरता से समावेश हुआ है। महामाया पाठक के सम्मुख सर्वप्रथम एक भैरवी के रूप में आती है जो कि श्रद्धा की पात्र नहीं बन सकती क्योंकि पाठक को यह सोचने के लिए बाध्य किया गया है कि "इन भैरवियों से मंगल चाहे न हो, अमंगल अवश्य होता है।" लेकिन ज्योंही उसके चरित्र की विशेषताएँ हमारे सम्मुख आती हैं हमारी श्रद्धा जाग्रत हो उठती है। महामाया राज्यश्री की सपत्नी है यह जानते ही हम विस्मय से चौंक उठते हैं। उसका विवाह पहले अघोर भैरव से निश्चित हुआ था और उसी के कारण महामाया ने संन्यास ग्रहण किया, यह जानकर हमारी आंखें विस्मय से विस्फोरित रह जाती हैं। वस्तुतः महामाया का चरित्र चौदहवें उच्छवास में पूर्णतया निखरा है जहाँ वह सभा को उद्बोधित करते हुए कहती है—"संगठित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो......न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है।"

सुचरिता के चरित्र द्वारा तत्कालीन धार्मिक वातावरण चित्रित करने का प्रयास किया गया है। सुचरिता ने सहज भाव से अपने पाप-पुन्य सभी नारायण को समर्पित कर दिये हैं तभी तो वह कहती है—"मुझे तो जो भी दुःख या सुख मिलेगा उसी से अपने नारायण की पूजा करूँगी।" सुचरिता ने यह भावस्थिति अन्तर्द्वन्द्व तथा निरन्तर साधना से प्राप्त की है।

मदनश्री के चरित्र ने बाण के चरित्र को उभारने में विशेष योग दिया है। चारुस्मिता का चरित्र चित्रण भी कुशलता से हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में पात्रों का व्यक्तित्व और चरित्र बड़ा प्रभावशाली रूप लेकर आया है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में चरित्र-चित्रण कुतूहलपूर्ण है। डा० सरनामसिंह शर्मा के अनुसार "प्रेम का जो चित्र कृतिकार ने प्रस्तुत किया है वह 'आदर्श' को विस्मय की भूमिका पर ले पहुँचा है। अपने सहज प्रवाह में प्रेम की गति किसी दिशा विशेष का संकेत देकर विशेष उद्देश्य को सूचित करने लगती है, किन्तु आगे बलकर पाठक के अनुमानों को प्रतारणाओं का सामना करना पड़ता है।"

'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पात्र 'टाइप' नहीं है। प्रत्येक मुख्य पात्र का अपना अलग व्यक्तित्व है। द्विवेदीजी ने पात्रों के बाहरी रूप और परिवेश के साथ-साथ उनके हृदय की गहराइयों को भी बड़ी सुन्दरता एवं कुशलता से चित्रित किया है।

चरित्र-चित्रण की विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभी प्रमुख पात्र सद्प्रवृत्ति वाले पात्र हैं।

बाण, महाराज हर्ष, राज्यश्री, कृष्णवर्धन ग्रहवर्मा ऐतिहासिक पात्र हैं और उपन्यास में इन पात्रों का इतिहास-सम्मत चित्रण हुआ है।

'आत्मकथा' के पात्र आदर्शोन्मुख हैं। बाणभट्ट, निपुणिका और भट्टिनी के प्रेम में कोई भी दुर्गन्ध नहीं है। डा० सरनामसिंह शर्मा के शब्दों में—"कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रेम की गति 'यौन-स्खलन के बिन्दु पर आ चुकी है, किन्तु सचेतता की एक ऐसी करामात सामने आती है जो वासना के गर्त्त से निकाल कर प्रेम को 'आदर्श' पर प्रतिष्ठित कर देती है।"

समष्टि रूप में विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि द्विवेदीजी की चरित्र-चित्रण शैली हिन्दी-उपन्यास साहित्य में अपने ढङ्ग की अपूर्व है। पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट एवं प्रभावशाली है। उनमें आदर्शों की

(शेष पृष्ठ १६२ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि रत्नाकर—एक महत्वांकन

• • •

डा० रामप्रकाश अग्रवाल

महाकवि जगन्नाथदास रत्नाकर हिन्दी साहित्य के इतिहास की विशाल धारा के एक विशिष्ट मोड़ पर खड़े होकर जिस ज्योति का प्रकाश विकीर्ण कर रहे हैं उसकी वन्दना में 'महाकवि' विशेषण अनायास ही मुख से उद्‌गीर्ण होता है। अधिकांशतः उनका उल्लेख 'बाबू' विशेषण के साथ हुआ है, कदाचित इसलिए कि वे अयोध्या की महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, पर प्राचीनतानिष्ठ इस व्यक्ति के लिए नवयुग की लहर का बोधक 'बाबू' विशेषण उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। उनकी अपेक्षा भारतेन्दु जी के लिये यह अवश्य अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि उनमें नवयुग की नवीनता और बाँकपन अधिक था। रत्नाकर जी को रसिकता तो भारतेन्दु जैसी ही थी, पर भारतेन्दु में यदि प्रतिभा का अंश अधिक था तो रत्नाकरजी में पाण्डित्य का। उनके सृजन-क्षेत्र उनके पाण्डित्य के ही अधिक हैं—श्रेष्ठ टीकाकार (बिहारी रत्नाकर), सफल अनुवादक (समालोचनादर्श), कुशल सम्पादक (सूर सागर), छन्द-विधान जैसे भाषा के आचार्य (रोला, उल्लाला, छप्पय, कवित्त, घनाक्षरी के प्रौढ़ प्रयोग और व्याकरण से पुष्ट तथा संगीत से समलंकृत ब्रजभाषा का पूर्ण उत्कर्ष) तथा पौराणिक काव्य-परम्परा के ही प्रश्रयदाता होने के कारण उनका आचार्यत्व ही प्रबल दिखलाई पड़ता है। इस आचार्यत्व के कारण उन्होंने प्राचीन और नवीन काव्य अर्थात् ब्रजभाषा-काव्य और खड़ीबोली-काव्य के सन्धि-स्थल पर जो महत्वपूर्ण आसन प्राप्त किया हुआ है, उसे दृष्टि में रखते हुए उन्हें 'महाकवि' विशेषण से सम्बोधित करना उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

रत्नाकरजी प्रयोगों के कवि थे। प्रयोगवादी नहीं। अर्थात् मध्य और आधुनिक युग के सन्धिस्थल पर खड़े होने के कारण उनकी मेधा और प्रतिभा इस द्वन्द्व में उलझ रही थी कि प्राचीन परिपाटी को ही आक्सीजन देकर खड़ा किया जाये या नवीनता की शक्ति को टटोला जाये। स्पष्टतः उन्होंने प्राचीन परिपाटी का पक्ष लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे न तो नवयुग के सूत्रधारों की श्रेणी में बैठाये जा सके और न ही प्राचीनता के उपासक काव्य-पंडितों की पंगत में। रीतिकाल और भक्तिकाल के स्वर पुराने पड़ चुके थे, रत्नाकर की शक्ति उनमें नवजीवन का संचार नहीं कर सकी, पर उनकी रमणीयता के प्रति टूटते हुए मोह को कुछ काल के लिये उन्होंने स्थिर रक्खा अवश्य। दूसरी ओर आधुनिकता का बिगुल भारतेन्दु की वाणी में स्पष्टता के साथ बज चुका था, पर रत्नाकरजी ने उसे ध्यानपूर्वक नहीं सुना, और ब्रजभारती की आराधना की वेदी पर उन्होंने सन्तोषपूर्वक अपने यश का विसर्जन कर दिया। भारतेन्दु की विस्तीर्ण यशःपताका के नीचे नवयुग के कोलाहल में प्रायः उनकी ब्रजवंशिका के मृदुल स्वर नेपथ्य में गूंजकर ही रह जाते हैं, पर जिन सतर्क कानों को वे आकृष्ट करते हैं वे एक बार ब्रजभाषा की बिदाई पर गहरी आह भरे बिना नहीं रहते। इस प्रकार महाकवि रत्नाकर का जीवन ब्रजभाषा की गौरवपूर्ण बिदाई का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करता हुआ स्वयं में एक ट्रेजेडी बन गया है। उन्होंने नवयुग के निर्माताओं का अनुगमन कर नव्य यश पाने के लोभ का संवरण किया और पूर्व मध्ययुग के सूर, तुलसी, मीरा, नन्ददास जैसे भक्तों के सात्विक स्वरों को तथा उत्तर मध्ययुग के देव, बिहारी, घनानन्द, पद्माकर, जैसे रसिकों के राजस स्वरों को समन्वित कर ब्रजभाषा का जो अमर संगीत प्रसारित किया वही उनकी स्मृति को हिन्दी-साहित्य में सदैव सुरक्षित रक्खेगा।

—मेरठ कालेज, मेरठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवीपुत्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया

वेद, पुराण, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों के व्याख्याता, 'पाणिनि कालीन भारत' के रचयिता, प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता, भारतीय संस्कृति के उपासक, भारतीय साहित्य के उद्धारक वासुदेवशरणजी भारतीय भूमि एवं जन-जीवन से कितना नैकट्य रखते थे, यह उनके उन निबन्धों से परिलक्षित होता है जो 'पृथिवीपुत्र' शीर्षक से सङ्कलित हुए हैं। लेखक ने ग्रन्थ के घोषणा-पत्र में आवाहन किया है—"हिन्दी के साहित्य-सेवियों को पृथिवी-पुत्र बनना चाहिए। सच्चे हृदय से यह कह और अनुभव कर सकें—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥ —अथर्ववेद

"यह भूमि माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ" लेखकों में यह ज्ञान न होगा तो उनके साहित्य की जड़ें मजबूत नहीं होंगी आकाश-बेल की तरह वे हवा में तैरती रहेंगी। हिन्दी-साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करनी चाहिए। लेखक जिस प्रकार के जीवन-रस को चूसकर बढ़ता है उसी प्रकार की हरियाली उसके साहित्य में भी देखने को मिलेगी। आज लोक और लेखक के बीच में गहरी खाई बन गई है।"

यह सन्देश है—वासुदेव के रूप में प्राप्त 'वासुदेव शरण'जी का। क्या आज के साहित्यकार इससे कुछ प्रेरणा ले सकते हैं?

इस पुस्तक में डा० अग्रवाल के ३७=२१+१६ शोधपरक लेख तथा परिशिष्ट में कुछ महत्वपूर्ण पत्र तथा अन्त में टिप्पणियाँ हैं। लेखक को इस दृष्टिकोण की मूल प्रेरणा मातृभूमि के साथ जीवन के सभी सूत्रों को मिला देने से प्राप्त हुई है जिसकी भावना सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक है। डा० अग्रवाल यह भी स्वीकार करते हैं कि पृथिवी-पुत्र धर्म का ही दूसरा नाम जनपदीय दृष्टिकोण है।

इन निबन्धों से जहाँ वासुदेवशरणजी के अगाध पाण्डित्य, विवेचनात्मक अध्ययन एवं सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि का उद्घाटन होता है वहाँ दूसरी ओर लोक-जीवन के प्रति अटूट प्रेम, श्रद्धा तथा उसमें ही घुल-मिल कर मिट जाने की भावना स्पष्टतः प्रकट होती है। आज वही पृथिवी-पुत्र वस्तुतः 'पृथिवी-पुत्र' बन कर कण-कण में लीन हो चुका है।

डा० वासुदेवशरणजी ने जिस जनपदीय अध्ययन की आँख से लोक, लोक-जीवन, लोक-व्यवहार, लोक-पक्ष आदि का अध्ययन किया था उसका एक अंश भी आज के राष्ट्र-नायकों को प्राप्त हो जाय तो इस युग की सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है आज की 'अन्न-समस्या' के कारणों में जहां बढ़ती जन-संख्या, अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि है वहाँ उसके मूल में लोक से हटकर कृषि-विशेषज्ञों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था तथा राष्ट्र के कर्णधारों की लोक-विमुखता है। विदेशी भाषा के माध्यम से प्राप्त उनका यह ज्ञान विदेशों में चाहे उपयोगी सिद्ध हो जाय पर भारत में नहीं, क्योंकि लोक-जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कृषि विशेषज्ञ न होते हुए भी डा० अग्रवाल ने जो 'गेहूँ' की निजवार्ता प्रस्तुत की है वह उनकी लोक-रुचि का परिचायक है। मुझे सन्देह है कि किसी भी जिले के किसी अधिकारी ने इतना सूक्ष्म अध्ययन किया होगा, लोक में जाकर लोकभाषा में, जैसा डा० अग्रवाल ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किस प्रकार 'खोइद' रूप में गेहूँ का दाना जुड़ी हुई पत्तियों के साथ प्रथम जन्म लेता है, किस प्रकार नरई पड़ने से वह बड़ा होता है, किस प्रकार गमौदे के भीतर बाल के साथ घरिग्राएँ रहती हैं जो बढ़ने पर बाहर ग्रा जाती हैं ग्रौर फिर किस प्रकार उन घरिग्राग्रों के भीतर मक्खन फूल वैठता है जब उसके भीतर का रस श्वेत दूध के रूप में बदल कर हमारे खेतों ग्रौर जीवन को एक साथ लक्ष्मी के वरदान से भर देता है, मानो क्षीर सागर की पुत्री साक्षात् प्रकट होकर जनपदों में दर्शन देने ग्रायी हो—यही गेहूँ की निजवार्ता है। यदि बर्फीली हवा न बहे, बढ़िया समा हो, मोटी धरती हो ग्रौर पानी लगा हो तो एक-एक गमौदा राष्ट्र के जीवन का बीमा लेकर ग्रपने स्थान पर खड़ा हुग्रा स्वयं हँसता है ग्रौर ग्रन्य सबको प्रसन्न करता है। गेहूँ के पौधे का यह स्वरूप जनपदीय ग्राँख की बढ़ी हुई शक्ति का एक छोटा-सा उदाहरण है।"

वासुदेवशरणजी का यह विश्वास था कि जनपदों के भण्डार से लगभग ५० सहस्र नये शब्द ग्रा जायेंगे ग्रौर भौतिक वस्तुग्रों एवं मनोभावों को व्यक्त करने के लिए "जोगाजोग शब्दावली पाने का हमारा टोटा मिट जायेगा।" ग्राप से ही प्रेरणा लेकर डा० ग्रम्बाप्रसाद 'सुमन' ने ग्रापके ही निर्देशन में ब्रज की कृषक शब्दावली में १३१५८ शब्द प्रस्तुत किये। ग्रौर भी बहुत से शोधार्थी इस दिशा में जुटे हुए हैं। स्वयं डाक्टर साहब इस प्रकार के एक बृहत् व्युत्पत्तिमूलक कोश का निर्माण करने में संलग्न थे। ग्रनेक सांस्कृतिक शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का ग्रर्थ डा० ग्रग्रवाल ने ग्रपने ग्रन्थों में स्पष्ट किया है पर यहाँ मैं केवल लोकजीवन के उन सहस्रों शब्दों में से कुछ दे रहा हूँ, जैसे हउहरा, बतास, सुतिया हँसली, घोरना, कपटा, गदनेटा, कबिस, लमेर, गधेरा, हैगा ग्रादि। उदाहरणार्थ एक शब्द ले सकते हैं :

वसन्त का ग्रर्थ—जिस ऋतु में रस वनस्पतियों में बसने लगता है, उसे वसन्त कहते हैं। प्रत्येक वृक्ष में वर्षभर का रस मण्डलाकार रूप में जमता है जिसे 'रिंग' कहते हैं। वसन्त ऋतु से नये रस की रिंग पड़नी ग्रारम्भ होती है ग्रौर वृक्ष में नयी पत्तियाँ लहलहाने लगती हैं।

इस पुस्तक में ही 'गढ़वाली लोक गाथाएँ', 'निमाड़ी' बाघेली घुँयाल, गुजराती ग्रादि लोकगीत तथा 'कृषक जीवन सम्बन्धी शब्दावली' से सम्बद्ध पुस्तकों पर लिखे गये प्राक्कथन हैं। कुछ पुस्तकों तथा शोध-ग्रन्थों की भूमिकाएँ भी हैं। जिसमें उनके व्यापक ज्ञान का झरना झर रहा है।

ग्राज की ज्वलन्त खाद्य समस्या का समाधान ढूँढ़ना है तो उनके 'धरती' निबन्ध की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"धरती, खाद, गोधन, चारागाह एक ही लक्ष्मी के चार हाथ हैं। एक की कुशल दूसरे की कुशल के साथ गुथी हुई है। एक को भी हम सचाई से ठीक करने लगें तो दूसरे ग्रंग उसी के साथ ठीक होने लगेंगे। गाँवों के कल्याण का सन्देश ढीला पड़ा हुग्रा है। उसमें बिजली भरने की ग्रावश्यकता है। हलधर मनोवृत्ति के प्रचार से शहर ग्रौर गाँवों में किसान के जीवन के प्रति नयी रुचि उत्पन्न होगी संकलपवान् चित्त में नये कार्यक्रम का उदय होगा।"

डा० ग्रग्रवाल वरदानस्वरूप 'पृथिवी पुत्र' के रूप में हमको मिले थे, काश हम उनके इस स्वरूप को समझ सकते।

—मु० विश्वविद्यालय, ग्रलीगढ़।

ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक महानुभाव अपनी ग्राहक संख्या लिख देंगे तो उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त हो सकेगा। अन्यथा ग्राहक-संख्या खोज कर सकना और आज्ञा का पालन करना सहज सम्भव नहीं है।

— मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

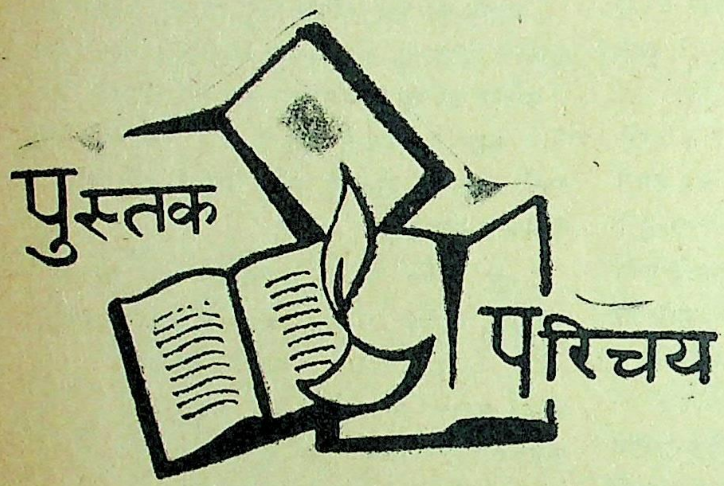

समालोचनार्थ
प्रत्येक पुस्तक
की
दो प्रतियाँ
आनी चाहिये

आलोचना

हिन्दी-तेलुगु व्याकरणों का एक तुलनात्मक अध्ययन—

लेखक–एस० वी० शिवराम शर्मा, प्रकाशक–आंध्र-प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद। पृष्ठ १२६, मूल्य ५.००

तेलुगु, दक्षिण-भारत की अनार्य परिवार की भाषा है। यह सभी रूपों में हिन्दी से भिन्नता लिए हुए है। सभी भाषाओं का अपना व्याकरण होता है तथा उसकी कुछ भाषागत विशेषताएँ भी होती हैं। हिन्दी के माध्यम से अन्य भाषाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए इस तरह की पुस्तकों का प्रणयन आवश्यक ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण है।

भाषाओं के आदान-प्रदान एवं मानवीय व्यवहारों की ज्ञेयता के लिए भाषा का शब्द-रूप ही माध्यम होता है। प्रस्तुत पुस्तक में तेलुगु की विशेषताओं को हिन्दी के माध्यम से जानने के लिए अच्छा प्रयास किया गया है। तेलुगु के शब्दों को तेलुगु लिपि के साथ उसका उच्चारण देवनागरी लिपि में लिखा गया है। इससे हिन्दी का पाठक उसके रूप एवं लिपि को सहज ही समझ सकता है। लेखक ने व्याकरण की सभी विधाओं एवं रूपों की अन्य अनार्य भाषाओं से तुलना कर उसका मूल्याङ्कन किया है जिससे पाठक की जिज्ञासा का परिसन्तोष हो जाता है।

पुस्तक को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम वर्ग में वर्ण-विचार, द्वितीय में शब्द-विचार और तृतीय में वाक्य-विचार। भाषा के तीन रूप—वर्ण, शब्द एवं वाक्य ही प्रमुख हैं। सम्पूर्ण भाषा का विकास इन्हीं तीन रूपों के सहारे होता है। तेलुगु के शब्दों की उत्पत्ति और विकास को भी लेखक ने समझाया है तथा प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों एवं पुस्तकों की मदद भी ग्रहण की है। इन सबके अतिरिक्त भाषा के लौकिक रूपों को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है। मुहाविरे, लोकोक्तियाँ एवं कहावतों को हिन्दी से तुलना कर पाठक के समक्ष रखा गया है।

संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों को तेलुगु एवं हिन्दी के अर्थों की तुलनात्मक व्याख्या भी इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। समग्र रूप से पुस्तक हिन्दी-पाठकों के लिए बड़ी उपयोगी है क्योंकि तेलुगु की सम्पूर्ण व्याकरणगत जानकारी हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करने में लेखक सफल हुआ है।

निबन्ध

जीवन क्रान्ति की दिशा—

लेखक–डा० गोविन्ददास, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १३२, मूल्य २.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ गोविन्ददास के बत्तीस लघु किन्तु गम्भीर विचार-प्रधान लेख इस पुस्तक में संकलित हैं। प्रसिद्ध विचारक आचार्य रजनीश से लेखक ने इन लेखों के रचने की प्रेरणा ली है। इन लेखों में उनकी आध्यात्मिक रुचि एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यधिक निष्ठा का प्रकाशन हुआ है।

पुस्तक को लेखक ने अपने पुत्र स्व० जगमोहनदास की मधुर स्मृति में समर्पित किया है जो कि उनके मनोवेगों का सफल नेतृत्व करता था। एक बड़े अप्रत्याशित आघात के समय मानव दुर्बलताएँ सभी को सताती हैं, यह बात स्वयं लेखक के साथ भी हुई है, किन्तु जीवन क्रियात्मकता का नाम है, इसी को ध्येय में रखते हुए इस पुस्तक की रचना हुई। मानव अपने जीवन में सुख-दुख, जन्म-मरण सब कुछ देखता है फिर उसके उपरान्त उसका निष्कर्ष निकाल कर जीवन पहलुओं को ढालता है। इसी अनुभव एवं ज्ञान राशि के द्वारा अन्य पाठक भी गूढ़ एवं गम्भीर विषयों को समझने में समर्थ होता है। सेठजी के ये लघुलेख विचारों एवं अनुभवों के रत्न हैं जो कि सदैव दीप्त रहकर अपने आस-पास के परिवेश को भी द्युतिमान बनाए रखने में पूर्णतया समर्थ हैं।

जीवन में मानसिक शान्ति एवं वैचारिक उत्कृष्टता के लिए प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन उपयोगी एवं पथ-प्रदर्शक होगा, ऐसा विश्वास है।

सरगम—

लेखक—कृश्नचन्दर, प्रकाशक—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। मूल्य २.५०, पृष्ठ ६१।

'सरगम' कृश्नचन्दर का व्यंग्यात्मक निबन्धों एवं संस्मरणों का संग्रह है। कृश्न चन्दर केवल उपन्यासकार व कहानीकार ही नहीं हास्य एवं व्यंग्य लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। उनके व्यंग्य तेज नश्तर की तरह हैं जो समाज व व्यक्ति के भीतर तक उतरकर स्वास्थ्य एवं शक्ति की ओर अग्रसर करता है—'सरगम' में चुटीले व्यंग्य हैं तो प्रेम पगे संस्मरण भी। सआदत हसनमटो, नेहरूजी, कैनेडी, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि के संस्मरण रोचक हैं।

कविता

बीन के तार—

ले० सुबोध कुमार 'सुधाकर', प्रकाशक—रश्मि प्रकाशन, त्रिवेणी गंज, सहरसा। पृ० ४२, मूल्य १.००

कवि सुधाकर के ४१ गीतों का यह सकलन प्रमाणित करता है कि उसमें कवि की भावनानुभूतियाँ विद्यमान हैं। जीवन के परिप्रेक्ष्य के साथ अनुकूल वातावरण के सहयोग से उसके काव्यों का चमत्कृत हो जाना सहज सम्भाव्य है। इन गीतों में कवि की शृङ्गारिक भावना पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—

सम्पादक—भवानीप्रसाद मिश्र, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। पृष्ठ १२७, मूल्य ३.००।

'नवीन'जी स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी थे, उनमें देश-प्रेम के साथ ही कवि की भावुक उर्मियाँ भी विद्यमान थीं जिन्हें प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी हटा न सकीं वरन् उनके परिवेश में कवि का भावुक हृदय माँ भारती की सेवा के लिए सर्वदा तत्पर रहा। इन्हीं नवीनजी की श्रेष्ठ और लोकप्रिय कविताओं का इस पुस्तक में संकलन किया गया है।

प्रारम्भ में नवीनजी की जीवनी एवं उनके व्यक्तित्व का चित्रण है, जिससे पाठक को उनके त्याग धैर्य एवं साहस का परिचय मिलता है और उसी सन्दर्भ में उनकी कविताओं को समझने में सहायक भी होता है। जीवन के हर दृष्टिकोण की रचना करना नवीनजी खूब अच्छी तरह जानते थे। इसीलिए उनके भाव समाज के हैं, जनता के हैं और अन्त में अपने हैं। लोकप्रियता के इसी सोपान ने उन्हें प्रसिद्धि के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। तभी तो कवि एक स्थल पर स्वयं कहता है—

इस धरती पर लाना है,
हमें खींच कर स्वर्ग,
कहीं यदि उसका ठौर ठिकाना है।

समता एवं आत्मविश्वास के इसी भाव ने ही नवीनजी को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पक्षपाती बना दिया। फलतः वे सभी मानवों से प्रेम करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी प्रत्येक कविता में लोक-मानस की वाणी सुनाई पड़ती है। एतदर्थ उनकी कविताओं का यह संकलन निश्चय ही उत्तम है।

उपन्यास

पराया—

लेखक–रांगेयराघव, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। पृष्ठ १६०, मूल्य ३.५०।

'पराया' में डा० रांगेयराघव ने धनलोलुप समाज के खोखलेपन को चित्रित किया है। मनोहर, ममता, बैरिस्टर और रमेश नये युग की उपज हैं जो प्रति-क्षण अन्धकार की ओर बढ़ रहे हैं। फिर भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इस निराशा भरे अन्धकार में आशा का दामन नहीं छोड़ते।

उपन्यास मनोरंजक है। पाठक इसे शुरू करने के बाद समाप्त करके ही उठेंगे।

नाटक

काँच के खिलौने—

मूल लेखक–टेनेसी विलियन्स, यूजीन ओ' नील, हावर्ड टीशमान व जार्ज एस० कॉफमान, अनुवादक–अमिताभ, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ २४८, मूल्य ५.००।

प्रस्तुत पुस्तक में विश्व के तीन आधुनिक नाटक संगृहीत किये गये हैं। ये तीनों नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल अभिनय योग्य हैं। प्रथम नाटक 'काँच के खिलौने' जिस पर कि पुस्तक का नामकरण हुआ है, विश्वविख्यात नाटककार श्री टेनेसी विलियन्स द्वारा लिखा गया है। यह उनके अंग्रेजी नाटक 'द ग्लास मेनाजरी' का हिन्दी अनुवाद है। यह नाटक प्रतीकात्मक भी है। लॉरा विंगफील्ड, एक ऐसी लड़की है जोकि यथार्थ से दूर किन्तु भ्रमों में उलझी हुई अपना जीवन व्यतीत करती है। यद्यपि लारा विंगफील्ड लँगड़ी है फिर भी उसकी कल्पना, अनुभूतियाँ बहुत ही आदर्शात्मक एवं उच्चकोटि की है। माँ, अमेण्डा, विंगफील्ड और बेटा टॉम विंगफील्ड में पारिवारिक सभी गुणों के होते हुए भी कुछ मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। इसीलिए वे आपस में झुँझलाते एवं परेशान रहते हैं। फलस्वरूप नाटककार स्वयं इस नाटक को 'स्मृति-नाटक' की संज्ञा देता है। 'मेहमान जिन ओ' कॉनर भी बड़ी कुशाग्र एवं व्यवहारिक जीवन का मानव है। उसने सभी बातों का अध्ययन अपने एक ही निरीक्षण में पूर्ण कर लिया। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

दूसरा नाटक 'घर वापसी का लम्बा सफर' नोबुल पुरस्कार विजेता यूजीन ओ' नील के अंग्रेजी नाटक 'द लांग वॉयेज होम' का हिन्दी अनुवाद है। यह नाटक समुद्री जीवन पर आधारित है इसीलिए इसमें मालवाही जहाजों एवं नौकरों के क्रियात्मक कार्यों के साथ इसकी कथावस्तु अग्रसरित होती है।

तीसरा नाटक 'ठोस सोने की मोटर' के दो संयुक्त लेखक हैं—हॉवर्ड टीशमान एवं जार्ज एम० कॉफमान। यह नाटक इनके अंग्रेजी नाटक 'द सालिड गोल्ड कॅडिलक' का हिन्दी अनुवाद है। जिस प्रकार इसके दो मिले-जुले लेखक हैं उसी तरह इसके दो चित्रण के स्थान भी हैं: न्यूयार्क एवं वाशिंगटन। यह एक हास्य-कामेडी नाटक है। इसमें अमरीका के व्यापारियों, नेताओं एवं टेलीविजन वालों को खूब व्यंग्य-बाण से घायल करने का प्रयास किया गया है किन्तु निशाना ठीक होते हुए भी गोली नकली होने से असर कम होता है। इसीलिए श्री फ्रेड एलन इस नाटक को परिकथा की संज्ञा देते हैं जो ठीक भी है। लेखक द्वय ने इसमें तीखे एवं चोखे व्यंग्य वाक्यों के अलावा मनोरंजन एवं हास-परिहास का भी चित्र खींचने का भरसक प्रयास किया है किन्तु उनका प्रयास स्वाभाविक नहीं अपितु सायास सा प्रतीत होता है।

उपर्युक्त तीनों नाटक रंगमंच की कसौटी पर खरे उतरते हैं, इनका अभिनय बड़ा सफल एवं लोकप्रिय प्रमाणित हो चुका है। इसीलिए प्रायः इन नाटकों का संसार की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में इस तरह की उच्चकोटि की सामग्री लाकर वास्तव में प्रकाशक ने हिन्दी-साहित्य के द्वारा उनका सम्मान किया है जो उचित भी है। अनुवाद की भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल तो है किन्तु किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर साधारण शब्दों को क्लिष्ट शब्दों के वाग्जाल में लपेटना पाठक एवं श्रोता दोनों को अखर सकता है।

सामाजिक

आत्म हत्या और वासना के अपराध—

लेखक—परिपूर्णानन्द वर्मा, प्रकाशक—साहित्य-निकेतन, कानपुर। पृ० २६१, मूल्य ६.००

प्रस्तुत पुस्तक आत्म हत्या तथा वासना के घृणित अपराधों को लक्ष्य कर लिखी गई है। मानव जब अपनी मानसिक उद्वेलना से संत्रस्त हो ऊब जाता है और उसे आगे जीने की इच्छा होते हुए भी उसका महत्व नहीं समझता तभी मृत्यु का आह्वान करता है, यम के क्रोड़ में हँसते-हँसते बैठने को व्याकुल हो जाता है। क्योंकि उसका नैतिक पतन उसे सह्य नहीं। संवेगों के चढ़ाव में वह बह जाता है। लेखक ने इसी संवेग एवं भावातिरेक मृत्यु आह्वान को अपने विशाल अनुभव के आधार पर व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। इसीलिए पुस्तक को चार अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम में आत्म हत्या का विस्तार, द्वितीय में आत्महत्या का कारण, तृतीय में—सामाजिक विघटन में कामवासना का स्थान तथा चतुर्थ में समाज का रोग तथा चिकित्सा का बड़ा ही तथ्यपूर्ण विवेचन है। विभिन्न समयों में हुई आत्म हत्या और उनसे प्राप्त पत्रों को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है। इससे विषय वस्तु के कारणों को जानने में लेखक को पर्याप्त सहायता मिली है। क्योंकि बहुधा आत्महत्या करने वाला अपने इस कुकृत्य के कारणों को लिपिवद्ध करके छोड़ जाता है और निश्चय ही यही उसका मूल भूत कारण भी होता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तो एक अलग बात है। वह तो पूरे समाज पर लागू होती है किन्तु व्यक्ति विशेष का रूप तो यही है।

कामवासना के प्रसंग में लेखक ने सभी अन्य राष्ट्रों का उदाहरण भी पुस्तक में समाहित कर उसकी पुष्टि की है। मानवीय मूल प्रवृत्तियाँ तो जन्मजात होती हैं तथा ये प्रकृति प्रदत्त भी। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैण्डूमल ने इसकी समुचित व्याख्या भी की है। अतएव विश्व के सभी मानवों में इनका पाया जाना स्वाभाविक है। भले ही उनका प्रस्फुटन कुछ कालान्तर में हो पर होता अवश्य है। इन्हीं दृष्टिकोणों के साथ लेखक ने उसे पाठकों के समक्ष रक्खा है। जो कि प्रज्ञा के चिन्तन से पलायन करने वाले मनुष्यों के लिए पथ प्रदर्शक का काम करता है।

आत्महत्या के प्रकारों, साधनों एवं स्थानों का भी पुस्तक में वर्णन है साथ ही उसके प्रभावों का भी। अन्त में लेखक ने इसके उपचार का थोड़ा सा सुझाव भी दिया है जो कि पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। समग्र रूप से पुस्तक का समाज शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन आवश्यक है। जिससे समाज के इस कुत्सित रोग से छुटकारा मिल सके।

समाज शास्त्र की भूमिका तथा समाज सेवा-कार्य—

लेखक तथा प्रकाशक उपर्युक्त, पृ० २८२, मूल्य ४.५० पैसे।

वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम में समाज शास्त्र को भी एक स्वतन्त्र विषय मानकर उसका अध्ययन और अध्यापन हो रहा है। समाज के प्रत्येक पहलू पर सोचना एवं उसके मूल भूत सिद्धान्तों का स्थिरीकरण करना ही इसका लक्ष्य है। प्रस्तुत पुस्तक में समाज-शास्त्र के प्रारम्भिक रूप से लेकर अब तक के सभी प्रारूपों का परिचय कराया गया है। यद्यपि स्थल-स्थल पर उन्हें देशी एवं विदेशी समाजशास्त्रियों के प्रश्रय से बल दिया गया है जिससे पाठक को संसार के अन्य समाजों का भी ज्ञान हो जाता है। लेखक ने पुस्तक को तीन भागों में विभक्त किया है। प्रथम, समाजशास्त्र क्या है? इसके अन्तर्गत उसकी परिभाषा से लेकर भारत की पंच वर्षीय योजनाओं तक का वर्णन है। द्वितीय, सामाजिक विचारधारा का विकास में संसार के प्रमुख समाजशास्त्रों के कार्यों एवं उद्देश्यों का वर्णन है तथा तृतीय, समाज सेवा कार्य में सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों एवं विकास योजनाओं को लिया गया है। इसके साथ समाज के अपराधों एवं बुराइयों का भी चित्रण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजशास्त्र के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

विज्ञान

प्रसिद्ध आविष्कारों की कहानी—

लेखक—सुखदेवप्रसाद बरनवाल, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० १४३, मूल्य २.५०

प्रस्तुत पुस्तक में विज्ञान के क्षेत्र में हुए पन्द्रह महान् आविष्कारों का परिचय रोचक एवं सुबोध शैली में दिया गया है। विज्ञान में इतने अधिक आविष्कार हुए हैं कि उनकी गणना करना सहज नहीं है लेखक ने इस पुस्तक में उन्हीं महान आविष्कारों को लिया है जिनका उपयोग हमारे दैनिक जीवन में अधिकाधिक होता है।

लेखक ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि प्रस्तुत पुस्तक किशोरोपयोगी हो और वे इससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। बालक उसे पढ़कर प्रेरित होंगे, यह इस पुस्तक से अपेक्षित है।

रिपोर्ताज

भारत एक है—

लेखक—सीताचरण दीक्षित, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० १३३, मू० १.००

प्रस्तुत पुस्तक में १४ शीर्षकों से गांधीजी के विचारों का प्रतिपादन सरल एवं सुबोध शैली में किया गया है। कहीं-कहीं उनके पत्रों की रूपरेखा से पाठक को प्रत्यक्ष गांधीजी के विचारों से अवगत होने का अच्छा स्थल प्राप्त हो जाता है। भारत विशाल देश होते हुए भी उसकी आत्मा एक है, भाव एक हैं तथा मानव एक हैं—गांधीजी ने इसे अपने सत्परामर्शों से विश्व के समक्ष प्रमाण रूप में रख दिया है कि भारत की विभिन्नता में ही एकता का निवास है। गांधीजी की आत्मा प्रत्येक भारतीय की आत्मा है। प्रस्तुत पुस्तक में जीवन का सरल एवं उच्च बनाने का सुन्दर मार्ग दिखलाया गया है।

२५% कमीशन पर
एम. ए., सा. रत्न के लिए चुने हुए
प्रश्नों का उत्तर

१.	पृथ्वीराज रासो	१.५०
२.	जायसी	१.७५
३.	तुलसीदास	२.५०
४.	सूरदास	३.००
५.	विनय पत्रिका	१.५०
६.	कबीर मीमांसा	२.००
७.	विद्यापति	१.७५
८.	घनानन्द	२.००
९.	बिहारी	२.२५
१०.	साहित्यालोचन-दर्शन	३.००
११.	विश्वास का बल	३.५०
१२.	उद्धवशतक	१.५०
१३.	प्रियप्रवास	१.००
१४.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	३.००
१५.	कामायनी दिग्दर्शन	२.७५
१६.	स्कन्दगुप्त	३.००
१७.	पन्त को काव्य कला (गाइड)	३.२५
१८.	चिंतामणि की (गाइड)	३.२५
१९.	साकेत की (गाइड)	५.००
२०.	पंत की टीका	२.५०
२१.	साकेत (प्रश्नोत्तर में)	१.५०
२२.	भाषा विज्ञान	२.५०
२३.	कामायनी की टीका	६.००
२४.	केशवदास (प्रश्नोत्तर में)	२.५०
२५.	राम की शक्ति पूजा	२.००
२६.	स्मृति की रेखाएं एवं अध्ययन	३.००

सरस्वती पुस्तक सदन
मोती कटरा, आगरा—३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

(१) **निबन्ध भारती**—सिंहासनराय 'सिद्धेश' (सजिल्द पुस्तक) मूल्य ३.५०
दिनकरजी के विचार—"निबन्ध-भारती' छात्रोपयोगी निबन्धों की मौलिक पुस्तक है। निबन्धों के विषय काफी विस्तृत और वैविध्यपूर्ण हैं। भाषा शुद्ध और टकसाली है। वाक्य सुस्पष्ट और विचारपूर्ण है।"

(२) **वाद-विवाद और व्याख्यान प्रवेशिका**—तिवारी और सिद्धेश मूल्य ३.५०
वाद-विवाद और व्याख्यान की तैयारी के लिए इस पुस्तक को अवश्य देखिए और पढ़िए। व्याख्यान के विषय—(१) तुलसी पर—तुलसी जयन्ती के अवसर पर बोलने के लिए (२) स्वतन्त्रता-दिवस—१५ अगस्त के अवसर बोलने के लिए (३) भगवान श्री कृष्ण—जन्मभूमी के अवसर पर बोलने के लिए (४) गांधीजी—गांधी जयन्ती के अवसर पर बोलने के लिए। इसी प्रकार सूर जयन्ती, मीरा जयन्ती, कबीर जयन्ती, प्रेमचन्द निधन-दिवस, २६ जनवरी आदि विषयों पर सुललित व्याख्यान ओजपूर्ण भाषा में लिखे गए हैं।

(३) **हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार**—सिंहासनराय सिद्धेश' मूल्य ३.००
हिन्दी के कवियों और गद्य लेखकों का सुन्दर साहित्य परिचय प्राप्त करने के लिए इसे अवश्य पढ़ें।

(४) **नागरिकता तथा भारतीय शासन**—शिवनाथ शर्मा एम. ए., बी. टी., सा. रत्न मूल्य ९.००
सन् १९६६ तक के आधुनिकतम तथ्यों से परिपूर्ण यह अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। ४था संस्करण।

(५) **समाज का अध्ययन**—श्री बलराम चौहान मूल्य ५.५०
समाज अध्ययन सेकेण्डरी स्कूलों में पाठ्य पुस्तक होगया है। यह पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है—प्रत्येक विद्वान् शिक्षाप्रेमी ऐसा ही कहते हैं।

(६) **कुँवरसिंह नाटक**—श्री कान्तजी मूल्य २.५०
नाटक खेलने योग्य है। पढ़ना प्रारम्भ करने पर छोड़ने को दिल नहीं चाहता।

(७) **बलिदान (उपन्यास)**—श्री बैजनाथ राय एम० ए० मूल्य ४.००
इसमें सन् १९४२ के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का सजीव चित्र है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बलिदान के लेखक को यथार्थ गहराई में पहुँचने में अद्भुत सफलता मिली है।

(८) **उच्चतर निबन्ध भारती**—श्री 'सिद्धेश' तथा मिश्र मूल्य ५.००
सभी विषयों की निबन्धों की यह पुस्तक इंटर, बी. ए., विशारद, कोविद, प्रभाकर आदि के छात्रों के लिए है।

(९) **टिमटिमाते दीप**—आचार्य राजकिशोर त्रिपाठी मूल्य ३.५०
इस सरल उपन्यास में यथार्थ और आदर्श का सुन्दर समन्वय है। पढ़ना प्रारम्भ कर यह छोड़ा नहीं जा सकता।

(१०) **मगध की पद्मिनी**—वासुदेव उपाध्याय एम० ए० मूल्य ३.००
अच्छे उपन्यास के सभी गुणों से युक्त यह उपन्यास सहृद प्रेमी पाठकों के गले का हार हो रहा है।

(११) **संसार की प्राचीन सभ्यताएँ और भारत से उनका सम्बन्ध**—राजकिशोर शर्मा मूल्य ६.००
इस पुस्तक के लेखक इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान हैं उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि भारतीय सभ्यता ही संसार की प्राचीनतम सभ्यता है और यहीं से यह सर्वत्र फैली।

(१२) **अर्थशास्त्र के मूल तत्व**—श्री सच्चिदानन्द मिश्र मूल्य ८.५०
अपने विषय की यह सर्वश्रेष्ठ पुस्तक इण्टर और हायर सेकेण्डरी के छात्रों के लिए नवीनतम आंकड़ों के साथ लिखी गई है।

(१३) **सीमा रेखा**—शिवमूर्ति 'शिव' मूल्य ३.००
क्या आज भी काश्मीर की घाटियों में देश की रक्षा के लिए जूझने वाले प्रेमी नौजवानों का हृदय घाटी पार से उठने वाले प्यार के नए-नए सरगम सुनकर भी प्यार का प्रतिदान देने के लिए उतावला नहीं है?" इस प्रश्न का एक मात्र हल आपको इसी ग्रन्थ में मिलेगा।

आदर्श पुस्तक भंडार, ९८, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपावली
की
शुभ कामनायें

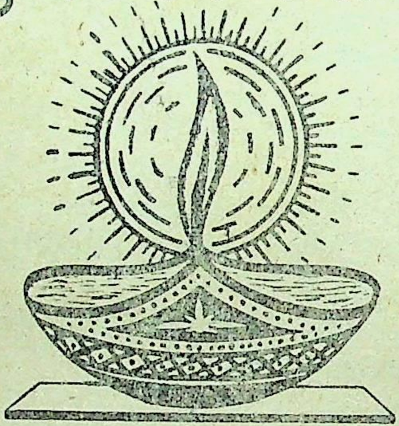

जी॰ जी॰ इण्डस्ट्रीज़

प्रधान कार्यालय :- आगरा

कारखाने तथा शाखायें:-

• हलद्वानी • बैंगलौर • देहली

हमारी निर्मित वस्तुयें :-

GG BRAND

जेम्स, कण्डफ्रूट्स, चाकलेट्स, इत्यादि तथा

डबलसीम कनस्तर एवं डिब्बे, सादे तथा रंगीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्रों, अध्यापकों एवं प्रोफेसरों में
विगत २८ वर्षों से लोकप्रिय

साहित्य-सन्देश

(आलोचना प्रधान मासिक)

की पुरानी फाइलों की बड़ी माँग रहती है।

क्योंकि :

१—प्रत्येक वर्ष की फाइल में हिन्दी के विद्वान लेखकों के लगभग सौ लेख संकलित रहते हैं जो छात्रों, शोधकर्त्ताओं एवं प्राध्यापकों सभी के लिए अत्यन्त उपादेय होते हैं।

२—प्रत्येक वर्ष की फाइल के प्रत्येक अंक में हिन्दी की नई-नई पुस्तकों की निष्पक्ष समीक्षा तथा साहित्यिक समस्याओं पर सुविचारित टिप्पणियाँ भी रहती हैं।

३—प्रत्येक वर्ष की फाइल में ५०० पृष्ठों की ठोस सामग्री रहती है जो पुस्तकाकार में १००० पृष्ठ से कम नहीं बैठेगी। पुस्तकाकार में इसका मूल्य बीस रुपये से कम नहीं हो सकता।

४—इन फाइलों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। १५ रुपये के स्थान पर केवल १० रुपये इसलिए रखा गया है ताकि सभी लाभ उठा सकें।

●

एक विशेष रियायत

विगत वर्षं की फाइलों को **३१ दिसम्बर ६७** तक पौने मूल्य में देने की विशेष रियायत की घोषणा करते हैं, अतः अपना आर्डर शीघ्र दें ताकि निराश न होना पड़े।

●

इतना ध्यान रखिये—

★ १९३७ से १९५१ तक की कोई फाइल उपलब्ध नहीं है।

★ १९५२ से १९६७ तक की फाइलें भी पूरी नहीं मिल सकेंगी, स्टाक समाप्त होता जा रहा है अतः आर्डर भेजने में विलम्ब न करें।

★ डाक-खर्च प्रति फाइल दो रुपये अतिरिक्त देना होगा किन्तु कम से कम पाँच फाइलों के आर्डर पर रेल-भाड़ा हम देंगे।

★ आर्डर के साथ ५.०० अग्रिम मनीआर्डर द्वारा जाना चाहिए। अपना पता साफ़ लिखें और रेलवे स्टेशन का नाम भी लिखें।

व्यवस्थापक : साहित्य-सन्देश, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. L 263 October 1967 Licence No. 16
Sahitya-Sandesh, Agra. Licensed to post without prepayment.

हिन्दी की विविध विधाओं पर प्रकाशित

हमारी नवीन पुस्तकें

१.	हिन्दी आलोचना	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
२.	हिन्दी उपन्यास	: सिद्धान्त और विवेचन	५.५०
३.	हिन्दी कहानी	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००
४.	हिन्दी नाटक	: सिद्धान्त और विवेचन	५.००

अभी चार पुस्तकों का सैट बनाने की योजना बनाई है जो सभी तैयार हैं। सभी पुस्तकें जिल्ददार हैं और बड़े आकार में बढ़िया सफेद कागज पर छपी हैं।

इनमें उस विषय के

चोटी के विद्वानों के चुने हुए लेख संग्रहीत हैं।

उ प यो गि ता

को देखते हुए हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और विवेचन तो छपते ही आगरा विश्वविद्यालय ने अपनी बी० ए० की परीक्षा में स्वीकृत करली है।

चारों को एक साथ मँगाने पर विशेष रियायत

चारों पुस्तकों का मूल्य २०.५० रु० है। लेकिन जो सज्जन चारों पुस्तकों का रियायती मूल्य १५.०० पेशगी मनीआर्डर से भेज देंगे उनको पोस्टेज और रजिस्ट्री का खर्च भी नहीं देना पड़ेगा।

यह रियायत—

३१ दिसम्बर १९६७ तक है।

साहित्य रत्न भंडार, साहित्य कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registerd with the Registrar of Newspapers for India under No. 2251/57

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

[आलोचना—मासिक]

•

बच्चन-विशेषाङ्क

नवम्बर-दिसम्बर १९६७

प्रकाशक :
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा-२

सम्पादक
महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चकोटि के समीक्षात्मक ग्रन्थ

एम. ए. और साहित्य-रत्न के छात्रों के लिए विशेष उपयोगी :

३१ मार्च' ६८, तक विशेष रियायत

साहित्यालोचन सम्बन्धी ग्रन्थ

साहित्य की आत्मा

ले० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

भारतीय काव्य-शास्त्र एवं पाश्चत्य सिद्धान्तों के आधार पर काव्य की आत्मा का विवेचन करते हुए आधुनिक दृष्टि से निष्कर्ष । मूल्य ५ रुपये

साहित्य के तत्त्व

साहित्य के आधारभूत तत्वों—भाव, विचार और कल्पना पर आधुनिक साहित्य-शास्त्र, मनोविज्ञान एवं सौन्दर्य-शास्त्र की दृष्टि से विचार । मूल्य ५ रुपये

साहित्य की शैली

ले० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

शैली के सभी पक्षों, अंगों, तत्वों की भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि से सूक्ष्म विवेचना । मूल्य ७.५०

ग्रीक-साहित्य-शास्त्र

ले० श्री हरीश करुण

सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, लोंजाइनस, दमित्रियस आदि ग्रीक आचार्यों के मूल ग्रन्थों का प्रामाणिक एवं स्पष्ट अनुवाद । मूल्य ५.५०

रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा

ले० डा० कृष्णदेव झारी

रस-सिद्धान्त पर आधुनिक दृष्टिकोण से तथा नये साहित्य के सन्दर्भ में पुनर्विचार । मूल्य ९.००

समीक्षात्मक ग्रन्थ

सन्त-काव्य का दार्शनिक विश्लेषण

ले० डा० मनमोहन सहगल

प्रमुख एवं प्रतिनिधि सन्त कवियों के दार्शनिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन । पी. एच-डी. का शोध-प्रबन्ध । मूल्य १२.५०

बिहारी-सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा

ले० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

इसमें बिहारी के व्यक्तित्व, जीवन-चरित, जीवन-दर्शन, काव्य-दर्शन, भक्ति-भाव, शृङ्गार-निरूपण, विरह-वर्णन, शैली-पक्ष आदि पर सर्वथा नूतन दृष्टि से गम्भीर रूप में विचार किया गया है । मूल्य ५.५०

प्रेमचन्द और गोदान : नवमूल्यांकन

ले० डा० कृष्णदेव झारी

इसमें प्रेमचन्द की उपन्यास-कला के सन्दर्भ में गोदान के विभिन्न पक्षों, तत्वों, विवादास्पद विषयों एवं उसकी विभिन्न समस्याओं पर पहली बार जमकर विचार किया गया है। 'गोदान' पर सर्वोत्कृष्ट समीक्षा । मूल्य ६.५०

आधुनिक साहित्य और साहित्यकार

ले० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

इसमें भारतेन्दु, गुप्त, प्रसाद, पन्त, महादेवी प्रभृति कवियों एवं 'गोदान', 'मृगनयनी', 'सन्यासी', 'चिन्तामणि', 'कामायनी' 'साकेत' आदि से सम्बन्धित विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । मूल्य ७.५०

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व व साहित्य

सं० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

लगभग तीस विद्वानों द्वारा आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व तथा बाणभट्ट की आत्मकथा, अशोक के फूल आदि के विभिन्न पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत । मूल्य ६.५०

सभी पुस्तकें ३१ मार्च तक विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को पौने मूल्य में । डाकखर्च अतिरिक्त होगा । कम से कम २५ रुपये की पुस्तकों का आर्डर एक साथ भेजें अन्यथा स्थानीय विक्रेताओं से पता करें ।

प्रकाशक—भारतेन्दु-भवन, २१५०, सै० १५, चण्डीगढ़--१७

शाखा—भारतेन्दु भवन, रानी बाजार, बीकानेर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

लेखक—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, डी० लिट्०

जिसे उत्तर-प्रदेश सरकार ने २५०० रु० का विशेष पुरस्कार देकर सम्मानित किया है।

●

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"………यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि उत्तर-प्रदेश सरकार ने आपके वैज्ञानिक इतिहास का सम्मान किया है। पुस्तक सम्मान के योग्य ही है। आपने जिस परिश्रम और साधना के साथ काम किया है उसका उत्तम फल प्राप्त होगा ही, अभी तो यह प्रारम्भ मात्र है, इससे भी उत्तम फल दूर नहीं।" —(लेखक को लिखे पत्र से उद्धृत)

●

"………समग्रत: पूरा ग्रन्थ मौलिक चिन्तन और नवीन व्याख्याओं से परिपूर्ण है। लेखक ने अद्यावधि उपलब्ध सामग्री से पूरा-पूरा लाभ उठाया है तथा इतिहास-लेखन की बनी-बनायी लीक से हटने का प्रयत्न किया है।………डा० गुप्त की विशेषता यह है कि उन्होंने पूरे हिन्दी-साहित्य के इतिहास को अद्यतन हिन्दी अनुसन्धान के आधार पर लिखा है और नयी खोजों के प्रकाश में उसके ढाँचे में पूरी तरह परिवर्तन कर दिया है।" —(**डा. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'** : आकाशवाणी से प्रसारित समीक्षा)

●

"लेखक ने भ्रान्तिपूर्ण पूर्व स्थापनाओं एवं रूढ़ियों की आलोचना में निर्भीकता प्रदर्शित करते हुए प्रत्येक स्थल पर अपना स्पष्ट मत दिया है।………ग्रन्थ इतिहास की नवीनतम व्याख्याओं के प्रकाश में अब तक विवादास्पद तथा अस्पष्ट काल-विभाजन की न्यूनताओं की ओर संकेत ही नहीं करता, उसकी एक नूतन व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है।" —(**'कादम्बिनी'**, मार्च, १९६६)

●

प्रमुख विशेषताएँ :

- हिन्दी में पहली बार विकासवादी दृष्टि से साहित्येतिहास के सिद्धान्तों का विवेचन।
- पूर्ववर्ती इतिहासकारों के काल-विभाजन की त्रुटियों का स्पष्टीकरण व निराकरण।
- विभिन्न काव्य-धाराओं के उद्गम-स्रोतों के सम्बन्ध में नयी स्थापनाएँ।
- अद्यतन अनुसन्धान से उपलब्ध सामग्री का समाहार।
- आदिकाल से सन् १९६५ ई० तक के हिन्दी-साहित्य का विवेचन।
- सरल, स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण एवं वैज्ञानिक विवेचन-शैली।

पृष्ठ संख्या १००८, ❀ **डिमाई साइज**, ❀ **मूल्य—राज संस्करण** २२.५०, ❀ **साधारण** १५.००

(एम० ए०, साहित्य-रत्न के छात्रों एवं शोध-कर्त्ताओं के लिए विशेष उपयोगी।)

प्रकाशक—

भारतेन्दु-भवन, २१५० । सैक्टर—१५, चण्डीगढ़—१७

शाखा—भारतेन्दु-भवन, रानी बाजार, बीकानेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष २९, अङ्क ५-६

साहित्य-सन्देश

नवम्बर-दिसम्बर १९६७

बच्चन विशेषाङ्क—

विषय-सूची

१—हमारी विचारधारा : बच्चन का व्यक्तित्व और कृतित्व		१८३
२—कवि बच्चन : एक रेखांकन	आचार्य विनयमोहन शर्मा	१८६
३—बच्चन : एक गतिशील व्यक्तित्व	डा० कन्हैयालाल सहल	१८६
४—सहृदय साहित्यिक बच्चन	डा० लक्ष्मीनारायण दुबे	१८७
५—बच्चन : व्यक्ति और कवि	डा० नरेन्द्रशर्मा	१८७
६—बच्चनजी का महत्त्वपूर्ण कार्य	डा० रामविलास शर्मा	१८७
७—बच्चन का साहित्य में अमर स्थान	श्री भगवतीचरण वर्मा	१८८
८—बच्चन-साहित्य : एक सर्वेक्षण	श्री राजानन्द	१८९
९—'बच्चन' के काव्य में आधुनिकता के बोध	डा० रामरतन भटनागर	१९८
१०—'बच्चन' : सामयिकता के सन्दर्भ में	डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	२०४
११—'बच्चन' के काव्य-सिद्धान्त	डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	२०७
१२—भारतीय मधु-परम्परा और बच्चन	श्री भगवतीलाल राजपुरोहित	२१३
१३—आशा और प्रकाश के इन्द्रधनुषी गीतकार बच्चन और 'सतरंगिनी'	डा० विजयेन्द्र स्नातक	२१५
१४—कविवर बच्चन और उनकी मधुशाला	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	२२०
१५—लोकप्रिय गीतकार डा० बच्चन	श्री विश्वनाथ साहू	२२३
१६—बच्चन के काव्य की व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ	डा० मुरारीलाल शर्मा 'सुरस'	२२५
१७—मानवतावादी कवि बच्चन	श्री दिनकर सोनवलकर	२२९
१८—बच्चन की काव्य भूमि	डा० मक्खनलाल शर्मा	२३२
१९—मेरी रचना प्रक्रिया	डा० बच्चन	२३५
२०—पुस्तक परिचय—'बहुत दिन बीते'		२३८

❀ वार्षिक मूल्य ६.००

❀ इस अङ्क का मूल्य १.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश
(आलोचना मासिक)

भाग–२९ अङ्क–५-६

सम्पादक
महेन्द्र
विश्वम्भर 'अरुण'

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

नवम्बर-दिसम्बर—१९६७

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

बच्चन विशेषांक—

बच्चन का व्यक्तित्व और कृतित्व

'बच्चन' जी का जन्म २७ नवम्बर १९०७ को इलाहाबाद के चक मुहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। आज वह मकान विद्यमान नहीं है और उसके स्थान पर इलाहाबाद की सबसे व्यस्त सड़क 'जीरो रोड' लेटी है। बचपन से इन्टर तक बच्चनजी इसी मकान में रहे। १९२६ में जब वे इण्टर द्वितीय वर्ष में थे तब इनका परिवार चक मुहल्ला छोड़ मुट्ठीगंज चला गया। इनके पिता का नाम श्री प्रतापनारायण था। वे इलाहाबाद के अंग्रेजी दैनिक 'पायनियर' में काम करते थे। बच्चनजी का बचपन आर्थिक कष्टों में बीता। 'बच्चन' यह नाम बच्चनजी की माताजी ने रखा था, घर में पुकारने के लिए। वैसे इनका पूरा नाम हरिवंशराय है। ये कुल मिलाकर चार भाई बहन रहे। एक बहन बड़ी थी, दूसरी छोटी। एक छोटा भाई भी था। 'आरती और अँगारे' में इन पारिवारिक सदस्यों का पर्याप्त संकेत मिलता है।

बच्चनजी के पिताजी को साहित्य का बड़ा शौक था। इनकी माताजी भी धार्मिक विचारों की थी। धर्म ग्रन्थों का पठन-पाठन उनका नित्य का कर्म था। 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी के प्रति इनकी रुचि हुई और एक दिन उमर खैयाम से भी प्रभावित हुए। इन्हीं दिनों एक बार श्री सुमित्रानन्दन पन्त को भी अपनी ननिहाल वाली पीले सिवाले की गली में बच्चनजी ने देखा और उनसे बहुत ही प्रभावित हुए।

बच्चनजी की प्रारम्भिक शिक्षा म्युनिस्पिल स्कूल, इलाहाबाद में हुई। सन् १९२७ में इन्टर पास किया। बी० ए० के प्रथम वर्ष में ही ये पढ़ रहे थे कि इनका विवाह हो गया। पत्नी का नाम श्यामादेवी था। प्रयाग विश्वविद्यालय में ही इन्होंने बी० ए० के बाद एम० ए० करना प्रारम्भ किया था किन्तु १९३० में गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन से इन्होंने यूनार्वसिटी छोड़ दी। डेढ़ दो वर्षों बाद अपने घर की परिस्थिति से घबराकर नौकरी करने लगे और कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभाग में रहे। सन् १९३६ में इनकी पत्नी श्यामाजी का यक्ष्मा रोग से स्वर्गवास हो गया। और एक साल तक जीवन के घोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँधकार से भयानक संघर्ष करते हुए फिर इन्होंने एम० ए० की पढ़ाई पूरी करने के लिए यूनिवर्सिटी में नाम लिखवाया। सन् १९३८ में अँग्रेजी विषय से इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० उत्तीर्ण किया। और फिर वहीं १९४१ में अँग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हो गये। इसके बाद सन् १९५४ में इंगलैण्ड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

'बच्चन' जी का दूसरा विवाह २४ जनवरी १९४२ को तेजीजी से हुआ। तेजीजी के आने से बच्चनजी के जीवन में नई उमंग और नवोल्लास आया। अपने छात्र जीवन में बच्चनजी को पूरा साहित्यिक वातावरण मिला था। इस प्रसङ्ग में ठाकुर विक्रमादित्य सिंह और आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव के नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं। उन दिनों वे पन्त और निराला से भी प्रेरित एवं प्रभावित हुए थे। बी० ए० के दिनों में बच्चनजी को साहित्यिक प्रेरणा डा० सत्यप्रकाश से सबसे अधिक मिली थी। एम० ए० के दिनों में उन्हें कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला था। इससे वे प्रेमचन्द के सम्पर्क में आए। साथ ही श्री भगवतीचरण वर्मा भी इनकी सहानुभूति सीमा में थे। हिन्दी के प्रति इनकी प्रबल रुचि का कारण स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का व्याख्यान सुनना था। वच्चनजी ने इसका स्वयं उल्लेख 'नये पुराने झरोखे' में किया है।

अपने छात्र जीवन १९२८–२९ में 'विज्ञान' नामक पत्रिका में इनका सर्व प्रथम निबन्ध 'हैकिल और जीव' प्रकाशित हुआ था। और प्रथम कविता १९३२ में जबलपुर के किसी पत्र में प्रकाशित हुई हुई थी। 'तेरा हार' उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है। 'मधुशाला' उनकी ख्याति का प्रमुख उपकरण है। बच्चनजी सन् १९५५ में आकाशवाणी के हिन्दी प्रोड्यूशर के पद पर नियुक्त हुए किन्तु तीन महीने के बाद ही दिसम्बर १९६५ में भारत सरकार ने इन्हें अपने विदेश मंत्रालय में विशेष पदाधिकारी के रूप में बुला लिया। दस वर्षों तक वहाँ महत्वपूर्ण सेवा करने के बाद अप्रैल १९६६ में वे राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए और अभी उसी पद पर हैं।

बच्चनजी का अपना छोटा सीमित परिवार है जिसमें स्वयं, श्रीमती तेजीजी और दो पुत्र—अमिताभ और अजिताभ हैं।

बच्चनजी का साहित्यिक सम्बन्ध अनेक महान् कवियों और लेखकों से रहा है। हिन्दी-कवियों में सबसे अधिक घनिष्ठता पन्तजी से रही है। बच्चनजी की समस्त कृतियाँ कालक्रम के अनुसार निम्न हैं—

१. तेरा हार— सितम्बर १९३२
२. बच्चन के साथ क्षणभर— १९३४
३. खैयाम की मधुशाला— अप्रैल १९३५
४. मधुशाला— —अप्रैल १९३६
५, मधुबाला— १९३६
६. मधुकलश — जुलाई १९३७
७. निशा-निमंत्रण— नवम्बर १९३८
८. एकांत संगीत— नवम्बर १९३९
९. आकुल अंतर— जनवरी १९४३
१०. प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग १) अप्रैल १९४३
११. " " (भाग २) मई १९४३
१२. सतरंगिनी " अप्रैल १९४५
१३. हलाहल जुलाई १९४६
१४. प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग ३) १९४६
१५. बङ्गाल का काल मार्च १९४६
१६. सूत की माला जुलाई १९४८
१७. खादी के फूल— मई १९४८
१८. मिलन-यामिनी— जुलाई १९५०
१९. सोपान— १९५३
२०. प्रणय-पत्रिका— जनवरी १९५५
२१. धार के इधर-उधर— सितम्बर १९५७
२२. मैकबेथ -- १९५७
२३. आरती और अंगारे— मार्च १९५८
२४. बुद्ध और नाचघर— सितम्बर १९५८
२५. जनगीता १९५८
२६. ओथेलो— १९५९
२७. सुमित्रानन्दन पन्त — अप्रैल १९५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. कवियों में सौम्य सन्त— मई १९६०
२९. त्रिभंगिमा— फरवरी १९६१
३०. नेहरू– राजनैतिक जीवन चरित १९६१
३१. आधुनिक कवि (भाग ७) १९६१
३२. नये पुराने झरोखे फरवरी १९६१
३३. चार खेमे : चौंसठ खूँटे— नवम्बर १९६२
३४. चौसठ रूसी कविताएँ— १९६३
३५. अभिनव सोपान— १९६४
३६. दो चट्टानें— मार्च १९६५
३७. डब्लू० बी० ईट्स ऐण्ड ओकल्टिज्म १९६५
३८. मरकत द्वीप का स्वर १९६६
३९. नागर गीता— जून १९६६
४०. बहुत दिन बीते— नवम्बर १९६७

अब तक बचनजी पर निम्न आलोचना पुस्तकें और लेख प्रकाशित हो चुके हैं—

पुस्तक—

१. प्रयोगकालीन बचन—सत्यप्रकाश मिलिन्द
२. हालावाद और बचन—प्रो. दशरथराज
३. बचन : व्यक्ति और कवि—सम्पादक बांकेबिहारी भटनागर
४. हरिवंशराय बचन—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
५. लोकप्रिय बचन—सम्पादक दीनानाथशरण

निबन्ध—(पुस्तकों में संकलित)

६. दुर्गाशंकर मिश्र पारिजात—हिन्दी कवियों की काव्य-साधना में
७. डा. नगेन्द्र—"आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' में
८. दीनानाथशरण—'पुनर्मूल्यांकन' में
९. भगवतीचरण वर्मा—'ये सात और हम' में

पत्र-पत्रिकाओं में—

१०. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—२९ नवम्बर १९६५
११. आजकल— दिसम्बर १९६५
१२. जगन्नियन्ता— २५ जनवरी १९६६
१३. उत्तर-बिहार— ७ फरवरी १९६६
१४. संज्ञा— फरवरी १९६६
१५. रसवन्ती— फरवरी १९६७
१६. राष्ट्र सेवक— मार्च १९६६
१७. स्वतन्त्र भारत— २३ मई १९६६
१८. साहित्य-सन्देश— मई १९६६
१९. लहर— अगस्त १९६६
२०. भारत— दिसम्बर १९६६
२१. नैतिकी— दिसम्बर १९६६
२२. लहर— बचन-अङ्क १९६७
२३. साहित्य-सन्देश—बचन-अङ्क नवम्बर-दिसम्बर १९६७

बचनजी को लोग हालावाद के प्रवर्त्तक के रूप में मानते हैं पर यथार्थता इससे भिन्न है। वास्तव में बचनजी ने हालावाद को प्रतीकात्मक रूप में हिन्दी जगत में लाए थे। उनकी कविता विद्रोह और नवजीवन की यौवनोचित भावनाओं का सन्देश लिए हुए है। इसके साथ ही उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी कविता में असाधारण माधुर्य और सहज भाव का समावेश किया है, इसीसे वे प्रारम्भ से ही नवयुवकों में अत्यन्त लोकप्रिय हो गए है।

बचनजी ने जीवन के कितने ही उतार-चढ़ाव देखे हैं। कितनी ही भारी असुविधाओं, अभावों और मानसिक क्लेशों का उन्हें अनुभव है। पर अपनी मेहनत और अपनी प्रतिभा के बल पर आज वह राज्यसभा के कुशल सदस्य हैं, उनका जीवन सुविधापूर्ण, बँधी हुई नियमित परिस्थितियों में चल रहा है। बचनजी जब हालावाद सम्बन्धी अपनी कविताओं को हिन्दी जगत में दिया तब कुछ लोगों को ऐसा भ्रम हो गया था कि बचनजी सुरा का सेवन करते हैं। किन्तु वे कभी शराब नहीं पीते। उनकी हाला पूरी तरह प्रतीकात्मक है, वह 'हाला विद्रोह और नवजीवन का प्रतीक है।

निसन्देह बचन भारत के काव्य-जगत की एक बहुमूल्य विभूति हैं। उनकी रचनाएं स्थायी महत्त्व की हैं क्योंकि उनमें मानव हृदय की चिरन्तन अनुभूतियों का काव्यमय चित्रण है। साहित्य-सन्देश उनकी साठवीं वर्षगाँठ पर हार्दिक अभिनन्दन करता है और दीर्घायु होने की कामना करता है जिससे कि माँ-भारती के पूजार्चन की सौरभ अविरल रूप से चतुर्दिक् प्रसरित होती रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि बच्चन : एक रेखांकन

आचार्य विनयमोहन शर्मा

कवि 'बच्चन' ने जीवन के साठ वर्ष पूरे कर लिए। उन्होंने महसूस किया है कि 'आरती' और 'अंगारों' के बीच 'निशा-निमन्त्रण' दे एकान्त संगीत गाते-गाते बहुत दिन बीते 'पर' मधुकलश ले 'मधुशाला' से कोई 'मधुबाला' आकुल अन्तर को खैयाम की मधुशाला नहीं बना पाई। 'प्रणय पत्रिका' भेज कर 'मिलन-यामिनी' की कल्पना भी की, 'दो चट्टानों' से सर भी पीटा, 'नए पुराने झरोखे' भी झाँके पर 'सतरंगिनी' के कहीं दर्शन नहीं हुए। तब किसी 'नागर' से 'गीता' उधार ले उसी का पाठ करने लगे और 'खादी के फूल से' 'सूत की माला' गूँथ कर महात्मा की समाधि पर 'अभिनव सोपान' पर खड़े होगए। वहीं लहर उठी तो सदियों मरे शेक्सपियर के 'ओथेलो और मैकबैथ' से अपनी कल्पना के माध्यम से ही एकरस होने लगे। कुछ हुए भी, कुछ नहीं भी हुए। फिर अपने परिवेश की ओर देखा तो साथी तरह-तरह के शब्द-बुझौअल का खेल-खेल रहे हैं। इन्हें भी अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करनी थी। अतः ये भी उनमें शामिल होगए—

"धन एक
ऋण एक
मिलकर हुआ सुन्ना
कविता एक
अकविता एक
मिलकर हुई कविताएँ दो मुन्ना"

मित्रों ने पूछा "हिन्दी के लोकप्रिय कवि 'बच्चन' को यह क्या हो गया जो यह खिलवाड़ करने लगा ?" मैंने कहा, "भाई, वह सठिया गया है। पर समझता है कि 'पाठा' हो गया है।" भगवान् उसकी समझ सार्थक करे और उसकी कविता नित 'पठिया' बनी रहे।

—हिन्दी विभागाध्यक्ष,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

बच्चन : एक गतिशील व्यक्तित्व

डा० कन्हैयालाल सहल

श्री बच्चनजी ने 'मधुशाला' के कवि के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। उनकी सहज सरल भाषा, रमणीय अभिव्यक्ति और सुमधुर कण्ठ ने कवि को लोकप्रिय बनाने में पूरा योग दिया। उनका 'हाला-वाद' पाठकों और श्रोताओं के हृदय में घर कर गया।

'निशा निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' भिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं जिसका काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद जब कवि ने दूसरी शादी की तो युक्तियुक्त बताते हुए निम्नलिखित मार्मिक उद्‌गार प्रकट किए—

जीवन में एक सितारा था, माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया।
अम्बर के आनन को देखा
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहाँ मिले ?
पर बोलो टूटे तारों पर अम्बर कब शोक मनाता है ?

'सतरंगिनी' और 'मिलन यामिनी' में उल्लासमयी अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। 'बंगाल के अकाल' और 'महात्मा गांधी' पर लिखी कविताओं में कवि का दूसरा ही स्वर मुखरित हुआ है। प्रथम कृति में प्रगतिवादी पद्धति से मिलती-जुलती क्रान्तिमयी विचारधारा परिलक्षित होती है।

दोहा-चौपाइयों में 'जन गीता' की रचना पाठकों के लिए एक आश्चर्यजनक कौतूहल का रूप सामने लेकर आई। लोकधुनों पर भी कवि ने इधर कुछ रचनाएँ कीं।

इस प्रकार डा० बचन का व्यक्तित्व एक गतिशील व्यक्तित्व है जिसने परिस्थितियों के अनुसार नव-नव रूप धारण किया है।

षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर मैं कवि का अभिनन्दन करता हूँ और चाहता हूँ कि वे शतायु होकर माँ भारती की श्री-वृद्धि करते रहें।

—शिक्षा-निदेशक, बी. ई. टी., पिलानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहृदय साहित्यिक बच्चन

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

डा० हरिवंशराय 'बच्चन' हिन्दी के सहृदय साहित्यकार हैं। उनमें सहृदयता, उदारता तथा सहकारिता का प्राधान्य है। उनका सजग एवं सतर्क व्यक्तित्व है। वे निबन्ध विचारों वाले व्यक्ति हैं। उन के मस्तिष्क के गवाक्ष खुले रहते हैं। उनमें कठघरों अथवा बन्धता का सर्वथा अभाव है। प्रत्येक दिशा में उनके निश्चित तथा सुस्पष्ट विचार हैं। ये ही विचार उनको सर्व-जन-निकट ले आते हैं। साहित्य की नवीनतम गतिविधियों के प्रति इतना सतर्क एवं सूचना सम्पन्न व्यष्टि विरल है। छोटे से छोटे नगर, छोटी से छोटी समिति, छोटी से छोटी पत्रिका, संकलन, पुस्तक, प्रकाशनादि के प्रति ये सज्ञान रहते हैं और उनका आश्वासन तथा आस्था भरा सद्भाव एवं शुभाशंसा वहाँ तक पहुँच जाती है। चाहे विद्यार्थी हो चाहे प्राध्यापक, चाहे छोटा हो या बड़ा, वे सबके पास वैचारिक रूप में उपस्थित रहते हैं और सबको यथा सम्भव अपने स्नेहावर्त्त में बाँध लेते हैं।

वे प्रेरणा-पुञ्ज हैं। प्रोत्साहन-आगार हैं। नव-चिन्तन-स्रोत हैं। उनमें आज के चिन्तक तथा श्रेष्ठ-साहित्य-सृष्टा का व्यक्तित्व मूर्तिमन्त है। उनका काव्य-साहित्य अनेक सोपानों को पार करता वर्तमान परिपक्व स्थिति को प्राप्त हुआ। वर्तमान रूप में भी ये अनेक प्रयोग कर रहे हैं। यह भी उनकी काव्य-उर्वरता का परिचायक है। वे लोक धुनों की ओर उन्मुख हुए। काव्य को लोक-समाज के निकट ला खड़ा कर दिया। वे विहित साहित्य तथा लोक-काव्य के सेतुबन्ध हैं। उनकी नवोन्मेषकारिणी दृष्टि नूतन स्थलों का ही अन्वेषण करती है। यही सचमुच कवि-धर्म है। उनके गद्य-साहित्य पर यद्यपि अभी सम्यक् ध्यान नहीं गया है पर वे उच्चकोटि के निबन्धकार हैं। उनके द्वारा लिखित संस्मरण बड़े मार्मिक हैं। उनमें जीवन की जागरूकता बोलती है।

डॉ० 'बच्चन' हिन्दी की विभूति हैं। उनका सहृदय व्यक्तित्व, जागरूक चिन्तक तथा सर्जनाशील साहित्यिक हिन्दी वाङ्मय की अक्षय मंजूषा है।

—सागर विश्वविद्यालय, सागर [म. प्र.]

बच्चन : व्यक्ति और कवि

नरेन्द्र शर्मा

बच्चन ऊपर से चाक-चौबन्द और भीतर से भोले हैं। भोली भावना से उनके कवि-कार्य का प्रारम्भ हुआ था और भविष्य में इसी सम पर उनका स्वरावर्त्त टकरायेगा, ऐसी मेरी धारणा है। यही बच्चन के व्यक्तित्व और कृतित्व का स्वाभाविक गुण-धर्म है। यों भविष्य के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। और भी कठिन है इसलिए कि बच्चन का मन्त्र गुह्य रहकर ही कालान्तर में कार्य रूप में प्रतिफलित होता है। इस विषय में बच्चन कालिदास के रघुवंशियों की नीति-दीति का पालन करते हैं।

बच्चन का व्यक्तित्व और कृतित्व और प्रयोजन शील और सृजनशील है। अपनी क्रियाशीलता में आस्थावान् और नैष्ठिक हैं। उन्हें आत्मरति नहीं सताती और न वह अपने ऊपर तरस खाते हैं। ऐसा भी नहीं कि वह अपनी नाक पर मक्खी न बैठने दें। वह ऐसे आत्म- सापेक्ष नहीं कि महत् पर अपने आपे को निछावर न करना चाहें।

बच्चन को आपा प्यारा नहीं है, अपने प्यारे हैं। वह अपने चाम को नहीं, अपने काम को प्यार करते हैं। और सबसे अधिक प्यार करते हैं वह अपने समझे हुए सत्य को, संघर्ष-साध्य जीवन को और जीवनाराध्य कर्मयोगी के आदर्श को कुछ हट के साथ। कवि-कार्य रूपी कर्मयोग में उनका व्यक्तित्व और कृतित्व चिर संपृक्त है।

—विविध भारती, बम्बई

बच्चनजी का महत्त्वपूर्ण कार्य

रामविलास शर्मा

छायावादी काव्य के उत्कर्ष के बाद बच्चनजी ने हिन्दी में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने सरल भाषा का प्रयोग किया; अपनी रूमानी भावनाओं तथा मधुर कण्ठ के कारण वे युवकों और युवतियों के हृदय पर बने रहे। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में उन्होंने कविता में नये प्रयोग किये हैं और उनका आलोचक रूप भी निखरा है।

—बी० आर० कालेज, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन का साहित्य में अमर स्थान

श्री भगवतीचरण वर्मा

वर्तमान हिन्दी कविता को श्रेष्ठतम विश्व-साहित्य के समकक्ष लाने में जिन कवियों का योगदान हुआ है, उनमें बच्चन का एक विशिष्ट स्थान है, यद्यपि हिन्दी के आलोचकों के की कसौटी पर बच्चन बहुत खरा नहीं उतरता। संस्कृति साहित्य की प्राचीन मान्यताओं और सिद्धान्तों को ध्रुव सत्य मान लेने वाले हिन्दी के प्राध्यापक या विश्व की नवीन विकृतियों द्वारा जनित वादों के अनुयायी जिन्होंने हिन्दी साहित्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली है, इस प्रकार के आलोचकों की कसौटी पर निश्चय रूप से बच्चन की कविता उपेक्षा की चीज है, इस प्रकार का आलोचक अपनी विशिष्ट धारणा और मान्यता की कुण्ठा को लेकर आगे बढ़ता है, कला का मूल्यांकन करने के समय वह संवेदना तत्व से दूर बहक कर कला में अपनी मान्यताओं को ढूँढ़ने लगता है।

बच्चन की कविता अलंकार रहित है, कहीं भी उसमें शब्दों के साथ खिलवाड़ नहीं किया गया है, वह विशुद्ध रूप से भावना की अभिव्यक्ति है, और उसमें एक मोहक संगीत है, मैं बच्चन को इस युग का सबसे अधिक सफल और प्रभावशाली गीतकार मानता हूँ, बच्चन के कवित्व में भावना का आवेग कहाँ कहाँ उद्दाम हो उठता है, वह इसलिये कि बच्चन भौतिकता का कवि है, कुछ लोगों का कहना है कि बच्चन में उदात्त भावना की कमी है या उसकी कविता अधिकांश में वासना का प्रतीक है, बच्चन की कविता शरीर तत्त्व से सम्बद्ध है—इसे इनकार नहीं किया जा सकता और मेरा अपना मत तो यह है कि शरीर तत्त्व को कला छोड़ नहीं सकती, जो शरीर तत्त्व से ऊपर वाली चीज लिखी जाती है, वह धर्म, दर्शन अथवा उपदेश भले ही हो, उसे कला कहने में मुझे संकोच होगा, आज का बुद्धिवाद झूठा शब्द जाल रचकर असली साहित्य और कला का घातक हो रहा है, मुझे तो कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है, जितनी कला हैं, वह शरीर तत्त्व को छोड़ ही नहीं सकती, आत्मा-तत्त्व तो अदृश्य है, वह शरीर तत्त्व में ही स्थित है।

बच्चन जहाँ है, वहाँ महान् है, वैसे पार्थिवता और भौतिकता के मोह में फँसे हुये बच्चन पर लोग व्यंग्य कर सकते हैं, उसकी भौतिक सफलता पर ईर्ष्या कर उस पर प्रहार कर सकते हैं, लेकिन इस प्रकार के व्यंग्यों और प्रहारों का उस पर कोई प्रभाव नहीं, बच्चन की कुछ कवितायें अमर साहित्य की चीजें हैं।

यह सत्य है कि बच्चन के पास विविधता नहीं है, उसकी कला का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत नहीं है, कुछ इने गिने गीत हैं उनके पास लेकिन यह इनेगिने गीत युगों युगों तक जीवित रहने की क्षमता रखते हैं, किस साहित्यकार का कितना साहित्य अमर हो सकता है, विशेषतः गीतकारों का ? जयदेव के कुछ इने गिने पद मीरा के कुछ इने गिने गीत ! अगर बच्चन अपने उन गीतों के अलावा और कुछ न लिखें, तो भी बच्चन साहित्य में अपना अमर स्थान बना चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन-साहित्य : एक सर्वेक्षण

• • •

राजानन्द

'बच्चन' को कुछ आलोचकों ने व्यक्तिवादी कवि माना है। डा० शम्भुनाथसिंह ने कुछ आगे बढ़ कर व्यक्तिवादी (Individualistic) तथा व्यक्तिगत (Personal) कवियों की दो श्रेणियाँ की हैं और इस वर्गीकरण की दृष्टि से बच्चन को दूसरी श्रेणी अर्थात् व्यक्तिगत कवियों की कोटि में रखा है।[1] बच्चन अपने काव्य में आत्म-कथात्मक ही रहे हैं। व्यक्तिवादी कवि की आलोचना करते समय दो उप-नयन-विन्दु (aproaching points) ध्यान में रखे जा सकते हैं—उनके सन्दर्भ में यह लगभग अनिवार्य से लगते हैं—

(१) व्यक्तिवादी कवि का 'स्व' अथवा 'अहं' किस स्वभाव (Nature) का है? उसकी हर कविता क्योंकि उसके 'स्व' से रँगी रहती है, इसलिए उसका स्वभाव जानना आवश्यक है। 'स्व' से मेरा तात्पर्य है उस 'मनस्' से जो काव्य-सृजन का उद्गम है। और यह 'मनस्' संस्कारों से बना होता है। अतः यह देखना होगा कि वह संस्कृति (cultured) है या नहीं है। वह अपनी विकृतियों तथा दुर्बलताओं से कितना तटस्थ है तथा वह कितना परिष्कृत है?

(२) व्यक्तिवादी कवि क्योंकि अत्यान्तिक रूप में अन्तर्मुखी होता है अतः बहिर्मुखता का प्रवेश उसकी जीवन-दृष्टि का मुखापेक्षी बना रहता है। उसे पहिचानना आवश्यक है, नहीं तो मधुशाला के प्रतीकों को न समझ कर (उसमें छिपी राष्ट्रीयता को भी न समझ कर) 'हालावाद' कह दिया जा सकता है। अन्तर्द्वन्द्व के काव्य को 'निराशावादी' तथा 'मृत्योन्मुखी' काव्य कहा जा सकता है। कवि के आत्म-समर्पण के 'मिलन' काव्य को वासना भरा पाया जा सकता है। आलोचना दृष्टि का यही आग्रह 'बच्चन का परवर्ती काव्य' आलोचना पुस्तक में मिलता है।[2]

इस पृष्ठभूमि के साथ हम बच्चन की काव्य-कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे—

(१) **प्रारम्भिक रचनाएँ** (भाग १, २) संग्रह में '२९ से ३३' तक की रचनाएँ हैं। विषय की दृष्टि से प्रेम-सम्बन्धी, राष्ट्रीयता सम्बन्धी, व्यक्तिगत तथा प्रकृति-समाविष्ट कविताएँ हैं। प्रेम में आत्म-समर्पण है। (आदर्श प्रेम, मेरा धर्म), राष्ट्रीयता सम्बन्धी कविता में समसामयिकता (झण्डा, बन्दी, गांधीजी की विलायत यात्रा…आदि) तथा क्रान्ति का स्वर है (क्रान्ति-शान्ति, पांचजन्य)। व्यक्तिवादी कविता (हेम की मृत्यु, पत्रोत्तर, आत्म-दोष) है। साहित्य-सम्बन्धी मान्यता (सौन्दर्य-सुख, जौहरी, कवि, कल्पना विश्व, गीत-विहंग, गानवाल, कवि-हृदय) में है। इन कविताओं की उपयोगिता कवि को तथा 'कवि-मनस्' को समझा सकती है।

(२) **मधुशाला**—यह ३३-३४ की रचना है। अत्यधिक लोक-प्रिय रचना 'उमरखैयाम की मधुशाला' में कवि ने उनकी रुबाइयों का अनुवाद किया है। उसके प्रतीकों को ग्रहण करके कवि ने मधुशाला की मौलिक रचना की। जीवन की कटुता से त्राण पाने के लिये कवि ने 'विस्मृति-दर्शन' का प्रचार किया। 'प्रबदा दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर,

[1] छायावाद युग—शम्भुनाथसिंह, पृ० १७१।

[2] बच्चन का परवर्ती काव्य—डा० श्यामसुन्दर घोष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटिल आघातों से रक्षा पाने[1] का उपचार है व्यक्ति अपने को 'कल्पना-रचित सपनों के स्वर्ग' को अर्पित कर दे। बच्चन का स्वप्नदर्शी 'कवि मनस्' भावना से उद्वेलित हो, रंगों तथा स्वरों का अनुपम कल्पना-जगत 'मधुशाला' के माध्यम से निर्मित करता है। जीवन तथा जगत के अभाव 'मधुशाला' में एक 'यूरोपियन जगत' रचते हैं। मधुशाला में कवि साम्प्रदायिकता तथा धर्मान्धता,[2] छुआछूत,[3] बैर-भाव आदि विकृतियों पर व्यंग्य करता है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण इसमें भारतीय सांस्कृतिक संस्कारों का समावेश है; यथा—मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, मांडिवा, मौलवी, मोमिन, धर्मग्रन्थ, यम, अर्थीप्रस्थान, श्राद्ध, होली, दीवाली, ईद, मोहर्रम, मर्सिया, हरिजनों का निषेध, सुहागन का आदर, बिधवा की उपेक्षा। मनुष्य की सौन्दर्य तृष्णा एवं नैसर्गिक काम-वासना की मानसिक तृप्ति के लिये मधुबाला का सौन्दर्य[4] तथा प्रकृति का सौन्दर्य उपस्थित है।[5] रूपकों के द्वारा बच्चन ने हर स्वर पर 'लोक-मानस' को स्पर्श किया है।[6] मधुशाला मनुष्य जाति की तृष्णा एवँ स्वप्नों का काव्य है।

(३) मधुबाला—'मधुबाला' में कवि की ३४-३५ की रचनाएँ संकलित हैं। 'मधुबाला' के 'प्रलाप' अंश में कवि का कथन है कि वह अपने सपनों के अपूर्ण संसार को अलौकिक कल्पना जगत की सर्जना से पूर्ण करता है। वह मानता है कि तृप्ति मौन है, तृष्णा के ही मुख में जिह्वा, कंठ में स्वर और उर में स्वास है। वह स्वीकार करता है कि स्वप्नों के ऐन्द्रजालिक बन्धन अपनी अभिभूतता से उसको मुक्त नहीं करते, यद्यपि वह जीवन को उसके वास्तविक रूप में अपनाना चाहता है। अतः बच्चन (युवक बच्चन के लिए) स्वप्नों का जीवन भी उतना ही सत्य था, जितना भौतिक जीवन। 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' में अभिव्यक्त उल्लास, आवेश तथा आन्तरिक आह्लाद उस 'स्वप्नों के जगत' से ही तरंगित तथा संगीतमय था।[1] मधुबाला, सुराही, प्याला, हाला, मधु-विक्रेता, मधुमयी शीर्षक की कविताएँ 'विस्मृति' के दर्शन का प्रचार करती हुई भी जीवन की चैतन्यता से प्रवाहित है। धार्मिक वर्जनाओं के प्रति कवि यहाँ भी विद्रोह उठाता है। उसकी 'मधुशाला' मानवता का मन्दिर है। आर्य व आर्येतर सब उसमें प्रवेश पा सकते हैं। बच्चन की 'हाला' मानव के हर प्रकार के बन्दीगृह तथा उसको संकुचित जीवन बिताने के लिए बाध्य करने वाले कूल-किनारों को तोड़ने वाली है।

कवि की तृष्णा उसकी व्यक्तिगत तृष्णा नहीं है, वह तो परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा है। कवि मानव अशान्ति तथा मानव-स्वप्नों के ही गीत गाता है।[1] अपने युग की विवशता तथा विद्रोह की मनःस्थिति को कवि 'पाटल माल' की चार पंक्तियों में अभिव्यक्त कर देता है। मन का दबा हुआ सारा क्रोध-विरोध वाचाल बुलबुल निकाल गई। पर अपने मथित उर को थाम कर पाटल-माल बन में खिल रही है।[2] 'इस पार-उस पार' गीत कवि का सशक्त एवं सफल गीत है। इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि से अनभिज्ञ आलोचकों ने उसे 'पलायनवादी' गीत करार दिया। जगत के प्रति कवि का अनुराग उनकी दृष्टि में नहीं आ पाया। 'मधुबाला' की 'आत्म-परिचय' शीर्षक की कविता में कवि स्पष्ट रूप से घोषित करता है 'मुझे यह अपूर्ण संसार नहीं भाता है, इसीलिए मैं सपनों का संसार लिए फिर रहा है।' आश्चर्य है कि कवि की यह 'स्वप्न-प्रियता' कुण्ठा की कोटि में डाली गई। अस्तु।

[1] सम्बोधन मधुशाला, पृ० १३।

[2] रुबाई संख्या १७, १६, २०, २५, २६, ४६, ४८ से ५२ तक।

[3] रुबाई संख्या ५७ तथा ५८।

[4] रुबाई संख्या १२, ६३, ६४।

[5] रुबाई संख्या ३०, ३६, ३८।

[6] रुबाई संख्या ३०, ३१ ३३ से ३८ तक; ४० से ४५ तक तथा ५४ व ७३।

[1] प्यास : मधुबाला पृ० ७४।

[2] पाटल-माल : मधुबाला पृ० १००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **मधुकलश**—'मधुकलश' में कवि की ३५-३६ में लिखी रचनाएँ हैं। पूर्व की दो कृतियों में अभिव्यक्त उत्साह तथा उल्लास 'मधुकलश' तक आते-आते समाप्त हो जाता है। 'मधुकलश' शीर्षक कविता के उल्लास में एक अन्तर्निहित चुभन एवं टीस है। अब कवि जीवन में आने वाले 'मिट्टी के पल' तथा 'सोने के क्षण' दोनों अनुभव करने लगा है। मधुकलश की महत्वपूर्ण कविताएँ 'कवि की वासना', 'कवि की निराशा', तथा 'पथभ्रष्ट' हैं जिनके माध्यम से कवि निर्भीकता से (उच्छृङ्खलता से भी) उन आलोचकों को उत्तर देता है जिन्होंने उसके काव्य में वासना, निराशा तथा पथभ्रष्टता देखी। वह स्पष्ट कहता है "जगत जान ले कि मैं देह धर्मों से नहीं बँधा हूँ।"[1] उसकी दल रहित अभिव्यक्ति ही उसके काव्य का दोष बन गई। अगर वह अपने को छिपाता तो 'जग उसे साधु' समझता।[2] कवि सीधा व्यंग्य अस्त्र छोड़ता है "वृद्ध जन को क्यों अखरती है, क्षणिक मेरी जवानी।"[3] 'कवि की वासना' कविता में कवि की कल्पना चरम उड़ान लेती है। 'माँझी' तथा 'लहरों को निमन्त्रण' कविताएँ कवि की संघर्ष-तत्पर-प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हैं। "अवनि-अंबर की तराजू सामने रख दी गई है, क्यों न अपनी शक्ति को गर्व से इस पर धर के तोलूँ।"[4] संघर्ष कवि को पुकार रहा है अतः वह वक्ष पर युग बातें बाँधकर प्रवेश करने को तैयार हैं।[5] दोनों कविताएँ अपनी अनुभूति, कल्पना तथा प्रेषणीयता में अद्वितीय हैं। 'मधुकलश' के पश्चात् कवि का वह काव्य आता है जिसे आलोचकों ने उसका निराशावादी काव्य कहा, जबकि वास्तव में वह असंतुष्टि, विद्रोह तथा आत्म-संघर्ष का काव्य था।

(५) **निशा-निमन्त्रण**—'निशा-निमन्त्रण' में कवि की ३७-३८ की रचनाएँ संकलित हैं। भूमिका के अनुसार इन गीतों में कवि के उस 'महाशोक' का बिगलन है जिसने अपनी पत्नी (श्यामाजी) की मृत्यु के पश्चात् लगभग साल भर तक उसे काठ सा जड़ बनाए रखा। निशा-निमन्त्रण के गीत निरलंकृत, अभिधात्मक, तथा सहज शैली के गीत हैं। कवि की दृष्टि आकाशी-सौन्दर्य से हट कर जीवन की व्यथा के सामने खड़ी हो गई है। उसकी उदासी तथा अन्तर्वेदना से सारी प्रकृति निरुत्साही तथा थकी-थकी सी हो गई है। कवि के हृदय की करुण-कराह पीली सन्ध्या से शुरू होकर रात भर अपनी उजड़ी गृहस्थी पर दुखी होती रहती है और छोटे-छोटे गीतों में अपनी दुःखद कथा कहती रहती है। 'दिन जल्दी-जल्दी ढलता है', 'सन्ध्या सिन्दूर लुटाती है', 'बीत चली सन्ध्या की बेला', 'है यह पतझड़ की साँझ सखे', 'स्वप्न भी अहा जागरण भी', 'आ सोने से पहले गालें', 'दीप अभी जलने दे भाई', 'आ तेरे उर में छिप जाऊँ', 'कोई पार नदी के गाता', 'कहते हैं तारे गाते हैं', 'मुझसे चाँद कहा करता है', 'साथी सो न कर कुछ बात', 'रात आधी हो गई है', 'अब वह मेरे गान कहाँ' आदि गीत अनुभूति की सचाई तथा तीव्रता से सृजित अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। कभी-कभी कवि उद्विग्न होकर घोर निराशा में डूब जाता है, वह कह उठता है—'आज पड़ा हूँ मैं शव बनकर', 'किसी प्रतीक्षा की सुधि से ये पागल आँखें पथराईं',[1] 'आओ लो जाएँ, मर जाएँ',[2] 'धार से कुछ फासले पर, सिन कफन की ओढ़ चादर, एक मुर्दा गा रहा था, बैठ कर जलती चिता पर',[3] लेकिन कवि का अन्तर्मन तार्किक है (तर्क हमेशा भावना की गहनता को काटता-छाँटता है तथा विवेक की तरह मोड़ता है, यह सत्य है), उसमें प्रश्न उठता है 'स्वप्नों के रंगमहल में तथा निशा की चहल-पहल में वह हँसे, या खण्डहर की समाधि पर बैठ कर रुदन के गीत बनाए।[4] जिजीविषा की

---

[1] कवि की वासना ; मधुकलश पृ० ३८ ।
[2] वही पृ० ४२ ।
[3] वही पृ० ४२ ।
[4] माँझी पृ० ६४ ।
[5] लहरों का निमन्त्रण पृ० ६६ ।

---

[1] गीत २१, निशा-निमन्त्रण पृ० ४५ ।
[2] गीत २३, वही पृ० ४७ ।
[3] गीत ८२, वही पृ० १०६ ।
[4] गीत ८७, पृ० १११ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज को 'अभिलाषा' के रूप में कवि सुनता है।[१] निशा-निमन्त्रण के गीतों में एक विशेषता और है, कवि के गीतों में जीवन के नजदीक का वातावरण उपस्थित हुआ है, यथा—बच्चों द्वारा पथ पर छोड़े गये खेल-घरोंदे, स्यारों का शोर, उल्लूकों का स्वर, ककड़ी के खेत, खिस्तुइया, मित्र-पड़ौसी, जुगुनू, श्वान, बिल्ली, जड़ तकिया आदि।

(६) **एकान्त संगीत**—'एकांत संगीत' में कवि की सन् ३८—३९ की रचनाएँ हैं। 'निशा-निमंत्रण' में वर्ग सुधियों से उद्दीप्त करुण गुहार-पुकार है। पूजा को सहपाने वाले पाषाणों की याद है, दंशनकारी सुधियां हैं, एकान्त-संगीत' में 'आधि से ग्रस्त' व्याधि से ग्रस्त, काल तथा कर्म से ग्रस्त[२] कवि ईश्वर, नियति, जगत तथा स्वयं से छन्द करना है। 'उसका तन भूखा है, मन भावा है, प्राण भूखा है',[३] परन्तु न ईश्वर न्यायी है, न जगत संवेदन शील है,[४] न तन की भूल, शमित होती है। वह अपनी मिट्टी की काया (दैहिक वासना) को मिटा कर मन की सत्ता को बचाए रखना चाहता है।[५] इसीलिए जीवन को युद्ध क्षेत्र मान कर गा उठता है।

युद्ध क्षेत्र में दिखला भुजबल,
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल।[६]

ज्ञातव्य है कि 'निशा-निमंत्रण' को कवि ने 'श्यामाजी' को समर्पित किया है, 'एकान्त संगीत' अपने को।

(७) **आकुल अन्तर**—'आकुल-अंतर' की रचनाएं ४०—४२ के बीच की हैं। कवि की भावना पर विवेक का अंकुश आ गया है। उसका विद्रोह जगत

[१] गीत ८९, पृ० ११३।
[२] एकान्त-संगीत गीत ९२, १०४,
[३] वही गीत ५ पृ. १७;
[४] वही गीत ४०' पृ० ५२,
[५] वही गीत २४ पृ. ३६।
[६] वही गीत ९२, पृ० १०४

से समझौता करने के लिए उसे अनुकूल बना रहा है। अब प्रश्न दूसरी प्रकार के उठते हैं। 'मैंने था व्यक्ति जिसे समझा, क्या उसमें सारी जगती थी।[१] अब कवि उस 'महापीर' की समाप्ति को अनुभव करता है जो विधाता के सिर वज्र गिराने, तथा निखिल सृष्टि को भस्म करने चली थी।'[२] जगत तथा जीवन का सही चित्र उसके सामने है। प्रकृति से अनेक घटनाएँ घटित होती हैं। धरती पर संग्राम-शांति, दंगा-फसाद, व्याख्यान, विविध प्रकार की चर्चा, तथा विवाद होता है। परन्तु हम सब यह कह कर भूल जाते हैं। यह बुरा हुआ, यह भला हुआ,[३] विद्रोही कवि जीवन तथा जगत से समझौता करता है—'भौहें झुकी हुई हैं नीचे, माथे के ऊपर है रेखा, अंकित किया जगत ने जैसे, अपनी जय का मुझ पर लेखा।'[४] आकुल अन्तर की कविता में भावुकता कम, विवेक तथा तर्क अधिक है, अतः कविताएँ कल्पना से दूर, शुष्क तथा कहीं-कहीं महान् कथन बन कर रह गई हैं। 'बच्चन का कवि वही' अपनी सशक्त कला तथा तथा संगीतात्मकता दिखा पाता है। जहाँ उसका हृदय पूर्ण आवेश में सहजता से प्रस्फुटित होकर वेग पूर्ण प्रवाह में अभिव्यक्त होता है। 'आकुल अंतर में कवि का वह रूप समक्ष नहीं आता, वह आगे की रचनाओं के सङ्कलन 'सतरंगिनी' में पुनः जाग्रत होता है।

(८) **सतरंगिनी**—'सतरंगिनी' में कवि की ४२ से ४४ तक की रचनाएँ संकलित हैं। इस बीच में कवि के जीवन में गृहस्थी के बस जाने से पूर्णता आई। उसकी पत्नी की गोदी में 'अमित' का हास ध्वनित हुआ। कवि मानस में 'राग, रंग लाया, रात का रास छिड़ उठा।' कवि फिर आनन्द के आवेश तथा उच्छृङ्खलन से स्वाभाविक तथा संगीतमय हो उठा।

[१] आकुल अन्तर, गीत १०, पृ० २५।
[२] वही, गीत २२, पृ० ४०-४१।
[३] वही, गीत २८, पृ० ४९।
[४] वही गीत ३४, पृ० ५७-५८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति भावना के रंग से रंग उठी। 'नवल कोमल-किसलय' बहुरंगी सुमन, नन्दन बन, इन्द्र का पदार्पण दिग्-दिगन्त का कीर्ति-गान, झरने निर्झर, प्रभंजन, मेघ, दामिनि, नागिन का नर्तन, मयूरी धूम छनाछन, कंपन, स्पन्दन, सिहरन, सब गीतों में उतर आए हैं। 'कवि कोयल, जुगनू, पपीहा, नागिन, मयूरी के प्रतीकों के माध्यम से अपने हृदय के उल्लास को व्यक्त करने लगा। पर जीवन का सत्य उसके भावोन्माद में रुका नहीं है। वह उसमें घुल मिलकर अभिव्यक्ति लेता है। अंधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है, है अंधेरी रात पर दीया जलाना, कब मना है। सांस चलती है, तुझे चलना पड़ेगा ही मुसाफिर, जो बीत गई सो बीत गई। अजेय तू अभी बना, नीड़ का निर्माण फिर फिर; छू गया है कौन मन के तार वीणा बोलती है, इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो, तथा तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाए। गीतों में आस्था है, गति है, साहस है, संगीत है तथा कर्तव्य के प्रति चेतना है। व्यक्तित्व की पूर्णता दृष्टि को विस्तृत करती है। कवि के लिए प्रेम अमर है जो जगती तथा जीवन में जो कुछ भी सुन्दर है उसे मथ कर लाता है; दुनिया स्वर्ग-बीज तथा स्वर्ग-बेलि है, अश्रु तथा स्वेद से जब मनुष्य इसे सींचता है तो यह अमृत-फल देती है, जीवन, मानव के अन्तर में जो कुछ भी उत्तमतर है उसकी अभिव्यञ्जना का अवसर है; काल की नायक प्रवृत्ति नव सृष्टि की भूमिका है (सातवाँ खण्ड)। कवि (नयी दृष्टि पाने के बाद) उसी संसार से बँधता है जिसे उसने 'एकान्त संगीत' में कोसा था। अब वह इसे मन सपनों सा बनाना चाहता है। वह पत्नी को भी इस कर्तव्य से बाँधता हैं। (प्रारम्भिक रचना में उसने 'गुदगुदी' कविता में भी यही कहा था 'जग के इस क्रन्दन अलाप में न भूल तुम जाना, आना उन दुखियों का दुःख महान, सूखा जिनका गला चुप रहे—कठिन दुःख के ताप ! पृ० ७५) : 'जैसी हमने पाई दुनिया, आओ उससे बहतर छोड़ें।' क्योंकि इसी में उसके 'लाल' को भी आगे रहना है। प्रारम्भिक रचना भाग १ में जिस 'धर्म' (पृ० ५०) की बात कवि ने कही थी, उनकी अनुभूत आवृत्ति 'सतरंगिन' है तथा इसके आगे 'मिलन यामिनी' में मिलेगी।

(९) **बंगाल का काल**—काल के क्रम से 'बंगाल का काल' सन् ४३ की रचना है। कवि के कथनानुसार 'आकुल-अन्तर' के रचनाकाल में अक्सर उसकी अन्तर्मुखता बहिर्मुखी हो जाती थी। 'बंगाल के काल' ने कवि को क्षुब्ध किया। विषय के प्रभाव तथा प्रेरणा के रूप ने उसके अन्तःमनस् को गीत अथवा छन्दबद्ध कविता लिखने की रुचि न देकर मुक्त छन्द में लिखने को प्रेरित किया। कवि ने एक लम्बी बैठक में पूरी कविता समाप्त की। समस्या को देखने का दृष्टिकोण अलग था। उसको बंग देश के अकाल-पीड़ितों पर दया नहीं आई बल्कि उनकी नपुंसक कष्टसहिष्णुता पर रोष आया। क्रान्तिकारी बंगाल इतना कायर ! कवि उनको भूख की शक्ति का पाठ पढ़ाता है। सहिष्णुता जन्माने वाले निष्क्रिय भाग्यवाद की भर्त्सना करता है। फ्रान्स की क्रान्ति की याद दिलाकर उनमें साहस तथा रोष जगाना चाहता है। वह कहता है—आशा हिमालय के अन्दर में नहीं छिपी है, हिन्दसागर की तह में विश्वास नहीं छिपा है। सीने पर हाथ धर के देखो, आशा और विश्वास दिल में धड़कते हुए मिलेंगे।[1]

(१०) **हलाहल**—'मधुशाला' की भाँति 'हलाहल' भी 'प्रतीक-काव्य' है। कवि ने इसे 'सन् ३६ से ४३' तक की रचना बताया है। वास्तव में हलाहल के १०० गीत सन् ३६ में लिखे गये थे परन्तु दीमक के द्वारा नष्ट हो जाने के कारण कवि ने सन् ४३ में उसकी पुनः रचना की। आरम्भ के कुछ पद पहले के हैं। पहले मात्र श्यामाजी की मृत्यु का प्रभाव 'हलाहल' की प्रेरणा था, अब इसमें माँ की उस मृत्यु का प्रभाव भी संचित है जिसमें आत्मा की तृप्ति थी। पन्तजी ने इसे मात्र पिष्ट-पेषण नहीं माना है। उनके अनुसार इसमें 'मर्मस्पर्शी व्याधा की नींव पर एक व्यापक जीवन-दर्शन के प्रासाद का निर्माण हुआ है।'[2] हला-

[1] बंगाल का काल, पृ० ७६।

[2] सोपान पर लेख सुमित्रानन्दन पन्त (अभिनव सोपान) पृ० ३२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल जीवन की कटुता तथा उसकी विकट परिस्थितियों का प्रतीक है। कवि संघर्ष को चुनौती मान कर पूरी आस्था के साथ कहता है—'हलाहल आया है यदि पास, हृदय का लोहू दूँगा तोल।'[1] मुक्ति दोनों में है, मदिरा में भी, तथा हलाहल के कण-कण में भी।[2] कवि हलाहल से भी अमृत पाने की आशा रखता है।[3] हलाहल ही बता सकेगा कि वह संसृति से भयभीत है, या संसार उससे भयभीत है।[4] मनुष्य की शक्ति अजेय है। कवि को अहर्निशि इसी का आश्चर्य रहता है कि कहाँ से बल तथा विश्वास पाकर मिट्टी का लघुकाय बबूला (मनुष्य) कन्धों पर आकाश उठाए रहता है।[5] हलाहल की सफलता, उसकी सहजता व सरलता मनुष्य की सत्ता की जगत के सन्दर्भ में स्थापना करने में है।

(११) खादी के फूल तथा सूत की माला—दोनों कृतियों की कविताओं का रचना काल सन् ४२ है। 'खादी के फूल' में पन्तजी की भी रचनाएँ हैं। महात्मा गांधी की हत्या से जन्मी प्रतिक्रिया कविताओं की प्रेरणा है। कवि की ५२ कविताएँ 'खादी के फूल' में हैं। 'सूत की माला' की सारी कविताएँ 'बच्चन' की हैं। अनुभूति की गहनता कुछ कविताओं में है। बाकी सपाट तथा जबर्दस्ती की रचनाएँ हैं। गांधीजी को दिव्यता प्रदान करना, उनकी देश को देन, उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्व, देशवासियों को उपदेश कि 'गांधीजी के मार्ग का अनुसरण करें' इन कविताओं का विषय है। कथ्य की दृष्टि से इन कविताओं का थोड़ा सा महत्व माना जा सकता है परन्तु कला की दृष्टि से ये कविताएँ प्रायः कमजोर तथा बाल-प्रयास-सी हैं।

(१२) मिलन-यामिनी—'निशा-निमंत्रण' में कवि के विरह तथा करुणा भावना के अद्वितीय गीत हैं। इसके ठीक विपरीत 'मिलन यामिनी' में मिलन भावनाओं की अभिव्यक्ति करने वाले अनुपम गीत हैं। शृङ्गार का एक रस-सिक्त पक्ष 'निशा-निमंत्रण' है, दूसरा रसोद्वेलित पक्ष 'मिलन-यामिनी' में है। दोनों में अनुभूति की अतल गहराई है तथा अभिव्यक्ति में गीति-विधा की पूर्णता। निशा-निमंत्रण' में खण्डित पुजारी की भग्न आराधना की आत्म-पीड़ा है, 'मिलन यामिनी' में उसी पुजारी का आत्म-समर्पण, अर्चन, पूजन, तथा आनन्दोत्सव है—तन्मय आनन्दोत्सव उसमें तन-मन, प्राण की भूख थी, इसमें तन, मन, प्राण की तृप्ति है। गीतों का कवि ने सृजन नहीं किया है वह स्वयं सर्जित हुए हैं। इन गीतों की विशेषता इसी में है कि ऐन्द्रिकता को माध्यम बनाकर अन्तर की गहरी से गहरी तह को स्पर्श किया गया है। 'मिलन-यामिनी' का रचनाकाल ४५ से ४९ तक का है। कृति को तीन भागों में बाँटा गया है। पूर्व भाग, मध्य भाग, उत्तर भाग। पूर्व भाग में प्रकृति का उद्दीपक वातावरण कवि के अन्तस को उच्छलन में सहायता देता है। गीतों में 'प्राण' को ही सम्बोधित किया गया है यथा: चाँदनी फैली गगन में चाह मन में, प्राण जीवन का नया अध्याय खोलो, आज मन भावन करो पावन वचन, मन, आज कितनी वासनामय चाँदनी है, है रुपहरी रात, है सपने सुहाने, प्यार के पक्ष में ज्वलन भी तो मधुर है, आज रिमझिम मेघ हैं, रिमझिम नयन भी, गीत मेरे देहरी के गीत बन। मध्य भाग के गीत अपेक्षतः लम्बी पंक्ति तथा भावुकता के फैलाव के गीत हैं। संगीत तथा सौन्दर्य को अनुभूति सँभालती है। 'उत्तर खण्ड' एक ही छन्द एवं लय के विभिन्न गीतों का खण्ड-काव्य रूप है। 'मिलन यामिनी' के गीत गीति-विधा की अक्षय धरोवर है।

(१३) प्रणय-पत्रिका—सन् ५० से ५४ तक के गीत। इनमें से कुछ गीत स्वदेश में लिखे गये हैं, शेष विदेश में स्वाध्याय के समय। कवि के अनुसार यह एक विशिष्ट योजना के अंश हैं जिसे वह 'विनय-

---

[1] पद ३२।
[2] पद १११।
[3] पद १३७।
[4] पद १४१।
[5] पद १४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका' की भाँति लिखना चाहता था। गीतों का अगला क्रम आरती और अंगारे में जुड़ता है। 'प्रणय पत्रिका' की प्रेरणा स्मृति है जो कवि के विरह को गीतमय करती है। सुधियों में 'निशा-निमंत्रण' का देश नहीं है, मीठी पीड़ा है। कवि की आशा-निराशा तथा पियासा' अपनी 'प्रेयसी' को समर्पित है। जो गीतों की आलम्बन है। भाषा का पूर्वाभास मिलन यामिनी के गीत जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला—में प्राप्त होता है। कठोर वर्णों के शब्दों से गीत रचना में रस प्रेषित करना 'बच्चन' जैसे अभ्यस्त गीतकार की ही सामर्थ्य में हैं। आधुनिक जीवन का बिखराव तथा उसकी व्यस्तता गीतों में कई स्थानों पर प्राप्त होती है, 'कितने सपने, कितनी आशा, कितने आयोजन, आकर्षण, बिखर गया है सब के ऊपर टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन[1] के कुछ गीत बहुत ही सफल गीत हैं यथा: भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी, राग उतर फिर फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है, बीन आ छेड़ूँ तुझे, मन में उदासी छा रही है, एक यही अरमान गीत बन, प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ, मेरी तो हर साँस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन सन्देसे, तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है, झुरमुट में अरघा चाँद, कहीं अटका मन मेरा भी, आदि। प्रकृति का कवि के भावों के साथ-साथ कदम भरती है। इस दृष्टि से गीत १७, १८, २०, २१, २३, २६, २८, ६७ आदि ध्यातव्य हैं। सात समुन्दर की दूरी, कवि की कल्पना में उड़ान की गति भरती है, बनखण्डों की गंध को पवन के कंधे पर चढ़कर आना पड़ता है। परन्तु कवि 'धीरज' को सह लेने के लिए माध्यम बनाता है। मन का उन्माद सपनों से डैने माँग कर प्राणों के हौसले के पथ निर्देशन में आता है। कवि ने हंस तथा सरसी से प्रतीक को लेकर सफल गीत (४३ से ४८ तक) लिखे हैं। घर की स्मृति और कल्पना द्वारा पहुँच, गीतों का विषय है। प्रणय-पत्रिका स्मृति जन्य विरह के गीतों का (विशेष कर आधुनिक भाषा में) सफल संकलन है।

[1] प्रणय पत्रिका गीत ६, पृष्ठ ३६।

(१४) धार के इधर-उधर—इस संग्रह में ४० से ५६ तक की विभिन्न विषयों तथा अवसरों पर लिखी गई रचनाएँ हैं। सम-सामयिक पृष्ठभूमि राष्ट्रीयता तथा अन्तरराष्ट्रीयता की समस्याओं पर विचारात्मक प्रकाश डालती है। कवि का दृष्टिकोण मानववादी है। रक्त स्थान, अग्नि परीक्षा, मानव का अभिमान, युद्ध की ज्वाला, व्याकुलता का केन्द्र, इन्सान की भूख, पृथ्वी रोदन, सृष्टिकार से प्रश्न, नभ-जल-थल, मानव रक्त, व्याकुल संसार, मनुष्य की निर्ममता, करुण पुकार आदि कविताएँ (गीत) युद्ध कामी राष्ट्रों की पशुवत प्रवृत्ति के विरुद्ध 'विरोध पत्र हैं। कवि विश्व के इस कुरुप तथा विकृत चरित्र का संसोधन तथा परिष्कार चाहता है। कवि के अनुसार व्याकुलता का कारण आन्तरिक अव्यवस्था में है जहाँ स्वार्थ, लालच तथा भौतिकता की भूख पिशाचयन को अपनाकर जग-जीवन को कुचल रही है। कवि राष्ट्र की साम्प्रदायिकता, तथा रूढ़िवादिता के विपक्ष में है। वह कवियों, राष्ट्र के युवकों, नायिकों तथा नेताओं को चेतावनी देता है, प्रसिद्ध है प्रकोप जन-जनार्दनी मिले तुम्हें न शाप होशियार हो। यद्यपि काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष सबल नहीं है, परन्तु कविताएँ भाव-पक्ष में सशक्त हैं।

(१५) त्रिभंगिमा—त्रिभंगिमा संकलन में ५८ से ६७ तक की रचनाएँ हैं। कवि इन तीनों भंगिमाओं (लोकगीत, छन्दबद्ध, मुक्त छन्द की कविताओं) का उत्तरदायित्व 'प्रेरणा' पर डालता है। आरम्भ के लगभग पच्चीस गीत लोकधुनों पर आधारित हैं। विषय की दृष्टि से कुछ आध्यात्मिक हैं (नैया जाती है, पगला मल्लाह, धीमर की घरनी, नील परी, मनसँवरी आँगन का विरवा, आगया घाट, छोटी हुई दुनिया) कुछ में गाँव का सहज जीवन तथा वातावरण है (सोन मछरी, लाठी और बाँसरी, माटी की महल, आज दीवाली, ढोलक लय, धारा में बहता फूल, भीगीं सहेलियाँ, किसानिन का गीत, चिड़ियों का भाग तथा महुवा के नीचे)। इन गीतों में उस लोक मानस तथा लोक-संस्कृति को नहीं पाते जो लोकगीतों में मिलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उन गीतों के भोलेपन तथा उनकी सहजता से यह गीत उतने ही फासले पर हैं जितना शहर से गाँव। कुछ गीत मीठे अवश्य हैं, पर भाषा की कृत्रिमता संगीतात्मकता के बावजूद भी बाधक बनती है। 'यात्री से' तथा 'फिर चुनौती' में कवि का संघर्षशील व्यक्तित्व झलकता है। 'मैंने ही न देखा', 'तुम्हारी नाट्यशाला', 'जीवन मुक्त', 'जाल समेट' आदि गीतों में कवि की आत्यात्मिक रुझान अभिव्यक्ति हुई है। 'युग की उदासी', छुरी और झूठ, युग की विकृतियाँ, अमर वेली, चेतावनी, इन्सान और कुत्ता, विकृत मूर्तिताँ, सड़ा हुआ कमल, गणतन्त्र दिवस, खजूर, दानवों का साथ, आदि कविताएँ, युग सत्य पर आधारित हैं। सड़ा हुआ कमल, गणतन्त्र दिवस, दानवों का शाप, में कवि 'बच्चन' असहिष्णु कवि निर्ममता से गर्तगामी पर व्यंग्य करता है। यह कवि का नवीत तथा सबलतम पक्ष है। कवि 'कटु, करुण, अप्रिय सत्य कह उठता है। "छोड़ कर औलाद आरोही गया जो, बाप से वह कम नहीं है।" कवि जानता है," आज भी आकाश से गिरता बहुत है, किन्तु धरती पर पहुँच पाता कहाँ है ?

(१६) चार खम्भे चौंसठ खूँटे—कवि की सन् ६० से लेकर ६२ तक की रचनाएँ इस में सङ्कलित हुई हैं। त्रिभंगिमा भी तीन भंगिमा के साथ चौथी भंगिमा रंग मञ्चीय गान, इसमें और है। 'वर्षा मङ्गल' में' काफी बादल गोरे' बादल (भारतीय तथा अँग्रेज) के माध्यम से व्यंग्य गान लिखा गया है गोरा बादल प्यासा रखता। काला बादल प्यासा रखता' दोनों एक से हैं। 'भू पुत्रों की चुनौती में 'क्रान्ति' का स्वर है—पूँजीपति से कौन बचाए···· शोषित जनता आगे आए; कदम बढ़ाए, जोर लगाए, श्रम के फल के बीच खड़ी दीवार हटाए।' बचन की लोक धुनों पर आधारित गीतों से दो रंगमंच गीत अधिक सशक्त तथा अभिव्यञ्जनापूर्ण हैं। मैं कैसे हट जाऊँ, यह देह, बहुत दिनों पर चेता, बंजारे की समस्या, फूटी गागर आध्यात्मिक झुकाव के गीत हैं। डा० घोष को ऐसे गीतों पर आपत्ति है। क्योंकि वह आधुनिक मूल्यों के विरुद्ध हैं—हो सकता है अगर आलोचक डा० घोष ऐसा सोचते हैं। वैसे बचन ने अपने को कभी छिपाया नहीं है, अगर उनकी आध्यात्मिक झुकान हुई तो वह भी नयी नहीं है। बचन रूढ़ियों के खिलाफ, झूठे धर्म के खिलाफ हैं परन्तु उनकी आत्म-समर्पण परकता को मधुशाला तक में देखा जा सकता है। एकांत संगीत में ईश्वर को चुनौती भी उसी आस्था का असन्तोष प्रदर्शन है। 'नियतिवाद' बचन के दर्शन में पूरा हस्तक्षेप रखता है।

(१७) आरती और अंगारे—'प्रणय-पत्रिका' की पूर्ति 'आरती और अंगारे' की रचनाएँ हैं। 'बीजमंत्र' के रूप में 'धरती पर जो बहुरंग अनुभूतियाँ हैं' कवि ने उन्हीं को वाणी दी है, आरम्भ में भारत की काव्य-विभूतियों तथा कलाकारों की प्रशस्ति में कविता लिखी है। इसके बाद आत्म-चरित्र रंग देने के लिए दादा, दादी, माँ, पिता, भाई, बहिन, प्रथम पत्नी श्यामा, भिखारी, इलाहाबाद आदि पर गीत लिखे हैं। जिनसे किसी न किसी रूप में कवि ने प्रभाव अथवा संस्कार पाए हैं। उसके पश्चात् 'प्रेम के दर्शन' तथा उसकी उदात्तता प्रेरक शक्ति पर गीत लिखे हैं। 'बच्चन' ने अपने व्यावहारिक जीवन दर्शन तथा अपनी साहित्यिक मान्यताओं को परोक्ष रूप से इन गीतों में प्रवेश करवाया है। गीत संख्या ८२ से ९६ तक के गीतों में कवि का स्वाभिमान, उसकी संघर्ष शीलता तथा उसकी साहित्यिक ईमानदारी एवं अडिगता असंतोष की अन्तः धारा के साथ उपस्थित हुई है। कवि के चिन्तन में कल्पना पद्य को हराया है, पर कवि को जीवन के बहुत नजदीक ले आया है। इसी में कवि की सफलता है।

(१८) बुद्ध और नाचघर—इनमें सन् ४४ से ५७ तक की मुक्त छन्द की कविताएँ हैं। कवि मुक्त छन्द की जगह इन्हें 'विषम लय' की कविता कहना उचित समझता है। विषय 'प्यार के इधर उधर' के ही हैं, पर एक अतिरिक्त स्वर व्यंग्य की ओर है। यह व्यंग्य 'त्रिभंगिमा' 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दो चट्टानें' में और अधिक प्रशस्त तथा तीखा हो जाता है। सृष्टि, पूजा, तप, वरदान, चिन्तन प्रधान तथा दार्शनिक भंगिमा की कविताएँ हैं। 'हिन्दू और मुसलमान' साम्प्रदायिक एकता की भावना से प्रेरित है। नया चाँद, डैफोडिल, तुम्हारी नजरों में वे और उनकी नजरों में तुम' विदेश से प्राप्त प्रेरणा से रचित है। अन्तिम कविता में (तुम्हारी नजरों में वे) विदेशियों की पिछली दृष्टि पर तीखा व्यंग्य है। पपीहा और चील कौए, चोटी की बरफ, शैल विहंगिनि, चाँद और बिजली, दिल्ली के बादल, नगिन और देव कन्या प्रतीकात्मक व्यंग्य काव्य हैं। 'बुद्ध और नाच घर' कविता, प्रदर्शन-प्रवृत्ति तथा खोखली सभ्यता पर कटु-व्यंग्य करती है। 'बच्चन' के मुक्त छन्द में गति, लय तथा रवानी सचालित नहीं होती। यह उनकी विशेषता है।

राष्ट्र-पिता के समक्ष, आज़ादी के चौदह वर्ष, ध्वस्त पीत व्यंग्यात्मक कविताएँ हैं। आधुनिक जीवन का प्रभाव 'स्वाध्याय कक्ष में बसंत', अजब और अजनबी' दैत्य का देन; पुस्तक पलायनी, भीतरी काँटा में अभिव्यक्त हुआ है। 'बच्चन' की मुक्त छन्द की कविताएँ भी उनके गीतों की तरह आत्मपरकता से युक्त हैं। तीसरा हाथ दो चित्र, प्रार्थना, अनुरोध, निवेदन, प्रत्यावर्तन आदि कविताएँ भावोन्मुखी हैं। अन्तिम दो कविताएँ हैं। 'डूबते खाली नावें' तथा 'मरण काले' प्रतीकों से पुष्ट सशक्त कविता है।

(१९) दो चट्टानें—प्रस्तुत सङ्कलन में 'बच्चन' की ६२ से ६४ तक की कविताएँ हैं। लगभग सारी कविताओं की प्रेरणा समसामयिक परिस्थितियों, दुर्घटनाओं तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों से प्राप्त है। नेहरू की मृत्यु पर लिखी गई कविताओं में वर्तमान युग का रूप स्पष्ट होता है—गुलाब की पुकार, दीप लोप, गुलाब कबूतर और बच्चन, कील-काँटों में फूल, विक्रमादित्य का सिंहासन आदि। प्रतीकों का प्रयोग, कथन का माध्यम बना है। यह प्रवृत्ति बच्चन' में मधुशाला से प्राप्त होती है। 'बहुरि बंदि खलगन सति भाए', युग पंथ: युगताप; गत्यावरोध शृंबालासन; दमनीयता; संघर्ष, ईर्ष्या आदि कविताओं में युग की तथा राष्ट्रीय चरित्र के ह्रास से जन्मी क्षुब्धता, रोष तथा असंतोष व्यंग्य की भंगिमा लेकर अभिव्यक्त हुआ है। 'ऐसा क्यों करता हूँ। ?; जीवन-परीक्षा, आभास; एकफिकर—एक डर, दिखाए जा रे····; माली की साँझ; कविताओं कवि का आध्यात्मिक मंथन है—परन्तु कर्म तथा श्रम से प्राप्त संतोष भी है। सार्त्र के नोबुल पुरस्कार ठुकरा देने पर—कविता पड़ी है तथा विश्व मंच पर साहित्य में चलने वाली राजनीति पर कटु व्यंग्य है। कवि की आत्मपरकता सूत की तरह बटी हुई है। 'बच्चन' की सबसे महत्वपूर्ण कविता 'दो चट्टानें' हैं—सबसे लम्बी कविता भी। 'बच्चन' ने सिसिफस के निरर्थक-यातना-भोग (भौतिक-संस्कृति की शून्यता) के समानान्तर हनुमान का प्रतीक विश्व को समझ कवि की कल्पना भावना तथा संस्कारों से निर्मित पूर्ण व्यक्तित्व सृजन के क्षणों में सक्रिय रहा है। अतः कविता भी विशिष्ट बनी है। 'बच्चन' ने राष्ट्रीयता को जिस प्रकार देश की संस्कृति के सन्दर्भ में हमेशा रखा, उसी प्रकार विश्व को भी मानव कल्याणकारी साँस्कृतिक धारा के सन्दर्भ में रखा है। इसी कारण वे विश्व के साहित्य से सिलिफ़स को निकाल कर जयदानी, जीवनदानी, अभयदानी, हनुमान के प्रतीक को समानान्तर में रख सके हैं। कवि का चिन्तन, कवि की कल्पना, कवि की अभिव्यक्तिक्षमता अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ इस कविता में उतरी है। अस्तु !

अभी 'बच्चन' का कवि सक्रिय है। अतः उससे और सफल तथा उच्च कोटि की कविता की अपेक्षा करना स्वाभाविक है।

—छबीली घाटी, बीकानेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बच्चन' के काव्य में आधुनिकता के बोध

• • •

डा० रामरतन भटनागर

"बच्चन" का काव्य मस्ती, यौवन, विद्रोह और मादकता का प्रतीक माना जाता है। खैयाम की मधुशाला की तरह उन्होंने भी अपनी मधुशाला सजाई और उनकी रचनाओं को 'हालावाद' कह कर 'वाद' में भी बाँध दिया गया। 'वाद' उन आलोचकों की लाचारी है जो कठघरे बनाते हैं, उससे कवि को कोई सरोकार नहीं है। गीत कंठ माँगता है, वह सिद्धान्त के फेर में नहीं पड़ता। जिन्होंने आधुनिक युग की '२०—३६' की कवि पीढ़ी को 'छायावादी' कहकर उसके सांस्कृतिक मूल्यों को छोटा किया, उन्होंने 'हालावाद' का नाम देकर 'बच्चन' की भी सीमाएँ बाँधनी चाहीं। 'बच्चन' की लोकप्रियता उनके पक्ष में थी, उनके गीत कंठ के प्रभाव में आलोचक भी बह जाता था, परन्तु जब पैर धरती पर लगते थे तो वह उनके काव्य में सस्तेपन, हाला-प्यालावाद और मादकता को ही देखता था। फल यह हुआ कि 'बच्चन' नई तरुणाई के कवि बनकर भी आधुनिक कम ही समझे गये। आधुनिकता का श्रेय 'अज्ञेय' और प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों को मिला।

प्रश्न यह है कि आधुनिकता क्या है? क्या वह प्रश्नों की अबूझता और जटिलता में है? क्या वह तात्कालिक जीवन-संदर्भों में है? क्या उसमें विद्रोह की भंगिमा ही सब कुछ है, निर्माण का कोई महत्व नहीं है? फिर यह भी प्रश्न हो सकता है कि क्या वह युगीन वस्तु है या युगयुगीन? मनुष्य के भीतर एक सर्वकालीन आधुनिकता भी हो सकती है यदि उससे हमारा तात्पर्य उन जीवन-मूल्यों से है जो 'आधुनिक' कहे जाते हैं। एक आधुनिकता नवीन जीवन-सन्दर्भों की है तो दूसरी भी एक आधुनिकता है जो मनुष्य को जाति, धर्म, वर्ण, प्रान्त सब भेदों-प्रभेदों से मुक्त केवल मनुष्य के रूप में देखना चाहती है। यह आधुनिकता 'बच्चन' के काव्य की आधुनिकता है। उन्होंने इसे उमर खैयाम की कविता में देखा है और उसी से रंग लेकर नये चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनकी भाषा-शैली प्रगीतात्मकता और संदर्भगर्भिता पर खैयामी मधुशाला की छाप है। इसके पीछे उर्दू-फारसी का काव्य ही नहीं, ईरान का पहलवी साहित्य भी हो सकता है। एक दूसरे प्रकार की आधुनिकता हमें इसी सर्वकालिकता को लेकर कबीर और संतों में मिलेगी। 'बच्चन' की यह विशेषता है कि उन्होंने मध्ययुगीन खैयामी संदर्भों को नए अन्दाज दिये और अपने गीतकंठ को प्रतिध्वनित करने वाले गीतिकाव्य में उसे इस तरह बाँधा कि वे अत्यन्त लोकप्रिय रचना बन गये। हाला, प्याला, मधुबाला, मधुशाला आदि के परिचित प्रतीक शराब की मस्ती और यौवन की ललकार को ही ध्वनित नहीं करते, उनके माध्यम से क्या नहीं कहा जा सकता? 'बच्चन' के 'हालावाद' के पीछे मनुष्य की समानता तथा सर्वोपरिता, रूढ़िवाद और कर्मकाण्ड का विरोध, मानव की कर्मण्यता और नियति की कठोरता आदि जो अनेक संदर्भ चलते हैं वे उनके गंभीर जीवन-चिन्तन और सामयिकता के बोध से ही पुष्ट हैं। इन संदर्भों में हम शाश्वत मानव-जीवन के प्रश्न तो पढ़ते ही हैं, उनकी सामयिकता हमारी समझ में नहीं आती।

उनकी सामयिकता मध्यवर्गीय संस्कृति के उस नए मोड़ को लेकर जिस पर 'बच्चन' ने अपने काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पाया था । १९३०-३२ के लगभग यह मोड़ भारतीय जीवन में आता है और उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है । १९२९ के आर्थिक विस्फोट, '३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन की असफलता तथा बेकारी और गरीबी की समस्याओं ने जीने को समस्या बना डाला । एक प्रकार का तनाव व्यक्तिगत सम्बन्ध में विवादी स्वर की तरह सुनाई पड़ने लगा । असफलता, कुण्ठा और नियतिबद्धता की भावना ने राष्ट्रीय चेतना को बुरी तरह झकझोर दिया । और प्रतिक्रिया का एक स्वरूप था झूठी मादकता, दूसरा स्थायी जीवन-मूल्यों के प्रति विद्रोह और अनास्थामूलक चेतना । तीसरा मध्यवर्ग की नई आकांक्षाओं के अनुरूप व्यक्ति-स्वातंत्र्य, नैतिक बन्धनों के प्रति विद्रोह तथा नियतिवादी चेतना को स्वीकार करते हुए भी मानवीय क्षमताओं के प्रति अदम्य विश्वास । ये प्रतिक्रियाएँ कवि के काव्य में अनायास (और अप्रयास भी) उभरी हैं । विभिन्न अभिरुचियों और स्वरों के पाठकों-श्रोताओं की 'बच्चन' के काव्य को लेकर विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हुईं परन्तु हम उनकी लोकप्रियता के रहस्य को उस समय कदाचित् पूरा नहीं समझ सके ।

स्वयं खैयाम के काव्य को हमने फिट्जजेरल्ड के अनुवाद से ही जाना । खैयाम की रुबाइयों के अँग्रेजी-हिन्दी-उर्दू अनुवादों का अपना इतिहास है परन्तु मूल रचनाएँ भी फारसी की सूफी काव्य परम्परा और प्रेममूलक कविता से भिन्न नए बौद्धिक तत्वों को लेकर आती हैं । मादकता उनका आवरण है । खैयाम की रचना की यह प्रकृति उन लोगों से छिपी रहती है जो शराब, साकी, प्याला और मयखाने को सतही अर्थों में लेते हैं और उसमें चार्वाकी जो है सो दर्शन की अकर्मण्यता और भोगवादी नग्नता, अतृप्ति और वासना ही पढ़ते हैं । यह सब खैयाम नहीं है, कदाचित् खैयाम का मौलिक रूप इससे नितात भिन्न रहा होगा । यूरोप की नवविकसित बुद्धिवादी प्रेरणा ने मध्यवर्ग को जहाँ ला पटका था उसकी प्रतिच्छाया 'बच्चन' के गीतों में मिली तो उन्होंने उसे अपना हृदय ही दे डाला । यह कवि के काव्य की अपराजिता शक्ति का ही प्रमाण है ।

छायावाद की भाषा-शैली (अभिव्यञ्जना) और उसकी अन्तर्व्यथा तथा प्रचुर एवं सम्पन्न कल्पना उसे सामाजिक-नैतिक चेतना से स्वतन्त्र कलाधर्मी और दार्शनिक अध्यात्मिक कोटि की वस्तु बना देती है । 'बच्चन' का काव्य इस पृष्ठभूमि से उठता है और जन-कण्ठ को शिष्ट वर्ग से परिचित करा काव्य के भीतर से प्रजातन्त्री चेतना को उभारता है । वह पाठकों और सहृदयों को शंकाशील बना कर उन्हें विचारों की दुनिया का यात्रिक बना देता है । उसकी भाषा-शैली परम्परा से नहीं जुड़ती, मध्ययुग की सूफी और सन्त विचारधारा तथा उर्दू काव्य की रसात्मकता से भी है । छायावादी कविता विशुद्ध हिन्दू चेतना की उपज है, 'बच्चन' का काव्य अपने इहलौकिक (सेक्यूलर) चिन्तन के द्वारा कविता की नई दिशा का प्रवर्त्तन करता है । उसमें गीतात्मकता के भीतर से विचारों का निर्वाह अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है और भाषा की सफाई ही नहीं, विचार की आन्तरिक सुबद्धता और एकनिष्ठा भी उसे प्रभावशाली बनाती है । तात्पर्य यह है कि 'बच्चन' परम्परा के भीतर से ही नवीनता लाते हैं ।

'बच्चन' के आधुनिक बोध का एक पक्ष रचना के विचार-विन्यास से सम्बन्धित है । उनके गीत चौदह पंक्तियों में एक शृङ्खलित विचार को प्रस्तुत करते हैं और प्रत्येक वाद का बन्ध पूर्वतन बन्ध को अपनी आधारशिला बनाता है । इसके विपरीत मध्ययुग का पदावली-साहित्य एक सम्पूर्ण भावनिकाय है जिसमें भावना या विचार का क्रमिक विकास हमें नहीं मिलता । विचार या भाव की यह बनावट (या बुनावट) नई कला है जो आधुनिक बुद्धिवादी युग की सतर्कता और तर्कबद्धता को सूचित करती है । उसमें कोरा भावोच्छ्वास ही नहीं है । 'बच्चन' के प्रगीत-काव्य में गीति-सौष्ठव ही महत्वपूर्ण नहीं, प्रत्येक प्रगीत परिपूर्ण विचार परम्परा है । विषय के विकास और निर्वाह की सारी पद्धति आधुनिक युग के कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बौद्धिक आयाम तथा जागरूक कला-चेतना को अभिव्यञ्जित करती है। भाषा उनके भाव के खुलेपन, उसके क्रमिक विकास तथा निर्वाह पर उनके व्यक्तित्व को मुद्रित कर देती है। उन्होंने कहीं भी वाक्य-विन्यास में ऐसा परिवर्त्तन नहीं किया है कि वह गद्य से भिन्न पद्य की परिपाटी लगता हो। छायावाद के कवियों की भावाभिव्यञ्जना लाक्षणिक पद्धति पर चलती है और रचना को गद्य से विशिष्ट काव्यात्मक बनाने के प्रयत्न में वे अपनी भाषा को संस्कृत शब्दों से बोझिल और समास-शैली से गरिमावान बना देते हैं। आधुनिक काव्य आधुनिक जीवन का खुलापन चाहता है। वह प्रजातन्त्रीय है। सब की समझ में आने वाली शब्दावली और प्रतिदिन के अनुभव से पुष्ट बिम्ब-विधान लेकर स्वाभाविक पद-संचरण आधुनिकता के ही प्रमाण हैं। आलंकारिक शैली और अतिभावुकता से काव्यबोध और अभिव्यञ्जना को मुक्त कर 'बच्चन' ने गद्य-पद्य के बीच की अभिसन्धि-रेखा को तोड़ा है। इसीलिए उनकी रचनाएँ सामान्यधर्मी हैं। उनमें साधारणीकरण अथवा प्रेषणीयता का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उनमें आधुनिकतम विचारों को परम्परागत एवं प्रथित प्रतीकों, बिम्बों एवं सन्दर्भों में प्रकाशित किया गया है। स्पेन से इण्डोनेशिया तक फैली हुई इस्लामी संस्कृति में सूफी साधकों ने मानव-चेतना को रूढ़िवाद से मुक्त करने के लिए अपने विद्रोह को जो प्रतीकात्मकता दी थी, वह साकी, शराब, प्रेयसी और मुल्ला (पण्डित, नीतिवादी) के माध्यम से प्रगट हुई थी। उस युग की यह आधुनिकता आज के विचार युग से जुड़ाकर 'बच्चन' के काव्य को एक नया संस्कृति-संगम बना देती है।

काव्य के भीतर से विचारों का यह वैविध्य और सुसंगठन 'बच्चन' के आधुनिक युग के शोध की विशेषता है। यह चीज़ 'नवीन' और 'अंचल' में भी नहीं मिलेगी। ये कवि उन्हीं प्रतीकों का उपयोग करते हैं अथवा उर्दू काव्य के प्रचलित शब्दों से अपनी रचनाओं को अधिक व्यंजनाशील और लोकप्रिय बनाते हैं। वहाँ संवेदना का स्थान भावना या भावुकता ने ले लिया है। 'बच्चन' को यह सस्तापन पसन्द नहीं है। वह उर्दू संस्कृति से पूर्णत: परिचित हैं। वह उनके लिए आठवाँ आश्चर्य नहीं है। इसी से वह उसे हिन्दी काव्य-शैली में पूर्णत: ढाल सके हैं। भावों या विचारों की पुनरावृत्ति कवि की अप्रौढ़ता की ही सूचक है। विषय को लेकर कीट-भृंगी की कथा को चरितार्थ करने में कवि की सफलता नहीं है क्योंकि उसकी नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा इससे खण्डित होती है। उर्दू भाषा और उसकी प्रतीक-शैली की पूरी जाँच हमें बच्चन के काव्य में मिलेगी परन्तु उसका उपयोग उन्होंने नए जीवन और जगत को वाणी देने में किया है।

विचार काव्य का मेरुदण्ड है परन्तु यह आवश्यक है कि वह भाव या संवेदन से पुष्ट हो या उनमें बँध जाये। 'बच्चन' की भावुकता कहीं भी विचार का अंचल नहीं छोड़ती। यही चीज उन्हें छायावादी कवियों की अतिशय कल्पनाशीलता और अति भावुकता से बचाती है। वह धरती के अधिक निकट हैं और इसी में अपनी सुरक्षा समझते हैं। जहाँ वह गद्यात्मक हो गये हैं, वहाँ काव्य उनके कण्ठ का आश्रय माँगता है और लिखा जाकर बुझा-बुझा रहता है। परन्तु चिन्तन की मुद्रा कवि की प्रतीक-शैली और हालावादी मादकता को विशिष्ट बनाये रहती है। बौद्धिक और विचारशील बनना आज फैशन हो गया है और 'नयी कविता' में उसने दम्भ का रूप भी धारण कर लिया है। भावुकता यदि अबूझ हो सकती है तो विचार को ही अबूझ रखा जा सकता है। यह अबूझता अब धीरे-धीरे कला का रूप ग्रहण करती जा रही है। 'नयी कविता' विचार-काव्य होने का दावा करती है पर उसकी सूक्ति प्रवणता पाठक की संवेदनशीलता को उलझा देती है। विचार को चेतन मन से नहीं, उपचेतन से पकड़ कर प्रज्ञात्मक बनाने की प्रक्रिया में अबूझ ही पहले पड़ता है।" 'बच्चन' की आधुनिकता इतनी दूर नहीं जाती। वह अपने विचार को संवेदना के क्षण में बाँधते हैं और उसे चेतन मन की जागरूकता ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, भावविदग्ध कवि की पीड़ा और भावुक गायक का कण्ठ भी देते हैं। यह प्रक्रिया उन्हें अन्त तक सुपाठ्य और सुगेय बनाये रहती है और उनका काव्य वैचित्र्य की अंध गली में पहुँच कर कण्ठावरोध मात्र नहीं रह जाता।

संक्षेप में, 'बच्चन' दृष्टिकोणगत हैं। वे विचार-भंगिमा (एटिट्यूड) के कवि हैं। उन्होंने भावुक और विचारशील नए तारुण्य का सामासिक व्यक्तित्व बना कर वह अपने काव्य में युग की पीड़ा का बोध दे सके हैं परन्तु इस पीड़ा में मानव-जीवन के शाश्वत और सार्वभौम प्रश्न भी आत्मसात हो गये हैं। खैयाम की कविता की मादकता ही नहीं, उसकी प्रतीकबद्ध विचारशीलता की भी छाप उनकी कविता पर पड़ी है। आपबीती को जगबीती और जगबीती को आपबीती बना कर उन्होंने आधुनिक कवि की विचारशील जीवन जीने की लाचारी को ही नहीं उद्‌घोषित किया है, कवि-कर्म का एक सन्तुलित और सहजबोधी रूप भी श्रोताओं और पाठकों के सामने रखा है। उनका कण्ठ युग के साथ है परन्तु चिन्तन युगेतर और युग-युगीन के साथ। खेमे उन्होंने गाड़े हैं, खैयाम की तरह बेचे नहीं हैं।

'बच्चन' के प्रारम्भिक काव्य में हमें आधुनिकता का जो स्वरूप मिलता है वह उस शाश्वत आधुनिकता का है जो बुद्ध, कबीर और खैयाम में समान रूप से पाई जाती है और वैष्णव सुधारवाद का प्राण है। यह आधुनिकता मानव के सभी बन्धनों का विरोध करती है और उसे एक निर्बन्ध, स्वतन्त्र एवं आत्मजयी चैतन्य के रूप में देखती है। प्रतीक चाहे खैयामी हों बच्चन का काव्य उस वैष्णव चेतना का रूपान्तरण है जो आत्मसमर्पण के आनन्द को ही नियतिवाद का बाना पहना कर मनुष्य को निराशा, अवसाद और आत्म-प्रताड़न से ऊपर उठाना चाहती है। उसकी चेतना धार्मिक न होकर लौकिक भले हो, उसमें मानव के प्रति आस्था का अभाव नहीं है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजा मनुष्य को छलते हैं। केवल भीतर का चैतन्य और अपराजित आदिम आनन्द मनुष्य को समान रूप से एक भावसूत्र में बाँधते हैं। इस आनन्द की स्वीकृति भोगवाद नहीं है। क्योंकि उसमें हमारी जीवन-निष्ठा की ही नैसर्गिक चरितार्थता सन्निहित है। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद को अमृत-गरल की तरह समान रूप से ग्रहण करने वाली चेतना सहज साधना ही कही जा सकती है। इसी से कवि गाता है—

हम सब मधुशाला जायेंगे,
आशा है, मदिरा पायेंगे,
किन्तु हलाहल भी यदि होगा,
पीने से कब घबरायेंगे।

सच तो यह है कि इस तटस्थता और अनासक्ति के पीछे भी कवि का जीवन-प्रेम ही लक्षित है। उसके ही शब्दों में—

यदि यह सुखमय तो दुखमय है वह कोना,
क्या मृदुल कुसुम, क्या चुभने वाला काँटा,
सबसे अपना शृङ्गार किया है मैंने,
तेरी दुनिया से प्यार किया है मैंने।

जीवन के प्रति कवि की इस उत्कृष्ट लालसा को न समझ कर ही हमने उसे घोर शृङ्गार, अनैतिकता तथा अमर्यादा का प्रचारक मान लिया है और उसके 'हालावाद' में पलायन तथा उन्माद की भंगिमाएँ पढ़ी हैं, परन्तु उसकी बुलबुल अपने जग-जीवन से अनुराग और विद्रोह दोनों की सीमा के पार जाने की अभीप्सा रखती है। उसने अपनी वाणी में अखिल मानवता का ही उद्‌घोष किया है—

विभाजित करती मानव-जाति,
धरा पर देशों की दीवार,
जरा ऊपर तो उठ कर देख,
वही जीवन है इस-उस पार,
घृणा का देते हैं उपदेश,
यहाँ धर्मों के ठेकेदार,
खुला है सब के हित सब काल,
हमारी मधुशाला का द्वार,
करें आओ विस्मृत वे भेद,
रहे जो जीवन में विष घोल,
क्रांति की जिह्वा बन कर आज,
रही बुलबुल डालों पर बोल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह और पाप के प्रति कवि का आकर्षण इसी लिए है कि वह मानव-जीवन को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना चाहता है। पाठक की चेतना को प्रताड़ित करने की व्यंग्यात्मक धारणा कवि की रचनाओं को चुनौती का रूप दे देती है। परन्तु उसकी अनास्था आस्तिकता को ढकने वाला छद्म वेष है और वासना जीवन की सप्राणता और नैसर्गिक रागमयता का विस्फोट। कवि ने यदि अपने बाग में कैक्टस नहीं उगाये, गुलाबों की क्यारियाँ सजाई और वासनात्मक बिम्बों को अधर पर अंकित किया तो यह इसे युग के उथले आदर्शवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और आत्माभिव्यक्ति की पुकार ही मानना होगा। भोगवाद की अतल गहराइयों में डूब कर कवि ने उस घोर निराशा से बचने का प्रयत्न किया है जो जीवन की आग को राख से ढक देती है और ईश्वर, सौन्दर्य आनन्द और आत्मा सब को निरर्थक बना देती है। यहाँ हमें सहसा फ्रेंच कवि बोदलेर की याद आ जाती है। अपनी आत्म-प्रवंचना के आत्मघाती छल को पहचान कर हम सहज जीवनधर्म को अपनायें, यही तो कवि चाहता है। मध्ययुग के वैष्णव कवि ने भीय ही चाहा था परन्तु उसने पौराणिक इष्टदेवों या आस्तिक विश्वासों का सहारा लिया था क्योंकि वह आस्था का युग था। बच्चन प्रत्येक प्रकार की आस्था को एकांततः अस्वीकृति देकर भी अपने अभिप्रायों को प्रच्छन्न रूप से विधेयात्मक रहने देते हैं क्योंकि वह मध्यवर्ग के बुद्धिवाद और मानववाद से अनुप्राणित हैं और मानव को निरस्त कर देवतावादी नहीं बनना चाहते। अन्तर अभिव्यञ्जना का है, दृष्टिकोण का नहीं। उन्होंने अपने युग के अनुरूप नये-पुराने प्रतीकों को चुना है और दुःख तथा प्रताड़ना को जीवन की सहज साधना बनाया है। बच्चन की विचारधारा के केन्द्र में जो निराशावाद की सुदृढ़ ग्रन्थि है वह निस्सन्देह प्रच्छन्न रूप से उनकी वैष्णव चेतना का ही प्रमाण है। उन्होंने अवसाद के दुर्वह बोझ से बचने के लिए ही हाला की शरण ली है, परन्तु उनकी आत्मा मानव के प्रति सहृदयता, कोमलता तथा पवित्रता से ओतप्रोत है और उनका काव्य मरणधर्मी न होकर सहज रूप से जीवनधर्मी है। वैष्णव पदावलियों की भाँति उसकी गीतात्मकता तथा संस्कारात्मकता भी संक्रामक है।

बच्चन के काव्य पर बुद्धि का अंकुश आरम्भ से ही रहा है। वह कलाकार के राजसी संकल्पों से अनुप्राणित क्लासिक कवि के आत्मनियन्त्रण से पुष्ट है। इसीलिए वह भावावेशपूर्ण तथा संवेगात्मक छायावाद से भिन्न है। कवि के विरोधियों और निन्दकों को भी उसकी कविस्फूर्ति और काव्य-वैभव को स्वीकार करना पड़ा है। उसकी पंक्तियों की प्रवाहमयी गरिमा और गीतबन्धों के सौष्ठव ने उनकी सरल बोलचाल की भाषा को भी वैशिष्ट्य प्रदान किया है। लय और तुक की निर्दोषता, परिष्कृत शब्दावली, उत्कृष्ट भावात्मकता के साथ सुन्दर संगीत का निर्वाह तथा अर्थ-गाम्भीर्य बच्चन के काव्य को एक नया ही ऐश्वर्य देने में समर्थ है। दुर्भाग्यवश सब कहीं यह उच्च स्तर बना नहीं रहता और श्रेष्ठ काव्य के बीच में साधारण तुकबन्दियाँ बिखरी मिलती हैं। परन्तु क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है कि उन्होंने काव्यभाषा को छायावाद की कुहेलिका से बाहर निकाल कर उसे शरद् की प्रशान्त धूप में खड़ा कर दिया और निर्वात हिमशिखरों से नीचे उतर कर हरी घाटी की गर्म साँस हम में भरी। जिस आधुनिकता को उन्होंने अपने काव्य में छन्दों में बाँधा था वह नये युग की विश्व-मानवता ही थी। इसमें वैष्णव धर्म का अस्वीकार नहीं था, उसका सीमोल्लंघन था। व्यक्तिनिष्ठ कविता को जन-कण्ठ बनाने की नई कलाकारिता बच्चन के काव्य को नई भंगिमा प्रदान करती है।

आधुनिकता के अर्थ बदल सकते हैं और पुरानी अथवा नयी आधुनिकता के रूप में उसके विभिन्न आयामों की कल्पना भी की जा सकती है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशकों की आधुनिकता आज की आधुनिकता से भिन्न है, और उसकी अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति बच्चन के काव्य में हुई है, परन्तु नयी आधुनिकता का भी बहुत-कुछ बच्चन के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के काव्य में आभासित है। मानव की निःसंगता इकेलेपन, सूनेपन, अवसाद, विद्रोह तथा आत्मप्रताड़न का बहुत बड़ा भार उन्होंने अपने काव्य के भीतर से ढोया है। 'एकान्त संगीत' और 'निशा निमंत्रण' में उनका खैयामी स्वर सहसा मोह-भंग का स्वर बन जाता है और विद्रोही मानव की शाश्वत ललकार उसमें फूट पड़ती है। कभी मन अवसाद में डूब जाता है और कभी कवि अपने सूनेपन को सुखमय बनाना चाहता है। परन्तु अन्त में उसे मानव के इकेलेपन के ऊपर गर्व हो आता है। यह सर्वनिरपेक्ष, सर्वस्वतन्त्र, स्वयंभू मानव है जिसने परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेके हैं और जिसने अपने महाद्रोह के झंडे को अनन्त काल के लिए सुदृढ़ गाड़ दिया है।

अग्नि-पथ पर चलने वाला यह मानव प्रार्थना नहीं करेगा, सहज सिद्धि को वर्जित मानेगा, अभिमानी गर्दन और प्रभापूर्ण लोचनों को विनत नहीं करेगा। वह अपरिपूर्णता की पुकार से दूरागत वंशीरव की भाँति बँधकर निरंतर आगे बढ़ता रहेगा।

बच्चन का काव्य आज के विश्वव्यापी अँधकार में भी चिरजागरूक प्रहरी की तरह अटल खड़ा है। कवि का दृप्त कण्ठ अब भी गा उठता है—

है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है ?

यही नहीं, वह पराजय और अवसाद की विध्वंसकारी शक्तियों के प्रति इस आशा से खड्गहस्त है कि—

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर।

स्वतन्त्र भारत के भालपट्ट पर इस चिरतरुण कवि ने अपनी वज्रलेखनी से जो स्वर्ण लेख लिख दिया है वह काल-वैशाखी के दुर्विनीत झोकों में भी धूमिल नहीं हो सकेगा। पुरानी और नई आधुनिकता को समान रूप से ललकार वह चिरन्तन मानव की दुर्दमनीय प्राणवत्ता को इस जयवाणी से अभिषेकित करेगा। अपराजित मानव नियति के लोहचक्र पर भी जिस दिन अपने तीक्ष्ण दन्त-चिह्न छोड़ जायेगा उस दिन कवि का यह अभिमान सार्थक होगा। यह परिकल्पना ही कवि बच्चन की क्रांतिचेतस् काव्य-साधना को नये अर्थ देती है और उन्हें हमारी मध्य-वर्गीय चेतना के विकास की आवश्यक कड़ी बना देती है। यह सच है कि बच्चन के काव्य की सीमाएँ भी बड़ी हैं और वह छायावाद की एकांतिक सौन्दर्य-साधना का उतार सूचित करता है परन्तु यह भी असत्य है कि यहीं हमारा आकुल अन्तर व्यथित विश्व से जुड़ता है और एकांत संगीत नये युग की प्रभाती में बदल जाता है। बाद में यदि कवि परिस्थितियों के दबाव या काव्य-प्रतिभा के निःशेष हो जाने के कारण तुकबन्दियों और ग्राम गीतों की धुनों पर उतर आया है तो वह उसकी नियति नहीं है। उसे उसकी श्रेष्ठतम रचनाओं में ही खोजना होगा। छायावादोत्तर युग की दहलीज पर खड़े होकर बच्चन हमें मनुष्य की अकिंचनता के साथ उसकी देवोपमता की जो झाँकी देते हैं वह आज भी हमारा मन मोह लेती है। उनका विद्रोही मानव प्रथम की तरह अवचेतन की अंध गुहा में बंदी होकर भी निस्तेज नहीं हुआ है और उसकी विप्लवी हुँकार अभी भी कुण्ठा और अवसाद के कुहासे को चीरकर हमें विगतज्वर बना देती है। नितांत व्यक्तिगत और आभ्यंतरिक होने के कारण बच्चन अपने काव्य को उत्तरोत्तर अधिक सम्पन्न और प्रौढ़ सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिप्राय नहीं दे सके, इस सत्य से उनका प्रेमी पाठक मुँह नहीं मोड़ेगा, परन्तु काव्य यदि कवि से बड़ी चीज है तो वह उसके प्रति संशयग्रस्त और हताश भी नहीं होगा।

—हिन्दी विभाग, सागर वि० वि०, सागर (म० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बच्चन' : सामयिकता के सन्दर्भ में

• • •

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

""बच्चनजी" अब चुक गए हैं"; बच्चन जी लिखते अब भी तो बहुत हैं, लेकिन······; "लो बच्चनजी की कविता फिर 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में आगई";—ऐसी प्रतिक्रियाएँ अब प्रायः सुनने को मिलती रहती हैं। 'वातायन' में श्री ओमानन्द रु० सारस्वत ने 'जो चुक गए हैं' स्तम्भ के अन्तर्गत 'बच्चन' की कविता के बासीपन, पुनरावृत्ति और सामयिक मनोवृत्तियों को हृदयंगम न करने की असमर्थता बिम्बविधान की पारम्परिकता आदि की शिकायत की है।

दूसरी ओर कवि सम्मेलनों में जनप्रिय गीतकार और कवि बच्चनजी को 'शलाका पुरुष' के रूप में देखते रहे हैं। इस दल के प्रवक्ता को अति बौद्धिकता, अतिशय प्रयोग परकता से बचाना चाहते हैं। उनके अनुसार 'मीरां' महाकपयित्री थी किन्तु उनमें बौद्धिकता का सर्वथा अभाव था अतः बौद्धिक और ऊटपटांग सामयिक नवकाव्य से आतङ्कित होकर भी 'लय' (सम्पादक, नीरज, अलीगढ़) तथा 'साप्ताहिक-हिन्दुस्तान' (रामानन्द 'दोषी'—गीतकार) जैसे पत्र, 'बच्चन-परम्परा' को समानान्तर रूप में पेश करते हैं।

विचारक इन दोनों 'रुचिप्रभावित' मतों को आलोचना के लिए 'कच्चे माल' के रूप में ही प्रयुक्त कर सकता है।

बच्चनजी छायावादी वायवीय प्रेमभावना और अस्फुट रहस्यमूलक कविता के क्रोड़ में; साधारण मनुष्य के स्फुट प्रेम भाव और कृत्रिम सामाजिक बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह के विकास के कारण प्रसिद्ध हुए थे। उनकी खैय्यामी मस्ती; अल्हड़ उन्माद और अलबेली विप्लव चेतना किशोरों को बहुत प्रिय लगती थी; क्योंकि छायावादी-रहस्यवादी आक्सीजन रहित ऊँचाई 'दमघोटक' प्रतीत होती थी।

जिन्दगी में मस्ती का मोल कम नहीं होता; फिर बच्चनजी की मस्ती (मधुशाला, मधुबाला) में एक अन्तर्निहित 'दर्शन' भी था, जो उनकी कविता के कैशोर उपरले धरातल को सांकेतिक भी बनाता था। दूसरी ओर तात्कालिक राजनैतिक परतन्त्रता को समाप्त करने के लिए भी इशारे थे। मयखाना में साम्राज्यवादी, और गुलाम साथ साथ नहीं बैठ सकते, वहां तो समता, बन्धुत्व और स्वतन्त्रता चाहिए। इसके सिवा हिन्दी कविता में जो एक उदात्तता और वैचारिक गगन गामिता होती है, उसे एक 'घर फूंक फक्कड़पन' द्वारा तोड़ कर, सूफियों के लहजे में, युवकों के आश्रय यौवन और मदिर भावों को जाग्रत करने का भी सामर्थ्य बच्चन में था। सरल और सीधे प्रहार के कारण बच्चन की कलाभिव्यक्ति इसलिए भी आकर्षक लगती थी, क्योंकि छायावादी काव्य लक्षणात्मक वैचित्र्य के कारण अधिक गम्भीरता की माँग करता था।

रुचि की शक्ति का यह एक प्रबल प्रमाण है। छायावादी प्रभाव की अधिकता से, जिस 'वैविध्य' की माँग हो रही थी। बच्चन ने उसे पूरा किया था। अतः मधुशाला-कण्ठहार' बन गई, बच्चन की 'अदायगी' भी सहायक बनी।

अब 'मधुशाला' पाठशालाओं की 'अंत्याक्षरी प्रतियोगिताओं और कभी-कभी कवि सम्मेलनों में सुनने को मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन जी की दूसरी उपलब्धि गीत के क्षेत्र में थी। निराला (गीतिका) महादेवी, पन्त और प्रसाद के गीतों की तुलना में बच्चनजी के गीत 'हल्के' थे, लेकिन उनमें मानव हृदय की निकटता अधिक सीमा में मिलती है। इसका सबूत यह है कि सिर्फ बच्चन के गीतों को ही युवक 'प्रेमपत्रों' में लिख सकने योग्य पाते थे। छायावाद में जो लोक को अतिक्रान्त करते चलने की एक प्रकृति थी, उसका बच्चन के गीतों में आरोप नहीं था अतः यहाँ भी 'साधारणता' के कारण ही बच्चनजी के 'हलके' गीत खूब 'उड़े' और अब तक उड़ते जा रहे हैं, उन चेतना-आकाशों में जहाँ उलझन-दार बादल नहीं है; जो जटिल जीवन नहीं जीते और काव्य को सहज जीवन की अभिव्यक्ति मानते हैं।

किन्तु इस जनप्रियता से बच्चन के गीतों में जो छिपे इशारे को, उनकी उपेक्षा हुई। उदाहरण के लिए "कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा" गीत में जब कवि प्रकृति की विराट सत्ता को प्रेयसी के रूप में प्यार करता है तो एक और तो विधि-निषेधमय समाज की जड़ता पर चोट होती है और दूसरी ओर "उषा के गाल चूमने" आदि से स्वच्छन्दता का बोध प्रकट होता है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कवि के मानस में इन जटिल प्रत्ययों की प्रतिक्रियाएँ दीर्घ काल तक नहीं चलतीं ? अथवा मंथन और रोमंथ दीर्घ होने पर भी और उन्हें उसी स्थिति में व्यक्त करने की शक्ति होने पर भी कवि जान बूझ कर प्रत्ययों—अन्तर्द्वन्द्वों की संकुल प्रक्रिया से क्या पाठक को बचाना चाहता है और जिस मानसिक सङ्घर्ष को वह खुद झेलता है, उसकी ओर क्या वह सिर्फ इशारे से ही काम चलाता है ?

मेरी समझ में तो बचन के गीत-काव्य की विशेषता यह है कि वह संकुलता को सजगता के साथ चलाते हैं और केवल सरलीकृत कथनों के रूप में अपने को प्रस्तुत करते हैं। इससे साधारण पाठक और श्रोता एक आत्मीयता की स्थिति में आ पाता है, किन्तु सजग विवेचक के लिए गीतों की सरलता 'चम्बल के पारदर्शी जल' की तरह लग सकती है, जो ऊपर से उथली और भीपर उतरते ही 'गहरी' प्रमाणित होती है। बचन साधारण पाठक के पास इस सादगी से उपस्थित होते हैं जैसे उसे वह 'आप बीती सुना रहे हों। इस स्वर में, जो पाठक या श्रोता का जाना-पहचाना है, लेकिन निश्चित रूप से कवि की मानसिक स्थितियाँ इतनी सरल नहीं हैं। उनके गीतों में लच्छे ऊपर नहीं उभारे गये, वे नीचे छोड़े गये हैं और उन धागों को पकड़ कर यदि कवि के मन में उतरा जाए तो उसका प्रेमावेश अपने में अनेक सामाजिक प्रत्ययों-अभिप्रायों में समेटे हुए है। अतः ये लच्छे गठीले भी हैं, जिन्हें सुलझाने से वे और उलझने लगते हैं। बचन ने स्वयं लिखा है कि "साधारण वास्तव में साधारण नहीं होता वह असाधारण होता है।"[1]

यह स्पष्ट है कि बचन की इस गहराई की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। हिन्दी में जो 'कोटि-करण' प्रचलित है, उसके कारण हर कवि पर एक बार जो ठप्पा लग गया, उसे छुटाना कठिन हो जाता है पर अब वह समय आ गया है कि इन ठप्पों को छुटाया जाय और बचन के गीतों की असली तस्वीर को सम्मुख लाया जाए।

बचन का तीसरा रूप प्रयोगों में दिखाई पड़ता है जो 'जनप्रिय प्रयोगोन्मुखता' का खिताब पा सकता है (सुविधा के लिए, ठप्पा के रूप में नहीं)। इसका रूप 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' में सुरक्षित है। लोक-जीवन की छवियों को 'तारसप्तक' के कवियों ने भी चित्रित किया था, लेकिन यहाँ गाता हुआ लोक-हृदय है, कोरा चित्रण नहीं, जिसमें स्थिर या जड़ बिम्बों का जमाव होता है। साथ ही व्यापक सामाजिक अभिप्रायों से भी बचन लोकधुनों पर आधारित गीतों का दामन भरते चलते हैं यथा 'बंजारे की समस्या' अथवा 'मालिन बीकानेर की' आदि में। यहाँ हर एक स्थिति प्रतीक में स्वतः ढलती जाती है। जैसे—

"बाहर बाहर बालू बालू, भीतर भीतर बाग है।"

बचनजी ने मुक्त छन्द में सामयिक प्रवृत्तियों पर

---

[1] चार खेमे चौंसठ खूँटे', पृष्ठ १५१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिक्रियाएँ और व्यंग्य भी प्रस्तुत किए हैं—

"तुम घरेलू से नहीं, अजनबी से आकर्षित होते हो घर को नहीं, अजायबघर को आँखें फाड़ कर देखते हो क्योंकि तुम खुद अजब हो, अजनबी हो, अपने को देख नहीं पाते हो, देखते घबराते हो, या फिर लजाते हो।" —(चार खेमे, पृ० १५३)

'चुकने' की बात इसी सन्दर्भ में उठाई गई है। बच्चन में सामयिक 'संक्रान्ति बोध' का अत्यन्ताभाव तो नहीं है परन्तु उनमें उसका स्पर्श मात्र ही है। वह आज की 'निषेधवादिता का निषेध' ही प्रस्तुत करते हैं किन्तु 'वक्तव्यता, के कारण न तो उनके गीतों की तरह उनकी कविता में 'उथले में गहरे' का अहसास जग पाता है और न यह लगता है कि बच्चन ने "व्यक्ति के स्तर पर उत्पन्न सामयिक असङ्गतियों" का तीखा अनुभव किया है। यदि किया है तो उसके परिणामों के प्रति वे अधिक सजग लगते हैं, उसकी आज की स्थिति के प्रति उतनी सावधानी उनमें नहीं लगती। इसीलिए वे या तो 'चुके' से लगते हैं या 'रुके' से लगते हैं किन्तु यीट्स जैसे द्रष्टाकवि के पाठक होने के कारण यदि वह आज के अग्रगामी 'संक्रान्त बोध' को अपर्याप्त मानकर; भावपरक स्थितियों की माँग करते हैं तो उनकी प्रतिक्रियाओं को 'पूरक स्थितियाँ' मान-कर चलना चाहिए।

बच्चन प्रारम्भ से ही भावात्मक स्थितियों के कवि रहे हैं; उन्होंने काव्य की सफलता के लिए; 'पाताल-प्रियता' से संघर्ष किया है अतः आज भी वह 'गोता-खोरी' को असामान्य मनोविज्ञान तक ही सीमित रखना चाहते हैं, यह उनकी 'विशिष्टता' और यही उनकी सीमा है।

कवि सम्मेलनीय कवियों ने अपनी एक अलग 'कोटि' बनाली थी। पिछले वर्षों में रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथसिंह, वीरेन्द्र मिश्र आदि ने गीत का नवीनी-करण करना चाहा है। इसमें कुछ सफलता भी मिली है, लेकिन अब यह बात उभर कर आ रही है कि गीतकार नवकाव्य से बुरी तरह आतंकित हैं। वह विरोध भी करते हैं और चुपचाप उसकी नकल भी करना चाहते हैं। इस द्वन्द्व में वे अधिक सुखी हैं जो पुराने ढङ्ग के गीतों की दृढ़ भूमि को नहीं छोड़ना चाहते। संकटग्रस्त वे हैं जो स्वभावतः गीतकार हैं लेकिन 'चुक जाने' के लांछन से बचने के लिए नव-गीत के क्रम में ऐसे गीत रचना चाहते हैं कि दोनों घोड़ों पर सवार रह सकें, लेकिन यह असम्भव है।

प्रत्येक विधा का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है, मौलिक उपकरण होते हैं, एक दृष्टि भी होती है। गीत मूलतः भावात्मक विधा है। गेयता की रक्षा के लिए मात्र 'अर्थ' ही नहीं, लय भी अनिवार्य होती है और लय और संगीत; संगीतहीन स्थितियों के अति-यथार्थात्मक चित्रण में असंगत होने लगता है—इस अभिव्यक्ति संकट से ग्रस्त नवगीत आगे क्या बन सकेगा यह तो भविष्य की बात है, फिलहाल इतना कहना काफी है कि बच्चनजी अपने 'स्वधर्म' और 'स्वरूप' को नहीं छोड़ना चाहते। सामयिक काव्य में उनका अपना स्थान है, अपनी अलग भंगिमा है; आवाज है। सामयिक 'आर्केस्ट्रा' में बच्चनजी का महत्व, उनके सृजन स्वर की भिन्नता में ही सुरक्षित है।

—हिन्दी विभाग, राजस्थान वि० वि०, जयपुर।

———

ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक महानुभाव अपनी ग्राहक संख्या लिख देंगे तो उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त हो सकेगा। अन्यथा ग्राहक-संख्या खोज कर सकना और आज्ञा का पालन करना सहज सम्भव नहीं है।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बच्चन' के काव्य-सिद्धान्त

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त

वर्तमान युग में वैयक्तिक काव्य-धारा के अन्तर्गत कविवर हरिवंशराय 'बच्चन' अग्रणी कवि हैं। उनकी काव्य-प्रवृत्ति निरन्तर एक रूप न रहकर विविध विकास-संस्थाओं में विभाजित है। फलतः अवसर विशेष पर काव्य के संबन्ध में अपनी धारणाओं को व्यक्त करना उनके लिए स्वाभाविक रहा है। उनके द्वारा विचारित मुख्य काव्यांग हैं—काव्य का स्वरूप, काव्य की आत्मा, काव्य-हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य के तत्त्व, काव्य-शिल्प। यद्यपि उन्होंने प्रसङ्गवश गीति-काव्य के स्वरूप,[1] काव्य में देशभक्ति के वर्णन के महत्त्व[2] आदि के विषय में भी विचार प्रकट किये हैं।

काव्य का स्वरूप—'बचन' ने काव्य-लक्षण और कवि-कर्म पर प्रकीर्ण रूप से विचार किया है। उन्होंने भाव-सम्पन्नता और रागात्मकता को कविता से मूल गुण माना है—"कविता सचमुच पाठक और कवि के हृदय को जोड़ने का साधन है—या एक मानव-हृदय को दूसरे मानव-हृदय के साथ।"[3] इस उक्ति से स्पष्ट है कि काव्य वह रचना है जिसमें कवि सहृदय को मानव-मन की प्रवृत्तियों की रागात्मक अभिव्यक्ति द्वारा प्रभावित करता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि वे साधारणीकरण को काव्य का मुख्य गुण मानते हैं। वस्तुतः कवि अपनी अनुभूति के बल पर मानव-जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करता है। 'बचन' के शब्दों में, "डालता सब पर सद कवि, निज हृदय की स्नेह छाया।"[1] यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण कवि-जीवन की सर्वोत्तम निधि है और इसके माध्यम से ही कविता में स्पष्टता, स्वाभाविक माधुर्य और विश्वजनीनता आ पाती है। यथा—

> "जो सत्य, शिव, शुभ सुन्दर, शुचितर होता है
> दुनिया रहती है उसके प्रति अन्धी अजान,
> वह उसे देखती, उसके प्रति नतशिर होती
> जब कोई कवि करता उसको आँखें प्रदान।"[2]

इस उक्ति से साधारणतः कवि की अहम्मन्यता का बोध हो सकता है, किन्तु आज के संघर्षप्रधान व्यवसायात्मक युग में वस्तुस्थिति लगभग यही है। कवि को लोक के लिए पद-प्रदर्शक मानना केवल भावुकता की देन नहीं है।

काव्य की आत्मा—'बचन' की काव्य-प्रेरणा मुख्य रूप से फारसी के प्रसिद्ध रसवादी कवि उमर खैयाम की रचनाओं पर आधृत रही है। उन्होंने शुष्क सत्य की अपेक्षा रस-सृष्टि में मधुर कल्पना को अधिक महत्त्व दिया है—"शुद्ध ज्ञानी चाहिए तो, चाहिए रस-सिद्ध कवि भी।"[3] काव्य में मधुरता, उज्ज्वलता और आनन्द के सन्निवेश के लिए रस की साधना कवि-मात्र से अपेक्षित है। रस-सम्पदा के सम्पर्क में आकर साधारण शब्द प्राणवान हो उठते हैं। आलोच्य कवि ने अर्थ-गरिमा से रहित पदावली को निस्सार मानकर महर्षि वाल्मीकि से वर-रूप में रस-रहस्य

[1] देखिए 'आरती और अंगारे', भूमिका, पृ० ११
[2] देखिए 'धार के इधर उधर', पृ० ६६
[3] सोपान, भूमिका, पृ० ८

[1] मधुकलश, पृ० ३६
[2] खादी के फूल, पृ० १५०
[3] मधुकलश, पृ० ६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने की इच्छा की है—

"रस-ग्रर्थ रहित ध्वनियों में मैं क्या गाऊँ,
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।।"[1]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि रस की साधना कवि का मुख्य कर्त्तव्य-कर्म है। यह परम्परा-प्राप्त काव्य-सिद्धान्त है, किन्तु रस के प्रति अटूट आस्था रखना किसी भी कवि के लिए गौरव की बात है।

काव्य-हेतु—'बच्चन' ने प्रतिभा ग्रौर व्युत्पत्ति के अतिरिक्त प्रणय से प्राप्त प्रेरणा को भी काव्य-रचना का प्रेरक स्रोत मानकर मौलिक स्थापना की है। उन्होंने प्रतिभा को कव्य-रचना का मूल हेतु माना है। यह प्रेरणा कवि के मन में स्वतः उद्भूत होती है ग्रौर इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती—"कभी-कभी कविता लिखने के लिए हृदय में आवेग उठता है ग्रौर वह रोका नहीं जा सकता।"[2] इस उक्ति में 'कभी-कभी' के प्रयोग से यह सांकेतिक है कि काव्य की रचना प्रयास से नहीं हो सकती। उन्होंने प्रयास को काव्य का दूषण माना है। इससे कविता की स्वाभाविकता को हानि पहुँचती है। यथा—

"उस कविता को क्या देकर के
नाम पुकारूँ कहो, कहो,
जिसके अन्दर हो प्रयास,
खग-कल-स्वर स्वतः प्रवाह न हो।[3]

प्रस्तुत कवि ने प्रतिभा के अतिरिक्त व्युत्पत्ति को भी काव्य का साधन माना है। उनके मत से काव्य-रचना के लिए अन्य कवियों की रचनाग्रों का अध्ययन प्रेरक तत्व का कार्य करता है। यथा—"पता नहीं, अन्य लेखकों का अनुभव है या नहीं, मेरा तो है कि कभी-कभी हम दूसरे कवि की रचना पढ़कर भी कविता लिखने को प्रेरित होते हैं। ऐसी प्रेरणाग्रों से कविता लिखना अपराध नहीं है।"[4] यह मत स्पष्टतः मनोविज्ञान पर आधृत है ग्रौर इससे मानव की अनुकरणप्रियता पर प्रकाश पड़ता है। आचार्य भामह ने भी यह स्थापना की थी कि "अन्य व्यक्तियों के निबन्धों का अध्ययन करके (कवि को) काव्य-रचना करनी चाहिए—विलोक्या ऽन्यनिबन्धश्च कार्यः क्रियादरः।"[1]

बच्चन ने अध्ययन की भाँति प्रकृति-अवलोकन को काव्य-रचना में सहायक मानकर भी व्युत्पत्ति को महत्व दिया है। प्रकृति के निसर्ग सौन्दर्य से कवि के मन में गीत-रचना की प्रेरणा स्वतः उदित हो जाती है : "मूक मेरी लेखनी को आज फिर प्रेरे हुए बादल।"[2] इसी प्रकार एक अन्य कविता में ग्रीष्म बयार को सम्बोधित करते हुए उन्होंने उससे काव्य-प्रेरणा की प्राप्ति को सम्भव माना है : "कवि की उर-कलिका खिल जाए, हरहरा उठो तुम एक बार।"[3] उपर्युक्त काव्य-साधनों के अतिरिक्त उन्होंने नारी को कविता का मूर्त रूप मानकर लौकिक प्रणय-सम्बन्ध की पवित्रता को भी काव्य-रचना का प्रेरक स्रोत माना है : "काम न तेरा कविता करना, किन्तु भावना मुझ में भरना।"[4] उर्दू के कवि नासिख ने इसी धारणा के फलस्वरूप कहा है : "इश्क को दिल में जगह दे नासिख, इल्म से शायरी नहीं आती।" हिन्दी के आलोचकों में लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' का मत भी यही है—"प्रेम काव्य की प्रेरणा का एक मौलिक आधार है।"[5] इन उक्तियों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि 'बच्चन' की धारणा मौलिक नहीं है, तथापि उनकी महत्ता इस बात में है कि उन्होंने अपने मत को बिना किसी संकोच के व्यक्त किया है।

काव्य-प्रयोजन—'बच्चन ने काव्य के प्रयोजनों का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया है। उन्होंने आनन्द को काव्य का मूल प्रयोजन माना है। काव्य से रचयिता ग्रौर पाठक, दोनों को आनन्द प्राप्त होता है, विशेषतः कवि अपने विकल हृदय को शान्ति ग्रौर उल्लास

[1] आरती ग्रौर ग्रंगारे, पृ० ३२
[2] हलाहल, कृति-परिचय, पृ० १५
[3] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृष्ठ ४६।
[4] वनफूल, कन्हैयालाल सेठिया, भूमिका से उद्धृत

[1] काव्यालंकार १।१०।
[2] प्रणय-पत्रिका, पृ० ५३।
[3] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृ० ६३।
[4] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग १, पृष्ठ ७८।
[5] जीवन के तत्त्व ग्रौर काव्य के सिद्धान्त, पृ. १२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान करने के लिए काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है—"कवि अपनी विह्वल वाणी से, अपना व्याकुल मन बहलाता है।"[1] कवि की वाणी में इस गुण के प्रादुर्भाव के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति अपेक्षित है। अनुभव एक का होकर अनेक का हो जाता है, अतः उससे प्राप्त होनेवाला सुख भी कवि के मन से सहृदय मात्र तक प्रसरित रहता है।[2] काव्य की महत्ता इसी में है कि उसके भाव-विभव पर मुग्ध होकर जनता उसके अध्ययन से लाभ करे—"किसी भी रचना की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब जनता उसे खरीदे, पढ़े और उसका रस ले।"[3] किन्तु, उन्होंने साधारण मनोरंजनात्मक कविताओं में रुचि रखने वालों को अपरिष्कृत अथवा अस्वस्थ प्रकृति के पाठक माना है। कविता का स्वरूप आनन्दमय अवश्य है, किन्तु यह आनन्द स्थूल मनोरंजन का वाची नहीं है। इसकी प्राप्ति के लिए अध्येता को सुरुचिपूर्ण गहन अध्ययन का आश्रय लेना चाहिए। यथा—"जिसके लिए कवि अथवा लेखक ने साधना की है उसका आनन्द लेने के लिए पाठक को भी साधना करनी पड़ती है। कविता से सहज ही आनन्द प्राप्त करने की माँग बढ़ती जा रही—बस, कविता तो ऐसी हो कि तीर की तरह दिल पर चोट करे। यह अस्वस्थ प्रवृत्ति है।"[4]

काव्य के तत्त्व—'बच्चन' ने अनुभूति को काव्य का आधारभूत तत्त्व माना है, किन्तु वे कल्पना के महत्त्व के प्रति उदासीन नहीं हैं। वे काव्य को मानव-जीवन की अभिव्यक्ति मानते हैं। "मैंने जीवन देखा- जीवन का गान किया' और 'गीत वही बाँटेगा सबको, जो दुनिया की पीर सके ले'[5] जैसी काव्य-पंक्तियाँ इसकी प्रत्यायक हैं। कविता में मार्मिकता के समावेश के लिए उसमें अनुभूति की व्याप्ति अत्यन्त आवश्यक है।

[1] एकान्त संगीत, पृ. ७३
[2] देखिए 'जनगीता', मंगलाचरण, पृ. 'ङ'
[3] मधुशाला, ग्यारहवें संस्करण की भूमिका, पृ. ५
[4] पल्लविनी, एक दृष्टिकोण, पृ. ३७
[5] आरती और अंगारे, पृष्ठ २२५ तथा २२४

आलोच्य कवि ने साहित्यकार का अनुभूति-समृद्ध रहकर सृष्टि में समरसता का प्रसार करने का सन्देश दिया है और उसकी सहज संवेदनशीलता की इन शब्दों में चर्चा की है। "जगजीवन के सुख-दुःखों से, भींग रहा है कवि का तन-मन।"[1] कवि की यह सहृदयता ही काव्य में सजीवता, स्पष्टता, प्रेमभाव और माधुर्य की सृष्टि करती है। इसीलिए 'बच्चन' ने रागमयी कविता, जिसमें कल्पना के समावेश के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, में भी जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त स्थान माना है। यथा :—

"राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन,
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।"[2]

काव्य में जीवन के उच्चतर मूल्यों का निर्देश अनुभूति से ही सम्भव हो पाता है। अनुभूति प्रधान रचना में जीवन के रस (और विष) की मधुर अभिव्यक्ति रहती है और पाठक उससे अनिवार्यतः प्रभाव ग्रहण करता है। 'बच्चन' ने इस बिषय का इस प्रकार प्रतिपादन किया है :—

"जीवन-अनुभव-स्वाद न कटु,यदि मेरी जिह्वा पर जाता,
कौन मधुर मादकता मेरे गीतों के अन्दर पाता।"[3]

'बच्चन' के काव्य में अनुभूति की भाँति कल्पना का आश्रय सवंत्र ग्रहण किया गया है, तथापि उन्होंने उसे मुख्य रूप से अपनी प्रारम्भिक कृतियों में स्थान दिया है। उन्होंने एक रुबाई में रूपक के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि कवि रूपी साकी का कविता रूपी प्याला केवल कल्पना रूपी शीला से पूरित हो सकता है। इस हाला को भावना रूपी लता से सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।[4] 'कल्पना-विश्व' शीर्षक कविता में यह आग्रह अपनी चरम-सीमा पर है; "विश्व कल्पना का यह लखकर सत्य विश्व भूले।"[5] इस अवतरण में कल्पना की अनुभूति की अपेक्षा प्रमुख

[1] आकुल अन्तर, पृष्ठ ९२
[2] मधुकलश, पृष्ठ ५४
[3] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृष्ठ ४४
[4] देखिए 'मधुशाला', चतुर्थ रुबाई।
[5] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृष्ठ ७८-७९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान दिया गया है, किन्तु उनके काव्य में वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। उनकी रचनाओं में केवल कल्पना का विलास नहीं है, वे सत्य के आलोक से सहज मुखरित हैं। उनके काव्य में जीवन की अनुभूतियों का जीवन्त चित्रण इसका प्रमाण है। अतः उन्होंने कल्पना के साहचर्य में अनुभूति की प्रधानता का सिद्धान्त रूप में उल्लेख किया होता तो अधिक उचित होता।

बच्चन ने वेदनानुभूतियों की अभिव्यक्ति को वैयक्तिक कविता की मुख्य प्रवृत्ति माना है। उनकी निम्न लिखित काव्य-पंक्तियाँ इसी तथ्य की प्रत्यायक हैं—

(अ) मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते छन्द बनाना।"[१]

(आ) "गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे।"[२]

इन उक्तियों से स्पष्ट है कि वेदना की अभिव्यक्ति अथवा करुण रस की उद्भावना काव्य के लिए अपरिहार्य है। इस मन्तव्य का दुःखवादी काव्य की छाया में तो समर्थन किया जा सकता है, किन्तु प्रगीत काव्य के स्वरूप की दृष्टि से यह सर्वांशतः सत्य नहीं है, क्योंकि गीत में आनन्दवादी भावना का समावेश भी सहज-सिद्ध है। यह वेदना या तो भौतिक जगत् के प्रति कवि की प्रतिक्रियाओं के रूप में ऐकान्तिक होगी अथवा इसका रूप लोकसम्बद्ध रहेगा। 'माली' शीर्षक कविता में 'कविता उपवन के माली' (कवि) की ऐकान्तिक प्रवृत्ति को इन शब्दों में प्रकट किया गया है : "तुझ से इस जग से क्या नाता, तूने अपनी सृष्टि बना ली।"[३] ऐकान्तिकता की भाँति लोकसम्बद्धता भी वैयक्तिक कविता में स्वाभाविक है। यद्यपि काव्य में युगाभिव्यक्ति सर्वथा अनिवार्य नहीं है, तथापि यह निश्चित है कि युगीन विचारधारा के आलोक में काव्य-रचना करने से कवि के व्यक्तित्व में सबलता आती है। जब कवि अपनी व्यक्ति-चेतना के आलोक में अनुभूति प्राप्त करके उसे काव्य में बिम्बित करता है तब उसमें उसका व्यक्तित्व भी अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य प्रतिफलित हो जाता है। वैयक्तिक कविता के इसी गुण के कारण पाठक को उसका अध्ययन करते समय कवि की अनुभूति, चिन्तन-शक्ति एवं कल्पना के परीक्षण में सुविधा रहती है। इस स्थान पर यह शंका उठती है कि यदि वैयक्तिक कविता में केवल कवि की अनुभूतियों का ही चित्रण रहता है तो संसार के लिए उसका क्या उपयोग है? बच्चन ने इस शंका के निवारणार्थ यह मत व्यक्त किया है कि जब अन्य व्यक्ति कवि की भाँति सांसारिक अनुभव प्राप्त करते हैं, तब उनकी अनुभूति के स्तर में तो अन्तर हो सकता है, किन्तु अनुभव की प्रकृति में मौलिक भेद नहीं होता—फलस्वरूप कवि की वैयक्तिक अनुभूति भी साधारणीकृत होकर मानव-मात्र को प्रभावित कर सकती है। 'अभावों की रागिनी' शीर्षक कविता में इस मत को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

एक ऐसा गीत गाया जो सदा जाता अकेले,
एक ऐसा गीत जिसको सृष्टि सारी गा रही है।"[१]

काव्य-शिल्प : छन्द—हरिवंशराय 'बच्चन' ने काव्य-शिल्प के अन्तर्गत केवल छन्द की समीक्षा की है। उन्होंने भावानुकूल छन्द-योजना को काव्य का स्वाभाविक गुण माना है। इस सम्बन्ध में उनका वक्तव्य इस प्रकार है—"कविता में भाव, भाषा और छन्द का अटूट सम्बन्ध है। कोई छन्द लिया जाये तो उससे सम्बद्ध भाव और उसमें ढली भाषा सहज ही आ जाती है। किसी विशेष प्रकार के भाव किन्हीं विशेष प्रकार की भाषा और छन्द की अवतारणा करते हैं।"[२] यद्यपि 'बच्चन' के पूर्ववर्ती कवियों ने भी भावानुसार छन्द-विधान की चर्चा की थी, किन्तु छन्द को भावना और भाषा से अविच्छिन्न रूप में सम्बद्ध मानने की यह चर्चा अपेक्षाकृत नवीन है। इसके अतिरिक्त 'बच्चन' ने मुक्त छन्द और कतिपय विदेशी छन्दों (सॉनेट, उर्दू-छन्द और रुबाई) के स्वरूप की

[१] मधुबाला, पृष्ठ १००।
[२] मधुकलश, पृष्ठ ४१।
[३] प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृष्ठ १२७।

[१] सतरंगिनी, पृ० ६१
[२] मेरा रूप तुम्हारा दर्पण (बालस्वरूप राही), भूमिका, पृ० ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजग समीक्षा की है। उनकी मान्यताएँ रूढ़िगत न होकर विकासशील हैं अर्थात् उन्होंने छन्द के क्षेत्र में नवीनताओं का स्वागत किया है। उनके शब्दों में—"यदि काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है तो इसमें तुकान्त छन्द, अतुकान्त छन्द, और मुक्त छन्द सब की सार्थकता है।"[1] उन्होंने मुक्त छन्द के स्वरूप-निर्धारण में पर्याप्त सहृदयता का परिचय दिया है। मात्रा, गति और तुक सम्बन्धी परम्पराओं के प्रति आग्रह न रखने के कारण यह छन्द कवि की स्वतन्त्रचेत्ता मनोवृत्ति का परिचायक है—"मुक्त छन्द (वह है) जिसकी पंक्तियों में मात्रा और लय की समता रूढ़ि न बन गई हो और न तुक पर ही आग्रह हो।"[2] इस उद्धरण में किसी प्रकार की मौलिकता नहीं है, किन्तु इसके साथ ही 'बच्चन' की कुछ अन्य मान्यताएँ भी द्रष्टव्य हैं—

"मुक्त छन्द के द्वारा गद्य और काव्य की भाषा का विपर्यय भी घटाया जा सकता है। अगर मुक्त-छन्द को यह समझकर अपनाया जाय कि जीवन की कुछ-कुछ क्यों, बहुत सी ऐसी समस्याएँ हैं जो केवल उसके द्वारा ही मुखरित की जा सकती हैं तो उसके विकास और विविधता की सम्भावनाएँ असीमित हैं। मुक्त छन्द में लिखने वालों का एक और भ्रम मैं दूर करना चाहूँगा कि इस प्रकार की कविता अकेले में बैठकर आँखों से पढ़ने के लिए है। गम्भीर से गम्भीर कविता को स्वर से तलाक दिला देने की बात मेरे मन में नहीं बैठती।"[3]

उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट है कि मुक्त काव्य में लयात्मकता, गद्य की भाषा जैसे सरल-स्वाभाविकता और जीवन की अनुभूतियों की प्रेरणा अपेक्षित है। प्रगीतिकार होने के नाते संगीत-गति के प्रति उनकी रुचि स्वाभाविक है। अनुभूति को काव्य का मूल तत्त्व मानने के कारण उन्होंने मुक्त छन्द में रचित काव्य में भी जीवन की समस्याओं की अभिव्यक्ति को देखना चाहा है। इसी प्रकार अनुभूतिप्रधान रचनाओं में भाषा की सहजता की सार्थकता भी स्वयं सिद्ध है। मुक्त छन्द के अन्य विवेचकों में से 'निराला' ने उसमें लय-तत्त्व के महत्त्व की चर्चा की है, किन्तु शेष दोनों विशेषताओं का उल्लेख करने का श्रेय 'बच्चन' को है। मुक्त छन्द की भाषा को गद्य की भाषा के निकट लाने का प्रयास साधारणतः चिन्तनीय हो सकता है, किन्तु आलोच्य कवि ने उसमें लय को प्रधान मानकर कवित्व-गुण का ह्रास नहीं होने दिया है। मुक्त छन्द को सफल और जनप्रिय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें मानव-जीवन की सहज लय को उपेक्षा न की जाए।

[1] बुद्ध और नाचघर, भूमिका, पृ० १०
[2] बुद्ध और नाचघर, भूमिका, पृ० ६
[3] वही, पृ० १६-२०

मुक्त छन्द के उपरान्त 'बच्चन' का विवेच्य विषय है—काव्य में विदेशी छन्दों का प्रयोग। बालकृष्ण राव की कृति 'रात बीती' की समीक्षा करते हुए उन्होंने अँग्रेजी के सॉनेट छन्द की इन शब्दों में चर्चा की है। 'सॉनेट की काया में केवल एक ही भाव या विचार समाहित किया जा सकता है।"[1] सिद्धान्त विवेचन के लिए अपेक्षित व्यापकता के न होने पर भी यह कथन इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस दिशा में बहुत कम कवियों ने विचार किया है। इस के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी-कविता में उर्दू-छन्दों के प्रयोग का भी विवेचन किया है। उर्दू-छन्दों के प्रयोग का विरोध उन्हें अभीष्ट नहीं है, किन्तु वे उनके अन्धानुकरण से असहमत हैं। 'उर्दू के छन्दों को स्वीकार करने से इस बात का खतरा है कि लेखक विवशता से उर्दू के शब्द-भावों की धारा में बह जाय। यह हमें स्पष्टता से समझ लेना चाहिए कि हिन्दी का जन्म उसी चीज को दुहराने के लिए नहीं हुआ जिसे उर्दू पा चुकी है।'[2] स्पष्टतः यहाँ इसका तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि किसी अन्य भाषा के छन्दों का प्रयोग करते समय कवि को अपनी

[1] सम्मेलन-पत्रिका, भाग ४१, संख्या ४, संवत् २०१२ पृष्ठ ८५
[2] मेरा रूप तुम्हारा दर्पण (बालस्वरूप 'राही'), भूमिका, पृष्ठ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के गुणों का विस्मरण न कर देना चाहिए। यह कथन कवि के सन्तुलित विवेक का परिचायक है। वे अन्य भाषाओं के छन्दों के प्रति असहिष्णु नहीं हैं, किन्तु उदारता की भी एक सीमा होती है।

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त उन्होंने फारसी के रुबाई छन्द की भी समीक्षा की है। वस्तुत: हिन्दी-कविता में रुबाई को प्रचलित करने, और उसके सैद्धान्तिक रूप को स्पष्ट करने, का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने रुबाई के बाह्य रूप का विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि 'रुबाई का शाब्दिक अर्थ है चौपाई, चौपदा या चतुष्पदी।'[1] रुबाई में तुक-निर्वाह के विषय में उन्होंने यह मत व्यक्त किया है। 'रुबाई एक विशेष प्रकार के छन्द का नाम है जिसमें पहली पंक्ति का तुक दूसरी पंक्ति के तुक से मिलता है, तीसरी पंक्ति का तुक विभिन्न होता है और मन में चौथे तुक की प्रत्याशा जगाता है जो फिर पहली और दूसरी पंक्ति का होता है'[2] यह मत फारसी के रुबाई छन्द को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया गया है। डॉ० अली असगर हिकमत के अनुसार सभी रुबाइयों का छन्द एक ही है और उनकी प्रथम द्वितीय तथा चतुर्थ अर्धालियाँ परस्पर तुकान्त होती हैं।'[3] रुबाई के बहिरंग की समीक्षा के अतिरिक्त 'बच्चन' ने उसके भाव पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। उनके अनुसार उसमें मूलत: मानवीय वेदनाओं का चित्रण रहता है--आशा, निराशा और अभावों का मार्मिक उल्लेख ही उसकी विशेषता है। यथा: 'रुबाइयात मनुष्य की जीवन के प्रति आसक्ति और जीवन की मनुष्य के प्रति उपेक्षा का गीत है।--यह गीत जीवन-मायाविनी के प्रति मानव का एकांतिक प्रणय-निवेदन है--रुबाइयात सुख का नहीं दुख का गीत है। सन्तोष का गान है।'[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि रुबाई में किसी मार्मिक अनुभूति का संगीतमय कथन रहता है और यह छन्द कुछ विशेष भावों के लिए रूढ़ हो गया है। तथापि रुबाई में केवल इतने ही विषयों के वर्णन की सीमा नहीं होती, इनके अतिरिक्त नैतिक आदर्शों का कथन भी उसकी अपनी विशेषता है।[2] नैतिकता के अतिरिक्त दार्शनिक मान्यताओं और दैनंदिन समस्याओं का स्पष्टीकरण भी रुबाई का स्वाभाविक गुण है।[3] 'बच्चन' द्वारा इन सभी विशेषताओं की चर्चा न करने का कारण स्पष्ट है यह विदेशी छन्द है, अत: इसके विषय में कवि के अपने अनुभव स्वभावत: सीमित होंगे। तथापि उनका महत्व इस बात में है कि हिन्दी में इस छन्द का विवेचन करने वाले वे प्रथम कवि हैं।

—३ सी/२५, रोहतक रोड, नई दिल्ली-५

[1] मधुशाला, पृष्ठ २५

[2] खैयाम का जाम (कमला चौधरी), भूमिका, पृ० ३

[3] फारसी साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ १५२

[1] खैयाम की मधुशाला, भूमिका, पृष्ठ १३-१४

[2] देखिए 'समीक्षा-शास्त्र', सीताराम चतुर्वेदी, पृ.७८२

[3] देखिए 'फारसी साहित्य की रूपरेखा', पृ० १५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मधु-परम्परा और बच्चन

• • •

श्री भगवतीलाल राजपुरोहित

मधुशाला, मधुबाला, एवं मधुकलश के रचयिता बच्चन मधु की माधुरी से इस प्रकार सिक्त लगते हैं जैसे उनका जीवन ही मधूक और माधविकाओं की संगति में सार्थक हुआ। उनके अनुसार न केवल स्वयं अपितु कवि जगत् ही पानभूमि का प्रणेता है। भावुकता अंगूर लता है जिससे कल्पना की आसवधारा प्रवाहित होती है, जिसे कविता के मधुभाजन में भर कर मधुदाता कवि असंख्य पाठक मधुपों को पान कराता है। यह कवि का नित्य नियम है, शाश्वत कर्तव्य है। जीवन की मधुता में यह सारी जगती ही मधुशाला है। बाहर भीतर सर्वत्र मधु है, मधुशाला है। परन्तु इसका इतिहास कहाँ से कैसे प्रारम्भ हुआ?

कवियों की कल्पना को मदमाती मधुमती भावना उतनी ही चिरन्तन है जितनी वैदिक सभ्यता। उस समय का मानव सुरा के पूर्वज सोम को पीकर इतना मनोरम लगा कि ऋचाओं के द्रष्टा कवि या ऋषि ने उसे 'सौम्य' अभिधान दिया। देवता का नैवेद्य सोम और पुरोहित का प्रसाद सोम। मुञ्जवत पर्वत पर उगने वाली सोमलता के आसव को प्राप्त करना आर्यों का स्वभाव रहा। चाहे वह कितना ही दूर हो, कितनी ही कठिनाइयों से प्राप्त हो, परन्तु वे प्राप्त करके ही सन्तोष की साँस लेते थे। सोम की सुमधुरता और आह्लादकत्व को आर्यों ने चन्द्रमा में पाया और उसे भी अभिधान दिया—सोम। यही सोम अमृत है। इसीलिये चन्द्रमा अमृतधाम और सुधाकर कहलाया। यही सोम देवों का पेय है, जो देवभूमि पर प्राप्य है। जो परवर्ती युग में दुर्लभ होने से अदेव अथवा असुर प्राप्त न कर सके। वह उनके अधिकार भूमि में न रहा। प्राप्त करने की अनधिकृत चेष्टा भी करें तो विष्णु का चक्र संरक्षक है। प्राप्ता का धड़ गर्दन से अलग कर राहु व केतु बनाने को आतुर रहता है। क्योंकि धीरे-धीरे यह सोमलता दुर्लभ होने लगी। उपज कम हो गई अथवा उसकी उत्पादन भूमि औरों के अधिकार में चली गई जहां से वह अप्राप्य थी। लोगों ने सोम के अनुकरण पर अन्य लताओं, फूलों, फलों से आसव निकालना प्रारम्भ किया। सोम जैसा तो नहीं, पर मन समझाने को वह ठीक था। उसे पीकर भी सोम्य-स्वरूप प्राप्त हो गया। उसी का प्रचलन बढ़ा, इतना कि मादकता का वही प्रमाण बन बैठा और जिसे मधु अभिधान मिला, आर्यों के प्रिय आस्वाद्य 'शहद' के अभिधान के अनुकरण पर। मधुरता दोनों में है, एक के आस्वादन में, अन्य के प्रभाव में।

'मधु' शब्द की निरुक्ति 'मन ज्ञाने' धातु से 'मन्यत एतं' की गयी है। इस शब्द के अर्थ भी अनेक हैं। जैसे—पुष्परस, क्षौद्र, मद्य, जल, मधुद्रुम, वसन्त, दैत्यनाम, चैत्र, जीवशोक, मधुर, दूध, ताजा दूध आदि। पुष्परस (मधु) के पान से द्विरेफ 'मधुप' कहलाया और साकी मधु पायी।

वैदिकर्षि 'मधु' से चिरपरिचित थे। उन्हें माधुर्य कल्पना परम प्रिय थी। उनकी माध्वी दृष्टि-सृष्टि के कण-कण में मधुरता का दर्शन कराती है। उषा की वेला और रात का समय, बहती नदियाँ और चलती हवायें, धरती की मिट्टी और पिता आसमान मधुपूरित हैं। ये सब मिलकर वनस्पतियों को, वातावरण को मधुपूर्ण बनावें, वासन्ती बनावें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुवातारितायते, मधुः क्षरन्ति सिन्धवः, माध्वीर्नः सन्तोषधायः। मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिवं रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता। ऋग्वेद

उपनिषदों ने आनन्द की परमावस्था को मधुमती भूमिका कहा। ये सारे वर्णन मधु की पवित्र भूमिका से मण्डित हैं; परन्तु कालिदास व अश्वघोष में वह पावन मधु, मद की भूमिका पर अवतीर्ण हो जाता है। अब मधु पान भूमियों में प्राप्य है, विलासिता का साधन है। शाकुन्तल के धीवर एवं श्याल की मैत्री की साक्षी देती है पानभूमि। मालविकाग्निमित्र की इरावती की मदमाती काया की कान्ति कुछ और ही है—मदघूर्णित नयन 'वे नैना औरे कछु'। अग्निवर्ण के प्रासादों में घ्राणकान्त पानभूमियों की रचना होती थी, जहाँ मद का अतिरेक हुआ करता था। यों तो कालिदास के साहित्य में मधु व मधुप के मधुर प्रसंगों की कमी नहीं। चतुर्माणी में भी मद्यचषक, मद्यभाजन, मधुभाजन, पुराणेमधु और मदिरालसा के वर्णनों का अतिरेक है। परन्तु बाद में चलकर मदिरा ने धर्म में भी स्थान पा लिया। महायान के साधना-साधनों में मदिरा का अपरिहेय स्थान है। कौल धर्म का भी यह एक खास आयाम है।

रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
भीक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या
कौलो धर्मा कस्य नैषः प्रियः स्यात्॥

राजशेखर : कर्पूरमञ्जरी

(यह कौल धर्म किसे प्रिय नहीं! जिसमें विधवाएँ एवं हीन स्त्रियाँ धर्मपत्नियाँ होती हैं, मद्य का पान होता है और मांस खाया जाता है। भीख का भोजन और सोने को चर्मखण्ड!) पञ्चमकारों में मद्य की गणना भी की जाती है। माघ ने मधुऋतु में मधु का मनोरम प्रयोग किया—

मधुरया मधुबोधित माधवी मधुसमृद्धि समेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मद ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥

साथ ही अन्य अनेक स्थलों पर माघ ने, श्रीहर्ष ने एवं भोज (शृङ्गार मञ्जरी कथा) ने मदभरे नयनों का, हावों और भावों का मनोरम वर्णन किया है। मधु की मधुरता निरन्तर विकीर्ण होती रही। कृष्ण-काव्यों में मधुरता और मधुरभावना अपनी चरम सीमा छूने लगी। परन्तु उपर्युक्त मधुवर्णन का उद्देश्य केवल मादकता का वर्णन करना कदापि नहीं रहा। जिस कला से परमानन्द की प्राप्ति हो, वही परम है। वह कला हेय है जिसका निर्माण केवल कला के लिए अथवा कामोद्दीपन या विलासिता के लिए हुआ हो।

"लीयते परमानन्दे सा कला हि परा कला।"

कविवर बच्चन की मधुभावना का उत्स भारतीय परम्परा कदापि न रहा। उनकी मधुभावना का उत्स है—उमर खैयाम की मदभरी कल्पना। जिनका अनुवाद उन्होंने 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' नाम से किया तथा जिसके कृतज्ञ हुए—मधुशाला की भूमिका में। यद्यपि उमर खैयाम की अति विलासिता एवं काम भरी भावनाओं का बच्चन के काव्यों में अभाव पाया जाता है। क्योंकि प्रभावित चाहे किसी से भी हों, अन्ततः कल्पना का वातावरण भारतीय है। यही कारण है कि कवि मधुशाला व अन्य कृतियों में मांसलता से ऊपर उठकर मादकता से मुँह मोड़कर, स्थान-स्थान पर, विश्वव्यापी चिरन्तन सत्य पर अँगुली धरता चलता है तथा अनन्त परमसत्ता को ही मधुशाला स्वीकार कर लेता है।

मैं मधुशाला के अन्दर
या मेरे अन्दर मधुशाला।

उपर्युक्त ऋग्वेद की माध्वी भावना साक्ष हो जाती है, यद्यपि बच्चन में उस सहजता और पावनता का लेश मात्र ही है। तथापि उनका अन्तस्थल मद्य की हेय उपयोगिता को कभी स्वीकार नहीं करता। यही कारण है कि 'बुद्ध और नाचघर' कविता का प्रारम्भ इन पावन पंक्तियों से किया जाता है—

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छमि

(शेष पृष्ठ २२४ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राशा ग्रौर प्रकाश के इन्द्रधनुषी गीतकार बच्चन ग्रौर 'सतरंगिनी'

डा० विजयेन्द्र स्नातक

'सतरंगिनी' कविवर बच्चन के सन् १९४२ से ४४ के मध्य लिखे गये गीतों का संकलन है। जिन पाठकों ने बच्चन की रचनाग्रों को उनके कालक्रम में पढ़ा है उन्हें विदित है कि बच्चन ने मानव को केन्द्र-बिन्दु बनाकर उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद, संघर्ष-विमर्ष एवं उत्थान-पतन को सहजानुभूति के धरातल पर ग्रंकित करने की चेष्टा की है। प्रारम्भ में बच्चन को वैयक्तिक ग्रनुभूति का कवि ठहराया गया था ग्रौर कुछ ग्रालोचकों का ग्राक्षेप था कि बच्चन व्यक्तिगत सुख-दुःखानुभूति को ही काव्य का विषय बनाते हैं इसलिए उनके गीतों की सम्प्रेषणीयता की एक सीमा है। यह ठीक है कि बच्चन ने ग्रपने प्रारम्भिक गीतों में ग्रपने चारों ग्रोर फैले हुए जगत् से ही विषयों को चुना था ग्रौर उन्हीं को प्रतीक एवं नूतन ग्रप्रस्तुत विधान से उपन्यस्त किया था। लेकिन सभी कवि ग्रपने परिवेश में डूब कर ही व्यापक जगत् में फैलते हैं—यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है, इसे काव्य-रचना की प्रतिज्ञा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। बच्चन ने यदि इसे ग्रहण किया तो इसमें कोई संकीर्ण या सीमित दृष्टि नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की ग्रपनी सीमाएँ होती हैं—ग्रौर उन सीमाग्रों की भी लघु सीमाएँ होती हैं, दृष्टि का प्रसार सीमाग्रों के भीतर से होकर ही ग्रसीम तक फैलता है, इसी में उसकी सार्थकता है।

'सतरंगिनी' की रचना के मूल में भी कवि की ग्रपनी जीवनानुभूति प्रेरक रही है। ऐसी जीवनानुभूति जो विशिष्ट होते हुए भी मानव मात्र की ग्रनुभूति है या हो सकती है। बच्चन का निजी व्यक्तित्व जिस विशिष्ट ग्रनुभूति से ग्रान्दोलित हुग्रा है उस ग्रनुभूति को मानवीय स्तर पर बच्चन का प्रत्येक पाठक ग्रनुभव करता है। मैं यदि यह कहूँ कि उस ग्रनुभूति के काव्यात्मक रूप को भोगता, सहता ग्रौर हर्ष-पुलक से उद्वेलित होता है तो मेरे कथन में कोई ग्रसंगति न होगी। बच्चन के पाठकों की विशाल संख्या ग्रौर बच्चन की लोकप्रियता का रहस्य यह व्यापक ग्रनुभूति-स्पर्श ही है, ग्रौर वही उनके काव्य की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाता भी है। ग्रानन्द, उमंग, उल्लास ग्रौर मस्ती को ग्रपने गीतों में व्यक्त करने वाला कवि पाठक के मर्म-स्थल के उस बिन्दु को यदि स्पर्श नहीं करता जिससे पाठक के ग्रन्तःकरण के तार झंकृत होते हैं तो वह कवि सम्प्रेषणीयता के स्तर पर ग्रसफल ही माना जायगा। बच्चन ने इस स्तर पर जो सफलता प्राप्त की है वह ग्रनेक सहकर्मियों के लिए ईर्ष्या का विषय रही है।

'सतरंगिनी' में सात रंग हैं ग्रौर प्रत्येक रंग में सात गीत हैं। प्रारम्भ में एक प्रवेश गीत 'इन्द्रधनुष की छाया में' शीर्षक से दिया गया है। इस प्रकार पचास गीतों का यह संकलन बच्चन के जीवन की सुखद ग्रनुभूति के साथ ग्राशा, उल्लास, ग्रानन्द ग्रौर सृजन की इन्द्रधनुषी भावना को उच्छ्वासमयी शैली में व्यक्त करने वाला है। सतरंगिनी के गीत लिखने से ठीक पहले बच्चन की तीन कृतियाँ 'निशा निमन्त्रण', 'एकांत संगीत' ग्रौर 'ग्राकुल ग्रन्तर' प्रकाशित हुई थीं। इन तीनों कृतियों का स्वर वेदना, निराशा, ग्रवसाद, विषाद, ग्रन्धकार, एकाकीपन ग्रौर लक्ष्यहीनता से ग्रोतप्रोत था। मधुशाला ग्रौर मधुकलश के गायक कवि के स्वर में जीवन की दुर्दम परिस्थितियों ने एक ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैराश्य और विषाद भर दिया था कि वह अम्बर-अवनि को मस्ती के गीतों से भरने के स्थान पर कुण्ठा और तमिस्रा से भरने में लीन हो गया था। अन्तरिक्ष में आकुल-आतुर होकर पथ भूले पंछी की तरह कवि का मन भटक रहा था। आशा और अभिलाषाओं को मिटाने की बात कवि के कण्ठ स्वर में समा गई थी और वह सदा दुखी रहने का जीवन में आदर्श बनाने लगा था। लेकिन इस दुर्दम परिस्थिति को कवि ने चिरकाल के लिए स्वीकार नहीं किया। जीवन का आदर्श दुख और निराशा नहीं हो सकते, यह अनुभूति शीघ्र ही कवि-मानस से उत्पन्न हुई और उसने अनुभव किया, जीवन के लिए दुख और कुण्ठा अस्वाभाविक एवं अस्वस्थ प्रवृति हैं। आर्ष वाणी की गूँज 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' कवि के मानस में प्रतिध्वनित हुई और 'सतरंगिनी' आशा और उमंग भरे गीत कविकंठ से फूट निकले। 'निशा निमन्त्रण' और 'आकुल अन्तर' की मनःस्थिति से मुक्त होने में बच्चन की मानवोचित आस्था और निष्ठा ही सहायक हुई। बच्चन ने स्वयं लिखा है—"मुझे अंधड़ और आंधियों ने बहुत झिझोड़ा, बहुत तोड़ा था, पर वे मुझे झुका नहीं सकी थीं, मेरे अन्दर कहीं इस्पात की ऐसी शल्याका थी जो मुड़ नहीं सकती थी, इसी ने मुझे संभाला, सुस्थिर रखा, बचाया, जिलाया।"

'सतरंगिनी' की रचना के पीछे एक प्रबल ज्वार की प्रतिक्रिया रही है। वह ज्वार कवि की दुर्दान्त जीवनेच्छा का प्रतीक है। जीवन का पृष्ठ पलटने की बलवती आकांक्षा ने जीवन को जीने के लायक, जीवन को कुछ करने के लायक, जीवन को लड़ने के लायक, और जीवन को मरने के लायक बनाने में जो प्रेरणा दी वह सतरंगिनी के गीतों में समाई हुई है। आँधी-अंधड़ से उजड़े हुए नीड़ का पुनः निर्माण करने की साध इतनी तीव्र हो गई है कि वह अब प्रलय कालीन उनंचास पवन का भी सामना करने को उद्यत है। एक अजेय शक्ति उसकी प्रेरणा का स्रोत बन गई है—

'एक चिड़िया चोंच में तिनका,
लिए जो जा रही है,
वह सहज में ही पवन,
उंचास को नीचा दिखाती।

'सतरंगिनी' कविवर बच्चन के विकास क्रम का सबसे सुदृढ़ सोपान है। इस सोपान पर कवि पहुँचा है निचली दुख-दैन्य की सीढ़ियाँ चढ़ कर। थकान का अवसाद और श्रम का खेद उसे म्लान नहीं कर सका है; उसने जीवन की परिभाषा में आशा को सबसे प्रमुख स्थान दिया है—'अमरों की निशानी है आशा और उल्लास'। यों ही मन बहलाने और तराने गाने के लिए बच्चन ने सतरंगिनी के गीत नहीं लिखे हैं, इन गीतों की पृष्ठभूमि में जीवन की कठोर निर्मम अनूभूतियों का उद्दाम वेग प्रेरक रहा है। जीवन की गति ने कविता को गतिशील बनाया है, जीवन के स्फूर्त आवेग ने गीतों को प्राणवान बनाया है, जीवन की लालसा ने कविता को उच्छ्वास और उमंग से परिपूर्ण किया है। कविता जीवन से किस प्रकार परिचालित होती है यह देखना हो तो सतरंगिनी के गीतों में प्रवेश करना चाहिए। एक-एक गीत कवि के जीवन के विकास एवं गतिशील स्पन्दन का परिचायक है।

'सतरंगिनी' का पहला गीत 'इन्द्रधनुष की छाया में' एक प्रतीक गीत है जो कवि-जीवन के परिवर्तनों को चित्रित करने में पूरी तरह सफल है। कवि दुनिया का अन्धकार और प्रकाश देखने के बाद 'जगती का सम्मित आनन' देखने को लालायित है। परिवर्तनों के परिवेश में वह इतना डूब गया है कि उसे जगती का रहस्य जानने के लिए नये पृष्ठ पलटने को बाध्य होना पड़ रहा है। अपने जीवन के प्रथम चार सोपानों में उसने जो अनुभव किया उसे सामंजस्य के धरातल पर पाँचवे सोपान पर ले जाने की बाध्यता उसके सामने है:—

कातर स्वर से बुलबुल बोली,
अरुण चाल की घाटी में
प्राण पपीहे का पागल स्वर
चीर चला पत्थर पानी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस गीत में प्रयुक्त अरुणशिखा, कोकिल, बुलबुल और पपीहा कवि के सतरंगिनी से पहले के, जींवन के चार सोपानों के, प्रतीक हैं। इन्द्रधनुष की छाया में स्वर-साधन करने वाला पाँचवां विहंगम 'मयूर' कवि के सामञ्जस्यपूर्ण भावी जीवन का प्रतीक है जो सतरंगिनी के गीतों द्वारा अपने उद्देश्य के विवृत करता है। इस कविता के इन पाँचों प्रतीकों को समझ लेने पर कवि के काव्य विकास क्रम को भी हृदयंगम किया जा सकता है। इन्द्र धनुष सात रंग का होता है, सतरंगिनी भी सात रंगों से व्याप्त है। इन्द्रधनुष आच्छन्न मेघों की श्यामता को विदीर्ण कर स्वर्णिम प्रकाश का वाहन बनता है। वैसे ही तमिस्रा की काली रात को हटा कर सतरंगिनी के गीत आनन्द और उल्लास का प्रकाश विकीर्ण करते हैं। सामञ्जस्य-जीवन में आशा और निराशा का उत्थान और पतन का—हर्ष और बिषाद का—सामञ्जस्य उत्पन्न करने के लिए साधना की आवश्यकता हीती है। 'मयूर' को इन गीतों में कवि ने सामञ्जस्य की स्वर साधना करने वाला प्रतीक बनाया है। आगे मयूर के साथ मयूरी और नागिन जुड़ गई है और इस युग्म में से मयूरी का चयन करना होता है। मैं इन चारों प्रतीकों के विस्तार में नहीं जाना चाहता। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक भाव-प्रवण पाठक इनके प्रतीकार्थ को गीतों की गहराई में उतर कर पा सकेगा।

इस सन्दर्भ में एक बात की ओर मैं पाठक का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। 'सतरंगिनी' के चौथे संस्करण में 'अपने पाठकों से' बचन ने कुछ अन्तरंग बातें की हैं। वस्तुत: पाठक और कवि के बीच कविता के अतिरिक्त और कोई माध्यम उपयुक्त नहीं होता। बचन को यह तथ्य भली भाँति विदित रहा है और उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रारम्भिक संस्करणों में कभी कोई भूमिका, उपोद्घात, या उपक्रमणिका आदि नहीं जोड़ी थी। बचन ज्यों-ज्यों अपनी प्रौढ़ि पर पहुँचते गये उनके काव्य विषयों का विस्तार होने लगा। प्रारम्भिक रचनाओं में व्याप्त राग और प्रेम की प्रगाढ़ता को नये युग के पाठक ने प्रतीक से हटकर स्थूल स्तर पर देखना शुरू किया। दूसरे शब्दों में कहूँ तो बचन को पाठक ने अपनी मनसा के आरोप से आंकना शुरू हुआ। फलतः प्रतीकों के शुप्त होते ही सन्दर्भ विहीन होकर बच्चन की कविता अभिधा के स्थूल अर्थों में खोने लगी। नई पीढ़ी ने बच्चन के क्रमिक विकास को समझे विना उनके मधुशाला और मधुबाला को शराब और प्याले के पार्थिव स्तर पर उतार लिया। ऐसी स्थिति में बच्चन ने अपनी पुरानी रचनाओं में नयी भूमिकाएँ लिखना उचित समझा और इन भूमिकाओं में उन प्रतीकों तथा अप्रस्तुतों को स्पष्ट किया गया जो वस्तुतः उनके काव्य के मेरुदण्ड हैं। 'सतरंगिनी' की भूमिका में भी बच्चन ने इस प्रकार के स्पष्ट संकेत प्रस्तुत किये हैं। सभी संकेतों की आवृत्ति न करता हुआ मैं केवल मयूर और मयूरी की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। मयूरी के नृत्य का कवि ने सतरंगिनी में वर्णन किया है। इस वर्णन को कतिपय परम्परावादी समीक्षकों ने कवि-समय के विरुद्ध ठहराया और यह सिद्ध करने की नादान चेष्टा की कि बच्चन ने मयूरी को नचा कर काव्य रूढ़ि का पालन नहीं किया है! वस्तुत: मयूर और मयूरी के नृत्य के प्रतीकार्थ को न समझने और केवल शब्द के अभिधेयार्थ तक सीमित रहने वाले पाठकों ने इस प्रकार के आक्षेप लगाकर अपनी कवि समय विषयक थोथी जानकारी प्रकट की थी। बच्चन ने मयूरी को परिणीता नारी का प्रतीक बनाकर उसके नृत्य का वर्णन किया है स्वयं समर्पिता परिणीता नारी के लिए मयूरी से बढ़कर दूसरा सुन्दर प्रतीक खोज पाना कठिन है। इतना ही नहीं मयूरी के नाच पर जो रूढ़िपरक आक्षेप थे उनका भी निराकरण बच्चन ने सप्रमाण कर दिया है। किसने यह सिद्धान्त स्थिर कर दिया है कि मयूर ही नाचता है मयूरी नहीं—मयूरी के पास लम्बी पूँछ नहीं होती, लेकिन नाचना तो मगन मन से छोटी कटी पूँछ से भी हो सकता है, और होता है। मयूरी नाचती है और मयूर के सामने हर्षोन्माद से पुलकित होकर नाचते उसे मैंने अनेक बार देखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सतरंगिनी के गीतों के सम्बन्ध ने कुछ कहना चाहता हूँ। इस सकलन के एक दर्जन से अधिक गीत ऐसे हैं जो आशा और उमंग से पाठक के अन्तर को आप्लावित कर देते हैं। 'जुगनू', 'अँधेरे का दीपक', 'निर्माण', 'तुम गा दो', 'जग-विश्वास' आदि गीतों का स्वर जितना आशामय है उतना ही प्राणवान भी। इन गीतों में ओज और तेज का सर्वस्व तो है ही, साथ ही उल्लास और उत्साह की दीप्ति भी इनमें व्याप्त है। 'जुगनू' शीर्षक गीत का प्रत्येक पद अडिग विश्वास की सुदृढ़ भावना पर टिका हुआ है।

'सतरंगिनी' का कवि जीवन के प्रति पूरी जागरूकता लेकर चला है और उसका ध्यान इस तथ्य पर रहा है। मृत्यु के क्षणों में भी जीवन के स्वप्न देखने वाला व्यक्ति ही इस संसार में सफलता प्राप्त कर सकता है। पथ के रोड़े जिसे रोक नहीं पाते, मंजिल जिसके पास चली आती है ऐसी दुर्दान्त शक्ति वाला ही जीवन के यथार्थ को समझ पाता है—

"पहाड़ टूट कर गिरा,
प्रलय पयोद भी घिरा,
मनुष्य है कि देव है
कि मेरुदण्ड है तना।
अजेय तू अभी बना।"

महानाश की छाती पर नव निर्माण करने की दुर्निवार इच्छा रखकर तिमिरावृत जगत् में स्वर्ण विहान करने की साध जिसके पास है वही जीवन को सही तौर पर जीने का अधिकारी है। जीवन की पूरी परिभाषा तो आशा और उमंग में छिपी है—

"सुन यदि तूने आशा छोड़ी
तो अपनी परिभाषा छोड़ी,
तुझे मिली थी यह अमरों की केवल एक निशानी
मानी, देख न कर मनमानी।"

वस्तुत: जीवन की यथार्थ परिभाषा आशावाद में ही है—निराशा और अवसाद को जीवन का चरम सत्य नहीं माना जा सकता। जीवन-पथ में चलते समय शूलों से जूझने की ताकत बनी रहनी चाहिए। जीवन-पथ के ये शूल ही चेतना की स्फूर्ति भरने में समर्थ होते हैं। जो शूल पथ को अवरुद्ध करते हैं उन्हें दलने की ताकत भी मनुष्य में होनी चाहिए।

"किन्तु कुछ ऐसे कि रुकने
के लिए मजबूर करते,
और जो उत्साह का
देते कलेजा चीर, ऐसे
कंटकों का दल तुझे
दलना पड़ेगा ही, मुसाफिर।"

'सतरंगिनी' के गीतों का दूसरा पहलू है कवि के अन्तर में उद्भूत प्रणय का नवल ज्वार। प्रणय को चित्रित करने के लिए कवि ने नागिन और मयूरी के प्रतीक-विधान द्वारा पहले रँग में दो गीत लिखे हैं। मयूरी का मगन होकर नाचना और नागिन का फुतकार के साथ नर्तन करना भी सांकेतिक शैली से उनके स्वभाव को व्यंजित करता है। इसके बाद प्रणय-गीतों का एक लम्बा सिलसिला सतरङ्गिनी में देखने को मिलता है। दो नयन, जादू, मृगतृष्णा, प्यार और संघर्ष, नई झनकार, मुझे पुकार लो, कौन तुम हो, तुम गा दो, जयमाल, अभिसार के पल, शीर्षक गीतों में कवि की प्रणय-भावना पूरे आवेग के साथ मुखरित हुई है। इन गीतों की मादकता ने कितने ही पाठकों और श्रोताओं को विभोर किया है आज भी जब ये प्रणय-गीत बच्चन के मुख से कभी सुनने को मिलते हैं तो मन कहीं और ही पहुँच जाता है। ये गीत समीक्षा के विषय न होकर पढ़ने और गुनगुनाने के गीत हैं—इनमें लीन होकर ही इनका रसास्वाद प्राप्त किया जा सकता है। पंतजी ने बच्चन के लिए लिखा है—आये तुम वीणा पर कर में जन-मन मादन—"सचमुच जनमन-मादन" का रूप इन मोहक गीतों में और इनकी मादक गूँज में देखा जा सकता है।

छायावादोत्तर कवियों में बच्चन का अपना विशिष्ट स्थान है। बच्चन ने किसी वाद या प्रणाली का अनुसरण नहीं किया। अपने मन के आवेग संवेगों को कविता में सहज रूप से उतारने की कला उन्हें उपलब्ध हो गई थी इसलिए उनका काव्य-शिल्प भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना ही रहा। किसी परम्परा का अनुकरण उसमें नहीं मिलता। बचन ने अपने लेखन के प्रारम्भ से ही अपने पाठकों और श्रोताओं को अपने साथ रखा, उनके मनस्तोष की बचन ने चिन्ता की, लेकिन ध्यान नहीं दिया केवल अपने आलोचक पर। कौन आलोचक क्या लिखता या क्या कहता है इस पर सबसे कम ध्यान देने वाला तत्कालीन कवि बचन है। इधर पिछले १०-१५ वर्षों से तो संगठित रूप से आलोचना अभियान की योजनाएँ सर्जक साहित्यकारों द्वारा बनाई जाती हैं और प्रच्छन्न रूप से अपने साहित्य पर मित्रों से समीक्षाएँ लिखवाई जाती हैं। लेकिन बचन ने इस ओर ध्यान न देकर अपनी तटस्थता से एक मर्यादा स्थापित की है। कवि-सम्मेलनों में बचन को श्रोताओं का जमघट मिला, प्रशंसकों की भीड़ मिली, साधुवाद और सत्कार मिला। फलतः मधुशाला की लाखों प्रतियाँ बिकीं और हजारों बार शायद कवि को पिछले पेंतीस वर्ष में मधुशाला का सस्वर पाठ करना पड़ा हो। यदि कवि के पास कविता पाठ का रेकर्ड होता तो मैं समझता हूँ कि कवि-सम्मेलनों की सफलता का विवरण उससे तैयार किया जा सकता है। बचन की दो दर्जन काव्य-कृतियों पर अभी तक समर्थ समीक्षकों द्वारा प्रामाणिक समीक्षा नहीं लिखी गई है। बचन स्वयं इस योजना के सूत्रधार बने और मित्रों से 'अहो रूपं अहो ध्वनि;' की शैली में लिखने को कहें, यह उनके स्वभाव के प्रतिकूल है। आज का व्यवसायी समीक्षक न्यायतुला धारण नहीं करता, फलतः तटस्थ साहित्यकार की समीक्षा के क्षेत्र में उपेक्षा होती है। लेकिन बचन तो 'जनमन मादन' कवि हैं। उनकी कृतियों पर समीक्षा का अभाव उनके लोकप्रिय रूप को ढक नहीं सका है। जनता के सबसे निकट होने का गौरव उन्हें जिस सहज रूप से सुलभ हुआ है वह पिछले तीन दशक में किसी और हिन्दी कवि को नहीं हुआ। सहृदय पाठक के लिए समीक्षक की मध्यस्थता अनिवार्य नहीं होती, इसका ज्वलन्त प्रमाण बचन का काव्य है। भाव प्रवण पाठक काव्य-रस का आस्वाद अपने निजी संवेदन के आधार पर करता है, यह तथ्य भी बचन के काव्य की लोकप्रियता से परिपुष्ट होता है।

'सतरंगिनी' की भूमिका में, बच्चन ने अपने गीतों में अनुपूर्वी क्रम-सम्बद्धता का संकेत दिया है। मुक्तक रचनाओं में पूर्वा पर अन्वित क्रम का यह सुझाव गीतों को नूतन दृष्ठि से पढ़ने का सुझाव है। 'मेरे गीत एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र नहीं हैं। एक गीत दूसरे गीत पर प्रकाश डालता है। एक गीत दूसरे में कोई आन्तरिक सम्बन्ध भी रखता है। प्रायः उन का अर्थ गीतों को क्रमानुसार पढ़ने पर ही खुलता है। बच्चन का यह कथन काव्यशास्त्रीय मान्यता का अतिक्रमण करने वाला है। मुक्तक रचना में क्रम-बद्धता एवं पूर्वापर अन्वित क्रम की स्वीकृति काव्य-शास्त्र में नहीं है किन्तु बच्चन के गीतों को क्रमानुसार पढ़ने पर भावोद्घाटन की दृष्टि से यह तथ्य ग्राह्य प्रतीत होता है। प्रत्येक गीत स्वतन्त्र मुक्तक होते हुए भी वह भाव-समुच्चय के अन्तःसूत्र में पिरोया गया है। अतः उसे क्रमानुसार पढ़ने का सुझाव सर्वथा मान्य है।

बच्चन 'मधुशाला' की मोहक रचना के साथ काव्य जगत में अवतरित हुए थे। कुछ कुतूहल, कुछ आकर्षण कुछ नूतन की सृष्टि करते हुए उन्होंने काव्य प्रेमियों का प्रारम्भ में मनोरंजन किया किन्तु जैसे-जैसे वे स्वयं जीवन के गहन में प्रवेश करते गये, वैसे-वैसे उनका काव्य भी गम्भीर होता गया और उनके गीतों की संवेदना का धरातल अनुभूति की मार्मिकता से सिक्त होने के कारण मात्र विनोद या विस्मय का विषय न रहकर विचार और चिन्तन के स्तर पर काव्य के जीवन-सम्पृक्त विषयों को समेटने वाला बनता गया। कवि के वैयक्तिक जीवन के उतार-चढ़ाव और ऋजु-वक्र मोड़ भी उसके काव्य में सन्निविष्ट होने लगे और प्रत्येक परिवर्तन की गूँज उसके गीतों में प्रतिध्वनित होने लगी। 'सतरंगिनी' के गीत इसी प्रकार के स्वस्थ एवं आशावादी जीवन-दृष्टि के प्रतीक हैं।

—ए ५/३ राणाप्रताप बाग, दिल्ली—६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर बच्चन और उनकी मधुशाला

डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

कविवर हरिवंशराय 'बच्चन' की सर्वाधिक ख्याति का मूलाधार उनकी काव्यकृति 'मधुशाला' है, जो सन् १९३३-३४ ई० में लिखी गई थी और जिसके प्रकाशित होते ही हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में एक अजीब हलचल पैदा हो गई थी। उस समय कोई विरला ही हिन्दी-प्रेमी ऐसा होगा, जिसने बच्चनजी की 'मधुशाला' के दो-चार पद्य न याद किये हों, क्योंकि लगभग सभी कवि-सम्मेलनों में जहाँ बच्चनजी को आमंत्रित किया जाता था उनसे 'मधुशाला' ही सुनाने का आग्रह किया जाता था और वे भी बड़ी तन्मयता एवं सरसता के साथ अपनी 'मधुशाला' की रुबाइयों को सुनाया करते थे, जिन्हें सुनते ही श्रोता मंत्रमुग्ध से होकर हिन्दी के इस 'उमर खैयाम' की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए मधुशाला के मादक रस का आस्वादन किया करते थे।

मधुशाला का सामाजिक पक्ष--वैसे तो 'मधुशाला' की सभी रुबाइयाँ प्रतीकात्मक हैं, जिनमें कवि ने सूफियों की शराब, सुराही, प्याला, साकी और मीना (बोतल) को प्रतीक बनाकर सामाजिक रूढ़िवादिता एवं नैतिकता के विरुद्ध आवाज बुलन्द की है और उस समय के जन-जीवन में व्याप्त निराशा, असन्तोष, अकर्मण्यता आदि को खुलकर चुनौती दी है। सन् १९३० से लेकर सन् १९३५ तक का समय भारत के जन-जीवन में अत्यन्त निराशा और असंतोष का अन्धकार-सा लेकर आयी था। जनता अंध-विश्वासों रूढ़ियों एवं सामन्तयुगीन नैतिकता के दलदल में फँसी हुई थी। उधर अंग्रेजों के दमन-चक्र से पराधीन भारत कराह रहा था। ऐसे समय में कवि बच्चन ने 'मधुशाला' के द्वारा विद्रोह का स्वर ऊँचा किया, जनता में जागरण का उद्घोष किया, आपस में फैले हुए वैमनस्य को दूर करने के लिए ललकारों और धर्म की दीवारों में बन्दिनी जनता को मुक्त करने के लिए स्पष्ट घोषणा की।[1]

कवि को ऐसा प्रतीत हुआ कि सामाजिक विषमता, ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्य को बढ़ावा देने वाले वे बड़े-बड़े परिवार, महल और सामन्तवादी राज्य हैं, जो मानवों पर क्रूरता, दुर्दमनीयता एवं कठोरता का प्रहार करते हुए उन्हें पनपने नहीं देते और उन्हें मौलिक अधिकारों से वंचित करके उन्हें गरीबी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करते हैं। अतः कविवर बच्चन ने उन सभी बड़े-बड़े महलों, परिवारों एवं राज्यों को नष्ट कर देने की कामना व्यक्त की तथा अपने ओजस्वी स्वर में ललकारा।

कवि को सामाजिक विषमता का एक कारण यह भी दिखाई दिया कि यहाँ ऊँच-नीच, अस्पृश्य-स्पृश्य, छुआछूत आदि का भेद इतना अधिक है कि वह एक मानव को दूसरे मानव से मिलने नहीं देता। कोई ब्राह्मण होने के नाते शूद्र को तुच्छ समझता है, कोई

[1] धर्मग्रंथ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरजे सबको
तोड़ चुका जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादरियों के
फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनाढ्य वैश्य होने के नाते गरीब क्षत्रिय को कुछ नहीं गिनता और कोई शक्ति-सम्पन्न क्षत्रिय होने के कारण दुर्बल ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र को कुछ नहीं समझता। समाज में नित्य वर्ग बनते चले जा रहे हैं और सामाजिक एकता एवं समाज की संगठित शक्ति छिन्न-भिन्न होती चली जा रही है। इसलिए कवि ने—

सौ सुधारकों का करती है
काम अकेली मधुशाला।

कहा, क्योंकि ब्राह्मण और भंगी दोनों ही एक ही मधुशाला में बैठते हैं। कवि ने केवल हिन्दू-जाति की विघटित शक्ति को सुसंगठित करने की सलाह ही नहीं दी। अपितु हिन्दू और मुसलमानों में जो परस्पर मनोमालिन्य एव ईर्ष्या-द्वेष दिखाई देता था, उसे भी दूर करने के लिए कहा—

मुसलमान औ हिन्दू हैं दो
एक मगर, उनका प्याला,
एक मगर, उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला।

मधुशाला ा राष्ट्रीय पक्ष—कवि बच्चन के हृदय में तत्कालीन वातावरण को देखकर कोई निराशा एवं पलायनवादिता के विचार उत्पन्न नहीं हुए थे, अपितु आन्दोलनों की विफलता देखकर भी कवि-हृदय सदैव स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए लालायित रहता था और भारतवासियों के हृदय में स्वतन्त्रता के लिए बलिदान, त्याग एवं सर्वस्व अर्पण करने की भावना जाग्रत करता रहता था। इसीलिए तो कवि को मधुशाला एवं बलिवेदी दोनों एक दिखाई दी हैं और कवि ने लिखा है :—

वीर सुतों के हृदय-रक्त की
आज बना रक्तिम हाला,
वीर सुतों के वर शीशों का
हाथों में लेकर प्याला,
अति उदार दानी साकी है
आज बनी भारत माता,
स्वतंत्रता है तृषित कालिका
बलिवेदी है मधुशाला।

इतना ही नहीं, कवि ने भारतवासियों के हृदय में उत्कृष्ट भक्ति-भावना एवं राष्ट्र-प्रेम जाग्रत करने के लिए भारतवर्ष को एक पवित्र मधुशाला के रूप में भी देखा है, जिसकी हिमश्रेणियाँ ही अंगूर लतायें हैं, हिमजल ही हाला है, गम्भीर नदियाँ ही साकी हैं, लहरें ही प्याला हैं और हाला को पीकर यहाँ के खेत सदैव लहलहाते रहते हैं।

मधुशाला का मानवतावादी पक्ष—कविवर बच्चन जी ने अपनी 'मधुशाला' में मानवतावादी आधार पर संसार के उन समस्त क्षीण, क्षुद्र, दुर्बल एवं पददलित मानवों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, जो जीवन के कटु एवं विषमय प्रभाव से व्यथित एवं बेचैन होकर सदैव काल के कठोर एवं निर्दय प्रहार को सहन किया करते हैं। कवि ने इसीलिए संसार को मधुशाला और प्रबल काल को पीने वाला कहकर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को इस तरह व्यक्त किया है:—

क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल
मानव मिट्टी का प्याला,
भरी हुई है जिसके अन्दर,
कटु-मधु जीवन की हाला,
मृत्यु बनी है निर्दय साकी
अपने शत-शत कर फैला,
काल प्रबल है पीने वाला
संसृति है यह मधुशाला।

मधुशाला का दार्शनिक पक्ष—दार्शनिक दृष्टि से कवि बच्चन की मधुशाला के विचारों को 'हालावाद' नाम दिया गया है, क्योंकि इसमें कवि ने हाला, मधुशाला, मधुपात्र, साकी आदि के माध्यम से उसी तरह धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता एवं कठोरता को चुनौती दी है, जिस तरह फारस में सूफी कवियों ने इस्लाम की कट्टरता एवं असहिष्णुता के विरुद्ध आवाज बुलन्द की थी। यद्यपि सूफी कवि उमरखैयाम की सी मस्ती एवं तल्लीनता तो कविवर बच्चन में नहीं है और इसीलिए वे अपना कोई अनुयायी भारत में नहीं बना सके, फिर भी उनकी मधुशाला, मधुबाला, और 'मधुकलश नामक तीनों रचनाएँ हिन्दी के हालावाद की आरम्भिक और अन्तिम रचनाएं मानी जाती हैं। इनमें से मधुशाला में कवि ने सूफियों की भाँति ही आत्मा को आशिक और परमात्मा को माशूक मानकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व के कण-कण में व्याप्त उस परमात्मा के हुस्न का दीदार किया है और विविध विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए उस परमब्रह्म रूपी समुद्र में इस तरह मिल जाने की अभिलाषा व्यक्त की है जिस तरह नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं। इसीलिए कवि ने विविध प्रकार के रूपकों के द्वारा इसी विचार को व्यक्त किया है। वह कभी तो प्रियतम को हाला, स्वयं को प्याला बनाकर प्रियतम के साथ एकाकार होने की भावना व्यक्त करता है।[1]

कभी वह पुजारी को साकी, गंगाजल को पवित्र हाला और स्वयं को शिव की प्रतिमा मानकर शिव-मन्दिर को ही मधुशाला कहता है।

कवि की दृष्टि में मधुशाला ही प्रियतम का सर्वोच्च स्थान है, जहाँ विश्व के प्रत्येक पथिक को जाना है और जिसके लिए भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न राहें बतलाई हैं। कवि उस प्रियतम तक पहुँचने की एक ही राह बताता है और वह है मधुशाला की राह।

कवि ने सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में उस प्रियतम की अथवा अपने साकी की रमणीय छवि देखी है। इसीलिए उसे प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक उपवन, प्रत्येक मधु-वन, प्रत्येक प्रभात प्रत्येक रात सर्वत्र मधुशाला ही मधुशाला दिखाई देता है जिसमें उसका प्रिय साकी प्रेम की हाला पिला रहा है। कवि की वही दशा है कि "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"। इसीलिए तो वह कह रहा है :—

"किसी ओर मैं देखूँ, मुझको
दिखलाई देता साकी,
किसी ओर देखूँ, दिखलाई
पड़ती मुझको मधुशाला।"

मधुशाला का साहित्यिक पक्ष—कवि ने साहित्यिक दृष्टि से अपनी 'मधुशाला' में प्रतीकों एवं रूपकों का सहारा लेकर छायावादी कविता-धारा को प्रवाहित किया है, जिसमें उपचार वक्रता एवं लाक्षणिकता के साथ-साथ अनन्त रमणीया प्रकृति-सुन्दरी की बड़ी ही मनोज्ञ झाँकियाँ अंकित हुई हैं। प्रकृति के माध्यम से कवि ने 'मधुशाला' की बड़ी ही सुन्दर एवं सजीव कल्पनाएँ की हैं, जिनमें कभी तो वर्षा-ऋतु को मधुशाला बनाता है और कभी कवि ने ऐसे ही सुन्दर सांगरूपक अलंकार द्वारा मधुऋतु को मधुशाला कहा है।

ऐसे ही कवि ने प्रत्येक प्रभातकाल की पूर्ण प्रकृति में मुखरित मधुशाला का चित्र अंकित किया है—

"साकी बन आती है प्रात:
जब अरुणा ऊषा बाला,
तारक-मणि-मंडित चादर दे
मोल धरा लेती हाला,
ऊषा कर-किरणों से जिसको
पी, खग पागल हो गाते,
प्रति प्रभात में पूर्ण प्रकृति में
मुखरित होती मधुशाला।"

इस तरह कवि ने प्रांजल एवं प्रौढ़ छायावादी शैली में बड़े ही सुन्दर एवं सजीव चित्र अंकित किये हैं, जिनमें प्रकृति की रमणीय झाँकियों को बड़ी सफलता एवं सरसता के साथ प्रस्तुत किया गया है और जिनमें भाषा की लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता अपनी सजीवता एवं सरसता के साथ विद्यमान है। सारा काव्य न केवल भावों एवं विचारों के कारण सहृदयों के हृदय का कण्ठहार बना है, अपितु कलात्मक चित्रणों एवं सरस वस्तु-वर्णनों के कारण भी अधिक लोकप्रिय रहा है। निस्सन्देह इस काव्य में अखिल प्रवृत्ति ही मधुशाला बनकर झूम रही है, जिसमें प्रियतम ही साकी बनकर अपने हाथों से प्रेम की हाला को प्यालों में भर-भर कवि अधरों से लगा रहा है और प्रेम की अनन्त पिपासा का आकुल-व्याकुल कवि इसे पीता चला जा रहा है। न यहाँ साकी पिलाने से थक रहा है और न कवि पीने से। पीते-पीते उसके अंग-अंग के जोड़ खुल रहे हैं, रोम-रोम सिहर रहे हैं और वह अपने अनन्त रमणीय की छवि को सर्वत्र देख रहा है।

—एन. आर. ई. सी. कालेज, खुरजा।

---

[1] प्रियतम, तू मेरी हाला है
मैं तेरा प्यासा प्याला,
अपने को मुझमें भरकर तू
बनता है पीने वाला
मैं तुझको छक छलका करता
मस्त मुझे पी तू होता,
एक दूसरे को हस दोनों
आज परस्पर मधुशाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रिय गीतकार डा० बच्चन

श्री विश्वनाथ साहु

गीत हृदयोद्गार की अभिव्यक्ति के सर्वोत्तम साधन हैं। वीणा के तार झंकृत होने के पूर्व छेड़े जाते हैं। गीतकार भी गीत लिखने के पूर्व भावों के घात-प्रतिघात से आलोड़ित-विलोड़ित होता है। रागिनी आघात की प्रतिक्रिया होती है। आघात के अनुरूप ही रागिनी फूट पड़ती है। निषाद, धैवत और पंचम के लिये वीणा के तार विभिन्न रूपों में छेड़े जाते हैं। इसी तरह हृदय पर होने वाले विभिन्न भावों के घात से विभिन्न प्रकार के गीतों की सृष्टि होती है। गीतकार की सफलता इसी बात में निहित होती है कि भावों की प्रतिक्रिया व्यक्त करते समय वह निश्छलता से काम ले। किस परिस्थिति में किसके साथ कौनसा भाव जागृत होता है, यह मनोविज्ञान का विषय है, किन्तु सहज-हृदय-कवि के गीत स्वतः मनोवैज्ञानिक हो जाते हैं। ऐसा इसलिये होता है कि सहज-हृदय गीतकार में न कोई दुराव होता है और न कोई छुपाव। अपनी ऋजुता में आकर वह कुछ भी छुपाता नहीं। जैसा सोचता है वैसा व्यक्त कर देता है। जो कवि या गीतकार आदर्शों के झूठे आवरण में भावों की सबलता को जकड़ने की कोशिश करते हैं, उनकी कवितायें और गीत सुन्दर होने के बावजूद हृदय की सहज अनुभूतियों से मेल नहीं खाते।

बच्चन के गीतों की सफलता का यही रहस्य है। उसके गीतों में भाव की तीव्रता है, हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है और है सचाई को निर्भीक रूप में स्वीकार करने की प्रबल आकांक्षा। यही कारण है कि बच्चन के गीतों ने जहाँ एक ओर पाठकों का मन मोह लिया है वहीं दूसरी ओर उनके गीतों की कटु आलोचनायें भी कम नहीं हुई हैं। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' को लेकर कवि को हालावादी और प्यालावादी सिद्ध करने का कम प्रयास नहीं हुआ है। उसे यौन-कवि कहकर उसकी कविताओं पर वासना जगाने का दोषारोपण तक किया गया है। किन्तु सचाई यही है कि गीतकार ने निश्छलता के साथ विभिन्न परि-विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न भावनाओं को अपने गीतों का विषय बनाया है और उन्हें अनावृत्त रूप में पाठकों के सामने ला खड़ा किया है। अनावरण की वजह से भावों का सौन्दर्य प्रकृत रूप में सामने आ जाता है और अपनी नैसर्गिकता के चलते पाठकों का मन मोह लेता है।

गीतकार स्वीकार करता है कि गीत भावना-जगत् की वाणी है। भावना-जगत भी युग-निरपेक्ष नहीं होता। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के भाव जगते ही हैं। कभी-कभी तो वे सर्वथा एक दूसरे के प्रतिकूल दीख पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा होना ही स्वाभाविक है। हर परिस्थिति में एक ही रागिनी कैसे फूट सकती है। ऐसा होना ही अस्वाभाविक है। किन्तु खेद तो तब होता है जब बच्चन के आलोचक बच्चन के गीतों में परस्पर विरोधी बातों को देख-सुनकर उन पर दोषारोपण करने चलते हैं। इसके लिए तो गीतकार को प्रशंसा ही मिलनी चाहिए। हमें यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक गीत की अपनी स्वतन्त्र इकाई होती उसे किसी सन्दर्भ की आवश्यकता नहीं होती है। जब मनुष्य की भावनायें तीव्र होती हैं तब वे उसे सहज ही लयमय कर देती हैं। इसी लयमयता को ही तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत कहते हैं ।

बच्चन के गीतों को ठीक-ठीक समझ पाने के लिये जिस सहृदयता की आवश्यकता है उसके लिये मनोवैज्ञानिकता अनिवार्य है । मन की गति-विधि से अनभिज्ञ आलोचक कभी भी बच्चन के साथ न्याय नहीं कर सकते । ऐसे आलोचकों के लिये सब धान साढ़े बाइस पंसेरी ही हुआ करता है । इनके लिये सोहर (जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत) और स्याया (मृत्यु पर होने वाले तालबद्ध विलाप) में विभेद नहीं होता । दोनों स्थलों में व्यक्त भावनाओं को ये एक ही सन्दर्भ में देखने की भूल कर जाते हैं और यही वजह है कि बच्चन के गीतों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के लिये ये गीतकार को दाद नहीं देते प्रत्युत् इन आलोचकों को उलटे खाज करने (खुजलाहट होने) लगता है ।

आप मान लें कि किसी की प्राण-प्रिया उसे सदा-सदा के लिये छोड़ गयी है । अभी अभी वह उनका दाह-संस्कार कर लौटा है । उसकी व्यथा उसे चैन नहीं दे रही है । ऐसे ही समय में यदि कोई निष्ठुर उसके सामने दूसरे विवाह का प्रस्ताव लाता है तो वह कह ही उठेगा—

"आज मुझसे दूर दुनियाँ
....
वह समझ मुझको न पाती,
और मेरा दिल जलाती,
है चिता की राख पर ये माँगती सिंदूर दुनिया ।
आज मुझसे दूर दुनिया ।"

किन्तु कालक्रम से जब उसका शोक कुछ कम होगा, होता ही है, क्योंकि समय ही सबसे अच्छे मलहम का कर्म करता है । (Time is the greatest healar) तो सांत्वना के लिये शायद वही कह उठेगा—

"माना कि एक सितारा था;
आँखों को बेहद प्यारा था,
पर टूट गया तो टूट गया,
अम्बर के आनन को देखो, कितने तारे टूट जाते हैं।
बोलो इन टूटे तारों पर, अम्बर कब शोक मनाता है ?"

इसी तरह विविध सन्दर्भ में लिखी गयी पंक्तियों को हम उनके ही सन्दर्भ में देखने का प्रयास करें तो वहाँ विरोध नाम की कोई चीज ही नहीं मिलेगी। विभिन्न संदर्भ की पंक्तियों को एक साथ मिलाकर देखने से ही कवि में विरोधाभास की प्रतीति होती है। अन्यथा कवि अपने आप में सुलझा हुआ "परिस्थिति के अनुरूप भाव और भाव के अनुरूप व्यंजना—यही बच्चन के गीतों की लोकप्रियता का मूल रहस्य है। निराला की तरह बच्चन भी निर्भीकता के साथ जैसा अनुभव करता है वैसा व्यक्त कर देता है ।

और बच्चन पर जब वासनावादी होने का आरोप लगाया जाता है तो वह भी किस निर्भीकता के साथ मनोवैज्ञानिक रूप को स्वीकार किये लेता है—

"कल छिड़ी, होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी ।
क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक ?

—

(पृष्ठ २१४ का शेषांश)

परन्तु समाप्ति निम्न पंक्तियों से होती है—

मद्यं शरणं गच्छामि
मांसं शरणं गच्छामि
डांसं शरणं गच्छामि

बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण में जाने वालों की चरम अवनति मद्य, मांस एवं नृत्य की शरण में जाने पर स्वयं ही हो गयी । अवनति के साधनत्रय में मद्य का भी अपरिहेय स्थान है । मद्य के प्रति अभिव्यक्त भाव बच्चन की मूल भावना को स्फुट कर देते हैं।

—सान्दीपनि महाविद्यालय, उज्जैन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन के काव्य की व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ

डा० मुरारीलाल शर्मा 'सुरस'

विचार भूमि—आधुनिक हिन्दी कविता की मूल चिन्ताधारा का वैचारिक पक्ष भारतीय आदर्शवाद के क्रोड़ में परिपालित हुआ जिसने जीवन के सूक्ष्मतर मूल्यों को अध्यात्मपरक दर्शन की भावभूमि दी। दृश्यमान जगत के आविर्भाव का नामरूपात्मक विकास प्रकृति की विविध विभूतियों से सम्बन्ध अनुभव करके उन्हें जीवन के उच्चतर मूल्य कहा गया। यह सूक्ष्म व आन्तरिक मूल्य सुख तो है किन्तु व्यावहारिक जीवन में जब मनुष्य की स्थूल आवश्यकताएँ सुरसा की भाँति मुँह फैलाकर विकराल रूप धारण करती हुई प्रकट होती हैं तब जीवन के अवर मूल्य उद्घाटित होते हैं, जिनके दो रूप हमें दिखाई देते हैं—व्यष्टिगत और समष्टिगत। भारतीय जीवन दर्शन का आदर्शवाद व्यष्टि और समष्टि की समस्याओं का स्रोत है जो वैयक्तिक सुख-दुख को वीतराग की भाँति भुलाकर समाज के प्रति अर्पण की भावना से अभिप्रेरित होता है। इसी प्रकार जीवन में चिन्ताधारा के विकास के दो प्रमुख मार्ग हैं—(१) परम्परित विकास का मार्ग जिसे अध्यात्मोन्मुख आदर्शवाद कहते हैं। (२) विद्रोह का मार्ग जिसे साम्योन्मुख भौतिकवाद कहते हैं। आज के युग में इन दोनों परम्पराओं को दक्षिण पक्ष और वामपक्ष भी कहा जाता है।

"दक्षिणपक्षीय विचारधारा का प्रतीक हमारे यहाँ गांधीवाद है और वामपक्षीय विचारधारा के नीचे मूलतः मार्क्स के भौतिक दर्शन का आधार है। दक्षिण पक्षीय आदर्शवादी विचारधारा की प्रेरणा आधुनिक हिन्दी कविता की दो प्रमुख प्रवृत्तियों में स्पष्ट है एक के अन्तर्गत जीवन और जगत के सूक्ष्म अतीन्द्रिय सौन्दर्य से अनुप्राणित वे कविताएँ आती हैं जिन्हें 'छायावाद' का नाम दिया गया है और दूसरी के अन्तर्गत राष्ट्रीय-सांस्कृतिक देशभक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली ऐसी रचनाएँ आती हैं जिसे समष्टि रूप में साधारणतः 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' नाम दिया जा सकता है।"[१] भौतिकवादी चिन्ताधारा हिन्दी कविता में प्रगतिवादी और प्रयोगवादी दो रूपों में विकसित हुई। 'प्रगतिवादी कविता तो एकांत रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, वह तो एक प्रकार से मार्क्स दर्शन के साथ पूर्णतः आबद्ध है। प्रयोगशील कविताओं में भी भौतिकवादी विचारधारा के कई तत्व वर्तमान हैं। उसका मार्ग घोषित रूप से विद्रोह का मार्ग है, उसमें परम्परा के प्रति अनास्था का प्रबल भाव है और सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय के विरुद्ध भौतिक और मूर्त की महत्व-स्थापना है। हाँ, उसका दृष्टिकोण सामाजिक न रहकर अधिकतर वैयक्तिक हो जाता है।'[२]

भारतीय आदर्शवाद और भौतिकवादी चिन्ताधारा के बीच में एक नई चिन्ताधारा विकसित हुई जिसे वैयक्तिक कविता कहते हैं। इसमें कवियों ने निजी सुख-दुख की अभिव्यक्ति करके अपने जीवन-संघर्ष का उद्घोष ओजपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किया। इन कविताओं में न तो आध्यात्मिक या आदर्शवादी परम्पराओं का मोह है, न किसी प्रकार के सामाजिक

[१] आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, डा० नगेन्द्र, १९५१ पृष्ठ ३।

[२] वही, पृष्ठ ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य का ध्यान, ये तो मन में समय-समय पर उठी हुई तरंगों की सरलतम अभिव्यक्ति हैं जो परिस्थिति जन्य हर्ष-विषाद की भावनाओं का मुखरित रूप है। इस प्रकार की वैयक्तिक कविता को डा० नगेन्द्र ने छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा बताया है।[1]

मूल स्रोत—प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि रचित काव्य में किसी न किसी रूप में व्यक्तित्व मिलता है। कवि इतिहास या शास्त्र सम्मत कथा का वर्णन करते हुए भी अपने सम्बन्ध में यत्र-तत्र कतिपय संकेत करते रहे हैं। मुक्तक काव्य के विशिष्ट प्रसंगों में सर्वसाधारण की बात कहते हुए भी वैयक्तिक विवरणों के संकेत मिल जाते हैं जिनमें प्रसंगानुकूल मनोदशाओं का चित्रण होता है। यह सभी कुछ कवि की आत्मानुभूति से अभिप्रेरित होता है। सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्तकवियों के गीतिकाव्यों में आत्म-निवेदन के पद नैतिक आदर्श एवं ईश्वरोन्मुख प्रेमभाव को लिये हुए मिलते हैं। छायावादी कविताओं में गीतितत्व आत्म-प्रेरित और अव्यक्त रूप में उपलब्ध हैं। सूक्ष्म होने के कारण यह प्रच्छन्न रहा किन्तु छायावादोत्तर कविता में बौद्धिक एवं भौतिक प्रभाव के फलस्वरूप वैयक्तिक तत्व अधिक जागरूक होने लगा। अब आत्म-चेतना और आत्म-विश्वास 'स्व' केन्द्रित हो गया जिसके कारण अतिशय आत्मपरक कविता का जन्म हुआ। छायावादी कवि ने अपने व्यक्तित्व को प्रच्छन्न रखते हुए प्रतीकों के माध्यम से स्वानुभूत बातों की अभिव्यक्ति की, किन्तु अतिशय आत्मपरक कविता में अपनी ऐहिकता और प्रत्यक्षता को मुखर किया गया। जीवन की विषमताओं, अर्थ एवं काम जन्य कुण्ठाओं तथा मानसिक अव्यवस्था ने सामाजिक रीति-नीतियों एवं रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का उद्घोष करने के लिए कवि को प्रेरित किया।

बच्चन के प्रारम्भिक जीवन में संघर्षरत युवक की करुण-व्यथा की जीवन्त चेतना मिलती है। इसने युवक कवि को विस्मरण की मनोवृत्ति से अभिभूत करके और आध्यात्मिक क्लांति से निवृत्ति पाने के लिए हाला का आह्वान किया। इसके लिए उसने उमर खैयाम की शैली में 'मधुशाला' और 'मधु कलश' की रचना की। बच्चन की यह शैली भोगवाद की प्रतीक अवश्य है किन्तु "उमर की मदिरा और बच्चन की मदिरा में बड़ा अन्तर है। उमर जीवन की क्षणभंगुरता से निराश एवं मृत्यु से पराजित मन को अपने क्षणवादी सुखवादी दर्शन की मादक उत्तेजना में भुलाये रखना चाहते हैं।...बच्चन की मदिरा चैतन्य की ज्वाला है। जिसे पीकर मृत्यु भी जीवित हो उठती है। बच्चन की मदिरा गम गलत करने या दुख को भुलाने के लिए नहीं है, वह शाश्वत जीवन सौन्दर्य एवं शाश्वत प्राण चेतना-शक्ति का सजीव प्रतीक है। उमर की मदिरा जीवन स्मृतियों की मदिरा है और बच्चन की जीवन-स्वप्नों की, एक में अतीत का मधुतिक्त मोह है, दूसरे में भविष्य की सुनहली आशा संभावना।"[1] इस प्रकार बच्चन के हाथों में पड़कर उमर खैयाम का मिट्टी का प्याला, हाला तथा मधुबाला सबका रूपान्तर हो गया और उन्होंने जीवन को नवीन आनन्द, नवीन चेतना और सौंदर्य बोध के नए प्रतीकों में परिणत कर दिया।

आत्मगत अनुभूति—छायावादी कवियों की कविता कल्पना-प्रधान है और बच्चन की अनुभूति प्रधान। बच्चन की कविताओं में सूक्ष्मता, कल्पना की ललित क्रीड़ा और बौद्धिक परिवेश में अपने अनुभूत तत्वों का नियोजन अमूर्त तत्वों के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया, वे तो जीवन के मनोवेगों की संवेदनशीलता को स्पर्श करते हुए हमारे अन्तस् के निकटतम भाग तक दौड़ जाते हैं। उनकी व्यक्ति-चेतना का सहज धरातल वेदना को गीत, शंका, विषाद और निराशा के गरल को अमृतमय और भाग्यवाद या नियतिवाद को निषेध-

[1] वही, पृष्ठ ६१।

[1] अभिनव सोपान—बच्चन, भूमिका, सुमित्रानन्दन पंत, १९६४ पृ० २०–२१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद (Nihilism) तक ले जाता है। इसीलिए उनका व्यक्तिवाद आध्यात्मिक नहीं, भौतिक है। 'बीत गया जीवन सब मेरा जीने की तैयारी में' कहने वाला कवि अपने अनुभवों को तत्वगत अनुभूति तक ही सीमित नहीं करता वह तो प्रकृति की विराटता के साथ उन्हें विश्वव्यापी रूप देता है। उसका नियतिवाद निराशावाद से दूर होता हुआ आशावाद से संयुक्त कर्मवाद का सन्देश देता है—

"जो बीत गई सी बात गई !
जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया, तो डूब गया;
अम्बर के आनन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गये फिर कहाँ मिले
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अम्बर शोक मनाता है ?"[1]

स्वयं बच्चनजी का विचार है कि "बौद्धिक रचनाएँ सृजनात्मक नहीं होतीं, सृजन का तो अर्थ ही है आत्म-दान। जिन रचनाओं में आत्म-दान का अंश जितना अधिक रहता है, वे उतनी ही अधिक रचनात्मक होती हैं। बुद्धि से लिखी जाने वाली रचनाएँ कभी श्रेष्ठ साहित्य के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं की जा सकतीं।"[2] भगवतीचरण वर्मा के शब्दों में "(बच्चन की) कला में बौद्धिक सजावट नहीं है और न उसमें ज्ञान और दर्शन की कोई आरोपित स्थापना है। उसमें भावना का स्वाभाविक आवेग है और इसीलिए वह पढ़ने वालों को तन्मय कर लेती है।"[3]

बच्चनजी की मानव-भावना, अनुभूति प्राणों की ज्वाला तथा जीवन संघर्ष की आत्मनिष्ठता के सम्बन्ध में कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का कथन सटीक ही है—"बच्चन के अधिकांश काव्य-पट में उसकी आत्म-कथा के ही बिखरे पन्ने मिलेंगे, जिनमें, संभवतः, घटनाएँ तो अपने स्थूल यथार्थ के कारण प्रच्छन्न हो गई हैं किन्तु तज्जनित संघर्ष, ऊहापोह, घात-प्रतिघात तथा सुख-दुख के संवेदनों के मधु-तिक्त रस का स्वाद पाठकों के हृदय को स्पर्श कर उनकी साँसों में बहने लगता है और कुछ समय के लिए उनकी अनुभूति का अंग बन जाता है।"[1] वस्तुतः उनकी कविताओं में अनुभूति पक्ष जहाँ शिथिल हो गया है वहाँ कविता नंगी हो जाती है। उनकी अनुभवरिक्त कविताओं में उनका रस-प्रवण हृदय तेल रहित दीपक की भाँति जलता हुआ दिखाई देता है।

विद्रोह का स्वर—सामाजिक और आर्थिक-वैषम्य के जिस क्रोड़ में बच्चनजी का विकास हुआ उसमें स्वाभाविक रूप से विद्रोह का उत्स फूटता हुआ दिखाई देता है। शिक्षित युवक भावी जीवन को जिस ललक से उच्चतम शिखर तक ले जाने को आतुर-उत्सुक हुआ उसे परिस्थितियों ने झकझोर दिया अतः उसके अन्तर्मन में बाह्य जीवन संघर्ष की टकराहट से जो उद्दाम भावराशि प्रवाहित हुई वह 'एकान्त संगीत' में अभिव्यक्त हुई है। उसकी विद्रोह भावना निम्न-लिखित प्रकार वर्गीकृत की जा सकती है—

(१) व्यक्ति के प्रति व्यक्ति का विद्रोह—

मेरे पूजन आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को,
जब मेरी कमजोरी कहकर
मेरा पूजित पाषाण हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

(२) व्यक्ति का संस्था के प्रति विद्रोह—

धर्मों-संस्थाओं के बन्धन,
तोड़ गया है वह विमुक्त-मन,
संवेदना-स्नेह-संबल भी खोना उसे पड़ा है।
अकेला मानव आज खड़ा है !
जब तक हार मान कर अपने

[1] अभिनव सोपान; १९६४ : सतरंगिनी, पृ० १७५
[2] बच्चन : व्यक्ति और कवि : 'राही', पृ० ६७।
[3] अभिनव सोपान, भूमिका, पृ० १९

[1] वही, पृ० ७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेक नहीं देता वह घुटने,
जब तक निश्चय महाद्रोह का झंडा सुदृढ़ गड़ा है !
अकेला मानव आज खड़ा है !

(३) व्यक्ति का नियति के प्रति विद्रोह—

क्षण शीश मगर नत शीश नहीं
बन कर अदृश्य मेरा दुश्मन
करता है मुझ पर बार सघन.
लड़ लेने को मेरी हवसें, मेरे उर के ही बीच रहीं !
क्षत शीश मगर नत शीश नहीं !

(४) व्यक्ति मानव का ईश्वर के प्रति विद्रोह—

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !
युद्ध-क्षेत्र में दिखला भुजबल,
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज-पराजय के स्मारक हैं,
मठ, मस्जिद, गिरिजाघर ?[१]

सरलता—बच्चन की अनुभूति अभिव्यक्ति के बिलकुल समीप दिखाई देती है। जीवन के अनुभवों के प्रति उनका दृष्टिकोण सीधा और प्रत्यक्ष दिखाई देता है इसीलिए वह हमें अपने जीवन-मूल्यों के निकटतम प्रतीत होता है। उनकी कविताओं में जहाँ संगीतात्मकता और रागात्मकता मिलती है, उनमें भावना का मन्दिर सौष्ठव विद्यमान है। छायावादी कविता में जहाँ प्रतीकात्मकता, चित्रमयी भाषा में अभिव्यक्ति और छन्द-विधान की नवीनता मिलती है, वहाँ बच्चन की अभिव्यञ्जना सरल और प्रत्यक्ष है। उन की कविता में सहजता होने के कारण उसकी सरल चिंतन प्रक्रिया पाठक को स्वाभाविक रूप से आकृष्ट करती है और यही कारण है कि बच्चनजी अपने क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

गेयता—अतिशय भावोद्रेक की दशा में गीत स्वत: हृदय से फूट पड़ते हैं। वाणी का यह तरल द्रव स्वर और लय के संवेग से जब भावात्मक अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है तब गीत का जन्म होता है। छायावादी कवियों में महादेवी, निराला और प्रसाद के गीत-भाव-प्रवणता के कारण गेय हुए, संगीतमयता एवं रागात्मकता इनके प्रधान गुण हैं। नरेन्द्र, गिरिजाकुमार और अंचल की भाँति ही बच्चन ने निशा निमंत्रण, एकान्त संगीत, मिलन यामिनी आदि में अपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति छन्दोबद्ध कविताओं के द्वारा की। उनके इन गीतों में ऋजुता और प्रत्यक्षता पाठक के अंतस् को स्पर्श करती है। युवा मन की अभिव्यक्ति होने के कारण इनमें रंगीन स्वप्न-चित्र पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इस दृष्टि से इनकी कविता में अंचल और गिरिजाकुमार के गीतों से भिन्नता दिखाई देती है। बच्चन के ये गीत छायावाद के उत्कर्ष काल में लिखे गये थे फिर भी युवक मन पर इनका प्रभाव पंत और महादेवी की कविताओं से कहीं अधिक दिखाई दिया। उनके आत्मसाक्षात्कार के ऐसे गीत आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं जितने लिखे जाने के समय थे।

अभी कुछ समय से बच्चन ने जन भावना के समीप पहुँचने के लिए लोक धुनों पर आधारित कतिपय लोक गीत लिखे हैं। उनके गीतों का मूल्याङ्कन करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है—"उनके गीत भावोष्ण अँगुलियों से लोक-मन को गुदगुदाते उसे सुघर विषाद से मुग्ध करने तथा उनके अश्रु-सजल प्राणों को मौन विद्रवित करने में सफल हुए हैं। बच्चन संभवत: इस पीढ़ी के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं। खड़ी बोली को लोक-बोध के स्तर पर जन-साधारण के हृदय में बिठाने में इतनी बड़ी सफलता काव्य जगत में शायद उन्हीं को मिली है।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तिवादी कविता की जिस भाव भूमि को बच्चन ने छुआ है वह अपने समसामयिक अन्य कृतिकारों की अपेक्षा अधिक तलस्पर्शी एवं रागारुण है। यही कारण है कि बच्चन की लोकप्रियता व्यक्तिवादी कवियों में सर्वाधिक है।

—ई. आर. १७, सिविल लाइंस, जालंधर शहर।

[१] आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ ७१–७२।

[१] अभिनव सोपान, १९६४ पृ० ३४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवतावादी कवि बच्चन

(डा० बच्चन से लिये गये इण्टरव्यू के आलोक में)

• • •

श्री दिनकर सोनवलकर

कविवर बच्चनजी ने मेरे प्रश्नों के जो उत्तर दिए हैं, उनमें कवि की रचनाओं को समझने के न केवल मूल्यवान आधार बिन्दु हैं; बल्कि उनके सहज मानवीय व्यक्तित्व की अकृत्रिम रेखाएँ और इन्द्रधनुषी रंग भी उभरे हैं। इनसे साहित्य के विद्यार्थी और बच्चनजी की कविता के पाठक समान रूप से लाभान्वित होंगे। वे प्रश्न और उनके उत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न—आपको 'हालावाद का प्रवर्त्तक' कहा जाता है। क्या आप इससे सहमत हैं ? और उस दौर के गुजर जाने के बाद भी, क्या आपको यह विशेषण रुचिकर प्रतीत होता है ?

उत्तर—हालावाद भी क्या वाद हुआ ? मैंने तो उसे चलाया नहीं। फिर भी, इसे किसने चलाया, क्यों चलाया, उसके विषय में मैं अपने निबन्धों में लिख चुका हूँ। मैंने तो उसका यह अर्थ लिया था कि जिस समय मेरी कविताएँ लोगों के सामने आईं, उनमें कुछ ऐसा था जो 'छायावाद' के घेरे में नहीं आता था। बस उस नये रूप को उन्होंने 'हालावाद' की संज्ञा दे दी; क्योंकि यह शब्द मेरी कविता में बार बार आता था, पर यह प्रतीक था अनुभूत जीवन का; उसे वे भीतर ही भीतर समझते तो थे, पर उसके प्रति संयत न थे। हालावाद के प्रवर्तक होने का गौरव मैंने कभी नहीं अनुभव किया। शायद गौरव देने की दृष्टि से उसका प्रयोग किया भी नहीं जाता था। व्यंग्य करने का भाव भले ही रहा हो कि छायावाद के नक्कारखाने में यह तूती का स्वर सर्वोपरि क्यों हुआ जाता है ? शायद इसने लोगों को कुछ समाधान दिया हो। मुझे उस वाद विशेष में न कोई रुचि पहले थी, और न अब है।

प्रश्न—खैयाम के दृष्टिकोण और आपके दृष्टिकोण में कौन सा मौलिक अन्तर है ?

उत्तर—खैयाम और मेरे दृष्टिकोण के अन्तर पर पन्तजी ने अपने लेख में और श्री ज्ञानप्रकाश जौहरी ने 'हाउस आफ वाइन' की भूमिका में प्रकाश डाला है। दोनों का कहना है कि खैयाम जीवन को सहन करते हैं, जबकि मुझमें जीवन के प्रति आसक्ति है। पर यह न भूलना चाहिए कि खैयाम अनुवादक फिट्जजेरएड द्वारा परिसीमित हैं, जिसने उन पर अपनी निराशा, उदासीनता, अनास्था, अनिश्चय को पूरी तरह आरोपित कर दिया है। फिर भी, खैयाम मनुष्य को जग-जीवन-काल के सामने अकेले खड़ा कर देते हैं। ऐसी स्थिति में जीवन के प्रति अदम्य आसक्ति भी सम्भव है और नितान्त वितृष्णा भी; और एक समय मैंने उन दोनों का अनुभव एक साथ किया था। बहुत ही उग्र मानसिक स्थिति में मैंने लिखा था—

"हमें जग जीवन से अनुराग
हमें जग जीवन से विद्रोह
उन्हें क्या समझेंगे वे लोग
जिन्हें सीमा बन्धन का मोह
क्रान्ति की जिव्हा बनकर आज
रही बुलबुल डालों पर डोल
सुरा पी, सुरा पी, कर मधुपान।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब इन पंक्तियों की तुलना पन्तजी की सन्तुलित मनोवृत्ति की उन पंक्तियों से की जाये, तब मेरे द्वन्द्व-दुख का कुछ आभास मिल सकता है—

"अनुरक्त न हो जीवन पर
मत हो विरक्त जीवन से"—(ज्योत्स्ना)

प्रश्न—कुछ लोगों ने आपको निराशा का कवि कहा है। मुझे यह उचित नहीं जान पड़ता। इस सन्दर्भ में आपका मन्तव्य क्या है ?

उत्तर—"आज आशा, कल निराशा
फिर हृदय में शून्य सा कुछ,
कुछ विरोधी कण समूहों से
हुआ निर्माण मेरा।"

निराशा भी मेरे जीवन में बड़े मुख्य रूप में आयी थी, उसे भी मैंने वाणी दी, उससे बाहर आया। उसकी छाप भी लिए हूँ। आशा का महत्त्व समझता हूँ, उसकी सीमा भी। मुझे मेरे जीवन के किसी अंश से एकाकार करके जो मेरा दर्शन जानना चाहेंगे, वे भूल करेंगे। "लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के उस एक ओर पहलू से होकर निकल गया।" मैं अभी बनने की प्रक्रिया में हूँ। चाहे जो परिस्थितियाँ और परिणाम हों, मेरा दर्शन है जीना और सर्जन करना तथा दूसरों को भी जीने और सर्जन में सहायता करना। क्या यह निराशावाद है ? मैं तो निशा-निमंत्रण, एकान्त सङ्गीत पढ़ता हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं बड़ा बेहया आशावादी हूँ।

मैंने अपने अवसाद में डूबकर यह सत्य पाया है कि जिजीविषा और निर्माण मानव स्वभाव के अपरिहार्य अंग हैं, ये गतिमान भी हैं। उनके पीछे छूटे हुए रूपों का नाम ही मरण या संहार है। मैं कहीं भी रुकूँ, मरण या संहार पर नहीं रुकता। वहाँ मैं गाता हूँ—

"गरल पान करके तू बैठा
फेर पुतलियाँ कर पग ऐंठा
यह कोई कर सकता मुर्दे
तुझको अब उठ गाना होगा
विष का स्वाद बताना होगा।"

शायद आप यह कह सकते हैं कि मैं कामू का पुस्तक 'दि मिथ आफ सिसीफस' के प्रकाशन (१९५५) के पन्द्रह वर्ष पूर्व ही उसका अनुयायी था।

प्रश्न—अनुवाद, गीत, मुक्तछन्द, लोकगीत, गद्य और फिर अनुवाद; माध्यम का यह द्रुतगामी परिवर्त्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया रही है अथवा इसके पीछे कोई विवशता है ?

उत्तर—निर्मित के स्वरूप, सर्जक की मनोगति के बड़े सूक्ष्म प्रतिबिम्ब हैं। इसका अध्ययन बड़ी बारीकी, सहानुभूति और कल्पना प्रवणता से करना होगा कि सर्जक क्यों एक रूप को छोड़कर दूसरे की ओर झुक जाता है; परिवर्त्तन अकारण नहीं है। पर उसका विश्लेषण करने के लिए मुझे न कहें, शायद सृजन की अवस्था में वस्तुपरक दृष्टि बना लेना सम्भव भी नहीं।

प्रश्न—एक अकादमीय आलोचक का कथन है कि "बच्चन की समुचित प्रतिष्ठा एवं उचित मूल्यांकन नहीं मिला।" अत्यधिक लोकप्रियता के बावजूद भी क्या आप ऐसा महसूस करते हैं ?

उत्तर—मैं अपनी कविता की प्रतिक्रिया से पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ। मैं चाहता था मेरी वाणी लोगों को जीवन के प्रति, जीने के प्रति, जीवन के अनुभवों के प्रति अधिक सतेज कर, उन्हें अधिक पूर्णता के साथ जीने में सहायता दे। यह मेरी कविता ने किसी अंश में किया है। कविता की प्रतिष्ठा है कि वह जन-जीवन में प्रतिष्ठित हो सके, लोग उसकी आवश्यकता अनुभव करें, वे अपने उल्लास-अवसाद में उससे कुछ पा सकें, उसके द्वारा अपने को अभिव्यक्त कर सकें, उसमें जी सकें, उससे जी सकें। संख्या ही सब कुछ नहीं है। मैंने अपने सन्तोष के लिए कम से कम को स्वीकार किया था।

"है नहीं निष्फल कभी यह गीतमय अस्तित्त्व मेरा
प्रतिध्वनित यदि एक उर में एक क्षीण कराह मेरी"

आज तो मेरी एक कराह नहीं, कई कराहें एक से अधिक उर में प्रतिध्वनित हैं। जो कोर्स में लगने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REFRENCE BOOK

समालोचकों के पोथे का विषय बनने, पुरस्कार उपाधि मिलने को कविता या कवि की प्रतिष्ठा समझते हैं, उनकी बुद्धि पर तरस आता है। मैं इन सबको निस्संकोच एक अपरिचित के उस उद्गार पर निछावर कर सकता हूँ कि "मुझे आपकी कविता में शान्ति मिली है।" क्या आप विश्वास करेंगे कि कि ऐसा मुझसे बहुत से लोग बहुत बार कह चुके हैं। मेरा जीवन और सृजन असफल नहीं है।

प्रश्न—छोटे से छोटे पत्र का उत्तर भी आप तुरन्त देते हैं। निश्चित ही प्रतिदिन काफी समय पत्र लेखन में जाता होगा।

क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि उतने ही समय में बेहतर लिखना पढ़ना हो सकता था? जैसे कुछ बड़े लोग पत्र लेखन को समय एवं शक्ति का अपव्यय मानते हैं, क्या आपको भी वैसा नहीं लगता?

उत्तर—जब कोई दरवाजा खटखटाए, उठकर खोलना चाहिए। मानवता की उपेक्षा करके कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता। जीवित जाग्रत मनुष्य से विचार भावों के आदान-प्रदान से अधिक आवश्यक क्या हो सकता है। कविता लिखना? जी नहीं। "कविता तो इसीलिए लिखी जाती है कि मनुष्य मनुष्य के निकट जा सके। कविता अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारकर नहीं चल सकती।

प्रश्न—मुझे लगता है कि किसी विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर आपकी प्रतिभा का श्रेष्ठतम उपयोग हो सकता है (साहित्य के हित में) क्या आपको कभी ऐसी अनुभूति नहीं होती?

उत्तर—जीवन में कार्य करने को सदा अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलतीं। आज तक जैसी भी परिस्थितियाँ मिली हैं, उनमें यथाशक्ति-क्षमता कार्य करता रहा हूँ। अब अधिक अनुकूल परिस्थितियों के लिये बैठ कर रोऊँ, ऐसा मुझसे नहीं होगा। मेरा ऐसा विश्वास है कि मुझे जो कुछ भी करना चाहिए, वह मैं किसी भी परिस्थिति में बैठकर कर सकूँगा। मैं स्वयं अपनी बाधा बन सकता हूँ, मेरी परिस्थितियाँ नहीं। सृजन में जहां मनको केन्द्रित करना होता है, वहाँ परिस्थितियों की सीमाएँ टूट जाती हैं। मेरी क्षमताओं का कोई और उपयोग भी शायद हो सकता है : "सब जगह असमर्थ हूँ मैं, इसलिए ही तो नहीं तेरा हुआ हूँ" कविता इसलिए तो नहीं लिखता कि कुछ और नहीं कर सकता हूँ।

प्रश्न—हिन्दी कविता की वर्तमान गतिविधि तथा प्रगति से क्या आप सन्तुष्ट हैं?

उत्तर—हिन्दी कविता की जो गतिविधि है, उससे दूसरी हो भी नहीं सकती थी। उसके पीछे मजबूत ऐतिहासिक कारण हैं। असन्तोष का कोई कारण नहीं। साहित्य आगे ही बढ़ता है। पीछे जाकर भी आगे बढ़ता है। यह कम उपलब्धि नहीं कि हम जानें कि जो राह हमने पकड़ी, वह आगे बन्द है। इसलिए लौट आओ। यह भी प्रगति है। प्रयोग असफल हो कर भी सफलता ही देता है। जीवित जातियाँ और भाषाएँ निर्भीक प्रयोग करती हैं। हिन्दी की जड़ें मजबूत हैं। उसकी कोई शाखा सबके लिए अस्वस्थ दिशा में बढ़ती जाये : इसकी सम्भावना मैं नहीं देखता।

प्रश्न—'दिनकर'जी ने 'उर्वशी' लिखी। पन्तजी ने 'लोकायतन'। निकट भविष्य में क्या आप भी कोई महद् काव्य लिखने की दिशा में सोच रहे हैं?

उत्तर—साहित्य के परिवार में यह नहीं चलता "दादा नाचै मैं भी नाचूँ।" 'दिनकर' ने 'उर्वशी लिखी और पन्तजी ने 'लोकायतन', तो यह भी जरूरी नहीं कि मैं भी एक महाकाव्य लिखूँ। प्रतिभा का अनुकरण नहीं होता। मेरी ऐसी कोई योजना नहीं। यदा कदा जो भाव मेरे मनमें उठते हैं, उनके लिए अभी तो मैं छोटी कविताओं को ही पर्याप्त समझता हूँ। आकार को मैं बहुत महत्व भी नहीं देता। यों भी तो लघुता का भी कुछ महत्व है। सूरज को तृण बनने के लिए कहा जाये, तो बड़ी मुसीबत उसके सामने खड़ी हो जायगी। जिनके लिए बड़ा लिखना सुलभ है, उनसे यदि छोटा लिखने को कहा जाए तो वे कठिनता का ही अनुभव करेंगे। मैं अपने लिए जो सहज, साध्य, सुलभ समझता रहा हूँ, वही करता रहा हूँ। स्वधर्मे निधनं श्रेयः।

—गुजराज लॉज, रतलाम।

यह पुस्तक वितरित न की जाये
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन की काव्य भूमि

• • •

डा० मक्खनलाल शर्मा

उत्तर छायावादी व्यक्तिपरक कवियों में बच्चन को जो प्रमुख स्थान प्राप्य है, उसका कारण उनके काव्य की स्थूल मांसलता, रहस्यात्मकता का अभाव, कल्पनात्मकता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता तथा युवकोन्मुखी उत्तेजना मूलक स्थितियों का चित्रण है। बच्चन के काव्य को छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में जिन हिन्दी आलोचकों ने स्वीकृति प्रदान की है, उसे मैं स्थिति का अति सरलीकरण मानना चाहता हूँ।'[1] क्योंकि साहित्य और कला के क्षेत्र में क्रिया और प्रतिक्रिया का चक्र इतनी यांत्रिकता के साथ नहीं घूमता, जैसा कि कतिपय लकीर के फकीरों को दृष्टिगोचर होता है। कला और साहित्य के क्षेत्र में जब एक बार गतिशीलता आ जाती है तो उसके अपने नियम-उपनियम बन जाते हैं और एक सीमा तक उसका अपना प्रभाव बना रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि कलावादियों के समान मुझे कला और साहित्य का परिवेश निरपेक्ष मानना इष्ट है। मेरा अभिप्रेत इतना ही कि विकास की धारा का क्रम व्यापक और दीर्घकालीन साहित्येतिहास की पृष्ठभूमि पर ही सम्यक् रूप से विवेचित और मूल्याङ्कित हो पाता है। बच्चन का काव्य छायावाद का परिशिष्ट न होकर छायावाद और प्रयोगवाद के बीच की कड़ी है। छायावाद में हमें जिस प्रेम की परोक्ष तथा रहस्यमयी अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है, बच्चन के काव्य में वही स्थूल और मांसल रूप धारण कर लेती है। आगे चलकर जब इसी प्रेम भावना को मनोवैज्ञानिक यौन प्रतीकाधारित प्रयोगमूलक अभिव्यक्ति मिली तो प्रयोगवाद की भूमिका स्पष्ट हुई। विकास क्रम के ये परिमाणधारित चरण प्रतिक्रियात्मक नहीं हैं। यहाँ हमें उस गुणात्मक परिवर्तन के दर्शन नहीं होते जो प्रतिक्रिया की देन है।

भारतेन्दु युग के प्रादुर्भाव के साथ ही हिन्दी साहित्य में जिस नव्य चेतना ने जन्म लिया था उसमें वैज्ञानिक दृष्टि, भूत की वर्तमानाधारित पुनर्व्याख्या, वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति कामना, व्यापक मानवीय आयाम की स्वीकृति, समानता, स्वातन्त्र्य, व्यवहारोन्मुखी आदर्शवाद, वेदना, प्रश्नाकुलता, स्थापित के प्रति शंका एवं उसके उपस्थापन की आकांक्षा तथा नवीन-चेतना के अनुकूल प्रयोगशील अभिव्यंजना शिल्प की खोज आदि तत्त्व प्रमुख थे। परिवेशगत परिवर्तनों के साथ ही साथ ये तत्त्व क्रमशः विकसित होते हुए भारतेन्दुकाल तथा उसके उपरान्त उभरते रहे हैं और अभी यह प्रक्रिया जारी है, क्योंकि इस क्रम की चरम-सीमाओं का अभी स्पर्श नहीं हो पाया है। यह नवीन चेतना रीतिकालीन मध्ययुगीन चेतना से भिन्न तथा प्रतिक्रियामूलक थी। इसने कला और साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित सभी रूपों तथा मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था। छायोवदोत्तर व्यक्तिपरक काव्य इस दिशा की एक कड़ी है—इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है।

छायावादी काव्य ने जिस वैयक्तिक अनुभूति को अध्यात्मिक तथा कल्पनाशील अतीन्द्रिय आवरण में प्रस्तुत किया, उसे बच्चन ने आवरण के कुहासे से मुक्ति प्रदान कर ईमानदारी के साथ शरीर भूमिका

[1] डा० शम्भुनाथसिंह : प्रयोगवाद और नयी कविता, पृ० ६। डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० १०२ तथा ११२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रतिष्ठित किया। इसकी मांसलता, ऐन्द्रिकता एवं अभिधामूलक अभिव्यक्ति ने पाठकों की आकांक्षा की ही पूर्ति नहीं की, वरन् इस कोटि के काव्य के लिए जनरुचि भी विकसित की। बच्चन मूलतः कवि हैं, न कि तत्त्व चिंतक, अतः उन्हें जहाँ से भी अपने अनुकूल आधार भूमि मिली, उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि उन पर फारसी प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है किन्तु इस प्रकार की अनुभूतियों के लिए हमारे बीच भौतिक कारण उपस्थित थे अतः यह प्रभाव सहज ही स्वीकृत हो गया, आरोपित इसे नहीं माना जा सकता है।

बच्चन काव्य की भावभूमि जिन तत्त्वों से निर्मित है उनमें सर्वाधिक महत्त्व भौतिक प्रणय की स्थूल, अभिव्यक्ति का है।[१] स्थूल भावनाएँ अपने अतिवारी रूप में अश्लीलता की सीमा तक पहुँचती रही हैं, किन्तु रीतिकाल के कवि की अपेक्षा उनमें अनुभूति की घिसी-पिटी परम्परागत स्थितियों से भिन्न सर्वथा भौतिक तथा विद्रोह मूलवर्ती तत्त्वों का समायोजन है। बच्चन को सम्भवतः लगता रहा है कि जब बात कहनी है तो उसे सीधे-सीधे क्यों न कहा जाय? व्यर्थ ही उसे घुमाया-फिराया क्यों जाय? किन्तु कवि को सीधे-सीधे कहने में स्वच्छन्दता' कहाँ होती है? काव्य कथनमात्र मात्र नहीं होता है। अनुभूति की रागमयी अभिव्यक्ति में कवि जितना अधिक संयमशील बना रहता है। रचना उतनी ही शक्ति सम्पन्न सिद्ध होती है। बच्चन के काव्व में जहाँ इस संयम के दर्शन होते हैं, वहाँ काल्य उच्च भूमिका का स्पर्श करने में समर्थ होता है, यह बात दूसरी है कि ऐसे स्थलों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। शृङ्गार भूमियाँ परम्परागत ही हैं, विशेषता आकांक्षा की मुखरता की है, किन्तु 'बुद्ध और नाचघर' में कतिपय संयमशील मन की अनुभूतियाँ भी मुखरित हुई हैं।

बच्चन के काव्य में जिस निराशा के दर्शन होते हैं, उसी के कारण यह जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है। तत्कालीन परिवेश में यद्यपि संघर्षशील तत्वों का ही प्राधान्य था और छायावादी कवि कहीं प्रत्यक्षतः और मूल रूप में परोक्षतः इससे जुड़ा हुआ था, किन्तु उत्तर छायावादी काव्य जीवन से पलायन की प्रवृत्ति को स्वीकृति प्रदान कर चुका था, अतः वह स्वभावतः निराशावादी बनने को बाध्य हुआ। वेदना का जो तत्त्व मूलतः भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हुआ था, किसी-न-किसी रूप में द्विवेदी युग से होता हुआ छायावाद तक की यात्रा कर चुका था। छायावाद ने उसे अतीन्द्रिय के साथ जोड़कर अपने काव्य को गम्भीरतम भूमिका उड़ा दी थी, किन्तु बच्चन स्थूल रूप में सामने आने के कारण कोई आवरण नहीं डाल सकते थे। और साथ ही किसी आशावादी दृष्टिकोण से भी प्रभावित न थे, अतः उनका निराशावादी बन जाना स्वाभाविक था। मेरी सम्मति में इसके लिए कुछ कारण कवि के निजी जीवन में भी रहे होंगे, तभी इस तत्त्व को इतनी गहराई उपलब्ध हो सकी है। उसके विपरीत जहां कवि की निजी अनुभूति की कमी रही है, वहाँ न केवल अप्रामाणिकता है, वरन् काव्य भी अत्यन्त हीन तथा खोखलेपन से भरा हुआ है। इसका उदाहरण 'सूत की माला' है।

क्षयी रोमांस और मृत्यु कामना निराशावाद की अनिवार्य परिणतियाँ हैं जो इनकी कविताओं में मुखर हुई हैं।[१] शांत गोद में सदैव के लिए निमग्न हो जाने के लिए वे मृत्यु का आवाहन करते हैं, क्योंकि इसके अतिरिक्त संभवतः उनके सामने अन्य कोई मार्ग शेष नहीं रह गया है।

फिर न पड़े जगती में आना,
फिर न पड़े जगती से जाना।
एक बार गोदी में सोकर,
फिर मैं जाग न पाऊँ।।[२]

---

[१] अब तुम्हें उर लाज किसकी लग रही है
आँख केवल प्यार की अब जग रही है।
(मिलन यामिनी, ३३)

[१] एकांत संगीत से अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

[२] निशा-निमंत्रण : ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्रासशील प्रवृत्तियों से विजड़ित मन नियतिवादी बन जाय, यह स्वाभाविक ही है। बृहत्तर यथार्थ से अपने को काट लेने वाले व्यक्तिवादी लाचार कवि बच्चन जीवन के सम्मुख बिना शर्त समर्पण कर देते हैं। शक्ति और दृढ़ता का उनके काव्य से नहीं फूट पाता। कितनी विवशता है कि वे इस नियतिवाद को अपने काव्य में एक दर्शन का रूप देने की असफल चेष्टा भी करते हैं। नियतिवाद हमें प्रसाद में भी मिलता है, किन्तु वह एक विवशता न होकर एक स्थिति की स्वीकृति के रूप में है, जिससे संघर्षरत होना परम काम्य है, जब कि यहाँ स्थिति बिल्कुल भिन्न है। 'मिट्टी दीन, कितनी हाय !'[1] जैसी हीनता भरी लांछित गुहार प्रसाद में कहीं नहीं है, क्योंकि वे संघर्ष को जीवन की अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करते हैं। छायावादी कवि कहीं न कहीं अपनी निष्ठा की स्थापना कर पाने में समर्थ था, जबकि बच्चन को एक ओर तो यह आधार उपलब्ध न था और दूसरी ओर वे विज्ञानानुमोदित नवीन दृष्टि को अपनाने में असमर्थ रहे। संक्रान्ति के अनेक लक्षण इनके काव्य में उपलब्ध हैं, इससे प्रतीत होता है कि जिस युग में वे स्थित रहे, वह भारी सम्भावनाओं से ओतप्रोत था; यदि उनमें अनुकूलता होती तो जीवन्त परम्परा तथा भावी के आगत तत्वों को अनुस्यूति करके श्रेष्ठतर काव्य की रचना कर सकते थे। सम्भवतः इसकी बजह युग-बोध को उसकी समग्रता में ग्रहण कर पाने की अक्षमता रही है।

संघर्ष से पलायन करने वाला जहाँ कल्पनाजीवी बनता है वहीं घोर भोगवादी भी; तथा प्रेयसी के अंचल में स्थायी संरक्षण केन्द्र रच लेता है। वह क्षणवादी बनकर प्रत्येक क्षण का अधिकाधिक भोग करने को लालायित रहता है—

काल सागर में न क्षण-क्षण, ये कहीं खो जायँ
आदि होते ही न इनका, अन्त भी हो जाय
समय दुहराता नहीं यह, स्नेह का उपहार,
सुमुखि ये अभिसार के पल, चल करें अभिसार।[2]

---

[1] एकान्त संगीत : ५८
[2] सतरंगिनी : १५१

इस क्षणवाद की सार्थकता अधिकाधिक अतृप्ति में है। क्षणवादी प्रवृत्ति असंयम, आशावाद के अभाव, व्यक्तिगत कुण्ठा तथा नश्वरता की चेतना की फलश्रुति है; अतः इस क्षणवाद में ये सभी तत्त्व किसी न किसी रूप में प्रस्तुत हैं।

इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि बच्चन ने विद्रोह को एक सिरे से अस्वीकृत किया है। संक्रांति कालीन कवि होने के कारण वे उन आस्थाओं को नहीं बनाए रख सकते थे जो कालक्रमानुसार इतिहास बन चुकी थीं जैसे ईश्वर तथा धर्म आदि। इस दिशा में उनका विद्रोह स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके मूल में बुद्धिवाद है न कि भौतिकवादी दृष्टिकोण जैसी कि कतिपय समीक्षकों की धारणा है। यदि बच्चन भौतिकवादी रहे होते उनका विद्रोह केवल एक दिशा में ही अग्रसर न होता, वह बहुआयामीय बनता और निश्चित रूप से वे प्रगतिशील कवि बनकर बृहत्तर यथार्थ को रूपायित करते।

अन्त में एक बात और कि बच्चन की काव्य-प्रतिभा निश्चित ही प्रथम कोटि की नहीं है। (कवि सम्मेलनों में प्रसिद्ध प्राप्त करने को कोटि का निर्णायक मानते की भूल नहीं की जा सकती—इतना तो सिद्ध है ही।) उनकी कविताओं द्वारा न हमारा रागात्मक बोध समृद्ध होता है, और न भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के कतिपय ऐसे आयामों से ही साक्षात्कार होता है जो अब तक अज्ञात रहे हों। श्रेष्ठ काव्य में अन्य विशेषताओं के साथ एक विशिष्टता यह अवश्य रहती है कि वह पाठकों की कलात्मक अभिरुचि को समृद्ध और उत्कृष्टता प्रदान करती है। बच्चन की कविताएँ इस कसौटी पर स्तर से नीचे ही रह जाती हैं। बच्चन के काव्य के पीछे आवेग, आग्रहशील अनुभूतिपरकता, छालावाद की मस्ती तथा अभिव्यक्ति की अभिधेयता एवं तीखापन तो विद्यमान है, किन्तु, अनुभूति के उन गहन स्तरों का परिचय नहीं मिल पाया जिनके दर्शन खैयाम, टी. एस. ईलियट और मुक्तिबोध में होते हैं।

—जे ११/२६, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी रचना प्रक्रिया

• • •

बच्चन

आपने यह कहावत किसी न किसी मौके पर जरूर सुनी होगी. 'आपको आम खाने से मतलब है कि पेड़ गिनने से ?' मैंने कविताएँ लिखी हैं, छपाई हैं, सुनाई हैं; आप उन्हें पढ़-सुनकर उनसे किसी प्रकार का आनन्द प्राप्त करते रहे हैं और अब आपकी जिज्ञासा यह जानने की हुई है कि मैं कविता कैसे लिखता हूँ, कब लिखता हूँ, कहाँ लिखता हूँ, क्यों लिखता हूँ आदि आदि। यदि कविता का रस लेना आपके रस लेने—जैसा ही होता तो मैं ऊपर की कहावत को दुहरा कर आपका मुँह बन्द कर देता। पेड़ गिनने से आम के रस के स्वाद में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने को है, पर कविता के सम्बन्ध में यदि इन प्रश्नों का उत्तर दे दिया जाये या जान लिया जाये तो इसके रस में अन्तर आ जाएगा। कभी जिज्ञासा के आधार पर कविता का आस्वादन करने वालों को दो दलों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो वह जो कविता से मिलने वाले आनन्द पर ही सन्तुष्ट हो जाता है और फिर उसके विषय में कोई प्रश्न नहीं पूछता। दूसरा वह जिसमें हृदय के साथ मस्तिष्क, भावना के साथ बुद्धि भी सक्रिय होती है और वह कविता के विषय में इस प्रकार की जिज्ञासाएँ रखता है। यह वही प्रवृत्ति है जो विकसित होकर समालोचक को जन्म देती है। जाहिर है कि केवल आनन्द लेने वालों का दल बड़ा और समालोचकों का दल छोटा है। यह प्रकृति अस्वाभाविक नहीं है। लोग आम भी खाते हैं और पेड़ भी गिनते हैं। नहीं तो वह कहावत न बनती।

लेकिन पेड़ गिना देना जितना सरल काम है उतना यह बता देना नहीं कि रचना कैसे की जाती है। रचना यदि सच्चे अर्थों में रचना है, जिसमें रचनाकार का परिपूर्ण व्यक्तित्व तल्लीन है तो वह सृजनात्मक प्रक्रिया है। सृजन कैसे होता है, इसे जानना या बतलाना विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। और यह सर्वमान्य धारणा है कि सृजन के क्षण में विश्लेषण और विश्लेषण के क्षण में सृजन नहीं हो सकता। रचना-प्रक्रिया जानने की जिज्ञासा है भी तो उसे सम्यक् रूप से शान्त करने के लिए कोई सर्जक समर्थ हो सकेगा, इसमें मुझे में सन्देह है। केवल रचना के विश्लेषण में भी रचना-प्रक्रिया का अनुमान भर किया जा सकता है, ज्ञान नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि रचना-प्रक्रिया का रहस्य पूरी तरह से नहीं खुल सकता, और इस रहस्य में किसी भी बड़ी रचना का सौन्दर्य निहित है।

मैं अभी बहुत-सी रचनाओं के पीछे देखने का प्रयत्न करता हूँ, तब मुझे लगता है कि उनका जन्म मेरे अनुभवों से हुआ है। जिन अनुभवों को मैंने किसी दिन अनोखा, अद्भुत, एक मात्र मेरा समझा था, अब मैं समझता हूँ कि उनमें कुछ भी ऐसा नहीं था। लेकिन उनकी प्रतिक्रिया अवश्य ही मेरे भाव-प्रवण मन में तीव्र, तीखी, बेचैन करने वाली रही होगी, क्योंकि यदि वह ऐसी न होती तो मुझे उन्हें अभिव्यक्त करने, उन्हें रूपमय और रसमय बनाने को विवश न करती। मैंने अपने अनुभवों की परिधि व्यापक रखी है, मैंने उनके अन्दर कल्पना को भी जगह दी है। पर कोई कल्पना क्यों इतनी सजीव होती है कि वह अनुभवों से अधिक प्राणमयी लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, इसे बताना मनोवैज्ञानिकों का काम है। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि ऐसा होता है। अनुभवों की प्रतिक्रिया में समान कल्पना की प्रतिक्रिया भी अमल होती है और अभिव्यक्ति में सुख का अनुभव होता है, एक तरह की राहत मिलती है।

जब पहली बार मेरी अनुभूति शब्दों में फूट पड़ी थी, तब मैंने अवश्य अपने से यह प्रश्न किया था कि क्या में कवि हूँ? कवि हूँ तो 'काविहि अरथ आखर बल साँचा' कवि हूँ तो मुझे शब्दों के माध्यम से अपने को व्यक्त करना होगा। इस कारण शब्दों के माध्यम पर मुझे अधिक अधिकार प्राप्त करना चाहिए, साहित्य के स्वाध्याय से, काव्य-पाठ से, काव्य के मर्म को समझने के प्रयत्न से। में हिन्दी, अंग्रेजी, थोड़ी संस्कृत और थोड़ी उर्दू जानता हूँ, बहुत थोड़ी बँगला भी, और उनके माध्यम से जो कुछ साहित्य काव्य पढ़ने को मुझे मिला है, उसका मैंने अध्ययन किया है। अब भी समय मिलने पर पढ़ता रहता हूँ। मैं नवयुवक कवियों को अवसर सलाह देता हूँ कि सौ पेज पढ़ो तब एक पंक्ति लिखो। मेरे पढ़ने-लिखने का अनुपात लगाया जाए तो मैं पर-उपदेश कुशल ही नहीं सिद्ध हूँगा।

अनुभवों में डूबे और अभिव्यक्ति के माध्यम पर यथासम्भव अधिकार प्राप्त करके मैंने अपने को प्रेरणा पर छोड़ दिया है। प्रेरणा के अस्तित्व को मैं मानता हूँ। किसी मन.स्थिति में, किसी परिस्थिति में, किसी घटना से, किसी दृश्य से, किसी विचार से सर्जक की वह प्रवृत्ति सहसा जाग उठती है जो सृजन के लिए विवश करती है। इसको अंग्रेजी में 'अर्ज' कहते हैं। हिन्दी में उसके जोड़ का कोई अच्छा शब्द मुझे नहीं सूझ रहा है। 'धुन सवार होना' आप चाहें तो कह सकते हैं। प्रेरणा मिली हो और लिखने की 'अर्ज' भीतर से हुई हो तो मेरा ऐसा अनुभव है कि रचना अच्छी होती है। कवि को कभी-कभी बिना अन्त-प्रेरणा के और बिना भीतरी 'अर्ज' के लिखना पड़ सकता है। शब्दों पर अधिकार होने के कारण वह कोई ऐसी रचना तो कर ही सकता है जो शुद्ध हो, साधारण दृष्टि से बुरी न हो। परन्तु अच्छी रचनायें जो सर्वश्रेष्ठ होती हैं वह प्रयत्न से नहीं, प्रेरणा से आता है। वह उत्पादित नहीं किया जाता है। वह मिलता है, वह दिया जाता है। इसके लिये भी अंग्रेजी में एक बड़ा अच्छा शब्द है, वह 'रिवील्ड' होता है। उसके लिए जैसे कोई दिव्य दृष्टि दे देता है। वह अपनी शक्तियों, योग्यताओं के किसी रहस्यमय संघात से सम्भव होता है, एक सर्वथैव किसी बाहरी शक्ति से, इसे निश्चयपूर्वक नहीं कहता। यदि कोई बाहरी शक्ति है, तो भी वह माध्यम अथवा क्षेत्र के अधिकारी होने का ध्यान रखती होगी, नहीं तो हमें अपनी अद्भुत प्रतिभा से चकित करने वाले बहुत से लोग मिलते। बिना कागद-मसि छुए कितने कबीर हुए हैं?

किसी कवि के लिए आदर्श परिस्थिति तो यही हो सकती है कि जीवन और साहित्य के स्वाध्याय से परिपक्व होकर वह प्रेरणा की प्रतीक्षा करे और अपनी 'अर्ज' के अनुसार लिखने को स्वतन्त्र हो। मुझे दुर्भाग्यवश ऐसी परिस्थितियाँ सदा नहीं मिलीं। मैं शत-प्रतिशत कवि नहीं रह सका। मुझे अपने और अपने ऊपर निर्भर रहने वालों के लिए जीविका के साधन जुटाने को प्राय: सदा ही कुछ ऐसा काम करना पड़ा है जो सृजन की पूरी स्वतन्त्रता नहीं देता। मुझे क्लास में पढ़ाते हुए भी प्रेरणा हुई है, कचहरियों के इजलास पर भी, परेड के मैदान में भी सरकारी दफ्तरों की फाइलों के बीच भी। और सदा मैंने उन्हें सँजोकर किसी सुविधाजनक समय पर उनका उपभोग करने का प्रयत्न किया है। कुछ प्रेरणाएं क्षिप्रगामी विहंगों के समान भी थीं, वे मेरी मस्तिष्क की क्षीण तालियों को तोड़ कर निकल भी गई हैं और मैं उन्हें फिर नहीं पकड़ पाया। कभी-कभी प्रेरणा पाने पर 'अर्ज' के साथ-साथ चलने का सुअवसर भी मुझे मिला है। कभी मैंने ऐसा भी अनुभव किया है कि रचना की सुविधाजनक परिस्थितियों की प्रतीक्षा करने के कारण प्रेरणा ने कुछ खोया नहीं, वह भीतर ही भीतर और परिपक्व हुई है। सदा प्रेरणा के क्षणों में रचना करने से रचना उत्तम ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई हो, ऐसा भी नहीं कह सकता; मन को शायद अधिक सन्तोष भले ही मिल जाता हो। समय पर न लिख सकने की असमर्थता से जैसे बड़ी कोफ्त होती है। पर मन के सन्तोष अथवा कोफ्त से रचना के अच्छी-बुरी होने का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं मान सकता।

रचना करते समय भाव-विचारों की अभिव्यक्ति ही मेरा मुख्य ध्येय होता है। शब्दों अथवा अभिव्यंजना के नये प्रयोगों के लिये लिखना मुझे अस्वाभाविक लगता है। जीवन के प्रयोग की अवस्था चल रही हो तो अभिव्यक्ति का प्रयोग स्वाभाविक हो सकता है। किस रचना के लिए मैं किस प्रकार का छन्द, किस प्रकार की शैली, किस प्रकार के रूपक का उपयोग करूँ? इसे मैं पहले से नहीं सोच पाता। यह सब मैं अभिव्यंजना के लिए व्याकुल होने वाले अनुभवों पर छोड़ देता हूँ। एक उदाहरण है—मैंने लगभग १९३० से लिखना शुरू किया था और लगभग १२ वर्ष तक तुकान्त छन्दों में ही लिखता गया। १९४२ में बङ्गाल के अकाल के प्रति मेरे मन में जो प्रतिक्रिया हुई, वह सहसा छन्दों का बाँध तोड़ मुक्त छन्द में प्रवहमान हुई। मैं समझता हूँ कि यदि मैं 'बङ्गाल का काल' छन्दमय भाषा में लिखता तो वह शायद इतनी सबल रचना न होती। २८ वर्ष तक खड़ीबोली में लिखने के पश्चात् और उसमें यत्किंचित अधिकार प्राप्त करने पर भी जब मेरे मन में 'गीता' का अनुवाद करने की प्रेरणा हुई तब मैंने उसे अवधी में किया। मेरा विश्वास तो यही है कि 'गीता' की आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, गरिमा उसी भाषा और शैली में अपनी कुछ झलक दे सकती थी जिसमें 'रामचरित मानस' लिखा गया था। इन बातों में कवि की प्रेरणा कहाँ तक सच्ची थी, इसे समय ही बता सकता है।

संक्षेप में रचना प्रक्रिया, जहाँ तक मैं अपने को समझ सकता हूँ, यही है। रचना-प्रक्रिया कोई रूढ़ि नहीं। कोई किसी की बताई प्रक्रिया का अनुकरण कर लेखक अथवा कवि बनना चाहे तो उसे कठिनता होगी। सच तो यह है कि अपनी प्रवृत्ति के अनुसार हर लेखक का अपनी प्रक्रिया स्वयं बनानी पड़ती है। मस्तिष्क की साधारण प्रक्रियाएँ भी बड़ी रहस्यमय हैं। मनोवैज्ञानिक अभी उनका क ख ग भर जान पाये हैं। सृजन की प्रक्रिया का फिर क्या कहना, जिनमें अपना ही नहीं, जन-मानस, युग-मानम, परम्परागत मानस एक साथ काम करते हैं। इन सबको एक साथ जगा, एक ध्येय पर लगा, एक परिपूर्ण कृति में कैसे परिणत किया जाए, बड़ी पेचीदा और कठिन समस्या है। पर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि एक बड़े कवि ने उसे बड़ी आसानी से हल कर लिया था। उसकी प्रेरणा बड़े सेबों की दुर्गन्ध में जागती थी। वह अपनी मेज की दरार सेबों से भरी रखता था और उनको खोलते ही उसकी भारी सृजन शक्ति सजग और सक्रिय हो उठती थी।

—१३, विलिंगडन क्रिसेंट, नई दिल्ली–११

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ सदस्य ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलतः हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अतः सभी सदस्य अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वतः ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिये

बहुत दिन बीते—लेखक–हरिवंशराय बच्चन, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, पृष्ठ १६४, मूल्य ६.००

'बहुत दिन बीते' कवि की इसी आधार भूमि की काव्य-कृति है। यह रचना ठीक उसी समय की है जबकि कवि अपनी षष्ठी के स्वागत को चल पड़ा था। इस काव्य-संकलन की समस्त रचनाएँ बंध मुक्त छन्द में हैं जिनकी छोटी बड़ी कुल मिलाकर संख्या ६६ है। अधिकांश रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनका जन मानस ने खुलकर आनन्द उठाया है। इसमें कवि ने अतीत को वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से साधने का प्रयास किया है परन्तु जहाँ इसमें नवीनता का आग्रह है वहाँ प्राचीन विचार-भूमि का मोह भी है। कवि ने अपनी विशेष व्यंजनात्मक शैली एवं सीधी भाषा द्वारा युग की खोखली मान्यताओं एवं आदर्श के आवरण में व्याप्त वंचक जघन्य क्रिया कलापों पर बड़ा ही तीक्ष्ण प्रहार किया है। 'खलयुग का कोरस' में कवि ने कितने सँधे अंदाज से कहा है :—

'जुल्म सुना तो तुमने कानों उँगली धर ली,
भ्रष्टाचार दिखा तो आँखों पट्टी धर ली,
चुप्पी साधी, खुलकर खेली गुण्डा गर्दी।
ओ गांधी के बंदर तीनों, लाज-दया हो,
लाल करो मुँह अपना-अपना मार तमाचे।''

सचमुच अब का कवि, लगता है' साठे का पाठा—विचारों का पाठा बन गया है। आज के बेमेल युग में कवि मधुशाला-मधुबाला सब कुछ भुलाकर 'घबराए मन से' यह अनुभव कर रहा है ;—

लेकिन रंजो-शोरों के इस अंदेसे में,
हर रंग आँख में गड़ता है,
हर शोर होड़ में लगा हुआ,
....

आज तो कवि जनगण को मधुशाला का आमंत्रण नहीं दे रहा है।

कवि की कृति की सबसे बड़ी कसौटी, उसका चिंतक-जीवन है, उसकी अनुभूति की गहराई की पकड़ एवं जन-सामान्य के जीवन की व्यंजना है। '१६–१–६६' कविता में कवि का प्रबुद्ध चिंतन स्पष्ट लक्षित होता है। 'नेता-अभिनेता', 'बदली दुनिया', 'कोल्हू के बैल का विद्रोह', 'द्वासुपर्णा', 'कदम बढ़ाने वाले : कलम चलाने वाले', 'क्यों जीता हूँ', 'किनारा कसौटी है', 'वक्त का एलान', 'टूटा हुआ इन्सान', काफी सशक्त रचनाएँ हैं। लगता है कवि आज ताल ठोक कर युग की अनीतिता को चुनौती देने को कटिबद्ध खड़ा है।

किन्तु 'साठे का पाठा' के साथ ही लगता है, किसी ने जो कहा है, 'साठे पर सठियाना' बहुलांशतः सही है। नवीनता के पिष्टपेषण में बहता-बहता कवि कुछ ऐसी बातें ऐसे ढङ्ग से कह गया है कि कुछ अजीब-सा लगता है। 'अ—गणित का पहला पाठ', 'ईर : बीर : फत्ते : हम', 'तख्ता पलटने का खेल', 'फूल', 'कोयल: कैक्टस: कवि', 'कचनार की कली', आदि कविताएँ कुछ हल्की-फुल्की व्यंजना लिए हुए बच्चों का खेल-सी लगती है, हो सकता है नया बच्चन चिहुँक पड़ा हो तुतली-अटपटी वाणी में। सम्भवतः इसलिए भी कि बहुत दिनों तक काफी कह लेने पर भी 'मिला खुदा भी नहीं विसाले सनम भी नहीं, ओ, बक-बक-थक बीते-रीते'। समग्रतः 'बहुत दिन बीते' में कवि की बहुप्रतिभा धारिणी कला एवं चिंतना द्रष्टव्य है ; कहीं तो बचपन-सा भावों का चुलबुलापन, कही बुढ़ापे की थकान तो कही दुर्वह चिंतना की रेखा-शिकने। ''अश्व थककर और रथ की चूल-चूल हिली हुई, ढीली पड़ी है—

काश उसका पंथ-क्रन्दन,
तुम श्रवण करते कहीं से !

समग्रतः यह वक्तव्य सङ्कलन भी जन-मन द्वारा अभ्यर्थित होगा, ऐसी आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चनजी की साठवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में

लोकप्रिय बच्चन

आधुनिक हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय ओजस्वी कवि श्री हरिवंशराय 'बच्चन' के जीवन, व्यक्तित्व, काव्य, मुख्य प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन और

गद्यकार बच्चन की उपलब्धियाँ आदि पक्षों पर

लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों और समीक्षकों के श्रेष्ठ निबन्ध और संस्मरण

सम्पादक—श्री दीनानाथ 'शरण' एम. ए.

बच्चनजी की जीवनी और रचनाओं पर

उत्कृष्ट संग्रहणीय ग्रन्थ

डिमाई अठपेजी : पृष्ठ १७५ सजिल्द

बढ़िया कागज और छपाई

मूल्य केवल पांच रुपये

इस वर्ष के हमारे अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास

लेखक : प्रो० रामप्रसाद मिश्र एम० ए०, पी-एच० डी० काल एवं युग निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति पर हिन्दी साहित्य की विवेचना विभिन्न भारतीय एवं विश्व के प्रमुख साहित्यों के निकट रखकर संक्षिप्त कलेवर में अधिक से अधिक सामग्री

डिमाई अठपेजी : पृष्ठ ३८०

सजिल्द मूल्य ९.००

प्रभातकुमार मुखर्जी की कहानियाँ

बंगला के प्रसिद्ध कहानीकार श्री प्रभात कुमार मुखर्जी की श्रेष्ठ कहानियों का संकलन

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की ओर से प्रकाशित

सजिल्द मूल्य ६.५०

श्रेय और साधना

लेखक—श्री योगेश्वरजी

उपन्यास से भी अधिक रोचक इस पुस्तक में लेखक के अपनी साधना के अलौकिक अनुभव, संतों, ज्ञानियों और महापुरुषों से साक्षात्कार एवं यात्रा संस्मरण प्रस्तुत हैं अपने ढंग की अनूठी पुस्तक

पृष्ठ ४.०० सचित्र, **सजिल्द मूल्य ८.५०**

अग्रिम मूल्य भेजकर मँगाने पर डाक खर्च की छूट

प्रकाशक

साहित्य निकेतन

श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

निम्नलिखित ग्रन्थ योग्यतम लेखकों द्वारा रचित हैं तथा आपके पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है। अत: इन्हें अपने पुस्तकालय के लिये खरीदकर अनुग्रहीत करें।

शोध प्रबन्ध (Thesis)

१. प्रेमचन्द का नारी-चित्रण	:	डॉ० गीता लाल	२५.००
२. रीतिकालीन अलङ्कार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन	:	डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री	२५.००
३. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य	:	डॉ० सियाराम तिवारी	२२.००
४. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत	:	डॉ० वचनदेव कुमार	२०.००
५. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति	:	डॉ० सुषमा नारायण	२०.००
६. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास	:	डॉ० कैलाश प्रकाश	१२.५०
७. करुण रस	:	डॉ० व्रजवासीलाल श्रीवास्तव	१२.५०
८. हिन्दी साहित्य में हास्य रस	:	डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी	१०.००
९. मगही लोक-साहित्य	:	डॉ० सम्पत्ति आर्याणी	१०.००
१०. मगही व्याकरण कोश	:	"	७.५०

शोध-निबन्ध

११. निराला की काव्य-साधना	:	सुश्री वीणा शर्मा	६.००
१२. सूरसागर में लोक-जीवन	:	डॉ० हरगुलाल	८.५०
१३. कुरुक्षेत्र-मीमांसा	:	प्रो० कान्तिमोहन शर्मा	७.५०

आलोचनात्मक ग्रन्थ

१४. विद्यापति और उनकी पदावली	:	प्रो० देशराजसिंह भाटी	१८.००
१५. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	:	डॉ० शत्रुघ्नप्रसाद	१५.००
१६. विमर्श और निष्कर्ष	:	डॉ० सरनामसिंह शर्मा	१२.५०
१७. सूरदास और उनका भ्रमरगीत	:	प्रो० दामोदरदास गुप्त	१२.५०
१८. हिन्दी साहित्य: सर्वेक्षण और समीक्षा	:	प्रो० श्यामनन्दनप्रसादसिंह	१०.००
१९. सरल भाषा-विज्ञान	:	डॉ० मनमोहन गौतम	८.००
२०. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास	:	डॉ० रामरतन भटनागर	७.५०
२१. गोदान : सौन्दर्य और समीक्षा	:	प्रो० रामकृष्ण मिश्र	७.५०
२२. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	:	प्रो० रामप्यारे तिवारी	६.५०
२३. अनुसंधान का विवेचन	:	डॉ० उदयभानु सिंह	६.००
२४. जायसी एक विवेचन	:	प्रो० देशराजसिंह भाटी	५.००
२५. कविता और हिन्दी कविता	:	श्री नरेश	५.००
२६. नाटक की रूपरेखा	:	प्रो० दशरक्ष झा	५.००
२७. नयी कविता का स्वरूप-विकास	:	प्रो० श्यामसुन्दर घोष	५.००
२८. कामायनी में शब्दशक्ति चमत्कार	:	डॉ० विमलकुमार जैन	५.००
२९. संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	डॉ० महेन्द्रकुमार सिंहल	४.००
३०. समीक्षा-तत्व	:	डॉ० ओमप्रकाश शर्मा	३.००

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली—६ : : पटना—४

N. B.—हमारा बृहद् सूचीपत्र नि:शुल्क मंगाइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए सामयिक प्रकाशन के दो अभिनव ग्रन्थ

भारतीय काव्य शास्त्र

सम्पादक : डा० उदयभानुसिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय काव्यशास्त्र के विविध पक्षों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित १३ निबन्धों का यह सङ्कलन अपने विषय की समस्त सामग्री का सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत करता है। यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ पुस्तकालयों अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के लिए संग्रहणीय हैं।

मूल्य : पुस्तकालय संस्करण १४.००
छात्र संस्करण ७.५०

सुन्दर छपाई और साज सज्जा

महाकवि विद्यापति : स्थापना और विवेचन

सम्पादक : डा० कृष्णनन्दन 'पीयूष'
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

इस ग्रन्थ में मैथिलकोकिल विद्यापति की पदावली के विभिन्न पन्तों पर चौबीस सुधी समालोचकों द्वारा प्रकाश डाला गया है। महाकवि विद्यापति पर लिखा अपने ढङ्ग का यह पहला ग्रन्थ है, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी, पुस्तकालय तथा अध्यापकों को लाभ पहुँचेगा।

मूल्य : पुस्तकालय संस्करण १३.००
छात्र संस्करण १०.००

सुन्दर छपाई और साज सज्जा

हमारे तीन प्रथम प्रकाशन

१—छायावाद : सम्पादक : डा० उदयभानुसिंह पुस्तकालय संस्करण ९.००
छात्र संस्करण ६.५०

इस ग्रन्थ में अपनी-अपनी भावयिनी शक्ति के अनुसार विभिन्न विद्वानों ने छायावाद के स्वरूप-निरूपण, उसकी बाह्यांतर विशेषताओं के गुण-दोषों के विवेचन का श्लाध्य प्रयत्न किया है। रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, नामवरसिंह आदि प्रतिष्ठित आलोचकों एवं जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, रामधारीसिंह 'दिनकर', सुमित्रानन्दन पन्त आदि समादृत कवियों के तत्सम्बन्धी विचार महत्वपूर्ण और मननीय हैं। छायावाद उनके छायावाद-विषयक विचारों का निबन्ध संग्रह है।

२—नन्ददास : लेखक—रमेशकुमार खट्टर : १५.००

विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में नन्ददास के व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रामाणिक विवेचना की है। नन्ददास मध्यकाल के प्रसिद्ध आचार्य कोटि के भक्त कवि हैं। अष्टछाप-काव्य में वे सूर के उपरान्त द्वितीय स्थान के अधिकारी हैं। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य के अधिकारी लेखक की समर्थ लेखनी से प्रणीत यह ग्रन्थ नन्ददास-विषयक प्रामाणिक और अधुनातन सामग्री के अभाव की पूर्ति करेगा।

३—कोयले का टुकड़ा : लेखक—मु० वरदराजन : ५.५०

यह मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल विभाग के अध्यक्ष प्रो० मु० वरदराजन का एक बहुचर्चित उपन्यास है। लंगड़े कलाकार मोहन और निर्मला के असफल वैवाहिक जीवन के संदर्भ में वरदराजन ने आज की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया है। मर्यादित शैली में लिखे इस तमिल उपन्यास का हिन्दी अनुवाद किया है—डा० एन० सुन्दरम् ने।

सामयिक प्रकाशन

२, अनसारी रोड, दरियागंज दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय
तथा
पाठकों के लिए पठनीय

हास्य-व्यंग्य-साहित्य

सोने के दाँत	डा० संसारचन्द्र	४.३७
चाचा चौधरी	डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी	४.३७
मूँछ पुराण	,,	४.३७
महामति चाणक्य राजदूत बने	,,	४.३७
गणित के गणेश	भुवनेश्वरीप्रसाद 'भुवन'	४.३७
खाट पर हजामत	रोशनलाल सुरीरवाला	४.३७
बिल्लू साहब	डॉ० ओमुप्रकाश	४.३७
तिकड़म बनाम तिकड़म	प्रो० श्यामसुन्दर घोष	४.३७
थर्ड डिवीजन	ओमुप्रकाश शर्मा 'आदित्य'	४.३७

नाटक

शाहजहाँ के आँसू	प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा	३.००
आदर्श एकांकी	सन्तराम विचित्र	४.००
चन्द्रावली नाटिका (भारतेन्दु)	भूषण 'स्वामी'	१.५०
भारत दुर्दशा (,,)	,,	१.५०
मुद्राराक्षस (,,)	कृष्णदेव शर्मा	२.००
शकुन्तला नाटक (लक्ष्मणसिंह)	,,	२.००

उपन्यास और कहानियां

पुरुष और महापुरुष	हिमांशु श्रीवास्तव	३.५०
घाटी की परियाँ	खलील जिब्रान	३.५०
उन्नीस कहानियाँ	प्रि० बंगालीसिंह	४.५०
हिन्दी कहानियाँ	भूषण 'स्वामी'	३.००

कविता

ओ अजन्मा सुनो	डॉ० बचनदेवकुमार	५.५०
पाषाणी	डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी	५.००
आग और आकर्षण	जीवनप्रकाश जोशी	३.००
सुदामा-चरित (नरोत्तमदास)	कृष्णदेव शर्मा	१.५०
गंगालहरी (पद्माकर)	प्रो० दीनानाथ शरण	१.५०
प्रेममाधुरी और स्फुट कविताएँ (भारतेन्दु)	डॉ० रणधीर सिन्हा	२.५०

हिन्दी की सभी प्रकार की पुस्तकें हमसे मंगावें तथा हमारा सूचीपत्र मुफ्त प्राप्त करें।

हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६ और पटना-४

२५% कमीशन पर
हमारे छात्रोपयोगी प्रकाशन
(प्रश्नोत्तर रूप में)

१. पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त :	डा० देशराजसिंह भाटी	४.००
२. भारतीय काव्य-सिद्धान्त :	,,	४.००
३. साहित्यालोचन-सिद्धान्त :	डा० मनमोहन गौतम	२.५०
४. हिन्दी-साहित्य का इतिहास :	प्रो० भारतभूषण 'सरोज'	२.५०
५. हिन्दी भाषा का इतिहास :	डा० देशराजसिंह भाटी	२.५०
६. संस्कृत साहित्य का इतिहास :	डा० महेन्द्रकुमार	३.५०
७. भाषा-विज्ञान :	प्रो० भारतभूषण सरोज	२.५०
८. साकेत-समीक्षा :	डा० ओमुप्रकाश सिंहल	२.००
९. प्रियप्रवास-समीक्षा :	,,	२.००
१०. कामायनी-समीक्षा :	प्रो० ओमुप्रकाश शर्मा	२.००
११. अशोक के फूल :	अध्ययन : प्रो० रतनलाल शर्मा	२.००
१२. सिन्दूर की होली :	विवेचक प्रो० रतनलाल शर्मा	२.००
१३. कुरुक्षेत्र-समीक्षा :	प्रो० लक्ष्मणदत्त गौतम	२.००
१४. मृगनयनी-समीक्षा :	प्रो० कृष्णदेव शर्मा	२.००
१५. संयासी-समीक्षा :	प्रो० रुद्रदेव शर्मा	२.००
१६. सूरदास :	प्रो० दामोदर दास गुप्त	३.००
१७. तुलसीदास :	,,	३.००
१८. कबीर :	प्रो० भारतभूषण 'सरोज'	२.५०
१९. केशवदास :	प्रो० ओमुप्रकाश शर्मा	३.००
२०. प्रसाद :	प्रो० राजेन्द्रमोहन भटनागर	३.००
२१. कविवर पन्त :	प्रो० भूषण स्वामी	३.००
२२. विकास-अध्ययन :	,,	१.५०
२३. विश्वास का बल : अध्ययन :	प्रो० कृष्णदेव शर्मा	३.५०

वी० पी० से पुस्तकें भेजने का हमारे यहाँ सुप्रबन्ध है। हिन्दी की सभी परीक्षाओं की पुस्तकें हमसे मँगाई जा सकती हैं। हमारे सम्पूर्ण प्रकाशनों का सूचीपत्र मुफ्त मँगावें।

हिन्दी साहित्य संसार,
१५४३ नई सड़क, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश सरकार आह्वान करती है

उन्नीसवें गणतन्त्र दिवस के पुनीत पर्व पर

अन्न में आत्मनिर्भरता, उत्पादन में वृद्धि, साधनों के विकास के लिए

किसान, मजदूर, बुद्धिजीवी वर्ग सभी

लगन और उत्साह से कठिन परिश्रम

के साथ-साथ

राष्ट्रीय बचत योजना में

अधिक से अधिक योगदान

तथा

परिवार कल्याण नियोजन विधियों

को अपना कर

विकास कार्यों में तेजी लायें और नये समाज की रचना

में सहायक बनें।

—

सूचना विभाग उत्तरप्रदेश द्वारा प्रसारित।

शुक्रनली को पुनः जोड़ना अब सम्भव

छोटा परिवार ● सुखी परिवार

यदि आपने नसबन्दी करा ली है पर बच्चा पैदा करना चाहते हैं तो कटी हुई शुक्रनली को फिर से जोड़ा जा सकता है।

परामर्श कीजिए—

किंग जार्ज मेडिकल कालेज, लखनऊ के प्लास्टिक सर्जरी विभाग के प्रोफेसर से

स्थान—**आउट पेशेन्ट डिपार्टमेन्ट**

समय—**प्रति शुक्रवार को ९ बजे से ११ बजे प्रातः**

विवरण के लिए जिला परिवार नियोजन अधिकारी से सम्पर्क स्थापित कीजिए।

छोटा परिवार ● सुखी परिवार

परिवार नियोजन विभाग के लिए सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, द्वारा प्रसारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ये हैं स्कूल अध्यापक । बड़े विनयी और उदार । अपने छात्रों का जीवन बनाने के लिये इन्होंने तन-मन-धन से सेवा की है । इनकी बहुमूल्य सेवाओं के लिये इन्हें राज-पुरस्कार मिला । "क्या यह सम्मान ही सफलता का रहस्य है ?" यह पूछे जाने पर इन्होंने कहा—"कुछ और भी है । सच्ची लगन और त्याग । मैं यह सब कर सका क्योंकि मुझे घर की चिन्तायें नहीं हैं । जीवन से सन्तुष्ट हूं । दो ही बेटियां हैं मेरी । एक कालेज में लेक्चरार है । दूसरी डाक्टरी पढ़ रही है । दोनों अपने अपने रास्तों पर हैं । मैं उनकी तरफ से निश्चिन्त हूं !

बच्चे कम हों तो सब कुछ आसान हो जाता है । न परेशानी न झंझट और जीवन सुख से कट जाता है ।"

ये खुश हैं —

और आप ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे अभिनव प्रकाशन

साहित्य : राजनीति : किशोर-साहित्य

बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन

आचार्य पद्मसिंह शर्मा

बिहारी-सतसई के दोहों का संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू तथा फारसी के समानार्थक सूक्तियों से सजीव, ओजस्वी और हृदय ग्राहिणी भाषा में विद्वत्तापूर्ण तुलनात्मक समीक्षा के साथ-साथ सतसई के काव्य-सौष्ठव पर विस्तृत विवेचन हुआ है।

मूल्य : राज संस्करण १२.५०
,, : सामान्य ,, १०.००

साहित्य : विश्लेषण और परख

डा० हरगुलाल

हिन्दी की उच्च कक्षाओं के छात्रों के लिए उपयुक्त प्राचीन तथा आधुनिक कवियों, प्रमुख धाराओं और विशिष्ट काव्य तथा नाट्य कृतियों पर विश्लेषणात्मक मौलिक निबन्धों का होना ही ग्रन्थ की उपादेयता है। मूल्य : सजिल्द ६.००

जयशंकर प्रसाद : नाट्यशिल्प और कृतियों का मूल्यांकन

श्री सतीशबहादुर वर्मा

इस समीक्षात्मक ग्रन्थ में प्रसादजी के नाट्यशिल्प और उनकी प्राय: सभी नाट्य कृतियों का उचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। शिल्प तथा कृति मूल्यांकन नयी सामग्री और नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर लेखक ने सुन्दर प्रयास किया है।

मूल्य : सजिल्द ६.५०

समरजयी

डा० ललित शुक्ल

स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्रीजी के उदात्त और देदीप्यमान कार्यकलापों पर आधारित एक मात्र खण्ड-काव्य, जो साहित्यिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों की अमूल्य निधि हैं। मूल्य : सजिल्द ५.५०

भारतीय राजनीति : शंकाएँ और समाधान

श्री हरिदत्त शर्मा

स्वतन्त्र भारत की राजनीति कैसी रही है, आज किस स्थिति में है, आगे चलकर किन-किन स्थितियों और समस्याओं का सामना करना सम्भव है। इन सभी सवालों का उत्तर लेखक ने दिया है। राजनीति के छात्रों के लिए उपयुक्त पुस्तक। मूल्य : ३.५०

दीप धर्म का: बत्तियाँ ज्ञान की

श्री व्यथित हृदय

सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, कहानियों तथा आधुनिक घटनाओं और प्रसंगों के द्वारा किशोरों तथा प्रौढ़ों को धर्म के दस व्यावहारिक साधनों का बोध कराया गया है। अपने ढंग की एक मात्र पुस्तक। मूल्य : २.५०

काशी का जुलाहा

श्री प्रेमचन्द्र 'महेश'

मानव-मात्र को समान समझने वाले ऊँच-नीच के भेद-भावों तथा प्रचलित पाखण्डों के विरोधी सन्त-कबीर की जीवन कथा एवं प्रेरणादायक वाणियाँ।

मूल्य : २.००

मुक्ति-दूत

श्री शंकर सुल्तानपुरी

अहिंसा, त्याग, सत्य एवं शान्ति के अग्रदूत गौतम बुद्ध की जीवन गाथा जिसे लेखक ने काव्यवद्ध कर और भी सरस बना दिया है। मूल्य : २.५०

दूर हटो ए दुनिया वालो ! हिन्दुस्तान हमारा है

श्री जितेन्द्रकुमार मित्तल

अतीत और वर्तमान में हुए आक्रमणों का सजीव वर्णन। भारतीयों के प्रेरणादायक साहस और वीरता की कहानियाँ। मूल्य : २.२५

जब धरती डोलती है

श्री व्यथित हृदय

भूकम्प, ज्वालामुखी के कारणों का सबल वैज्ञानिक परिचय, भूगर्भशास्त्र के माध्यम से कराया गया है।

मूल्य : ३.००

ज्ञानदीप प्रकाशन, २००४, मलकागंज, दिल्ली-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. L 263 November-December 1967 Licence No. 16
Sahitya-Sandesh, Agra. Licensed to post without prepayment.

श्रेष्ठ लेखकों को चुनी हुई पुस्तकें पढ़िये

- **सागर और सरोवर** (उपन्यास)
  गुरुदत्त
  ३·००
- **पराजय** (उपन्यास)
  कृशन चन्दर
  २·००
- **बेगम** (उपन्यास)
  ताराशंकर वन्द्योपाध्याय
  २·००
- **संसार के प्रसिद्ध जासूस और उनके कारनामे** (जासूसी)
  कर्नल रंजीत
  २·००
- **सेठ बाँकेमल** (हास्य-व्यंग्य)
  अमृतलाल नागर
  १·००
- **कल क्या होगा** (विज्ञान)
  अनु० अजय
  १·००
- **सफलता के सूत्र** (जीवनोपयोगी)
  सन्तराम बी० ए०
  १·००
- **हुस्न-ओ-इश्क़** (काव्य-शायरी)
  सं० प्रकाश पंडित
  २·००

अपने नगर के पुस्तक-विक्रेता, रेलवे बुकस्टाल या रोडवेज बुकस्टाल से खरीदिये। सूचीपत्र के लिए हमें लिखिए।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

Registerd with the Registrar of Newspapers for India under No. 2251/57

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

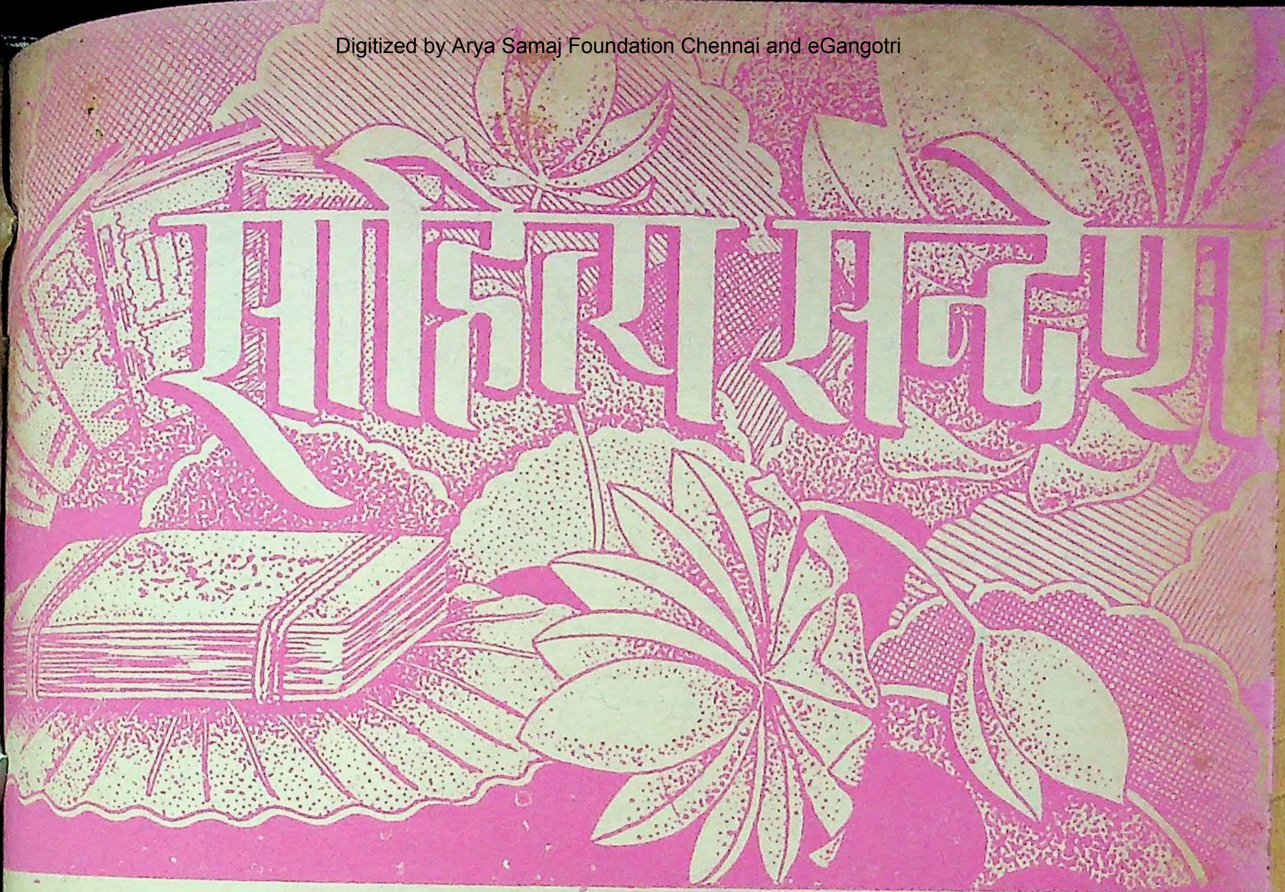

२९, अङ्क ८ फरवरी १९६८ साठ पैसा मूल्य

इस अङ्क में—

१—हमारी विचारधारा	सम्पादकीय	२८१
२—काव्य में आत्मिकता	डॉ० परमलाल गुप्त	२८५
३—साहित्य में नया-पुराना	डॉ० नागरमल सहल	२८७
४—साहित्य, साहित्यकार और जन-जीवन	डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू	२९१
५—राष्ट्रीय चेतना के कवि : पं० माखनलाल चतुर्वेदी	डॉ० रमासिंह	२९३
६—'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'गोदान' में व्यंजित आर्थिक-संक्रमण	डॉ० रक्षा भल्ला	२९५
७—नव्य कल्प का आदि-काव्य 'लोकायतन'	डॉ० शिवप्रिया महापात्र	२९८
८—अन्तर्विरोध और मुक्तिबोध का काव्य	डॉ० नरेन्द्रदेव वर्मा	३०३
९—नयी कविता की सम्प्रेषणीयता	डॉ० गायत्री वैश्य	३०६
१०—कामायनी में मनोवैज्ञानिकता	श्री विजय कुलश्रेष्ठ	३१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता ही ताकत है!

गणराज्य दिवस आया और चला गया।
आज जब हम उसके उल्लास भरे समारोहों को याद करते हैं, तब हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि एकता में ही हमारी ताकत है और इसी के जरिये हम शान्ति व समृद्धि के अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। इस महान् देश के प्रति अपने गौरव और निष्ठा को दोहराते समय, आइये, हम सब मिलजुलकर अपने देश को एक महान् देश बनाने के पुनीत कार्य में जुट जाने का व्रत लें।

एक महान् देश हमारा, एक महान् राष्ट्र!

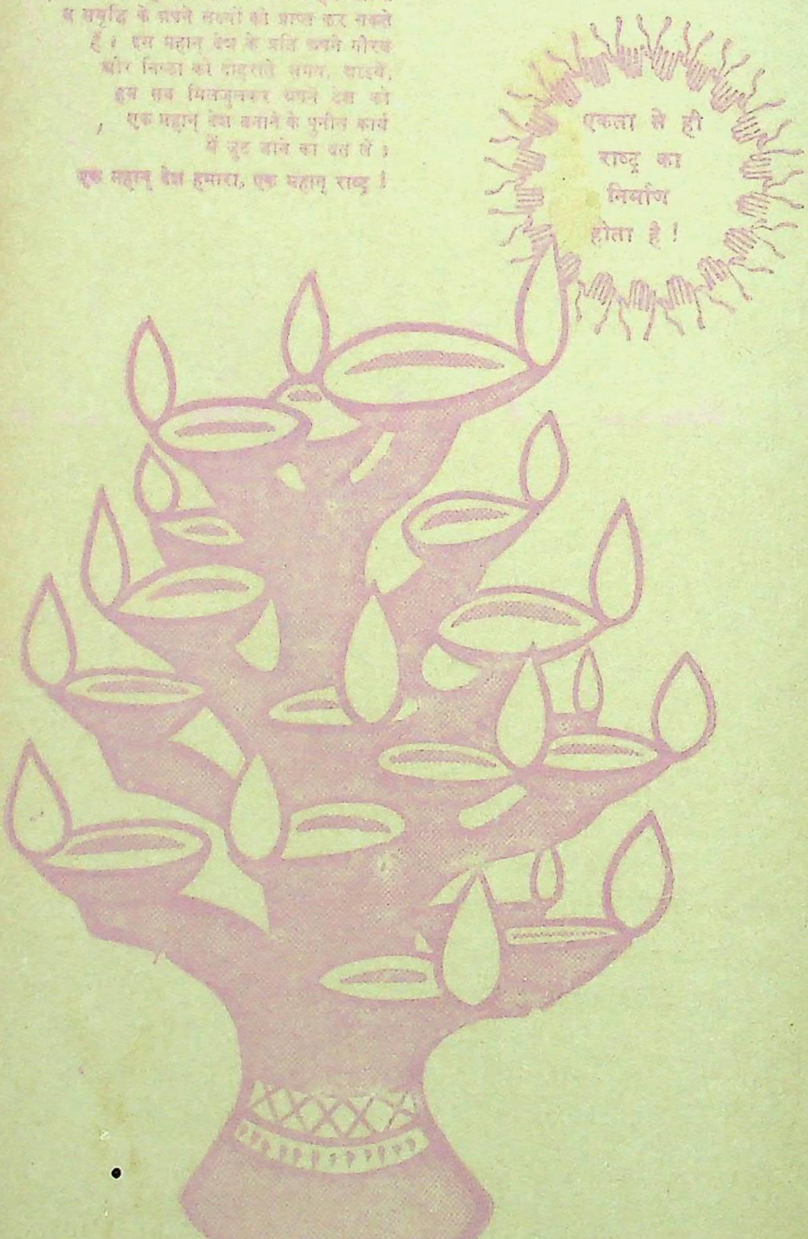

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग–२९ अङ्क–८

सम्पादक
महेन्द्र

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

फरवरी—१९६८

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

साहित्य अकादमी के पुरस्कार—

साहित्य अकादमी द्वारा प्रति वर्ष १४ भाषाओं के सर्वोत्तम लेखक को पाँच हजार रुपए का एक-एक सम्मानक पुरस्कार प्रदान किया जाता है। इसके लिए अकादमी की कार्य-कारिणी प्रति वर्ष हर भाषा के विशेषज्ञों की उपसमिति बनाकर सर्वोत्तम कृति का चयन करती है, जिसके लिए एक विधान है। इस वर्ष २६ फरवरी को दिल्ली के राष्ट्रपति भवन के अशोक कक्ष में इस निमित्त एक विशिष्ट उत्सव पर यह पुरस्कार प्रदान किए गए। उत्सव की अध्यक्षता राष्ट्रपति डा० जाकिरहुसेन ने की।

हिन्दी में इस बार यह सम्मान श्री अमृतलाल नागर को मिला और उनकी बहुचर्चित और बहुप्रशंसित कृति 'अमृत और विष' हिन्दी पुस्तकों में सर्व श्रेष्ठ कृति घोषित हुई। उसी के आधार पर उसके लेखक श्री नागरजी को यह पुरस्कार प्रदान किया गया।

उर्दू के कहानी-संग्रह 'पतझड़ की आवाज' के लिए पुरस्कृत श्रीमती कुर्रतुलऐन हैदर चौथी महिला है, जिन्हें पिछले बारह वर्षों में अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुए। इस पर टिप्पणी करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि मुझे खुशी है कि महिलाओं की उपेक्षा नहीं की गई है।

श्री त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी को असमिया समीक्षा 'आधुनिक गल्प साहित्य', श्री सूर्यनारायणदास को 'उड़िया साहित्य का इतिहास', श्री भवानी भट्टाचार्य को अंग्रेजी उपन्यास 'शैडो फ्राम लद्दाख', श्री डी० वी० गुण्डप्प को कन्नड़ व्याख्या 'श्रीमद्भागवद् गीता तात्पर्य', अमीन कामिल को कश्मीरी कविताएँ 'लवत प्रब', श्री प्रबोध बेचर-दास पंडित को भाषा शास्त्रीय 'गुजराती भाषानू' 'ध्वनि स्वरूप' अने 'ध्वनि परिवर्तन' तमिल के श्री के०वी० जगन्नाथन को 'वीरद उलगम', श्री शिवकुमार को पंजाबी पद्य-नाटक 'लूणा', श्री बुद्धदेव वसु को बँगला नाटक 'तपस्वी ओ तरंगिणी, श्री ना० गो० कालेलकर को मराठी 'भाषा-शास्त्र', 'भाषा-इतिहास आणि भूगोल', श्री पी० कुन्ही-रामन को मलयालम कविता संग्रह 'तामरतानी' और श्री रामरूप पाठक को संस्कृत चित्र-काव्य 'चित्र-काव्य कौतुकम्' पर ये पुरस्कार प्रदान किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ गोविन्ददास के सुझाव की प्रतिक्रिया—

दक्षिण भारत में खींच-खींच कर रबड़ फैलाने के समान हिन्दी विरोध को देख लोक सभा के दिग्गज हिन्दी-समर्थक, वरेण्य साहित्यकार सेठ गोविन्ददास ने मद्रास के द्रविड़ मुनेत्र कषगम सरकार की हिन्दी-विरोधी गति विधियों का जिक्र करते हुए सरकार के समक्ष सुझाव रक्खा कि "वह देश का राजनीति को सामान्य बनाने के लिए मुख्य मन्त्री अन्नादुरें की सरकार को तुरन्त बर्खास्त करे।" सेठ गोविन्ददास के इस सुझाव ने लोक सभा में गहरी प्रतिक्रिया को जन्म दिया। परिणामतः अहिन्दीभाषी प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने कहा कि हिन्दी को लादने का जोरदार विरोध अहिन्दी भाषी जनता द्वारा किया जायगा। द्रविड़ मुनेत्र कषगम के श्री संबंधन् ने कहा कि मद्रास में हिन्दी लादी जाने का विरोध आखिरी दम तक किया जाएगा। स्वतन्त्र पार्टी के श्री मुहम्मद इमाम ने तर्क दिया कि भाषा प्रस्ताव के कारण दक्षिण ने 'पूर्ण असहयोग' के रास्ते पर चलना शुरू कर दिया है इसलिए इसे वापिस ले लिया जाना चाहिए। राज-भाषा विधेयक से अहिन्दी भाषी जनता के साथ अन्याय हुआ है, क्योंकि जहाँ उनके लिए अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी और अंग्रेजी की भी जानकारी जरूरी होगी, वहाँ हिन्दी भाषा-भाषियों का काम केवल हिन्दी की जानकारी से निकल जाएगा।

इसी समय श्री डाह्याभाई पटेल ने कहा कि भाषा समस्या को जरूरत से ज्यादा तूल देना खतरनाक साबित होगा और राष्ट्रीय एकता में नयी समस्याएँ उठ खड़ी होंगी।

काँग्रेस के श्री पार्थ सारथी ने भाषा समस्या की 'आदिवासी दृष्टिकोण' की आलोचना की और कहा कि अँगरेजी को हटाने के लिए जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए लेकिन इस सिलसिले में उन्होंने द्रविड़ मुनेत्र कषगम के रवैये की भी निन्दा की।

मद्रास के अंग्रेजी पत्रों का भ्रामक प्रचार—

मद्रास के अंग्रेजी 'हिन्दू' दैनिक ने ६ फरवरी ६८ के अङ्क में यह समाचार छापा कि केन्द्रीय सरकार ने 'अङ्कटैड–२' में आए हुए विदेशी प्रतिनिधियों को दक्षिण की यात्रा न करने की सलाह दी है क्योंकि वहाँ परिस्थिति अनुकूल नहीं। पर केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री श्री के० के० शाह ने मद्रास के 'हिन्दू' नामक पत्र की इस खबर को निराधार बताया। इसी क्रम में कांग्रेस के श्री वृजकिशोरप्रसाद सिन्हा ने कहा कि न केवल हिन्दू दैनिक ही बल्कि अंग्रेजी के बहुत से दूसरे समाचार पत्र भी जान-बूझ कर देश के विघटन की कोशिश कर रहे हैं। बड़े खेद का विषय है कि इस प्रकार घृणात्मक एवं कपोल कल्पित विचारों का प्रचार कर जनता को गुमराह किया जा रहा है।

महाकवि निराला पर फिल्म—

अहिन्दी भाषी प्रदेश बंगाल और उसके क्रोड़ में उछलता कलकत्ता महानगर। इसी महानगर में ७ फरवरी को वहाँ की जैमिनी प्रकाशन की ओर से एक उल्लेखनीय 'निराला-जयन्ती' का आयोजन किया गया। इस अवसर पर शिक्षायतन के समागार में निरालाजी पर बनी सवा घंटे की फिल्म प्रदर्शित की गई। फिल्म निरालाजी के जन्म स्थान के दृश्यों के साथ शुरू होती है और १९५३ तक के उनके साहित्यिक एवं व्यक्तिगत जीवन की दिलचस्प विभिन्न स्थितियों से अवगत कराती है। फिल्म में जगह-जगह निरालाजी साहित्यिक समारोहों में भाग लेते और अपने दोस्तों, अभिप्रशंशकों से मिलते, बात करते दिखाये गये है।

किसी भारतीय साहित्यकार पर बनी यह पहली फिल्म है जिसको शीघ्र ही लन्दन में प्रदर्शित करने का निश्चय किया गया है। फिल्म के निर्माता, निर्देशक और उद्घोषक श्री बरुआ (ऋषि जैमिनी कौशिक) जी हैं।

बी० बी० सी० के विशेष प्रोजेक्ट अधिकारी श्री ज्ञानशिव कौशिक ने आस्कर वाइल्ड और अन्य 'पागल' कवियों की चर्चा की और कहा कि आज ब्रिटेन में कोई भी इन कवियों को पागल मानने के लिए तैयार नहीं है। ठीक इसी तरह निरालाजी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए। निराला पागल नहीं थे उनको पागल कहने वाले लोग पागल हैं।

श्री बद्रीप्रसाद पोद्दार ने निरालाजी के एक आदमकद तैलचित्र का अनावरण किया जिसे कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय ने अपने यहाँ लगाना स्वीकार कर लिया है। इससे पहले इस राष्ट्रीय पुस्तकालय में निरालाजी का कोई चित्र नहीं था। आदम कद चित्र की हैसियत से भी पुस्तकालय में यह पहला चित्र है। आयोजन की अध्यक्षता श्री रामनिवास लाखोदिया ने की और विशेष अतिथि श्री हरिदत्त शर्मा थे।

निरालाजी के ऊपर एक अहिन्दी भाषी प्रदेश में इस तरह का आयोजन हिन्दी भाषी प्रदेश के लिए प्रेरणा तथा चुनौती है। लोग निराला को सर्वप्रथम अपने घर में समादृत करें तो वह उनके लिए वैभव एवं गौरव की बात होगी। सात समुद्र पार लन्दन में निराला का स्वागत और हिन्दी का महत्त्वांकन क्या अब भी बुद्धिजीवियों की इड़ा को कुण्ठित किए रहेगा? अन्ततः हिन्दी और उनके सेवकों का प्रतिष्ठापन होगा, इसमें सन्देह नहीं। भाषा समस्या और विरोध इसी वाग्धारा में स्वतः कालान्तर में प्रवाहित हो जाएँगे।

भाषायी विवाद में विदेशों की दिलचस्पी—

लोक सभा में हुए भाषायी प्रश्न पर विचार विनिमय के समय कई संसद सदस्यों ने इस बात की सूचना दी कि भारत में भाषायी विवाद बढ़ाने और उसके द्वारा भारत की अखण्डता को हानि पहुँचाने में कई विदेशी सरकारें बड़ी दिलचस्पी ले रही हैं और उन्होंने केवल इसी काम के लिए इस देश के लोगों को करोड़ों रुपये बाँटे हैं। विदेशों से पहले धर्म के नाम पर लड़ाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किए जाते थे। अब भारतवासियों में थोड़ा विवेक जाग्रत हो गया है और वे धर्म के नाम पर कम सिर फुटौवल करते हैं। तब उन्होंने हमारे यहाँ झगड़े फैलाये और विरोध बढ़ाने का नया विषय मिल गया है भाषायी विवाद। अब भी नागालैण्ड जैसे अविकसित प्रदेशों में ईसाई पादरी ध्रुव जात, वर्ण, विद्वेष, फैलाने की चेष्टा करते रहते हैं और जब तब उसमें उन्हें सफलता भी मिल जाती है। आसाम में प्रान्तीय भेदभाव को लेकर जो लूटमार और झगड़े हुए हैं उसमें भी विदेशियों का हाथ बताया जाता है। मतलब यह है कि बाहर के कई देश इस बात में बहुत दिलचस्पी रखते हैं कि यहाँ शान्ति और व्यवस्था न रहने पावे और झगड़े-झंझट होते रहें। अधिकतर भारतवासी इस बात को समझने लगे हैं फिर भी अभी हमारे देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो विदेशियों की यह चाल नहीं समझ पा रहे हैं और भुलावे में आकर अपना ही अनिष्ट करने पर उतारू हो जाते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि हमारे कुछ नेता लोग भी पैसे के चक्कर में आकर इस प्रकार का विद्वेष पूर्ण प्रचार करने लग जाते हैं। इन नेताओं पर कोई विशेष लेबिल हो ऐसी बात नहीं है सभी पार्टियों में ऐसे लोग मिल सकते हैं। हमें उन सबसे सावधान रहना चाहिए।

श्रद्धेय हरि जी—

हिन्दी के यशस्वी लेखक और प्रसिद्ध पत्रकार पं० हरिशंकरजी शर्मा का मार्च महीने के प्रारम्भ में स्वर्गवास हो गया। अपने प्रारम्भिक काल में हरिजी ने जितने कष्ट उठाए और जितना संघर्षमय जीवन बिताया, साथ ही उत्तर काल में जितनी शान्ति और सम्मान पाया, वह किसी भी साहित्यिक के लिए स्पृहणीय होगा। अपने पूज्य पिता श्री पं० नाथूराम शंकर शर्मा से विरासत में उन्हें कविता शक्ति मिली थी और उनके माने हुए गुरु पं० पद्मसिंह शर्मा से सम्पादन कला। हास्य और व्यंग्य के वे माने हुए लेखक थे और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'घासपात' पर उस समय का सर्वोच्च देवपुरस्कार मिला था। उनकी 'चिड़ियाघर' के न मालूम कितने संस्करण निकल गये और आज भी शिष्ट हास्य की पुस्तकों में उसका मूर्धन्य स्थान है। आर्यसमाज के माने हुए नेता होते हुए भी उनमें उस प्रकार की कट्टरता नहीं थी जो अखरने वाली मानी जाती है। गुरु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल वृन्दावन के वर्षों से वे उपकुलपति थे। आगरा विश्वविद्यालय ने उनकी साहित्यिक सेवा को मान देने के लिए उन्हें डी० लिट्० की सम्मानीय उपाधि प्रदान की थी और भारत-सरकार ने पद्मश्री की पदवी प्रदान कर उन्हें गौरवान्वित किया था।

हरिजी की आयु ७४-७५ वर्ष की थी। इधर कई वर्ष से उन्हें हृदय रोग की शिकायत हो गई थी। यही उनकी मृत्यु का कारण बना अन्यथा उनमें जो वाग्मिता और उत्साह था वह अभी काफी दिन तक लोगों को प्रेरणा देता रहता। हरिजी की मृत्यु हमारे लिए एक घोर आघात के रूप में आई है और हम समझ नहीं पाते कि किस प्रकार उनके इस वियोग को भुलावें। हरिजी का जाना हमारे लिए एक व्यक्तिगत हानि है। 'साहित्य-सन्देश' उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि शीघ्र प्रकट करेगा और हमारा जुलाई-अगस्त का अंक हास्यरसांक होगा जो उन्हीं को समर्पित किया जायगा। इस समय तो हम उनकी आत्मा को शान्ति और उनके परिवार को धैर्य मिलने की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

दो और साहित्यिकों का निधन—

यह अङ्क छपते-छपते समाचार मिले हैं कि वाराणसी के प्रसिद्ध साहित्यिक श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (बेढब बनारसी) एवं वयोवृद्ध पत्रकार श्री पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी का निधन हो गया। बेढब बनारसी इधर काफी दिनों से अस्वस्थ थे और वाजपेयीजी अपनी परिपक्व अवस्था में थे। उनकी आयु ८८ वर्ष थी। वाजपेयीजी द्विवेदी युग के वरेण्य पत्रकार थे और साहित्य जगत में उनका बड़ा मान था। इन महानुभावों के निधन से हिन्दी को अपूर्णीय क्षति हुई है। हम उनकी आत्मा को शान्ति लाभ के इच्छुक हैं और उनके परिवार के लोगों के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

साहित्य-सन्देश के विशेषाङ्क

जो अब अप्राप्य होते जा रहे हैं

१९५२	आलोचना अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५३	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५५	उपन्यास अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५६	नाटक अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५७	भाषा विज्ञान अङ्क (पुस्तक रूप में)	२।।)
१९५८	प्रगति विशेषाङ्क (विगत १० वर्ष का)	२)
१९५९	सन्त साहित्य अङ्क	२)
१९५९	ऐतिहासिक उपन्यास अङ्क	२)
१९६०	प्रगति अङ्क	२)
१९६०	रीति काव्यालोचनाङ्क	२)
१९६१	शोध विशेषाङ्क (अप्राप्य)	—
१९६१	निराला विशेषाङ्क "	—
१९६२	निबन्ध विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९६२	साहित्य शास्त्र विशेषाङ्क	२)
१९६३	रांगेय राघव अङ्क	२)
१९६३	शिवपूजन सहाय अङ्क	१)
१९६४	बाबू गुलाबराय अङ्क	२)
१९६४	वीर काव्य विशेषांक (अप्राप्य)	—
१९६५	द्विवेदी अङ्क	२)
१९६५	राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक	२)
१९६६	हरिऔध अङ्क	२)
१९६६	विद्यापति विशेषाङ्क	२)
१९६७	रत्नाकर विशेषाङ्क	२)
१९६७	बच्चन विशेषाङ्क	२)
	प्रसाद विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
	कहानी विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)

कम से कम २०) के आर्डर पर २५% कमीशन।

डाक व्यय पृथक्।

रेल से मँगाने पर व्यय कम होगा।

आर्डर के साथ ५) रुपया पेशगी भेजिए।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य में आत्मिकता

● ● ● डॉ० परमलाल गुप्त

आत्मिकता के विद्यमान अथवा अविद्यमान होने के आधार पर काव्य के दो भेद किये गये है—१. आत्मपरक अथवा भावात्मक (Subjective) और २. वस्तु परक अथवा वाह्यविषयात्मक (Objective)। ये भेद आत्मिकता के परिमाण के सूचक हैं, अभाव के नहीं। आत्म परक कविता कवि का प्रत्यक्ष आत्मिक उद्‌गार है। वस्तुपरक कविता में कवि स्वयं अपने को प्रश्न रखता है पर उसमें, प्रयुक्त उपकरण पुकार-पुकार कर कवि को सत्ता का उद्‌घोष करते हैं।

आत्मपरक और वस्तुपरक भेद काव्य की श्रेष्ठता अथवा हीनता के मापदन्ड नहीं है। कतिपय छायावादी समीक्षकों ने सूक्ष्म और स्थूल अथवा आत्मगत और वस्तुगत का नारा देकर साहित्य के विद्यार्थियों के बीच भ्रम उत्पन्न कर दिया है। लोक की दृष्टि से कुछ अंशों में वस्तुपरक रचना अधिक महत्व रखती है। इसमें कवि के व्यक्तित्व की गहरी परीक्षा हो जाती है। अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों और भावनाओं से प्रत्येक व्यक्ति द्रवित हो सकता है, परन्तु दूसरों की परिस्थितियों और भावनाओं से द्रवित होना जो स्वस्थ सामाजिकता का परिचायक है, कम पाया जाता है। ये दोनों प्रकार कवि की अपनी अनुभूति के होते है। उदाहरणार्थ आदि कवि की ये पंक्तियाँ देखिये—

मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकंवधीः काममोहितम्॥

इन पंक्तियों में वाह्य परिस्थितियों का अंकन है, कवि के व्यक्तिगत सुख दुख का नहीं। परन्तु कवि दूसरों के सुख दुख को अपना बनाकर रचना में प्रवृत्त हुआ है—यह भी कवि को अपनी अनुभूति है। स्वयं के दुख से रोने वालों की क्या यह महत्ता संभव है?

जिसे हम वस्तुपरक रचना कहते हैं, उसके विधायक अंगों पर थोड़ा ध्यान देने की आवश्यकता है। कथा, चरित्र, वस्तु, आदि सबका सृष्टि कर्ता कवि होता है और ये सब कवि को अंतरात्मा के अनुरूप आकार पाते हैं। कवि किसी आंतिरिक प्रेरणा से किसी विशिष्ट कथानक का तानावाना बुनता है। कथानकों की भिन्नताएं आत्मिकता का स्पष्ट प्रमाण हैं। जिस प्रकार कोई शिल्पी भवन का निर्माण करके अपनी आंतरिक प्रेरणा को मूर्ति मान बनाता है उसी प्रकार कथानक का निर्माण प्राचीन कथानक में रूप परिवर्तन, संवर्धन, विस्तार आदि भी आत्मिकता से निरपेक्ष नहीं। प्राचीन कथानक को गृहीत करने वाले कवि केवल अनुकृति के लिये उस कथानक का चयन नहीं करते है वे अपनी भावनानुरूप उसमें कुछ अभाव अनुभव करते हैं उनकी अंतवृत्तियां इस अभाव की पूर्ति के लिये आकुल हो उठती हैं और वे आंतरिक प्रेरणा से रचना में प्रवृत होते है। राम कथा के तीन गायकों—बालमीक, तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त के कथा विन्यास का अन्तर आत्मिकता का स्पष्ट निदर्शन करता हैं।

कवि किसी वस्तु का वर्णन करते समय उसके आकार—विश्लेषण, उत्पत्ति, वंशावली आदि की वैज्ञानिक खोज वीन करने नहीं बैठता। उस वस्तु का सौंदर्य असौंदर्य और आत्मिक लगाव ही कवि का वर्णन होता है। सौंदर्य असौंदर्य कुछ अंशों में वस्तु परक होने के साथ-साथ आत्म परक हैं। वस्तु को देखने स्वीकार करने के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते हैं। यह सब रचनाकार की मानसिक धारणा पर निर्भर करता है। विरह की एक ही परिस्थिति में जहां सूरदास को गोपियाँ प्रकृति को हरा भरा देख उसे कोसती हैं।

मधुबन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग श्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां दूसरी ओर मैथिलीशरण गुप्त की उर्मिला उसकी समृद्धि की कामना करती है—

रह चिर दिन तू हरी-भरी,
बढ़ सुख से बढ़ सृष्ठि सुन्दरी।

चरित्र निर्माण में कवि की भावना प्रधान होती है यद्यपि कवि पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को सर्जना करता है और अपनी मान्यताएं थोपता नहीं तथापि वह उन के विकास की दिशानिर्धारित करता है। इसी कारण पात्र के चरित्रांकन में भिन्नताएं परिलक्षित होती हैं माइकेल मधुसूदनदत्त के मेघनाद राम लक्ष्मण आदि वहीं नहीं हैं जो परम्परावादियों के। मैथिली-शरणगुप्त के पुरुष और नारी पात्र तुलसीदास के पुरुष और नारी पात्रों से भिन्न हैं। इसका कारण कवि की मानवतावादी और प्रवृति मूलक विचारणा है। कवि जिस मूल दर्शन को लेकर काव्य रचना करता है, उसका प्रतिफल चरित्र निर्माण में होता है। अंततो-गत्वा चरित्र चित्रण मनोविकारों की जीवन व्यापी स्थायी प्रतिष्ठा है, अत: इसमें आत्मिकता का स्पर्श स्वाभाविक है। यह कहा जा सकता है कि कवि किसी सामान्य जीवन के यथार्थ पात्र को भी चित्रित कर सकता है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि कवि व्यक्तिगत लगाव के कारण ही उस पात्र को चुनेगा किसी भी संदर्भ में हो। दूसरे वह उस पात्र के माध्यम से अपनी किसी अदम्य धारणा की अभिव्यक्ति चाहेगा, चाहे वह केवल उस पात्र एवं कवि की धारणा के साम्य द्वारा ही हो।

कविता कवि की दृष्टि से चाहे आत्म परक हो अथवा वस्तु परक उसका सहृदय की दृष्टि से वस्तु-परक स्वरूप होता है। कविता में जो व्यक्त होता है यह आवश्यक नहीं कि वह सहृदय के मन में वही भाव जाग्रत कर सके, जो कवि के मन में है या जिसे कवि चाहता है। साधारणीकरण की समस्या में इस बात पर विचार किया गया है। डा० नगेन्द्र ने आचार्य शुक्ल की आलम्बन के साधारणीकरण की धारणा का खण्डन करते हुए कहा है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है। यह स्थापना काव्य के पूर्व आत्मिक स्वरूप पर ही आधारित है। इसमें निम्न दो बातों पर पर ध्यान नही दिया गया—

१—कविता के वस्तु परक स्वरूप में, कवि द्वारा अपनी अनुभूति के युवा रूप व्यक्तिकरण की विफलता। सहृदय की भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं और कविता के वस्तु स्वरूप का तारतम्य। यह संभव है कि कवि अपनी अनुभूति कविता में व्यक्त करने में अक्षम कहा हो, ऐसी स्थिति में साधारणीकरण कवि की अनुभूति का न होकर उसका होगा जो सहृदय उस कविता से ग्रहण करेंगे—और इसमें सहृदयों को भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं का प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में होगा। एक उदाहरण लीजिए—

उसके अश्रु बिन्दु
गिरते थे टप-टप
उन्नत उरोजों पर
यथा किसी घड़े के छेद से
वारि गिरता शिव लिंग पर
बूंद-बूंद प्रति क्षण।

कुछ सहृदयों का साधारणीकरण इसमें हो भी सकता है सबका नहीं। कोई इस प्रसंग की कल्पना नायिका के मान से कर सकता है, जिससे हास और शृंगार की अनुभूति होगी।

यहाँ हमारा आशय साधारणीकरण की समस्या पर विचार करना नहीं है, केवल कविता के वस्तु-परक स्वरूप पर प्रकाश डालना है। अन्त में हमारा निष्कर्ष यह है कि वस्तुपरक कविता में भी आत्मिकता अवश्य होती है और आत्मपरक कविता का भी वस्तु-परक स्वरूप होता है।

—पुरानी आवकारी, कटरा, मैहर,
सतना, म० प्र०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में नया-पुराना

● ● ● डॉ० नागरमल सहल

नये पुराने का भेद-वैषम्य कोई नयी बात नहीं क्यों कि यह बहुत पुरानी चर्चा का विषय है। विषय भी ऐसा कि सदा निर्जर और सरस। युवा-वृद्ध के मन मिलते नहीं, श्याम केश पलितकेशों को कुछ गिनता नहीं। कुछ यौवन का मद और उन्माद, कुछ अहंभाव, कुछ स्वातन्त्र्यलिप्सा और कुछ कर दिखाने की प्रवृत्ति बूढ़े की रोक-टोक को, उसकी वर्जना को सब नहीं मानते। वृद्ध अपने अनुभव की दुहाई देता है, युवा अपनी निर्भीक कर्मण्यता की। युवक मा-बाप को बेवकूफ समझने लगते हैं पर भूल जाते हैं कि उनकी सन्तान उनको कहीं ज्यादा मूर्ख समझेगी। आज का क्रान्तिकारी कल रूढ़िवादी हो जाता है, आयु के साथ जैसे शिथिलता आ जाती हैं। कीट्स और शेली युवा ही चल बसे और अन्त तक क्रान्तिकारी बने रहे। क्रान्ति के प्रवर्त्तक वर्डस्वर्थ ने ८० वर्ष की आयु पाई और जवानी ढलते-ढलते क्रान्ति ने शान्ति का रूप धारण किया। सन् १७९८ में लिखी गई कविताएँ और भूमिकाएँ उनका एक छोर तो दूसरा छोर है धार्मिक कविताओं का जिनमें मार्मिकता का अंश बहुत न्यून हो गया है। कहाँ अमरता की भावना लिए Immortality ode और कहाँ कवि के ecclestiastical sonnets! यौवन की उत्फुल्लता में अमरत्व उल्लसित है तो वार्धक्यावस्था में जैसे मृत्यु का भय। यौवन का अपना स्वत्व है, वृद्ध का अपना पर हैं दोनों न्यारे-न्यारे। इन दोनों का एकीकरण कैसे सम्भव हो सकता है और वास्तव में उनका ऐक्य क्या इष्ट भी है? युवा वृद्ध हो जाय तो किस काम का पर वृद्ध युवा बनने का दम्भ करे तो उससे बढ़ कर विडम्बना भी और क्या हो सकती है? ब्राउनिंग की दृष्टि में बिना वार्धक्य के यौवन अधूरा है। इसलिए वे कह उठते हैं—

> Grow old along with me!
> The best is yet to be,
> The last of life, for which the first was made :

इसमें कुछ तथ्य भी है। जवान मर जाता है तो दुनिया दुःख मनाती है क्योंकि ऐसी मृत्यु को अकाल-मृत्यु माना जाता है। यौवन में शरीर का ह्रास तो जरावस्था में बुद्धि का विलास। किसी ने ठीक कहा है कि चालीस वर्ष की अवस्था में शरीर ढलने लगता है पर जरावस्था का यह शैशव भी तो है।[1] युवक युवा बने रहें और वृद्ध वृद्ध बने रहें तो क्लेश कम हो जाता है। झगड़ा होता है, अशान्ति बढ़ती है तब जब बीस वर्ष का बुड्ढा बन जाता है (अंग्रेजी में 'twenty years old' कहते भी हैं, 'twenty years young' नहीं) और चौरासी में चार घटने वाला जवानी का दम भरता है। दोनों की कुशलता और कार्यक्षेत्र विभिन्न हैं पर दोनों एक भू-लोक में रहते हैं, रहना पड़ता है इसलिए रगड़ लगती है, दिग्भ्रम मोह होता है, एक-दूसरे की नजर में जैसे गिर जाते हैं। जर्मन कवि गेटे ने इसलिए काव्यगत स्वच्छन्दतावाद को बीमारी बताया तथा शिष्टवादिता को स्वास्थ्य की संज्ञा दी है।[2] वस्तुतः दोनों विरोधी

---

1 'Forty is the age of youth but the youth of age.'

2 'Romanticism is a disease and classicism health.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, एक-दूसरे के पूरक हैं ठीक वैसे ही जैसे यौवन का पूरक वार्धक्य और वार्धक्य का संबल यौवन।

कुछ व्यक्तियों को पुरातनता का आग्रह रहता है और कुछ को वैसे ही अधुनातनता का। कुछ इतने पुराने और दकियानूसी कि वर्तमान को देखते ही नहीं और कुछ ऐसे अत्याधुनिक जैसे वे स्वयंभू हों। कोई कहता है कि मैं पाँच हजार वर्ष पुराना हूँ और कोई जैसे मैं आज का ही जाया हूँ। नयों को पुरानों में रस नहीं और पुरानों को नयों में रस नहीं मिलता। द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता से ग्रस्त छायावादी भाव-भंगिमा को आत्मसात् नहीं कर पाये और प्रगतिवादियों ने किसी प्रकार के छन्द-व्यवस्था की आवश्यकता नहीं समझी। कुछ पुराणपन्थियों ने नये काव्य का पुराने मापदण्डों से मूल्याङ्कन किया (एक आलोचक की दृष्टि में 'कामायनी' इसलिए भ्रष्ट काव्य है कि इसका प्रारम्भ ही दग्धाक्षर से होता है) जो कुछ नूतनपन्थियों ने पुरानों की नयी मान्यताओं से खबर ली। ये दोनों ही अतिवाद हैं क्योंकि स्पष्ट दर्शनदोष है। सहानुभूतिपूर्वक कार्य का अध्ययन न करने पर रस-सृष्टि नहीं होती और बराबर छिद्रान्वेषी दृष्टि बनी रहती है। कोई नास्तिक 'मानस' ही खिल्ली उड़ाने के लिए ही उसको पढ़े तो उसके लिए उसमें रस कहाँ? नयी कविता की भर्त्सना के लिए ही कोई उसको अटपटे ढंग से पढ़ना शुरू करे तो उसको भी क्या आह्लाद और परनिर्वृत्ति मिले? आलोचना भावतात्मकता का पर्याय नहीं है। चारों तरफ से देखभाल करके ही किसी पुष्ट निर्णय तक पहुँचा जा सकता है।

नयी कविता की प्रशंसा में 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' का प्राय: उल्लेख किया जाता है पर कालिदास का सम्भवत: अभिप्राय समझे बिना ही। पुराना सब अच्छा नहीं पर ('न चापि काव्यं नवमित्य वद्यम्') नया भी सब अनिंद्य नहीं। इसलिए काव्य की समुचित परीक्षण अभीष्ट है, 'पर प्रत्ययनेय बुद्धि' नहीं। कालिदास की सलाह बड़ी नेक है पर हम लोग प्रसंग से हटकर कई बार एक पाद या पादार्द्ध लेकर चाहे जिसको भला-बुरा कह बैठते हैं। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन', 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी', 'जिमि दसननि महँ जीभ बिचारी', 'अपि स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्' आदि अनेक पंक्तियों का स्वार्थवश हम विकृत और एकाङ्गी अर्थ ले बैठते हैं। १९६७ में सांस लेते हुए अगर हम १३५६ की भाषा बोलें तो हास्यास्पद ही बनेंगे। वैसे ही परम्परा से सर्वथा अस्पृष्ट होकर एकदम नया राग अलापने लगें तो वही गति होगी। परम्परा यदि जीवित है तो अवश्य ग्राह्य है। वह मृत म्रियमाण है तो अवश्य त्याज्य भी। परम्परा अगर अनुपादेय ही नहीं हानिकर भी है तो उसमें प्राण भरना मूर्खता है। गेटे और एलियट दोनों कहते हैं कि 'परम्परा पिता से पुत्र को यों ही या कानूनी दस्तावेज से प्राप्त नहीं होती। अगर इसे प्राप्त करना है तो कठोर श्रम की अपेक्षा है। परम्परा अगर थी पर अब नहीं है तो उसका महत्व केवल ऐतिहासिक है। जीवन्त परम्परा वह है जब भूत, वर्तमान बन कर जीता है। इमर्सन व्यष्टि-हृदय में इतना आत्म-विश्वास भरना चाहते थे कि उसे आगे-पीछे देखने की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये। अपेक्षित है स्वानुभव का सत्य। "Speak what you think now is hard words and to-marrow speak what to marrow thinks in hard words again, through it contradict every thing yor said to-day." इमर्सन व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पूजक थे। परमुखापेक्षिता उनकी दृष्टि में हेय थी। 'God would take the sun out of the skies Ere freedom out a man.'

इमर्सन स्वातन्त्र्य के इतने उपासक थे क्योंकि वह समय की अपेक्षा थी और सोद्देश्य भी थी। उन्होंने यह सब क्या बिना अन्य नूतन-पुरातन लेखकों को पढ़े किया? पढ़पढ़ाकर अपने दर्शन की सृष्टि उन्होंने अमेरिका को आत्मनिर्भर बनाने के लिए की। अमेरिका हर बात में बरतानिया का मुँह ताके यह वे नहीं सह सके। 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षारं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलं कापुरुषा: पिवन्ति' मीठा पानी मिलने पर भी जो खारा पानी पीए केवल इसलिए कि वह कूआ उसके बाप का खुदवाया हुआ है तो वह सचमुच का पुरुष है। पर मैं उसे भी कापुरुष मानता हूँ जो पुरानी चीजों को केवल इसलिये नहीं पढ़ना चाहता कि उसके कारण कहीं उसकी मौलिकता में आंच न आ जाए। कोई आधुनिक कवि अलंकार, छन्द, वक्रोक्ति, रस आदि की चर्चा इसलिए नहीं करता कि उसमें पुरातनता की बू आती है तो ऐसे कविपुङ्गव को भी मेरा साष्टाङ्ग नमस्कार है। अपने पर इतना भरोसा नहीं कि कहीं दूसरे उसको बिगाड़ दें तो ऐसे पुरुष का पौरुष्य किस अर्थ का? सच बात तो यह है कि साहित्य में नया-पुराना कालभेद से होता ही नहीं। वेश-भूषा चाहे बदल जाय, देह-यष्टि भी चाहे ऊंची-नीची अथवा लघुगुरु हो जाय पर क्या हृदय और आत्मा यों बदलते हैं? जो काव्य हृदय और आत्मा का स्पर्श नहीं करता वह नया होकर भी पुराना है। अधम काव्य है और जो रचना वेश-भूषा को चीर कर तलस्पर्शी होती है वह पुरानी होकर भी नयी है। वह काव्य उत्तम है जो युग-युग तक जनमन को तरंगित और आह्लादित करता रहता है कुछ चीजें बदलती हैं, कुछ नहीं। कुछ तात्विक होती हैं, कुछ सतही। देखने में काव्य के उपकरण बदलते हैं पर उसका अभिप्रेत कम बदलता है। कविता का उद्दिष्ट आनन्द है या उपदेश ऐसे विषयों पर मतभेद भी रह सकता है पर काव्य को ललित कला से कलाबाजी पर उतारा जाय जैसे हमारे कवि सम्मेलनों में कई बार 'गलेबाज' बाजी मार ले जाते हैं तो यह नूतनता दो दिन की होगी, टिकने वाली नहीं। मम्मट ने लिखा था—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

हम कहते हैं Art for Art's sake, Art for Morality's sake, Art as an escape from life, Art as an escape into life पर मम्मट ने जो कहा उसका शब्दान्तर भले ही कर दें, भावान्तर नहीं कर पाते। काव्य से उपदेश मिलता है पर ऐसे जैसे कान्ता (कर्कशा स्त्री नहीं) से कि पता ही नहीं चले। अभिप्राय यह कि कवि उपदेशक का बाना पहन कर नहीं आये। प्रत्यक्ष उपदेश अखरता है, प्रच्छन्न नहीं। प्रत्यक्ष बुद्धि को उद्वेलित करता है, प्रच्छन्न हृदय को आप्लावित। आज के प्रयोजनों में हम 'अकल्याण की क्षति' चाहे न मानें पर विगलित वेद्यान्तरमानन्द या सद्यः परनिर्वृति यह आदर्श क्या कभी पुराना हो सकता है? आनन्द सुख-दुःख की भूमिका के ऊपर है। जो काव्य हमें उस आनन्दलोक में नहीं भेज सकता वह नया होकर भी पुराना है। एलियट की किसी जमाने में बड़ी धूम रही पर उनका काव्य सीधे हमारे हृदय का स्पर्श कम कर पाया। इसलिए हम आज उनको महाकवि न कहकर 'major minor poet' की संज्ञा देते हैं। आलोचक एलियट कवि एलियट से अधिक प्रभविष्णु लगते हैं। नूतनता के आग्रह में उनका काव्य जैसे बुद्धि के भार से दब गया। उनका ही नहीं रस-सिद्धान्त से विद्रोह करके अपने काव्य को भी हमने दूसरा मोड़ दिया। 'निराला' एक हुए पर निरालेपन की लहर में बहुत से बह गये। समय बदल गया, काव्य का ढंग-ढांचा बदल गया, रंग-रूप नया हो गया पर मनुष्य कहाँ बदला? उसके भाव, विभाव, अनुभाव कितने बदले, अनुभव चाहे जितने नये हुए हों। 'पुराणमित्येव' हमें नीरक्षीरविवेक सिखाता है, नये पुराने किसी के लिए दुराग्रह संवलित ढंग नहीं। एलियट को ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

Some one said : The dead writers are remote from us because we know so much more than they did'. Precisely, and they are that which we know.

पुरानों से हम कहीं कधिक जानते हैं, पर आखिर जानते तो उन्हीं को हैं न।

स्विफ्ट ने "Battle of the Books" में इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये-पुराने के झगड़े को चित्रित किया है। नये श्रेष्ठ या पुराने इसका निर्णय न कोई कर सका है, न कर सकता है। स्विफ्ट ने लिखा है कि पुराने कवि मधु-मक्खी की तरह रसग्राही थे, नये मकड़ी की तरह अपना ही ताना-बाना बुनते रहते हैं। मधुमक्खी शहद पैदा करती है, उससे हमें माधुर्य और प्रकाश (sweetness and light) मिलता है पर मकड़ी किसी से कुछ ग्रहण करने को तैयार नहीं, अपनी 'मौलिकता' के दम्भ में वह केवल विष-सृष्टि करती है। अपने संरक्षक विलियम टेंपल के खातिर भी चाहे स्विफ्ट ने आधुनिक कवियों को मकड़ी बना दिया हो पर प्रतियोगिता होनी चाहिये स्वस्थ आधार को लेकर। पुराने कवि पर्वत की चोटी पर रहते हैं, नये वहाँ तक पहुँच नहीं पाते हैं इसलिये पुरानों को नीचे घसीटना चाहते हैं। मकड़ी के जाल में मक्खी उलझ भी जाती है क्योंकि मक्खी शायद कुछ भोली है। ड्राइडन ने लिखा है कि नये कवि बिना तपस्या के प्रसाद-प्रसिद्धि चाहते हैं। बिना अध्ययन और चिन्तनमनन की थकान के वे कवि (wit) बनने के अभिलाषी हैं।

F. R. Leavis लिखते हैं कि मान्यताओं का उतना ही महत्व है जितना नोटों का जो आखिर कागज के टुकड़े हैं जिनका आधार स्वल्पस्वर्ण है। 'The accepted valuations are a kind of paper currency based upon a very small proportion of gold.' Sancho Panza की प्रिय उक्ति थी—कल तुम्हारा आज मेरा। हेमिंगवे नैतिक अनैतिक की पुरानी व्याख्या के कायल नहीं। जिसको पढ़कर अच्छा लगे वह नैतिक, बुरा लगे वह अनैतिक। 'So far, about morals, I know only that what is moral is what you feel good after and what is immoral is what you feel bad after.

मैं उस वय:सन्धि पर अवस्थित हूँ जहाँ से नये-पुरानेदोनों को सम्यक् देख सकता हूँ। मुझे दोनों में ही आकर्षण विकर्षण लगता है। दोनों में से कोई दूध का धोया नहीं और न कोयले सा काला स्याह है। मनुष्य में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण तीनों विद्यमान हैं। इसकी प्रतिकृति सब काव्य में भी है। पुराने भी अपने युग में नये थे और नये भी अगले युग में पुराने पड़ जाएंगे। पुराने होकर भी जो कुछ चमकते रहते हैं वे प्रकाश-स्तम्भ बन जाते हैं। नये होकर भी जो धूमिल पड़ते जाते हैं वे शीघ्र कालकवलित हो जाते हैं। श्रेष्ठ कवि अपने समय में जीता, सांस लेता है पर उसकी दृष्टि अपने समय को लांघ कर कहीं आगे बढ़ जाती है। वह क्रान्तिदर्शी बन जाता है। हलका छिजला कवि अपने समय से इतना चिपका रहता है कि आने वाला समय उसको जान ही नहीं पाता, उसे उसका भान ही नहीं होता। सन्तान बड़ी या मां-बाप? माता पिता सन्तान से हार मान कर ही संपुष्ट होते हैं। पुराने कवि भी नये कवियों की उद्भावनाओं से अभिभूत होकर अगर रस-विभोर हुए तो हमारा गौरव होगा और वे भी स्वेच्छा या नत-मस्तक। जड़ नष्ट करके कोई लता पुष्पपल्लवित नहीं हुई। जड़हरी है तो पत्ते कोंपल सब नये आयेंगे। पेड़ सूख गया है तो कुल्हाड़ी से उसको काटना ही भला। 'बिन्दु' का महत्व है, बहुत है पर क्या जल ओघ को भुला करके।

—अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य, साहित्यकार और जन-जीवन

● ● ● डाक्टर हरिहरनाथ हुक्कू

साहित्य, साहित्यकार और साहित्यरसिक—इनकी त्रिवेणी इस जगती पर आनन्द की सरिता बन कर बहती है। साहित्य की रसात्मक अनुभूतियों और परम्पराओं की रक्षा साहित्यकार करता है। साहित्यकार के कार्य का बार-बार स्मरण कराके, उसकी कृतियों का मूल्यांङ्कन करके साहित्य-रसिक साहित्यकार की कीर्ति को अमरत्व प्रदान करता है। इस प्रकार ये तीन अलग-अलग होते हुए अन्योन्याश्रित हैं और सम्बन्ध-योग से एक हैं। साहित्य रसिक का साहित्य प्रेम अकथ है, अनन्य है। साहित्य रसिक चातक है, साहित्यकार स्वाति नक्षत्र, साहित्य स्वाति-जल। अन्तर इतना है कि स्वाति-जल देव बरसाता है परन्तु साहित्य का स्रोत मानव हृदय है। ऐसा नहीं सुना कि स्वाति की बूँदों ने विप्लव मचा कर धरती को जल-मग्न कर दिया हो मगर कवि के नन्हे से हृदय के जो आँसू की दो-चार बूंदें फूट निकलती हैं वे कभी-कभी बाढ़ बनकर अपने सामने जो पड़ता है उसे बहा देती हैं, डहा देती हैं, संसार-भर को प्रलय-प्लावित कर देती हैं। उनमें मनोवेग की शक्ति होती है, उनकी धारा में वेदना की तीव्रता। जहाँ मनोवेग नहीं, जहाँ वेदना नहीं, वहाँ काव्य नहीं। काव्य हमारी आँखें खोलता है। काव्य हमें सिखाता है कि देखो नारी की तपस्या देखो, नर का तिरस्कार देखो, प्यार देखो, त्याग में बलिदान देखो, त्याग का उपहास देखो, रात में शोले देखो, दिन में ठण्डी हवाएं देखो, आँखों में बिजलियाँ देखो, तड़प देखो, फिराक देखो। वेदना भी हमारी आँखें खोलती है। धन के मद से, पद के मद से, बल के मद से, यौवन तथा सौन्दर्य के मद से हमारी आंखें बन्द रहती हैं। वेदना हमारी आँखें खोलती है—हमें दिखलाती है कि इस संसार में और भी लोग हैं। उनके भी दिल टूटे हैं, हमारी तरह उनके भी आँसू बहते हैं, हमारी तरह, उनको भी कोई पोंछने वाला नहीं है, हमारी तरह। सुना है एक राजकुमार था। उसने बीस बरस की अवस्था तक केवल हंसी-खुशी देखी। उसका विश्वास था कि जीवन एक हर्षोल्लास है। फिर एक दिन उसकी वेदना से भेंट हुई। वेदना ने राजकुमार का हृदय पिघला दिया और उसकी आँखें खोल कर आँसू भरे संसार की ओर उसकी दृष्टि फेर दी। वेदना मानवता की कसौटी है। वेदना ने राजकुमार सिद्धार्थ को महात्मा बुद्ध बना दिया।

एक पुरानी कहानी है। एक थी प्यारी और एक था प्यारा। प्यारी बीमार हो गयी। प्यारे को बहुत दुःख हुआ। बहुत इलाज हुआ परन्तु सब निष्फल। एक दिन प्यारी ने उसे समझाया—तुम इस प्रकार मत रोया करो। मैं अच्छी हो जाऊंगी। मुझ से तुम्हारे आँसू देखे नहीं जाते। यह कहते हुए उसने प्यारे के एक गिरते हुए आँसू को अपनी हथेली में ले लिया। वह अश्रुकण जो मिट्टी में न मिल सका ताज-महल बन गया।

वेदना कला की आत्मा है और साहित्य वेदना की पुकार। साहित्य हृदय-व्यथित हृदय की भाषा है, साहित्य मनुष्य की मानवता को चुनौती। जीवन में वेदना है, साहित्य में संवेदना है। इसलिए जीवन और साहित्य साथ-साथ रहते हैं। जीवन एक खोज है, साहित्य इस खोज का अधूरा उत्तर। जीवन एक पहेली है, साहित्य इसके समाधान का कुछ प्रयास। जीवन और साहित्य साथ-साथ रहते है जैसे गुलाब का काँटा और गुलाब का फूल।

एक ओर साहित्यकार होता है और दूसरी ओर उसके सम्मुख अनन्त रहस्यमयी, असीम सृष्टि। एक ओर विज्ञान के उपकरण लिये वैज्ञानिक खड़ा होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके सामने रहस्यमयी सृष्टि फैली होती है। एक स्थान पर दार्शनिक खड़ा-खड़ा जीवन के अनन्त रहस्य का चिन्तन करता रहता है। परन्तु जीवन के सत्य को न वैज्ञानिक ठीक से समझ पाता है न दार्शनिक। न विज्ञान के उपकरण काम देते हैं न कुशाग्र बुद्धि। अपनी आँखों के सामने आँसुओं का पर्दा डाल कर साहित्यकार जीवन तत्व की झलक पा जाता है और इस अनन्त के अनुभव को चार शब्दों में बाँधकर जो क्षणिक था उसे वह चिरस्थायी कर देता है। काव्य में यह क्षमता है कि एक क्षण को अमरता प्रदान कर दे। जो मुस्कराहट स्वप्न सी आये और चली जाये, जो निगाह बिजली सी आये और छुप जाये, झिलमिल पर्दे के पीछे जो दृश्य स्वर्ग की झलक सा आये और अदृश्य हो जाय— इन सब को संकेतों से बाँधकर काव्य अमर कर देता है। साहित्य का संसार इशारों की दुनियां है। हम भी इशारों में जीते हैं। हम इशारों से जीते हैं। हम हम नहीं है। किसी के इशारों ने हमें वह बना दिया है जो हम हैं। शब्दों के सुकोमल जाल में संकेत बांधकर साहित्यकार हमारा स्वप्न संसार बनाता है। हमें जीना सिखाता है।

कवि दिल हमें देकर दर्द दिल अपने पास रख लेता है। वेदनाओं की बिजलियों में रहने वाले साहित्यकार बादलों से अधिक हमारे कल्याणकारी हैं। जलद हमें पानी देते हैं। जल जीवन है। साहित्यकार हमें जीवन को सहने की शक्ति प्रदान करते हैं। घोर अन्धकार में वे हमारा यह विश्वास जागृत रखते है कि प्रभात दूर नहीं है, असफलता में यह कहकर बल देते हैं कि मनुष्य गिर कर ही उठता है, वियोग में मिलन की बातें करते हैं। बिना साहित्यारों के न हम जीवन का अर्थ समझ पाते न आदमी से इन्सान हो पाते। अंग्रेजी की एक कहावत है कि जिस जाति के पास जीवन को अनुप्राणित करने वाले स्वप्न नहीं होते वह जाति नाश को प्राप्त हो जाती है। यह साहित्यकारों का श्रेय है कि जीवन को उन्नत करने वाली कल्पनाओं से वे जन-जीवन को उत्कृष्ट दिशा देते हैं। यदि साहित्यकार न होते तो हमारे लिये जीवन दुरूह हो जाता।

— राजा बलवन्तसिंह मार्ग,
आगरा—२

"मानव जाति ने जो सोचा, समझा और पाया है,
वह पुस्तकों के जादू भरे पृष्ठों में बन्द है;
उन पृष्ठों को खोलिये और संसार
भर का ज्ञान प्राप्त कीजिये"
आज ही अपनी मन पसन्द की पुस्तकें मंगायें—
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय चेतना के कवि : पं० माखनलाल चतुर्वेदी

● डा० रमासिंह

विद्यार्थी जीवन में जिन थोड़े से कवियों की पंक्तियाँ आये दिन मन में गूँजती थीं उन कवियों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी जी का नाम स्वतः आ जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के ओजस्वी वातावरण में जिन पंक्तियों ने प्रेरक शक्ति का कार्य किया उनमें चतुर्वेदीजी के उद्‌बोधक स्वरों ने विशिष्ट स्थान बना लिया था, तब बच्चे-बच्चे के ओठों पर 'पुष्प की अभिलाषा' कविता मुखरित थी:—

"मुझे तोड़ लेना बनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक

कवि के प्रेरक स्वर आज की राष्ट्रीय परिस्थिति में उतने ही अर्थपूर्ण हैं जितने अपने रचनाकाल में थे।

स्वतंत्रता संग्राम के जो चित्र चतुर्वेदीजी ने सजाये उनमें उनका व्यक्तित्व और उनके त्याग पूर्ण जीवन का प्रतिबिम्ब हमें सहज ही देखने को मिलता है। स्वतंत्रता का यह पावन यज्ञ किस प्रकार पूरा हुआ, इस सम्पूर्ण व्यापार को एक क्रमिक शृंखला निम्नलिखित पंक्तियों में बड़े ओजपूर्ण शब्दों में चित्रित की गई है:—

एक पुकार हुई मूरत पर, उठे सहस्रों सीस चढ़े।
जहाँ एक का नाम पुकारा, वहीं नित्य दस-बीस चढ़े॥
कारागार हुए घर, मजहब अपना वतन परस्ती था।
वायु और सपनों को पदरज, बलिपंथों का लेखा था॥

स्वतंत्रता के वीर सेनानी चतुर्वेदी जी ने यदि एक ओर उत्साह प्रेरणा और नव जागरण के स्वर फूँके हैं तो दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य की दमन नीति का स्वरूप भी अंकित किया है। ब्रिटिश सरकार के कुचक्र और दमन चक्र की कठोरता ने उन दिनों एक चुनौती का ही रूप धारण कर लिया था। देश-प्रेम और राष्ट्रीयता उस दमन के वातावरण में एक अपराध घोषित कर दी गई थी और जो हृदय इन उदात्त भावनाओं से झंकृत थे उनको लौह-शृङ्खलाओं में जकड़ कर बन्दी बना लेना एक साधारण शासकीय कर्म बन गया था। स्वतंत्रता संग्राम को इस कहानी में आग और करुणा दोनों का ही सम्मिश्रण था। विद्रोही हृदयों में संकल्प की ज्वलंत चिनगारियां थीं। साथ ही साथ अनेक परिवार अपने प्रियजनोंको कारागृह में यातना की शिला के नीचे पिसता हुआ देखकर दु:खों के सागर में डूबे दिखाई देते थे। कारागृह में बन्द विद्रोही हृदय यद्यपि अपने मन को खरे सोने की तरह तपा चुके थे परंतु रात्रि के नीरव वातावरण में वे द्रवित भी होते थे। इस द्रवणशीलता का अर्थ यह नहीं था कि उनके संकल्प डिग रहे हों। प्रतिकूल परिस्थितियों में तो उनके संकल्प की शक्ति और भी बढ़ती थी। कैदी और कोकिला कविता में एक विद्रोही-हृदय का यही मर्मस्पर्शी रूप अंकित हुआ है:—

"क्या ? –देख न सकती जंजीरों का गहना
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।
कोल्हू का चर्रक चूं जीवन की तान
मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान ?

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अनेक वीर बलिदान हुए, इस पावन यज्ञ में उन्होंने अपने जीवन को हविषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर, अर्पित कर दिया। उनकी पवित्र भस्म से स्वतंत्रता के नवांकुर फूटे। अपने रक्त से वीरों ने इस नवांकुर को सींचा। वीर शहीदों के प्रति कृतज्ञता के जो शब्द भी कहे जाँय थोड़े हैं। स्वतंत्रता के इन अमर पुजारियों के प्रति चतुर्वेदीजी की एक भावाञ्जलि इस प्रकार है—

टपक-टपक कर ये पूजा के पुष्प, गिर रहे नीचे नीर।
अहा ! अश्रु के स्रोत, किस तरह पद को सींचे वीर।
दिखलाती क्षण-मात्र न आती, कब तक आँखे मींचे वीर।
मंजुल मूर्ति तुम्हारी कैसे, भूमण्डल पर खींचे वीर।
अमरों के अद्भुत सेनापति एक बार हुँकार करो।
भैया, इस भारत मैया की नैया आओ पार करो॥

चतुर्वेदी जी का काव्य राष्ट्रीयता के पवित्र मंत्र से अनुप्राणित तो है ही, उसमें जीवन की सहज अभिव्यक्ति भी हुई है। अपने काव्य संग्रह 'वेणु लो गूंजे धरा'। की भूमिका में कवि अपने कथन के सम्बन्ध में कहता है, "पक्षी जब वृक्ष से उड़ता है तो किसी वृक्ष की डाली पर पुनः बैठता भी है। जिस समय अन्धड़ के थपेड़ों से वृक्ष की डालियाँ औंधी-सीधी सी होने लगती हैं उस समय पक्षियों के स्वरों में भी कपकपी सी आने लगती है। पता नहीं यह मनोवैज्ञानिक सत्य है या स्थित्यन्तर मात्र है ? किन्तु अन्तर से विज्ञान तक मनोविज्ञान की जो सीढ़ियाँ बनी हुई है, कभी-कभी उनमें सांस आती है, ये बहुत जिंदा होती हैं इन सीढ़ियों पर बैठकर लिखा जाय ? ना जी, इन्हीं सीढ़ियों पर लिखा जाय।" वास्तव में कवि ने सीढ़ियों पर लिखा है, अर्थात् जीवन के सुख दुःख और सच्ची अनुदतियों पर लिखा है, यही उसका कथन है, यही उसकी कविताओं की भाव- सम्पति है। कार्य की यह भाव सम्पदा अक्षय है, वह कहता है :—

कैसी अनहोनी अंगड़ाई, पतझर हो या हो बसन्त।
इस कविता का अनबना आदि, इस कथनी का
कब सुना अन्त॥
घुलते आराधन केन्द्रों पर, घुलते से इन्द्र धनुष लटके।
क्षण बनते, क्षण-क्षण मिट जाते, उपमान बने घूंघट
पट के॥

कितनी मौलिक जीवन की द्युति, कितने मौलिक जग
के बन्धन।
जितनी अनुपम हो मनुहारे, उतना अविनाशी स्पन्दन।

मनुष्य-जीवन की व्याख्या युगोंयुगों से कवि और सर्जक करते आ रहे हैं। एक अजीब ताना बाना है मनुष्य के अन्तः जगत का कि उसका ओर छोर ढूंढे नहीं मिलता। भावना की सतत् प्रवहमान स्रोतस्विनी में वह आदि काल से डूबता उतराता रहा है किन्तु उस जल-राशि की माप लेना भला कब सम्भव हुआ है ? 'जाकी रही भावना जैसी' के अनुसार अपने-अपने ढंग से मनुष्य के अस्तित्व को कवियों ने रूपायत किया है। चतुर्वेदी जी के शब्दों में एक तस्वीर इस प्रकार है :—

"मैं सुगन्ध में अन्ध प्रवासी, मैं अर्पण में ज्वाला।
झर झर कर ऊँचे उठ जाना, मैंने नित्य सँभाला॥
बिखर गये वे बँधी मूँठ से, विकल होश के दाने।
सुकृति लूट ले गई मुझे, सब कुछ जाने—अनजाने॥

चतुर्वेदी जी की अभिव्यक्ति में कितनी सहजता और स्वाभाविकता है, न कहीं कृत्रिमता है और न कहीं खोखले शब्दों का माया जाल। कवि के भावों का ज्वार रह रह कर उमड़ता है:—

"बाँधी सी पलके मुँह खोल उठीं
कितना रोका कि मौन बोल उठीं।
आहों का रथ माना भारी है
चाहों में क्षुद्रता कुंआरी है।
आओ तुम अभिनव उल्लास भरे—
नेह भरे ज्वार भरे, प्यास भरे
अँजिल के फूल गिरे जाते है
आये आवेश फिरे जाते हैं॥"

कवि के इस ज्वार में उल्लास, स्नेह, समर्पण आदि की रत्नराशि सहज ही बिखर जाती है। यह ज्वार एक दिन की घटना नहीं है वरन् यह तो उनके जीवन की कथा है !

— हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'गोदान' में व्यंजित आर्थिक-संक्रमण

● डा० रक्षा भल्ला

प्रेमचन्द जनजीवन के कलाकार थे। उनके साहित्य में युगीन समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द की कृतियों का अलग-अलग तो महत्त्व है ही, उन सब पर समन्वित रूप से दृष्टिपात करने पर अनेक ऐसे प्रश्न और समस्याएँ सामने आती हैं जिन्हें कठिनाई से ही पकड़ा जा सकता है। वास्तव में वे प्रश्न या समस्याएँ प्रेमचन्द की कृतियों में स्थूल रूप से उतने विद्यमान नहीं हैं, जितनी कि उनकी सूक्ष्म व्यंजना हुई है। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' एवं 'गोदान' उपन्यासों में तत्कालीन आर्थिक-संक्रमण की इसी प्रकार व्यंजना हुई है।

प्रेमचन्द-युग (सन् १९१५–१९३६ तक) तीव्र संक्रान्ति का युग था। इस युग में जीवन मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन एवं विकास हो रहा था। प्रथम महायुद्ध के बाद सत्तरह-अट्ठारह वर्षों के भीतर ही भारतीय अर्थव्यवस्था में महान परिवर्तन हो गया था। ब्रिटिश सरकार भारत के औद्योगिक विकास के विरुद्ध थी और अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए उसे कृषि प्रधान देश बनाये रखना चाहती थी। लेकिन प्रथम महायुद्ध के बाद ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई कि अंग्रेजों के न चाहने पर भी भारत में उद्योग धन्धों का विकास होने लगा था।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में भारतीय अर्थव्यवस्था के इस संक्रान्तिकाल की व्यंजना हुई है। प्रेमचन्द युग-द्रष्टा कलाकार थे। अपने युग की अर्थ व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों तथा उनके पीछे कार्य करने वाली शक्तियों को पूर्णतया पहचान लिया था। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' तथा 'गोदान' उपन्यासों में सामन्तवाद और पूँजीवाद के संघर्ष, सामन्तवाद पर पूँजीवाद की विजय तथा पूँजीवाद की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप विभिन्न वर्गों की स्थिति में आने वाले अन्तर का क्रमिक विश्लेषण हुआ है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि' और 'गोदान' का प्रकाशन काल क्रमशः सन् १९२१, १९२५ तथा १९३६ है।

'प्रेमाश्रम' की रचना यद्यपि प्रेमचन्द ने कृषकों की समस्या को ही दृष्टि-पथ में रख कर की है तथापि इस उपन्यास में उन्होंने एक स्थल पर औद्योगिक सभ्यता के आगमन की ओर संकेत कर दिया है। इस उपन्यास के जमींदार राय कमलानन्द से एक कम्पनी का एजेण्ट उसके हिस्से खरीदने का अनुरोध करता है। इसी सन्दर्भ में राय कमलानन्द जो कि सामन्तवादी अर्थव्यवस्था के प्रतीक हैं, पूँजीवादी अर्थव्यस्था के प्रति विरोध प्रकट करते हैं। वे बड़ी-बड़ी मिलें और कारखाने खोलने के पक्ष में नहीं हैं।

'रंगभूमि' में सामन्तवाद और पूँजीवाद का संघर्ष—प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' उपन्यास में औद्योगिक सभ्यता तथा सामन्तवादी सभ्यता के मध्य होने वाले संघर्ष का विशद चित्र देखा जा सकता है। प्रेमचन्द का 'रंगभूमि' उपन्यास अक्टूबर १९२२ से अप्रैल १९२४ के मध्य लिखा गया था। उस समय तक भारतीय उद्योगों की स्थिति दृढ़ नहीं हो पाई थी। रंगभूमि में उद्योगपति जॉनसेवक के सन्दर्भ में प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के लिए उद्योगपति को किस तरह परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। जॉनसेवक अपने सिगरेट के कारखाने के लिए भूमि प्राप्त करने, उसके हिस्से बेचने तथा मजदूरों के आवास का प्रबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लिए अनेक कठिनाइयाँ उठाता है ।

औद्योगिक अर्थ व्यवस्था तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के मध्य संघर्ष होना अनिवार्य है । पाँडेपुर बस्ती का अन्धा सूरदास औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के दोषों से परिचित महेन्द्रकुमारसिंह के बार-बार आग्रह करने पर भी वह सिगरेट के कारखाने के लिए अपनी भूमि देने को तैयार नहीं होता ।

सूरदास का जॉनसेवक से व्यक्तिगत विरोध नहीं है । विरोध है—भिन्न जीवन-दर्शन के कारण । सूरदास औद्योगिक सभ्यता का विरोधी है । सूरदास सिगरेट के कारखाने के लिए अपनी भूमि नहीं देना चाहता । लेकिन उद्योगपति जॉनसेवक इस विरोध से भयभीत होने वाला नहीं है । सूरदास की भूमि अपने अधिकार में लाने के लिए वह नगर के प्रधान राजा महेन्द्रकुमारसिंह तथा जिलाधीश मिस्टर क्लार्क से सहायता लेता है । मिस्टर क्लार्क के विमुख हो जाने पर वह महेन्द्रकुमारसिंह को कूटनीति द्वारा अपनी ओर मिलाकर उच्च सरकारी अधिकारियों की सहायता से अन्ततः सूरदास की भूमि पर अधिकार प्राप्त कर लेता है । मजदूरों के आवास के लिए पाँडेपुर बस्ती खाली करवाने में भी उसे तीव्र विरोध सहन करना पड़ता है लेकिन वह कहीं भी हार नहीं मानता ।

सूरदास अपनी पूरी शक्ति के साथ औद्योगिक सभ्यता का विरोध करता है । वह ग्रामीण सभ्यता की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है लेकिन इस संघर्ष में वह अन्ततः परास्त होता है । सूरदास की भूमि जॉनसेवक को सिगरेट के कारखाने के लिए मिल जाती है और पाँडेपुर बस्ती मजदूरों के घरों के लिए खाली करवा ली जाती है । सूरदास की इस पराजय के माध्यम से प्रेमचन्द ने पूँजीवाद के सम्मुख सामन्तवाद की पराजय का चित्रण किया है । नैतिक दृष्टि से भले ही सूरदास ने शत्रु-मित्र सबका हृदय जीत लिया हो लेकिन वह जॉनसेवक को पांडेपुर बस्ती में सिगरेट का कारखाना खोलने से किसी तरह नहीं रोक पाया । सूरदास की यह पराजय एक ज्वलन्त सत्य है । उपन्यास के अन्त में प्रेमचन्द ने उद्योगपति जॉनसेवक को सफलता का उल्लेख इन शब्दों के माध्यम से किया है—"रहे मिस्टर जॉनसेवक ! वह निराशामय धैर्य के साथ प्रातःकाल से सन्ध्या तक अपने व्यावसायिक धन्धों में रत रहते हैं । × × × कारबार दिन-दिन बढ़ता जाता है।

देश में गली-गली, दुकान-दुकान, इस कारखाने के सिगार और सिगरेटों की रेल-पेल है । वह अब पटने में एक तम्बाकू की मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं, क्योंकि बिहार प्रान्त में तम्बाकू कसरत से पैदा होती है ।"[१]

'रंगभूमि' का सूरदास ग्रामीण सभ्यता का प्रतीक है । वह नैतिक साधनों के बल से गाँव में औद्योगिक सभ्यता के आगमन को रोकने का प्रयत्न करता है । अतः 'रंगभूमि' में पाँडेपुर का आन्दोलन आर्थिक समस्या को लेकर है लेकिन इस आन्दोलन का स्वरूप १९२१ के राष्ट्रीयता आन्दोलन से प्रभावित है। सूरदास सत्य और अहिंसा के बल से ही गाँव में औद्योगिक सभ्यता के आगमन को रोकना चाहता है । आलोचकों ने पाँडेपुर आन्दोलन को १९२१ के असहयोग आन्दोलन का लघु रूप माना है । पाँडेपुर के आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन का लघु रूप माना जा सकता है इसमें तो कोई सन्देह नहीं, लेकिन जिस आर्थिक प्रश्न को लेकर यह आन्दोलन चलाया गया है उसे भी ध्यान में रखना आवश्यक है । अतः यह कहा जा सकता है कि 'रंगभूमि' के पाँडेपुर आन्दोलन में प्रेमचन्द ने राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों को एक साथ समेट लिया है ।

'गोदान' में पूँजीवाद की विजय तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विभिन्न वर्गों की स्थिति—'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते भारतीय अर्थव्यवस्था का यह संक्रान्ति-काल समाप्त हो चुका था । 'गोदान' का समाज पूँजीवादी सभ्यता का द्योतक है । 'गोदान' में प्रेमचन्द ने पूँजीवादी समाज में पूँजीपति के बढ़ते हुए प्रभाव का चित्रण किया है । 'गोदान' में जमींदार,

[१] रंगभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, १९६२ ई., पृ. ५४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा और राय साहब सामन्तवादी सभ्यता के अवशेष मात्र हैं, उनके हाथ में कोई शक्ति नहीं है। 'रंगभूमि' में जॉनसेवक की औद्योगिक स्थिति दृढ़ नहीं हो पाई है इसलिए वह कुँवर भरतसिंह से अपने कारखाने के हिस्से खरीदने के लिए आग्रह करता है और लाभ की दर बढ़ा-चढ़ा कर बताता है लेकिन 'गोदान' का पूँजीपति खन्ना आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली है। वह एक बैंक का मैनेजर और शुगर मिल का मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर है। नगर के बड़े-बड़े जमींदार उससे ऋण लेते हैं।

'गोदान' में गाँव और नगर सर्वत्र ही पूँजीपति और महाजन का राज्य है। 'प्रेमाश्रम' में लखनपुर गाँव के किसानों पर जमींदार ज्ञानशङ्कर का आधिपत्य है लेकिन 'गोदान' के बेलारी गाँव के कृषकों का अपने जमींदार राय साहब अमरपालसिंह से बहुत कम सम्पर्क रह गया है। वास्तव में यहाँ किसानों का भाग्य उन जमींदारों के आधीन है जिनके वे ऋणी हैं। नगर में भी राजा, रायसाहब की पदवी से विभूषित बड़े-बड़े ज़मींदारों की आर्थिक दशा निरन्तर बिगड़ती जा रही है। वे सबके सब नगर के पूँजीपति के ऋणी हैं। रायसाहब अमरपालसिंह को अपनी पुत्री के विवाह तक के लिए पूँजीपति खन्ना से ऋण लेना पड़ता है। राजा सूर्यप्रतापसिंह भी खन्ना के ऋणी हैं। पूँजीपति खन्ना का प्रभाव नगर तक ही सीमित नहीं है। उसकी एक महाजनी कोठी है जिसके एजेन्ट गाँवों में किसानों को सूद पर रुपया उधार देते हैं। बेलारी गाँव का झिंगुरीसिंह खन्ना की इसी महाजनी कोठी का एजेन्ट है। इस प्रकार नगर और ग्राम दोनों ही स्थानों पर पूँजीपति और महाजन का आधिपत्य है। किसान और जमींदार दोनों ही उसके ऋणी हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'रंगभूमि' में पूँजीवाद और सामन्तवाद में जो संघर्ष दृष्टिगत हुआ था वह 'गोदान' में पूर्णतया समाप्त हो चुका है। यहाँ सामन्तवाद पर पूँजीवाद ने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है।

देश की इस औद्योगिक उन्नति के परिणाम-स्वरूप किसान की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। घरेलू उद्योग धन्धों का नाश हो रहा है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं—"इन व्यवसाय-युग की यही महिमा है। यहाँ व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है। यहाँ जो कुछ है, धन है और मशीन है। वही देहातों की तबाही, वही घरेलू व्यवसायों का सर्वनाश।"[१] बड़ी-बड़ी मिलें और कारखाने खुल जाने के कारण किसान की दशा कितनी दयनीय हो गयी है प्रेमचन्द ने अपनी 'बलिदान' कहानी में इस ओर संकेत किया है। इस कहानी के हरखू के विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं—"हरखचन्द्र कुरमी अब हरखू हो गया है। आज से बीस साल पहले उसके यहाँ शक्कर बनती थी, कई हल की खेती होती थी और कारोबार खूब फैला हुआ था। लेकिन विदेशी शक्कर की आमद ने उसे मटियामेट कर दिया। धीरे-धीरे कारखाना टूट गया, जमीन टूट गई, गाहक टूट गये और वह भी टूट गया।"[२] 'गोदान' में भी शुगर मिल खुल जाने पर किसान ऊख पेर कर गुड़ बनाने की अपेक्षा ऊख बेच देना अधिक अच्छा समझते हैं क्योंकि गुड़ बनाने से लाभ होने की सम्भावना नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रथम महायुद्ध के बाद भारत में जो आर्थिक-संक्रमण लक्षित होता है, प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'गोदान' उपन्यासों में उसकी क्रमिक व्यंजना हुई है।

—हिन्दी विभाग, मॉडर्न कालेज वॉर वुमेन,
डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली।

[१] विविध प्रसंग, भाग २—हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२ ई०, पृ० ४९६।

[२] बलिदान—मान सरोवर भाग ८—हंस प्रकाशन, १९६० ई०, पृ० ६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव्य कल्प का आदि-काव्य 'लोकायतन'

● डा० शिवप्रिया महापात्र

पन्त जी की नवीनतम कृति 'लोकायतन' एक अनुपम कृति है। आज जब स्थूल विराट् के समक्ष अणु-युग का संत्रस्त मानव अपने को नगण्य मान बैठा है, महानाश की यथार्थ शंका से परित्राण पाने को विकल है, आत्महीनता, बौद्धिक अनास्था, घृणा संशय एवं अन्धकार ने उसे घेर लिया है तब मानवीय विराट चेतना के द्वारा नवकल्प के स्वर्ण विहान का आह्वान करने वाली पन्तजी की आस्थामयी अमृतवाणी अभिनन्दनीय है। कवि ने भारतीय लोकभूमि पर विश्व-मानव के अन्तर्बाह्य विकास की परिकल्पना की है। यथार्थ से युक्त कवि की यथार्थोत्तर जीवन दृष्टि इसी भौतिक जीवन का उन्नतशील पुनर्निर्माण करना चाहती है। विश्व ऊर्ध्व चेतना एवं बहिर्मुखी सामाजिक चेतना के समन्वय द्वारा युगदृष्टि का निर्माण ही 'लोकायतन' के कवि का लक्ष्य है।

'उत्तरा' की प्रस्तावना में कवि ने इसी सांस्कृतिक नवोत्थान की बात कही थी। युग-पुरुष को पूर्णतः सचेष्ट करने के लिये लोक-सङ्गठन के साथ गांधीवाद की पीठिका बनाकर यदि मनःसङ्गठन (संस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाये और मनुष्य की सामयिक चेतना (संस्कृति) को विकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप नवीन रूप से सक्रिय समन्वय किया जाये तो वर्तमान के विक्षोभ के आर्तनाद तथा क्रान्ति की युद्ध-ललकार को लोक-जीवन के सङ्गीत तथा मनुष्यता की पुकार में बदला जा सकता है एवं क्रान्ति के भीतरी पक्ष को भी सचेष्ट कर उसे परिपूर्ण बनाया जा सकता है। यह व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन राजनीतिक, आर्थिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण धरातलों में मानवीय सन्तुलन तथा सामञ्जस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानवता का स्वरूप दे सकेगा। यह सांस्कृतिक-नवोत्क्रान्ति 'लोकायतन' की आधार-शिला है।

'लोकायतन' का दार्शनिक प्रतिपाद्य अरविन्द-दर्शन से व्यापक रूप से प्रभावित होते हुए भी उसे पूर्णतः स्वीकार नहीं करता। अरविन्द ने जीव और जगत् में एक ही चेतन तत्व की व्याप्ति मानी है। जीवात्मा और जगत् ब्रह्म के साथ एक ही चेतना से अनुस्यूत होने के कारण एक ही है। जड़-पदार्थों में प्राण अवचेतन के गहरे स्तर में होने के कारण हम अनुभव नहीं कर पाते। अभी जीव का विकास अन्न से मन तक हुआ है। उसका अग्रिम विकास अधिमानस तक होगा। इस स्थिति में वह द्वन्द्वरहित हो चिरशान्ति का अनुभव करेगा। भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में समन्वय की स्थापना होगी। व्यक्ति-चेतना और महाचेतना अथवा जीवचेतना एवं ब्रह्म-चेतना जो तत्वतः एक ही हैं, मत-निक्षेप के कारण विभिन्न दृष्टिगोचर होती हैं। चैतन्य शक्ति के आरोहण एवं अवरोहण, दोनों प्रक्रियाओं द्वारा यह विकास निरन्तर होता आ रहा है।

इस प्रकार मानवीय जीवन का निर्माण बाह्य मन के द्वारा नहीं, बल्कि अन्तश्चेतना के आधार पर ही करना होगा। इस भू-चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाना होगा! प्रत्येक व्यक्ति के अवचेतन में स्वर्ण-चेतना छिपी है, उसे बाहर लाना होगा। मानवीय अवचेतना ही दिव्य ज्योतिर्मयी स्वर्गीय उषा है और

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही घनघोर अन्धकारमयी नारकीय रात्रि भी। ये दोनों एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। सामूहिक सुसंस्कृत उन्नत जीवन की स्थापना अवचेतन लोक के इसी घोर नाटकीय अन्धकार की यथार्थ मिट्टी के आधार पर ही हो सकती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को पहले अपने व्यक्तित्व को नई चेतना से सङ्गठित करना होगा। इस प्रकार व्यक्ति और समाज दोनों का पुनर्गठन कवि को अभिप्रेत है।

'चिदम्बरा' की भूमिका में पन्त जी ने लिखा है कि सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही आंशिक सत्य हैं और इनसे पूर्ण सत्य है सूक्ष्म स्थूल का सामंजस्य। आज जो अन्तर्दृष्टि या ऊर्ध्व स्तर का सत्य है, कल वह बहिर्दृष्टि को समतल पर भी सुलभ हो सकेगा। इस युग के विक्षोभ का मुख्य कारण है, मानव जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों में सामंजस्य अथवा सन्तुलन का अभाव। हमारा युग सत्य है जगत् जीवन और भू-क्षेत्र को ही ब्रह्म की मूर्तिमान वास्तविकता में परिणत करना। इसलिए सामूहिक आत्मा का मनःगठन आवश्यक है। कवि न तो स्वर्ग को किसी परलोक में देखता है और न ईश्वर को किसी अलौकिक शक्ति के रूप में। इन्द्रियों से परे किसी अतीन्द्रिय की कल्पना भी वह नहीं करता है। कवि तो प्रीति से अखण्ड प्राण एवं सहयोग से सुसङ्गठित लोक-जीवन को ईश्वर और स्वर्ग मानता है। जब, सबका अन्तःसंयोजन हो जायेगा तब व्यक्ति और विश्व, मानव और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। कवि का रचनात्मक दृष्टिकोण भावुक नहीं व्यावहारिक है। कवि ने विश्व-चेतना, जिसकी प्रतीक सीता हैं, को गांधीजी की सार्वजनिक साधना में 'लोकायतन' में साकार किया है और इसके द्वारा कवि ने पौराणिक एवं आधुनिक युग को एक कर दिया है।

वंशी कलाकेन्द्र में इसी दार्शनिक उपलब्धि को चरितार्थ करने का प्रयत्न करता है। उसके मत से मानव को अपनी सार्वभौमिकता का ज्ञान न होने के कारण वह सामूहिक जीवन के साथ प्रभविष्णु ढङ्ग से व्यवहार नहीं कर पाता। जब तक अन्तश्चेतना पर आधारित शाश्वत एकता का उसे अनुभव नहीं होगा तब तक स्थायी सुरक्षा एवं चिरन्तन आनन्द सम्भव नहीं है। अतः आन्तरिक चेतना का विकास आवश्यक है। भू-जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन विरोधी नहीं, वरन् पूरक हैं परस्पर के। शरीर के बिना आत्मा का न कोई आधार है और न अस्तित्व ही। इसी मृत आत्मवाद के कारण भारत का पतन हुआ। व्यक्ति-मुक्ति लक्ष्य होने के कारण सामाजिक-भावना का प्रसार न हो सका। इसके विपरीत आत्मचेतना से शून्य जड़ भौतिकवाद के फल स्वरूप पश्चिमी दृष्टि एकांगी रही। फलतः स्थायी सुरक्षा असम्भव हो गई। उच्चस्तरीय जीवनानुभूति और ऊर्ध्वगामी चेतना से रहित भू-समृद्धि निरर्थक और अभिशाप है।

अरविन्द दर्शन लोकायतन का प्रतिपाद्य—अरविन्द यद्यपि भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय चाहते थे, पर दोनों को समकक्ष नहीं मानते। जड़ व चेतन को जीवन प्रवाह के दो कूलों के रूप में नहीं स्वीकारते। निर्विवाद रूप से वे अतिमानस को चरमस्थिति मानते हैं और यही उनका लक्ष्य है तथा उनकी साधना की विकास-प्रक्रिया जड़ को इस पूर्ण चेतन स्थिति तक पहुँचाने के लिए है। इसी प्रकार अरविन्द ने अतिमानस की स्थिति को महत्तर व श्रेष्ठतर वस्तु माना है तथा उसको प्राप्त कर उसके द्वारा जगत् का चैतन्यमय पुनर्निर्माण करना चाहा है। वे तो स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—'चेतना के सूत्र को पकड़कर मैं सृष्टि-पट को उधेड़कर फिर से बुन सकता हूँ।'

पन्त जी की असहमति यहीं से प्रारम्भ होती है। अरविन्द जिसे साध्य मानते हैं, पन्तजी उसे साधन। उसका साध्य यह जीवन है, यह भौतिक अस्तित्व है। चेतना जीवन से महत्तर वस्तु नहीं पर इस जीवन का ही प्रबुद्ध अंश है, जिसकी सार्थकता व उपयोगिता जीवन को सुन्दर एवं मंगलमय बनाने में है। वे जीवन का पर्यवसान चेतना विकास की उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपूर्ण स्थिति में नहीं करना चाहते वरन् उस चेतना को जीवन रस से स्नात देखना चाहते हैं। वे तो जड़ को भी जीवन के लिए चेतना के समान ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह धरती उनके लिए सत्य है, यहाँ की शोभा ही उनके लिए वरेण्य है। इन्द्रियों से परे किसी अतीन्द्रिय स्वर्ग-लोक की उन्हें आकांक्षा नहीं, जीवन से परे किसी अतिमानस की चरमस्थिति की उन्हें अभिलाषा नहीं। 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में उन्होंने कहा है—"मेरे और श्री अरविन्द के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर भी है। मेरी दृष्टि में अन्तश्चैतन्य तथा अन्तर्बोध की दृष्टि से भी जीवन तत्त्व का ही सर्वोपरि मूल्य है। मैं मन या चैतन्य को जीवन का एक प्रबुद्ध अंश-भर मानता हूँ और जड़ तथा चैतन्य को जीवन का बाहरी-भीतरी छिलका या स्तर मात्र। जड़ और चेतन के तटों के बीच में बहने वाली जीवन की अविराम अक्षय धारा को मैं दोनों का अन्तःसमन्वित सत्य ही नहीं मानता, जीवन-विकास के लिए उन दोनों की उपयोगिता या सार्थकता भी मानता हूँ। जीवन ही अपनी अन्तःक्षमता में सर्वशक्तिमय सर्वपूर्ण ईश्वर है जो दिक्काल के बाह्य पट में सृजन-विकास की स्थिति में है और प्रबुद्ध मानव ही, जो जीवन का पूर्णतर प्रतिनिधि है, उस विकासक्रम को पृथ्वी पर चरितार्थ करने में सहायक हो सकता है।"

उन्होंने इस मतभेद का कारण बताया है सामूहिक मुक्ति सम्बन्धी अरविन्द-दर्शन की सन्तुलित विश्व-जीवन के लिए अपर्याप्तता। वे जागतिक जीवन की भौतिक उपलब्धियों की उपेक्षा कर सूक्ष्म चेतना के द्वारा जड़ के उन्नयन एवं परिपूर्णता की प्राप्ति नहीं चाहते। युगों के विकास से मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति ने जिन सामाजिक मूल्यों को उपलब्ध किया है, वे उन्हें ही अंगीकृत एवं अधिकृत कर और क्रमशः उनका ही उत्तरोत्तर अधिक विकास करते हुए, उन्हें पूर्ण विकसित लोक-जीवन में बदल देने को इच्छुक हैं। वे मानते हैं कि सृष्टि के मूल में मनुष्य के सामाजिक जीवन में मूर्त्त होना चाहिए। उनकी दृष्टि में यही भागवत साक्षात्कार है। इस प्रकार भागवत साक्षात्कार उनकी काव्य-चेतना में एक लम्बी विकासशील सामाजिक प्रणाली है।

आलोचकों को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा भी है : "जिस चेतना (भागवत चेतना) को महाभारतकार या मानसकार ने व्यक्त किया है, उसी को मैंने अपनी जीवन-दृष्टि द्वारा मानव पर चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है।" और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने विज्ञान, दर्शन, संस्कृत, समाज, अर्थव्यवस्था एवं राजनीति सभी से अपने प्रयोजन के अनुरूप विभिन्न तत्वों का ग्रहण उन्मुक्त भाव से किया है। यही लोकायतन का प्रतिपाद्य है।

'लोकायतन' में कवि ने रागशुद्ध जीवन का चित्रण किया है। 'चिदम्बरा' की भूमिका में दीप्त लावण्य के स्थल पर उन्होंने लिखा है—यदि हम प्राण भावना के धरातल से अन्तश्चेतन्य के शिखर की ओर देखें तो रति की अन्तःशुद्ध स्थिति ही पार्वती परमेश्वर का रूप है। आध्यात्मिक व लौकिक मूल्यों के परस्पर विरोधी व पृथक् मूल्यों में विच्छिन्न करने का यही कारण है कि मानव की राग-भावना का परिष्कार व विकास नहीं हुआ है।.......रागात्मिका वृत्ति के परिष्कार को मैंने नवमानवता के निर्माण के लिए अनिवार्य मूल्य माना है। यह प्रवृत्ति पथ नहीं, विवृत्ति पथ नहीं, निवृत्ति सन्तुलित, प्रीतिसंयमित प्रवृत्ति पथ है। इन्द्रिय पथ नहीं, इन्द्रिय मूल्यों पर आधारित शील-पथ है। यहाँ सुधा और रति की समस्याओं का मानवोचित भूमिका पर समाधान पाने की सामूहिक साधना है।

कलाकेन्द्र में युग्म जीवन व सहजीवन का भावनामय आदर्शोन्मुख चित्रण इन्हीं मान्यताओं के आधार पर हुआ है। वहाँ राग की भावना उज्ज्वल और संस्कृत-शुद्ध होकर आई है। वहाँ नारी-सौन्दर्य उद्दीपन नहीं, आह्लाद और तृप्ति का स्रोत है। भावी की प्रबुद्ध मानवता देह-बोध का भार वहन नहीं करेगी। कवि ने जिस सामाजिक जीवन का चित्रण किया है वह विभिन्न इकाइयों में विभक्त गृहों की संकीर्ण देह-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लियों एवं प्रांगणों को लाँघकर एक अधिक व्यापक विकसित धरातल पर आत्मसंयमित, स्वतः निर्देशित, शील-सौम्य मानवता में परिणत हो जाता है। उसमें अवांछित बन्धनों या कुण्ठाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। वंशी कवि यद्यपि स्वतन्त्र प्रेम के समर्थक हैं किन्तु वह प्रेम मांसल नहीं अपितु भावनात्मक है।

मानवतावाद—पन्तजी का कहना है कि "नए मनुष्य में मेरा परम विश्वास है। यह अल्पप्राण युग है, लेकिन मैं महाप्राण में विश्वास करता हूँ। आज के समय में ही मैं 'रिएक्ट' नहीं करता, मेरा विश्वास शाश्वत रूप में है। मुझे मानव चेतना पर विश्वास है। वह इस अणु संहार के नृशंस हिंस्र नाटक को अवश्य ही नवीन निर्माण तथा रचना मंगल की दिशा एवं भूमिका देकर मानवता की प्रगति का द्वार उन्मुक्त कर सकेगा। 'लोकायतन' का कवि वर्तमान युग की विघटित परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण और विश्लेषण के साथ, भावी युगों के अधिमानस के पूर्ण विकसित रूप की मांगलिक झाँकी भी प्रस्तुत करता है। आज की मानवता एवं विश्वजीवन को एक सक्रिय जीवनोपयोगी सांस्कृतिक पीठिका प्रदान करता है। विज्ञान एवं धर्म, आत्मसत्य और वस्तुसत्य दोनों के सम्यक् समन्वय में नई मानवता की प्रतिष्ठा उन्होंने की है। भावी मानव के लिए आज की बौनी खंडित मान्यताएँ अपर्याप्त एवं अनुपयोगी सिद्ध होंगी। वह न पूर्व का होगा और न पश्चिम का। वह संस्कृत शुद्ध उन्नत जीवन जिएगा। आज की बाह्य वास्तविकता की विकृतियों से युक्त उसके भीतर एक अन्तर वास्तविकता का विकास अन्तश्चेतना के आधार पर होगा। प्रेम का शासन होगा। युग्म जीवन और सहजीवन रागशुद्ध व उन्मुक्त होगा। चेतना के ज्ञान पक्ष एवं संकल्प पक्ष के मिलन से इस मानवता की स्थापना होगी। इसी आदर्श के अनुरूप 'लोकायतन' की स्थापना हिमगिरि के सित् अंचल में होती है।

लोकायतन एवं कामायनी—'लोकायतन' एवं 'कामायनी' दोनों ही दार्शनिक काव्य हैं तथा दोनों ही नवीन कल्प के आरम्भ की कथा कहते हैं। 'कामायनी' में वैदिक पुरावृत्त पर आधारित महाप्लावन के उपरान्त मानव सृष्टि के आरम्भ की गाथा है वैसे ही 'लोकायतन' में अणुयुद्ध से ध्वस्त वसुन्धरा पर मानव संस्कृति के नवोन्मेष की कथा निबद्ध है। दोनों का लक्ष्य व्यक्ति मुक्ति नहीं, समष्टि मुक्ति है। आज की खंडित पीड़ित मानवता को शाश्वत आनन्द, चिरशान्ति एवं स्थायी सुरक्षा की प्राप्ति की स्थिति तक दोनों ही ले जाना चाहते हैं। दोनों ही निवृत्ति को नहीं प्रवृत्ति मार्ग को ही इस लक्ष्य तक पहुँचने का साधन मानते हैं। इस संसार रूपी कर्मक्षेत्र से होकर ही इस पूर्णता तक पहुँचा जा सकता है। दुःखात्मक संसार से भागकर वास्तविक परमसुख की उपलब्धि सम्भव नहीं है। सांसारिक कर्मों को करते हुए आत्मशक्ति या चेतना की परिपूर्णता का अभिज्ञान ही दुःखात्मक संसार को सुखात्मक विश्व में परिणत कर देगा। इस प्रकार कर्म के साथ वृत्तियों का उन्नयन तथा चेतना का विकास दोनों को अभीष्ट है। दोनों महाप्राण कवि इस अल्पप्राण युग में जीवन के मांगलिक चिरन्तन स्वरूप की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं।

इन साम्य बिन्दुओं के होते हुए भी दोनों कवियों में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। 'कामायनी' में आधुनिक समस्याओं का चित्रण एवं समाधान अवश्य है, पर सृष्टि के अभ्युदय एवं प्रगति से सम्बन्धित होने के कारण उसमें रहस्यात्मकता अधिक है। 'लोकायतन' का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आधुनिक समस्याओं से है।

कामायनीकार पूर्व प्रतिपादित निश्चित दर्शन को लेकर चला है, यद्यपि अन्य युगोपयोगी दार्शनिक विचारधाराओं का भी योग मिलता है, किन्तु लोकायतनकार ने किसी पूर्व निर्धारित दार्शनिक मत को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है। इसमें कवि का स्वतः प्रतिपादित दर्शन है।

प्रसादजी भौतिकता को स्वीकार अवश्य करते हैं पर आपेक्षिक दृष्टि से निस्सन्देह भौतिकता की अपेक्षा अध्यात्म को महत्व देते हैं, पर पन्तजी तो भौतिकता को ही महत्वपूर्ण मानते हैं एवं उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार अध्यात्म जो कि जीवन का ही प्रबुद्ध सूक्ष्म अंश है, इस जागतिक जीवन से न तो भिन्न है और न श्रेष्ठ ही। जीवन की अक्षय धारा के ये दो कूल हैं, दोनों समान। ईश्वर भी रागशुद्ध प्रेममय मानव है, उससे पृथक् नहीं।

'कामायनी' में मानव की मूल समस्याओं का चित्रण हुआ है, अतः मानवीय मूल वृत्तियों का विवेचन उसमें अधिक गहराई एवं विशदता से हो सका है। 'लोकायतन' में मनोवृत्तियों का विश्लेषण नहीं, अन्तश्चेतना का विकास दिखाया गया है। इसमें आधुनिक समस्याओं का निरूपण होने के कारण आधुनिकता अधिक है।

प्रसादजी वृत्तियों के उन्नयन द्वारा समरस अवस्था तक मानवता को ले जाना चाहते हैं और तब समस्त समस्याओं का स्थायी समाधान मिलता है। इस स्थिति पर आत्मा को अमरत्व एवं शाश्वत आनन्द की दिव्यानुभूति होती है। 'लोकायतन' में अतिमानस तक चेतना का आरोहण पुनः भू-चेतना तक अवरोहण करने के लिये होता है। कवि इस चैतन्य भू-रस में ही स्थायी सुरक्षा चिरशान्ति और अक्षय दिव्य आनन्द की अवस्थिति मानता है। सूक्ष्म विकसित चेतना की सार्थकता इन स्थूल इन्द्रियों को उनके पूर्ण विकसित स्वरूप की प्रतीति कराने में है।

दोनों ने स्त्री-पुरुष के प्रेम प्रश्न पर विचार किया है। नारी के संयत, शील, स्नेहमय एवं उदात्त रूप का चित्रण दोनों में हुआ है पर पन्तजी प्रेम के सम्बन्ध में विशुद्ध आदर्शवादी हैं। उन्होंने स्त्री और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण को ऐहिकता एवं कामवासना से ऊपर उठाकर भावनात्मक एवं आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। आदर्शोन्मुख होते हुए भी यथार्थ जीवन की स्वाभाविक दुर्बलताओं को प्रसादजी ने स्थान दिया है। श्रद्धा के धैर्य और तप के आधार पर प्रसादजी ने नारी जीवन के चरमोत्कर्ष का संकेत किया है।

इस प्रकार 'लोकायतन' एक विशिष्ट कृति है तथा प्रबल-काव्य की परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

—२०३, विट्ठलभाई पटेल हाऊस, रफी मार्ग
नई दिल्ली–१

ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक महानुभाव अपनी ग्राहक संख्या लिख देंगे तो उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त हो सकेगा। अन्यथा ग्राहक-संख्या खोज कर सकना और आज्ञा का पालन करना सहज सम्भव नहीं है।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्विरोध और मुक्तिबोध का काव्य

● डा० नरेन्द्रदेव वर्मा

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध अधुनातन हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। कविता की नयी धारा का पुरस्कार प्राप्त करने के साथ ही उन्होंने साहित्यिक विचारणा के क्षेत्र में कतिपय नयी स्थापनाएँ भी की हैं। प्रकाशन और विज्ञापन की महत्वाकांक्षा से मुक्तिबोध दूर रहे हैं। इसलिए उनकी समस्त साहित्यिक चिन्तना का तारतम्यमूलक अध्ययन करना एक कठिन कार्य है। इसका कारण यह है कि उन्होंने एकाध पुस्तक छपाने की दृष्टि से अपनी जिज्ञासाओं को एक क्रम से नहीं रखा है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के अनुरोध की रक्षा के लिए उन्होंने अवश्य कुछ निबन्धों की रचना की है, किन्तु इनके बीच समय और दृष्टिकोण का इतना व्यवधान है कि इनमें कोई एक केन्द्रीय सूत्र नहीं मिलता।

किन्तु मुक्तबोध ने 'कामायनी : एक पुर्नविचार' नामक समीक्षा-ग्रन्थ का प्रणयन भी किया है। इसमें हम उनकी समीक्षा-शैली के सैद्धान्तिक मानदण्डों से परिचित हो सकते हैं। दो वर्ष पहले उनके स्फुट निबन्धों के दो संग्रहों का प्रकाशन भी हुआ है। 'एक साहित्यिक की डायरी' और नयी कविता का आत्म सङ्घर्ष तथा 'अन्य निबन्ध' में उनकी आत्म-विवृत्ति और स्फुट व्यावहारिक समीक्षाएँ संगृहीत हैं।

कवि के रूप में मुक्तिबोध 'तारसप्तक' के प्रकाशन के पूर्व ही साहित्य-जगत में प्रवेश कर चुके थे। अपने आरम्भिक काव्य-काल में वे मालवा के बिस्तीर्ण मनोहर मैदानों में घूमा करते थे और क्षिप्रा की रक्त-भव्य संध्या एवं विविधरूप वृक्षों की छाया से अपने किशोर-मन में सौन्दर्य-प्रेरणाओं को जन्म लेते देखा करते थे। किन्तु 'तारसप्तक' के साथ ही वे अधुनातन काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मान लिए गये।

मुक्तिबोध के काव्य को हिन्दी की उस नवीन विचारधारा के अन्तर्गत रखने में थोड़ा संकोच होता है जिसे 'प्रयोगवाद' की अभिधा दी गयी है। इस हिचकिचाहट के कई कारण हैं। पहला तो यह है कि उन्होंने किसी वादीय भूमिका पर अपने काव्य का सृजन नहीं किया है। दूसरे उनमें शब्दों और काव्य-रूपों के क्षेत्र में प्रयोग करने की वह आतिशायिक प्रवृत्ति नहीं पायी जाती जिसके लिये प्रयोगवाद को काफी बदनाम किया गया है। और तीसरे, उनमें दल विशेष के साथ सम्वद्ध होने का भाव भी नहीं है। असल में, वे प्रयोगवादी घेरे के ऊपर उठकर अपने लिए एक विशिष्ट किन्तु विलक्षण स्थान बना लेते हैं।

मुक्तिबोध का काव्य-विकास क्रमिक रूप से समझा जा सकता है और उसकी तुलना अज्ञेय से की जा सकती है। अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों का काव्यारम्भ छायावादी शैली की कविता के साथ होता है। किन्तु इन तुकान्त और छन्दबद्ध गीतों का रूपविन्यास मुक्तिबोध के कृतित्व में जितना सशक्त है, अज्ञेय के गीतों में यह पक्ष उतना ही दुर्बल है। अज्ञेय एक अशक्त छायावादी गीतकार के रूप में 'चिन्ता' और 'भग्नदूत' के माध्यम से साहित्य में प्रवेश करते हैं। छन्दबद्धता और संगीतात्मकता का अभाव उनके गीतों में देखा जा सकता है किन्तु मुक्तिबोध के गीत इन दोषों से सर्वथा रिक्त हैं। अज्ञेय के काव्य में एक ऐसा कवि दिखाई देता है जो शिल्प को निवाहने में असमर्थ है। वह विद्रोही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो है पर वह अपने विद्रोह को व्यक्त करने में सफल नहीं होता। कहीं-कहीं तो वह अपनी क्षुब्ध और आकुल भावनाओं की अभिव्यक्ति बड़े हास्यास्पद ढङ्ग से करता है।

मुक्तिबोध के आरम्भिक काव्य में हमें रूप की यह उलझन नहीं मिलती। वे तुक, लय पर अधिकार रखने वाले कवि की तरह उपस्थित होते हैं। यहाँ उनकी कविताएँ व्यक्ति-केन्द्रित न होकर अधिक उदात्त हैं। यहाँ वे एक प्रकृति-उपासक कवि के रूप में आते हैं।

'तारसप्तक' में संकलित कविताएँ मुक्तिबोध के काव्य विकास के दूसरे सोपान का निर्माण करती हैं। यहाँ कवि काव्य के परम्परागत प्रतिमानों, शिल्प और वस्तु की मान्यताओं से ऊपर उठकर स्वच्छन्द काव्य की भूमिका पर संस्थित हो रहा है। यद्यपि तुक और लय का मोह अभी पूरी तरह से छूटा नहीं है पर इससे अभिव्यक्ति के मार्ग में उल्लेखनीय अवरोध की सृष्टि नहीं हुई है। इसी संग्रह में प्रकाशित अज्ञेय की कविताएँ भी उनके विकास के दूसरे चरण से सम्बन्धित हैं। मुक्तिबोध के समान वे भी छायावादी शैली को छोड़ते हुए स्वच्छन्द काव्य की भूमिका ग्रहण करते हैं। किन्तु इन दोनों कवियों का पट-परिवर्तन अलग-अलग उद्देश्यों से हुआ है।

अज्ञेय स्वच्छन्द काव्य की भूमिका विवश होकर ग्रहण करते हैं। तुकान्त एवं लयात्मक कविताओं के क्षेत्र में उन्हें सफलता नहीं मिली है। छायावादी शैली के गीतों में वे अपनी अनुभूतियों को पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्त नहीं कर सके हैं। अतः उनके परिवर्तन के मूल में दो विवशताएँ हैं : पहली विवशता है अनुभूति के प्रकाशन की और दूसरी विवशता है कवि-कर्म की। मुक्तिबोध किसी विवशता से प्रेरित होकर स्वच्छन्द काव्य की ओर प्रयाण नहीं करते। वह अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है। वह उनकी बढ़ती हुई उम्र और उनके बढ़ते हुए ज्ञान का तकाजा है। आधुनिक जीवन का विजड़न उनमें है, राग और बुद्धि के उद्वेलनकारी आघात उन्होंने सहे हैं, अनुभूति और चिन्तन के दो छोरों को समेट लेने का आग्रह उनमें रहा है और अन्ततः समाज और व्यक्ति के दोहरे दायित्वों को सम्पादित करने की विकलता उनमें आ गयी है।

आधुनिक मनःस्थिति को यदि हम किसी कवि के कृतित्व में देखना चाहें तो मुक्तिबोध की कविताएँ हमें संतुष्ट कर सकती हैं। यदि हम काव्य के सम्बन्ध में रसमूलक दृष्टि रखते है, उससे रस की आशा करते हैं, उससे मनःतुष्टि पाना चाहते हैं तो उनकी कविताएँ हमें निराश करेंगी। यदि हम सहज, सरल ऋजु अनुभूति और उसके सौन्दर्य का दर्शन करना चाहते हैं तो वह भी यहाँ दुर्लभ है। फिर वहाँ क्या है ? जहाँ परम्परामान्य काव्य-प्राण रस अपदस्थ है वहाँ ऐसा क्या है जो उसे काव्य में बने रहने देता है। मैं मुक्तिबोध के काव्य की प्रेरणाशक्ति को एक शब्द में व्यक्त कर सकता हूँ। वह शब्द है 'अन्तर्विरोध'। यह अन्तर्विरोध आधुनिक है तथा इसमें आधुनिक युग की समस्त जटिलता, क्लिष्टता और हताशा के भाव संचित हैं।

मुक्तिबोध को मार्क्सवादी दर्शन से बड़ी शक्ति मिली है। वे उसे एक समग्रगत दर्शन के रूप में स्वीकार करते हैं। वे समझते हैं कि मार्क्सवाद के आलोक में हमारी सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में वे मार्क्स और उनके अनुयायियों द्वारा प्रवर्त्तित साहित्यिक मान्यताओं की कसौटी पर 'कामायनी' को समझने का प्रयास करते हैं। यहाँ वे नव्य प्रगतिवादी समीक्षक के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

क्या उनकी कविता भी मार्क्सवादी ढाँचे पर लिखी गयी है ? नहीं। वह तो उनकी आकुंचित व्यक्ति-निष्ठता का स्फोट है। वह उनकी मार्क्सवादी पैमाने पर बुद्धि के द्वारा ह्रस्त अनुभूति का उच्छलन है। वह उनकी अहंता और सामाजिक दायित्व के मध्य व्याप्त तुमुल विरोध की अभिव्यक्ति है। वे चाहते हैं कि उनका अहम् उनकी बुद्धि के द्वारा स्थापित मान्यताओं से सहमत हो जाये। वे प्रयास करते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी अनुभूति उनके तर्कों की अनुचरी बन जाये। यह संघर्ष तथा दो अतिवादी छोरों को मिलाने का प्रयास उनके काव्य को विलक्षण तीव्रता प्रदान करता है।

मुक्तिबोध क्लिष्ट कल्पनाओं के कवि हैं। जब अन्तर्विरोध काव्य का विषय बनता है तब उसे व्यक्त करने के लिये सहज कल्पनाएँ काम नहीं देतीं। उन्हें तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है, उन्हें जटिल बनाना पड़ता है। कल्पनाओं का विघटन, जिसे 'डिस्टार्शन' कहा गया है तथा जो प्रयोगों की एक नयी विधा के रूप में विज्ञापित हैं, मुक्तिबोध के काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलेगा। यहाँ हमें कल्पना-विघटन के अनेक रूप दिखाई देते हैं। बिम्ब-विघटन की प्रक्रिया निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है।

"दिन के बुखार
रात की मृत्यु
के बाद हृदय दुःख का नर्क,
रात्रि में शून्य
दो देह युक्त—
दो रिक्त प्राण व्यंग्य में गर्क।"

इसी प्रकार प्रतीक-विघटन के चित्र भी उनकी कविता में मिलते हैं।

"वे गगन दीन
वे रसिक रुग्ण
पुंसत्वहीन वेश्या-विहार।
इनका प्रकाश
जग के विशाल
शव का सफेद परिधान साफ।
है त्यक्त गेह
आत्मा अदेह
उड़ चली गटर से बनी साफ।"

डिस्टार्शन या विघटन का कविता में एक विशेष प्रयोजन होता है। कवि अपनी निगूढ़ संवेदना की अभिव्यक्ति के लिये विघटित बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम को ग्रहण करता है। कल्पना-विघटन आधुनिक काव्य की एक उल्लेखनीय विधा है और मुक्तिबोध के काव्य में इसका कुशल और अर्थगर्भ नियोजन हुआ है। वे इसका प्रयोग वैचित्र्य-मोह से नहीं करते। आधुनिक जीवन विघटनकारी तत्त्वों से भरा हुआ है तथा विघटित कल्पना के माध्यम से ही इसका रूपायत सम्भव है। ऐसी कल्पनाएँ स्वाभाविक रूप से मुक्तिबोध के काव्य में उपस्थित हैं।

आधुनिक बोध के प्रायः सभी रूप मुक्तिबोध के काव्य में मिल जाते हैं। हमारे विवेचन का तात्पर्य यह नहीं है कि वे सर्वत्र कल्पना-विघटन के रूपों का ही प्रयोग करते हैं। असल में उनकी कविता में बिम्बों और प्रतीकों के अभिनव रूपों की ही प्रतिष्ठा हुई है। इस सन्दर्भ में हम यह संकेत देना चाहेंगे कि मुक्तिबोध के अनेक प्रतीक सांस्कृतिक अनुशीलन से उपलब्ध हुए हैं। अनेक स्थलों पर अपनी अदम्य जिजीविषा और अप्रतिहत संकल्प शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने तन्त्रशास्त्र के प्रतीकों का बड़ी स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है। कतिपय तांत्रिक उनकी कुण्ठा और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को छोड़ने के प्रयासों का प्रकाशन भी करते हैं।

—७०१, बैजनाथलेन, रायपुर (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता की सम्प्रेषणीयता

● ● ● डॉ० गायत्री वैश्य

नयी कविता का साहित्य बड़ी तीव्र गति से विकसित एवं प्रकाशित हो रहा है। नए कवि रक्तबीज की भाँति बढ़ते जा रहे हैं। शायद ही कोई त्रैमासिक, द्वैमासिक, मासिक या साप्ताहिक पत्रिका ऐसी होगी जिसमें आजकल नयी कविता या उसकी अग्रवर्ती कविताएँ और उनके विश्लेषण, विवेचन सम्बन्धी लेख प्रकाशित न होते हों। कई पत्रिकाएँ तो विशेष रूप से इन्हीं की विवेचना के लिए या इनकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए प्रकाशित हुई हैं, जैसे 'नयी कविता', 'नयी धारा' आदि। विभिन्न विश्वविद्यालयों की तथा अन्य कई प्रकार की साहित्यिक गोष्ठियों में भी समय-समय पर इसकी चर्चा-परिचर्या होती रहती है। किन्तु इतने विकास, प्रसार और प्रचार के बाद भी नयी कविता जन-मन और जन-जीवन से काफी दूर दिखाई देती है, वह उनके हृदय में उतर नहीं पाई, केवल एक विशिष्ट वर्ग की अत्यन्त संकीर्ण सीमा में परिबद्ध है। सामान्य पाठकों के हृदय में नयी कविता किसी प्रकार की संवेदना या अनुभूति जगाने में असमर्थ सी प्रतीत होती है। पाठक से तात्पर्य यहाँ देहाती-किसान, मिल-मालिक या मिल-मजदूर, व्यापारी, मन्त्री, सिपाही आदि से नहीं अपितु उनसे है जिन्हें कविता पढ़ने की ललक है, जो साहित्यिक क्षेत्र में कुछ अधिकार रखते हैं, जो बुद्धिजीवी हैं और अध्ययन-अध्यापन से सम्बद्ध हैं। इस वर्ग में भी उन पाठकों से तात्पर्य नहीं जिनकी विचारधारा किन्हीं पूर्व निश्चित सिद्धान्तों से इतनी परिवेष्ठित है कि उस पर नवीन प्रकाश किरणें या नवीनता का कोई आयाम प्रभाव डालने में असमर्थ है। यद्यपि कविता की अनुभूति के लिए किसी प्रकार के वर्ग बनाना कवि की असफलता का ही द्योतक होता है क्योंकि कवि की अनुभूति किसी वर्ग विशेष के लिए अभिव्यक्त नहीं होती, वह तो समान रूप से सब को अपनी अनुभूति का उपभोक्ता बनाना चाहता है और नए कवि का तो विशेष आग्रह व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ने का रहा है, जिसके लिए उसने जीवन के अनेक अनदेखे अछूते और संवेद्य विषय तथा सरल जनभाषा के शब्द, मुहावरे, लोकगीतों की धुनें अपनाई हैं। उसने ही सर्वप्रथम "उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न यौनवासना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कल-पुर्जों तक, अवचेतन से लेकर स्थूल के अनुत्तेजित चित्रण तक" को कविता का विषय बनाकर उन्हें सर्व संवेद्य बनाने के लिए पुराने उपमानों की धूल झाड़कर नए अर्थों से सजाया है तथा अन्य नए उपमानों, नए प्रतीकों और नए शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ किया है। फिर भी नया कवि किसी वर्ग को सोलहवीं या उन्नीसवीं सदी का मान कर अपनी कविता की नवीनता सिद्ध करना चाहता है।

किसी काव्यधारा की सफलता उसके विपुल साहित्यिक पर आधारित न होकर कथ्य की महत्ता और कथन की प्रेषणीयता पर निर्भर होती है। नयी कविता अपनी रसवत्ता और अर्थवत्ता दोनों में अभी तक पाठकों के बीच एक प्रश्न चिह्न बनी हुई है। रसवत्ता या रसात्मकता का प्रसंग छेड़ना शायद यहाँ अनुपयुक्त होगा क्योंकि साहित्यिक रस की बात आज कल पिछड़ेपन की बात समझी जाने लगी है। रस और वैज्ञानिक युग में क्या सम्बन्ध? किन्तु संप्रेषणीय होना तो कविता का धर्म है, उसकी शिकायत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो पाठक कवि से कर ही सकता है।

नए कवि का सारा प्रयत्न कविता के प्रेषणीय पक्ष पर था, उसके अन्य पक्ष उसकी दृष्टि में गौण थे। अज्ञेय के शब्दों में "जो व्यक्ति का अनभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये—यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है। इसके बाद इतर समस्याएँ हैं---कि वह अनुभूत ही कितना बड़ा या छोटा, घटिया या बढ़िया सामाजिक या असामाजिक, ऊर्ध्व या अध: या अन्त: या बहिर्मुखी है।" परन्तु तीन दशकों की लम्बी अवधि तक इस समस्या को सुलझाने के प्रयत्न में नयी कविता कितनी असम्प्रेषणीय हो गई है इसे सभी अनुभव कर रहे हैं। आज की कवितायें पाठकों को ऐसे अजायबघर प्रतीत हो रही हैं जिन्हें जानने और समझने के लिये गाइड या किसी पराविज्ञान के निष्णात पंडित की आवश्यकता है। ये कवितायें एक विशेष और बहुत ही संकीर्ण वर्ग में भले ही अपना कुछ महत्त्व रखती हों, सामान्य पाठक की दृष्टि में ये कवि की बहक के सिवाय कुछ अर्थ नहीं रखती। वह इन कविताओं को एक सिरे से दूसरे सिरे तक, ऊपर से नीचे तक, शीर्षक से अन्त तक भली भाँति देखने के बाद बड़ी रिक्तता और तिक्तता का अनुभव करता है। यदि वह दस पाँच के बीच बैठकर पढ़ता या उन्हें सुनता है तो हास्यरस अर्थहीन मनोरंजन के सिवाय अन्य कोई सार्थकता इनसे उपलब्ध नहीं होती। निश्चय ही यह कवि की गहन अनुभूति की उपलब्धि नहीं है वह अपने दुराग्रह में भले ही इसे अपनी उपलब्धि समझे।

उदाहरणार्थ जगदीश चतुर्वेदी की एक कविता 'शिशु का जन्म' प्रस्तुत है—

कल रात मुझ में उग आये दो पेड़,
कैक्टस और गुलाब,
दो छोटे-छोटे हाथ,
दरवाजा थपथपाते रहे।

इन पंक्तियों में पेड़ उगना, दो छोटे-छोटे हाथ—शायद पेड़ों के—दरवाजा थपथपाना—शायद मुख का—पुन: शिशु का जन्म शीर्षक, सभी उपमान इस प्रकार प्रयुक्त हैं कि शीर्षक और कविता में संगति बैठाना कठिन है। यदि किसी प्रकार खींच-तान करके कोई अर्थ निकाल भी लें तो यह नहीं कहा जा सकता कि कवि का यही तात्पर्य है। नयी कविताओं के विषय में कई उदाहरण ऐसे सुनने में आये हैं कि किसी नये कवि की जिन कविताओं को पाठकों द्वारा श्रेष्ठ रचनाएँ ठहराया गया है रचयिता कवि की दृष्टि में वे उसकी निकृष्ट रचनाएँ हैं।

अज्ञेय की 'आंगन के पार द्वार' 'नयी कविता की ही नहीं आधुनिक हिन्दी कविता की अत्यन्त प्रांजल और प्रौढ़ उपलब्धि' मानी गई है। इस संग्रह में उनकी श्रेष्ठतम रचनायें संग्रहीत हैं किन्तु इनकी कितनी ही कवितायें शब्दों के उलझाव के अतिरिक्त किसी प्रकार का भाव जागृत नहीं करती। इसमें एक कविता है "चिड़िया ने ही कहा"। इसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मैंने कहा—
कि चिड़िया
मैं देखता रहा—
चिड़िया चिड़िया ही रही।
फिर फिर देखा
फिर फिर बोला,
"चिड़िया"
चिड़िया चिड़िया ही रही।

इन पंक्तियों में चिड़िया शब्द की पुनरावृत्ति से चिड़िया ही चिड़िया मस्तिष्क में घूमने के अतिरिक्त पाठक को क्या बोध हो सकता है? तात्पर्य यह नहीं कि इन पंक्तियों में सार्थकता और अनुभूति नहीं किन्तु यह जिस ध्वनि में, जिस प्रतीक या उपमान द्वारा अभिव्यक्त हुई है उसमें प्रेषणीयता नहीं है। नवीनता के लिए नए उपमान प्रयोग में लाये जा सकते हैं किन्तु जब तक इन्हें सामाजिकता या व्यापक अर्थ संपृक्ति नहीं प्राप्त होती तब तक इनका सहज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध कठिन है। इसी प्रकार की कितनी कवितायें नित्य प्रति पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं जो नितान्त अद्भुत दिखाई देती हैं यदि उदाहरण एकत्र करें तो हजार में शायद दो चार कविताएँ ऐसी होंगी जो कुछ सार्थक संवेद्य और युगीन चेतना की नव्य अभिव्यक्ति से संपृक्त हों, शेष सब नमूने की तरह हैं।

नयी कविता के कुछ विज्ञ कवि जो कविता का उत्तरदायित्व अनुभव करते हैं, यह अनुभव कर रहे हैं कि उनकी कविताएँ सर्व-संवेद्य नहीं है अतः वक्तव्यों द्वारा उन्हें पाठकों के सामने आना पड़ रहा है जो कवि के लिए बहुत सुखद स्थिति नहीं है। कवि को अपनी अनुभूति की यदि स्वयं व्याख्या करनी पड़े तो यह उसकी अभिव्यक्ति की असफलता है। असफलता इसे न भी कहें तो कमी अवश्य है। श्री बालकृष्ण राव ने अपने काव्य संग्रह 'अर्द्धशती' के प्राक्कथन में लिखा है—'अपनी प्रस्तुत पद्य कृतियों के सम्बन्ध में क्या कहूँ ? यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक रचना स्वतः सम्पूर्ण इकाई है। यदि नहीं है, यदि उसके अर्थ, आशय, सन्देश को स्पष्ट करने के लिये किसी प्रकार के भाष्य की आवश्यकता है तो मेरी मान्यता के अनुसार उसमें कोई कमी अवश्य है। अज्ञेय ने लिखा है—"कविता ही कवि का परम वक्तव्य है अतः यदि कविता के लिए स्वयं उसके रचयिता को गद्य का आश्रय लेकर कुछ कहना पड़े तो साधारणतया इसे उसकी पराजय ही समझना चाहिए।"[1] तीसरे 'सप्तक' में कीर्ति चौधरी ने अपने वक्तव्य में कहा है—"समकालीन कविता और समकालीन साहित्य को देखने पर पता चलता है कि हम बड़ी तेजी से आलोचक बनते जारहे हैं, और भय है कि एक दिन कहीं ऐसा न आ जाय हम निरे आलोचक हो जायँ, कवि रहे ही नहीं।"

किन्तु कठिनाई यह है कि अपनी अभिव्यक्ति की सफलताओं को जानते हुए भी आज के अधिकांश ऐसे विज्ञ कवि अपनी असफलताओं का दोष पाठकों पर, नए युग पर, पुराने संस्कारों पर थोप कर स्वयं मुक्त होना चाहते हैं। नयी कविता की अप्रेषणीयता की शिकायत जब पाठकों की ओर से आती है तब बहुत से कवि और उनके समर्थक आलोचक उसे पाठकों का मनोमालिन्य, हठधर्मी, अनुदारता, पिछड़ापन आदि बताकर अपनी नवीनता, रूढ़ि-मुक्तता अभारतीयता आदि के अहं में उन्हें झुठलाने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं, अथवा युग की उलझी संवेदनाओं को, परस्पर विरोधी भावों की टकराहट को, आधुनिक जीवन की व्यापकता को पाठकों तक अक्षुण्ण, यथावत् ज्यों की त्यों पहुँचाने में कठिनाई उपस्थित कर कविता की दुरूहता, अस्पष्टता और अप्रेषणीयता का समर्थन करते हैं।

परन्तु दोनों ही तर्कों से पाठकों की समस्या का निदान नहीं होता। प्रथम बात यह कि जिस युग में कवि जी रहा है पाठक भी उसी युग में जी रहे हैं और कवि से अधिक यथार्थ में जी रहे हैं। कवि-कल्पनाओं की उड़ान में युग को जीता है और पाठक यथार्थ में युगीन समस्याओं का और नव-चेतना का सामना करता है। नए युग की उलझनों को, विरोधी भावों की टकराहट को जितना समाज का सामान्य प्राणी यथार्थ में समझ पाता है शायद कवि नहीं। अतः यह तर्क निरर्थक है कि पाठक नए युग से अनुप्राणित न होने के कारण नए काव्य के पढ़ने का अधिकारी नहीं। पुनः समकालीन पाठकों को तिरस्कृत कर ५० वर्ष बाद आने वाले युग के लिए अपनी रचनाओं की सार्थकता सिद्ध करने में कवि को शायद यह ध्यान नहीं रहता कि आज का युग वैज्ञानिक और आणविक युग है। इसमें आज का दिन कल पुराना हो जाता है। आज की बात कल बासी हो जाती है। जिन मान्यताओं और आदर्शों पर आज वह काव्य रचना कर रहा है उन्हें कल के लोग रूढ़ि और पुरातनता की उपाधि से विभूषित कर देंगे। पचास वर्ष बाद की नयी पीढ़ी इन कविताओं और कवि की अहम्मन्यताओं को किस दृष्टि से देखेगी। पिछले छह दशकों में निरन्तर परिवर्तनशील काव्यधाराओं और काव्यसिद्धान्तों से यह बात उन्हें बहुत

[1] तार सप्तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट हो जानी चाहिए । कविता को सर्वसुलभ, लोक-प्रिय अथवा पर-संवेद्य बनाने का लक्ष्य रखकर चलने वाले कवि और उनकी कविता जन-मानस में स्थायित्व तो प्राप्त कर सकेगी किन्तु इन तत्वों की उपेक्षा करके इतिहास, संस्कार, परम्परा, भारतीयता, धर्म, हिन्दी और हिन्दी के पाठकों को भला-बुरा कहकर कविता रचने की प्रक्रिया कितनी बलवती, कितनी स्थायी, कितनी ईमानदार, कितनी नवीन सिद्ध होगी यह समय बहुत शीघ्र स्पष्ट कर देगा । इन तर्कों द्वारा स्वयं को नवीन, कुलीन और शेष को प्राचीन सिद्ध करने की मनोवृत्ति को शुद्ध अहं, संकीर्णता, कुण्ठा और बौखलाहट के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

दूसरी बात है युगीन भावों को यथावत् अभिव्यक्त करने की । कोई कवि युग की, मन की या विचारों की उलझनों को उलझन के रूप में अभिव्यक्ति करके प्रेषणीय नहीं बना सकता । संवेदना की उलझन स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त होने पर ही संवेद्य प्रेषणीय हो सकती है, नहीं तो वह शब्दों की उलझन बन जाती है । हृदय में भावों की टकराहट शब्दों की टकराहट से अभिव्यक्त नहीं होती, उसे मार्मिकता प्रदान करने के लिए तीव्र अनुभूति तथा अन्तरतक की व्यापक पहचान आवश्यक होती है । आज की कविता में जो भी अनुभूति प्रकट की जा रही है वह अधिकांश में शब्दों तथा उपमानों की नवीनता तक सीमित रहकर हृदय को छूने में असमर्थ है । प्रेयसि से किसी प्रेमी को कितना प्यार है उसे दिखाने के लिए कवि यदि 'महंगाई भत्ते' से इसकी माप प्रस्तुत करना चाहता है तो पाठक को प्यार की गहराई अनुभव होने की अपेक्षा महंगाई भत्ते के लाभ अधिक अनुभव होने लगते हैं । परछाई की भग्नता अनुभव कराने में या अपनी खण्डहर स्थिति दिखाने में—

"टूटे
फूटे
मन्दिर,
ऊजड़े घर,
ख
ण
ड
ह
र
जिन पर
मेरी परछाईं
के
पर"

इस प्रकार की शब्द-योजना कितनी सहायक हो सकती है ? कहने का तात्पर्य यह है कि युगीन चेतना या विविध व्यापक आयामों के चित्रण के लिए शाब्दिक कसरत की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी मानव हृदय की व्यापक पहचान की आवश्यकता है। अनुभूति की गहराई और अभिव्यक्ति की उत्कट आकुलता में भाषा स्वतः संवेद्य और प्रेषणीय हो जाती है । अतः विषयों और अनुभूति की कठिनाई को दोष देकर पाठकों की समस्या से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता । पहेलियाँ सी बुझाने की अपेक्षा स्पष्ट और सीधे शब्दों में भावों की अभिव्यक्ति उचित है । श्री भवानीप्रसाद मिश्र के शब्दों में—

जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
और उसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख ।

का सिद्धान्त यदि अपनाया जाय तो नये युग की नयी अभिव्यक्ति अधिक सार्थक हो सकती है । यदि नया कवि अपने व्यक्तित्व और काव्य को परिमित-अपरिमित संकीर्ण घेरे में बन्द करने में अपनी चरम सफलता मानता है तब उसे उनका प्रकाशन नहीं कराना चाहिये । जो वस्तु सामाजिकता का बाना पहन कर पाठकों के बीच आयेगी उस पर पाठकों की क्रिया प्रतिक्रिया बहुत स्वाभाविक है ।

—हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी में मनोवैज्ञानिकता

• • • श्री विजय कुलश्रेष्ठ

कामायनी में 'मन' शब्द के चिन्तन के लिये प्रसादजी ने यथेष्ट स्थान दिया है। भारतीय ग्रंथों में मन का विवेचन प्राचीन काल से होता आया है। मन का अर्थ 'मनु' है। मन, मंत्र और मनु जिस धातु से निकले हैं, उसका अर्थ मनन करना है।[1] मनु की कहानी भारतीय वाङ्मय में सुप्रतिष्ठित है। मन से ही 'मानव' की उत्पत्ति है। विश्व साहित्य में आदि पुरुष और नारी को 'मन' के विकसित रूपों में देखा जा सकता है। सृष्टि का मूल सृष्टा, मूल पुरुष, मूल नारी, मूल प्रेरक और सबका मूल बीज मन ही है। ऋग्वेद में काव्य को मन का रेतस या मूल बीज कहा गया है।[2] निरुक्तकार यास्क मन की व्युत्पत्ति 'मनु' से मानते हैं जिसका धात्वर्थ मनन है। उपनिषदों में इसे इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगाम[3] अथवा ब्रह्म[4] तथा जानने, देखने, धारने, संकल्प करने आदि की शक्तियों से सम्पन्न[5] और मोक्ष का कारण[6] माना गया है। श्रीमद्भागवत गीता में मन को अत्यन्त चंचल, प्रकथन स्वाभावीय, अतीव दृढ़ एवं बलवान तथा वायु-समान दुष्कर कहा गया है।

[1] डा० सम्पूर्णानन्द : प्रसाद मन्दिर, वाराणसी में दिये गये अभिभाषण का अंश, २।१।५८।

[2] कामास्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् : ऋग्वेद।

[3] कठोपनिषद्।

[4] छान्दोग्य उपनिषद्।

[5] ऐतरेय उपनिषद्।

[6] कल्याण : उपनिषद् अंक।

सांख्य एवं योग दर्शनानुसार मन की उत्पत्ति पंच तन्मात्राओं से होती है। वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत अन्तःकरण के चार भेद मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार माने गये हैं; जिनमें से मन को अन्तरिन्द्रिय कहा गया है उसके गुण सत्, रज एवं तम कहे गये हैं। पंचदशी में 'मन' को दो रूपों में विभाजित किया है। काम क्रोधादि विकारों से युक्त मन अशुद्ध तथा विकार रहित मन शुद्ध, भारतीय चिन्तन प्रणाली में मन को भौतिक रूप देकर उसे चेतनायुक्त कहा गया है। उसे इन्द्रजीत कहा गया है उसके अतियंत्रित होते ही मानव जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है इसी कारण भारतीय मनीषियों ने इसे वश में करने के उपदेश दिये हैं।

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार बहुत समय तक मन को एक ठोस द्रव्य माना जाता रहा। इस मान्यता का सर्वप्रथम खण्डन ऐनेक्सगोरस ने किया और उसे चेतन प्राणियों पर अधिकार रखने वाली शक्ति बतलाया जो सर्वथा स्वशासित एवं भावोद्गम स्थली है। परवर्ती पाश्चात्य विद्वानों में मन को लेकर आपस में मतभेद अधिक है। प्लेटो के अनुसार मन सर्वोपरि है और कार्य के बुद्धिगत कारणों का सम्बन्ध उसी से है। अरस्तू आत्मा से भिन्न विचार-शक्ति को मानते हैं। प्लोटीनस दैवीगुण सम्पन्न मान कर उसे आत्मा, इन्द्रिय एवं शरीर से परे मानते हैं। स्टाउट मन तथा जड़ पदार्थ पर विचार करते हुए परस्पर क्रियावाद के सिद्धान्त की स्थापना करते हैं और मन तथा जड़ पदार्थ को एक-दूसरे से प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाते हैं। फ्रायड और उनके अनुगामी विद्वानों ने मन की दो स्थितियाँ स्वीकार की हैं—(१) चेतन, (२) अचेतन। यह अचेतन मन ही समर्थ एवं सशक्त है तथा मानसिक क्रियाओं का मूल है। चेतन मन की इच्छा, ज्ञान और क्रिया आदि तीन प्रक्रियाएँ होती हैं तथा इसके दो क्षेत्र हो जाते हैं—(१) ध्यान, (२) अनवधान। ध्यान चेतना क्षेत्र है और अनवधान चेतना की सीमा। इसी को मन का अचेतन क्षेत्र कहा जाता है। मन के उभय रूप द्वारा समस्त शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। इस प्रकार मन शरीर का नियामक, संचालक एवं प्रेरक है।[1]

कामायनी में प्रसादजी ने मन को चेतन और अचेतन अवस्था में विविध विकारों में लीन और सुख एवं सौन्दर्य की प्राप्ति हेतु सतत् प्रयत्नशील बतलाया है, सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होने पर भी उसे (मनको) सरलता से प्राप्ति नहीं होती। यदि सरलता से प्राप्ति हो सके तो वह निश्चय ही आनन्द प्राप्ति कर लेता है, इसलिए प्रसादजी ने मन के निग्रह को आवश्यक मानते हुए इसे महापुरुषों का स्वभाव बतलाया है।[2] कामायनी में 'मनु' अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है[3] तथा मन के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ता है। यही नहीं कामायनी के प्रत्येक सर्ग का नामकरण स्थान, घटना या पात्र के नाम पर न होकर मानसिक वृत्तियों के आधार पर हुआ है[4]। प्रथम सर्ग चिन्ता के नाम से ही यह स्पष्टीकरण हो जाता है कि यह मन का मूल-व्यापार है जिसमें संसार की प्रतीति तो अवश्य होती है, कर्म की प्रवृत्ति का कोई संकेत नहीं है, केवल सम्वेदन मात्र कहा जा सकता है मनु केवल अतीत के जल प्रवाह को हिमगिरि के उतुङ्ग शिखर पर आसीन होकर देखते हैं जिससे प्रतीत होता कि मनु साधना-लीन हैं तथा 'सिन्धु लहरियों के सकरुण अवसान से उनकी निष्क्रियावस्था का भान होता है तथा प्रत्यक्ष के भयङ्कर दृश्यों को देखकर अतीत का चिन्तन स्वाभाविक ही है। चिन्ता पाश्चात्य मनोविज्ञान-वेताओं के अनुसार, वास्तविक कर्मों के अभाव में उसकी स्थानापन्न हो जाती है। "अर्थात् वास्तविक कर्म के अभाव में चिन्ता का उदय हो जाता है"[5] मनोविज्ञानवेत्ता के अनुसार प्रेरकों की पूर्ति में परि-वेशगत बाधाएँ होने पर मानसिक हलचल उत्पन्न हो जाती है, परिवेशगत बाधाओं में अकाल, तूफान, बाढ़ आदि भौतिक घटनाएँ आती हैं[6] उसीके परि-णाम स्वरूप उद्वेग उठना स्वाभाविक है।

कामायनी में वर्णित १५ मानसिक एवं कार्य व्यापार वृतियों को हम सरगम के स्वर पर अवस्थित पाते हैं, जहाँ संवेगों से उत्पन्न प्रक्रिया कथा को आगे बढ़ाती हैं। (चित्र पृष्ठ ३१२ पर देखें)

प्रस्तुत रेखा चित्र के माध्यम से कामायनी में वर्णित मानसिक वृत्तियों के कार्य व्यापार का अङ्कन किया है। 'सरगम' में 'स' की स्थिति चिन्ता सर्ग है जहाँ देव सृष्टि के विनाशोपरान्त मन (मनु) में चेतना जागृत होती है। चेतना के जागृत होने में किसी सम्बल की आवश्यकता विनिश्चित है अन्यथा वह विचारण में ही सीमित हो जायेगी। इसीलिए जीवनदायनी वृति 'आशा' उसे सम्बल देती है। 'रे' की स्थिति में मन में रागात्मक वृत्तियाँ प्रगट होती हैं और उन वृत्तियों के ही प्रगटन से मन के आन्तरिक भावों का धार्मिक संवेग जागृत होने लगता है। 'ग' स्थल तक पहुँचते हुए चेतना एवं रागवृत्ति आन्तरिक भाव की ओर झुकती या आकृष्ट होती हैं। श्रद्धा ही ऐसी वृत्ति है जो मन के भटकाव को केन्द्रित करती है। इस संवेग की उत्पत्ति ईश्वर चिन्तन के पश्चात् मानी जाती है। कामायनी में मन ईश्वरास्तित्व में

[1] यतीन्द्र : कामायनी दिग्दर्शन, पृष्ठ ४२।
[2] प्रसाद : चन्द्रगुप्त।
[3] प्रसाद : कामायनी : आमुख पृष्ठ ७–८।
[4] डा० हरदेव बाहरी : प्रसाद साहित्य कोश पृष्ठ ८९।

[5] सिन्हा : मनोविज्ञान पृष्ठ७७८।
[6] वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अ"— मन की वृत्तियों की स्थिति

	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
	वास्तविकता के अभाव में उत्पन्न चिन्ता **(चेतनता)**	चन्ता के कारणों से उत्पन्न **आशा** का संचार (रागवृत्ति)	(आन्तरिक) सुखात्मक भावों का विश्वास **(हृदय पक्ष का धार्मिक संवेग)**	दमित कामना का उदय (बुद्धितत्व)	काम, इच्छा ही वासना, काम का संवेग, **भोगवृत्ति की विकृति** या पतन	काम के व्यक्त रूप को रोकने का मनोभाव या **वासनात्मक संवेग** के प्रगट होने से उत्पन्न समर्पण भाव (रति की प्रतिकृति)	पुरुष द्वारा सृजन वृत्ति— **स्वामित्व का संवेग** हिंसात्मक	अभाव और हीनता का परिणाम। काम वासना एवं कर्म की विकृतियाँ (**काम-जनित मनोवृत्ति**)
मन की वृत्तियों की स्थिति	चिन्ता	आशा	श्रद्धा	काम	वासना	लज्जा	कर्म	ईर्ष्या
	सुखानुभूति या मोक्ष कैवल्य की दशा	त्रितत्व— इच्छा, ज्ञान व क्रिया—का उत्कीर्ण **मन का विकास**	आत्म-चेतना का समाहन तत्वज्ञान या **तत्वाभास**	आशा और विश्वास की संस्खलनावस्था **(घृणा, संवेग)**	**बुद्धि के अतिवाद** के कारण प्रकृतिजन्य (स्वभावगत) संघर्ष	दर्शन एवं मनोविज्ञानजनित **काल्पनिक भोग की वृत्ति** दमित भावनाओं का स्वप्न में प्रकटीकरण	**बुद्धि क्षेत्र** का आश्रय (भौतिकवाद) मन का क्रमिक विकास	श्रद्धा का परित्याग

"ब"— सर्गों की स्थिति [सरगम स्वरों पर]

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
आनन्द	रहस्य	दर्शन	निर्वेद	संघर्ष	स्वप्न	इड़ा	ईर्ष्या
चिन्ता	आशा	श्रद्धा	काम	वासना	लज्जा	कर्म	ईर्ष्या
आनन्द	रहस्य	दर्शन	निर्वेद	संघर्ष	स्वप्न	इड़ा	

[सरगम का चित्र]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास रखता है और यही मन विश्वास लेकर रागात्मकवृत्ति की ओर उन्मुख होता है तो श्रद्धा भाव जागृत हो जाते हैं[1]। यह श्रद्धा मन की उदार वृत्ति है, हृदयपक्ष है। श्रद्धा की स्थिति से रागात्मकता का सम्मिलन कर हृदय में कामना का ज्वार आता है और 'म' स्थली पर पहुँचकर काम का उदय मन में होता है, क्योंकि काम समस्त कामनाओं (इच्छाओं) का घनीभूत रूप है।[2] फ्रायड के अनुसार काम मनोवृत्तियों को अधिक व्यापक बनाता है। योनेच्छा की दमित भावनाएँ कुण्ठित होने पर अतृप्त वासनाओं का उदात्तीकरण होता है।[3] कविप्रसाद ने अचेतन मन में कामोदय दिखलाया है जो फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त के निकट है। तभी मन में काम की प्रवृत्ति के साथ ही बुद्धि तत्व के रूप में उसकी प्रतीति होती है। काम की प्रतीत होते ही मन में अनादि वासना का प्रस्फुटन होता है, वासना काम का ही संवेग है जो काम के समानान्तर चलकर 'प' पर ठहरती है। यह वासना इन्द्रियभोग, लिप्सा एवं विषय तृप्ति करती है। वासना मन को निम्न गति पर लेजाती है और इसीलिये इसका स्थल 'ध' पर अवस्थित होता है, क्योंकि विषयगत होने से लज्जा भाव नारी में जागृत होता है। काम का व्यक्त रूप वासना है और उस वेग को संयमित करने वाली वृत्ति लज्जा है। यह रति के रूप हैं जो शरीरी होने पर संवेगोत्पत्ति करती हैं और यदि रति मानसिक है तो संवेग गुप्त रहता है।[4] श्रद्धा में यही आत्मसमर्पण का भाव जागृत होता है। आन्तरिक वृति नारी के मन को प्रशस्त करती है, शालीनता सिखलाती है। 'कर्म' वृति की स्थिति उर्ध्व है। वासना नारी में लज्जा और पुरुष में कर्म का सृजन करती है। मन की अतृप्त वासनाओं से प्रमाद और अकर्त्तव्य की वृत्तियाँ जागृत होती हैं। इसीलिए पुरुष के मन में लज्जा के साथ वासनात्मक संवेग से 'कर्म' की वृत्ति का सृजन होता है तथा भ्रष्ट आचरण में अभिहित हो जाता है। मैकड्डगल उसे मन की मूल प्रवृत्ति तथा स्वामित्व को इसका संयोग बतलाते हैं।[5] स्वामित्व का संवेग जागृत होने पर तथा भोगादि की संकुचित वृत्ति के कारण हीनत्व और अभाव की भावना जागृत होती है तथा ईर्ष्या का उदय होता है जो कर्म के समान्तर ही अवस्थित है इसीलिये कामायनी का मनु भोगविलास की कामना के सम्मुख अन्य चिन्ता न करके पुत्र (भावी सन्तान) के प्रति द्वेष-भावना से भर जाते हैं और ईर्ष्या करने लगते हैं। फ्रायड इसे मातृग्रन्थि (Oedipus Complex) कहते हैं और काम को ईर्ष्यागत मानते हैं। इस प्रकार सरगम के अन्तिम स्वर 'सां' पर ईर्ष्या फलवती होती है। ईर्ष्याजनित कार्यव्यापार से मन बुद्धि-क्षेत्र में प्रविष्ट होता है हृदय पक्ष से घृणा होने लगती है। यहीं पर मन बुद्धि का आश्रय प्राप्त करता है। इड़ा की उत्पत्ति प्रकृति से है। यह मन का ही क्रमिक विकास है जो भौतिकता की ओर होता है क्योंकि मन के क्रीड़ा क्षेत्र दो हैं—हृदय और बुद्धि। जब हृदय अनाकर्षक लगता है तो बुद्धि की शरण में जाता है। स्वप्न द्वारा मन की ऐश्वर्यता और वैभव्यता जो भौतिक उन्नति के ही भयावह परिणाम है--की स्थिति पुनः अधोगामी है। यहाँ आकर मन अपनी सम्पन्नता से सन्तुष्ट न होकर बुद्धि पर भी अधिकार करना चाहता है और मानसिक संघर्ष में उसका पतन होता है। स्वप्न फ्रायड के अनुसार अतृप्त इच्छाओं का नग्न प्रकाशन है। इसी कारण श्रद्धा को स्वप्न में इड़ा और मनु के प्रेम एवं वासनात्मक चित्र दृष्टिगत हुए। अब बुद्धि पर अधिकार प्राप्त संघर्ष होता है। मानसिक संघर्ष के दो कारण हुआ करते हैं। परिवेशगत बाधाओं एवं व्यक्तिगत रुचियों के कारण संघर्ष उत्पन्न होता है। प्रसादजी ने यहाँ पर वैयक्तिक मन के साथ-साथ

[1] यतीन्द्र : कामायनी दिग्दर्शन पृष्ठ ४८
[2] तर्क संहिता
[3] सिन्हा : मनोविज्ञान
[4] सिन्हा : मनोविज्ञान
[5] सिन्हा : मनोविज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक मन (Group Mind) के विकास का चित्रण किया है। संघर्ष के समानान्तर ही निर्वेद चलता है। निर्वेद की स्थिति का कारण आशा और विश्वास का संस्खलन एवं ऐश्वर्य नष्ट होना है। इस प्रकार मन वितृष्णा में परिपूर्ण हो जाता है और निर्वेद भाव को प्राप्त होता है। यही कारण है कि मनु समस्त सांसारिक पदार्थों से घृणा करने लगते हैं और इस छाया से बाहर भागने को उद्यत होते हैं। यही मन की पलायनवादी दृष्टि है। पलायन करना ही पथभ्रमित होना है और गति की उर्ध्वा का पतन है। निर्वेद से उत्पन्न घृणा संवेग से पाश्चाताप मन में चेतनता जागृत करता है तथा मन में नम्रता, भक्ति, विराट सत्ता के प्रति विश्वास की उत्पत्ति एवं 'शिवम्' की प्राप्ति होती है। विराट सत्ता में विश्वास मन के तत्वाभास की स्थिति है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान की स्थिति ज्ञात होती है और तीनों की आन्तिक एकता ही मन है।[1] यहाँ मन को आत्मदर्शन होता है।

इसी आत्म-दर्शन की स्थिति के आते ही मन जीवन का रहस्य जानने में समर्थ होता है तथा पुन-स्थापित धार्मिक संवेगों में बौद्धिकता, नैतिकता तथा सौन्दर्यात्मकता के संवेग समाविष्ट हो जाते हैं। यह भी मन के क्रमिक विकास की दशा है। प्रसादजी ने यहाँ मन को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों एवं रागमय माया राज्य से परिपूर्ण भावलोक का दिग्दर्शन कराया है। यह 'इच्छा' की कोटि है। तदनन्तर कर्म लोक जिसमें मन नाना प्रकार के कर्मों में लीन रहता है। इसके पश्चात आता है। ज्ञान लोक जो भाव और कर्म से ऊँचा है। यह त्रिपुर रहस्य जब मन जान लेता है तो असीम आनन्द की सृष्टि होती है। यह स्थिति समरसता, परमशान्ति एवं वास्तविक ज्ञान की स्थिति है। इसे ही पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सुखानुभूति कहते हैं और इसका सम्बन्ध शरीर तथा मन से स्थापित करते हैं।[2] कामायनी में प्रसादजी ने

[1] मनोविज्ञान : सिन्हा

[2] मनोविज्ञान पृ० ३३७–३४० : सिन्हा

कथा और चरित्र को मनोविज्ञान से अनुप्राणित करते हुए स्थान-स्थान पर जो मनोवैज्ञानिक सत्य रखें हैं, वे कथा और चरित्र से मेल रखते हुए स्वतन्त्र रूप से भी अत्यन्त सुन्दर हैं।[1] प्रसादजी का मन सम्बन्धी यह वर्णन अधिकांश में मानवीय, व्यवहृत जीवन एवं भारतीय शास्त्रों पर आधारित है। यह दूसरी बात है कि उनके विवेक शील होने के कारण ये वर्णन पाश्चात्य मनोविज्ञान की दृष्टि से भी असंगत नहीं हैं।

फ्रायड स्वप्नों को बालपन की दमित इच्छाओं का प्रकाशन मानते हैं। उनके अनुसार प्रौढ़ जीवन के स्वप्न सीधे ही इच्छा पूर्ति भी किया करते हैं। अधिकांश स्वप्न हमारी कामवासनाओं के होते हैं। ये कुण्ठित या दमित वासनाएँ परिवर्तित रूप में स्वप्न बनकर अभिव्यक्ति होने लगती हैं और अपनी तृप्ति भी परोक्ष रूप से करती हैं।[2] कामायनी में कामसर्ग तथा स्वप्नसर्ग इसी प्रकार के हैं। कामसर्ग में मनु श्रद्धा के आत्म समर्पण के पश्चात् उसे अपनाये जाने के विषय में सोचते हैं। रात को स्वप्न में काम उच्छृङ्खलता के दुष्परिणाम और समय की मंगलमयी सम्भावनाओं की ओर मनु को आकर्षित करता है। स्वप्न में श्रद्धा मनु को सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा के साथ देखती है। इड़ा मनु को चषक भरकर पिला रही है। किन्तु मनु की प्यास नहीं बुझती है और वासनान्ध होकर मनु इड़ा के साथ अनैतिक आचरण करने को उद्यत हो जाते हैं। फलतः रुद्र नयन खुलता है और सर्वत्र त्राहि-त्राहि होने लगती है। श्रद्धा सोचने लगती है—यह क्या देखा मैंने ? कैसे वह इतना हो गया छली ?[3]

फ्रायड का काम सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक है इसे प्रेम का पर्याय होने के कारण जड़-चेतन के मध्य कहा है। उनके मतानुसार एक पुत्र का आक-

[1] यतीन्द्र : कामायनी दिग्दर्शन पृष्ठ ५७।

[2] डा. द्वारिकाप्रसाद : कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृष्ठ ३७२-७३।

[3] कामायनी—स्वप्नसर्ग १८६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्षण माता की ओर अधिक होता है पिता के प्रति नहीं। पिता के प्रति वह द्वेष रखता है। इसे फ्रायड 'ओडीपस कम्पलैक्स' कहते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर कामायनी में श्रद्धा के प्रति मनु की अन्यमनस्कता परिलक्षित होती है तथा ईर्ष्या सर्ग में गर्भस्थ शिशु की ओर देख मनु ईर्ष्या करने लगते हैं। मूल सिद्धान्त के अन्तर्गत फ्रायड ने मत प्रस्तुत किया है कि जब कोई मनोवृत्ति चेतना में उठ खड़ी होती है तो वह आत्माभिव्यक्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहती है और इसमें सफलता न मिलने पर भूल होने लगती है। मनु की भूलों का सुधार श्रद्धा किया करती है। श्रद्धा को प्रसादजी ने भूल सुधारों की सुलझन कहा है। कामायनी में फ्रायड के अहं-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। मन के चेतन अंश को अहं (Ego) अचेतन अंश को इड (Id) तथा उच्च अहं (Supor Ego) जो कि आदर्श और चेतना के समान है—को कामायनी के पात्र मनु, इड़ा और श्रद्धा के रूप में जाना जा सकता है। मनु द्वारा सामाजिक नियमों का पालन चेतनांश है। मनु का मन चेतन और अचेतन अंश है जिसे Ego कहा जाता है। और जब वे इड़ा पर अधिकार करना चाहते हैं तो वे अचेतन अंश के (इड) में डूब जाते हैं। परन्तु इसका सामंजस्य कामायनी की इड़ा (बुद्धि की प्रतीक) से नहीं होता है। श्रद्धा (उच्च साहस), मनु (अहम्) और इड़ा (इड) का अब भी शक्ति द्वारा नियमन करती है। पर प्रसादजी ने फ्रायड को स्वीकार कर लिया हो, ऐसी बात नहीं है किन्तु उनके सिद्धान्त उनसे मिलते-जुलते अवश्य हैं।

जहाँ पर त्रिपुर दर्शन और शिव का ताण्डव नर्तन होता है वहीं से कामायनी का दार्शनिक पक्ष उभरता है और जिसके आधार पर ही कामायनी को मनोवैज्ञानिक आधार शिला से उठाकर दार्शनिकता के क्रोड़ में डाला जाता है। फलतः त्रिदिक् दर्शन से आनन्दमय कोश का परिज्ञान होता है।

—९३ अशोकनगर, उदयपुर (राजस्थान)

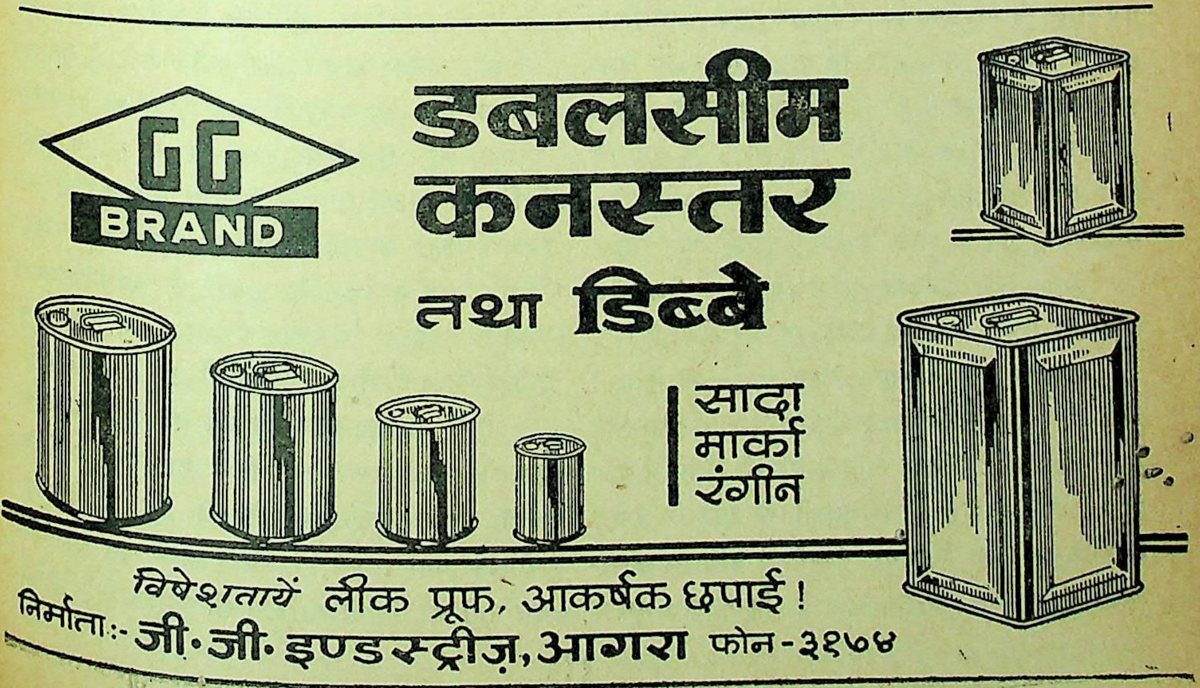

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

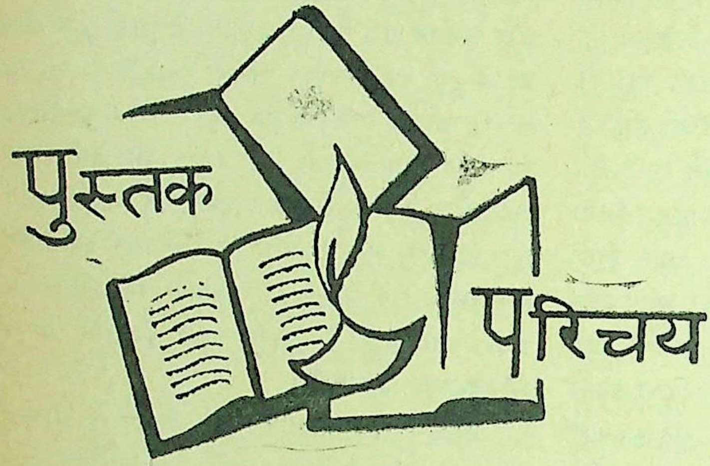

समालोचनार्थ
प्रत्येक पुस्तक
की
दो प्रतियाँ
आनी चाहिये

आलोचना

चांदायन—

सम्पादक–डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक–प्रामाणिक प्रकाशन, ३५ लाजपत कुंज, आगरा। वितरक–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृ. ५२०, मू. २०)

समालोच्य पुस्तक अब तक हिन्दी साहित्येतिहास में सर्वाधिक तर्क-जाल में गुम्फित प्रथम हिन्दी सूफी प्रेम-काव्य के परिप्रेक्ष्य में नवीनतम एवं प्रामाणिक कृति है। मुल्ला दाऊद की यह महत्वपूर्ण रचना अभी तक अज्ञानान्धकार में थी। इसी से हिन्दी के विद्वान प्रथम प्रेमाख्यान के बारे में तरह-तरह के अनुमान करते पाये गए। किन्तु अब प्रसिद्ध पाठालोचक डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने पर्याप्त अनुभवों एवं अथक प्रयासों से इस भ्रम को दूर करके उसका वैज्ञानिक संस्करण हिन्दी के समक्ष उपस्थित कर दिया है।

चांदायन का प्रस्तुत संस्करण अपने में सभी दृष्टियों से पूर्ण है क्योंकि अभी तक एक प्रति को छोड़ इसकी शेष सभी प्रतियाँ अरबी-फारसी लिपि में प्राप्त हो रही हैं। अतएव अरबी-फारसी के ज्ञान के अभाव में इसके सम्पादन में प्रायः लोगों को अतिशय झंझावातों का सामना करना पड़ा है किन्तु डा० गुप्त के चिर अनुभवों से इसकी समस्या सहज ही इस पुस्तक में सुलझा दी गई है। उन्होंने पुस्तक के अन्त में कुछ दुरूह शब्दों का व्युत्पत्तिपरक कोश भी दिया है। साथ ही उस एकमात्र देवनागरी लिपि की प्रति का भी उपयोग इसके सम्पादन में किया है जो कि अभी तक अप्राप्य थी। परिणामस्वरूप इसका महत्व द्विगुणित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त कृति का निर्धारित पाठ, पाठ-भेद और उसके कड़वकों का सटीक अर्थ भी डा० गुप्त ने दिया है। प्रारम्भ में ७२ पृष्ठों की सारगर्भित भूमिका भी दी गई है जिसमें रचना की सम्पादन-विधि एवं उसकी भाषा के सम्बन्ध में विद्वत्ता के साथ विचार किया गया है। इससे पाठालोचन के परिवेश में एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ है। क्योंकि चांदायन के इस उपयोगी प्रकाशन से तत्कालीन हिन्दी की प्रगति की कई ग्रन्थियाँ सहज ही खुल जाती हैं।

सूफी साहित्य हिन्दी में एक युग लेकर आयातित हुआ। उसको समझने के लिए मुल्ला दाऊद की यह कृति जोकि उत्तर भारत की एक लौकिक एवं मौखिक कथा के रूप में चिरकाल से प्रवाहित होती आ रही थी, हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमाख्यानक काव्य की पथ निदर्शनी भी ।

कलात्मक आवरण एवं सुमुद्रित कृति के लिए डा० गुप्त का यह सम्पादन हिन्दी साहित्य में प्रशंसित होकर अध्ययन-अध्यापन की दिशा में एक नया आयाम दिग्दर्शित करेगा, ऐसी आशा है ।

मृगावती—

सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक—प्रामाणिक प्रकाशन, ३५ लाजपत कुंज, आगरा । वितरक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । पृ. ४६८, मू. २०)

समीक्ष्य पुस्तक सूफी कवि कुतुबन की मृगावती का सुसम्पादित एवं नवीनतम संस्करण है तथा भारत के वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिरहुसेन को ससम्मान समर्पित है । डा० माताप्रसाद गुप्त मध्यकालीन सूफी साहित्य के रत्नों को अन्वेषित कर हिन्दी के भण्डार भरने में पर्याप्त पटु एवं उदार हैं । उनकी तीक्ष्ण प्रज्ञा के समक्ष ऐसे रत्नों का गुप्त रहना सहज सम्भव नहीं । मृगावती सूफी प्रेम-काव्य का द्वितीय प्राचीनतम ग्रन्थ है । यद्यपि इसके सम्बन्ध में अब तक हिन्दी विद्वानों में प्रचुर मतभेद हैं क्योंकि कुतुबन की इस रचना का आधार उनके अनुसार कोई तुर्की या हिंदुई रचना थी । कवि ने स्वयं इस विषय पर अपना मत ४२७ वें दोहे में दिया है । पर इससे उन रचनाओं के नामों तथा लेखकों का पता नहीं चलता है । रचना की आधार प्रति का रूप क्या होगा और कुतुबन की कृति उससे किन बातों में भिन्न हुई ? डा० गुप्त ने अपने गहन अध्ययन एवं नवीन शोधों के आधार पर इस सम्बन्ध में अपना मौलिक मत दिया है ।

अन्य सूफी प्रेम-काव्यों की भाँति इसकी भी प्रतियाँ फारसी एवं नागरी लिपि में पाई जाती हैं । डा० गुप्त ने दोनों प्रकार की प्रतियों का विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ उपयोग करके प्रस्तुत संस्करण तैयार किया है । जिसमें उनको अनेक प्राकृत और अपभ्रंश के दुर्बोध शब्द मिले हैं जिनका एक व्युत्पत्तिपरक कोश पुस्तक के अन्त में अर्थ सहित दे दिया गया है जोकि अध्येताओं के लिए बड़ा ही उपयोगी है ।

प्रस्तुत संस्करण में अधुनातन पाठ-भेद बताते हुए निर्धारित पाठ एवं उनके समुचित अर्थ भी दिए गए हैं । प्रारम्भ में ७० पृष्ठों की शोध एवं अध्ययनपूर्ण भूमिका में सम्पादक ने पाठ-सम्पादन एवं कृति की भाषा-समस्या पर भी विचार किया है, जोकि इस दिशा में उनका मौलिक योगदान है । कथा, शैली एवं छन्द के वैविध्य में इसका सही आकलन भी इस संस्करण की अपनी निजी विशेषता है । फलतः यह कृति भी उनकी अन्य कृतियों की भाँति हिन्दी जगत् में प्रशंसित होकर अनुसन्धित्सुओं को दिशा-निर्देश करेगी, ऐसी आशा है । इस प्रकार के प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के सफल सम्पादन के लिए डा० गुप्त हमारे साधुवाद के पात्र हैं ।

प्रेमचन्द और उनका युग—

लेखक—डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली—६ । पृष्ठ १९९, मू० ७.५० ।

समीक्ष्य पुस्तक प्रेमचन्द की समस्त कृतियों के दायरे में चक्कर लगाती हुई पाठकों के समक्ष आती है । प्रेमचन्द साहित्य का पूर्णरूपेण अवगाहन कर उसके वास्तविक रूप की स्थापना करना ही लेखक का अभीष्ट है । इसीलिए लेखक इसमें श्री अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही : 'प्रेमचन्द' और श्री मदन गोपाल लिखित 'मुन्शी प्रेमचन्द' जैसी पुस्तकों को भी अनपेक्षित भावों से अपनाकर उनका मूल्याङ्कन किया गया है ।

चतुर्दिक् रूपों से प्रेमचन्द को अवलोकित करके किसी सिद्धान्त की स्थापना करना डा० शर्मा के प्रखर लेखनी में सहर्ष देखा जा सकता है । इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कृति बहुत ही उपयोगी एवं स्पृहणीय है । आलोचक ने प्रेमचन्द को सम्पादक, विचारक, एवं युग निर्माता के रूप में भी अपनी मान्यता का पिष्टपेषण किया है । इसके तदनन्तर जो ग्रन्थियाँ नहीं सुलझ सकीं उसको आलोचक ने 'समस्यायें' शीर्षक अध्याय में भावी समीक्षकों, पाठकों एवं आलोचकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंस पर निःसंकोच छोड़ दिया है।

प्रेमचन्द के साहित्य को ऐतिहासिक एवं सामाजिक चकाचौंध में देखने, समझने एवं अध्ययन करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक उपयोगी एवं पठनीय है। साथ ही पुस्तक सुमुद्रित एवं कलेवर मसृणता लिए हुए है।

नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य—

लेखक–श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चन्द्रलोक, जवाहर नगर दिल्ली–६। पृ० १४३, मूल्य ६.००।

इस पुस्तक के परिपार्श्व में कवि नरेन्द्र शर्मा के काव्यों का आकलन किया गया है। पुस्तक को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम में जीवनी एवं व्यक्तित्व, द्वितीय में काव्य चेतना का विकास एवं प्रवृत्तियाँ, तृतीय में स्वरूप विश्लेषण, चतुर्थ में—आत्मपरक भाव भूमि, पंचम में दार्शनिक पीठिका एवं षष्ठ में शिल्प विधान। इस प्रकार किसी भी कवि या लेखक की रचनाओं का आरोड़न-विलोड़न करना तदनन्तर उसके सारतत्त्व को पाठकों के समक्ष रखना, हिन्दी आलोचना की प्रशस्त परम्परा है।

इस छोटी किन्तु सारगर्भित पुस्तक में कवि की प्रत्येक भावनाओं एवं उसमें व्यक्त विचारों को लेखक ने यथार्थ रूप में पहचाना है, यही इसकी प्रमुख विशेषता है। तभी तो वह चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में इसकी सविस्तार व्याख्या करता नहीं अघाता। यद्यपि कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक का विस्तार खल जाता है। फिर भी समग्र रूप से पुस्तक अच्छी है।

शोध-ग्रन्थ

नन्ददास—

लेखक–रमेशकुमार खट्टर, प्रकाशक–सामयिक प्रकाशन, दिल्ली–६। पृ० ४०१, मू० १५.००

समीक्ष्य पुस्तक महाकवि नन्ददास के पुनर्मूल्यांकन एवं पुर्नस्थापन को लक्ष्य करके लिखी गई है। पुस्तक चार अध्यायों में बांटी गई है। प्रथम में नन्ददास का जीवन वृत्त और काव्य कृतियाँ, द्वितीय में शृङ्गार वर्णन, तृतीय में भक्ति दर्शन तथा चतुर्थ में काव्य-शिल्प हैं। लेखक ने नन्ददास के अब तक के तर्क जालों को सुलझाते हुए उनके जीवन, कृतियों की प्रामाणिकता तथा भाव एवं कलापक्ष का अच्छा निरूपण किया है हिन्दी साहित्य के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में लेखक की दृष्टि प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध हैं।

नन्ददास के इस रूप की व्याख्या उसकी निजी धरोहर है जिसे वह पाठकों को मुक्त हस्त से दान करता देखा जाता है। पुस्तक की चारुता नन्ददास के शृङ्गार एवं भावपक्ष के प्रतिपादन में है।

नन्ददास के काव्य-शिल्प पर उनकी प्रामाणिक कृतियों के आधार पर लेखक ने पूर्ण मनोयोग से विश्लेषण किया है। काव्य-शिल्प ही किसी कवि की परख का माध्यम है और कृतियाँ उपकरण। इस घटक को लेखक ने खूब ठोक बजाकर देखा है।

नन्ददास पर एक पुस्तक डा० भवानीदत्त उप्रैति की भी कुछ दिन पहले निकल चुकी है जिसकी आलोचना जुलाई ६७ के अंक में हम कर चुके हैं। वह भी एक शोध ग्रन्थ है और नन्ददास के अध्येताओं के लिए उपयोगी है।

निबन्ध

छायावाद—

सम्पादक–डा० उदयभानुसिंह, प्रकाशक–सामयिक प्रकाशन, दिल्ली-६। पृष्ठ २०८, मूल्य सजिल्द ९.००

प्रस्तुत पुस्तक छायावाद पर लिखे गए १४ लेखों का संग्रह है जो कि विभिन्न लेखकों की लेखनी से प्रसूत हुए हैं। भिन्न-भिन्न समयों एवं परिस्थितियों में लिखे गए ये लेख वर्त्तमान परिवेश में ठीक उसी प्रकार रखे गये हैं जैसे कोई नवयुवक पात्र-व्यापारी अपने भण्डार से पात्र निकाल ग्राहक के समक्ष रख देता है पर उसकी धूल, जंग एवं प्राचीन ढंग की महत्वहीनता को नहीं समझ पाता। इस संकलन के अधिकांश लेख बहुत ही पूर्व लिखे गए थे और कुछ के लेखकों को भी दिवंगत हुए कई दशक हो चुके। तब से अब तक न जाने कितने विचार आए और गये। छाया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद का नया आकलन हुआ और उसकी नयी मान्यताएँ स्थापित हुईं। अब तो उसकी दिशा प्रायः निश्चित हो चुकी है। इस संकलन में मिश्रित लेखों की पुनरावृत्ति है न कि नूतन वैचारिक शृङ्खला की अर्गला से छायावाद का गठबन्धन।

नवीनता में सदैव अप्रत्यक्ष रूप से प्राचीनता समाई रहती है। इस परिप्रेक्ष में लेखों का यदि चुनाव किया गया होता तो यह संकलन निश्चय रूपसे उत्तम होता फिर भी हिन्दी के पाठकों के मूर्त्त ज्ञान के लिए पुस्तक उपयोगी है।

● कविता

भारतीय कविता—(१९५६–५७)

भूमिका–पं० जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक–साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र, भवन, नई दिल्ली–१। पृ० ८०२, मूल्य ३०.००।

समीक्ष्य ग्रन्थ में भारत गणतन्त्र की १४ भाषाओं असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिष, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, सिन्धी और हिन्दी की प्रमुख कवियों की कविताएँ संकलित हैं। मूल भाषा के कवि की रचना को देवनागरी लिपि में लिप्यन्तर करके उनका हिन्दी अनुवाद देना ही इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। भारत के १४ भाषा रत्नों को एक हार में पिरोकर सुन्दर ढङ्ग से उपस्थित करना इसका ध्येय है। भूमिका में पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की इन सभी भाषाओं के पारस्परिक तादात्म्यीकरण की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

कविताओं के चयन में जहाँ पूर्ण रुचि का परिचय मिलता है वहाँ अक्रमत्व के उतार-चढ़ाव से सतर्कता की उपेक्षा सी की गई है। क्योंकि सभी भाषाओं की कविताएं एक सीमा में नहीं गूँथी गई हैं। भाषावार कविताओं की संख्या द्रष्टव्य है : असमिया–१०, उड़िया–१७, उर्दू–२०, कन्नड़–२०, कश्मीरी–१६, गुजराती–२०, तमिष–९, तेलुगु–१२, पंजाबी–१०, बंगला–२२, मराठी–२९, मलयालम–८, संस्कृत–१६, सिन्धी–२०, और हिन्दी–२४।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के संकलन एवं अनुवाद की जो सबसे बड़ी विशेषता है वह यह है कि प्रान्तीय भाषाओं के कुछ प्रमुख स्थानीय शब्दों के अर्थ भी टिप्पणी में दिये गये हैं जिनसे पाठकों को समझने में विशेष सुविधा होती है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं कविताओं में आई हुई अन्तर्कथाओं को भी दे दिया गया है। इससे उस कविता के भाव की चारुता एवं मसृणता निखर उठी है।

मूल भाषा की कविता को देव नागरी लिपि में अनुवाद के समक्ष ही रखना उस भाषा के उच्चारण ध्वनि, शब्द आदि के प्रारम्भिक ज्ञान के लिये महत्त्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से मूल कविता का रखना बड़ा ही समीचीन एवं उपयुक्त है।

अनुवाद की भाषा भी सहज बोधगम्य एवं सरल है जिसे स्वतः अन्तर्भूत किया जा सकता है। अनुवाद से मूल भावों का तिरोहण एवं स्व-भाव का आरोहण नहीं हो पाया है फलतः मूल कवि की वाणी ही हिन्दी में रूपान्तरित हो कर्णगोचर होती है। अकादेमी का यह प्रकाशन जहाँ अपने देश के १४ भाषा के रत्नों को मंथन कर हिन्दी पाठक को प्रदान करता है वहाँ हिन्दी को इसका माध्यम बनाना हिन्दी के लिए गौरव एवं महत्त्व की बात है। कविता के वृहत्संकलन का सर्वत्र स्वागत एवं पठन-पाठन होगा, ऐसी आशा है। साथ ही हिन्दी की समृद्धता पर गर्व हो वक्ष स्वतः फूल उठता है। —कामता गुप्त कमलेश।

● उपन्यास

वापसी—

ले०–मुल्कराज आनन्द, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ४२२, मूल्य ८.००।

प्रस्तुत पुस्तक मुल्कराज आनन्द का नवीनतम उपन्यास है। उपन्यास का नायक लालू जब प्रथम विश्व युद्ध में भाग लेने के बाद लौटता है तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता आन्दोलन का सक्रिय अङ्ग बन कर 'कामरेड लालसिंह' बन जाता है।

'वापसी' में लेखक ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शोषण का और सदियों पुरानी रूढ़ियों का जो भारतीय ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न अङ्ग बन चुकी हैं, बड़ा ही मार्मिक और सजीव चित्रण किया है।

पड़ोसी—

लेखक–गुरुदत्त, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ २११, मूल्य ४.५०

पास रहने से ही कोई पड़ौसी नहीं बन जाता है। मन की दूरी जब तक मौजूद है, तब तक पास-पास रहने वाले ही नहीं, बल्कि भाई-भाई और बाप-बेटे भी एक दूसरे के लिए अजनबी बने रहते हैं। और मन के मिलने पर अजनबी भी पड़ौसी हो जाते हैं। हिन्दी के लोकप्रिय उपन्यासकार गुरुदत्त ने अपने इस नवीनतम उपन्यास में जीवन की विभिन्न समस्याओं का जो विश्लेषण किया है, वह वास्तव में सुन्दर है।

बैरिस्टर—

लेखक–बालशौरि रेड्डी, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ १८२, मूल्य ३.५०

'बैरिस्टर' आन्ध्र प्रदेश के एक ऐसे परिवार की कथा है जो अपने आँचल में आँसू और मुस्कान, लालसा और अनासक्ति, स्वार्थ और त्याग की विभिन्न भावनाएँ समेटे हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का अच्छा चित्रण हुआ है। उपन्यासकार सामयिक समस्या को लेकर चला है और अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

● कोश

व्यावहारिक हिन्दी शब्द कोश—

सं० उदयनारायण तिवारी, प्रकाशक–हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली। पृष्ठ ३४७, मूल्य ३.००

इस पाकेट हिन्दी कोश में प्रशासनिक और दैनिक व्यवहार की आवश्यक शब्दावली मुहावरे और लोकोक्तियाँ सभी कुछ मिलेगा। यह कोश विशेष रूप से पाठकों एवं विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है और उनका एक अच्छा साथी सिद्ध होगा।

" —कमलेन्दु जैन।

स्वत्त्वाधिकारत्त्व का घोषणा-पत्र, फार्म ४, रूल ८

१—प्रकाशन का स्थान	साहित्य कुञ्ज, आगरा
२—प्रकाशन का समय	मासिक
३—मुद्रक का नाम	भारतेन्दु जैन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	साहित्य कुञ्ज, आगरा
४—प्रकाशक का नाम	महेन्द्रजी, सञ्चालक, साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	साहित्य कुञ्ज, आगरा
५—सम्पादक का नाम	महेन्द्रजी
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	साहित्य कुञ्ज, आगरा
६—पत्र के स्वत्त्वाधिकारी	महेन्द्रजी

मैं यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए विवरण, जहाँ तक मेरा विश्वास और जानकारी है, सही हैं।

महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NOT TO BE ISSUED

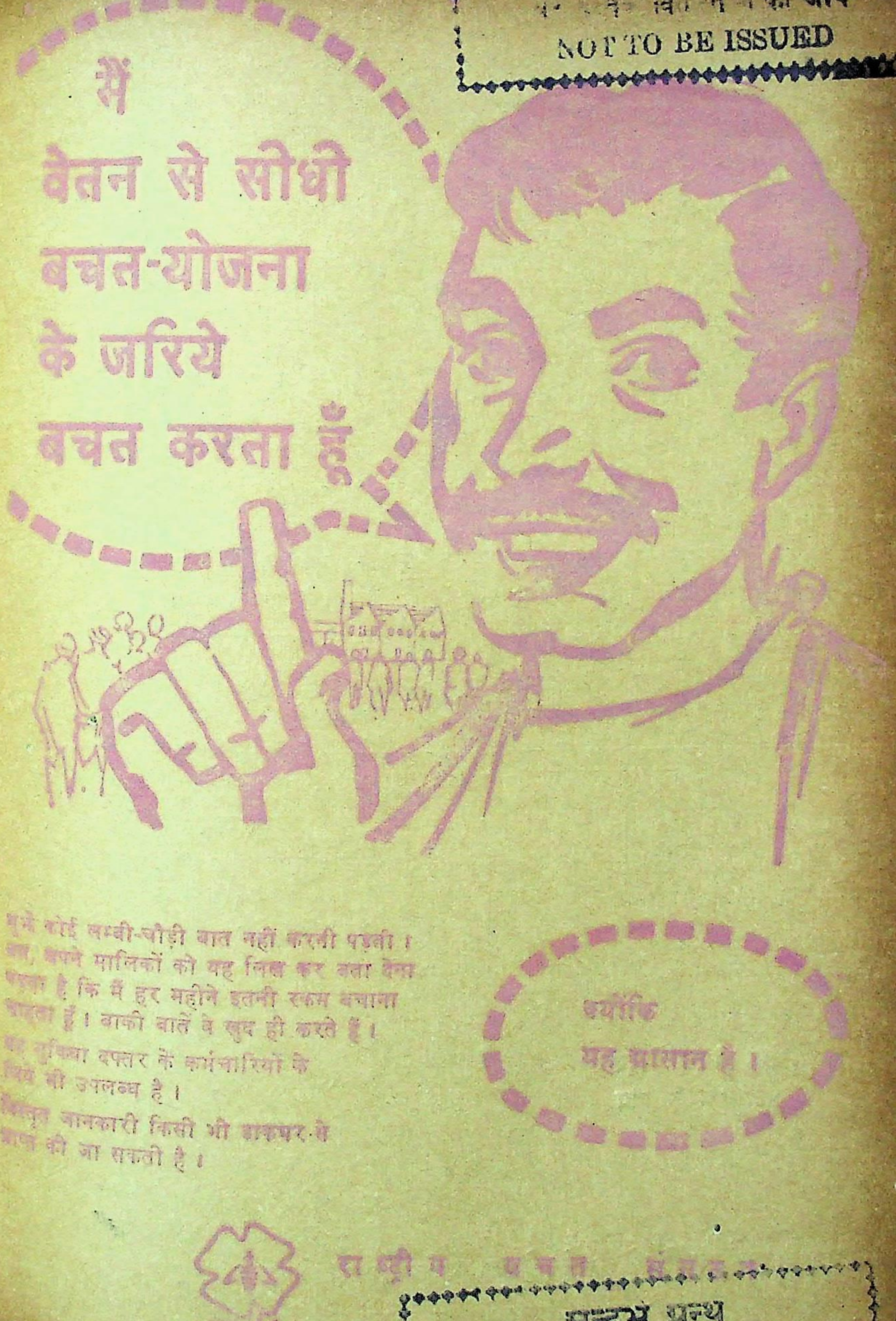

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध लेखकों की चुनी हुई पुस्तकें पढ़िए—

४३५. ईदो २'००
आचार्य चतुरसेन
विश्वयुद्ध की भयानक पृष्ठभूमि पर आधारित लोक-प्रिय लेखक का प्रसिद्ध उपन्यास।

४३६. पर्दे की रानी २'००
इलाचन्द्र जोशी
हिन्दी का महान उपन्यास। विख्यात लेखक की श्रेष्ठ रचना। मार्मिक और अत्यन्त रोचक।

४३७. बम्बई रात की बाँहों में २'००
ख्वाजा अहमद अब्बास
मशहूर लेखक का एकदम नया उपन्यास जिसके आधार पर इसी नाम की लोकप्रिय फिल्म बनी है।

४३८. दो दिल एक कहानी २'००
महेन्द्रनाथ
प्रेम के तिकोन को एक नये अन्दाज में पेश करने वाला बेहद रोचक उपन्यास।

४३९. ससुराल २.००
शौकत थानवी
प्रसिद्ध लेखक के हास्य-व्यंग्य से भरपूर दो उपन्यास 'ससुराल' और 'राजा साहब'।

४४०. एक सांवली लड़की १'००
अमृतराय
माने हुए कहानीकार की चुनी हुई कहानियाँ, जिनका पैनापन अपना एक अलग ही रंग रखता है।

४४१. अंधेरा बंगला १'००
कर्नल रंजीत
अत्यन्त लोकप्रिय जासूसी उपन्यासकार का एकदम नया सनसनीखेज उपन्यास।

४४२. भारत ज्ञान कोश (वार्षिकी) २'००
१९६८-६९
सं० अवनीद्रकुमार विद्यालंकार
भारत और संसार के बारे में नवीनतम और पूर्ण प्रामाणिक जानकारी से भरपूर उपयोगी संदर्भ पुस्तक।

श्रेष्ठ और सुरुचिपूर्ण
पुस्तकों की पहचान

अपने नगर के पुस्तक-विक्रेता, रेलवे बुकस्टाल या रोडवेज बुकस्टाल से खरीदिए।
विस्तृत सूचीपत्र के लिए हमें लिखिए।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लिमिटेड, शाहदरा, दिल्ली-३२

भारतेन्दु जैन द्वारा साहित्य प्रेस में मुद्रित तथा साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

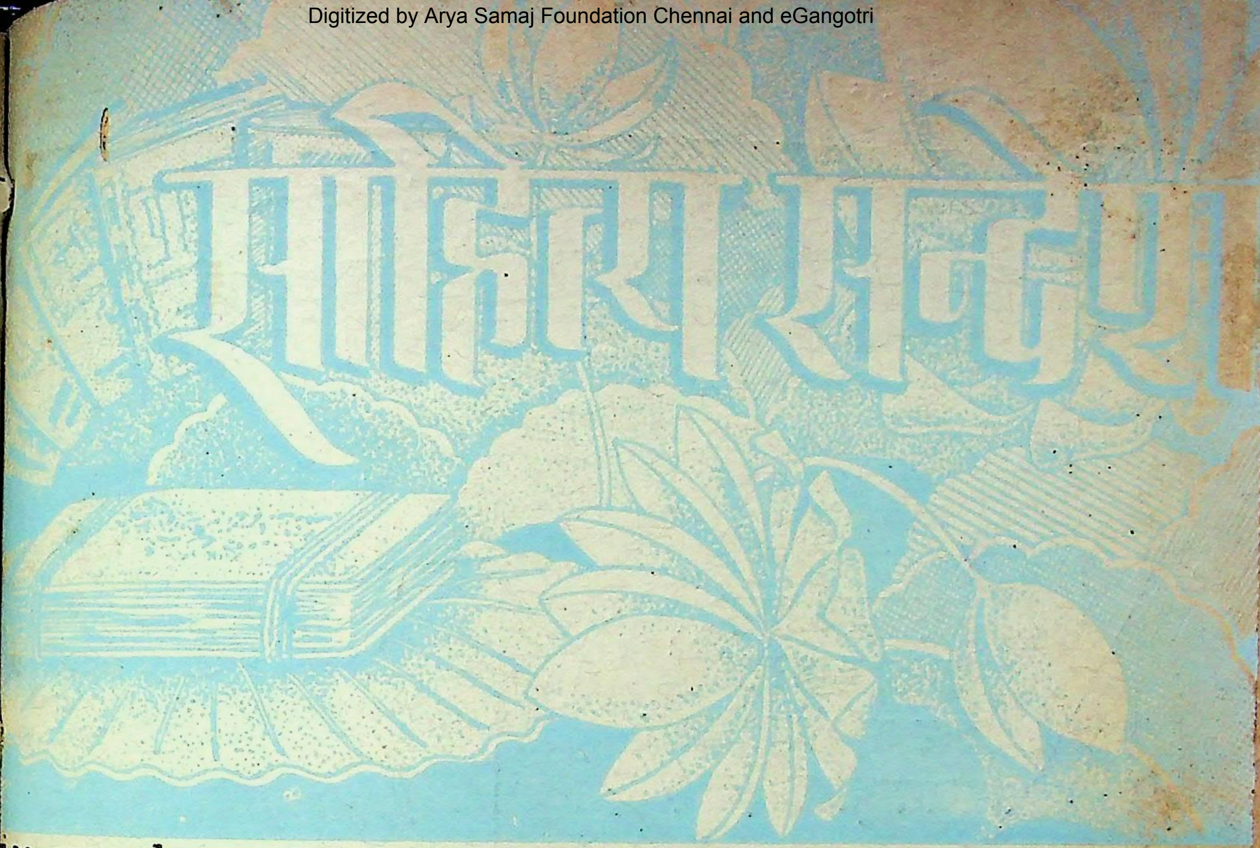

२९, अङ्क ९] मार्च, १९६८ [मूल्य साठ पै

इस अङ्क में—

१—हमारी विचारधारा — सम्पादकीय — ३

२—साहित्य के रूप — व्योहार राजेन्द्रसिंह — ३

३—सन्त-साहित्य का निकष — डॉ० कुमार विमल — ३

४—डॉ० नगेन्द्र की साहित्य-साधना — डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' — ३

५—ऐतिहासिक उपन्यास : एक चुनौती — डॉ० रणवीर रांग्रा — ३

६—चित्रलेखा और थाया — सुरेशचन्द्र 'निर्मल' — ३

७—रेणु की कथात्मक परिकल्पना — प्रेम प्रकाश भाटिया — ३

८—लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक — कन्हैयासिंह — ३

९—अधूरे साक्षात्कार — डॉ० मक्खनलाल शर्मा — ३

१०—भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा—एक दृष्टि — डॉ० रामगोपाल गोयल — ३

११—कॉलरिज की काव्य-सम्बन्धी मान्यताएँ — डॉ० फूलबिहारी शर्मा — ३

१२—पुस्तक-परिचय — ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर, आकर्षक एवं कलापूर्ण

मुद्रण के लिए

सदैव स्मरण रखिए —

साहित्य प्रेस,

साहित्य कुञ्ज, आगरा-२　　दूरभाष : ७२२६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग–२९ अङ्क–९

सम्पादक
महेन्द्र

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

मार्च—१९६८

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

तीन साहित्यकारों को श्रद्धांजलि—

१४, १५, १६ अप्रैल, ६८ को आगरा में एक अच्छा साहित्यिक समारोह हुआ। इस समारोह का उद्घाटन प्रसिद्ध विद्वान और लेखक एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददास जी ने किया। आपने अपने भाषण में हिन्दी के राजभाषा न बन सकने का दोष हिन्दी प्रान्तों विशेषकर उत्तरप्रदेश पर रक्खा और यह विश्वास प्रकट किया कि अनेक उलझनों के बाद भी अन्ततः हिन्दी राजभाषा बनेगी, बनकर रहेगी। आपने यह चेतावनी भी दी कि यदि इस वर्ष के अन्त तक हिन्दी के चारों प्रदेश—राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश अपना सम्पूर्ण काम हिन्दी में न करने लगे तो इन प्रदेशों के मन्त्रियों का और उन व्यापारियों का जो हिन्दी में काम न करेंगे, उनका घिराव किया जायगा। इसके लिए आप स्वयं सेवकों की ऐसी संस्था भी संगठित करेंगे जो अहिंसात्मक रूप से घिराव का काम करेंगे। सेठ गोविन्ददास जी धुन के पक्के हैं और उनके जीवन का लक्ष्य हिन्दी की सेवा ही है। ऐसी दशा में हम हिन्दी प्रदेशों की सरकारों और वहाँ के रहने वालों को चाहिए कि वे अपना सम्पूर्ण काम हिन्दी में करने लगें जिससे घिराव की नौबत न आवे।

सत्यनारायण कविरत्न अर्द्ध-शताब्दी—

उद्घाटन भाषण के अतिरिक्त कविरत्नजी रचित कई गीतों का बहुत ही सुन्दरता के साथ गायन हुआ। यह उत्सव सेंट पीटर्स कालेज के भव्य भवन में हुआ था, जहाँ कविरत्न सत्यनारायणजी ने शिक्षा पाई थी। कालेज के प्रिंसीपल ने उनका एक विशाल चित्र कालेज को प्रदान किया, जिसका अनावरण आगरा के आर्च विशप ने किया और हिन्दी में भाषण देकर अपनी श्रद्धांजलि कविरत्नजी को अर्पित की। ब्रज-कलाकेन्द्र के कलाकारों के संगीत द्वारा उत्सव की शान बहुत बढ़ गई।

१४ की रात को आगरा के प्रसिद्ध कलाविद श्री राजेन्द्र रघुवंशी और उनकी मण्डली द्वारा सत्यनारायणजी के उत्तर रामचरित नाटक का अभिनय भी हुआ। इसके अतिरिक्त पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री वृन्दावनदास आदि विद्वानों के भाषण और कविता पाठ हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई कालेज के पादरी और प्रिन्सिपल ने अपनी शाब्दिक श्रद्धांजलि ही न दी, सत्यनारायणजी के स्मारक स्थापित करने के लिए पांच सौ रुपए की धनराशि भी प्रदान की। यह दोनों बातें बड़ी प्रभावकारी रहीं। कालेज में ठहरने और मीटिंग आदि का प्रबन्ध का भी सारा आयोजन कालेज की ओर से ही किया गया था।

कुँवर हनुमन्तसिंह जन्म-शताब्दी—

द्विवेदी काल के यशस्वी पत्रकार कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी की जन्म शताब्दी दूसरे दिन मनाई गई। बलवन्त विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० टीकमसिंह तोमर ने कुँवर साहब के जीवन और कृतित्व पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। कई सज्जनों ने कुँवर साहब के सम्बन्ध में रोचक संस्मरण सुनाए। उनके सम्बन्ध में कई अच्छी कविताएँ पढ़ी गईं। अन्त में श्री महेन्द्रजी ने अध्यक्षीय पद से भाषण देते हुए कहा कि आज समालोचना युग माना जाता है परन्तु कुँवरसाहब ने उस युग में भी कई पुस्तकों की ऐसी कड़ी आलोचनाएँ कीं जिन पर बड़ा विवाद छिड़ गया और अन्त में तीन पंच नियुक्त हुए जिन्होंने सर्वसम्मति से तय किया कि कुँवरसाहब का पक्ष ठीक है। जिन पुस्तकों की आलोचना कुँवरसाहब ने की थी उनकी शेष प्रतियों को गंगा में प्रवाहित किया गया। द्विवेदीजी की सरस्वती ने १९०४ के अंक में गंगा में प्रवाहित करने सम्बन्धी चित्र भी छाप कर इस विवाद को समाप्त किया।

महाकवि ग्वाल की शताब्दी—

ब्रज के महाकवि ग्वाल की शताब्दी भी इसी अवसर पर बाबू वृन्दावनदासजी के सभापतित्व में मनाई गई। ग्वाल कवि की रचनाओं का पाठ हुआ उनकी रचनाओं की चर्चा की गई और यह बताया गया कि महाकवि ग्वाल ने केवल कविता ही नहीं की बल्कि कविता की कसौटी सम्बन्धी रचनाएँ कीं, जिनकी टक्कर की रचनाएँ नही मिलतीं।

इस बात पर खेद प्रकाशित किया गया कि पुराने कवियों की रचनाएँ आज प्रायः अप्राप्य हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता अनुभव की गई कि सत्यनारायण, हनुमन्तसिंह और ग्वाल की रचनाओं का प्रकाशन आज के अनुरूप सम्पादित होकर प्रकाशित किए जाने चाहिए।

इस दिन रात को ८ बजे से २ बजे तक कवि-सम्मेलन हुआ जो बहुत जमा और पसन्द किया गया। यह आयोजन अपने ढंग का अनूठा हुआ। इसमें स्वागताध्यक्ष श्री वृन्दावनदासजी, मन्त्री श्री दिव्यजी और संयोजन का काम श्री रमेशचन्द्रजी दुबे ने किया। दुबे साहब ने तो सरकारी अधिकारी होते हुए भी इस समारोह को सफल बनाने में पूरा सहयोग दिया।

दो स्मृति ग्रन्थ—

इस अवसर पर सत्यनारायण के अभिनन्दन में एक स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया गया जिसका सम्पादन श्री रमेशचन्द्रजी दुबे ने किया। इस स्मृति ग्रन्थ में कविरत्नजी के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर और महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किए गए। जल्दी-जल्दी में छपने से यह ग्रन्थ वाह्य रूप से उतना सुन्दर और आकर्षक नहीं बन पाया जितना स्मृति ग्रन्थ को होना चाहिए। फिर भी यह प्रयास बहुत अच्छा और सामयिक रहा।

कुँवर हनुमन्तसिंहजी रघुवंशी की स्मृति में भी सहयोगी 'साहित्यालोक' का एक विशेषाङ्क निकला जो बहुत उपयोगी रहा। इस अङ्क में कुँवर साहब के विषय में सभी दृष्टियों से विचार किया गया है और उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डालता है। इस अङ्क का सफल सम्पादन साधक श्री तोताराम पङ्कज ने किया है। उन्हें हमारी बधाई है।

शिक्षा का माध्यम क्या हो ?—

शिक्षा का माध्यम क्या हो ?—इस महत्वपूर्ण विषय पर अब विशेषज्ञ और विद्वान प्रायः एकमत होते जा रहे हैं कि माध्यम भारतीय भाषाएँ ही हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती हैं और होनी चाहिए। अंग्रेजी माध्यम रहकर बात अब कुछ अंग्रेजी परस्तों के मन की ही बात रह गई है। अधिकाँश लोग तो यही कहते और मानते हैं कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ ही होनी चाहिए।

अभी भागलपुर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त उत्सव में भाषण देते हुए केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री यशवन्तराय चह्वाण ने भी यही बात कही कि जब तक विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता, भारत में आधुनिकीकरण की गति तीव्र नहीं हो सकती। आपने परीक्षा पद्धति, अध्यापन के तरीके और पाठ्यक्रम में मौलिक परिवर्तन करने का आग्रह किया और कहा कि भारतीय विश्वविद्यालयों को समाजसेवा और विकास कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेना चाहिए जिससे वे सीमित ज्ञान की सीमाएँ पार कर अपने आपको स्वतन्त्र कर सकें और अपनी कूपमण्डूकता से छुटकारा पा सकें।

रंगमंच की शत वार्षिकी—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इस वर्ष वाराणसी में हिन्दी रङ्गमञ्च की शतवार्षिकी मनाकर बड़ा पुण्य कार्य किया है। रङ्गमञ्च हमारा बहुत ही उपेक्षित अङ्ग है। उसके पुनरुद्धार और विकास के लिए वातावरण सभा ने पैदा किया है उसे देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। विशेष रूप से हमें उनकी पत्रिका 'नागरी-पत्रिका' का रङ्गमञ्च विशेषाङ्क देख कर हुआ। यह अङ्क रङ्गमञ्च के विविध पहलुओं पर सुन्दर प्रकाश डालता है। हिन्दी रङ्गमञ्च के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी के ख्यातिप्राप्त नाटककार श्री जयशङ्कर प्रसाद के चित्र भी अङ्क में दिए गए हैं। इस प्रकार यह विशेषाङ्क अपने विषय की अच्छी कृति बन गई है। सभा ने अपनी शोध-पत्रिका त्रैमासिकी के अतिरिक्त 'नागरी पत्रिका' नाम से एक मासिक पत्रिका निकालकर हिन्दी प्रचार का अच्छा कार्य किया है। सभा के अधिकारियों को हम इस विशेषाङ्क और 'नागरी-पत्रिका' निकालने के लिए बधाई देते हैं।

डाक पर डाका—

नए बजट में भारत सरकार ने डाक की दरों में जो वृद्धि की है वह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। मालूम होता है कि मुरारजी भाई यह भूल गये हैं कि इस देश की जनता अब भी इतनी सम्पन्न नहीं हुई है जो इस वृद्धि को वहन कर सके। इस बार तो उन्होंने डाक की हर बात पर दरें बढ़ा दी है और इतनी बढ़ा दी हैं जिससे पुस्तक व्यापार तो चौपट हो जायगा, गरीब जनता की दिन रात में काम आने वाली चीजों पर भी बेहद वृद्धि हुई। जो पोस्ट कार्ड कभी दो पैसे का मिलता था, उसके दाम छः पैसे से बढ़ कर दस पैसे कर देना सचमुच घोर अन्याय है। जो समाचार पत्र एक पैसे में जाता था उसके दो पैसे से अब दस पैसे कर दिए गये हैं किए इस ढङ्ग से किए गए हैं कि लोग ज्यादा शोर न मचा सकें। यह वृद्धि छोटे पत्रों की जान निकालने वाली है। स्पष्ट ही यह वृद्धि जैसा हमारे एक सहयोगी ने लिखा है—'डाक पर डाका है।'

साहित्य-सन्देश पर डाक टिकट दो पैसे लगाए जाते थे लेकिन अब ६० ग्राम से जरा भी ज्यादा हो जाय तो दस पैसे देने पड़ते हैं। इस वृद्धि के कारण प्रायः समाचार पत्रों को अपने मूल्य में वृद्धि करनी पड़ रही है। सरकार ने छोटे पत्रों के साथ अन्याय करके अच्छा नहीं किया है। इसका प्रभाव अन्ततोगत्वा जनता की शिक्षा-दीक्षा पर पड़ेगा और साहित्य और संस्कृति की रक्षा के स्थान पर भक्षण होगा। वित्त मन्त्री को देश की आर्थिक दशा सुधार के लिए और अनेक मार्ग अपनाने थे उन्होंने डाक की दरों में वृद्धि की बात सोच कर अपने विचारों का बहुत ही छोटापन प्रकट किया हैं। संसद के बहुत सदस्यों ने इस डाक दर वृद्धि का विरोध किया पर मुरारजी देसाई ने किसी की एक भी न सुनी। हम इसे देश का दुर्भाग्य ही समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

(आलोचना प्रधान मासिक)

'साहित्य-सन्देश' आलोचना का एक मात्र मासिक-पत्र है जो गत २९ वर्षों से लगातार निकल रहा है। इसका प्रचार भारत एवं विदेशों में है। वार्षिक मूल्य केवल ६.०० रुपया है।

उपयोगिता—(१) हिन्दी के अध्ययन के लिए साहित्य-सन्देश अनूठा साधन है। हजारों विद्यार्थी 'साहित्य-सन्देश' पढ़कर बी. ए., एम. ए., पी-एच. डी. आदि पदवीधारी बनकर आज बड़े-बड़े कालेजों में अध्यापन कर रहे हैं।

(२) साहित्य-सन्देश के निरन्तर अध्ययन से सैकड़ों व्यक्ति लेखक बन गए। आज के अनेक सम्मान्य लेखकों ने लिखने का आरम्भ साहित्य-सन्देश के माध्यम से ही किया है। आज भी उसे सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

(३) अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रचारकों के लिए तो साहित्य-सन्देश एक सम्बल है जिसके सहारे वे हिन्दी का ज्ञान बराबर बढ़ा रहे हैं। इसीलिए इन प्रान्तों में भी उसकी हजारों प्रतियाँ जाती हैं।

मान्यता—(१) भारत के प्रदेशों की सरकारों ने अपने स्कूल, कालेजों के लिए खरीदने की मान्यता 'साहित्य-सन्देश' को दे रक्खी है।

(२) भारत के प्राय: सभी विश्वविद्यालय, अधिकांश कालेज और स्कूल तथा अध्यापकगण अपने पुस्तकालयों के लिए 'साहित्य-सन्देश' खरीदते हैं।

आप भी छ: रुपये धनादेश अथवा पोस्टल आर्डर कार्ड भेजकर ग्राहक बनिए।

'साहित्य-सन्देश' की

गत १५ वर्षों की फाइलें

३१ मार्च ६८ तक मँगाने पर पौने मूल्य में

साहित्य-सन्देश को निकलते २९ वर्ष हो गए। प्रारम्भ की १४ वर्षों की फाइलें क्या एक अङ्क भी उपलब्ध नहीं है। इधर १५ वर्ष की कुछ फाइलें उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल में हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखित ५०० पृष्ठों (पुस्तकाकार में १०० पृष्ठ की सामग्री है। ऐसी प्रत्येक सजिल्द फाइल का मूल्य केवल १०) है। पोस्टेज एक फाइल पर करीब २) पड़ेगा। किन्तु कम से कम पाँच वर्ष की फाइलें मँगाने पर रेल द्वारा बिना खर्च भेजी जायेंगी। किस वर्ष की फाइल में कौन विशेषाङ्क है—यह नीचे देखिए। चिन्हित विशेषाङ्क अलग से भी मिल सकते हैं। तुरन्त आर्डर भेजिए।

सन्	वर्ष के विशेषांक	विशेषांक का मूल्य
१९५२-५३	कहानी अङ्क	२)
१९५३-५४	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५४-५५		
१९५५-५६	अन्त:प्रान्तीय नाटकाङ्क	२)
१९५६-५७	आधुनिक उपन्यास अङ्क*	२)५०
१९५७-५८	(१) भाषा विज्ञान अङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क	१)
१९५८-५९	(१) सन्त साहित्य अङ्क*	२)५०
	ऐतिहासिक उपन्यासाङ्क	२)
१९५९-६०	(१) रीतिकाव्यालोचनाङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति अङ्क १९६०*	२)
१९६०-६१	(१) शोध विशेषाङ्क	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क १९६१	२)
१९६१-६२	(१) निबन्ध विशेषाङ्क अप्राप्य	२)५०
	(२) निराला विशेषाङ्क ,,	२)
१९६२-६३	(१) साहित्य-शास्त्र अङ्क	२)५०
	(२) रांगेय राघव अङ्क	२)
	(३) शिवपूजनसहाय अङ्क	१)
१९६३-६४	(१) बाबू गुलाबराय अङ्क*	२)५०
	(२) वीर काव्य विशेषाङ्क	२)५०
१९६४-६५	(१) द्विवेदी अङ्क*	२)
	(२) राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक*	२)
१९६५-६६	(१) हरिऔध विशेषाङ्क*	२)
	(२) विद्यापति विशेषाङ्क*	२)
१९६६-६७	(१) रत्नाकर विशेषाङ्क*	१)५०
	(२) नव वर्षाङ्क*	१)५०
१९६७-६८	(१) बच्चन विशेषांक	१)५०

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के रूप

• व्योहार राजेन्द्रसिंह

इस बात से कोई इन्कार न करेगा कि तुलना ही साहित्य और कला सम्बन्धी निर्णयों के मूल में है और हमारे निर्णयों का महत्त्व अनुभवों के विस्तार ही पर निर्भर है। वर्क ने इसी सिद्धान्त पर सार्वजनिक रुचि का मापदण्ड का आधार रक्खा है। जिस मनुष्य ने कोई सुन्दर कलाकृति नहीं देखी वह नाई की दूकान पर रक्खे हुए मोम के सिर पर ही मुग्ध हो जाता है। किन्तु जब वह किसी मूर्ति शाला में जाता है, तब उसका वह मोह दूर हो जाता है—शिक्षा, अनुभव, यात्रा, तथा सामाजिक सम्पर्क आदि से हमारा मानसिक विकास होता है और हमारी दर्शन और श्रवण शक्तियों को शिक्षण भी मिलता है। इसी से हमें वे उपकरण मिलते हैं जिनसे हम नित्य जीवन के मामलों पर ठीक-ठीक निर्णय पर पहुँच सकते हैं। इस प्रकार हम चित्र कला या काव्य की ओर आकर्षित होते हैं। चित्र में रंगों सन्तुलन को पहिचान सकते हैं तथा साहित्य में अपने—समाज या आस-पास होने वाली विषमताओं से प्रभावित हो सकते हैं।

साधारण जीवन में नई सुरुचि से काम चल जाता है किन्तु अच्छे और बुरे की तुलना करते समय वह काम नहीं देती। यदि हम चित्रशाला में जावें तो अपनी सुरुचि के कारण आनन्द तो उठा सकेंगे किन्तु चित्रों की उत्तमता या निकृष्टता के निर्णय में वह सफल न होगी। साधारण दर्शन, सुन्दर चित्रों में कोई भेद न कर सकेगा। किन्तु एक आलोचक या कलाकार ऐसी बारीकी से गुण दोष परखेगा जो साधारण दर्शक के ध्यान में भी न आयेगी।

जो कला के विषय में सच है वही साहित्य के विषय में भी सच है। हम किसी पुस्तक को इसलिये पढ़ते हैं कि वह हमारा मनोरंजन करती है अथवा हमें रुचिकर प्रतीत होती है। हम अपनी रुचि के अनुसार किसी पुस्तक किसी साहित्य के विशेष अङ्ग या शैली को पसन्द करते हैं। किन्तु इस रुचि से उन कारणों का विवेचन नहीं होता जिसके आधार पर हम उनको पसन्द करते हैं। बहुत से पाठक अपनी भावनाओं का विश्लेषण ही नहीं करना चाहते हैं। उनके लिये उस पुस्तक का कोई महत्त्व नहीं। किन्तु बहुत से ऐसे पाठक हैं और उनकी संख्या बढ़ रही है—जो इस अज्ञान की स्थिति को पार कर चुके हैं और वे पुस्तकों को सरसरी तौर पर पढ़ने के बदले उनका अध्ययन करना चाहते हैं। उनके लिये यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है क्योंकि बिना स्वतन्त्र ज्ञान के आधार के किसी भी साहित्य का अध्ययन नहीं किया जा सकता। साहित्य अपने उच्च रूप में एक कला ही है। अतः प्रत्येक साहित्य के विद्यार्थी को साहित्यालोचक होना भी आवश्यक है। वह केवल इससे सन्तुष्ट न होगा कि इससे मुझे आनन्द मिलता है, किन्तु वह यह भी पूछेगा कि यह आनन्द मुझे क्यों मिलता है, और क्यों मिलना चाहिये? यदि इस प्रश्न का उत्तर पाना है तो उसे अपने विशेष क्षेत्र को छोड़कर उसके बाहर के दृष्टिकोण को भी अपनाना पड़ेगा।

इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य इसी प्रकार का स्वतन्त्र दृष्टिकोण उपस्थित करता है कि जिस दृष्टिकोण मे केवल एक काल या एक लेखक ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण साहित्य का, साहित्य ही की दृष्टि से, अध्ययन किया जा सके। इसमें मैंने ऐसी सामग्री एकत्रित करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास किया है कि जिससे यह ज्ञान हो सके कि प्राचीन और नवीन आलोचकों ने किस दृष्टि कोण से साहित्य को देखा परखा है। उन लेखकों के चुनाव के सम्बन्ध में भी दो शब्द मैं यह नहीं कहना चाहता कि मेरा चुनाव परिपूर्ण है या सर्वोत्तम है किन्तु जिस सिद्धान्त से मैं प्रेरित हुआ हूँ वह सब की समझ में आ जावेगा। मैंने उन्हीं लेखकों तथा उनकी कृतियों को चुना है जिन्होंने साहित्य को पूर्ण दृष्टि से देखा है। मैंने उन्हीं विषयों की चर्चा की है जो प्रधानतया समालोचना के सिद्धान्त से सम्बन्ध रखते हैं। विशेष कृतियों की परीक्षा में उन सिद्धान्तों का कहाँ तक प्रयोग किया जा सकता है। उनकी चर्चा आनुषंगिक रूप से की गई है। इन विश्लेषणों और उदाहरणों को रखते समय मैंने एक दूसरे का सम्बन्ध बतलाने का प्रयास किया गया है और कहीं-कहीं उनके समन्वय करने का भी।

इस तुलना का प्रधान परिणाम इस निश्चय पर पहुँचावेगा कि साहित्यिक निर्णय का औचित्य किसी एक कसौटी पर निर्भर नहीं है, वरन् साहित्यिक कृतियों को सदा दो पहलुओं से आवश्यक है। इतना ही नहीं किन्तु साहित्य के गुण दोषों का विवेचन अनेक प्रकार से परीक्षा करने पर ही हो सकता है और इन परीक्षा सूत्रों का मापदण्ड कृतियों की भिन्नता के अनुसार ही होना चाहिए।

अन्य तात्विक विषयों के समान विद्वानों ने साहित्य को भी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखा है। उनकी कसौटी पर किसी पुस्तक की परीक्षा की जा सकती है। प्लेटो ने साहित्य में यदि सत्य की दृष्टि प्रधान रक्खी है तो अरस्तू ने सन्तुलन (Symmetry) को मुख्य माना है। यदि हम प्लेटो के अनुसार परीक्षा करें तो हमें कला के सत्य (Truth of Art) और तर्क के सत्य में (Truth of lodie) भेद करना होगा। कविता की आलोचना करते समय हमें और भी सूक्ष्म कसौटी से काम लेना होगा। हमें देखना होगा कि उसमें केवल जीवन की घटनाओं से समानता रखने वाला सत्य ही है अथवा उन तथ्यों की मानसिक निर्मिति भी (Mental Rendering)। उसमें केवल नित्य के अनुभवों से उत्पन्न होने वाले सत्य का आधार है अथवा सब देशों और सब कालों में एक से रहने वाले त्रिकालाबाधित और शाश्वत सत्य का। यही कला का सत्य (Truth of Art) है। यह सत्य केवल विशाल अनुभव और दृढ़ निश्चय वाले मनीषी ही प्राप्त करते हैं। इसी कारण मैथ्यू आरनॉल्ड ने पूर्ण सत्य की उच्च गम्भीरता (High Seriousness of Absolute Sincerity) ही को काव्य का मुख्य गुण माना है। जब कवि या कलाकार इस सत्य को अपनी कृति में स्थान देते हैं, आदर्शवाद का आश्रय लेते हैं तब कविता जीवन की आलोचना (Criticism of life) बन जाती है और कला प्रकृति की आलोचना (Criticism of nature)। अरस्तू के बतलाये हुये सन्तुलन (Symmetry) की कसौटी पर कसने से जान पड़ता है कि प्रत्येक कला के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के सन्तुलन की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से सन्तुलन निर्माण का रूप धारण कर लेता है। प्रत्येक कला के विशेष साधनों को उसके विशेष उद्देश्य की पूर्ति में लगाने ही को कला निर्माण की दक्षता कहा जा सकता है और यही दक्षता उस कला का सन्तुलन है। इस दक्षता या कला पटुता की परीक्षा करने के लिये उसके साधनों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके लिये 'लेसिंग' और 'कज़िन' द्वारा बतलाई हुई साहित्य और कला विधियों की विश्लेषण पद्धति और भिन्न-भिन्न कलाओं की मर्यादायें कला सम्बन्धी निर्णय करने में उपयोगी सिद्ध होंगी।

साहित्य के विभिन्न रूपों, विभिन्न उद्देश्यों के भेद न करने से कई कठिनाइयों उपस्थित होती हैं। जन-साधारण का निर्णय नाटक या उपन्यास के सुखान्त होने के पक्ष में है किन्तु अरस्तू के मत से दुखान्त कथानक ही सबसे अधिक प्रभावशाली और कलात्मक है। यथार्थ में, जहाँ हृदय द्रावक करुणा का उद्रेक तथा भय और दया के भावों को उत्तेजित करना आवश्यक होता है, वहां दुःखान्त नाटक या काव्य ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक उपयोगी होता है। किन्तु उपन्यासों में काव्य-गत न्याय (Poetic Justice) ही उपयुक्त होता है, क्योंकि बहुत थोड़े लोग करुणा या दुःख से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार नाटकों के लिये यदि करुणा अनिवार्य है तो उपन्यासों के लिये वह केवल आनुषंगिक है। उपन्यासों में हमें जीवन का सम्पूर्ण और विस्तृत चित्रण मिलता है और उसमें मनुष्य का हृदय स्वभावतय। आशावादिता की ही अपेक्षा करता है। यह प्रवृत्ति कला के आदर्शवादी रूप से अधिक समरस है। इसलिये हम तात्विक और आलोचनात्मक दोनों ही दृष्टियों से कथा-साहित्य में उतनी अच्छाई और विभिन्नता की आशा करते हैं जितनी कि वास्तविक जगत में भी नहीं करते।

अब तीसरी दृष्टि—वर्तमान उन्नति के युग में मनोविज्ञान और भौतिक-विज्ञान ने जीवन को अधिक गतिशील बना दिया है। साथ ही साथ उसने मनुष्य की कल्पना को भी विस्तृत किया है। इस युग में एडीशन का तीसरा मत विशेष महत्वपूर्ण हो उठता है। उनके अनुसार कल्पना शक्ति को उत्तेजित करने की कामना ही साहित्य का मापदण्ड है। यह मापदण्ड साहित्य के सभी अंगों में प्रयुक्त हो सकता है। साहित्य की समालोचना वह एक ऐसी दृष्टि से करता है जो अनुभव से विशेष उपयोगी सिद्ध होती है। इससे हम साहित्यिक कृतियों के गुणों की जाँच कर सकते हैं। अन्य दृष्टियों से दोषपूर्ण होते हुये भी इन कृतियों में यह गुण है कि वे मनुष्य की कल्पना को उत्तेजना देने के द्वारा उसके विचारों का उद्बोधन करती है। केवल एक ही कसौटी पर साहित्य के गुण दोष नहीं परखे जा सकते (काव्य में कल्पना की उड़ान के साथ ही साथ, भाषा, छन्द और ध्वनि पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। उक्त मतों में से किसी एक के प्रयोग से हम साहित्य के महत्व का निर्णय नहीं कर सकते। साहित्य को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखना तथा उन सब का सामञ्जस्य करना आवश्यक हो जाता है किन्तु इस मत (साहित्य में कल्पना की प्रेरणा) में सबसे बड़ा लाभ यह है कि उससे हमें विज्ञान और साहित्य का अन्तर समझने में सुविधा होती है। विज्ञान में विचार, लेखन के स्वरूप में हमारे सामने आता है और साहित्य में विचार पहले मनुष्य के मस्तिष्क की आदर्शवादी प्रणाली में ढल कर हमारे सामने आता है और तब वह लेखन के रूप में व्यक्त होता है। जहाँ लेखक या कवि इस आदर्शवादी प्रणाली का अनुसरण करता है वहाँ वह पाठक या श्रोता की कल्पना-शक्ति की अपील करता है। यही कल्पना प्रेरित शक्ति साहित्य में लेखक या कवि के व्यक्तित्व को दाखिल करती है और इसी के द्वारा यह इतिहास या जीवन-चरित्र को साहित्य का रूप प्रदान करती है और विज्ञान या दर्शन को भी नया रूप प्रदान करती हैं।

—साठियां कुआं, जबलपुर (म० प्र०)

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ सदस्य ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलतः हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अतः सभी सदस्य अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वतः ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-साहित्य का निकष

● डॉ० कुमार विमल

साधारणतः 'संत' शब्द का प्रयोग किसी भी साधु, महात्मा, पवित्रात्मा या सदाचारी पुरुष के लिये किया जाता है। शब्दार्थ की दृष्टि से जो व्यक्ति सत्-रूपी परम तत्त्व का अनुभव कर ले, वही संत है। इस दृष्ठि से प्रायः सभी भक्त कवियों को संत कहा जा सकता है। किन्तु यहाँ 'संत' शब्द का तात्पर्य निर्गुण मत के उन कवियों से है, जो कबीर, रैदास इत्यादि की परम्परा में आते हैं। कबीर ने एक साखी में सन्तों का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

निरबैरी निहकामता, साँईं सेंती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतति को अँग एह॥

सन्त साहित्य के विशेषज्ञों की यह धारणा है कि 'सन्त' शब्द का प्रयोग पहले उन भक्तों के लिये होता था जो विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति पर निर्भर थी। ये भक्त प्रायः महाराष्ट्री थे, जिनके बीच ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम विशेष प्रसिद्ध हुए। काल-क्रम में 'सन्त' शब्द इन्हीं भक्तों के लिये रूढ़ हो गया और आगे चलकर अनेक बातों में समानता रखने के कारण उत्तरी भारत के कबीर तथा अन्य ऐसे निर्गुणवादी भक्त कवि सन्त कहलाने लगे। कबीर के अलावा सन्तों की इस परम्परा में रैदास, धरमदास, शेख फरीद, मलूकदास, दादूदयाल, नानक, धरनीदास, लालदास, सुन्दरदास, यारी, दरिया, गुलाल, चरनदास, भीखा, गरीबदास, दयाबाई, सहजो बाई, पलटूदास इत्यादि के नाम गण्य एवं उल्लेख्य हैं। धीरे-धीरे सन्त परम्परा रूढ़ होती गई और उसके अन्तर्गत कई सम्प्रदायों एवं पंथों की स्थापना हो गई। जैसे—निरंजनी सम्प्रदाय, बाबा लाली सम्प्रदाय, धामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, शिवनारायणी सम्प्रदाय, कबीर पन्थ, दादू पन्थ, दरिया पन्थ, नानक पन्थ, साहिब पन्थ. बाबरी पन्थ और मलूक पन्थ।

सन्त साहित्य की रचना का प्रारम्भ ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी से माना जा सकता है। इसी अवधि के आस-पास सन्त परम्परा के पथ-प्रदर्शक कवि जयदेव ने कुछ पदों की रचना की थी, जो 'आदिग्रन्थ' में संगृहीत हैं। तब से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक संत साहित्य की धारा प्रवाहित होती रही है। इतिहासकारों का कहना है कि कबीर के समय तक संतों की कोई सुव्यवस्थित कार्य,पद्धति नहीं थी और उनके सभी प्रयास व्यक्तिगत धरातल पर किये गये प्रयास थे किन्तु धीरे-धीरे सन्तों के बीच साम्प्रदायिक सङ्गठन की आकांक्षा जगी। फलस्वरूप, सन्तों की रचनाओं को संगृहीत करने तथा उन्हें प्रचारित तरने की एक व्यवस्थित प्रणाली चल पड़ी। इस प्रचार-कार्य के कारण सन्तों का प्रभाव-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया और विभिन्न जनपदों की बोलियों का असर उनके भाषा-संस्कार पर पड़ने लगा। अतः सन्त साहित्य की भाषा पर भोजपुरी और अवधो से लेकर पंजाबी, राजस्थानी और नीमाड़ी तक का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सन्त साहित्य में साम्प्रदायिकता के परिहार और भावनात्मक एकता की दृष्टि से बाह्याडम्बर एवं कर्मकाण्ड का विरोध बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वाह्याडम्बर तथा कर्मकाण्ड के विरोध से हिन्दू-मुसलिम एकता को ही नहीं, सर्वधर्म-समन्वय को बल मिलता है। साथ ही, निर्गुण-निराकार की स्वीकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण संत साहित्य की एकेश्वरवादी धारणा में हिन्दुओं के राम और मुसलमानों के रहीम—दोनों के लिये समान गुन्जाइश निकल गई है—

हमरे राम रहीम करीमा,
केसो अलह राम सति सोई।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै,
और न दूजा कोई।

सन्त साहित्य मध्यकालीन जीवन-मूल्यों से बहुत दूर तक ग्रस्त रहने पर भी अपने पूर्ववर्त्ती वीरगाथा-काल और परवर्त्ती रीतिकाल की तरह आश्रयदाताओं के निमित्त लिखा हुआ दरबारी काव्य अथवा अर्थलिप्सा से प्रेरित काव्य नहीं है। इस तरह सन्त साहित्य सामन्ती या आभिजात्य अर्थ-व्यवस्था के संकेतों पर रचे गये निस्पन्द साहित्य से भिन्न है। उसे समाज के उपेक्षित अंशों ने अपनी ऊर्जा से जीवन्त बनाया है और उसके माध्यम से तत्कालीन समाज की प्रगतिशील शक्तियों ने धर्म-भावना से संवलित होकर एक नूतन अभिव्यक्ति पाई है। अतः यह कहना सच है कि सन्त साहित्य के रूप में ज्ञान की जो गंगा प्रवाहित हुई है, उसके भगीरथ कबीर और रैदास जैसे कवि रहे, जिनके माथे पर कुलीनता की कलँगी नहीं लगी हुई थी।

दूसरी बात यह है कि सन्त साहित्य कवि-कर्म की शास्त्रसम्मत शिक्षा एवं साहित्य-रचना की रूढ़ि मर्यादाओं से प्रायः मुक्त है, क्योंकि अधिकांश सन्त कवि अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित व्यक्ति थे। इसलिए सन्तसाहित्य का सौष्ठव उसके प्रातिम संस्पर्श उसकी सहजानुभूति में छिपा हुआ है न कि अलङ्कार, गुण और रीतियों की बारीकी मीनाकारी में। सचमुच सन्त साहित्य की आधारशिला सन्तों की शुद्ध स्वानुभूति है। स्वानुयूति-प्रधान होने के कारण ही सन्तों के ज्ञान को 'सहज ज्ञान' कहा गया है। फलस्वरूप, सन्त साहित्य में हमें पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं मिलता, उसमें 'साचा सबद' की भरमार मिलती है, जिसका उद्देश्य 'कब्ब कलाउ छइल्ल' का मनोरंजन न था बल्कि कवि के अनुभूत 'ब्रह्म-विचार' को जन-जीवन से लिए गये कुछ सीधे और कुछ (तिरछे या टेढ़े) प्रतीकों के द्वारा अभिव्यत कर देना है। इस तरह सन्त साहित्य कलाबाजी के कृत्रिम आवरण से मुक्त काव्य है। उसमें श्रुतिपेशता से अधिक स्वाभाबिकता का, आभिजात्य से अधिक जनजीवन का और शास्त्र से अधिक स्वानुभूति का महत्व है। अतः सन्तसाहित्य केवल विषय-वस्तु की दृष्टि ही विचारणीय नहीं है, बल्कि उसने साधारण जन-समूह की प्रगतिशील धारणाओं के अनुरूप नये कला-संस्कारों को गढ़ने की चेष्टा की है अभिजात काव्यशास्त्र के विरुद्ध क्रातिकारी कदम उठाया है। इस प्रकार सन्त साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपेक्षित जनों की जागृति का समर्थ जयघोष है—वह जयघोष, जिसमें शास्त्र के बदले प्रत्यक्ष स्वानुभूति को महत्त्व दिया गया है। तभी तो कबीर ने चुनौती के स्वर में कहा है—

मैं कहता रे आँखिन देखी।
तू कहता कागद की लेखी॥

इसी आवेश के कारण सन्तों ने परम्परित शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही आचार का, विशेषकर बाह्याचार का विरोध किया है और आचार की तुलना में अन्तर्जगत् से अद्भुत 'विचार' को महत्त्व दिया है। जैसे, दादू का कहना है कि 'विचार' ही सभी व्याधियों की एकमात्र औषधि है। इसलिए करोड़ों 'आचारी' एक 'विचारी' की बराबरी नहीं कर सकते—

कोटि अचारी एक विचारी तऊ न सरभरि कोई।
आचारी सब जग भरया, विचारी बिरला कोई॥

उपर्युक्त प्रवृत्तियों का पूरा प्रभाव सन्त साहित्य के कला-पक्ष पर पड़ा है। काव्यशास्त्र में प्रथित कलात्मक उत्कर्ष की दृन्टि से सन्त साहित्य उत्कृष्ट नहीं हैं, क्योंकि इसकी रचना शास्त्र-पद्धति को ध्यान में रख कर नहीं की गई थी। अतः ऐसे विचारक अब भी मिलते हैं, जिनके अनुसार सन्तों की रचनाओं को साहित्य-क्षेत्र में विशेष महत्व नहीं मिलना चाहिए। किन्तु, यह मान्यता निर्भ्रान्त नहीं है। कारण, कलात्मक सजा से हीन रहने पर भी सन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में भक्त हृदय की सहज स्वाभाविक प्रेरणाओं की स्निग्ध झलक मिलती है। अतः सन्त साहित्य की जनसाद्दत सरलता ही उसकी सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। साहित्य का इतिहास भी इसे प्रमाणित करता है कि जब-जब साहित्य में सोद्देश्यता की बलवती तरङ्ग उठती है, सन्देश-तत्त्व की अधिकता हो जाती है, तब-तब साहित्य में कृत्रिम कलात्मक सौंदर्य घट जाता है। साखियों और रमैनियों के अलावा सन्तों की प्रिय काव्य-शैली पद-शैली है. जिसे 'शब्द' या 'बानी' भी कहा जाता है। इसीं पद-शैली से आधुनिक गीतों का विकास हुआ है। सिद्ध साहित्य के चर्यापदों से प्रारम्भ होने वाली पद-शैली साधारण पद्य-रचना से भिन्न शैली है, क्योंकि केवल छन्दबद्ध रहना ही इसका विशिष्ट कारण नहीं है। पदों में छन्दबद्धता के साथ ही 'स्थायी' अथवा 'टेक' और अन्तरा का विधान रहता हैं। पद की प्रथम पंक्ति 'स्थायी' अथवा 'टेक' कहलाती है, जिसे मन्द या मध्य सप्तक जैसे निम्न स्वरों में गाया जाता हैं। शेष पंक्तियाँ 'अन्तरा' कहलातीं है, जिन्हें तार सप्तकों अथवा उच्च स्वरों में गाया जाता है। इस तरह सन्तों ने गेय पद-शैली के द्वारा काव्य और सङ्गीत कला का आन्तरिक समा-योजन किया है, जिसके कलाशास्त्रीय महत्त्व को विशेष स्वीकृति मिलनी चाहिए। वस्तुतः इस पद-शैली के स्वरारोह-अवरोह ने सन्तों की वीतराग वाणी में मिठास घोल दी है। इन सन्तों ने प्रबन्ध-काव्य का सहारा न लेकर प्रायः मुक्तकों को ही अपनाया है। अतः पदों के अलावा इन्होंने साखियों की भी रचना की है। 'साखी' संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का रूपान्तर है। इसीलिये साखियों में अधिकतर ऐसे ही विषय को वर्णित किया गया है, जिनका प्रामाणिक अनुभव संतों ने अपने दैनिक जीवन में प्राप्त कर लिया था। ये साखियाँ प्रधानतः दोहा छन्द में रची गई हैं, जिसे सूफियों ने 'दोहरा' नाम से स्वीकार किया है।

शास्त्रीय पद्धति से पृथक जनभाषा में रचित होने पर भी सन्त-साहित्य में यदा-कदा दुरूहता या अर्था-वगति का अवरोध मिलता है। विशेषकर सन्तों की 'उलटवांसी' या 'विपर्जय' और योगपरक रूपक का अर्थबोध कठिनाई से हाथ लगता है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

पैठि गुफा में सब जग देखै, बाहर कछुक न सूझै।
उलटा बान पारिधिहि लागै, सूरा होय सो बूझै॥

सन्तों की इस 'उलटवासी' या 'विपर्जय' पर सिद्धों की 'संध्या भाषा'—शैली और नाथ-पंथियों की की 'उलटी चरचा' का प्रभाव है। तदनन्तर, सन्त-साहित्य के कुछ कूट शब्द भी अर्थावगति में अवरोध पैदा करते हैं। जैसे—सुरतिकमल, निरंजन, शून्य, सहज, नाद, बिन्दु, खसम, घरनी इत्यादि। ऐसे कूट शब्द साम्प्रदायिक अर्थ में मान्य सांकेतिक प्रतीक कहे जा सकते हैं।

सन्त साहित्य में व्यक्त रहस्यवाद भावात्मक सत्ता, सहजानुभूति और योग का मिश्रित रूप है। इसमें भगवत् सत्ता के साथ आत्मा की एकता को स्थापित करने का प्रयास है, जिसके अन्तर्गत विशुद्धीकरण, आत्मप्रकाश एवं तल्लीनावस्था को तीन सोपानों के रूप में स्वीकार किया गया है। सन्तों का रहस्यवाद आधुनिक युग के 'नव रहस्यवाद' से इस अर्थ में भिन्न है कि उसमें परमात्मा के समक्ष आत्मा या ब्रह्म के वांछित महत्त्व की प्रतिष्ठा नहीं है। अतः सन्तों के के रहस्यवाद में आत्मप्रपत्ति (आत्म-समर्पण) की भावना इतनी प्रबल है कि मनुष्य का महत्त्व एक अलक्ष्य सत्ता के समक्ष बेतरह लुण्ठित हो गया है। आत्म समर्पण की इस अखरने वाली सीमा को प्रमा-णित करने के लिए ये पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

कबीर कूता राम का, मोतिया मेरा नाउँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ॥
तो तो करै तो बाहुड़ौं, दुरि-दुरि करैं तो जाउँ।
ज्यूँ हरि राखैं त्यूँ रहौं, जो देवे सो खाउँ॥

सन्तों के निर्लिप्त काव्य में अनेक स्थलों पर माधुर्य की झाँकी मिलती है। बात यह है कि सन्तों ने लौकिक रूपकों के माध्यम से रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिये आत्मा को स्त्री-रूप और परमात्मा को पति के रूप में उपस्थित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः इन्होंने आत्मा के लिए पतिव्रता स्त्री का आदर्श स्थापित किया है। इस लौकिक रूपक का अनिवार्य प्रभाव सन्त-साहित्य के सौम्य रस-परिवेश पर पड़ा है। भक्ति-प्रधान होने के कारण सन्त साहित्य का का प्रधान रस शान्त रस है और उसका स्थायी भाव निर्वेद है। किन्तु, जहाँ आत्मा-परमात्मा या जीव और ब्रह्म के लिए पति-पत्नी का लौकिक रूपक अपनाया गया है, वहाँ वियोग शृंगार की व्याकुल भावना मिलती है। फिर भी सन्त-साहित्य में शृंगार की भाव-भीनी स्निग्धता का समावेश बहुत ही कम स्थलों पर हो सका है।

सन्तों की प्रमुख स्थापना यह है कि ईश्वर एक है—

मेरा साहब एक है दूजा कहा न जाय।
साहिब दूजा जो कहूँ साहब खरा रिसाय॥

किन्तु, कबीरदास इतना कहकर ही सन्तोष नहीं करते। वे यह भी कहते हैं कि ईश्वर का कोई रूप या आकार नहीं है—

जाके मुख माथ नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त अनूप॥

सचमुच, 'वह' तो केवल अनुभवगम्य, ज्योतिस्वरूप, अलख और निरंजन है।

सन्तों की दूसरी स्थापना 'माया' से सम्बद्ध है। दार्शनिकों की मान्यता है कि माया के दो प्रकार हैं—सत्य माया और मिथ्या माया। सन्तों ने मिथ्या माया का ही वर्णन किया है, क्योंकि इसी मिथ्या माया ने—समग्र ऐहिक पीड़ाओं के मूल कारण ने समूचे संसार को कनक और कामिनी के नाग-पाश में उलझा रखा है। एक ओर यह नाग-पाश है और दूसरी ओर काल-अहेरी का आक्रमण। इसीलिए मायाग्रस्त संसारियों से सन्त कवि का कहना है कि काल ने सबों की चुटिया पकड़ रखी है। कौन जाने वह कब किसको लील जायगा। अतः राम-नाम का स्मरण ही उद्धार का एकमात्र साधन है—

सुमिरन करहू राम का, काल गहे कर केस।
ना जानों कब मारिहै, का घर का परदेस॥

—द्वारका साहू लेन, मुसल्लहपुर, पटना-६

इकत्तीसवाँ संस्करण प्रकाशित हो गया

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

लेखक—बाबू गुलाबराय डी० लिट्

सामान्यतः हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन दुरूह समझा जाता है किन्तु इस पुस्तक ने इतिहास के अध्ययन में छात्रों की रुचि को जागृत किया है। परिणामस्वरूप इण्टर, बी० ए०, विशारद, प्रभाकर आदि के सहस्रों छात्र प्रतिवर्ष इससे लाभ उठाते हैं और परीक्षा में शानदार सफलता प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का सुबोध ढंग से परिचय देने में जितनी सफलता इस पुस्तक को मिली है, उतनी किसी और को नहीं। इसकी अपूर्व लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अबतक इसके तीस संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत इकत्तीसवाँ संस्करण सम्पूर्ण रूपेण संशोधित एवं संवर्द्धित है। मूल्य—३.५० मात्र

प्राप्ति स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० नगेन्द्र की साहित्य साधना

● डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

डा० नगेन्द्र की साहित्य-साधना काव्य-सर्जन से आरम्भ हुई। उस समय वे इण्टर कक्षा में पढ़ रहे थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "यों तो एकाध तुकबन्दी मैंने हाई स्कूल पास करते-करते भी जोड़ी थी, परन्तु फर्स्ट ईयर में आकर नियमित रूप से कविता करने लगा और मुझे अपने अध्यापकों एवं सहपाठियों से प्रोत्साहन मिलने लगा। हिन्दी के प्रति एक स्थिर अनुराग यहीं से आरम्भ हुआ।"[1] आगरा में शिक्षा प्राप्त करते समय उनका सम्पर्क प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० गुलाबराय तथा श्री महेन्द्रजी से हुआ। इन तीनों व्यक्तियों के प्रोत्साहन से डा० नगेन्द्र आगरा के साहित्यिक जीवन में धीरे-धीरे अपना स्थान बनाते गए। पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ छपने लगीं और बाहर भी उनका नाम फैलने लगा। सन् १९३७ ई० में उनका प्रथम कविता-संग्रह "वन-माला' प्रकाशित हुआ। 'साहित्य सन्देश' की भी उनकी रचनाएँ बड़ी रुचि से पढ़ी जाने लगीं। धीरे-धीरे वे आलोचना की ओर बढ़ते गए, कविता छूटती गई। उनकी प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक "सुमित्रानन्दन पन्त" ने ही आलोचना के क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि दिलाई। उसके पश्चात् उनकी दो अन्य आलोचनात्मक कृतियाँ 'साकेत—एक अध्ययन' तथा 'आधुनिक हिन्दी नाटक' प्रकाशित हुईं। इन ग्रन्थों ने उन्हें साहित्य के अध्येताओं में पर्याप्त लोक-प्रिय बना दिया। इस प्रकार कविता की भूमि से धीरे-धीरे हट कर डा० नगेन्द्र आलोचना के उच्चतर सोपान की ओर बढ़ते गये। उनकी कवि प्रतिभा का अन्तिम फल "छन्दमयी" नामक कविता संग्रह है, जो सन् १९४९ ई० में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व उनके लेखों का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका था। सन् १९४९ में ही उनके तीन अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थ 'विचार और विवेचन', 'रीति काव्य की भूमिका' एवं 'देव और उनकी कविता' भी प्रकाशित हुए। इन कृतियों की मौलिक दृष्टि ने डा० नगेन्द्र को आलोचकों की प्रथम पंक्ति में ला बिठाया। सन् १९५१ में उनका 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ' ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें आधुनिक कालीन कविता पर प्रथम बार अत्यन्त सुलझे हुए विचार और तथ्य सामने आए। 'विचार और विश्लेषण' उनका नवम आलोचनात्मक ग्रन्थ था, जो सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ। धीरे-धीरे वे व्यावहारिक आलोचना से सैद्धान्तिक आलोचना की ओर बढ़ते गए। सन् १९५० और ५६ के मध्य उन्होंने 'हिन्दी ध्वन्यालोक', हिन्दी काव्यालङ्कार—सूत्र 'हिन्दी वक्रोक्ति जीवित' 'भारतीय नाट्य साहित्य' तथा 'भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा' (भाग १) जैसे महत्त्वपूर्ण साहित्य-शास्त्रीय ग्रन्थों का विद्वता-पूर्वक सम्पादन भी किया और इस प्रकार संस्कृत के आचार्यों का ज्ञान हिन्दी-पाठकों के लिए सुलभ कर दिया। सन् १९५७ और ५८ में उन्होंने पाश्चात्य आलोचना-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को भी हिन्दी-पाठकों के लिए सुलभ बनाने की दृष्टि से 'अरस्तू का काव्य-शास्त्र' तथा 'काव्य में उदात्त तत्व' (दि सब्लाइम का हिन्दी अनुवाद) प्रकाशित कराए। इस दिशा में उनका कार्य निरन्तर चलता रहा। हिन्दी साहित्य के इतिहास के काव्य-शास्त्रीय पक्ष की ओर भी उनकी दृष्टि रही और काशी नगरी प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित हिन्दी

[1] मैं इनसे मिला, भाग २ डा. कमलेश, पृ० १४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के बृहत इतिहास की योजना में योग देकर उन्होंने षष्ठ भाग का सम्पादन किया जो सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष भारतीय वाङ्मय नामक उनका एक सम्पादित ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ सन् १९५९ में उन्होंने भारतीय साहित्य से अंगरेजी पाठकों को परिचित कराने के लिए अंगरेजी में ही 'इण्डियन लिटरेचर' नामक ग्रन्थ का भी सम्पादन करके प्रकाशित कराया। सन् १९६० में संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा से हिन्दी पाठकों को परिचित करने का उनका एक अन्य प्रयास सम्पादित होकर प्रकाश में आया। 'हिन्दी काव्य प्रकाश'।

इसके पश्चात् डा० नगेन्द्र की प्रतिभा का प्रवाह काव्य-सिद्धान्तों की पुनरीक्षा की ओर मुड़ा। वे अपने गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के फल को रस सिद्धांत के मौलिक विवेचन के रूप में प्रस्तुत करने को उत्सुक हुए। इस बीच उन्होंने 'अनुसन्धान और आलोचना' १९६१ में प्रकाशित करके आलोचना और शोध के अन्तर को समझा तथा सन् १९६४ में वे अपनी शास्त्र साधना का चरम फल 'रस-सिद्धान्त' ग्रन्थ लेकर साहित्य जगत के समक्ष एक अत्यन्त गौरवपूर्ण पद पर आ प्रतिष्ठित हुए। इस ग्रन्थ में पहली बार एक ऐसी प्रतिभा के दर्शन हुए, जिसका अब तक समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में खटकने वाला प्रभाव था। डा० नगेन्द्र को इस ग्रंथ ने संस्कृत काव्य-शास्त्र के मौलिक व्याख्याताओं की आचार्य-पंक्ति में बिठा दिया। निश्चय ही हिन्दी भाषा इस ग्रंथ को पाकर गौरवान्वित हुई है। रस-सिद्धान्त के प्रकाशन के साथ-साथ डा० नगेन्द्र का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयास भी सामने आया—'मानविकी शब्दकोश'। इसका सम्पादन करके उन्होंने हिन्दी भाषा के शब्द-कोश-विषयक एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की ओर ध्यान दिया और दिलाया। 'मानविकी शब्द-कोश' के अन्य भाग भी उन्होंने सम्पादित किए। आलोचना की दिशा में उनके जो अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए, वे हैं—'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ', 'आलोचक की आस्था' एवं 'काव्य-बिम्ब' इनमें से अन्तिम ग्रन्थ प्रथम बार हिन्दी जगत को मौलिक चिन्तन की भूमि पर पाश्चात्य बिम्ब सिद्धांत का परिचय कराता है। 'चेतना के बिम्ब' नाम से उनके संस्मरणों का भी प्रथम ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, जिसमें एक ललित निबन्धकार की प्रतिभा का सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। उनके महत्त्वपूर्ण निबन्धों का एक वृहत सङ्कलन 'आस्था के चरण' नाम से प्रकाश्य है।

इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से काव्य-सर्जना के रूप में आरम्भ होने वाली डा० नगेन्द्र की साहित्य-साधना निरन्तर अखण्ड रूप से आगे चल रही है। वे व्यावहारिक आलोचना से धीरे-धीरे ऊँचे उठते हुए सैद्धान्तिक आलोचना के उच्चतर सोपान पर ही नहीं पहुँचे हैं, अपितु उन्होंने प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य शास्त्र का मन्थन करके अनेक नई व्याख्याएँ भी की हैं तथा अपनी मौलिक दृष्टियाँ भी स्थापित की हैं। रस सिद्धान्त का उन्होंने जितनी गम्भीरता से अध्ययन विवेचन और पुनराख्यान किया है उतनी गम्भीरता से अन्य कोई विद्वान न तो हिन्दी में कर सका है और न अन्य किसी आधुनिक भारतीय भाषा में ही यह कार्य हुआ है। हिन्दी के वे पहले आचार्य हैं जिन्होंने पाश्चात्य और संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा से भी हिन्दी पाठकों को परिचित कराया है। आधुनिक नव-लेखन को भी उन्होंने काव्य-बिम्ब के अध्ययन के माध्यम से गम्भीरतापूर्वक समझने और समझाने की सफल चेष्टा की है। इतिहास की उन्होंने नए ढङ्ग से व्याख्याएँ की हैं तथा रीतिकालीन काव्य के गौरव को एक बृहत्तर आयाम में उद्घाटित किया है। निबन्ध और संस्मरण साहित्य को उन्होंने अत्यन्त रोचक अभिव्यंजना शिल्प दिया है, निश्चित रूप से डा० नगेन्द्र की साहित्य-साधना हिन्दी के लिए ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण निधि है। ऐसा कौन साहित्य प्रेमी व्यक्ति होगा, जिसे ऐसे मनीषी साधक पर गर्व का अनुभव न होगा?

—हिन्दी विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक उपन्यास : एक चुनौती

● डॉ० रणवीर रांग्रा

हिन्दी में तो वैसे ही ऐतिहासिक उपन्यासकारों की कमी है, पर जो हैं वे भी इतिहास और साहित्य में सन्तुलन नहीं बैठा पाए। श्री वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाओं में इतिहास और साहित्य परस्पर-विरोध की मूल, एक दूसरे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। 'गढ़कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' से लेकर 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' और 'अहिल्याबाई' तक वर्माजी ने हिन्दी-साहित्य को अनेक सफल उपन्यास दिये हैं जो इतिहास और कला दोनों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। वर्माजी में इतिहासकार की उत्कट जिज्ञासा ही नहीं, कलाकार की ममता भी है। ये दोनों गुण ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति उनके दृष्टिकोण में चार चाँद लगा देते हैं। "यदि लेखक ने व्यक्ति के भीतर भरे पुरुषार्थ और सत्सिद्धान्त पर बलिदान होने की शक्ति को जगा दिया तो इतिहास के प्रकाशमान तथ्यों की जैसी व्याख्या होनी चाहिए, वैसी व्याख्या हो गई।"

वर्माजी के उपन्यास पढ़ते समय बरबस उन्हें दाद देनी पड़ी तो विविध पक्षों पर अनेक जिज्ञासाएँ भी जगीं। उनसे दो बार भेंट हुई और वार्ता भी चली, पर उनके उपन्यासों पर जमकर चर्चा न हो सकी। अन्ततः पत्र का सहारा लेना पड़ा। इतिहास और उपन्यास के परस्पर विरोध का उल्लेख करते हुए मैंने पहला प्रश्न किया : "लेज़ली स्टीफन का कहना है कि ऐतिहासिक कथानक अच्छे उपन्यास के लिए घातक सिद्ध होता है, जबकि इतिहासकार पालग्रेव की धारणा है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास का शत्रु है। एक साथ दो नावों में सवार होने के कारण ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य और इतिहास दोनों में से किसी की भी कसौटी पर पूरा नहीं उतर पाता। इस जोखिम के बावजूद आपने एक नहीं अनेक सफल ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। कृपया बताएँ, आप कैसे इन दोनों में सन्तुलन बैठा लेते हैं?"

इतिहास और उपन्यास के विरोध की बात को झुठलाते हुए वर्माजी ने उत्तर दिया : "ये दोनों मत गलत हैं। यूरोप के ऐतिहासिक उपन्यासकारों के विवेचन पर आधारित जान पड़ते हैं। जहाँ तक मेरी बात है, ऐतिहासिक उपन्यास लिखने से पहले मैं सामग्री इकट्ठी करता हूँ। अध्ययन करके नोट्स लिखता हूँ। उपन्यास लिखते समय अदल-बदल की जरूरत अनुभव नहीं होती है। सामाजिक उपन्यासों के लिखने से पहले विषय और उद्देश्य को खूब सोचता हूँ। फिर बेखटके लिखता रहता हूँ। प्रभु की कृपा से सन्तुलन बना रहता है।

मेरा अगला प्रश्न था—आपने अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी-साहित्य को अनेक सुदृढ़ (पाज़िटिव) पात्र दिए हैं जीवन में आँधी-तूफानों में सदा हिमालय की तरह अडिग खड़े रहते हैं। फिर भी लगता है कि आपकी रचनाओं में जितना उनका बाह्य उजागर हुआ है उतना अभ्यन्तर नहीं। पात्रों का अभ्यन्तर इतिहास की पहुँच से चाहे परे हो, उपन्यासकार की पकड़ से बच सकता है? मेरे प्रश्न को काटते हुए वर्माजी ने कहा—"उपन्यासों में 'पाज़िटिव' पात्रों का अभ्यन्तर भी व्यक्त हुआ है। समालोचक उन्हें कई बार पढ़ने का कष्ट उठावें।"

वर्माजी के प्रारम्भिक और परवर्ती उपन्यासों की तुलना करते हुए मैंने पूछा—"कुछ लोगों को आपके परवर्ती उपन्यासों ('झाँसी की रानी', मृगनयनी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि) की अपेक्षा प्रारम्भिक उपन्यासों ('गढ़कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी' आदि) में अधिक रस मिलता है। आपके विचार से ऐसे पाठकों को किस विकास अवस्था में समझना चाहिए ?"

उत्तर में वर्माजी ने कहा—"मेरे परवर्ती उपन्यास इतने अच्छे नहीं लगते जितने पूर्व वाले, मुझ से कारण पूछा गया है। इसका उत्तर तुलसीदास की चौपाई में है—

जाके जिये भावना जैसी,
प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।

भावना मुख्य तत्व है और रूसी मनोविज्ञानी पावलोव के मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार 'कण्डीशन्ड रिफ्लेक्सेज'।

चर्चा को चरित्रचित्रण पर लाते हुए मैंने पूछा— "चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मुझे 'झाँसी की रानी' आपका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास लगता है। पर उसमें कथोपकथनों की भरमार के कारण पाठक को कई बार ऐसा लगता है कि जीवन में कम से कम बोलने और अधिकाधिक करने वाली झाँसी की रानी को इस उपन्यास में बोलने के अधिक और करने के कम अवसर मिले हैं। क्या इसका मूल कारण उपन्यास-कला की सीमा माना जाए ?" प्रश्न बेहद तीखा था प्रतिक्रिया भी वैसी ही हुई—"जी नहीं। अनेक विद्वानों के मत आपके मत के विरुद्ध हैं।"

ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति लेखकों के उपेक्षा-भाव की चर्चा करते हुए मैंने पूछा : "हिन्दी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना उत्तरोत्तर घट रही है। आपके विचार से इसका मुख्य कारण क्या है ?" वर्माजी ने उत्तर दिया : "ऐतिहासिक उपन्यास का लेखन बहुत परिश्रम माँगता है। गहरी रुचि चाहता है और भ्रमण में समय भी बहुत लगता है। इसके ऊपर सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की माँग।"

चर्चा को समेटते हुए मैंने पूछा : "हिन्दी के कई उपन्यास फिल्म बनाए गए हैं और कुछ फिल्म बनाए जा रहे हैं। आपके ऐतिहासिक उपन्यासों के भी सफल चलचित्र बन सकते हैं। क्या आपने इस दिशा में कभी नहीं सोचा ?

प्रश्न का स्वागत करते हुए वर्माजी ने कहा : "बराबर सोचा है और सोचता रहता हूँ। फिल्म-मनोविज्ञान का विद्यार्थी भी हूँ, परन्तु कोई ऐसा निर्माता भी तो मिले। तोड़ने-मरोड़ने-बिगाड़ने वाले निर्माताओं से नहीं पटी—जैसे सोहराब मोदी से, जिसने लक्ष्मीबाई पर फिल्म बनाया था। उनसे मेरा मतभेद हुआ। मैंने अपने उपन्यास के 'सत्यानास' करने की अनुमति नहीं दी। कोई अच्छा निर्माता, पूंजी वाला मिल जाए तो मैं अपना पूरा सहयोग देने के लिए तैयार हूँ। मैंने एक चार्ट भी बनाया है जिसके लगभग अनुसरण से सफल फिल्म बन सकती है। उससे पूंजी लगाने वाले को लाभ होगा एवं समाज-दर्शकों को प्रेरणा मिलेगी।

—बी–२१४ (ई), मोतीबाग, नई दिल्ली–२३

(पृष्ठ ३३८ का शेषांश)

के परिणाम से बचने का सर्वोत्तम उपाय प्रायश्चित (ईसाई धर्म के अनुसार) है।" इसके साथ ही साथ सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वर्माजी 'उपसंहार' में अपने मत को स्पष्टतः प्रकट कर देते हैं जबकि अनातोले शरत और जैनेन्द्र की भाँति स्वयं मौन रहते हैं और थाया के प्रभाव हेतु पाठकों को सोचने के लिए विवश कर देते हैं।

निष्कर्षस्वरूप कह सकते हैं कि चित्रलेखा के रचना-काल में निश्चय ही वर्माजी के सम्मुख 'थाया' उपन्यास रहा था किन्तु सभी दृष्टियों से अपनी मौलिकता का प्रयोग करके उन्होंने इसको 'थाया' से पर्याप्त मात्रा में भिन्न बनाकर प्रस्तुत किया है।

—६५१/७, नेहरू गली, गांधीनगर दिल्ली–३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा और थाया

• सुरेन्द्रचन्द्र निर्मल'

श्री भगवतीचरण वर्मा कृत चित्रलेखा हिन्दी भाषा का शायद प्रथम और एकमात्र उपन्यास है जिसमें 'पाप-पुण्य' की नैतिक और दार्शनिक समस्या को उपन्यास का मूल विषय बनाया गया है। परिणाम यह हुआ कि नवीन कथा-सामग्री के कारण इसने प्रकाशित होते ही हिन्दी-जगत को चौंका दिया। निश्चय ही इसी विषय पर इससे पूर्व अनातोले फ्रांस का उपन्यास 'थाया' प्रकाशित हो चुका था। इसी से प्रायः ही आलोचकगणों ने चित्रलेखा को 'थाया की प्रतिच्छाया' कहना शुरू कर दिया। स्वयं चित्रलेखा-कार को भी इसका पूर्वाभास था। इसी से सफाई के रूप में, उसने स्वयं इस बात को स्पष्ट किया कि ''मेरी 'चित्रलेखा' में और अनातोले फ्रांस की 'थाया' में उतना ही अन्तर है जितना मुझ में और अनातोले फ्रांस में।'' वास्तव में वर्माजी का यह कथन अनेक अंशों में महत्वपूर्ण है क्योंकि 'थाया की प्रतिच्छाया' के कथन को वाद-विवाद का विषय बनाने में इसकी विशेष भूमिका रही।

वास्तव में 'चित्रलेखा' और 'थाया' की पारस्परिक तुलना का कारण है—दोनों ही उपन्यासों में विषय-वस्तु, घटनाचक्र, पात्र, उद्देश्य और सन्देश आदि का मिलता-जुलता होना। 'चित्रलेला' का श्रीगणेश ही दार्शशिक और नैतिक 'पाप' से होता है। अपने दो शिष्यों—श्वेतांक और विशालदेव—द्वारा 'पाप क्या है' का प्रश्न पूँछे जाने पर गुरुदेव-महाप्रभु रत्नाम्बर—उनको पाप का परिचय कराने के लिए दो भिन्न और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले वातावरणों में छोड़ देते हैं। बीजगुप्त और कुमारगिरि क्रमशः इन्हीं 'भोग' और 'योग' वातावरणों के प्रतिनिधि हैं। नर्तकी चित्रलेखा, जो पहले बीजगुप्त की प्रेमिका थी, परिस्थितियों के चक्र में फँसकर योगी कुमारगिरि की ओर न केवल आकर्षित होती है वरन् उसको पथभ्रष्ट भी कर देती है। परिणामतः भोगी बीजगुप्त सन्यासी होकर अपना देवत्व (योगी रूप) प्रकट करता है और योगी कुमारगिरि वासना-पंक में फँसकर अपने मनुष्यत्व (भोगी रूप) को। निष्कर्ष, महाप्रभु रत्नाम्बर के शब्दों में यह है कि ''संसार में पाप कुछ भी नहीं है। × × जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है।''

'थाया' में भी, 'चित्रलेखा' की भाँति, योग और भोग का संघर्ष है जिसमें योगी में भोग-लिप्सा बढ़ती है और भोगी में योग की। चित्रलेखा की भाँति ही थाया भी परिस्थितिवश नर्तकी बनती है। 'पपनूशियश' नामक सन्त उसका उद्धार करना चाहता है। इसी से 'पैलिमान' के उपदेश, 'तिमोक्लिस' के विरोध और 'निशियस' के बारम्बार समझाने आदि की परवाह न कर वह नर्तकी थाया को दीक्षा देने के लिए जाता है किन्तु हृदय में बढ़ते वासना-भाव के कारण 'आत्म प्रवंचना' में फँस जाता है। श्रद्धाभाव से अतिरेक में 'थाया' उसके सम्मुख आत्म-समर्पण करती है और इस प्रकार योग पर भोग की विजय होती है। अन्त में 'प्रायश्चित' करके वे क्षमा प्राप्त करते हैं।

एतदर्थ दोनों ही उपन्यासों की मूलकथा अथवा मूल समस्या एक 'पाप' है। दोनों में योग और भोग का द्वन्द है जिसमें योग का पतन होता है और भोग का उत्थान। दोनों में वासना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष है जिसमें कुछ अलौकिक और दैवी घटनाएँ प्रमुख भाग लेती हैं। दोनों ही उपन्यासों मे योगियों के जीवन में नारी (चित्रलेखा और थाया) उथल-पुथल करती है और दोनों में ही अन्त में नायिकाओं का हृदय-परिवर्तन होता है।

'चित्रलेखा' और 'थाया' दोनों में योगियों—कुमारगिरि और पफ्नूशियस — का घटनाचक्र में महत्वपूर्ण स्थान है। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही महान हैं। दोनों ही वासना से संघर्ष करते और पराजित होते हैं। दोनों ही उपन्यासों में नायिकाएँ समाज और परिस्थिति की शिकार नर्तकियां हैं। चित्रलेखा बाल-विधवा है जो कृष्णादित्य से पतित होकर, उसकी कायरता के फलस्वरूप एक नर्तकी के यहाँ न केवल आश्रय लेती है वरन स्वयं भी नर्तकी बन जाती है। इसी प्रकार थाई पियक्कड़ और व्यभिचारी माँ-बाप के कुकर्मों से तंग आकर न केवल घर से भागती है वरन परिस्थितिवश अनेकों को आत्म-समर्पण कर के नर्तकी बनती है। इस प्रकार दोनों ही समाज और परिस्थिति की शिकार बनती हैं। दोनों ही नारियों के जीवन में अनेक पुरुष आते हैं। एक ओर चित्रलेखा का यौन-सम्बन्ध उसके पति कृष्णादित्य, बीजगुप्त और कुमारगिरि आदि से होता है तो थाया भी अनेकों को आत्म-समर्पण करती है। दोनों के जीवन में योगी आते हैं और उसकी विचारधारा को परिवर्तित करते हैं यद्यपि दोनों ही इसकी कीमत आत्मसमर्पण करके चुकाती हैं।

उद्देश्य और सन्देश की दृष्टि से भी दोनों उपन्यासों में पर्याप्त समानता मिलती है। 'पाप' समस्या पर आधारित होने के कारण दोनों की मूल समस्या नैतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसी से आसक्ति-अनासक्ति का विवेचन दोनों में ही मुखर हो उठा है। दोनों का उद्देश्य योग-भोग का संघर्ष दिखा कर योग की पराजय और भोग (वासना या कहना चाहिए परिस्थिति) की विजय दिखाना है।

पर्याप्त मात्रा में समानता होने पर भी 'चित्रलेखा' को 'थाया' की अनुकृति नहीं माना जा सकता। कारण ? अनेक समानताएँ होने पर भी इनमें कई असमानताएँ भी हैं ,जो कहीं-कहीं तो विरोध की सीमा को छूती प्रतीत होती हैं। सर्वप्रथम 'चित्रलेखा' की कथावस्तु ऐतिहासिक है (अथवा यों कहें कि अपनी मौलिकता से उपन्यासकार ने इसे ऐतिहासिक बना दिया है) जबकि 'थाया' की सम्पूर्ण कथा वर्तमानकालीन परिवेश में विकसित होती है। दूसरे, चित्रलेखा की कथा प्राचीन सामाजिक है जबकि 'थाया' की कथा दार्शनिक है। अभौतिक घटनाओं स्वप्न और उनके विश्लेषण आदि से 'थाया' पूर्णतया दर्शनपरक रचना बन गई है। तीसरे, 'चित्रलेखा' में योगी और भोगी अपने-अपने क्षेत्रों में रहकर ही पाप-पुण्य का विवेचन करते हैं। जबकि थाया में योगी की भोगलिप्सा का क्रमिक विकास दिखाकर योगी को ही भोगी बनाया गया है। इस प्रकार चित्रलेखा में सिद्धान्त विवेचन अधिक है और थाया में मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता है। चौथे, चित्रलेखा की कथा अधिक संकुल है। इसमें विस्तृत वातावरण में लगभग आधे दर्जन पात्रों के माध्यम से कथाविस्तार किया गया है जबकि 'थाया' की कथा सीधी और बहुत कम पात्रों में सीमित है। 'चित्रलेखा' में चित्रलेखा और कुमारगिरि के अतिरिक्त बीजगुप्त, श्वेतांक और यशोधरा आदि अन्य पात्रों की स्वतन्त्र कथाएँ भी हैं जबकि 'थाया' में थाया और पफ्नूशियस की ही एकमात्र कथा है। यही बात है निष्कर्ष के सम्बन्ध में विशालदेव और रत्नाम्बर के निष्कर्षों से लगता है कि कुमारगिरि के पतन का उत्तरदायी वह स्वयं नहीं वरन् परिस्थितियाँ हैं। "जाओ नर्तकी, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं। × × × तुमने मुझे पराजित किया मैंने भी तुम्हें पराजित किया। × × × जाओ, अपने साथ अपना अभिशाप लेती जाओ" कहकर योगी मानो पुनः योगी बन जाता है जबकि थायाकार पफ्नूशियस पाप को पाप के स्तर से नहीं हटाता और वही मानता है कि वास्तव में उसने पाप किया है।

'चित्रलेखा' में कुमारगिरि यद्यपि महत्वपूर्ण पात्र है किन्तु फिर भी नायक पद का अधिकारी बीज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त है जबकि 'थाया' का नायक निस्सन्देह पफ्नूशियस है। दूसरे, योगी होने पर भी कुमारगिरि और पफ्नूशियस की चारित्रिक विशेषताओं में पर्याप्त अन्तर है। "कुमारगिरि का दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पाली है। संयम और नियम पर उसे विश्वास है और इच्छाएँ उसके वश में हैं" जबकि पफ्नूशियस "कभी-कभी मृगीय वासनाओं से व्यथित होकर चिल्लाते भी हैं परन्तु क्रूस की अधीनता में रहने के कारण उस वासना के प्रलोभन में नहीं आते।" तीसरे, कुमारगिरि में अहंभाव और दर्प की मात्रा अधिक है आत्मिविश्वास और आत्म-संयम कम। इसीसे वह क्रोधादि से भी पड़ित होते हैं जबकि सन्त पफ्नूशियस में दर्प और अहंकार कम है और आत्मविश्वास अधिक। यही कारण है कि कुमारगिरि नारी को 'वासना और अन्धकार की मूर्ति' मान उसकी छाया से भी दूर भागते हैं, उसे 'भटके पथिक' के रूप में भी आश्रय देने में हिचकिचाते हैं जबकि पफ्नूशियस मित्रों की सलाहों और विरोधों को ठुकराकर स्वयं ही थाया को दीक्षा देने जाते हैं। इसी प्रकार का चात्रित्रिक विरोध चित्रलेखा और थाया में भी है। चित्रलेखा वाचाल, तार्किक और विदुषी है और इसी से अपनी मान्यताओं पर (चाहे वे परस्पर विरोधी और काव्य हों) अटल रहती है जबकि थाया निष्क्रिय, तटस्थ और विवशा है, परिणामस्वरूप न चाहते हुए भी आत्मसमर्पण तक कर देती है। यद्यपि समाज से दोनों ही प्रताड़ित हैं किन्तु चित्रलेखा प्रतिशोध लेना भी जानती है जबकि थाया ने केवल सहन करना ही सीखा है। इस दृष्टि से थाया चित्रलेखा की तुलना में शरत की कमला और पारो के अधिक समीपी प्रेरणा से परिचालित होती है। कृष्णादित्य और बीजगुप्त से बनाये गये प्रेम-प्रसंग और कुमारगिरि से किये गये उसके तर्क-वितर्क इसी कथन के साक्षी हैं। वासना के प्रभाववश वह यदि कुमारगिरि को आत्मसर्पण कर सकती है तो उसे धिक्कार भी सकती है। वह प्रेम में अटल विश्वास रखती है जबकि थाया में इन सब बातों का अभाव है। उसका आत्मसर्पण भी प्रेम या वासना का प्रतिफल नहीं वरन् अन्धश्रद्धा, विवशता अथवा कायरता का परिणाम है। वह हर क्षेत्र में, हर घटना में, हर प्रसंग में तटस्थ और निष्क्रिय रहती है। इस प्रकार थाया चित्रलेखा की तुलना में कहीं अधिक भोली, निश्छल, विश्वासपरायण और तटस्थ है। चित्रलेखा वाले तर्क-वितर्क, आकर्षण और विश्वास-अटलता का उसमें पूर्णतया अभाव है। यही कारण है कि थाया एक बार (पफ्नूशियस द्वारा) इंगित किये जाने पर ही अपना पापमय जीवन छोड़ देती है जब कि चित्रलेखा 'जीवन का अन्त क्या होगा' के प्रश्न को सुन सिहर तो जाती है किन्तु फिर अपने आपको मदिरा में डुबो देती है। वह प्रेम की उपासिका है बिना अपनी आन्तरिक प्रेरणा के वह प्रेम भी नहीं करती, थाया की भाँति आत्मसमर्पण तो असम्भव है। उसका प्रेम पति से 'सेवा-भाव' का, कृष्णादित्य से 'पिपासा' का, बीजगुप्त से 'मादकता' का और कुमारगिरि से 'आन्तरिक शक्ति के आकर्षण' का है जबकि थाया आजीवन किसी से भी प्रेम नहीं करती, केवल विवश-भाव से आत्मसमर्पण करती रहती है।

जहाँ तक प्रश्न है उपन्यास के उद्देश्य और सन्देश का, यहाँ हम देखते हैं कि मूलविषय (पाप) एक होने पर भी उसको हल करने या देखने के दृष्टिकोण पूर्णतः अलग-अलग हैं। 'चित्रलेखा' में वर्माजी ने अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण लिया है जबकि थायाकार ने आदर्शवादी। दूसरे, वर्माजी अनासक्ति या तटस्थ रूप को (बीजगुप्त का त्याग) लाभप्रद मानते है जबकि अनातोले के विचार ईसाई-धर्म के सिद्धान्तों (पफ्नूशियस का क्रूस की आधीनता स्वीकार करना) को कल्याणकारी मानते हैं। वर्माजी मानते हैं कि जीवन में परिस्थिति सबल है और मानव विवश, इसलिए संसार में पाप और पुण्य जैसी कोई चीज नहीं जबकि अनातोले का विश्वास है कि 'पाप सर्वत्र है किन्तु घृणा पाप से करो, पापी से नहीं। × × पाप

(शेष पृष्ठ ३३५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रेणु' की कथात्मक परिकल्पना

• प्रेमप्रकाश भाटिया

कल्पना-प्रधान साहित्य को हम दो वर्गों में रख सकते हैं—(१) जिसमें प्रस्तुत का ही आश्रय लिया जाता है। (२) जिसमें अप्रस्तुत का आश्रय लिया जाता है। पहले वर्ग के दो उपभेद होते हैं—(क) रूप प्रधान, (ख) क्रिया या घटना-प्रधान। इस प्रकार कल्पना प्रधान साहित्य के तीन प्रमुख भेद किये जा सकते हैं—उसमें प्रमुख रूप से तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं—

१—बिम्बात्मकता की प्रवृत्ति

२—अत्युक्ति या अस्वाभाविकता की प्रवृत्ति

३—अप्रस्तुत पक्ष (अलंकारादि) की प्रधानता

शुक्लजी ने कहा है : 'मानसिक रूप-विधान का नाम ही संभावना या कल्पना है।'[1] इस प्रकार, कथाकार की भाषा-शैली को रुचिर व्यक्तित्व प्रदान करने वाली कल्पना प्रमुख निर्माणिका-शक्ति है।

'रेणु' ने भारतीय-जीवन की समग्र-चेतना को अपने कथा-साहित्य के माध्यम से मूर्त्त करने का प्रयत्न किया है। उनकी कल्पना, प्रतीक-बिम्बों में ग्राह्य-जीवन की सौंधयाई गमक है। नगरीय-सभ्यता से स्पर्शित ग्राह्य-चेतना को वह एक रस सिद्ध पुरुष की भाँति अपने कथा-व्यक्तित्व में समोये हैं! 'मैला आँचल' की समीक्षा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है : 'अशिक्षा के वातावरण मे जनतन्त्रात्मक-पद्धतियों का शिक्षण इन सबको मिलाकर हमारे आधुनिक जीवन के रेशों का अत्यन्त संवेदनशील अध्ययन 'मैला आँचल' में मिलता है। उसका शिल्प भी नए विकासों के अनुकूल है। 'रेणु' का यह उपन्यास नायक-विहीन है। समस्त जन-जीवन ही सामूहिक रूप से उपन्यास का नायक है। इस लोक-संपृक्ति की दृष्टि से यह कृति एक बदलते हुए समाज का संपूर्ण अनुभावन है। इसीलिये ऊपर से प्रायः असंबद्ध चरित्रों की कथा होते हुए भी 'मैला आँचल' अपने आप में एक समग्र अनुभूति है।'[1]

इस 'गंध-स्वर-जीवी हिन्दू'[2] के कथा-साहित्य में प्रकृति और ऐन्द्रिय-चेतना का परिष्कार भावों के माध्यम से संवेदना का एक नव-अर्थ-सत्ता प्रदान करता है—'हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बड़े सेठ की तरह नक-बन्धन लगाये बिना बधाइन-गंध बर्दाश्त नहीं कर सकता कोई।'[3]

प्राकृतिक उपमानों को ग्राम्य-चेतना और वातावरण का आवश्यक अङ्ग बनाकर एक नवीन अर्थ प्रदान करने का सामर्थ्य रेणु की कल्पना को ही है—'टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आस-पास।...डबडबाई आँखों से हर रोशनी सूरज-मुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।'[4]—'सूरज-मुखी' एक रूढ़ उपमान होते हुए भी संवेदना को स्खलित नहीं करता, वरन् मार्मिक प्रभाव देता है। निम्न उदाहरणों में उपमान संवेदना को भाव के नवीन स्तरों पर स्थापित करने में अत्यन्त सफल हुए हैं—

(१) 'हिरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा

[1] रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि' (प्र० भा०) पृ. २६७

[1] रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'हिन्दी नव लेखन' पृ. ११५

[2] वही ,, ११५

[3] रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ'—सं. राजेन्द्र यादव—कहानी 'तीसरी कसम'—पृ. १२३

[4] वही ,, पृ. १४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा । कुरते के अन्दर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने····। चिड़िया की देह की तरह गरम है थैली।[५]

(२) 'कण्ठी बाहरी चीज़ नहीं है बलदेव जी ! भेख है यह । आप विचार कर देखिये तो, जैसे यह आप का खद्दड़ है ।[६]

'रेणु' समय-स्थिति और वातावरण की गंध-गमक को बड़े नजदीक से महसूस कर लिखते हैं । रूपक-निर्माण में उपमान आरोपित, किसी दूसरे स्थान-धरती से आयातित नहीं होते, वरन् वे उसी स्थान की उसी धरती की मिट्टी-पानी से पाल-पोस कर, सम्मिलित कर पूर्ण-रूप देते हैं, एक भव्य-रूप, जिसकी स्मृति तन-मन को बाँधकर मन को भुला दे, भरमा ले ! निम्न रूपक में लोक-चेतना को अभिव्यक्त करने में प्रकृति चित्र कितनी कोमलता और सूक्ष्म-संवेदना भरते हैं मन में—

'मैला-आँचल !'···लेकिन धरती माता अभी स्वर्णाचला है !···गेहूँ की सुनहली बालियों से भरे हुये खेतों में पुरवैया हवा लहरें पैदा करती हैं । सारे गाँव के लोग खेतों में हैं, मानो सोने की नदी में कमर-भर सुनहले पानी में सारे गाँव के लोग क्रीड़ा कर रहे हैं, सुनहली लहरें ·· !'[१]

बिम्बों के निर्माण में 'रेणु' की ऐन्द्रिय-संवेदना चेतना के कोमल सूक्ष्म स्तरों द्वारा रूपाकार हो अत्यन्त मार्मिक-प्रभाव उद्घाटित करती चलती है ! अन्तर के तारों को झनझना जाने वाली एक मन्द-कोमल स्वर लहरी धीरे-धीरे सूक्ष्म से सूक्ष्म तर होते-होते चेतना की गुहाओं में खो जाती है, उसी में समा जाती । उदाहरण के लिये—

(१) 'जा रे जमाना !'····हीरामन ने 'जा रे जमाना' कह कर बात को चाशनी में डाल दिया !'[२]

(२) 'अनदेखी औरत की आवाज ने हीरामन को अचरज में डाल दिया ! बच्चों की बोली जैसी महीन फेनू गिलासी (फोनो ग्राफ जैसी !) हँसी ! (श्राव्य-बिम्ब)[३]

(३) 'गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गया । सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा ![४]

सह-संवेदनात्मक संश्लिष्ट-बिम्बों (इम्पैथिक इमेजेज) के निर्माण में 'रेणु' की कल्पना जैसे एक तीर से दो शिकार करती है । निम्न बिम्ब में स्पार्शिक और घ्राणिक-बिम्बों का सह-संयोजन कथाकार की मार्मिक अनुभूति के कारण ही इतना संवेदित और सरस हो उठा है—'नदी के किनारे घने खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया-गंध आती है !'[६]

आद्य-बिम्बों के निर्माण में कथाकार को अत्यन्त सजग कल्पना से कार्य लेना पड़ता है । उस समय उसके कंधों पर दोहरा भार झुक आता है । एक तो वह बिम्ब सामयिक युग-चेतना को भी पूर्ण अर्थ देता चले, और साथ ही साथ अपने युग के काल बोध को भी मुखरित करे ; तभी वर्णन संयुक्त सुलझा हुआ व्यापक अर्थ देगा । नहीं तो, वह एक अस्पष्ट अर्थ की अनुगूँज उत्पन्न कर व्यर्थ का शोर होकर बिखर जायेगा, मन की संवेदना अतृप्त—प्यासी रह जायगी, सार्थकता व्यर्थ हो जायेगी । निम्न उदाहरण में 'हनुमान' पौराणिक-पात्र है, पर उसका समस्त वर्णन में स्थिति दो युगों की, दो संवेदनाओं की स्थिति नहीं हो गई ? कथा-वर्णन में देखे—

कहते हैं, जब ४२ के 'मोमेंट' में लोग कचहरी पर झण्डा फहराने जा रहे थे, तो मलेटरी ने घेर लिया था । बौनादास एक मलेटरी के फैले हुये पैर के बीच से उस पार चला गया और कचहरी के हाता में झण्डा फहरा दिया । ·· रमैन में हलुमान ने सुरसा को मसक रूप धरकर जिस तरह छकाया था, उसी तरह··· ।[१]

उपर्युक्त वर्णन में बावनदास एक कथा-पात्र है, वह

[५] 'मैला आँचल'—पृ. १५६ (संस्करण १९५३)
[६] वही पृ. ५४
[१] 'मैला आँचल' पृ. १७८
[२] वही १२६
[३] वही १२४
[६] वही १२६
[१] 'मैला आँचल' पृ० १५१ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक झूठ भी हो सकता है, लेकिन 'हलुमान' की तरह कार्य करके, उससे संयुक्त कर कथाकार उसे भी उसी अमर-चेतना का अंश बना देता है जो युग बीत जाने पर भी नहीं बिछलती, स्मृति के पास लौट-लौट आती है।

परोक्ष-भावों को मूर्त्त रूप प्रदान करना समानुभूतिक-बिम्बों के निर्माण द्वारा ही सम्भव है। 'रेणु' के कथा-साहित्य में ऐसे बिम्बों का अभाव नहीं है—

(i) हो-हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज कपट-घर को भाड़ रही थी है—आओ, एक-एक की गर्दन उतार लेंगे।[1]

(ii) चैत का सूरज पश्चिम की ओर निष्प्राण-सा, पूर्णिमा के उगते हुए चाँद सा मालूम हो रहा है। दिन भर धू-धू कर चलने वाली पछिया हवा गिर गयी है।[2]

उक्त बिम्बों में लगता है, पूर्ण मानवीकरण हुआ नहीं, मात्र उसका आरोप भर ही है। मानव के क्रिया रूपों के सम्पूर्ण स्वरूप की अभिव्यक्ति से ही सशक्त समानुभूतिक बिम्ब का निर्माण होता है। जो बिम्ब केवल भावना ही दें, मानव क्रिया-रूप की पूर्ण अभिव्यक्ति न करें, उन्हें हम दुर्बल या असमर्थ समानुभूतिक बिम्ब की ही संज्ञा दे सकते हैं।

प्रतीक या निर्माण, और फिर जीवितनव-प्रतीकों का निर्माण, युग-संवेदना से संयुक्त कर उनका सार्थक प्रयोग कलाकार-धर्म की सबसे कठिन परीक्षा है। 'रेणु' इस परीक्षा में बिल्कुल खरे उतरे हैं। जीवित सप्राण प्रतीक की सार्थकता इसी में है कि वे युग की मर्म-व्यथा को, व्यक्ति-व्यक्ति के मर्म को अपने में समो लें। उसका एक ही उपाय है, वे व्यंग्य दें। ऐसा मरहम हो जायें कि दो पल की पीड़ा; फिर एक शीतल शान्ति का उच्छ्वास। सचमुच, तभी वे सार्थक प्रतीक बनते हैं।···बलदेव एक साधारण सा, ग्रामीण सीधा-सादा, लेकिन उसकी तुलना 'जमाहिरलाल' से करना व्यंग्य नहीं तो और क्या है? लेकिन सचमुच वह ऐसा ही हैं, 'जमाहिरलाल', क्योंकि जन-साधारण के हृदयों में उसका मान-सम्मान भी किसी माने में जवाहरलाल से कम नहीं है! प्रतीक तब सफल है, सम्पूर्ण है! 'रेणु' ने ऐसे एक नहीं, दर्जनों प्रतीकों को मार्मिक अभिव्यञ्जना दी है, युगीन संवेदना का विस्तार कर प्रतीकों को ताजगी दी है! एक उदाहरण लें—

"आप तो लीडर ही हो गये तो आजकल कांग्रेस आफिस का 'चौका-वर्तन' कौन करता ?······अरे भाई, सभी काशी चले जाओगे? पत्तल चाटने के लिए भी तो कुछ लोग रह जाओ।····· जेल क्या गये, पण्डित जमाहिरलाल हो गये! कांग्रेस आफिस में मोलंटियरी करते थे, अब अन्धों में काना बन कर यहाँ लीडरी छाँटने आया है।······स्वयंसेवक न घोड़ा की दुम!"[1]

निम्न प्रतीक में 'ब्रिटेन-साम्राज्य के नक्शे' को कितनी मार्मिक प्रतीक-अभिव्यञ्जना दी हैं—

"मच्छड़ों की तस्वीरें, इससे बचने के उपायों को पोस्टरों पर चित्रित करके अथवा मैजिक लालटेन से तस्वीरें दिखाकर मलेरिया की विभीषिका को रोकने वाले किस देश के लोग हैं ये?·······यहाँ तो उन मच्छड़ों की तस्वीरें ही लोग कहते हैं।—पुरैनियाँ जिले को लोग मच्छड़ के लिए बेकार बदनाम करते हैं। देखिये, पच्छिम का मच्छड़ कितना बड़ा है, एक हाथ लम्बा देह, चार हाथ सूँड़! बापरे!"[2]

प्राकृतिक-प्रतीकों में भी 'रेणु' प्रकृति के माध्यम से व्यंग्य करने से नहीं चूकते—'पानी का पंपू आवेगा, इन्दर भगवान की खुशामद की जरूरत नहीं।···· कमला नदी में 'पंपू' लगा दिया, 'मिसिन इसटाट' कर दिया और 'हथिया सूँड़ को तरह सब पानी सोख कर खेत पाट देगा!'[3]

निम्न कथा-वर्णन में 'ठूंठ' और 'कोंपल' प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से कोमल-कमनीय प्रतीकार्थ

[1] वही, पृ० १५२।
[2] वही, पृ० १८६।

[1] 'मैला आँचल', पृ० १६
[2] ,, पृ० २२६
[3] ,, पृ० ३६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सरल अभिव्यक्ति सम्पूर्ण वर्णन को एक सार्थक अभिव्यक्ति बना देता है—'बावन भी पकड़ा गया। पुलिस ने एकाध डण्डा लगा कर उसे भगा देना चाहा, पर पहले ही डण्डे की चोट को आभा रानी ने झपट कर अपने शरीर पर ले लिया तो पुलिस की भी पाँव के नीचे की मिट्टी खिसक गयी थी ··· खून से लथपथ खादी की सफेद साड़ी पत्थर को भी पिघला देने वाली करुणा से भरी बोली—'आभार भगवान !' ···· बावन के पूर्व-जन्म के सारे पाप मानों अचानक ही पुण्य में बदल गये। सूखे ठूंठ में नई कोपल लग गईं।[1]

पौराणिक—प्रतीको का प्रयोग कथा-वर्णनों में कहीं कहीं हुआ है, पर अधिकांश स्थलों पर वे रूढ़ मिथ बन कर रह गये हैं, व्यापक संवेदना का विस्तार नहीं देते। इस अन्तर को हम निम्न दो उदाहरणों द्वारा समझ सकते हैं—

१. 'तुम भी तो बलदेव पूरे बम भोला नाथ' हो ! उससे पूछा नहीं कि, हस्पताल से सिर्फ मालिक लोगों की भलाई होगी क्या ?

२. 'चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुन कर पलटदास का कलेजा काँपने लगा, न जाने क्यों ? हाँ, राम-लीला में सिया-सुकुमारी इसी तरह से थकी लेटी हुई थीं। जै ! सियावर रामचन्द्र की जै !···· पलटदास के मन में जै-जैकार होने लगा। वह दास-बैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने, हाथ की उंगलियों के इसारे से ! ···· हीरा बाई तमक कर बैठ गई—'अरे, पागल है क्या ? जाओ, भागो।[2]

प्रस्तुत दो प्रतीक-उद्धरणों में प्रथम में 'बमभोला नाथ' और द्वितीय में 'सीता'—दोनों पौराणिक-प्रतीक हैं। पर, पहले के संयोग से सम्बन्धित पात्र के भाव-चरित्र, मनःस्थितियों आदि पर, पहले कोई प्रकाश नहीं पड़ता, वह हमारे हृदय की संवेदना से घुलता-मिलता नहीं, लेकिन दूसरा प्रतीक और उसके साथ जुड़ा वर्णन सम्बन्धित चरित्र को एक सजीव पात्र के रूप में प्रस्तुत करता है, उसके बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व की समस्त विशेषताओं को मूर्त कर देता है, और इस प्रकार इस 'वर्णन' में 'हीराबाई' भी स्वयं एक प्रतीक का रूप धारण कर गई है, हमारी संवेदना—भीतरी संचेतना का अभिन्न अङ्ग हो अनुभूति में रच-बस गई है, पौराणिक इतिहास हो गई है, जो भूलता नहीं, मिटता नहीं, स्मृति पट से फिसलता नहीं। इस प्रकार के प्रतीक ही कला को कल्पना से संयुक्त करके भी भावना को उद्दीप्त करके विश्वास के घेरे में उसे सजीव व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

'रेणु' साहित्य और जीवन को खण्ड-खण्ड कर भावनाओं को विभाजित कर नहीं चलते। मर्म उनका कोमल है, लोक-चेतना सजग, केन्द्रिय-संवेदना अभिभूत। इन तीनों भावों से संयुक्त उनकी कल्पना साहित्य को तीव्र अनुभूति प्रदान करती है, एक जागरूक, समर्थ व्यक्तित्व से सम्पन्न करती है।

—बँगला नं० ४९४, वैस्ट रोड, अजमेर (राज०)

[1] वही १६६,

[2] 'रेणु' की श्रेष्ठ कहानियाँ'—(राजेन्द्र यादव) 'तीसरी कसम'—पृष्ठ ३१।

ग्राहकों से—

साहित्य-सन्देश के सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक महानुभाव अपनी ग्राहक संख्या लिख देंगे तो उनकी आज्ञा का पालन तुरन्त हो सकेगा। अन्यथा ग्राहक-संख्या खोज कर सकना और आज्ञा का पालन करना सहज सम्भव नहीं है।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक

• कन्हैयालाल

हिन्दी के मूर्द्धन्य नाटककारों में मिश्रजी अग्रगण्य हैं।'प्रसाद' के काव्यात्मक, विचारोत्तेजक एवं इतिहास के धुँधले पृष्ठों को प्रकाशित करने वाले उन नाटकों के युग में जो रंगमंचीय दृष्टि से असफल तथा समाज की ज्वलंत समस्याओं से अछूते थे, मिश्रजी अपने समस्या नाटकों को लेकर हिन्दी नाटक के क्षितिज पर प्रगट हुए। उन्होंने परम्पराओं की रूढ़ियों का खण्डन किया और पाप, पुण्य, धर्म, नीति, मर्यादा की आड़ में छिपी हुई नारी की चिरन्तन काम-वासना की समस्या को भिन्न-भिन्न रूपों में अपने नाटकों में उद्घाटित किया। उन्होंने समाज के इन ज्वलन्त चित्रों को प्रस्तुत करना अपना धर्म समझा और यहाँ तक कहा कि 'इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ने से काम न चलेगा।' उन्हें बुद्धिवादी नाटककार माना गया और उनके नाटकों पर बर्नार्डशॉ, इब्सन, डी. एल. रॉय आदि के नाटकों का प्रभाव बताया गया। समस्या प्रधान सामाजिक नाटकों के प्रणेता पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का श्री गणेश 'अशोक' नामक ऐतिहासिक नाटक से हुआ और 'सन्यासी', 'राजयोग', 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिन्दूर की होली' तथा 'आधीरात' नामक छः समस्या नाटकों को लिखने के उपरान्त वे पुनः ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की रचना में लग गए। अप्रतिहत गति से उन्होंने 'नारद की वीणा', 'चक्रव्यूह', 'कवि भारतेन्दु', 'गरुड़ध्वज', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध', 'वितस्ता की लहरें', 'वैशाली में वसंत', 'मृत्युञ्जय', 'जगद्गुरु', 'अपराजित', 'धरती का हृदय' आदि पूर्ण नाटकों तथा 'प्रलय के पङ्ख', अशोक बन' 'कावेरी में कमल', 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी 'नारी का रंग', 'स्वर्ग में विप्लव' आदि एकाङ्की-संग्रहों को प्रस्तुत किया है, जो सभी ऐतिहासिक-पौराणिक कथानकों पर आधृत हैं।

समस्या नाटकों का पटाक्षेप १९३५ ई० में होकर नवीन नाटकों की रचना क्यों हुई, यह एक विचारणीय बिषय है और इसके साथ ही कई अन्य प्रश्न भी मिश्रजी के कृतित्व एवं कथ्यों से सम्बन्धित उलझे हुए हैं। मिश्रीजी भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के शाश्वत आदर्शों में आस्था रखने वाले साहित्यकार हैं। उनका यही आदर्श तब भी था जब वे समस्या नाटक लिख रहे थे और वही अब भी है। भारतीय समाज को अपने पवित्र प्राचीन आदर्शों की संजीवनी पिलाकर वे अङ्गद के पाँवों पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, इसी की पूर्ति के लिए उन्होंने समाज की बुराइयों को खुली आँखों से देखा और उसका यथावत चित्र अङ्कित किया। ऐसे नाटकों की रचना का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में 'राक्षस का मन्दिर' की भूमिका में देखिए—''पर मुझे तो अपनी निर्बल वाणी में कहना है—"ठहरो! ठहरो! गलत रास्ते पर जा रहे हो, ठहरो! हजारों वर्ष पहले उपनिषद् काल में मनुष्य जाति ने जो अनुभव किया था, वह सन्देश तो सुनते जाओ।'' उपनिषद् जीवन के सारतत्व और विकास की सीमा है। जीवन की लीला, मानसिक तृप्ति, शान्ति की व्यापकता, वेगशाली और अनन्तगति यही जीवन के सन्निहित तत्व हैं; यही चिरन्तन विभूतियाँ हैं। लेकिन यह तब तक नहीं हो सकता जबतक हम जिन्दगी को सब ओर से, बाहर और भीतर से, प्रवृत्तियों के चढ़ाव और उतार को, होनी और अनहोनी की रंगशाला को देख न लें, समझ न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लें जिन्दगी की भलाई और बुराई को····सारी जिन्दगी को लेकर सुमेरु पर न पहुँच जायँ।"

यह सब कुछ आधे दर्जन सामाजिक समस्या नाटकों में दिखा लेने के उपरान्त यह आवश्यक ही था कि वे उपनिषद् के ज्ञानामृत से सिञ्चित प्राचीन आर्यों के आर्य जीवन के आदर्शों को अपने नाटकों में प्रकट करते जिससे अनुप्राणित होकर यह समाज अपनी दिशा निर्धारित कर सके। मिश्रजी का लक्ष्य, उनकी मान्यताएँ और उनकी स्थापनाएँ उनके प्रौढ़ साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही बड़ी स्थिर एवं दृढ़ हैं। उनकी ही सिद्धि के लिए कभी सामाजिक और कभी ऐतिहासिक नाटक लिखे गये। पूर्व युग में उन्होंने सामाजिक नाटकों को आवश्यक समझा था और 'प्रसाद' के ऐतिहासिक नाटकों को गड़ा मुर्दा उखाड़ना कहा था, पर साहित्यकार की भावभूमि बदलती रहती है और परवर्ती युग में उन्होंने ऐसे नाटकों की रचना की आवश्यकता और उपयोगिता को समझा, पर उनका लक्ष्य एक ही रहा।

इसी प्रसङ्ग में इस बात का भी विचार कर लेना आवश्यक है कि मिश्रजी बुद्धिवादी होते हुए भी परम्परावादी कैसे हैं? स्व० आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी को मिश्रजी के नाटकों में यह विरोधाभास दीख पड़ता था। वास्तव में मिश्रजी परम्परावादी हैं पर रूढ़िवादी नहीं। समाज की बुराइयों के विश्लेषण में बुद्धिवादी हैं पर उसके लिए आदर्श प्रतिष्ठित करने में परम्परावादी हैं। परम्परा भी बुद्धिसङ्गत होती है।

ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन का एक कारण और था। 'वैशाली में बसन्त' की भूमिका में मिश्रजी ने संकेत किया है कि प्रसादजी के नाटकों में अनेक सांस्कृतिक विकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जैसे भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग के परम भट्टारक और महाबलाधिकृत तक आत्महत्या कर सकते हैं तथा अल्पप्राणा किशोरियां छुरी की नोंक पर पर्वतेश्वर जैसे वीर का प्राण-विसर्जन करके, अपना प्रेम अपने प्रियतम के मुख पर झोंक देती हैं। ऐसी विकृतियों का परिहार करके भारत के सच्चे स्वर्णिम अतीत के इतिहास रस को सुरक्षित करना भी उनका उद्देश्य था।

'प्रसाद' बौद्धदर्शन से प्रभावित थे और उनके 'अजातशत्रु' आदि कुछ नाटकों पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। मिश्रजी भगवान बुद्ध को सनातन हिन्दू धर्म के एक सुधारक के रूप में ही स्वीकार करते हैं, और उनका मत है कि बौद्धधर्म का सर्वश्रमण मत भारत के ओज, वीर्य और पौरुष के ह्रास का कारण बना था। बौद्धों ने आगे चलकर अपने धर्म-प्रचार एवं वर्चस्व स्थापन के लिए कुछ विदेशी जातियों को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित भी किया था। इस नाते उन्होंने अपने नाटकों में श्रुतियों से चले आते हुए प्रवहमान हिन्दू धर्म की ध्वजा को फहराने का प्रयत्न किया। 'नारद की वीणा', 'चक्रव्यूह', 'अपराजित' आदि इसी उद्देश्य से पौराणिक युग के हिन्दू आदर्शों को प्रतिष्ठित करते हैं। हिन्दू धर्म की जड़ सदैव से भारत भूमि में देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता पर निर्भर थी। अतः पोरस की सुप्रसिद्ध वीरता 'वितस्ता की लहरें', वत्सराज उदयन का धर्मप्रेरित राष्ट्रीय व्यक्तित्व 'वत्सराज', गुप्त वंश का कीर्तियुक्त उज्ज्वल हिन्दू आदर्श 'गरुड़ध्वज', आचार्य सोमगुप्त चाणक्य की राष्ट्रीय जीवन-दृष्टि 'धरती का हृदय' तथा भारत के समस्त मतमतान्तरों को अभेद वेदान्त दर्शन में पिरो कर दिग्विजय करने वाले शङ्कराचार्य के कृतित्व 'जगद्गुरु' नाटक की रचना के कारण बने।

'जगद्गुरु' नाटक के कथानक में मिश्रजी की बौद्ध-धर्म विषयक मान्यताएँ उभड़कर आई हैं। शङ्कराचार्य कहते है—"सौगतों ने सन्यास को विनोद बनाया, क्रीड़ा बनाया, केलि बनाया। भारत भूमि का पौरुष सो गया और विदेशी, विधर्मी इस भूमि का भाव-हरण कर ले गए।" बौद्धों के समाज विरोधी कार्यों के सम्बन्ध में उनका कथन है—"हमारी देवमूर्तियों के विध्वंसक सौगत हमारे भीतर हैं। शाक्यकुल पुत्र गौतम की मूर्ति वह बनाते जा रहे हैं। पर विष्णु, शिव और भवानी की मूर्तियों के विध्वंस के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम में यवनों को और उत्तर में पीले चीनी ध्वंसकों को निमन्त्रित कर रहे हैं। दस-बीस हाथ ऊँची और उसी अनुपात में चौड़ी बुद्ध की मूर्ति इनकी भूमि और इनके प्राण का भार नहीं बनती, पर हमारी दस अंगुल की देव मूर्ति के भार से इनकी धरती धँसने लगती है।''

मिश्रजी को एक नाटककार ही नहीं समझना चाहिए प्रत्युत वे एक उच्चकोटि के राष्ट्रीय विचारक एवं प्रबुद्ध चिन्तक हैं तथा उनके नाटक हमारे साहित्य की चिन्तन-मणि हैं। वे अपने नाटकों से भारतराष्ट्र को एक जीवन दृष्टि देना चाहते हैं और वह है भारत के सनातन, शाश्वत हिन्दू धर्म की दृष्टि। यह चिन्तन उनके प्रारम्भ से अब तक के नाटकों में सुश्रृङ्खलित रूप में देखा जा सकता है। 'सन्यासी' की भूमिका में उन्होंने लिखा था—''स्वतन्त्रता की ओर हम तेजी से बढ़ते जा रहे हैं, हमारा देश उस भँवर को पार कर रहा है······जिसके बाद ही स्वतन्त्र राष्ट्र की जन्म भूमि है। आज दिन जो शासन और राजनीति की मशीन है, उसे बदल कर हम ऐसी स्थिति लाना चाहते हैं जिसके मूल में आत्म निर्भरता और स्वतन्त्रता के सार का रहस्य है। लेकिन इस स्वतन्त्रता का आधार क्या होगा? केवल शासन की बागडोर? देश के धन और जन पर अबाध अधिकार? अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन का संचालन।'' ये विचार १६३० ई० में व्यक्त किए गए थे। आज स्वतन्त्रता की जिस आधार-शिला को न पा रहे हैं और जिसके अभाव में भारत खण्ड-खण्ड होता हुआ दीख पड़ता है, कभी भाषा, कभी प्रान्त, कभी सम्प्रदाय के आधार पर; उसकी आवश्यकता पर इस विचारक साहित्यकार ने आज से सैंतीस बर्ष पूर्व चिन्तन किया था। उन्होंने प्रत्यक्ष और परोक्ष रीति दृढ़तापूर्वक यह प्रतिपादित किया कि स्वतन्त्रता को स्थायी बनाने की आधार भूमि हमारी सांस्कृतिक एकता ही है। इसी राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता का निर्देशन 'जगद्गुरु' नाटक में शंकर द्वारा कराया गया है—''भगवती पार्वती और भगवती भारतभूमि मेरे लिए दोनों एक हैं। आपका केरल उस भगवती का चरण है। दूसरा चरण चोल है, कटि पर विंध्यमेखला, भुजाएँ सिन्धु-भूमि और कामरूप, मध्यप्रदेश उदर-वक्ष······और कैलाश शीश है। माता के इस मोहक रूप में······ जिसके हृदय के सब अंग अमृत हैं, हम सब श्रद्धावान् हों, उसके एक अंग की सेवा न कर समूचे शरीर की सेवा करें, तभी हम उसके ऋण से मुक्त हो सकेंगे।'' भारत की सांस्कृतिक एकता के तत्वचिन्तन में ही मिश्र ने अपने ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों का सृजन किया है।

इन नाटकों की रचना के समय मिश्रजी भारतीय आदर्शों की स्थापना के साथ भारतीय साहित्य-शास्त्र की मान्यताओं के प्रति भी दृढ़ आस्थावान् होकर उनके अनुगमन के लिए प्रयत्नशील हैं। उन्होंने भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार वर्जित दृश्यों की अवतारणा से अपने को बचाया है। नाटकों की परम्परा पर व्यक्तिपरक न करके गुण परक किया है तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान की आँधी में न बहकर उन्होंने अपने नाटकों में रस-दृष्टि के प्रति जागरूकता प्रदर्शित की है। नाटकों में जीवन की आलोचना न होकर समग्र जीवन का भोग प्रस्तुत हुआ, यह उनकी स्थापना है। नाटकों में पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग, वेश-भूषा, अलङ्करण एवं सज्जा संकेतों से प्राचीन सांस्कृतिक वातावरण को पूर्णतया सुरक्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि वे परम्परावादी हैं, पर रूढ़िवादी नहीं, उन्होंने संस्कृत नाटकों का प्राणतत्व लिया, भारतीय जीवन के प्राचीन आदर्शों का अमृततत्व ग्रहण किया पर संस्कृत नाटक की प्राचीन परिपाटी को छुआ तक नहीं। नान्दीपाठ, भरतवाक्य, सूत्रधार तथा नट-नटी के अस्वाभाविक वार्तालाप उनके प्रारम्भ से अब तक किसी नाटक में नहीं आए। तीन अङ्कों के आधुनिकतम स्वाभाविक शैली में अभिनेय नाटक हिन्दी में उन्हीं की देन हैं। इन सांस्कृतिक नाटकों में मिश्रजी प्रतिपाद्य की दृष्टि से भी कहीं रूढ़ियों से चिपके हुए नहीं दिखाई देते हैं। उनके ऐतिहासिक पौराणिक नाटक उनकी रूढ़िमुक्त शुद्ध सांस्कृतिक दृष्टि के परिचायक हैं।

—अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दयानन्द महाविद्यालय,
आजमगढ़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरे साक्षात्कार

● डॉ० मक्खनलाल शर्मा

आधुनिक हिन्दी उपन्यास पर जो बहुत-कुछ लिखा गया है, उसमें से अधिकांश गतानुगतिक होने के कारण अनुल्लेखनीय सिद्ध हुआ है। ऐसी स्थिति में परम्परा से हटकर, स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में मानवीय और कलात्मक सार्थकता की खोज का यह अभियान, स्वभावतः हमारी दृष्टि आकृष्ट करता है। पाठक की आशा बँधती है कि वह उस कृति के माध्यम से अपने से तथा वृहत्तर यथार्थ से साक्षात्कार कर सकेगा। इस साक्षात्कार के मुख्य माध्यम हैं— 'उसका बचपन', 'नदी के द्वीप', 'मैला आँचल', 'यह पथ बन्धु था', 'बूँद और समुद्र', 'झूठा सच', 'भूले बिसरे चित्र', 'जयवर्धन' तथा 'चारु चन्द्रलेख'। गौण माध्यम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'शहर में घूमता आइना', 'अँधेरे बन्द कमरे', 'उखड़े हुए लोग', 'बलचनमा' तथा 'सागर लहरें और मनुष्य' बनाये गये हैं। प्रसंगतः 'पथ की खोज', 'अजय की डायरी', 'कुब्जा सुन्दरी', 'एक इंच मुस्कान', 'काले फूल का पौधा', 'सुनीता', 'सुखदा', 'विवर्त', 'परती परिकथा' 'अमिता', 'एक पङ्खड़ी की तेज धार', 'गंगा मैया', 'जंजीरें और नया आदमी', 'सत्ती मैया का चौरा', 'धरती', 'अनदेखे अनजान पुल', 'गर्म राख' तथा 'धूमकेतु : एक श्रुति' आदि का भी उल्लेख है। प्रथम कोटि की कृतियों पर स्वतन्त्र लेख हैं और द्वितीय कोटि की सभी कृतियों पर एक लेख, किन्तु अनेक टुकड़ों में विभाजित (लगता है जैसे छोटे-छोटे रिव्यू एकत्रित कर दिये गये हैं)। तीसरी कोटि की रचनाओं का उल्लेख उन अन्य निबन्धों में हुआ है जो स्वातन्त्र्योत्तर कला के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, राजनीतिक परिस्थितियों बौद्धिक और अनुभूतिगत स्वर, रूप शिल्प और भाषा शीर्षक देकर लिखे गए हैं। स्पष्ट है, समग्र उपन्यास चेतना को समेटकर चलने का प्रयास रहा है। आरम्भ में 'सन्दर्भ की खोज' शीर्षक से प्रस्तावना तथा अन्त में 'पुनश्च' के नाम से जो उपसंहार दिया गया है, वे पुनरावृत्ति कारण अपना आकर्षण खो बैठते हैं।

एक सामान्य विचारधारा या विश्लेषण-पद्धति का प्रयोग सभी उपन्यासों पर लागू न करने का जो निश्चय आलोचक ने भूमिका में किया है, उसकी पूर्ति नहीं हो पाई है, क्योंकि सभी कृतियों का विवेचन काल-खण्ड, विषय-वस्तु, दृष्टिकोण, अनुभूति, शिल्प तथा अन्विति (वस्तु तथा चरित्र के सन्दर्भ में) को सामने रखकर हुआ है। ये सभी मूल्य परम्परागत, शास्त्रीय, शैक्षिक या शोधप्रबन्धीय तथा घोषित उद्देश्य की पूर्ति में असमर्थ होने के कारण उद्देश्य और साधन के अन्तर्विरोध को स्पष्ट करते हैं। ये साक्षात्कार वस्तुतः अधूरे हैं, क्योंकि आलोच्य कृतियों में जीवन के जिन आयामों का अंकन हुआ है, आलोचक उनका साक्षात्कार न करके, आरोपित से साक्षात्कार की आकांक्षा का प्रयत्न करने के परिणाम स्वरूप अपनी माँग के अपूर्ण रह जाने की घोषणा कर देता है। विचार इस पर होना चाहिए था कि कृति क्या है ? न कि इस पर कि आलोचक नेमिचन्द्र जैन इससे क्या अपेक्षाएँ करते हैं ? अपेक्षाओं के आधार पर किया गया साक्षात्कार क्या कभी सम्पन्न हो सकता है ? यही अधूरे साक्षात्कार की सार्थकता है।

'नदी के द्वीप' के सम्बन्ध में आलोचक की धारणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि अनुभुति की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति का संयम जिस मात्रा में इस रचना में उपलब्ध है वैसा हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में नहीं है। और इन दो गुणों के होने से यह कृति मूर्धन्य स्थान प्राप्त कर लेती है। इस सन्दर्भ में जिस अतिव्यक्तिवादी वैचित्र्य पूर्ण मनोदशा को प्रामाणिक अनुभूति की संज्ञा दी गई है, उसके सम्बन्ध में इसी निबन्ध में नेमिचन्द्र जैन ने अन्यत्र लिखा है—"यह बात भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि अज्ञेय केवल अपनी ही अनुभूति को, और केवल उसीसे ही सम्बद्ध व्यक्ति अथवा पक्ष को, अभिव्यक्त करने में सफल हो जाते हैं। उनकी सहानुभूतियाँ व्यापक नहीं, बल्कि शायद यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि सहानुभूति उनमें है ही नहीं।" (पृष्ठ २५) अनुभूति की प्रामाणिकता का यह अर्थ लेना कि जिस अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, वह उस रचनाकार के निजी जीवन में सार्थक हो चुकी है, अत्यन्त संकुचित तथा भ्रामक है।

आलोच्य ग्रन्थ में औपन्यासिक कृतियों का विश्लेषण और मूल्याङ्कन मुख्यतः कथानक के बल पर और उसमें भी आन्तरिक संगति की खोज का आधार ग्रहण करके चला है। चरित्रों में भी इसी अन्विति की शोध रही है, शेष बातें या तो छूट गई हैं या चलते-चलते एक दो वाक्य उनके सम्बन्ध में लिख दिया गया है। कुछ कृतियों को इस संगति के अभाव में अस्वीकार किया गया है और जहाँ यह संगति है, वहाँ भी स्वीकृति नहीं दी जा सकी है। इस सम्बन्ध में निम्न उदाहरण ज्ञातव्य है—

"उसमें (चारु चन्द्रलेख में) सहज आन्तरिक लय नहीं दीख पड़ती······कथ्य की आन्तरिक अन्विति के अभाव में रूपबंध शिल्प भी शिथिल होकर बिखर गया।" (पृष्ठ १७)

"प्रत्येक छोटे से छोटा वर्णन भी स्वतन्त्र रूप से अत्यन्त रोचक और चमत्कारपूर्ण हो उठता है और समग्र रचना (बूंद और समुद्र) की अन्विति को तोड़ देता है······रोचकता और वर्णन की विशदता के लिए पूरी रचना के समन्वित प्रभाव की बलि चढ़ाई गई है। यह असमता और अन्विति का अभाव उसमें शैली के स्तर पर भी है।" (पृष्ठ ६७–६८)

"महत्वपूर्ण पात्र जयदेव पुरी (झूठा सच) के अधिक है, व्यक्तित्व में उतार-चढ़ाव और विविधता पर उसमें आन्तरिक संगति नहीं।" (पृष्ठ ७८)

" 'भूले बिसरे चित्र' बहुत से स्वतः सम्पूर्ण और अपने आप में रोचक चित्रों का पुञ्ज बन कर रह गया है। प्रभाव की समग्रता उसमें नहीं है······यह असमर्थता केवल काल के प्रवाह को न पकड़ पाने में ही नहीं है। एक ही युग के जीवन को भी किसी सार्थक समग्रता या अन्विति के साथ इस उपन्यास में नहीं प्रस्तुत किया जा सका है।······उसे पढ़ना समाप्त करने पर अधूरी रचना को देखने का सा असन्तोष मन में भर जाता है, जिससे परितृप्ति से अधिक खीझ होती है।" (पृष्ठ ८४, ८५ तथा ९३) स्पष्ट है 'नदी के द्वीप' में भी यह संगति नहीं है, किन्तु इस प्रश्न को उस उपन्यास के सन्दर्भ में उपस्थित नहीं किया गया है; यदि ऐसा होता तो उपन्यास को जो अतिरिक्त श्रेष्ठता प्रदान की जा सकी है उसमें बाधा पड़ सकती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि विवेच्यकाल के उपन्यासों में कतिपय भौतिक बातें इस आलोचना कृति में लिखी गई हैं और सम्भवतः प्रथम बार, क्योंकि आलोचक ने इन कृतियों के माध्यम से स्वयं से साक्षात्कार किया है और इस काल में उसको अपने संवेदनशील मन का यथेष्ट सहयोग मिल गया है, किन्तु, वह मुक्तमन नहीं हो सका है सम्भवतः इसका कारण रहा है अपने और वृहत्तर यथार्थ के बीच के सूत्रों को न प्रकाशित कर पाना। इस महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब तक आलोचक का चित्र आग्रह मुक्त नहीं होता, तब तक अनुकूल परिणाम नहीं निकल सकते। ऐसा होने पर यह सहज हो जाएगा कि साक्षात्कार करने वाला उस मार्ग से अग्रसर हो सके, जहाँ होकर कृति गई है; अन्यथा, साक्षात्कार का परिणाम निराशा-जनक और शिकायत भरा होना स्वाभाविक है। कृति में यह चाहिए था—या यह नहीं है—के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर की आलोचनाएँ हिन्दी में हुई है, उनसे भ्रान्तियों तथा मिथ्या धारणाओं का घटाटोप ही खड़ा हो सका है। जो उपलब्ध है उसका साक्षात्कार उसकी ही राह से गुजर कर किस सीमा तक हो सकता है, यह आज की अपेक्षा है; और खेद है कि विवेच्य पुस्तक में इसकी प्रस्तावना भी नहीं है। इस प्रक्रिया में समीक्षक कृति के माध्यम से उसकी राह से चलकर अपने से साक्षात्कार कर रहा है; उस 'स्व' से जो वृहत्तर यथार्थ के सूर्य की सम्पूर्ण विशेषताओं से युक्त एक किरण है। अतः यह स्वाभाविक है कि यह साक्षत्कार एक ही साथ अनेक आयामों पर और कम-से-कम तीन आयामों पर होता है, जिससे उसकी सौन्दर्य चेतना आलोकित हो उठती है। जब तक कृति की राह से प्रवेश न होगा तब तक आलोचक का पूर्वाग्रहयुक्त मन संवेदनाओं के उन स्तरों का स्पर्श करने योग्य नहीं बन पाएगा जहाँ पहुँचकर ही सौन्दर्यानुभूति की भूमिका प्राप्त होती है।

'अधूरे साक्षात्कार' में साक्षात्कार की अनुभूति अथवा सौन्दर्यचेतना के प्रत्यक्षीकरण की पूर्वपीठिका काविवरण देना उनकी मानसिक सन्नद्धता तथा अनुकूलता के लिए आवश्यक हो सकता है; जिससे पाठक उस चरम परिणति को एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में ग्रहण कर सके, किन्तु यह है तो पूर्वपीठिका ही, उपलब्धि नहीं। पाठक को प्रक्रिया का साक्षी बनाकर उसका विश्वास अर्जित करना आलोचक के गुरुतर कार्य को सहजता तो प्रदान करता है, किन्तु इससे यह कठिनाई भी उत्पन्न हो जाती है कि पाठक अधिक जागरूक होकर आलोचक से साक्षात्कार के चरम क्षणों की अनुभूति की माँग करने लगता है। यदि अलोचक साक्षात्कार की प्रक्रिया पर पहुँचकर ही रुक जाना चाहे तो पाठक का विश्वास आलोचक और आलोचना दोनों से हटने लगता है। यही कारण है कि आज का पाठक आगे है और आलोचक पीछे। आज का संवेदनशील सर्जक भी यह अनुभव करता है कि उसकी रचना के वे आयाम उद्घाटित नहीं हो सके हैं, जिनके कारण यह अभिव्यक्ति अनिवार्य बन गई थी; क्योंकि आलोचक ने सर्जक का मार्ग न ग्रहण कर (अपने अहं से मुक्ति न प्राप्त कर सकने के कारण) रचना को धूल—भरे परम्परानुमोदी रगड़े से घसीटता है और भाग दौड़ में रचना पर धूल की इतनी पर्तें चढ़ जाती हैं कि उसका न केवल वास्तविक रूप छिप जाता है वरन् निष्कर्ष भी कृति के आवरण ही सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि सर्जक आलोचना और आलोचक के अस्तित्व को नकारकर, एक विवश विकल्प के रूप में स्वयं अलोचक, आलोचक बनना चाहे तो इसमें अनौचित्य क्या है? 'अधूरे साक्षात्कार' से ये सम्भावनाएँ पुष्ट हुई हैं। इसमें अनुभूति या साक्षात्कार के चरम क्षणों का चित्रण न होकर प्रक्रिया का ही विवेचन है। संवेदनशील आलोचक कृतियों के माध्यम से अपने को तो खोज सका है, किन्तु इस सूत्र को बृहत्तर यथार्थ से नहीं जोड़ पाया है; फलतः सौन्दर्य चेतना का स्पर्श नहीं हो सका है। वह किरण नहीं फूट सकी है जो रचना, आलोचक और वृहत्तर यथार्थ को एक साथ प्रकाशित कर सकती थी।

'वह पथबन्धु था' का नायक श्रीधर आधुनिकतम नायकों की अपेक्षा तीव्रतर संवेदना का संवाहक है। आज के सन्दर्भच्युत व्यक्ति का अकेलापन तथा उपलब्ध सूत्रों के उपयोग की व्यर्थता उसके द्वारा व्यंजित कराई गई है। नरेश मेहता ने पात्रांकन की जो परोक्ष एवं वस्तु सापेक्ष दृष्टि अपनाई है तथा उसे जिस रागात्मक बिम्बात्मकता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, वह इस रचना को कलात्मक श्रेष्ठता की वह उच्चता प्रदान करने में समर्थ है जिस पर कथन उपकथन का आश्रय ग्रहण करने वाले उपन्यास कभी भी नहीं पहुँच पाते हैं। श्रीधर को नेमिचन्द्र जैन ने जिस रूप में देखा है, वह उनकी अपनी दृष्टि है, उपन्यासकार की नहीं। मानवीय सम्बन्धों को आदर्शीकृत करके अपने में ही सन्तुष्ट करने वाला श्रीधर जब अपने को वाह्य जगत में निरालम्ब छोड़ देता है और व्यक्तियों तथा परिस्थितियों को अपने ऊपर प्रभाव डालने से नहीं रोकता तो उसके व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक द्विधा उत्पन्न होती है; जो परिवार और मित्रों के बीच सदैव बनी रहने वाली एकाकीपन की अनुभूति को उसके व्यक्तित्व के चारों ओर लपेट देती है। श्रीधर जैसा ऊपर से आस्थावान, धार्मिक एवं आदर्शवादी दिखाने वाला कस्बाई अध्यापक संघर्ष काल में भी कितना अकेला और रिक्त बना रहता है, इस ओर ध्यान नहीं दिया जा सकता है। सरो, बिशनबाबू आदि अन्य पात्रों के साथ भी यह समस्या है।

अकेलापन सम्भवत: मानव की नियति है, जो सबके साथ प्रत्येक स्थिति में संलग्न है। इन्दु, दीदी, रोजी ही नहीं, रामकली जैसे क्षणिक आभा दिखाने वाले पात्र भी इस पीड़ा से बुरी तरह ग्रसित तथा आतङ्कित हैं। यह श्रीधर और सरो की ही ट्रेजेडी नहीं है, वरन् मानवमात्र के अस्तित्व की व्यर्थता का प्रश्न है, जिसे एक विशिष्ट परिवेश तथा जीवंत पात्रों द्वारा खोद दिया गया है। इस प्रकार के अन्य अनेक सूत्रों को न पकड़ पाने के कारण साक्षात्कार अधूरा है—यही पुस्तक की सार्थकता है और सीमा भी।

'अधूरे साक्षात्कार' में जिस मानवीय संवेदना तथा आन्तरिक संगति की खोज की गई है, वे मूलत: साहित्यिक मूल्य हैं। मानवीय संवेदना को शास्त्रीय शब्दावली में रागात्मकता के नाम से जाना जाता रहा है, तथा आन्तरिक संगति को भावान्वित की सँज्ञा दी गई थी। साहित्यिक मूल्यों के कारण विवेचन कलात्मक स्तर पर हुआ तथा विवेच्य कृतियों की कतिपय ऐसी कलात्मक विशेषताएँ सामने आ गई, हैं, जिनसे आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

इन निबन्धों में आलोचक नेमिचन्द्र जैन प्रारम्भ में विवेच्य उपन्यास को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रसर होते हैं तथा इस इकाई को वैशिष्ट्य की पूर्णता से युक्त घोषित करने का साहस दिखाते हैं, किन्तु जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, सीमाएँ मुखर होने लगती हैं। स्वाभाविक है कि अन्त तक पहुँचते-पहुँचते निरपेक्ष प्रतिबन्धात्मक एवं लघु सीमाओं में आबद्ध हो उठते हैं। कौशल और भाषा सौष्ठव आदि की दृष्टि से विवेच्य ग्रन्थ के लेखक अत्यन्त सफल तथा समर्थ सिद्ध होते हैं। एकाध स्थान को छोड़कर भाषा अत्यन्त स्पष्ट तथा विषयानुकूल है। विचारों की स्पष्टता तथा उसमें संगीत भी स्थान-स्थान पर द्रष्टव्य है।

—जे० ११/१६, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-७.

(पृष्ठ ३५५ का शेषांश)

नहीं होता। वह मौलिक प्रतिभा का परिचायक तभी होता है जब उसका पोषण किसी मुख्य भाव द्वारा होता है अथवा जब वह अनेकता में एकता उत्पन्न करता है। कॉलरिज के मतानुसार यह कवि-प्रतिभा की तीसरी विशेषता है।

चौथी विशेषता का उल्लेख करते हुए कॉलरिज ने कहा है कि कोई व्यक्ति गम्भीर दार्शनिक हुए बिना महान कवि नहीं हो सकता। क्योंकि काव्य में समस्त मानवीय ज्ञान का, भावों का तथा भाषा का प्रतिनिधित्व होता है।

कॉलरिज की काव्य तथा कल्पना सम्बन्धी इन मान्यताओं ने परवर्ती साहित्यकारों को बहुत प्रभावित किया। इनके प्रभाव के विषय में प्रसिद्ध अंगरेज विचारक जान स्टुअर्ट मिल ने कहा है कि कॉलरिज ने उन्नीसवीं शताब्दी के व्यक्तियों को चिन्तन करना सिखाया था। अंगरेजी समीक्षा के क्षेत्र में उसे सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना जाता है। यूरोपीय आलोचना-साहित्य के गम्भीर विद्वान प्रो० सेण्ट्सबरी ने कॉलरिज को अरस्तू और लॉजीनस जैसे मूर्द्धन्य आलोचकों की श्रेणी में रखा है। इसमें सन्देह नहीं कि विश्व के प्रमुखतम आलोचक में कॉलरिज का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी दार्शनिक विचार-धारा तथा मनोविज्ञान-सम्मत समीक्षा सिद्धान्तों का अध्ययन संसार के किसी भी साहित्य के लिए आवश्यक है।

—प्राध्यापक, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा—एक दृष्टि

● डा० रामगोपाल गोयल

भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानों की परम्परा प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है । इस प्रेमाख्यान परम्परा के बीज हमें वैदिक साहित्य में विशेषकर ऋग्वेद में उल्लिखित यम-यमी के संवाद, उर्वशी और पुरूरवस श्यावाश्व, सूर्य पुत्री तपती एवं संवरण के प्रणय प्रसंगों में मिलते हैं । उर्वशी और पुरूरवस के प्रेमाख्यान के बारे में तो पेंजर महोदय का मत है कि अभी तक जितनी भारतीय यूरोपीय प्रेम कहानियाँ विदित हैं, उनमें यह सर्वप्रथम है और हो सकता है कि समस्त विश्व के के प्रेमाख्यानों में भी यह प्राचीनतम समझी जा सके[१] । महाभारत और पुराणों में विविध प्रेमाख्यानों का वर्णन मिलता है । महाभारत का नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान, श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी, प्रद्युम्न और मायावती, अर्जुन और सुभद्र तथा भीम और हिडिम्बा के प्रेमाख्यान—उल्लेखनीय है । उषा एवं अनिरुद्ध प्रेमाख्यान का विस्तृत वर्णन हरिवंश पुराण में मिलता है[२] । मार्मिक प्रेम व्यंजना की दृष्टि से रुरू और प्रमद्वरा की प्रेम कथा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । इस कहानी में ऋषिकुमार रुरू की प्रेम पात्री प्रमद्वरा सर्प-दंश के कारण मर जाती है और उसे पुनरुज्जीवित करने के लिए रुरू को आकाशवाणी के प्रस्ताव पर अपनी आधी आयु का काल प्रमद्वरा को समर्पित करना पड़ता है ।[३]

संस्कृत के कथा साहित्य और काव्यों में प्रेमाख्यानों के विविध रूप मिलते हैं । पैशाची भाषा में लिखी गई गुणाढ्य की बृहत्कथा, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी, सोमदेव रचित कथा सरित्सागर अथवा जैन कवि हरिवेण रचित बृहत्कथा कोष, वैताल पंच विंशति, आदि कला साहित्य में अनेक प्रेम-कथाओं का वर्णन मिलता है । देवसेन और उन्मादिनी की कथा[४] धर्मदत्त और मदन सेना की कथा[५], वैताल पंच विंशति में वर्णित रत्नवति की कथा[६], कथा सरित्सागर में वर्णित अवंतिका की कहानी में वासवदत्ता और पद्मावती के साथ राजा उदयन का प्रेम वृतान्त[७], शक्तिदेवी और बेला का प्रेमाख्यान आदि अनेक प्रेम कथानकों से यह कथा साहित्य भरा पड़ा है । संस्कृत साहित्य में प्रेमकथाओं को लेकर स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थों की भी रचना की गई । पतंजलि ने महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा उर्वशी और भैरमथी नामक प्रेमाख्यानों का उल्लेख किया है जिससे विदित होता है कि इस प्रकार के प्रेमाख्यान बहुत पहले से प्रचलित रहे होंगे[८] । प्रेमाख्यानों को

१ "It is the first Indo-European love-story known, and may even be the oldest love-story in the world." N. M. Penyer (The ocean of the story. London, 1924) P. 245.

२ श्री परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा पृ० सं० १७

३ वही, पृ० सं० २२

४ बृहत्कथा मंजरी, पृष्ठ ७०-१ और ३६३

५ The ocean of the story (ch. 84 st. 163, 4. G.)

६ Do (ch. 88 st 163 G.)

७ सोमदेव कृत कथा सरित्सागर, रूपान्तरकार : श्री गोपालकृष्ण कौल (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली) पृ० सं० ७८

८ वासवदत्तामधिकृत्य, कृतां ख्यायिका वासवदत्ता सुमनोत्तरा, वाच भवति भैमरथी । (४-३-८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर स्वतन्त्र रूप से रचे गये काव्य ग्रन्थों में महाकवि भास कृत स्वप्न वासवदत्ता, सुबन्धु रचित वासवदत्ता, बाण रचित कादम्बरी एवं पार्वती परिणयम्, कालीदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तल, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, कुमार सम्भव, मालविकाग्निमित्रम्, भवभूति का मालती माधव, हर्षरचित रत्नावलि नाटिका, तथा महाकाव्य नैषधीयम् तथा त्रिविक्रम् कृत नल चम्पू एवं श्रीराम वर्मवंजि युवराज विरचित रुक्मणि परिणयम् इत्यादि उल्लेखनीय है। इनमें प्रेमतत्व स्पष्ट रूप से उभर कर आया है तथा उसको समुचित विस्तार भी इन प्रेमाख्यानों में मिला है।

वैदिक काल के प्रेम-प्रसङ्गों तथा संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यानों में मूल-भेद तो यही है कि वैदिक प्रेम-प्रसंगों में संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यानों की भाँति प्रेम-तत्व को अधिक विस्तार नहीं मिल पाया है। इन प्रणय प्रसंगों में आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता का आरोपण होने के कारण प्रेम तत्व दब सा गया है, किन्तु संस्कृत साहित्य में इनका रूप अपेक्षाकृत अधिक निखरने लग जाता है और इनकी संख्या भी बढती चली जाती है। इन प्रेमाख्यानों में अनेक कथा-तन्तु विस्तार पाने लगते हैं। प्रेम के उद्रेक में प्रत्यक्ष दर्शन के साथ स्वप्न दर्शन, चित्र-दर्शन के कथा तंतु भी जुड़ जाते हैं तथा सन्देश-प्रेषण में हंस आदि पक्षियों का भी प्रयोग होने लगता है। शाप आदि के द्वारा नायक नायिका के मिलन में बाधाओं का विधान भी मिलने लगता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के कथा तन्तु मिल जाने से प्रेमाख्यानों का एक मूल ढाँचा तैयार हो जाता है जो भविष्य के लिए भारतीय भाषाओं के प्रेमाख्यानों के रूप विधान का मूलाधार निर्मित करता है। संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यानों के वर्ण्य-विषय में भी विविधता आ जाती है। इनमें पौराणिक प्रेम-कथाओं के अतिरिक्त उदयन एवं वासवदत्ता के ऐतिहासिक प्रेम-प्रसंग तथा लोक कथायें भी जुड़ जाती है।

संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यानों में वर्णित प्रेम-प्रवाह के साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी यह प्रवाह बहने लगता है। पाली भाषा में रचित बौद्ध जातकों में भी यत्र-तत्र प्रेम-कथाओं का वर्णन मिलता है। कट्टहारि जातक[१] के मूल कथा तन्तु महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से समता रखते हैं। अंडभूत जातक[२] में माणविका के प्रेम की कहानी वर्णित है। माणविका का प्रेमी फूलों की टोकरी में छिपकर उससे मिलता है। असिलक्खण जातक[३] में राजकुमारी अपने ममेरे भाई से प्रेम करती है और दोनों का मिलन भाग्य बतलाने वाली स्त्री की सहायता से होता है। मुछ्पानी जातक[४] में राजकुमारी अपने पितृगृह को छोड़कर प्रेमी के साथ भाग जाती है। आसंक जातक[५] में राजा आसंक कुमारी का नाम बतलाकर उसे प्राप्त करता है। इसमें विवाह के लिए शर्त नामक रूढ़ि प्रयुक्त हुई। दसएणक जातक[६] में वर्णन है कि सैनक कुमार राज पुरोहित का पुत्र रानी में आसक्त हो जाता है और दोनों में इतना प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है कि वे प्रेम के वशीभूत होकर राज्य छोड़कर अन्यत्र भाग जाते हैं। संयुग्ग जातक[७] में भी किसी सुन्दरी का राक्षस के वश में होना तथा विद्याधर द्वारा मुक्त करने का उल्लेख मिलता है। किसी सुन्दरी का राक्षस के वश में होना तथा नायक द्वारा मुक्त करने का कथा तन्तु बाद के प्रेमाख्यानों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। महापदुम जातक[८] में वर्णन है कि राजकुमार पद्मकुमार के रूप पर मोहित

---

१ जातक कथा (प्रथम खण्ड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। पृष्ठ सं० १७३-६

२ वही, पृष्ठसंख्या ३७६

३ जातक कथा (दूसरा भाग) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। पृ० संख्या ६४

४ जातक कथा (तृतीय खण्ड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृ० संख्या ४६

५ वही, पृष्ठ संख्या ४७

६ जातक कथा (चतुर्थ खण्ड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृष्ठ संख्या १८७

७ वही, पृष्ठसंख्या १८७

८ वही, पृष्ठ संख्या ३८७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर उसकी सौतेली माँ (रानी) प्रणय प्रस्ताव रखती है, किन्तु वह अपने सत्य पर दृढ़ रहकर रानी की कामुकता की भर्त्सना करता है। रानी प्रतिशोध की अग्नि में जलकर राजकुमार पर मिथ्यारोप लगाती है और उसे राजा से कहकर पहाड़ पर से प्रपात में गिरवाती है, किन्तु नागराज कुमार की रक्षा करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जातक कथाओं में विविध प्रकार के प्रेम-प्रसंग वर्णित है, किन्तु वहाँ उनका उपयोग त्रिया चरित्र की दुशीलता को व्यक्त करने के लिए ही हुआ है। इन प्रेम कथाओं का उद्देश्य नारी के स्वभाव को प्रकट करके उसके प्रति अनासक्ति उत्पन्न करना है। इन प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त कथा तन्तु यथा-प्रेमी का फूलों की टोकरी में छिपकर प्रेमिका के महलों में जाना, चौपड़ का खेल, नायिका का ममेरे भाई से प्रेम, परदेश जाते समय पत्नि के चरित्र की निगरानी के लिए पक्षी को घर पर छोड़कर जाना, नायिका से विवाह के लिए शर्त रखना, प्रेमी-प्रेमिका का घर से पलायन, सौतेली माँ की कामासक्ति, नाग द्वारा नायक का रक्षण आदि का सम्प्रेषण प्राकृत और अपभ्रंश के जैन प्रेमाख्यानों में होता हुआ हिन्दी के प्रेमाख्यानों में होता है तथा राजस्थानी के प्रेमाख्यानों में भी उक्त कथातन्तु प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। बौद्ध गाथाओं की कथा बन्ध सम्बन्धी विशेषताएँ भी जैनियों के चरित्र काव्यों और कथा साहित्य में अपनाई गई है।

जातक कथाओं में वर्णित प्रेमाख्यानों की अपेक्षा जैनियों की धर्म कथाओं में प्रेमाख्यानों का रूप अधिक निखरा है। संस्कृत के कथा साहित्य की भाँति जैनियों ने प्राकृत भाषा में भी अनेक कथा ग्रन्थ लिखे इन कथा ग्रन्थों में अनेक प्रेम-कथायें वर्णित हैं। आख्यान मणिकोष में शील माहात्म्य को प्रकट करने के लिए दवदंती, सीता, रोहिणी, सुभद्रा आदि नायिकाओं के एक निष्ठ प्रेम की कथाएँ वर्णित है। इसी भाँति कहारयण कोष (कथारत्न कोष) में पचास लोक कथायें संग्रहीत हैं, जिनमें अनेक प्रेम कथायें हैं। प्राकृत कथा संग्रह में वर्णित सुन्दरी देवी की कथा[1] एक सरस प्रेमाख्यान कहा जा सकता है। इसी प्रकार इस कथा संग्रह में मलयसुन्दरी कथा भी वर्णित है। इस कथा साहित्य के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में स्वतन्त्र रूप से भी प्रेमाख्यान काव्यों की रचना हुई। हरिभद्र कृत समराइच्चकहा, उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाला, वासुदेव हिण्डी, तरंगवइ कहा, जिनदत्ताख्यान, जिनहर्षगणि कृत रयण सेहरी कहा आदि इस भाँति के सुन्दर प्रेमाख्यान हैं। इन प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त मलयवती, मगधसेना, बन्धुमती और सुलोचना नामक कथा ग्रन्थों का भी जैन विद्वानों ने उल्लेख किया है।[2] इन कथा ग्रन्थों में प्रेम और श्रृङ्गार का यथेष्ट वर्णन मिलता है।

प्राकृत भाषा के इन प्रेमाख्यानों की परम्परा अपभ्रंश भाषा में भी प्रवाहमान हुई। अपभ्रंश के अधिकांश चरिउकाव्य प्रेमाख्यान अथवा प्रेम-कथापरक काव्य हैं। कविवर धनपाल कृत भविसयत कहा, पुष्पदन्त कृत नायकुमार चरिउ, नय नन्दीकृत सुदसण चरिउ, तथा पण्डित लाखू या लक्खण द्वारा रचित जिणदत्त चरित अपभ्रंश के सरस प्रेमाख्यान हैं। इन प्रेमाख्यानों का मूल उद्देश्य धर्म की शिक्षा देना है। किन्तु अपनी रचनाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रेम और श्रृङ्गार का भी उन्होंने इन रचनाओं में यथेष्ट स्थान दिया है। अपभ्रंश साहित्य में धार्मिक उद्देश्य से रहित अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) कृत सन्देश-रासक भी मिलता है जो विशुद्ध प्रेमाख्यान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय साहित्य की यह अविच्छिन्न धारा चिरकाल से प्रवाहित है। इस धारा का परम्परागत रूप आज हमें हिन्दी साहित्य में दिखलाई पड़ता है। प्रेमाख्यान इसी परम्परा की अविच्छिन्न कड़ी है। अतः राजस्थानी की यह प्रेमाख्यान परम्परा, भाव, भाषा, अलंकार, छन्द योजना, शैली की दृष्टि से अपभ्रंश प्रेमाख्यान परम्परा की ही विरासत है।

—वच्छराज भवन, पुरानीमण्डी, अजमेर

[1] प्राकृत साहित्य का इतिहास, डा० जगदीशचन्द्र जैन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. सं. ३६४-६५

[2] वही, पृ. सं. ३६४-६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉलरिज की काव्य-सम्बन्धी मान्यताएँ

● डा० फूलबिहारी शर्मा

सेमुअल टेलर कॉलरिज अँगरेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों के नेता विलियम वर्डसवर्थ का मित्र था। उसने अपने जीवन में काव्य की अपेक्षा समीक्षा-साहित्य की रचना अधिक की। अँगरेजी समीक्षा के क्षेत्र में उसे उच्चतम स्थान का अधिकारी माना जाता है, क्योंकि उसने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्य के तत्वों का विवेचन किया और अनेक मूल्यवान निष्कर्ष साहित्य-जगत के सम्मुख रखे। समीक्षा-क्षेत्र में उसकी काव्य तथा कल्पना सम्बन्धी मान्यताओं को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि वे स्वच्छन्दतावादी काव्य के मूल्याङ्कन में विशेष रूप से सहायक हैं। खेद का विषय है कि हिन्दी-प्रेमियों ने जितना ध्यान वर्ड्सवर्थ, शेली तथा कीट्स की ओर दिया है, उतना कॉलरिज की ओर नहीं। यदि कॉलरिज की काव्य एवं कल्पना सम्बन्धी मान्यताएँ छायावादी काव्य के विकास के समय हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत की जातीं तो छायावादी काव्य की प्रकृति और प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट हो जातीं।

कॉलरिज की काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ वर्ड्सवर्थ के काव्य, भाषा तथा छन्द सम्बन्धी मतों की आलोचना के समय प्रकाश में आईं। ये मान्यताएँ इतनी विशिष्ट हैं कि वे एक काल से सम्बद्ध न रहकर सार्वकालिक बन गई हैं।

कॉलरिज ने वैज्ञानिक पद्धति से काव्य के विभिन्न तत्वों के आधार पर उसका विवेचन किया है। उसने प्रारम्भ में काव्य के स्थूल तत्वों को लेकर धीरे-धीरे सूक्ष्म तत्वों की ओर पग बढ़ाया है। सामान्य से प्रारम्भ कर वह उत्तरोत्तर विशेष की ओर अग्रसर हुआ है। उसका कथन है कि एक कविता में वे ही तत्व होते हैं जो एक गद्य रचना में होते हैं। किन्तु उद्देश्य भिन्न होने के कारण उन तत्वों के सम्मिश्रण में भेद उत्पन्न हो जाता है और परिणामस्वरूप रचना में भी भेद उत्पन्न हो जाता है। छन्द अथवा तुक से युक्त रचनाओं के विषय में उसका मत है कि उनमें किसी ध्वनि की पुनरावृत्ति एक विशेष प्रकार का आनन्द उत्पन्न करती है। अतः जिन रचनाओं में यह विशेषता होती है, उनके तत्व कुछ भी हों, उन्हें कविता का नाम दिया जा सकता है।

छन्द और तुक अर्थात् बाह्य लक्षणों के आधार पर किसी रचना को कविता मानने के उपरान्त कॉलरिज ने रचना के उद्देश्य पर विचार किया है। उसके मत से सत्य का सम्प्रेषण किसी रचना का तात्कालिक उद्देश्य हो सकता है। दूसरी ओर उच्च कोटि का स्थायी आनन्द प्रदान करना भी किसी रचना का उद्देश्य हो सकता है, किन्तु वह तात्कालिक उद्देश्य नहीं हो सकता। आनन्द-प्रदायिनी शक्ति के साथ पूर्वोक्त छन्द-तत्व पर विचार करते हुए उसने कहा है कि आनन्द प्रदान करना उपन्यास जैसी किसी छन्द-हीन रचना का भी उद्देश्य हो सकता है। परन्तु उन रचनाओं को छन्दोबद्ध कर देने पर उन्हें कविता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। कोई रचना स्थायी रूप से तभी आनन्द प्रदान कर सकती है जब कि उसमें आनन्द-प्रदायिनी शक्ति हो, तथा यह शक्ति केवल छन्द के प्रयोग से नहीं आती। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए रचना को छन्दोबद्ध करने के साथ-साथ उसके अन्य सब अङ्गों को तदनुरूप परिवर्तित करना होगा। इस प्रकार बाह्य रूप तथा उद्देश्य पर विचार करने के उपरान्त कॉलरिज ने काव्य की यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभाषा निश्चित की है—

'कविता रचनाओं का वह वर्ग है जो वैज्ञानिक रचनाओं से भिन्न है, क्योंकि उसका तात्कालिक उद्देश्य सत्य का संप्रेषण न होकर आनन्द प्रदान करना है। कविता तथा अन्य रचनाओं में यह अन्तर है कि कविता आंशिक रूप से उसी प्रकार आनन्द प्रदान कर सकती है जिस प्रकार कि सम्पूर्ण रूप से।'[1]

एक सच्ची कविता की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कॉलरिज ने कहा है कि उसके विभिन्न अङ्गों को एक दूसरे का पोषण तथा स्पष्टीकरण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसके सब अंगों को छन्द-शास्त्र की दृष्टि से समन्वित होना चाहिए।

कॉलरिज ने वर्ड्सवर्थ केसमान काव्य में छन्द को अनावश्यक नहीं माना। वर्ड्सवर्थ अलंकृत काव्य-भाषा तथा छन्द से घृणा करता था और उस घृणा के कई कारण थे। उसे स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का मूर्द्धन्य कवि माना जाता है। स्वच्छन्दतावादी युग से पूर्व अंग्रेजी काव्य में शास्त्रीयतावादी प्रवृत्तियों का प्राबल्य था। उन प्रवृत्तियों के कारण तत्कालीन काव्य में निश्चित भाव भाषा, छन्द तथा अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। उस समय इस परम्परा का पालन बड़ी कठोरता से किया जाता था। उसका परिणाम यह निकला कि काव्य में अत्यन्त अलंकृत, कृत्रिम तथा दुरूह कल्पना से बोझिल भाषा प्रयुक्त होने लगी। उस युग की वाग्वेदग्ध्यपूर्ण रचनाओं के लिए 'हीरोइक कपलेट' नामक छन्द को अत्यन्त उपयुक्त माना गया था और उसका प्रयोग काव्य, महाकाव्य, नाटक आदि सब विधाओं में किया जाता था। इस प्रकार अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित हो जाने से उस समय काव्य में स्वतन्त्र उद्भावना का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। इस अवरोध को हटाने के लिए काव्य के क्षेत्र में जो प्रयत्न किया गया उसे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के नाम से अभिहित किया। वर्ड्सवर्थ ने अलंकृत भाषा और छन्द के बन्धनों से मुक्त करने के लिए दृढ़तापूर्वक पग उठाया था और कॉलरिज ने उसका साथ दिया था। इन दोनों कवियों ने संयुक्त रूप से 'दि लिरीकल बैलेड्स' की रचना की जिसे प्रथम महत्वपूर्ण स्वच्छन्दतावादी रचना माना जाता है। इसके द्वितीय संस्करण की भूमिका में वर्ड्सवर्थ ने अपने भाषा-छन्द सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं। उसके विचारों ने सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ सीमा तक अतिवादी रूप ग्रहण कर लिया है तथा वे उसके काव्य में भी प्रतिफलित नहीं हुए हैं।

कॉलरिज ने वर्ड्सवर्थ के भाषा-छन्द सम्बन्धी मत का समर्थन नहीं किया। बल्कि 'बैलेड्स' के प्रकाशन के लगभग अठारह वर्ष उपरान्त उसने वर्ड्सवर्थ के मत की युक्तियुक्त आलोचना की और उसे अमान्य सिद्ध किया। उसने यह तो मान लिया कि काव्य की भाषा सरल होनी चाहिए, किन्तु उसने वर्ड्सवर्थ के इस कथन का समर्थन नहीं किया कि जनसाधारण द्वारा दैनिक जीवन में बोली जाने वाली भाषा से ही काव्य भाषा गठित होती है। कॉलरिज ने इस मत को अपूर्ण और अनुचित सिद्ध किया है और कहा है कि स्वयं वर्डसवर्थ की रचनाओं से इसका समर्थन नहीं होता। उसने आपत्ति की है कि यदि एक ग्रामीण की भाषा में से उसकी विचारहीनता, प्रान्तीयता और अनगढ़पन को निकाल दिया जाये तो वह भाषा सामान्य बुद्धि वाले किसी अन्य व्यक्ति की भाषा से भिन्न नहीं होगी और इस प्रकार कवियों को उससे कोई सहायता न मिल सकेगी। इस प्रकार कॉलरिज ने वर्डसवर्थ के भाषा सम्बन्धी विचारों का समर्थन नहीं किया।

इन दोनों कवियों के भाषा-छद सम्बन्धी मत-वैभिन्य का एक कारण उनकी काव्यात्मक प्रतिभा थी। वर्ड्सवर्थ की छन्द सम्बन्धी प्रतिभा अत्यन्त प्रखर न थी अतएव उसने छन्द को काव्य के लिए अनावश्यक माना : उसकी भाषा के विरुद्ध कठोरता और अर्थहीनता के आरोप लगाये गये। इधर कॉल-

[1] कॉलरिज, 'बायोग्राफिया लिहरेरिया' सं० वाटसन। डेन्ट, १९५६, पृष्ठ १७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिज की छन्द संम्बन्धी प्रतिभा अप्रतिम थी—उसे अंग्रेजी के मूर्धन्य छन्दकारों में से एक माना जाता है। वह शेक्सपियर के समान भाषा को रंगीन और समन्वित रूप प्रदान कर सकता था। ऐसी स्थिति में भाषा और छन्द को काव्य में गौण स्थान प्रदान करने में वर्ड्सवर्थ को लाभ था। कॉलरिज अपनी योग्यता के कारण भाषा और छन्द का समर्थन कर सकता था, किन्तु उनके बिना भी वह अपना काम चला सकता था और उनका समर्थन करने के लिए विवश न था।

कॉलरिज ने कवि तथा काव्य को घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध माना है, क्योंकि कवि की प्रतिभा ही काव्य में विशेषता उत्पन्न करती है। प्रतिभा बिम्ब, विचार तथा भावों को ग्रहण कर संशोधित करती है। एक कवि भावात्मक पूर्णता की दृष्टि से मानव-मन को क्रियाशील बना देता है। वह मानव की समस्त शक्तियों में एकत्व की उद्भावना करता है। यह कार्य कल्पना शक्ति द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

काव्य के विभिन्न तत्वों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कॉलरिज ने कहा है कि सदाशय कवि-प्रतिभा का शरीर, ललित कल्पना उसका वस्त्र तथा काव्य की गतिशीलता उसका जीवन होती है। कल्पना काव्य की आत्मा होती है।

कॉलरिज ने काव्य में कल्पना को उच्चतम स्थान प्रदान किया है। वैसे पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों में कल्पना को काव्य का एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। उसकी महत्ता का ज्ञापन उन्नीसवीं शताब्दी में लगभग सब कवि-समीक्षकों ने किया; फिर भी कॉलरिज ने कल्पना की जो व्याख्या की उसे अभूतपूर्व माना गया।

हिन्दी में 'कल्पना' शब्द को प्राय: अँगरेजी के 'इमेजिनेशन' शब्द का समानार्थक माना जाता है। अँगरेजी भाषा में 'इमेजिनेशन' शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं। 'इमेजिनेशन' के स्वरूप का निर्देशन करने वाली कई परिभाषाएँ भी अँगरेजी के शब्द कोशों में उपलब्ध हैं। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'इमेजिनेशन' को दृष्टिगोचर छायाओं का कारण माना जाता है। उन छायाओं से आदर्श चरित्र या उद्देश्य निर्मित करने की सामर्थ्य भी 'इमेजिनेशन' शब्द द्वारा द्योतित होती है। किसी चरित्र अथवा घटना के सम्बन्ध में कलाकार का आत्म-प्रक्षेपण भी 'इमेजिनेशन' के अन्तर्गत माना जाता है। 'इमेजिनेशन' को अमूर्त धारणाओं के प्रतीकों की रचना करने वाली शक्ति माना जाता है। इसे काव्य की दृष्टि से रहस्यात्मक संस्कारों का पर्यायवाची भी मानते हैं। इनके अतिरिक्त 'इमेजिनेशन' मानव की संस्कारजन्य निर्मात्री शक्ति का द्योतक है।[1]

समीक्षा के क्षेत्र में भी 'इमेजिनेशन' शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं और उन पर उपर्युक्त अर्थों की छाया पड़ी प्रतीत होती है। इस शब्द का एक अत्यन्त सामान्य अर्थ है 'सजीव प्रतिमाओं की रचना'। लाक्षणिक भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में इमेजिनेशन' शब्द का व्यवहार किया जाता है और उपमा, रूपक आदि अलंकारों का असाधारण रूप से प्रयोग करनेवाले कवि को कल्पना का धनी समझा जाता है। किसी व्यक्ति की भावमय मन:स्थिति का सहानुभूतिपूर्वक अनुकरण करना 'इमैजिनेशन' का एक सीमित अर्थ है। इसका एक अन्य अर्थ है बुद्धि द्वारा असंबद्ध तत्वों को संबद्ध करना। भिन्न वस्तुओं के बीच तर्कसम्मत सम्बन्ध स्थापित करना भी 'इमैजिनेशन' का एक अर्थ है। जिसका प्रयोग वैज्ञानिक कल्पना के सम्बन्ध में किया जाता है। इसके द्वारा सीमित क्षेत्र के भीतर निश्चित साधनों द्वारा, निश्चित उद्देश्य से, विशिष्ट अनुभव की उपलब्धि होती है।[2] हिन्दी भाषा 'कल्पना' शब्द 'इमैजिनेशन' शब्द के इन सब अर्थों का द्योतन नहीं करता।

---

[1] 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर' सं० जे० टी० शिप्ले। लिटिलफील्ड एडम्स। न्यू जर्सी १९६२ पृष्ठ २१९।

[2] आई० ए० रिचार्ड्स 'प्रिंसीपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म रटलेज एन्ड केगन पाल। १९६१। पृष्ठ २३९–४२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारक कॉलरिज ने 'इमेजिनेशन' या कल्पना की एक नई परिभाषा प्रस्तुत की जो मनोविज्ञान-सम्मत भी है। उसने कहा है कि "कवि संश्लेषण करने वाली उस विचित्र शक्ति द्वारा विभिन्न वस्तुओं में एकत्व की भावना उत्पन्न करते हैं जिसे हमने 'इमेजिनेशन' कल्पना का विशिष्ट नाम दिया है। यह भावना विभिन्न मानवीय शक्तियों को परस्पर सम्बद्ध कर देती है। कल्पनाशक्ति, इच्छाशक्ति और बुद्धि से परिचालित होकर, असम्बद्ध या विरोधी तत्वों के सामञ्जस्य या सन्तुलन द्वारा स्वयं को व्यक्त करती है। कल्पनाशक्ति ही साम्य और वैषम्य, सामान्य और विशेष, भाव और बिम्ब, वैयक्तिक और सार्वजनीन, प्राचीन और नवीन आदि के बीच सम्बन्ध स्थापित कर समन्वय उत्पन्न करती है।....कल्पना काव्य की आत्मा होती है जो उसके सब तत्वों में व्याप्त रहती है और उन्हें एक सुन्दर तथा बुद्धिगम्य इकाई में परिणत करती है।[1]

कॉलरिज ने दो प्रकार की कल्पना का निर्देश किया है--प्रधान कल्पना तथा गौण कल्पना। उसका कथन है कि 'मैं प्रधान कल्पना को सजीव एवं सम्पूर्ण मानवीय अनुभूति का प्रमुख आधार मानता हूँ और इसे सीमित मानव-मन में सीमातीत ब्रह्म की शाश्वत सृजन क्रिया की पुनरावृत्ति समझता हूँ। गौण कल्पना को मैं प्रधान कल्पना की प्रतिध्वनि मानता हूँ जो चेतन इच्छा की सहवर्तिनी हैं तथा जिसकी शक्ति का स्वरूप प्रधान कल्पना के समान है, किन्तु जिसकी सीमा और क्रिया शैली भिन्न है। यह पुनर्रचना के उद्देश्य से विसर्जन, विस्तार और विनाश करती है, जहाँ ऐसा करना असंभव हो जाता है वहाँ यह आदर्शीकरण और संगठन के लिए अनिवार्यतः सङ्घर्ष करती है। यह तात्त्विक रूप से सजीव है जबकि अन्य उपादान मूलतः जड़ और निष्प्राण है।'[2]

[1] कोलरिज 'बायोग्राफ़िया लिटरेरिया' सं० वाटसन, जे० एम० टेन्ट, १९५६, पृ० १७३-७४।

[2] वही, पृष्ठ १६७।

इस दृष्टि से कल्पना आत्म-चेतना की क्रिया है और समस्त ज्ञान तथा इन्द्रियानुभूति का आधार है। कल्पना शक्ति द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने संसार की रचना करता है। गौण कल्पना काव्यात्मक कल्पना है जो साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार प्रधान कल्पना एक ही बार में ज्ञाता और ज्ञेय को संयुक्त कर देती है, उसी प्रकार गौण कल्पना कवि के मन को मननीय उपादानों से संयुक्त कर देती है और वे उपादान भी परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। कल्पना वह तत्त्व है जो काव्य को सांसारिक वस्तुओं की अनुकृति-मात्र नहीं रहने देता, बल्कि उन्हें एक नयी और सजीव इकाई बना देता है।

प्रधान और गौण कल्पना के अतिरिक्त कॉलरिज ने ललित कल्पना फैन्सी के स्वरूप का भी निर्देश किया है। उसके मत से ललित कल्पना का सम्बन्ध केवल निश्चित और स्थिर वस्तुओं से होता है। यह स्मृति का एक प्रकार है जो देश और काल की सीमाओं से मुक्त है। ललित कल्पना इच्छाशक्ति के अनुभववादी स्वरूप से सम्बद्ध है जो इसका परिष्कार करता है और जिसे सामान्यतः विकल्प कहा जाता है।

काव्य के विभिन्न तत्वों का विवेचन करने के साथ-साथ कॉलरिज ने प्रतिभाशाली कवियों की विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। उसने कवि की सबसे पहली विशेषता संगीत-प्रेम मानी है। क्योंकि संगीत-विहीन व्यक्ति कभी अच्छा कवि नहीं हो सकता। कल्पना संगीत के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है और संगीत-रचना में सहायता देती है। संगीत का अभ्यास तथा संगीत-प्रेम का विकास तो किया जा सकता है, किन्तु संगीत-प्रेम सीखा नहीं जा सकता।

अपनी व्यक्तिगत रुचि तथा परिस्थितियों से भिन्न विषय का चयन करना कवि की प्रतिभा की दूसरी विशेषता है, क्योंकि कवि के प्रत्यक्ष अनुभव का विषय चुन लेने से उसका काव्य उत्कृष्ट नहीं बन सकता।

काव्य में बिम्ब-विधान कितना भी स्वाभाविक और सच्चा हो, वह कवि-प्रतिभा की विशिष्टता का द्योतक

(शेष पृष्ठ ३४९ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

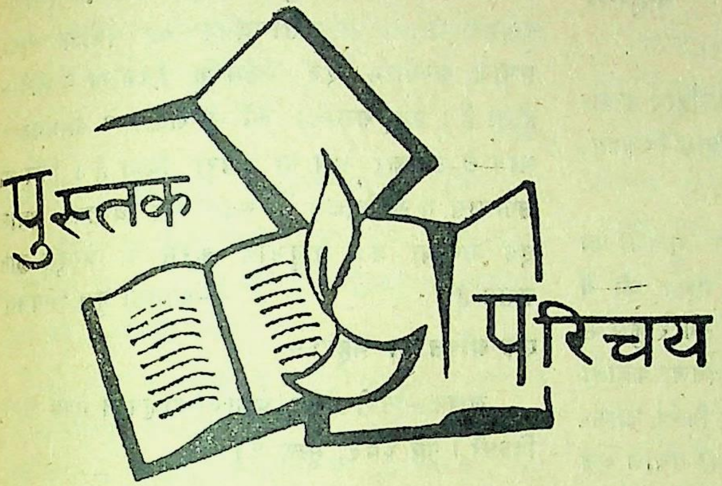

समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिये

कविता

रवीन्द्रनाथ की कविताएँ—

अनुवादक—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी-सिंह दिनकर, हंसकुमार तिवारी, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रका०—साहित्य अकादेमी, रवीन्द्रभवन, नई दिल्ली–१ पृष्ठ ३२६, मूल्य १२.००

प्रस्तुत पुस्तक में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की १०१ श्रेष्ठ कविताओं का हिन्दी अनुवाद दिया गया है। यह कहना तो उचित न होना कि ये कविताएँ टैगोर की सर्व श्रेष्ठ कविताएँ हैं पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि चुनाव में पर्याप्त सतर्कता रखी गई है क्योंकि प्रायः इन कविताओं में मानव हृदय की सभी भाव भंगिमाएँ एवं अनुभूतियों का चित्रण सहज ही प्राप्त हो जाता है। अतएव ये कविताएँ कवि की भावोर्मियों का प्रतिनिधित्व तो करती ही हैं साथ ही उनके मानसिक वैभिन्न को भी पाठक के साथ अनुभूतिपरक बनाती हैं।

टैगोर का अनुभव एवं ज्ञान विशाल था। वे अपने इसी परिवेश में काव्य का निर्माण करते थे। एतदर्थ उनकी कविताओं के पढ़ने से विश्वजनीनता का प्रकाशपुँज पाठक में दीप्त हो उठता है। इस तरह टैगोर की ये कविताएँ सुपाठ्य एवं ज्ञान वर्द्धक हैं, अतएव संग्रहणीय हैं।

स्मृति की लहर—

लेखक—विद्याविनोद गुप्त, प्रका०—श्री बंशकुमार देवांगन, चम्पा (म० प्र०)। पृष्ठ ७०, मू० १.००।

५० कविताओं के इस संग्रह में लेखक ने सभी तरह के विचारों की अभिव्यक्ति की है। दशहरा और दिवाली की खुशियाँ भी हैं और अध्यापकों की आह भी। प्रयाण गीत हैं और अरमानों का बाजार भी।

नाटक

तीन एकांकी—

लेखिका—श्री लक्ष्मी कुट्टी अम्मा, प्रकाशक—राज-पाल एण्डसन्स दिल्ली–६। पृष्ठ १००, मू० २.००।

श्रीमती अम्मा केरल निवासिनी हैं। आपके लिखे हुए तीन एकांकियों का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। तीनों एकांकी राष्ट्रीय भावना से भरे हुये हैं और नाटकीय कला की दृष्टि से भी बहुत सुफल हैं। ऐसी सुन्दर रचना के लिये श्रीमती अम्मा हमारी बधाई की पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

प्रभातकुमार मुखर्जी की कहानियाँ—

अनुवादक—मदनलाल जैन, प्रका०—साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की ओर से साहित्य निकेतन, कानपुर। पृष्ठ २०८, मूल्य ६.५०

प्रस्तुत संकलन में श्री प्रभातकुमार मुखर्जी का १० कहानियाँ संग्रहीत हैं। बँगला भाषा की ये कहानियाँ टैगोर की समकालीन हैं पर टैगोर कुल से भिन्न। प्रभातकुमार मुखर्जी का स्थान बँगला कहानी साहित्य में टैगोर के उपरान्त आता है किन्तु 'अल्प-गल्प' के परिप्रेक्ष्य में प्रथम। ये कहानियाँ यथार्थ एवं वास्तविक पटों के मध्य घूमती हैं। इसीलिए इनमें जीवन का क्रन्दन है न कि कल्पनाओं का नन्दन।

इनकी कहानियों का विषय जीवन के क्रोड़ से हस्तगत किया जाता है इसीलिए इनका समुचित आदर हुआ। प्रस्तुत सङ्कलन बँगला से हिन्दी में अनुवादित होकर हिन्दी जगत में आ रहा है। अनुवादक ने लेखक के प्रवाह को कहीं भी अवरुद्ध नहीं होने दिया है, यही उसकी विशेषता है। भाषा की सहज बोध-गम्यता एवं प्रस्तुतीकरण बड़ा ही सजीव एवं उपयुक्त है। अतएव हिन्दी के पाठकों को बँगला की इन श्रेष्ठ कहानियों का आनन्द मूलरूप में ही प्राप्त हो जाता है। समग्र रूप से कहानियाँ भाव-प्रधान एवं यथार्थता के क्रोड़ में चुलबुलाती हैं।

उपन्यास

बदलती रेखाएँ—

लेखक—डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', प्रकाशक—राजस्थान प्रकाशन, जयपुर। पृ० १२१, मू० २.५०

आँचलिकता का दामन पकड़े प्रस्तुत छोटा सा उपन्यास विज्ञान एवं अर्थ के पाटों के मध्य चक्कर लगाकर पिसता सा प्रतीत होता है। लेखक ने विज्ञान एवं मानव के महत्त्वांकन का प्रयास तो किया है किन्तु किसी भी उपचार का प्रतिष्ठापन करने में मौन रह जाना उचित नहीं।

मानव जीवन के मूल्यों को विज्ञान की तुला पर रखकर तौलना भी सन्तोषजनक नहीं क्योंकि जीवन समाज, अध्यात्म एवं दर्शन के त्रिकोण में शीर्षस्थ होता है। डाकू समस्या को भी लेखक ने अन्यमनस्क भाव से उठाकर खेप सा गिरा दिया है। फिर भी उपन्यास में मनोरंजन के स्थान पर चिन्तन, संत्रास एवं मनीषा का प्रादुर्भाव करने में प्रस्तुत कृति सक्षम है। —कामता गुप्त 'कमलेश'

एक औरत का चेहरा—

लेखक—हेनरी जेम्स, प्रका०—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ६८६, मूल्य ६)

'एक औरत का चेहरा' हेनरी जेम्स के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'दी पोर्ट्रेट आफ ए लेडी' का हिन्दी अनुवाद है। इसका अनुवाद हिन्दी के जाने माने उपन्यासकार श्री मोहन राकेश ने किया है। अनुवाद बहुत सुन्दर बन पड़ा है। इस उपन्यास की गणना हेनरी जेम्स की सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में होती है। अनेक आलोचक भी इसे इसी रूप में मानते हैं।

इस उपन्यास की नायिका इजाबेल आर्थर को भी विश्व के सर्वश्रेष्ठ चुने हुए औपन्यासिक चरित्रों में गिना जाता है। यह उपन्यास हेनरी जेम्स का पहला बृहत उपन्यास है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन १८८१ में हुआ था। लगभग दो शताब्दी बीत जाने पर भी इसका आदर कम नहीं हुआ है।

जीवनी

साहित्यकार बालकृष्ण बलदुआ——

लेखक—राष्ट्रबन्धु, प्रकाशक—विद्या भूषण प्रकाशन, १०६/३०६ रामकृष्ण नगर, कानपुर—१२। पृ० ५६, मू० १.००।

प्रस्तुत पुस्तिका में श्री बालकृष्ण बलदुआ के साहित्यिक जीवन का उनकी कृतियों के माध्यम से वर्णन किया गया है। साथ ही उन पर संक्षिप्त आलोचनात्मक दृष्टि भी फेंकी गई है। साहित्यकार परिचय के परिप्रेक्ष्य में पुस्तक का अभीष्ट सन्तोषजनक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती मन्दिर के एकान्त में बैठे साहित्य-साधना करने वाले ऐसे भक्तों को प्रकाश में लाने के लिए इस प्रकार के प्रकाशन श्लाध्य हैं।

धर्म

राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—

लेखक—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्रकाशक—मन्त्री, श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीरजी, जयपुर। पृ० २९६, मूल्य ९.००

जैन सन्तों एवं साहित्य सेवियों का हिन्दी-साहित्य एवं समाज पर अत्यधिक भार होते हुए भी बहुसंख्यक रत्न अब भी अज्ञान के कर्दम में फँसे पड़े हैं। डा० कासलीवाल ने इसका अनुभव किया और उन्हें बड़े परिश्रम से निकालकर प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से हिन्दी-साहित्य के क्रोड़ में कौतुक करने को रख दिया। इस पुस्तक में ५४ छोटे-बड़े जैन सन्तों का जीवन-परिचय, साहित्य एवं महत्त्वपूर्ण कृतियाँ तथा वाणियों को पिरोया गया है। लेखक ने एक मात्र इन्हें संगुम्फित ही नहीं किया वरन् उस पर अपनी न्यायिक दृष्टि भी फेंकी है। साथ ही विवादास्पद शब्दों, समस्याओं को भी नूतन आयाम देने का प्रयास भी है। इन जैन सन्तों के प्रकाश में आने से साहित्य की एक धारा को विशेष बल मिला है। वस्तुतः १५ वीं शती से लेकर १७ वीं शती तक राजस्थान में जैन भट्टारकों का बाहुल्य रहा। लगभग ३०० वर्षों के सुदीर्घ परिवेश में इन भट्टारकों का कार्य-क्षेत्र भी जीवन के प्रत्येक पहलुओं से अनुप्राणित होता रहा एतदर्थ उनका प्रभाव तत्कालीन समाज पर खूब पड़ा। इतना सब होते हुए भी अभी तक इस महत्वपूर्ण भट्टारक-परम्परा को इतिहास के क्रमिक पृष्ठों पर स्थान न मिल पाया था। शायद शोध के अभाव एवं सामग्री की दुरूहता के कारण आज के सहज-सुलभ लेखक एवं पाठक इससे उदासीन रहे। पर प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन से मार्ग प्रशस्त हो गया है और आशा है कि इन जैन सन्तों की तपस्या का फल हिन्दी साहित्य को मिलेगा।

गुरुदेव भक्ति गंगा—

सम्पादक—मुनि श्री विद्यानन्दजी, प्रकाशक—घूनीमल विशालचन्द, चावड़ी बाजार, दिल्ली—६।

मुनि श्री विद्यानन्दजी बड़े ही विद्वान और विभिन्न धर्मों के अच्छे ज्ञाता हैं। इस पुस्तक में उन्होंने ४५ पद व कवितायें ऐसी संग्रहित की हैं जिनमें ज्ञान और अध्यात्म भरा हुआ है। सभी कविताओं के लेखक और पदों के रचयिता प्राचीन कवि हैं। संग्रह की विशेषता यह है कि प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर पद देकर नीचे मुनिजी ने उनका अर्थ दिया है जो बहुत ही सरल है। नीचे पाद टिप्पणियाँ हैं जिनमें कठिन शब्दों का शब्दार्थ दिया है। इस प्रकार से यह पुस्तक अध्यात्म प्रेमियों के लिये ही नहीं, साहित्य-प्रेमियों के लिये भी पठनीय है। यह पुस्तक शायद भेंट दी जाती है क्योंकि इसमें कहीं मूल्य अङ्कित नहीं है।

विज्ञान

कल क्या होगा—.

अनुवादक—अजय, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, दिल्ली—३२। पृष्ठ १३०, मू० १.००।

यह पुस्तक अंग्रेजी की 'साइन्स फोर टूमारो' के आधार पर लिखी गई है। इसमें इलैक्ट्रान की अन्तरिक्ष, मौसम ज्ञान, समुद्र ज्ञान जैसे नौ विषयों का वर्णन है, जिसमें यह बताया गया है कि विज्ञान की सतत उन्नति के अनुसार भविष्य में क्या होने की सम्भावना है। विज्ञान के विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों के लिये यह पुस्तक समान रूप से उपयोगी होगी।

हास्य

डा० एम० ए०, पी-एच० डी०—

लेखक—रोशनलाल सुरीरवाला, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी बुक डिपो, अलीगढ़। पृष्ठ १६५, मू० ३.००।

प्रस्तुत पुस्तक हास्य और व्यंग्य के साहित्य में नई देन है। इसमें २५ छोटे-छोटे लेख संग्रहित हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें चित्र देकर उनकी हास्यप्रियता और बढ़ा दी गई है। अधिकांश लेख सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक हैं। चित्र भी अच्छे हैं!

नैतिक

सफलता के सूत्र—

ले०—सन्तराम बी० ए०, प्र०—हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली ३२। पृष्ठ ११२, मूल्य १)

सन्तरामजी ने अनेक नैतिक पुस्तकें लिखी हैं, और इस तरह के साहित्य में अच्छा हाथ बटाया है। प्रस्तुत पुस्तक में आपने उन्नत जीवन बनाने के लिए अनेक व्यावहारिक सुझाव दिये हैं, जो बहुत ही उपयोगी हैं। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं, वाग्पटु बनिये, चिन्ता : एक शत्रु, निर्भीक बनिये, स्वास्थ्य को बनाइये। पुस्तक पढ़ने पढ़ाने लायक है।

फुटकर

सुदर्शन चक्र अभिनन्दन ग्रन्थ—

सम्पादक—५ सज्जन, प्रकाशक—संघ अभिनन्दन समिति, कानपुर। पृष्ठ १८८, मूल्य ५)

प्रस्तुत ग्रन्थ कानपुर के साहित्य साधक सुदर्शन चक्र के अभिनन्दन में निकाला गया है, इसमें पचासों महानुभावों के उद्गार चक्रजी के अभिनन्दन में प्रकट किये गये हैं। पुस्तक का रूप अभिनन्दन ग्रन्थ जैसा न हो कर बहुत सादा पुस्तक जैसा है।

कला

भारतीय साहित्य और कलाएँ—

ले०—प्रो० एन० चन्दशेखरन नायर, प्रकाशक—श्रीनिकेतन प्रकाशन, त्रिरुवन्दनम् ४। पृष्ठ ७०, चित्र ३६, मूल्य ५.००

प्रस्तुत पुस्तक में केरल के विद्वान लेखक प्रो० नायर ने केरल की साहित्य और कला सम्बन्धी विशेषताओं को प्रकट कर भारतीय साहित्य में अनुपम योग दान दिया है। हम इस सुन्दर एवं उद्योगी कृति के लिए प्रो० नायर को बधाई देते हैं।

सङ्गीत

सरल संगीत मंजूषा—

रचयिता—श्री रामनरुला, प्र०—जयासिंघल विद्यार्थी भवन प्रकाशन, सिरसा (हरियाना) आकार बड़ा, पृष्ठ ११२, मूल्य ३.००

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भक्ति काव्य और गजल के गीत संग्रहीत किए हैं, नीचे गानों की स्वर लिपि देकर सङ्गीत प्रेमियों के लिये सुविधा कर दी गई है। प्रथम खण्ड के गीत हिन्दी के पुराने कवि मीराबाई, कबीर, सूरदास, तुलसीदास आदि के हैं। दूसरे खंड में हिन्दी के १५ कवियों की कविताएँ दी गई हैं। तीसरा खण्ड गजल का है जिसमें उर्दू के मशहूर शायरों की गजलें शामिल की गई हैं। तीनों संग्रह सुरुचि पूर्ण और सुन्दर हैं।

हिन्द छात्र गान—

ले०—श्री महावीरप्रसाद मुकेश, प्र.—विद्यार्थी भवन प्रकाशन सिरसा (हरियाना) पृष्ठ १२१, मू० २.००

मुकेशजी के गानों की यह पुस्तक ५ भागों में विभक्त है। बन्दना, वीरगान खण्ड, परवगान खण्ड, गुणगान खण्ड एवं विभिन्नगान खण्ड। विषयों के अनुसार सभी खण्डों में कवितायें अच्छी हैं। नीचे स्वर-लिपि देकर संगीत प्रेमियों के लिये अधिक उपयोगी बना दिया गया है।

पत्रिका

इतिहास अनुशीलन—

सम्पा०—डा० रामशरण, प्रका०—इतिहास अनुशीलन प्रतिष्ठान, भूपाल।

यह पत्रिका नई प्रकाशित हुई है। इसका पहला अंक हमारे सामने है, राष्ट्रभाषा हिन्दी में इतिहास विषयक यह पहली शोध पत्रिका है, इसमें १४६ पृष्ठ हैं। वार्षिक मूल्य ६ रुपया है। इस अङ्क में २० गवेषणापूर्ण लेख हैं। हम ऐसी सुन्दर पत्रिका का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में सामग्री के अनुसार इसके रूप रंग में भी निखार आयेगा।

—कमलेन्द्रु जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध लेखकों की चुनी हुई पुस्तकें पढ़िए—

ईदो (४३५) २·००

आचार्य चतुरसेन

विश्वयुद्ध की भयानक पृष्ठभूमि पर आधारित लोकप्रिय लेखक का प्रसिद्ध उपन्यास।

पर्दे की रानी (४३६) २·००

इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी का महान उपन्यास। विख्यात लेखक की श्रेष्ठ रचना। मार्मिक और अत्यन्त रोचक।

बम्बई रात की बाँहों में (४३७) २·००

ख्वाजा अहमद अब्बास

मशहूर लेखक का एकदम नया उपन्यास जिसके आधार पर इसी नाम की लोकप्रिय फिल्म बनी है।

दो दिल एक कहानी (४३८) २·००

महेन्द्रनाथ

प्रेम के तिकोन को एक नये अन्दाज में पेश करने वाला बेहद रोचक उपन्यास।

ससुराल (४३९) २·००

शौकत थानवी

प्रसिद्ध लेखक के हास्य-व्यंग्य से भरपूर दो उपन्यास 'ससुराल' और 'राजा साहब'।

एक सांवली लड़की (४४०) १·००

अमृतराय

माने हुए कहानीकार की चुनी हुई कहानियाँ, जिनका पैनापन अपना एक अलग ही रंग रखता है।

अंधेरा बँगला (४४१) १·००

कर्नल रंजीत

अत्यन्त लोकप्रिय जासूसी उपन्यासकार का एकदम नया सनसनीखेज उपन्यास।

भारत ज्ञान कोश (वार्षिकी) (४४२)
१९६८-६९ २·००

सं० अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

भारत और संसार के बारे में नवीनतम और पूर्ण प्रामाणिक जानकारी से भरपूर उपयोगी संदर्भ पुस्तक।

श्रेष्ठ और सुरुचिपूर्ण
पुस्तकों की पहचान

अपने नगर के पुस्तक-विक्रेता, रेलवे बुकस्टाल या रोडवेज बुकस्टाल से खरीदिए

विस्तृत सूचीपत्र के लिए हमें लिखिए

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लिमिटेड, शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० एल० 263 साहित्य सन्देश, मार्च 1968 लाइसेंस नं० 16.
Licensed post without prepayment

हमारी रेलें एकता और राष्ट्रीय अखण्डता को बढ़ाती हैं

भारतीय रेलें—
अब अपने
११५ वर्ष पूरे कर चुकी हैं !

davp 68/25

भारतेन्दु जैन द्वारा साहित्य-प्रेस में मुद्रित तथा साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२९, अङ्क १०] अप्रैल, १९६८ [मूल्य साठ पैस

इस अङ्क में—

१—हमारी विचारधारा — सम्पादकीय — ३६१

२—आंग्ल निबन्ध बनाम हिन्दी निबन्ध — डा० ब्रह्मस्वरूप वर्मा — ३६५

३—देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान — डा० (श्रीमती) राज बुद्धिराजा — ३७०

४—'गंगालहरी' एवं 'यमुनालहरी' की यथार्थता — भगवानसहाय पचौरी 'भवेश' — ३७३

५—राम की शक्ति पूजा : कथ्य और कौशल — देवीप्रसाद वर्मा — ३७६

६—कामायनी में नियति का कंचुकीय निदर्शन — डा० कन्हैयालाल सहल — ३७९

७—'एक भारतीय आत्मा' का प्रकृति पूजन — महावीर प्रसाद शर्मा — ३८१

८—आग और पानी : एक मूल्यांकन — डा० नत्थनसिंह — ३८३

९—गुरु गोविन्दसिंह कृत : राष्ट्रीय चेतना का रामकाव्य गोविन्द रामायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के अत्यन्त लोकप्रिय लेखक

गुलशन नन्दा

का

एकदम नया रोमांटिक उपन्यास

कटी पतंग

मूल्य : दो रुपये

गुलशन नन्दा की लाजवाब कलम का कमाल 'कटी पतंग' बड़ी ही विचित्र और नाजुक परिस्थितियों में घिरी एक सुन्दर युवती की ऐसी मार्मिक कहानी है, जो शुरू से ही आपके मन को बाँध लेगी और जिसे समाप्त किये बिना आप छोड़ नहीं सकेंगे।

गुलशन नन्दा का एक और लोकप्रिय उपन्यास

मैली चाँदनी

मूल्य : केवल एक रुपया

अपने नगर के पुस्तक विक्रेता से प्राप्त करें, न मिलने पर हमें लिखें :

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

साहित्य सन्देश के विशेषाङ्क

जो अब अप्राप्य होते जा रहे हैं

१९५२	आलोचना अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५३	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५५	उपन्यास अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५६	नाटक अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५७	भाषा विज्ञान अङ्क (पुस्तक रूप में)	२॥)
१९५८	प्रगति विशेषाङ्क (विगत १० वर्ष का)	२)
१९५९	सन्त साहित्य अङ्क	२)
१९५९	ऐतिहासिक उपन्यास अङ्क	२)
१९६०	प्रगति अङ्क	२)
१९६०	रीति काव्यालोचनाङ्क	२)
१९६१	शोध विशेषाङ्क (अप्राप्य)	—
१९६१	निराला विशेषाङ्क ,,	—
१९६२	निबन्ध विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९६२	साहित्य शास्त्र विशेषाङ्क	२)
१९६३	रांगेय राघव अङ्क	२)
१९६३	शिवपूजन सहाय अङ्क	१)
१९६४	बाबू गुलाबराय अङ्क	२)
१९६४	वीर काव्य विशेषांक (अप्राप्य)	—
१९६५	द्विवेदी अङ्क	२)
१९६५	राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक	२)
१९६६	हरिऔध अङ्क	२)
१९६६	विद्यापति विशेषाङ्क	२)
१९६७	रत्नाकर विशेषाङ्क	२)
१९६७	बच्चन विशेषाङ्क	२)
	प्रसाद विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
	कहानी विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)

कम से कम २०) के आर्डर पर २५% कमीशन।

डाक व्यय पृथक्।

रेल से मँगाने पर व्यय कम होगा।

आर्डर के साथ ५) रुपया पेशगी भेजिए।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग—२९ अङ्क—१०

सम्पादक
महेन्द्र

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

अप्रैल—१९६८

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार—

प्रसिद्ध उद्योगपति साहू शान्तिप्रसाद द्वारा स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार ने अपने तीसरे वर्ष के पुरस्कार की भी घोषणा कर दी। पहले वर्ष १९६५ में यह पुरस्कार 'बाँसुरी' नामक मलयालम भाषा की पुस्तक पर केरल के प्रसिद्ध कवि श्री शंकर कुरुप को मिला था। पाठकों को मालूम है कि भारतवर्ष में यह सबसे बड़ा पुरस्कार है और बड़ी छानबीन के साथ दिया जाता है। इस पुरस्कार में एक लाख रुपये के अतिरिक्त एक प्रशस्ति पत्र और धातु की सरस्वती की एक भव्य प्रतिमा दी जाती है। १९६६ में दूसरा पुरस्कार बंगला के प्रसिद्ध लेखक श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय को उनके ख्यातिप्राप्त उपन्यास 'गणदेवता' पर मिला। बन्द्योपाध्यायजी ने गत वर्ष इस सम्मान के अवसर पर जो भाषण दिया था उसके निम्न शब्द बड़े मार्मिक थे—"मैं निश्चित जानता हूँ कि मेरे इस सम्मान का कारण मुझे उपलक्ष्य कर केवल बँगला साहित्य ही नहीं, बंगला-साहित्य के हाथों समग्र भारत के साहित्य का सम्मान किया गया है। यह सम्मान समग्र रूप से भारतीय-संस्कृति का है।

भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने सांस्कृतिक कार्यक्रम के माध्यम से पुनः इस भारतीय-संस्कृति को ही सम्मानित करने की व्यवस्था की है। भारतीय-संस्कृति को सम्मानित करने के लिए जिस तरह की वेदी उन्होंने रची है, उसके लिए वह विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। एक भारतवासी के नाते गहरी आन्तरिकता के साथ मैं उन्हें धन्यवाद ज्ञापन कर रहा हूँ।"

१९६७ के तीसरे पुरस्कार की भी घोषणा अभी हुई है। अबकी बार एक लाख रुपये का यह पुरस्कार दो लेखकों में बँट गया है। दोनों लेखक समान स्तर के समझे गए और पुरस्कार को दोनों लेखकों में विभाजित करके पचास-पचास हजार रुपया मिलेगा। इनमें एक हैं कन्नड़ कवि श्री के० वी० कुटप्पा और दूसरे हैं गुजराती कवि श्री उमाशंकरजी जोशी। कुटप्पाजी का ग्रन्थ है 'रामायण दर्शनम्' और गुजराती का 'निशीथ'। यह पुरस्कार दिल्ली में बड़े समारोहपूर्वक दिया जाता है और सांस्कृतिक दृष्टि से इस अवसर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा ही भव्य आयोजन होता है। पहले और दूसरे उत्सव जिन लोगों ने देखे हैं वे उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

पुरस्कार के देने की जो प्राविधि है वह भी बड़े महत्व की है। परीक्षा की कई आगों में तप कर यह निर्णय होता है और सभी भारतीय भाषाओं के ग्रन्थ इस परीक्षाग्नि में तपते हैं और बहुत ही विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा यह निर्णय लिया जाता है, इसलिए भी इसका बड़ा महत्व है।

पुरस्कार प्रदाता साहूजी ने इस पुरस्कार की स्थापना करके और बड़े-बड़े विद्वानों की प्रवर समिति को इसे सौंपकर अपनी महानता का जो परिचय दिया है उसकी प्रशंसा हम शतमुख से भी नहीं कर सकते। पुरस्कार कमेटी की अध्यक्षा श्रीमती रमारानी जैन और उसके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन की भी हम प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। जो इतने शोभनीय और निष्पक्ष ढंग से पुरस्कार का निर्णय कराने में सफल हो रहे हैं। हमारी आन्तरिक भावना है कि साहूजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमारानी इस पुरस्कार को प्रदान करने के लिए शताधिक वर्ष तक जीवित रहकर साहित्य की महती सेवा का सुख लूटते रहें।

सम्मानित उपाधियाँ—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस वर्ष अपने उपाधि वितरण उत्सव पर हिन्दी के चार विद्वानों को 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि प्रदान कर सम्मानित करने का निश्चय किया है। यह हैं १—आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी जो शब्दशास्त्र, व्याकरण और समालोचना के माने हुए विद्वान हैं। २—पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र जो मध्य प्रदेश की राजनीति में तो प्रसिद्ध हैं ही, उससे भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं अपनी 'कृष्णायन' लिख कर। पाठकों को मालूम है कि रामायण के ढङ्ग पर ही कृष्णायन लिखकर उसमें राम के ढङ्ग पर ही कृष्ण का चरित्र वर्णन है। ३—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार विख्यात मासिक कल्याण के सम्पादक तथा धर्म और नीतिशास्त्र के माने हुए लेखक हैं। ४—श्री सूर्यनारायण व्यास उज्जैन निवासी ज्योतिष शास्त्र के श्रेष्ठतम विद्वान और लेखक हैं। सम्मेलन ने इन विद्वानों का सम्मान कर अपना सम्मान बढ़ाया है और एक पुण्य कार्य किया है। हमें इस समाचार को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई है।

सूर-स्मारक-मण्डल—

पिछले कई वर्ष से सूर-स्मारक मण्डल नाम से एक अल्प विज्ञापित संस्था आगरा में काम कर रही है। मण्डल का उद्देश्य महाकवि सूरदास की क्रीड़ा स्थली रुनकता में उनका एक स्मारक बनाकर उनकी कीर्ति को स्थायी बनाना है। सूरकुटी, गऊघाट पर अपने प्रयास का श्रीगणेश स्वर्गीय राजर्षि पुरषोत्तमदास टण्डन की अध्यक्षता में १९५२ में किया गया था। तभी से निरन्तर वहाँ पर सूर-जयन्ती एवं सूर-संगोष्ठियों का संयोजन होता चला आ रहा है। मण्डल के पास अब ३०,००० रुपयें के मूल्य की पूर्ण स्वामित्व की भूमि है तथा वन-विभाग की कुछ भूमि पट्टे पर है। एक स्थायी मान्यता प्राप्त विद्यालय है, जिसके छात्र एवं अध्यापक महाकवि सूर की वाणी के व्यापक प्रचार एवं प्रसार में लगे हुए हैं।

सरकार की कृपा से इस क्षेत्र का नामकरण 'सूर वन' हो गया है और प्रति वर्ष सूर-कुटी पर एक मेला होता है जिसमें आस-पास के हजारों आदमी एकत्रित होते हैं। इस वर्ष भी यह मेला ११ और १२ मई को बड़ी धूम-धाम से हुआ। दोनों दिन रात में लोकगीत सम्मेलन और कवि सम्मेलन हुए जिसमें देर तक लोग देखते सुनते रहे।

सूर-स्मारक-मण्डल के इस सब काम के लिए यों तो एक कमेटी बनी हुई है जो बड़ी रुचि से काम कर रही है—पर मण्डल की जीवनी शक्ति उसके मन्त्री श्री सिद्धेश्वरप्रसादजी श्रीवास्तव ही हैं जिनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप जंगल में भी मंगल हो रहा है। श्रीवास्तवजी इन दिनों आगरा नहीं मथुरा हैं पर उनका प्रयास और उत्साह वैसा ही बना हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। किसी भी संस्था की क्रियाशीलता एक दो विशिष्ट व्यक्तियों के परिश्रम पर ही निर्भर रहती है। जिस संस्था को ऐसे कर्मठ कार्यकर्त्ता मिल जाते हैं वही उन्नति कर जाती है।

हिन्दी सेवक संघ—

हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी के प्रयोग और उसके आन्दोलन में गति लाने के लिए एक 'हिन्दी सेवक संघ' की स्थापना हुई है जिसमें लगभग पाँच लाख स्वयंसेवक भर्ती होंगे। सेठ गोविन्ददास जो इसके संस्थापक हैं, के अनुसार इस संघ का कार्य अहिंसात्मक होगा और इसके स्वयं सेवकों को हिंसात्मक कार्य न करने की प्रतिज्ञा लेनी होगी। वे मन, वाणी और कर्म से हिन्दी के हित में कार्य करेंगे। ये स्वयंसेवक हिन्दी भाषी राज्यों के राज्यपाल, मुख्य मन्त्री, वकीलों तथा अन्य बुद्धि जीवियों का घेराव करेंगे और उनसे आग्रह करेंगे कि ३१ दिसम्बर, १९६८ तक अपने राज्यों में हिन्दी को पूर्ण रूपसे अपने कार्यों में प्रयोग करें।

हम आशा करते हैं कि आगामी वर्ष 'हिन्दी सेवक संघ' द्वारा जो आन्दोलन छेड़ा जाएगा वह राष्ट्र भाषा प्रेम एवं हिन्दी को समाज के कण-कण में फैलाने में सफल होगा। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें भी सङ्घ की उद्देश्यपूर्ति में अपना सहयोग देंगी।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास—

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने भारतीय भाषाओं के विकास की योजनाएँ बनायी हैं। भारतीय भाषा समिति द्वारा नियुक्त एक समिति उनकी समीक्षा करेगी। समिति ने सरकार से भारतीय भाषा संस्थान स्थापित करने और इसकी स्थापना के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करने का अनुरोध किया है। इससे विभिन्न भाषाओं और शब्दावलियों के अनुसंधान तथा तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय भाषाओं की बुनियादी एकता दृढ़ होगी। समिति ने सिफारिश की है कि क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें तैयार करने के कार्य में तेजी लाई जाय। इस कार्य को शीघ्रता से कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों को अपने राज्यों से संघटन स्थापित करने चाहिए। राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयों से कहा गया है कि वे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विकसित शब्दों को क्षेत्रीय भाषाओं में शीघ्रता से स्वीकार करने के सम्बन्ध में सफल कदम उठाएँ।

समिति ने सन्दर्भ साहित्य के सम्बन्ध में सुझाव दिया है कि समिति के अध्यक्ष साहित्य अकादमी के परामर्श से विभिन्न भाषाओं में कोषों, विश्व कोषों और सन्दर्भ साहित्य के निर्माण कार्य की समीक्षा करने तथा सुझाव देने के लिए एक समिति बनाएँ। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि लगभल २० हजार शब्दों को त्रिभाषा कोषों (अंग्रेजी, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा) की रचना की जाय।

केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डा० त्रिगुणसेन ने समिति की बैठक का उद्घाटन करते हुए कहा कि भारतीय भाषाओं को देश की इस एकता को मजबूत बनाने में योग देना चाहिए जोकि विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के मध्य विविधता में विद्यमान है।

हिन्दी गुणगान का समय बीत चुका—

समय बदल गया, नीति बदल गई और परिस्थितियाँ भी बदल गईं। अब तो समय आ गया है जब सभी हिन्दी भाषी राज्यों को यह प्रकाशित करना है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में किस प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से सब कार्य सम्मानित किया जाए। हिन्दी के गुण गान एवं उसके ऐश्वर्य-महत्व का उद्धरण देकर प्रतिपादित करने का समय बीत चुका। हिन्दी के प्रयोग के लिए संविधान ने जो अवधि रखी थी उसे भी बीते काफी समय हो गया। अतएव अब भी यदि हिन्दी भाषी राज्यों में कहीं भी अंग्रजी का व्यहार होता है तो वह न केवल प्रमाद अथवा आत्मविस्मृति की दशा है वरन् हिन्दी के ऊपर छिप कर वाण चलाने की बात होगी। ऐसी दशा में हिन्दी का सुदृढ़ हो पाना कठिन हो जायगा। राज्य सरकारें अपना सारा कार्य हिन्दी में करने के लिए अमुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि से क्रियान्वित करने की प्रतिज्ञा करती हैं किन्तु निदान जब वह तिथि आती है तो कोई न कोई अड़चन बाधा दिखाकर द्रौपदी के चीर की भाँति उसे बढ़ाते जाते हैं। ऐसी दशा में हिन्दी का क्या नवीन रूप निखरेगा और क्या अंग्रेजी भारत से हट सकेगी ? कह सकना कठिन है ऐसे समय में तो दृढ़-सङ्कल्प के साथ कार्य करने में ही भलाई है। यह तो नितान्त सत्य है कि प्रारम्भ में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं पर इन कठिनाइयों से डर कर मार्ग छोड़ देना अच्छा नहीं। इससे तो "प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः" वाली कहावत चरितार्थ होगी। अतएव हिन्दी के लिए तो विघ्न चाहे जितने आएँ उनका सामना करते हुए अपना कार्य करते जाना चाहिए और आगे बढ़ने के लिए साहस रखना चाहिए। तभी राष्ट्रभाषा की प्रगति सम्भव होगी।

विश्व हिन्दी सम्मेलन—

सामयिक परिस्थितियों एवं तर्कजालों के मध्य हिन्दी का जो वर्तमान रूप है वह सर्वविदित है। हर-एक स्वतन्त्र देश की अपनी एक निजी राष्ट्रभाषा होती है जोकि उसके समग्र रूप का प्रतिनिधित्व करती है। भारत भी एक स्वतन्त्र देश है किन्तु अभी तक इसकी राष्ट्रभाषा का अपेक्षित रूप जनता के समक्ष नहीं आ पाया है। यद्यपि हिन्दी को इसका स्थान प्राप्त अवश्य है किन्तु कुछ अप्रत्याशित घटनाओं, चर्चाओं, भ्रान्तियों एवं असत्यों के झंझावात में उसका ठीक से महत्वांकन नहीं हो पा रहा है, यह खेद का विषय है। जैसे मानव अपनी भाषा एवं वाणी में ही वार्त्तालापादि करता है वैसे राष्ट्र भी अपनी राष्ट्रभाषा में विश्व के रंगमंच पर उतरता है। इस आवश्यकता को देखते हुए राष्ट्रभाषा को स्थायित्व देना एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है। कानपुर में आगामी शीत ऋतु में विश्व हिन्दी सम्मेलन की आयोजना इसी के परिप्रेक्ष्य में की जा रही है।

सम्मेलन का विश्व रूप उसकी विस्तृता को देखते हुए रखा गया है क्योंकि आज हिन्दी विश्व के अन्य बहुत से देशों में पढ़ी एवं पढ़ाई जाती है तथा उसको 'संयुक्त राष्ट्र-परिषद्' की 'आफीसियल' भाषा के रूप में रखवाने के प्रयास हो रहे हैं। अतएव यह विश्व सम्मेलन हिन्दी के गौरव को बढ़ाने तथा प्रगति में सहायता देने के साथ बड़ा ही उपयोगी होगा। इस सम्मेलन में सभी संस्थाओं के प्रतिनिधि पत्रकार, साहित्यकार एवं हिन्दी-प्रेमियों को सहर्ष भाग लेकर उसे सफल बनाने में अपना योग देना चाहिए जिससे कि देश को एक अपनी निजी भाषा और वाणी को प्रमुखता मिल सके।

साहित्य सन्देश के विशेषाङ्क—

साहित्य सन्देश अपने विशेषाङ्कों के लिए विख्यात है। इन विशेषाकों की इतनी माँग रहती है कि अधिक छापने पर भी हम उसे पूरा नहीं कर पाते। कई विशेषांक तो समाप्त होने के बाद पुस्तक रूप में छपा दिए गए और उनके कई-कई संस्करण हो गए। हमारा निराला विशेषांक अब प्राप्य नहीं हैं। इसी तरह और भी कई विशेषांक आज अप्राप्य हैं। इस वर्ष भी हमने दो विशेषांक निकाले थे और दोनों ही बहुत पसन्द किए गए। आगामी वर्ष भी हम दो विशेषांक निकाल रहे हैं। पहला विशेषांक साहित्याचार्य श्री पं० परशुरामजी चतुर्वेदी के सम्बन्ध में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर होगा जो जुलाई अगस्त का संयुक्त अंक होगा। चतुर्वेदीजी जुलाई के आस-पास ही अपनी ७५ वर्ष की आयु पूरी कर रहे हैं। वे बड़े ही मूक साधक रहे हैं और कौन नहीं जानता कि बड़े ही विशिष्ट विद्वान और मूर्धन्य समालोचक हैं। ऐसे विद्वान् के सम्मान में हम अपना योग दे सकेंगे—यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। चतुर्वेदीजी के कई ग्रन्थ उच्च परीक्षाओं में हैं, अतएव हिन्दी की ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थी इस विशेषांक से बहुत लाभ उठा सकेंगे। इस विशेषांक का मूल्य अलग से दो रुपया होगा। दूसरा विशेषांक जनवरी में निकलेगा, उसका मूल्य भी इतना ही होगा। ग्राहकों को यह विशेषांक ६) में ही मिलेंगे। आशा है हमारे स्नेही बन्धु स्वयं ग्राहक बने रह कर और दूसरों को ग्राहक बनाकर हमें सहयोग प्रदान करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• डा० ब्रह्मस्वरूप शर्मा

आंग्ल निबन्ध बनाम हिन्दी निबन्ध

किसी भाषा के साहित्य को अन्य भाषा के परिवेश में बैठाने का अर्थ उसकी हीनता अथवा न्यूनता के प्रति विदेशी दृष्टिकोण रखकर व्यंग्य कसना नहीं अपितु प्रथम के माध्यम से द्वितीय की सर्वाङ्गीण व्याख्या करके अभावपूर्ति हेतु साहित्यकारों का सचेत करना ही है। बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य पर आंग्ल साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा है और निबन्ध विधा भी इस प्रभाव से वंचित नहीं है। हिन्दी निबन्ध साहित्य के सम्यक् अध्ययन के पश्चात् यह जानकर आश्चर्य होता है कि हिन्दी की यह विधा अपने आदिकाल, भारतेन्दु युग में ही शिथिल पड़ गयी। हिन्दी की अन्य विधायें आंग्ल साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करती साहित्य को समृद्ध बनाती गयीं किन्तु निबन्ध विधा दो चार निबन्धकारों तक ही सीमित रहकर आलोचकों में आलोचना रूप में परिवर्तित हो गयी। आधुनिक समालोचकों और साहित्य आचार्यों ने निबन्ध विधा का उद्भव संस्कृत साहित्य से माना है निबन्ध शब्द संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है किन्तु उसका सँस्कृत में उन स्थानों पर वह अर्थ नहीं जो सम्प्रति निबन्ध से लगाया जाता है। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि आदि की भाँति निबन्ध भी शब्द रूप में किन्तु भिन्न अर्थ में संस्कृत साहित्य में रहकर विशिष्ट विधा के रूप में आधुनिक काल में ही परिपुष्ट हुआ है। भारतेन्दु युग हिन्दी-साहित्य में क्रान्ति का युग था। उस काल में हिन्दी, अंग्रेजी तथा बंगाली से सामग्री तथा प्रेरणा ग्रहण करके अपनी समस्त विधाओं को पुष्ट कर रही थी। यद्यपि यह युग गद्यकाल का आदि-युग था अतः सृजन में पुष्टता नहीं आ पायी थी, यह परवर्ती युग में आयी। हिन्दी में निबन्ध विधा का यह दुर्भाग्य रहा कि वह परवर्ती युग में पुष्टता तो क्या, अर्जित स्वास्थ्य को भी न सँभाल सकी। अंग्रेजी में भी निबन्ध विधा फ्रेंच भाषा की देन है। मौनटेन से प्रेरणा पाकर बेकन ने अंग्रेजी में निबन्ध लिखे, यद्यपि उनके निबन्धों का रूप सर्वथा भिन्न रहा। अंग्रेजी में निबन्धों का आरम्भ सोलहवीं सदी में बेकन से हो जाता है और पुनः अविरल निबन्धकार इस विधा को पुष्ट करते रहे किन्तु हिन्दी में बीसवीं सदी के आरम्भ में यह स्वतन्त्र अस्तित्व पाकर बीस-तीस वर्षों बाद ही शिथिल पड़ जाती है। अंग्रेजी भाषा के चार-पाँच सौ वर्षों के संचित निबन्ध साहित्य के परिवेश में हिन्दी के बीस-तीस वर्षों के लेख, आलोचना को भी निबन्ध मान लें तो पचास-साठ वर्षों के निबन्ध-साहित्य को देखने से लगता है कि उसकी परिधि में हिन्दी ढीली बहुत है।

हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में निबन्ध-विषयक मान्यताएँ समान रही हैं, यद्यपि शब्दों की भिन्न व्याख्याओं ने उलझनें भी बहुत उत्पन्न की हैं। निबन्ध विधा के आविष्कर्ता मौनटैन ने कहा है "ऐसे वैयक्तिक विचार या अनुभूति को एक कलात्मक सूत्र में पिरो देने का ही प्रयत्न मात्र है।" मौनटैन वह पहला लेखक है जिसके निबन्धों को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकारा जा सकता है। मौनटैन को निबन्ध लेखन की मूलतः प्रेरणा रोमन लेखक सिसरो से मिली और सिसरो स्वयं इस प्रयत्न में प्लेटो का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋणी है। अंग्रेजी में निबन्ध विधा को सुव्यवस्थित रूप देने का श्रेय लैम्ब को है जिसे 'प्रिंस ऑफ एसैस' कहा जाता है। एडीसन और स्टील जो एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं—ने इसके रिक्त भाण्डार को सैकड़ों सम्पन्न निबन्धों से भरा। डा० जॉनसन ने कहा है "निबन्ध मन की ऐसी विशृङ्खल विचार तरंग है जो अनियमित और अपच है—A loose Sally of the mind, an irregular, undigested piece, not a regular and orderly performance." बेकन ने अपने निबन्धों को 'dispersed meditation' कहा है। संस्कृत में इस प्रयत्न के लिए प्रबन्ध, निबन्ध, लेख तीन शब्द मिलते हैं। निबन्ध के शास्त्रीय स्वरूप का अनुमान सुबन्धु की वासवदत्ता में उपलब्ध इस पंक्ति "प्रत्यक्षर श्लेषमय प्रबन्ध विन्यास वैदग्ध निधि निबन्ध चक्रे"–से लग जाता है। संस्कृत में लेख शब्द साधारण पत्रादि लिखने के अर्थ में प्रयुक्त होता था "लेखोयनमयेतिनेप्ररमिदं मुद्रा मदीयामत:" (मुद्राराक्षस ५।१८)। प्रबन्ध से साधारणतया 'अनुज्झितार्थ सम्बन्ध'वाली रचना का ही बोध होता है। अत: स्पष्ट है कि संस्कृत में निबन्ध, प्रबन्ध और लेख भिन्न-भिन्न तीन भावों के हेतु प्रयुक्त होते थे। संस्कृत परिभाषा के अनुसार निबन्ध में दो गुण होने चाहिए—प्रथम उसका प्रत्यक्षर श्लेषमय होना चाहिए, द्वितीय उसका सब प्रकार से प्रबन्ध विन्यास वैदग्धों से विशिष्ट होना। हिन्दी में अनेक काव्य-ग्रन्थों में आया निबन्ध शब्द लेख अथवा प्रबन्ध से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ लगता है। "त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रसायन'। तुलसी के सम्बन्ध में नाभादासकृत भक्तमाल में प्रयुक्त निबन्ध शब्द से 'बाँधने' या 'संग्रहीत' का अर्थ ध्वनित होता है। निबन्ध वस्तुत: व्यक्ति विशेष की विचार-तरंग को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न मात्र ही है। निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व ही प्रधान रहता है। अंग्रेजी में इसी तत्व को Individuality कहते हैं। निबन्ध (essays) तथा लेख (articles) अवश्य ही दो भिन्न अभिव्यक्ति-प्रणालियाँ हैं।

अंग्रेजी में निबन्ध विधा का आरम्भ बेकन से १६वीं सदी से हो जाता है। १७वीं सदी के आरम्भ में निबन्ध विधा को एक नया रूप देने वाले जोसेफ हाल, सर थामस आवरबरी, जान अर्ल जैसे कुछ निबन्ध लेखक हुए जिन्होंने मानव जीवन के विविध अंगों को अपने निबन्ध का विषय बनाया। इन लेखकों के निबन्धों में संवेदन और व्यंग्य की प्रधानता है। इनके वर्णित चरित्रों में वैयक्तिकता एवं मौलिकता की न्यूनता है। बेकन के पश्चात वैयक्तिकता प्रधान निबन्ध लेखक अब्राहम काले ही हुआ जिसने विविध विषयों पर मौनटैन प्रणाली के अनुसार "myself, of Salitude, of Liberty, of the Garden, of Greatnass जैसे निबन्ध लिखे। ड्राईडन द्वारा अंग्रेजी में आलोचनात्मक निबन्धों का आविर्भाव हुआ। यदि बेकन अंग्रेजी में Father of English essays कहा जाता है तो ड्राइडन The Father of English Criticism कहा जाता है। उसकी कृति Essays of Dramatic Poesy का आज भी बहुत मान है। १८वीं सदी में अंग्रेजी निबन्धों का विकास The Tatler तथा The spectator पत्रों द्वारा हुआ। एडीसन और स्टील अंग्रेजी साहित्य क्षेत्र में एक दूसरे के पूरक कहे जाते हैं। एडीसन Master of Periodical Essay कहा जाता है। उसने लगभग ४०० निबन्ध लिखे। गोल्डस्मिथ के पश्चात इन पत्रिकाओं का स्वरूप आलोचनात्मक होता गया। इनमें ललित निबन्धों के स्थान पर आलोचनात्मक और राजनैतिक निबन्धों को अधिक स्थान दिया जाता रहा। The Gentleman's Magazine, The Edinburgh Review, The quarterly Review, Beack wood's Magazine, The London Magazine आदि पत्रिकाएँ आलोचनात्मक निबन्ध ही प्रकाशित करती रहीं। इस युग के प्रमुख आलोचनात्मक निबन्ध लेखक हैं—चार्ल्स लैम्ब, केहंट, विलियम हैजलिट, कॉलरिज, मैकाले, मैथ्यू आरनोल्ड। लैम्ब के निबन्धों में उसके चरित्र तथा वैयक्तिकता की प्रधानता है। The Essays of Elia के अध्ययन से उसके सम्पूर्ण जीवन की एक झाँकी मिल जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आर० एल० स्टीवेंसन ने पुनः वैयक्तिकता प्रधान निबन्धों का उत्थान किया और उसकी तुलना लैम्ब से की जाती है। बीसवीं सदी में निबन्धों का नवोन्मेष पत्र-पत्रिकाओं से हुआ। इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं— जी० के० चेसटर्टन, ई० वी० लूकस, राबर्ट लिंड। इस युग के निबन्धों में आलोचनात्मक लेख के गुण अधिक हैं। उन्हें विषय-प्रधान या वैयक्तिकता प्रधान निबन्धों की श्रेणी में विभाजित करना कठिन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजी में सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक गद्य-साहित्य की यह विधा विभिन्न रूपों में निश्चित परिभाषा और क्षेत्र के अभाव में भी सम्पन्न होती गयी और आज लगभग ५०० वर्षों का निबन्ध साहित्य अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

हिन्दी में निबन्ध साहित्य का उद्भव भारतेन्दु युग में हुआ। संस्कृत में निबन्ध नाम्नी स्वतन्त्र विधा का अस्तित्व और विकास नहीं मिलता। हिन्दी में सोलहवीं सदी का युग भक्तिकाल था। उस समय निबन्ध जैसी कोई स्वतन्त्र विधा नहीं थी। अंग्रेजी में चारसौ वर्षों तक निबन्धों का अविरल विकास हुआ किन्तु हिन्दी में शून्य शून्य ही रही। भारतेन्दुजी से पहले भी 'राजा भोज का सपना' जैसी रचना है जिसे निबन्ध या कहानी में विभाजित करना कठिन है। भारतेन्तुजी ने 'पाँचवाँ पैगम्बर' तथा 'स्वर्ग में विचार सभा' निबन्ध लिखकर हिन्दी में निबन्ध-रचना की परम्परा चलाई। इस युग में निबन्धों का विकास पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ। लगभग २७ पत्रिकाएँ इस युग में छपती थीं। बालकृष्ण भट्ट एवं प्रतापनारायण मिश्र ने क्रमशः 'हिन्दी-प्रदीप' तथा 'ब्राह्मण' पत्रों द्वारा निबन्ध विधा को सम्पन्न बनाया। भट्टजी निस्सन्देह हिन्दी-साहित्य के लैम्ब हैं। अंग्रेजी में ज्यों एडीसन और स्टील एक दूसरे के पूरक हैं वैसे ही हिन्दी में भट्टजी और मिश्रजी। भट्टजी में गम्भीरता है और मिश्रजी में चुहल। प्रेमघन, ज्वालाप्रसाद, तोताराम, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास इस युग के अन्य निबन्धकार हैं। इस युग के निबन्धों में वैयक्तिकता की प्रधानता है। भारतेन्दु युग की यह परम्परा द्विवेदी युग में शिथिल हो गई। इस युग में भी निबन्ध विधा का विकास पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही होता है परन्तु उन निबन्धों में विषय की प्रधानता है, वैयक्तिता गुह्य है। निबन्धकार विषय का उल्लेख मात्र करते हैं। उनमें वह मस्ती नहीं जो भारतेन्दु-युगीन निबन्धकारों में है। इस युग के निबन्धकार हैं महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दरदास, पदमसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, माधवप्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह। सरदार पूर्णसिंह, मिश्र और गुलेरी के निबन्धों में प्रभावान्विति की विशेषता है। उनमें विशेष ओज रहता है जो कृति में प्राण ला देता है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने आलोचनात्मक निबन्धों का सूत्रपात किया। 'कर्तव्य और सत्यता' जैसे निबन्ध कम ही लिखे गए। उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी एम० ए० के स्तर तक पढ़ाई जाने लगी थी। विभागाध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दरदास विद्यार्थियों के लिए आलोचना ग्रन्थ तैयार करने में लग गए। शुक्लजी के आविर्भाव से हिन्दी निबन्ध पुनः सजीव हो उठा। हिन्दी निबन्ध इतिहास में शुक्ल जी का स्थान निस्सन्देह बहुत ऊँचा है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक तथा आलोचनात्मक दोनों प्रकार के निबन्ध लिखे। शुक्लोत्तर युग तो एक आलोचनात्मक निबन्धों का ही युग है। आजकल पत्रिकाओं में मात्र आलोचनात्मक निबन्ध ही प्रकाशित होते हैं। बहुत से विद्वान आलोचकों के आलोचनात्मक निबन्ध संग्रह-बद्ध भी हो चुके हैं। आज निबन्ध जो जीवन की सर्वाङ्गीण व्याख्या करने में सर्वाधिक समर्थ विधा है आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करने तक ही सीमित है।

विषय वैविध्य की दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि अंग्रेजी में हिन्दी की अपेक्षा अधिक विविधता है। दोनों भाषाओं के निबन्ध साहित्य में एक समानता भी मिलती है, उसमें एक समय में एक ही विषय की प्रधानता रही। बेकन ने मौनटैन के विपरीत अपने निबन्धों को विषय प्रधान बनाया, न कि व्यक्ति प्रधान। मौनटैन ने कहा है—"I am myself the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

subjeet of my book" उसका उद्देश्य निबन्ध माध्यम द्वारा आत्मविज्ञप्ति ही है। बेकन के निबन्धों में दार्शनिकता अधिक है। कॉले ने मौनटैन के मार्ग का अनुसरण करते हुए विविध विषयों पर वैयक्तिकता प्रधान निबन्ध लिखे। १७ वीं सदी में ड्राइडन से आलोचनात्मक निबन्धों का सूत्रपात हुआ। १८ वीं सदी के आरम्भ में निबन्धों का स्वरूप यन्त्रों में बैठाने योग्य होता गया। सप्ताह में दो-दो बार तक एक ही निबन्धकार के एक ही पत्र में, निबन्ध छपने लगे। एडीसन और स्टील मुख्यतः पत्रिकाओं के ही लेखक हैं। इन पत्रिकाओं में प्रथम बार सामाजिक विषयों पर निबन्ध लिखे गये। गोल्ड स्मिथ (१७२८-७४) तक निबन्धों का रूप व्यापक होता गया और The Bee, The Citizen of the world जैसे निबन्ध लिखे गए। गोल्डस्मिथ के पश्चात् निबन्धों का स्वरूप नितान्त आलोचनात्मक हो गया। सामयिक पत्रिकाओं में साहित्यकार और साहित्यांगों पर मात्र आलोचनात्मक निबन्ध ही छपने लगे। थॉमस दी क्वेंसी ने आत्मकथा प्रधान तथा मैकाले ने ऐतिहासिक निबन्ध लिखे। चेस्टर्टन, लूकस, गार्डीनर, किंड आदि ने विविध विषयों पर निबन्ध लिखे और उनमें वैयक्तिकता की प्रधानता हैं। इस विधा के परिवेश में हिन्दी निबन्धों को रखें तो देखेंगे कि उनमें भी एक समय एक ही तत्व की प्रधानता रही है। भारतेन्दु युगीन निबन्धों में वैयक्तिकता है। भट्टजी के 'आँख', 'कान', 'नाक', 'आत्म निर्भरता', 'कल्पनाशक्ति' आदि निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की छाप है। मिश्र के 'आप', 'बात', 'वृद्ध', 'भौं' में उनके चुहल और विनोदप्रिय प्रकृति के दर्शन होते हैं। भारतेन्दु युग के निबन्धकारों ने साधारण विषयों पर असाधारण ढङ्ग से लिखा। द्विवेदी युगीन निबन्धकारों में सामाजिक विषयों पर लिखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। विभिन्न शास्त्रों से सामग्री ग्रहणकर ये निबन्धकार 'सामाजिक समस्याओं पर उपदेशात्मक प्रणाली में लिखा करते थे। उनमें विषय प्रधान और व्यक्तित्व गौण हैं। मिश्र तथा भट्ट जैसा हास्य व्यंग्य का पुट उनमें नहीं है और यही निबन्ध में रोचकता उत्पन्न करता है। माधवप्रसाद मिश्र ने जोश के साथ आर्य संस्कृति और सनातन धर्म के समर्थन में धार्मिक विषयों पर निबन्ध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त ने सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों को लेकर कई मनोरञ्जक निबन्ध लिखे जिनमें 'शिवशम्भु का चिट्ठा' बहुत प्रसिद्ध है। अध्यापक पूर्णसिंह ने ओजमयी शैली में विचार प्रधान निबन्ध क्षेत्र में आलोचना से प्रवेश किया। शुक्लजी ने ही 'चिन्तामणि' में मनोवैज्ञानिक निबन्ध लिखे। शुक्लोत्तर युग में मात्र आलोचनात्मक निबन्ध ही लिखे जाते रहे हैं। सम्प्रति हिन्दी साहित्य में निबन्धों में विविधता नहीं है। प्रायः प्राध्यापक आलोचक पत्रिकाओं में विविध साहित्यिक विषयों पर ही निबन्ध, जिनमें लेख के गुण अधिक हैं, लिख रहे हैं। सम्पूर्ण हिन्दी तथा अँग्रेजी निबन्ध साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि उनमें समय विशेष में एक ही प्रवृति दिखाई देती हैं। हिन्दी में अंग्रेजी निबन्धों की प्रवृतियाँ बहुत समय पश्चात् आती रही हैं। अंग्रेजी में वैयक्तिकता प्रधान निबन्ध सोलहवीं सदी में लिखे गए और हिन्दी में बीसवीं सदी के आदि में। इसी प्रकार अँग्रेजी में आलोचनात्मक निबन्ध १८ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखे गये। हिन्दी में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में। सामाजिक विषयों पर अंग्रेजी में मध्ययुग में निबन्ध लिखे गए और हिन्दी में द्विवेदी युग में। अंग्रेजी में पुनः वैयक्तिकता प्रधान निबन्ध लिखे जा रहे हैं, हिन्दी में यह अभाव अभी बना है। हिन्दी में 'अशोक के फूल', 'अमीर इरादे : गरीब इरादे', 'रेखा लेखा', विराम चिन्ह' आदि जैसे निबन्धों की महती आवश्यकता है।

निबन्ध का प्रमुख गुण उसमें व्यक्तित्व की छाप है। हिन्दी निबन्धों में यह वैयक्तिकता (Individuality) पूर्णतः प्रदर्शित नहीं होती। अँग्रेजी निबन्धकारों ने प्रायः आत्मप्रधान शैली में निबन्ध रचना की हैं। हिन्दी में प्रायः रचना अन्यपुरुष में तथा अँग्रेजी में उत्तम पुरुष में होती रही है। प्रथम प्रणाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार वैयक्तिकता परोक्ष रूप से तथा द्वितीय प्रणाली के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से प्रगट होती है। अंग्रेजी निबन्धकार किसी भी विषय पर लिखते समय वर्णन को 'मैं' से प्रारम्भ करते हैं। उनके निबन्ध उनपर घटी घटनाओं पर आधारित होते हैं। एडीसन का Sir Roger and Will Wimble निबन्ध लेखक द्वारा कही गयी प्रसङ्ग विशेष में कथा सी हैं। The Autobigraphy of a shilling, A Vision of Mirzah आदि निबन्ध भी उसकी इसी प्रवृति के द्योतक हैं। हिन्दी में सम्भवतः किसी लेखक ने आत्म प्रधान शैली में घटना आधारित निबन्ध नहीं लिखे। भट्ट और मिश्र के निबन्धों में उनकी वैयक्तिकता उनके 'आत्मनिरर्भता' तथा 'आप' जैसे अन्य पुरुष में लिखे गए निबन्धों से प्रगट हो गयी है। लेखक अपनी रुचि के विषयों पर लिखते रहे और यही रुचि उनकी वैयक्तिकता बन गयी। विषय की भाँति शैली भी वैयक्तिकता का मुख्य तत्व है। भट्टजी और मिश्रजी की निबन्ध शैलियों को आसानी से पहचाना जा सकता है। कोई विषय लेकर उसमें अध्ययन और स्वतन्त्र विचारों का पुट मिला कर विशेष शैली में प्रस्तुत कर देना ही निबन्ध लेखकों को भाता रहा है। हिन्दी-कहानियों में अवश्य उत्तम पुरुष वर्णन प्रणाली मिल जाती है किन्तु हिन्दी निबन्धों में नहीं। भारतीय साहित्यकारों की कुछ परम्परा सी रही है कि वे 'मैं' पर अधिक बल नहीं देते, 'तुम' और 'वह' को ही पकड़ते हैं। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी निबन्धों में निबन्धकारों का व्यक्तित्व पूर्णतः झलकता है।

अंग्रेजी के सम्पन्न निबन्धों के परिवेश में हिन्दी के विपन्न निबन्धों को देखें तो ज्ञात होगा कि उस देश में निबन्ध विधा में लोगों की रुचि रही है और इस देश में नहीं। हिन्दी ही नहीं और अनेक भारतीय भाषाओं में निबन्ध विधा उपेक्षित रही है। मराठी और बंगाली ही सम्भवतः ऐसी भाषायें रहीं हैं जिनमें उच्चकोटि के निबन्ध लिखे जाते रहे हैं। मराठी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री खांडेकरजी के निबन्धों का 'चाँदनी' नाम से हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी में दैनिक विषयों पर अच्छे निबन्ध लिखे गए, हिन्दी में ऐसे निबन्ध कम ही हैं। यद्यपि छुटपुट निबन्ध बीसवीं सदी के आरम्भ से ही लिखे जाते रहे हैं किन्तु किसी भी साहित्यकार ने जम कर निबन्ध नहीं लिखे। निबन्धकारों के निबन्ध-क्षेत्र से पलायन का कारण था, उन्हें निबन्ध के पाठक नहीं मिलते थे। निबन्ध एक ऐसी रचना है जो पत्रिकाओं के माध्यम से पनप सकती है। 'ब्राह्मण' 'हिन्दी-प्रदीप' आदि पत्रिकाओं को सदैव ग्राहकों से चन्दे के लिए निवेदन करते ही रहना पड़ता था। लेखक पत्रिकाओं के माध्यम से ही जनता के सम्मुख आता है और जब जनता उसमें एक व्यक्तित्व (Individuality) देखती है तो उसके 'संग्रह' को पढ़ने की इच्छा करती है। हिन्दी-क्षेत्र में ये दोनों बातें ही नहीं हो पायीं। इसके विपरीत इंगलैण्ड में सामान्य व्यक्ति की भी रुचि पढ़ने की होती है। अंक विवरण देखने से ज्ञात होता है कि संसार में पत्र-पाठकों का सर्वाधिक प्रतिशत इंगलैंड में है। निबन्ध एक विचार प्रधान साहित्यिक रचना है। यह उसी जाति या देश में सम्पन्न हो सकता है जहाँ सामान्य पाठकों की रुचि भी साहित्य के माध्यम से कुछ सीखने की हो। हमारे देश में साहित्यिक पत्र तो क्या अन्य विषयों में प्रकाशित सम-सामयिक पत्रिकाएँ भी विद्यार्थियों द्वारा नहीं पढ़ी जातीं। बीसवीं सदी में हिन्दी की सभी विधाएँ आंग्ल साहित्य से प्रभावित होकर सम्पन्न बनने को सचेष्ट हुई हैं और हो भी गई हैं किन्तु निबन्ध विधा उपेक्षित ही रही है। आज जिस गति से उपन्यासकार या कहानीकार उत्पन्न हो रहे हैं तथा उपन्यास और कहानियाँ छप रही हैं उस गति से निबन्धकार नहीं बन रहे, न निबन्ध ही छप रहे हैं। यह निश्चित है कि जिस भाषा का निबन्ध साहित्य सम्पन्न नहीं उस भाषा में जीवन विषयक अभिव्यक्ति की सुलभता नहीं आ सकती और न ही वह गद्य की अप्रौढ़ता के कारण उच्च शिक्षा के माध्यम तथा प्रशासन कार्यभार के योग्य हो सकती है। अंग्रेजी निबन्ध-साहित्य के परिवेश में हिन्दी निबन्धों को रखने से लगता है कि उसकी परिधि में ये निबन्ध बड़े शिथिल हैं। उनमें अभी परिपक्वता लानी है।

—गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, कडलूर (मद्रास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● डा० (श्रीमती) राज बुद्धिराजा

देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान

अनुभूति काव्य का आत्मतत्व है तथा अभिव्यक्ति शरीरतत्व। अनुभूति और अभिव्यक्ति के मणि-कांचन सहयोग से कृति सप्राण होती है। यद्यपि काव्य में इन दोनों के व्यंजक उपादानों का विन्यास अत्यन्त संश्लिष्ट होता है तथापि उसकी साफल्य अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से सृजनात्मक तथा कलात्मक संवेदनाओं का विशिष्ट प्रकटीकरण है। अभिव्यक्ति की सीमा में भावप्रकाशन की समस्त सीमाएँ आ जाती हैं। अभिव्यक्ति की पूर्ण सफलता के लिए आवश्यक बौद्धिक उपकरणों (शब्दविन्यास, अलङ्कार, प्रतीक, बिम्ब तथा छन्द) के संयोजन का कौशल ही विधान है।

महाकवि देव रीतिकालीन वसन्त वन के भाव मुखर पिक हैं। जनश्रुति के आधार पर इनकी ग्रन्थ संख्या ५२ या ७२ है परन्तु आज इनके केवल १८ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। देव ने अनुभूति के शुद्ध चित्रण को ही काव्य का ध्येय माना है। शृङ्गारी कवि होने के कारण रूप के प्रति इनकी संवेदना अत्यन्त तीव्र रही है। सौन्दर्य में भी नारी-सौन्दर्य ही कवि के आकर्षण का विषय रहा है, जिसको ग्रहण कर उसकी सुरम्य कल्पनाओं से सुवासित दूरस्थ संसार उसके अत्यधिक निकट हो गया है। देव ने नारी का व्यक्तित्व उसकी भंगिमा, चलने-फिरने की अदा और नाना प्रकार के हाव-भाव में माना है। नारी का माता, बहिन, सखी और देश-सेविका का रूप इससे ग्राह्य नहीं है। देव-काव्य के झीने आवरण में नारी का रेशमी सौन्दर्य ही झिल-मिलाता रहा है। कवि की अत्यधिक रागभावना वैराग्य में परिणत हो जाती है। जीवन के कटु अनुभव उसे आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करते हैं।

शृङ्गार हो या अध्यात्म, काव्य में उसकी अनुभूति का शुद्ध चित्रण हुआ है। कवि केवल भावनाओं को लेकर चला है, ज्ञान को नहीं। वैराग्य सम्बन्धी पदों में भी उसकी आत्माभिव्यक्ति ही प्रकट हुई है। देव का कार्य केवल सौन्दर्य दिखाना ही है। उसका ध्येय भावों का निरूपण, सौन्दर्य का चित्रण और अनुभूतियों का आख्यान प्रस्तुत करना है। वह केवल सौन्दर्य प्रेमी है, शुद्ध कलाकार है। उसके काव्य की प्रभविष्णुता का उत्स उसके ज्ञान और अनुभव में नहीं उसकी कलाकारिता में है। उसने अपनी संवेदनाओं को ईमानदारी तथा बिना किसी हिचकिचाहट के प्रकट कर दिया है। वह इस भय से पीछे नहीं हटा कि लोग निन्दा करेंगे या अश्लीलता का दोष लगाएँगे। वह इस लोभ में भी नहीं पड़ा कि वह जरा सा हट नारी की उपयोगिता का चित्रण करे, तो जनता अथवा आगामी पीढ़ी उस पर प्रशंसा की वृष्टि करेगी। उसके काव्य ने उपयोगिता की सीमा के बाहर जन्म लिया है। यहाँ कोई उपदेश नहीं है, कर्म की कोई प्रेरणा नहीं है, न मनुष्य अथवा समाज-सुधार की कोई चिन्ता है। देव-काव्य शुद्ध काव्य है। उसकी शैली अपनी शैली है, उसकी राह अपनी राह!

देव कुशल शिल्पी है। उसका शब्द-भण्डार समृद्ध है। उसने एक-एक शब्द को यत्न से तराशा है। वे सस्वर हैं, भाव भीतर न समा सकने के कारण शब्दों में फूट पड़े हैं। वे भाव-सौन्दर्य और वर्ण-विन्यास की निबिड़ संगति न केवल देवकाव्य अपितु रीतिकाव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कलात्मक उपलब्धि की श्रेष्ठता के द्योतक हैं। स्वर और व्यंजन दोनों ही कथन का आवयविक तत्व बन कर काव्य को रमणीय बनाने के साथ-साथ स्मरणीय भी बनाते हैं। वर्ण विशेष पर आधृत चमत्कृति एवं अलंकरण की जितनी भी सम्भावनाएँ हो सकती हैं उन सब की अवतारणा कवि ने एक कुशल जड़िया की भाँति की है। शब्द के विभिन्न रूपों (पर्याय) द्वारा भाव में विशेष प्रकार की गरिमा उत्पन्न हो गई है। साभिप्राय विशेषण भावों, विचारों में गरिमा, अनुभूति की गहराई में स्पष्टता, शब्द-सौन्दर्य में कलात्मक निखार, नारी के उमड़ते हुए कामोद्दीपक रूप को द्विगुणित करने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं।

काव्य-ध्वनि और उक्ति-वक्रता का उचित निर्वाह देव की अपनी मौलिक विलेषता है। ये दोनों ही अभिव्यक्ति के समर्थ उपकरण हैं। अभिधा का उचित निर्वाह होने के साथ-साथ वियोग वर्णन, खंडिता-की उक्तियों तथा उद्धवप्रसंग में उक्तिवक्रता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। शृङ्गारपरक अंशों में ध्वनि तथा वक्रता के प्रायः सभी भेद मिलते हैं जबकि परमार्थ निरूपण-अंशों में केवल वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्ध वक्रता, उपचार तथा प्रकरण वक्रता ही प्रमुख रूप से द्रष्टव्य है।

अलङ्कार कथन की रोचक, ग्राह्य और प्रभावपूर्ण प्रणाली है। अलङ्कार भाषा के उत्कर्षक होने के साथ-साथ रूप गुण तथा क्रियानुभव को तीव्रता प्रदान करने का प्रमुख साधन है। शब्द के दोनों रूपों ध्वनि (Sound) तथा अर्थ (Sense) द्वारा क्रमशः शब्दालंकार तथा अर्थालंकार की सृष्टि होती है। देव ने शब्दालंकारों में वर्ण सङ्गीत तथा अर्थ ध्वनन का विशेष ध्यान रखा है। रूप साम्य, धर्म साम्य और प्रभाव-साम्य देव के अर्थालंकारों की बिशेषता है। अलंकार यहाँ वाणी की सजावट न होकर अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। देव ने नवीन उपमानों के प्रयोग के साथ-साथ परम्परित उपमानों को भी नवीन जामा पहनाया है। यद्यपि यह चमत्कार-अलंकारों से दूर रहा है परन्तु उस युग का राजसी ठाठ-बाट तथा वैभव अलंकारों में भी पाया जाता है। मानवीकरण देव की विशेषता है। यद्यपि इस अलंकार को आधुनिक युग में ही लोकप्रियता प्राप्त हुई है परन्तु देव ने न जाने इसका कितनी बार प्रयोग किया है।

प्रतीक विशेष प्रकार का व्यंजक शब्द है। यह केवल कल्पना की ही उन्मुक्त उड़ान न हो कर अनुभव के नूतन संयोग की प्रगति रेखा है। शब्द शक्ति की ध्वनि शैली से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थ की विपुलता के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता है। देव के प्रतीक कोमलता, स्निग्धता और सृजन के प्रतीक हैं। वे कवि के व्यक्तित्व और सामाजिक दृष्टिकोण को उभारने में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं।

बिम्ब भी आधुनिक युग की देन माना जाता है। परन्तु भारतीय काव्य शास्त्र में दृष्टान्त तथा निदर्शनी के लक्षणों में इसका प्रयोग हुआ है। इसका सम्बन्ध अलंकार और ध्वनि दोनों से है। परन्तु इसके अर्थ में अन्तर है। भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्ब अमूर्त भाव का द्योतक है जबकि आधुनिक अर्थ में वह मूल भाव को विम्बित करने वाला मूर्तिविधान है। बिम्ब एक शाब्दिक चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर शब्दों द्वारा निर्मित होता है। रूप के प्रति देव की संवेदना अत्यन्त सूक्ष्म है। पाठक के मन में उसे ज्यों का त्यों उद्बुद्ध करने के लिए कवि ने सम्पर्क बिम्ब-विधान का आश्रय लिया है। देव-काव्य में चाक्षुष बिम्बों की संख्या सबसे अधिक है परन्तु श्रौत, स्पृश्य और आस्वाद्य बिम्ब भी कम नहीं है। यहाँ शृङ्गार की सूक्ष्म रोमानी अनुभूति सहज रूप से सूक्ष्म कोमल तथा रंगीन बिम्बों में खिल उठी है। रूपानुभूति की प्रखर जगमगाहट ने बिम्ब को भी उज्ज्वलता प्रदान की है। इन बिम्बों में ऐन्द्रिय-गम्यता, वैभव और उल्लास का साम्राज्य है। देव की बिम्ब-योजना दर्पण में पड़ती हुई उस छाया के समान है जिसमें समाज की रेखाओं से अधिक उससे परे कवि के आन्तरिक भावों को देखा जा सकता है। संक्षेप में देव के बिम्ब-विधान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवेदनात्मकता अलँकरण प्रभविष्णुता प्राणवत्ता तथा क्रमबद्धता तो है ही साथ ही वस्तुजगत् से भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करनेकी शक्ति भी है।

व्यक्ति, विषय, भाषा एवं प्रयोजन के वैशिष्ट्य के अनुरूप अभिव्यंजना पद्धति का वैशिष्ट्य ही शैली है। जीवन के प्रति स्वस्थ और सुन्दर दृष्टिकोण ने ही देव की शैली में स्वस्थता, सौन्दर्य और सौष्ठव की अभिवृद्धि की है। अभिव्यञ्जना में भाषा का सर्वोपरि महत्व है। देव की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है जो उसे उत्तराधिकार में मिली थी। कवि के विस्तृत और समृद्ध शब्दकोष में तत्सम, तद्भव, देशी-विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का बाहुल्य है तथा इनका प्रयोग इतनी कुशलता से किया है कि भाषा-प्रवाह कहीं भी अवरुद्ध नहीं हुआ। माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों का स्वाभाविक ढंग से समावेश हुआ है। शृङ्गार-वर्णन में भाषा का सुसंस्कृत तथा परिमार्जित रूप और वात्सल्य वर्णन में ऋजु रूप दिखाई देता है। भाषा में माधुर्य, स्निग्धता, परुषता, मार्दव और लोच सभी कुछ सहज रूप से ही आ गया है। यह मसृणता, औज्ज्वल्य और कान्ति आदि गुणों से जगमगा रही है। लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा में दूध-पानी की तरह मिले हुए हैं। उन्हें एक दूसरे से विलग नहीं किया जा सकता।

कविता के लयात्मक सौन्दर्य की रक्षा के लिए छन्द अत्यावश्यक है। विभिन्न मनोभावों के अनुरूप विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया जाता है।

देव ने छन्द को कविता-कामिनी की गति माना है। सवैया और कवित्त ही देव के काव्य पर पूर्णरूपेण आच्छादित है। सवैये की तीनों गणों पर आधृत लय को कवि ने अपने छन्द विधान का आधार बनाया है। कवित्त को शृङ्गारोचित लय के अनुरूप ढालने के लिए देव ने सम अक्षर, वीप्सा तथा अन्त्यानुप्रास का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। 'देव घनाक्षरी' छन्द देव की मौलिक सूझ-बूझ का परिचायक है।

अभिव्यक्ति की आकुल प्रेरणा से मानव के व्यक्तित्व और अहं का प्रसार होता है। संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला और काव्य सभी की उत्पत्ति इसी ढंग से हुई है। रीतिकालीन कवियों के अभिव्यञ्जना शिल्प के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि बिहारी की अभिव्यञ्जना का प्रमुख गुण जड़ाव है। बिहारी की दृष्टि वस्तुपरक है जबकि देव की भावपरक। मतिराम का काव्य चंचल और स्वच्छ है तो देव का सागर की उत्ताल तरंगों के समान गम्भीर तथा अनन्त। अनुभूति की सचाई की दृष्टि से केवल घनानन्द ही देव के समकक्ष खड़े हो सकते हैं। तन्मयता, प्रवणशीलता तथा प्रचुर आवेग के होने पर भी यहाँ कान्ति, मसृणता तथा संगीत की मादक ध्वनि का अभाव है, जो देव की शैली की विशेषता है। देव-साहित्य में न राजदृष्टि की निर्भयता है और न धोबी के कहने पर निष्कलंक सीता को त्यागने की भावना। यहाँ हृदय मंथित करने वाली मर्म मधुर बंशी की ध्वनि में रामयुग की मर्यादा के तट डूब जाते हैं। देव की राग भावना गृहस्थ की देहरी से बाहर निकल गायों सी रँभाती, गोपियों-सी तन-मन की सुधि भूलती, वंशीध्वनि पर मुग्ध होती दिखाई देती है।

देव की कला का जन्म अक्षय सौन्दर्य के मूल से हुआ है। जीवन के निकट संघर्षों से उत्पन्न मानस की नीरवता, बेचैनी और धुँधलेपन की छाया ने देवकाव्य को करुणाप्लावित और विषादपूर्ण न बना कर मोहक सरणियों में माधुर्य प्रवाहित किया है। इसके चित्रों में रूप की रेखाएँ स्पष्ट और सजीव हैं। पुष्ट रेखाओं के साथ गहरे रंगों का प्रयोग इतनी सधी तूलिका से किया गया है कि सारा दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। कुशल शिल्पी देव ने प्रत्येक शब्द को ध्वनि वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँट कर उन्हें कोमलतम कलेवर दिया है। संक्षेप में देव की कला में पंखुड़ियों पर पड़ी ओस के समान रंगघुली तरलता है, जो पाठक को हल्का, तरल और संवेदनशील बना देती है।

—ए० १४, डी० टी० यू० कॉलोनी,
शादीपुर, दिल्ली-८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● भगवान सहाय पचौरी 'भवेश'

'गंगालहरी' एवं 'यमुनालहरी' की यथार्थता

गार्सां द तासी ने ग्वाल की 'यमुना लहरी' के विषय में लिखा था—'ग्वाल पद्माकर कृत 'गंगालहरी' (गंगा की लहर) के क्रम में प्रकाशित 'यमुना लहरी' (जमुना की लहर) के रचयिता हैं। 'बनारस १८६६, २०–२० पंक्तियों ३६ अठपेजी पृष्ठ।[1] तासी महोदय के कथन से ध्वनित होता है कि पद्माकर की 'लहरी' ग्वाल की 'लहरी' के पहले रची गई थी। श्री शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति साहित्येतिहासकारों ने इस विषय में मौन धारण किया है। श्री प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं—'कहते हैं, ग्वाल ने यह ग्रन्थ (यमुना लहरी) पद्माकर कवि कृत 'गङ्गालहरी' की प्रतियोगिता में बनाया था। जमुना लहरी के कुछ छन्दों में पद्माकर के अनुकरण की छाप भी है।[2] इससे स्पष्ट है कि मीतलजी का आधार साहित्यिक जनुश्रुति है जिसके अनुसार पद्माकर के अनुसरण पर ग्वाल की 'यमुना-लहरी' बताई गई है। आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र इस विषय में लिखते हैं—'इन्होंने (ग्वाल ने) अपने पूर्ववर्ती कवियों की शैली का विविध ग्रन्थों में अनुगमन करने का प्रयास किया है। पद्माकर की 'गंङ्गा लहरी' का अनुगमन करने का प्रयास किया गया है।[3] 'पद्माकर पंचामृत' में आचार्य श्री मिश्र इस सम्बन्ध में और भी स्पष्ट करके इसी मत की पुष्टि इन शब्दों में करते हैं—'ग्वाल ने तो मानों पद्माकर की होड़ाहोड़ी में ही रचनाएँ की हैं। उनकी 'यमुना लहरी' पद्माकर की 'गंगा लहरी' की होड़ा होड़ी में बनी और 'रसरंग', 'जगतविनोद' के अनुगमन पर निर्मित हुआ। इन कवियों में विषय की ही समानान्तरता नहीं है उप विषय, प्रसंग, भाव आदि ठीक आमने-सामने भिड़े बैठे हैं।[4] मिश्रजी का तो निर्णय ही है कि ग्वाल ने 'यमुना लहरी' पद्माकर के गंगालहरी' के अनुगमन पर बनाई।

परन्तु इन दोनों लहरियों के रचनाकाल को देखने पर और किंचित सतर्कता के साथ अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य का अवलोकन करने पर यही निर्णय इसके ठीक विपरीत जा बैठता है और अनुसरणकर्त्ता ग्वाल नहीं पद्माकर सिद्ध होते हैं।

ग्वाल की 'यमुना लहरी' के रचना काल के विषय में कहीं भी दो मत नहीं हैं। इसकी रचना सं० १८७९ वि० में हुई। अन्तर्साक्ष्य कहता है :

सवत निधि रिसि सिद्धि ससि कातिक मास सुजान।
पूरनमासी परमप्रिय, राधा हरि को ध्यान॥
भयौ प्रगट ताही सुदिन, जमुना लहरी ग्रन्थ।
पढ़ै सुनै आनन्द मिलै, जानि परै सुर पन्थ[5]॥

सभी विद्वानों ने इसकी पुष्टि की है।

पद्माकर की गंगा लहरी की रचना कब हुई अन्त-

[1] इस्त्वार दला लितरेत्यूर ऐंदूई एँ ऐंदुस्तानी : हिन्दी अनुवाद: हिन्दुई साहित्य का इतिहास डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—१९५३ पृष्ठ ६७-६८

[2] ग्वाल कवि—श्री प्रभुदयाल मीतल—२०१७ वि० पृष्ठ ४९

[3] हिन्दी साहित्य का अतीत: द्वितीय भाग २०२३ वि०— पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृष्ठ ६०५

[4] पद्माकर पंचामृत विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सं० १९९२ वि० पृष्ठ ७७

[5] यमुना लहरी, ग्वाल—छं० सं० १०७, १०८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्ष्य इस विषय में मौन है। तासी महोदय बस इतना लिखते हैं—'गंगा लहरी'—(गङ्गा की लहरें) सदासुखलाल कृत 'गंगा की लहर' शीर्षक रचना की भाँति। बनारस, १८६५, १० पंक्तियाँ, ३६ अठपेजी पृष्ठ[१]। इससे कोई भी बात नहीं बनती। श्री ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं कवि ने अन्तिम वर्ष गंगा की उपासना में बिताये और 'गंगा लहरी' नामक ग्रन्थ की रचना की।[२] सेंगरजी का कथन इस प्रकार है—'गंगा सेवन में शेषकाल व्यतीत किया। गंगा लहरी नामक ग्रन्थ इनका है।[३] मिश्र बन्धु महोदय इसके विषय में लिखते हैं: रोगमुक्त होने पर पद्माकरजी गंगा सेवनार्थ कानपुर चले गये और वहीं सुखपूर्वक अपनी आयु के शेष दिन उन्होंने प्रायः ७ साल तक व्यतीत किये। इसी समय उन्होंने गंगा लहरी नामक ५६ छन्दों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया।[४] इससे एक बात तो यह निश्चय होती है कि पद्माकर के अन्तिम ७ वर्ष कानपुर में गंगा सेवन में बीते और दूसरे यह कि यहीं गंगा लहरी की रचना हुई। पद्माकरजी का गंगा लाभ काल सं० १८९० वि० सर्व सम्मत और सर्व-मान्य है। इसके अनुसार गंगा लहरी की रचनाकाल सं० १८८३ से सं० १८९० वि० के बीच में निश्चित होता है। पं० रामचन्द शुक्ल ने अपने इतिहास में इसी मत की इन शब्दों में पुष्टि की है—अन्तिम समय निकट जान पद्माकरजी गंगातट के विचार से कानपुर चले आये और वहीं अपने जीवन के शेष सात वर्ष पूरे किये। अपनी प्रसिद्ध 'गंगा लहरी' इन्होंने इसी समय के बीच लिखी।'[१] कवि के वंशधर विद्वान पं० भालचन्द्र राव तैलंग इस प्रसंग में लिखते हैं—'वे सीधे कानपुर चले आये और अपनी गंगा लहरी ग्रन्थ सीधे कानपुर में ही समाप्त किया।'[२] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है कि—'ग्रन्त के पद्यों में मानों रचयिता गंगा के सम्मुख ही पहुँच गया है।'[३]

उपरोक्त सभी साक्ष्यों से गंगा लहरी कवि की अन्तिम रचना ठहरती है। साथ ही उनका कानपुर प्रवास काल इस रचना का रचना-काल निश्चित होता है। अतः 'गङ्गा लहरी' की रचना सं० १८८३ व १८९० वि० के मध्य हुई थी। इस मत के विरुद्ध कोई भी साक्ष्य दिखाई नहीं देता। डा० ब्रज-नारायणसिंह ने इस विषय में निष्कर्ष इस प्रकार निकाला है—'कवि ने इसकी रचना सं० १८८४ वि० के लगभग प्रारम्भ करदी होगी "तथा अन्तिम वर्ष (१८९० वि०) में आकर इस ग्रन्थ को कवि ने समाप्त किया। इस प्रकार कवि का यह अन्तिम ग्रन्थ ठहरता है।'[४]

उपर्युक्त साक्ष्यों के विवेचन से मेरा मन्तव्य यही सिद्ध करने का है कि 'गंगा लहरी' की रचना, बहुत खींचा जाय तो, सं० १८८३ वि० से पहले आरम्भ नहीं हुई थी। इसके विरुद्ध मत में सम्प्रति कोई प्रमाण नहीं। ग्वाल की 'यमुना लहरी' सं० १८७९ वि० में पूर्ण हो चुकी थी। इस प्रकार पद्माकर ने अपनी 'लहरी' को ग्वाल की लहरी के प्रायः ४-५ वर्ष उपरान्त लिखना आरम्भ किया था। अतः अतर्क्य रूप से 'गंगालहरी' 'यमुना लहरी' की परवर्ती रचना सिद्ध होती है न कि पूर्ववर्ती। इस परिस्थिति में ग्वाल ने पद्माकर का अनुगमन या अनु-

---

१ गार्सां द तासी का इतिहास अनु० हिन्दुई साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १३९।

२ Being richly rewarded he devoted the rest of his life to the worship of the Ganges and wrote a work named Ganga Lahri—Poet no. 506 : The modern vernacular literature of Hindustan.

३ शिवसिंह सरोज–ठा० शिवसिंह सेंगर सं० १९३४ संस्करण, पृ० ४०६।

४ मिश्रबन्धु विनोद—द्वितीय भाग—सं० १९८४ संस्करण पृष्ठ ९०६।

१ हि० सा० का इतिहास—आचार्य शुक्ल सं० २०१५ वि० पृष्ठ २९५

२ माधुरी वर्ष १३ खण्ड २ सं० १ सन् १९३४ ई०

३ पद्माकर पंचामृत —पृष्ठ १९

४ कविवर पद्माकर और उनका युग—डा० ब्रज-नारायणसिंह १९६६ पृष्ठ १३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरण कैसे कर लिया, यह विचारणीय है। यमुना लहरी और गंगा लहरी के कई छन्द परस्पर विषय और भावों में साम्य रखते हैं, इस विषय पर कई विद्वानों ने लिख रखा है।[१] इस पर यहाँ प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं दिखाई देती। यहाँ तो दोनों कवियों के 'चित्रगुप्त' आदि के प्रसङ्गों की ओर संकेत भर कर देना ही पर्याप्त होगा। विषय और भावसाम्य से इस धारणा को बल मिलता है कि पद्माकर ने ग्वाल की 'यमुना लहरी' का अनुगमन करके न केवल 'गगा लहरी' की रचना की थी, बल्कि 'जमुना लहरी' भी बनाई थी। यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा कि 'यमुना लहरी' ग्वाल की आरम्भिक रचना है और 'गंगा लहरी' और 'जमुना लहरी' पद्माकर की अन्तिम। अतः यह स्वाभाविक ही था कि पद्माकर की रचना ग्वाल की रचना से उत्कृष्ट होती। ग्वाल की 'यमुना लहरी' आरम्भिक कृति होने पर भी पर्याप्त मूल्यवान तथा प्रौढ़ रचना है।

इसका प्रकाशन ग्वाल के जीवन काल में ही सन् १८६६ ई० में हो गया था, जबकि पद्माकर की गंगा लहरी का प्रकाशन उनकी मृत्यु के प्रायः ३२ वर्ष पश्चात् सन् १८६५ ई० में हुआ था। ग्वाल की यमुना लहरी के नवल किशोर प्रेस लखनऊ के चार संस्करणों के देखने का अवसर हमें मिला है। इसका प्रकाशन 'निम्बार्क माधुरी' में भी हुआ। पंजाबी और गुजराती में भी इसके संस्करण हुए। काव्य-कला के साथ-साथ इसका काव्यशास्त्रीय महत्त्व भी है। कारण, इसमें षट्ऋतु वर्णन और नवरस का भी परिपाक है। पद्माकर की 'गंगा लहरी' में आद्यो-पान्त उत्कृष्ट काव्य के दर्शन होते हैं। अपने-अपने स्थान पर दोनों ही अत्यन्त महत्व की अमर कृतियाँ हैं। पद्माकर की 'यमुना लहरी' के कुछ एक छन्द ही खोज में मिलते हैं, जिन पर ग्वाल की 'यमुना लहरी' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह लिखना भी अप्रासंगिक नहीं दिखाई देता कि विद्वानों ने ग्वाल की कई अन्य रच-नाओं की भी किसी न किसी भ्रान्तिवश परवर्ती रचनाओं की अनुकृति बता रखा है। ग्वाल के 'हम्मीर हठ' को चन्द्रशेखर बाजपेयी के 'हम्मीर हठ' की अनुकृति ठहरा दिया गया है।[१] अन्तर्साक्ष्य के आधार पर ग्वाल का हम्मीर हठ सं० १८८३ वि० और चन्द्रशेखर का सं० १९०२ वि० में रचा गया था। यथा—

ग्वाल कृत हम्मीर हठ का छन्द—

संवत गुन सिधि सिधि ससी कातिक कुहू बखान।
श्री हमीर हठ प्रगटसौ, अमृतसर सुभ थान॥

चन्द्रशेखर बाजपेयी कृत हम्मीर हठ का छन्द—

कर नभ रस अरू आतमा, संवत फागुन मास।
कृष्ण पक्ष तिथि चौथ रवि, जेहि दिन ग्रन्थ प्रकास॥

ग्रन्थों के रचनाकाल को दृष्टि में रखकर ही किसी कवि की कृति को पूर्ववर्ती या परवर्ती घोषित किया जाता है। केवल छन्द साम्य आदि के आधार पर मात्र अनुमान के सहारे निष्कर्ष निकालना कदापि न्याय संगत नहीं कहा जा सकता।

---

[१] देखिये पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र कृत 'पद्माकर पंचामृत' एवं 'हिन्दी साहित्य का अतीत' द्वितीय भाग।

[१] अ—हिन्दी अनुशीलन का धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक ग्वाल कवि लेखक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ३३०।

ब—ग्वाल कवि—श्री प्रभुदयाल मीतल पृष्ठ ५४।

—रिसर्च स्कालर, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवीप्रसाद वर्मा

राम की शक्ति पूजा : कथ्य और कौशल

शीर्षक से ही स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति के नायक 'राम' हैं और राम का संक्षिप्त परिचय समालोचकों के सौम्य सन्त डा० विनयमोहन शर्मा के शब्दों में इस प्रकार है—"भारतीय साहित्य और जीवन में राम की सत्ता अप्रतिम है। संसार के किसी भी भाषा के साहित्य में ये नहीं पाया जाता कि साहित्य का नायक किसी जाति का आदर्श बनकर युग-युग तक उसे अनुप्राणित और उत्फुल्लित करता रहा हो।"

राम और कवि का व्यक्तित्व—तुलसीदास ने राम को 'परमब्रह्म' के रूप में प्रस्तुत किया और स्व० मैथिलीशरण गुप्त ने 'भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए उनको समक्ष रखा' परन्तु निराला ही कदाचित हिन्दी के ऐसे प्रथम कवि हैं जिन्होंने 'राम' का चित्रण न केवल युगानुरूप किया अपितु मानवीय मूल्यों के आधार पर अपने जीवन के सत्य को रखने में सफल हुए। सम्भवतः यही कारण है कि महाप्राण ने तटस्थ भाव से राम चरित्र के निर्माता कवि 'तुलसीदास' की रचना करने के पश्चात् पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित 'राम की शक्ति पूजा' में अपने जीवन के सत्य को रखने का सफल प्रयास किया। चिरदग्ध व्यक्तित्व की छाप प्रस्तुत कृतित्व पर स्पष्ट है—'दूसरों पर भी मैं बैर नहीं रखता पर जाने क्यों मुझे दूसरों से बैर ही मिलता है।' (सारदानन्द को लिखा कवि का पत्र ११/२/३६) और कवि अपने जीवन के कटु सत्य को सम्पूर्ण कविता में सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है—

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।"

निराला का अप्रतिम व्यक्तित्व कभी नहीं थका और अन्त में वह विजयी होता है—जिसकी अभिव्यक्ति वह राम के माध्यम से करता है—

"वह एक और मन रहा राम का जो न थका।"

परन्तु निरन्तर सङ्घर्ष करके अन्त में विजय वह पा ही लेता है और यहीं पर कविता का अन्त होता है।

'होगी जय होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन,
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"

और यही कवि की चरम उपलब्धि है क्योंकि वह महाशक्ति को राम में विलीन कराकर उसे अपना माध्यम बना स्वयं को विजयी बनाने में सफल होता है। महाप्राण विशाल और उदान्त के रूप में प्रतिपादित करने की क्षमता पा जाता है।

निराला के राम का विरोधी, अत्याचारी, जनद्रोही, खलनायक आसुरी मूल्यों का प्रतीक रावण है। संशय-निश्चय, पलायन-कर्त्तव्य, नीति-अनीति, आत्म भर्त्सना, शुद्ध-अशुद्ध आदि आज के जन-जीवन के पग-पग में व्याप्त सामान्य स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए आत्म विश्वास के आधार पर हो 'संशयवाद' और 'लघुतावाद' पर ही वे विजय प्राप्त करते हैं—

"रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त,
तो निश्चय तुम ही सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।"

राम का अन्तर्द्वन्द—कवि ने यदि एक ओर पौराणिक आख्यानों के आधार पर महाशक्ति की उपासना दिखलाई है तो दूसरी ओर राम के अन्तर्द्वन्द के द्वारा वर्त्तमान जन-जीवन में व्याप्त मानसिक अतर्द्वन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मार्मिक विश्लेषण कराया है।

क्रियाशील तमोगुण जीवन की परिस्थितियाँ हैं जिन्हें परास्त करने के लिए निराला के राम निरन्तर साधनों की खोज करते हैं। सांसारिक अवरोधों के कारण उनके मुँह से अनायास ही यह आह निकल जाती है—

"जानकी ! हाय उद्धार प्रिया की न हो सका।"

अधीर राम शक्ति की साधना करते हैं और उनका 'संशयवाद' स्वाभाविक क्रमसे प्रकट होता है—

"रघुकुल गौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण"

अतएव यह स्पष्ट है कि कवि ने शङ्कर के सदृश्य विषपान को ही मुक्ति का मार्ग माना है। अव्यवस्था, असन्तोष आसुरी शक्तियों में परिवर्तन की प्रतीक्षा में हताश कवि राम के माध्यम से स्वयं को विराट, और सर्वदमन रूप में परिवर्तित करता है। वस्तुतः यह 'राम की शक्ति पूजा' और कवि की अपनी परिस्थितियों की सीमा रेखायें मात्र हुई परन्तु यह निर्विवाद है कि वैज्ञानिक युग की कसौटी पर निराला का राम जितना खरा उतरा है वैसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। कदाचित् सन् १९३३ में रचित यह कविता की प्रगति का एक 'माइल स्टोन' का कार्य करता है।

शक्ति की मीमांसा—निराला को ३ वर्ष की अवस्था में मां तथा २०-२१ की अवस्था में पत्नी का विछोह सहना पड़ा—यह अभाव हर क्षण कवि को कचोटता था। साथ ही दार्शनिक अध्ययन के आधार पर वे विवेकानन्द और परमहंस से प्रभावित हैं। जहाँ एक ओर कवि ने विवेकानन्द से संयम और शौर्य लिया वहाँ दूसरी ओर परमहंस से माँ की उपासना अपनायी। महाकवि ने इसी अनियन्त्रित सत्ता को 'श्यामा जननी' कहकर भी पुकारा है।

स्वामी परमहंस प्रचण्डता, करालता और असुर विनाशिनी शक्ति रूप के परम उपासक थे। विवेकानन्द के अम्बास्त्रोत में भी इसी रूपका दिग्दर्शन होता है। जिसके नाम में आन्तक और स्वास में मृत्यु है। वह सर्वनाशिनी है। परन्तु निराला ने अपने काव्य कौशल से उस प्रचण्डता, विकरालता को काव्यात्मक विराट कल्पना के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

"मातः दशभुजा, विश्वज्योति, मैं हूँ आश्रित
हो विद्ध शक्ति से है महिषासुर खल मर्दित
जनरञ्जन-चरण-कमल-तल धन्य सिंह गर्जित।"

कवि मां के विराट रूप का दिग्दर्शन करता है परन्तु भयानकता के स्थान में सौम्यता का निरूपण करता है—

कथा-वस्तु—राम की शक्ति पूजा में कथा का पौराणिक आधार और वस्तु योजना का सुन्दर सम्मिश्रण हमें देखने को मिलता है जो क्रमशः इस प्रकार हैं :—

(अ) देवी भागवत में कथा इस प्रकार है कि अन्तिम दिन के युद्ध के पूर्व राम ने देवी की पूजा की थी। नारद के आदेश पर राम ने नवरात्रि का व्रत लिया था तथा देवी को प्रसन्न किया था।

(ब) शिव महिम स्तोत्र के १९ वें श्लोक में विष्णु शिव की भक्ति करते हैं। एक सहस्र कमल भी चढ़ाते हैं एक कमल की कमी पड़ने के कारण विष्णु पुण्डरीकाक्ष होने के नाते अपना एक नयन अर्पित करने का उद्यम करते हैं और शिव प्रसन्न होते हैं।

(स) हनुमान चालिसा में यह उल्लेख मिलता है कि हनुमानजी बाल्यकाल में सूर्य को निगल जाते हैं और साथ ही रावण को शक्ति का वरदान मिला था।

उपरोक्त कथाओं का सम्मिश्रण हमें राम की शक्ति पूजा में स्पष्ट दिखलाई देता है और ये ही मूल आधार हैं जिस पर राम की शक्ति पूजा के पाँच भाग खड़े हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं :—

कथा के पांच भाग—(१) युद्ध से लौटती हुई खिन्न बानर सेना राम के चरणों को निहारती है। लक्ष्मण चिंतित है, बानर वीर पीछे-पीछे चल रहे हैं। शिविर में सब राम को घेर कर बैठ जाते हैं और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं।

(२) रात्रि में लंका का वर्णन रामायण के पिछले कथानक को त्वरित गति से छोटे-छोटे स्मृति चित्रों द्वारा व्यक्त किया गया है। पुष्प-वाटिका से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर-दूषण वध तक। अन्त दर्शन में रावण का जय-घोष रश्म को चिन्तित देख कर पवनसुत विचलित होते हैं।

(३) हनुमान आकाश में जाते हैं। समस्त दिशाओं में उनका पराक्रम छा जाता है। शिव चंचल होते हैं। शक्ति को सतर्क करते हैं। अंजना के रूप में शक्ति प्रकट होती है और हनुमानजी को समझा-बुझाकर वापस होती हैं।

(४) विभीषण के कथन से प्रारम्भ होता है और जामवन्त परामर्श देते हैं कि राम शक्ति की पूजा करें और युद्ध का संचालन लक्ष्मण करें।

(५) योगियों की तरह साधना, अन्तिम कमल का माँ द्वारा उठाना, राम का नेत्र चढ़ाने को उद्यत होना, माँ का प्रकट होकर वरदान देना।

महाकाव्यत्व एवं कलात्मकता—कतिपय जिज्ञासु यह कहते पाए जाते हैं कि इसे हम महाकाव्य क्यों न कहें क्योंकि तत्कालीन प्रसादजी की 'कामायनी' में भी महाकाव्यों की शास्त्रीय शैली का पालन नहीं हुआ है। वहाँ तो शास्त्रीय परम्परा से जरा हट कर एक स्वच्छन्दतावादी नीति का अनुसरण हुआ है। परन्तु 'राम की शक्ति पूजा' को महाकाव्यत्व की कसौटी पर परखना ही गलत है क्योंकि यह महाप्राण निराला द्वारा एक छोटी कथा को प्रबन्ध करने का उपक्रम मात्र है और इसे इसी रूप में ही स्वीकार करना चाहिए।

कवि की संवेदना एक विराट भूमिका पर कल्पनाओं और बिम्बों के माध्यम से समायित की गई है। विराट अनुभूतियों की पृष्ठभूमि पर विराट प्रकृति चित्र देखिए—

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार

निराला को 'संयम' का कवि कहते हैं। जैसे:—

"प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण।"

आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं कलापक्ष एवं भावपक्ष की दृष्टि से यह सफल कृति है। संक्षेप में इस रचना का महत्व इसी से जाना जा सकता है कि यदि इस कविता को निराला के साहित्य से हटा दिया जाए तो उनका साहित्य ही अधूरा हो जावेगा।

— गोपाल भवन, पुरानी बस्ती, भोपाल।

इकत्तीसवाँ संस्करण प्रकाशित हो गया

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

लेखक—बाबू गुलाबराय, डी० लिट्

सामान्यतः हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन दुरूह समझा जाता है किन्तु इस पुस्तक ने छात्रों में इतिहास के अध्ययन की रुचि को जागृत किया है। परिणामस्वरूप इण्टर, बी० ए०, विशारद, प्रभाकर आदि के सहस्रों छात्र प्रतिवर्ष इससे लाभ उठाते हैं और परीक्षा में शानदार सफलता प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का सुबोध ढंग से परिचय देने में जितनी सफलता इस पुस्तक को मिली है, उतनी किसी और को नहीं। इसकी अपूर्व लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अबतक इसके तीस संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत इकत्तीसवाँ संस्करण सम्पूर्ण रूपेण संशोधित एवं संवर्द्धित है। मूल्य—३.५० मात्र

प्राप्ति स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● डा० कन्हैयालाल सहल

कामायनी में नियति का कंचुकीय निदर्शन

'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' में चिति को स्वतन्त्र और विश्व-सिद्धि का हेतु कहा गया है।[1] वह अपनी इच्छा से अपनी ही भित्ति पर विश्व का उन्मीलन करती है।[2] महाकवि प्रसाद के शब्दों में—

कर रही लीलामय आनन्द,
महा चिति सजग हुई-सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।

महा चिति जब सुप्तावस्था में रहती है, विश्व भी उसी में समाहित, अव्यक्त रहता है। उसके जगने पर विश्व का भी उन्मीलन होता है जिससे उसका व्यक्त रूप सामने आता है।

अनुरूप ग्राह्य-ग्राहक भेद से यह विश्व नाना प्रकार का है जो परम शिव भट्टारक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परम शिव के विश्वात्मक और विश्वोत्तीर्ण, दो रूप माने गए हैं। यह विश्व परम शिव ही विश्वात्मक रूप है।

शैवागमों के अनुसार यह विश्व ३६ तत्वों से निर्मित है जिनमें निम्नलिखित पाँच कंचुकों की भी गणना की गई है—

१. काल	२. नियति
३. राग	४. विद्या
५. कला	

जब चिदात्मा परमेश्वर अपनी स्वतन्त्रता के कारण अभेद व्याप्ति को छोड़कर भेद-व्याप्ति का अवलम्बन करता है, तब उसकी इच्छादि शक्तियाँ असंकुचित होती हुई भी संकुचित-सी प्रतीत होने लगती हैं। उसी समय यह मलावृत संसारी के रूप में पाँच कंचुकों से आवेष्ठित हो जाता है। स्वशक्ति विकास की दशा में तो वह शिव ही है जब उसमें सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व और व्यापकत्व नामक पाँचों शक्तियाँ पाई जाती हैं किन्तु मलावृत संसारी की स्थिति में उक्त शक्तियाँ कला, विद्या, राग, काल और नियति का रूप धारण कर लेती हैं। हमें यहाँ पर मलावृत संसारी के नियति नामक कंचुक का विवेचन ही अभीष्ट है। जैसा ऊपर कहा गया है, सदाशिव की शक्ति व्यापक है जबकि मलावृत संसारी पुरुष की शक्ति नियत है, इसी कारण उसे 'नियति' का नाम दिया गया है। नियति से तात्पर्य सीमित अथवा नियमित तत्व से है। शर्त, अवसर, स्थान तथा कारण-कार्यों के बन्धनों से नियति के वशीभूत होकर पुरुष नियन्त्रित रहता है।

कामायनी के निम्नलिखित छन्द में शैवागमों में वर्णित पाँचों कंचुकों का एकत्र प्रयोग द्रष्टव्य है—

संकुचित असीम अमोघ शक्ति।
जीवन की बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति
या कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी-सी महाशक्ति,
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में बन्द रहे,
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ रचे छन्द,
कर्तृत्व सकल बनकर आवे नश्वर छाया सी ललितकला
नित्यता विभाजित हो पल-पल में काल निरंतर चले ढला
तुम समझ न सको, बुराई से शुभ इच्छा की है बड़ी शक्ति
हो विफल तर्क से भरी युक्ति।

यहां पर स्पष्ट ही राग, नियति, विद्या, कला

[1] चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः ॥१॥
[2] स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और काल—इन पाँचों कंचुकों का नामोल्लेख हुआ है। साथ ही सदाशिव की पाँचों शक्तियाँ पूर्णता, व्यापकता, सर्वज्ञता, सकल कर्तृत्व और नित्यता का भी वैषम्य-प्रदर्शनार्थ प्रयोग हुआ है।

काश्मीर शैवागमों का मलावृत्त संसारी अथवा पुरुष ही नियति के वशीभूत रहता है जिससे उसकी व्यापकत्व-शक्ति सीमा-बद्ध होकर नियन्त्रित हो जाती है, सदाशिव कभी नियति के कंचुक से आवृत नहीं होता।

किन्तु यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मलावृत संसारी भी तत्वतः सदाशिव ही है। शक्ति-संकोच के होते हुए भी संसारी हैं चिद्वत् ही। चिति ही जब चेतन पद से अवरूढ़ हो जाती है, तब उसे 'चित्त' का नाम दिया जाता है। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो चित्त भी अन्य किसी वस्तु का नाम नहीं है, वह भी 'चिति भगवती' ही है। किन्तु चिति जब अपने स्वरूप का गोपन कर संकोच का आश्रय लेती है, तभी दो गतियां दृष्टिगोचर होती हैं, अन्यथा नहीं।

नियति के जिस कंचुकीय स्वरूप का ऊपर विवेचन किया गया है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहाँ चिति स्वतन्त्र है, वहाँ नियति परतन्त्र है और मलावृत संसारी के लिए एक कंचुक, बन्धन अथवा आवरण है। चिति जहाँ व्यापक है, वहाँ नियति सीमा-बद्ध है। व्यापकता चिति से सम्बद्ध है और नियति 'चित्त' से सम्बन्धित।

कामायनी के अध्ययन से लगता है कि श्रद्धा नियति के वशीभूत नहीं है, मनु नियति-शक्ति द्वारा नियन्त्रित है। दार्शनिक पदावली का आश्रय लेकर कहें तो कह सकते हैं कि श्रद्धा चिति की भूमिका पर है और मनु चित्त की भूमिका पर अवरूढ़ है जो चिति की उच्चस्थिति से अवरोहण का रूप है। कामायनीकार ने श्रद्धा को 'वह विश्व चेतना पुलकित' कहा है किन्तु इसके विपरीत मनु का प्रारम्भिक जीवन 'चित्त' की क्रीड़ा-भूमि पर ही संचरित होता रहा है। अन्त में जहाँ श्रद्धा मनु को तीनों लोक दिखलाती है और श्रद्धा की स्थिति से वे सम्बद्ध हो जाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे 'चित्त' चिति में समा रहा हो—

चितिमय चिता धधकती अविरल
महा काल का विषम नृत्य था।
× × ×
स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो,
इच्छा क्रिया ज्ञान, मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

आगे चल कर आनन्द सर्ग में कवि ने स्वयं मनु के मुख से कहलवाया है—

हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है।
अपने सुख-दुख से पुलकित यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिरसुन्दर।

यहाँ मनु के उद्गारों में चिति की अनुभूति झलकती है।

चिति की उच्च भूमिका पर पहुँचने पर ही नियति के बन्धन से पुरुष को छुटकारा मिल सकता है, इसका स्पष्ट उल्लेख श्रद्धा की निम्नलिखित उक्ति में हुआ है—

निराधार है, किन्तु ठहरना
हम दोनों को आज यहीं है।
नियति-खेल देखूं न, सुनो अब
इसका नहीं उपाय अन्य है। (रहस्यसर्ग)

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है—

(१) मलावृत्त संसारी पुरुष ही नियति के कंचुक से आवृत होकर सीमाबद्ध रहता है।

(२) जब पुरुष चिति की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित हो जाता है और तब उसे नियति के खेल नहीं देखने पड़ते।

(३) कामायनी का मनु तब तक 'चित्त' का प्रतिनिधित्व करता है, जब तक वह 'चिति' की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित नहीं हो जाता।

इस प्रकार कामायनी में मनु का 'चित्त' की अवरूढ़ स्थिति से 'चिति' के उच्च शिखर पर आरोहण दिखाई देता है जहाँ पहुँचने पर 'नियति' का कंचुक जाता है और सीमा का बन्धन टूट जाता है। इस प्रकार इस महाकाव्य में 'चित्त' का 'चिति' में पर्यवसान हुआ है।

—सहल सदन, पिलानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● महावीर प्रसाद शर्मा

'एक भारतीय आत्मा' का प्रकृति पूजन

प्रकृति और मानव अविभाज्य हैं, अन्योन्याश्रय हैं। सर्वप्रथम प्राचीन पुरुष ने जीवन के यथार्थ को प्रकृति के आँगन में ही समझने का प्रयास किया था। उसके मुख से निःसृत ऊषा, इन्द्र, सूर्यादि के सूक्त प्रकृति से उसके तादात्म्य भाव को व्यक्त करते हैं। लेकिन इधर विश्वयुद्धों की विभीषिका से आतंकित मानव प्रकृति से कुछ कट-सा गया है। धीरे-धीरे प्रकृति से 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' रूप में प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया जाने लगा। इसमें भी प्रकृति का 'देवी' रूप अधिक विकसित नहीं हो सका। परिणामतः मानव नास्तिक बनता गया। उसे पुनरास्तिक बनाने के लिए, प्रकृति के भौतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए फिर से प्रकृति पूजन की आवश्यकता हो गई है।

एक भारतीय आत्मा के काव्य में इस आवश्यकता की पूर्ति की गई है। कवि ने 'बीजुरी काजल आँज रही' नामक कविता-संग्रह में स्पष्ट कहा है कि "प्रस्तुत कविता-संग्रह में प्रकृति की पूजा की गई है।" इसी में कवि ने कहा है कि "प्रकृति और पुरुष से हमें इतना अलगाव क्यों है?" जब हिमालय पर मस्तक देता होता है तब हम पुरुष का स्मरण करते हैं और हिमालय पर विचरण करते समय प्रकृति की सामर्थ्य का ज्ञान हुए बिना नहीं रहता। क्या इनका मिलकर चलना कोई गुनाह है?"

प्रकृति देवी के शृङ्गार-चित्रण में कवि-कल्पना ने उत्तम बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। उसकी शृङ्गार-सामग्री इह लोक की है, परलोक की नहीं। मानव मेदिनी की सज्जा-सामग्री से सुसज्जित प्रकृति देवी का एक चित्र द्रष्टव्य है—

गगन की रानी के छुप-छुप बीजुरी काजल आँज रही,
बादलों के घिर आने से प्रात भी अच्छी साँझ रही।
साँवली और कुँवारी-सी मगन माटी ने खोले केश,
गोद पर लहर-लहर आये विविध रंगों के हिलते वेश॥

'साँवली और कुँवारी-सी' में कवि के लोकानुभव एवं काव्य-प्रतिभा के एक साथ दर्शन होते हैं और 'मगन-माटी' का मानवीकरण भी अवर्णनीय है।

साहित्यिक कल्पना एवं वैज्ञानिक तथ्य का सुन्दर समन्वय ही इन पंक्तियों की विशेषता है। कवि का निरीक्षण कोरा साहित्यिक ही नहीं अपितु जीवन के यथार्थ से युक्त है। कहते हैं महात्मा सूर ने वात्सल्य का कोना-कोना झाँक डाला था। लेकिन वात्सल्य रस की वह पयस्विनी नन्द-यशोदा के आँगन के इर्द-गिर्द ही बह कर रह गई थी। प्रकृति में वात्सल्य वे भी नहीं ढूँढ़ सके। प्रकृति के माध्यम से वात्सल्य रस की स्रोतस्विनी प्रवाहित करने का जितना श्रेय आधुनिक कवियों में स्व० माखनलाल चतुर्वेदी—एक भारतीय आत्मा को है उतना अन्य किसी को नहीं। यहाँ 'तम-शिशु' को 'तारों का डर दिखला कर' सुलाया गया है, झरने की झर-झर ध्वनि की लोरियाँ गा-गाकर सुलाया गया है।

आज प्रकृति देवी ने 'सुन्दरता की गाँठ धरा पर' खोल दी है। सर्वत्र सौन्दर्य है। एक अद्‌भुत छटा है!

मणि मुक्ताओं की यह माला टूट पड़ी,
पानी बरसा, वृक्षों के घर लूट पड़ी।
यह न नई बूँदों की रखवाली है,
लक्ष्मी-पूजन करो अरे दीवाली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहो वायु से तोड़ न हीरे-मोती,
प्रकृति डालि में बैठी है सपने पोती।
वह गिर गया, उठाओ, दौड़ो देखो तो,
कहाँ लग गई, सिर सहलाओ सेको तो।

प्रकृति-पूजन से 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की दिव्य झाँकी जैसी यहाँ बन पड़ी है, वैसी सहज, सरल, स्वाभाविक अन्यत्र बहुत कम देखने में आती है।

प्रकृति में मानवीकरण की प्रस्थापना छायावादी काव्य की प्रधान थाती है। परन्तु मानवीकरण की वह प्रस्थापना काल्पनिक अधिक यथार्थ कम थी। चतुर्वेदीजी के काव्य में प्रकृति के मानवीकरण में अधिक यथार्थ और कम कल्पना देखने में मिलती है। यह सच है कि चतुर्वेदीजी भी अपने यथार्थ चित्र प्रकृति देवी की विशाल पटभूमि में ही प्रस्तुत करते हैं। चाहे वह धरती को सींचने वाला बादल, भिश्ती हो, चाहे कपड़े सुखाने वाला सूरज धोबी। दोनों ही चित्र यथार्थ की भित्ति पर आधारित हैं—

'कालीं मशक लिए बिजली में बादल, नभ का भिश्ती,
सींच रहा जमीन पर पानी खड़ी देखती किश्ती।
डालों में हिलते-डुलते-से फूलों के गहने हैं,
ध्यानी हैं ये वृक्ष कि इनके तप के क्या कहने हैं।'
'डाले हैं सूरज ने कपड़े किरणों की दीवारों पर,
साँझ हुई तब ले जायेगा, तह कर बन्दन वारों पर।'

चतुर्वेदीजी के काव्य की गरिमा इस बात से और भी अधिक बढ़ जाती है कि उनके काव्य में प्राचीन कवि की उदात्त भावना एवं अति आधुनिक कवि कि 'नवीनता' दोनों के एक साथ दर्शन होते हैं। ऐसे कवि का काव्य अक्षुण्ण रहता है।

षट्ऋतु वर्णन भी प्रकृति-वर्णन का एक अंग माना जाता है इस अंग को रीतिकाल में तो 'अंगी' तक बना देने का प्रयास किया गया। परिणाम यह हुआ कि रीतिकालीन काव्य में ऋतु-वर्णन एक रूढ़ि बन गई और जिस प्रकार लकीर का फकीर उबा देता है, ठीक वैसा ही कुछ इस काव्य ने किया। उसमें नवीनता भरना आवश्यक था। भारतीय आत्मा ने वही किया। उनके काव्य में प्रकृति-चित्रण किसी परम्परा से बँधा नहीं है, वह जीवन से लगा हुआ है। कारण कि जब तक प्रकृति और पुरुष का सापेक्ष चित्रण नहीं हो सकेगा, वह नई चेतना जाग्रत नहीं कर सकता। चतुर्वेदीजी के काव्य में सर्दी, गर्मी एवं वर्षा अपना प्रभाव छोड़ती हैं, रूप नहीं दर्शातीं। व्यंग्यात्मक शैली में कवि ने प्रकृति का जो सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है उसकी दिव्य झाँकी देखिए—

सर्दी— 'कैसी आँखें मिचकाते हो, बैठे नभ के तारों में
ताप रहे हो, जाड़े की रातें जलते अंगारों में।

गर्मी— 'लाल-लाल सूरज का झटका,
लाल-लाल माटी की महिमा।
दुबली-सी हो चली डालियाँ,
ग्रीष्म बढ़ रहा सहमा-सहमा।
इच्छाओं के नन्हें पौधे,
सहसा भग्न हुए।

बसन्त—'सह दुकूल की मार कुसुमजी गर्म हुए,
नहीं झपकते पलक, बड़े बेशर्म हुए।
डर जावेंगे ? आँखें अजब दिखाते हैं,
झटका दिया कि पैरों पर गिर जाते हैं।'

इस प्रकार कवि ने समस्त मानव-मेदिनी को भिन्न-भिन्न नामों से पुकार कर एक ही प्रेम की जगदीश्वरी का पूजन किया है। कवि के इस प्रकृति-पूजन की भाव-भूमि इहलोक की है, परलोक की नहीं। वह हल जोतते हुए कृषक एवं गीत-गाती कृषक बालाओं में भारत की सही प्रकृति देखना चाहता है। यही उसकी 'नेचर वर्शिप' है। आंग्ल साहित्य की भूमिका के लेखक हडसन महोदय का यह कथन कितना उचित है, जब वे कहते हैं कि प्रकृति से मानवीय क्रिया-कलापों का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ही कवि को प्रकृति अधिक रुचती है।' भारतीय आत्मा ने प्रकृति का इसी रूप में पूजन किया है।

—हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय,
डीड़वाना (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• डा० नत्थनसिंह

आग और पानी : एक मूल्यांकन

'आग और पानी' में मित्रजी का एक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय कथात्मक प्रयोग अधिक है, ऐतिहासिक उपन्यास कम। इस कथात्मक प्रयोग में, भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को, इतिहास के फलक पर, सजीव रूप में अंकित करने का प्रयास अवश्य श्लाघनीय है।

मानवीय एकता, मनुष्यमात्र की समान प्रगति, कष्ट तथा विपत्तियों से जनता की मुक्ति, जनप्रिय तथा लोकहितैषी राज्य का उत्कर्ष, विलासी तथा लोकहित पराङ्मुख निरंकुश राजा का विनाश, तपस्वी तथा त्यागी जन-समाज का उत्कर्ष, चोरी का अभाव तथा नारी-शोषण की शून्यता और भौतिक तथा आत्मिक उत्कर्ष का सुन्दर सामञ्जस्य आदि भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रश्न हैं। विवेच्य रचना में वात्स्यायन, उसकी प्रेरणा पर स्वर्ग से आये ऋषि और शकटार आदि के चरित्र तथा कार्य इस उद्देश्य की पूर्ति सफलतापूर्वक करते हैं। कतिपय रूढ़िवादी ब्राह्मण, मार्ग में पथिकों को लूटने वाले दस्यु, नारी-शील को भंग करने वाला नन्द और शूद्र-विरोधी जन-समाज, एक ओर तो देश के सामयिक वातावरण की सृष्टि करता और दूसरी ओर सांस्कृतिक गतिरोध उत्पन्न करता है। इस गतिरोध के निवारणार्थ संघर्षमूलक भूमिका तो अवश्य प्रस्तुत की गई, पर उसका सम्यक् विकास नहीं हो सका। यही इस उपन्यास की एक कमजोरी है।

प्रस्तुत रचना में अंकित समस्त साँस्कृतिक गतिरोध चाणक्य के पलक मारते ही पराभूत हो उठता है। चाणक्य और स्वर्ग से उतरे ऋषियों के शब्द साँस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन अवश्य करते हैं। तात्पर्य है—उपन्यास में सांस्कृतिक भूमिका को पुष्ट बनाते हैं, पर संघर्ष का चित्रण नहीं करते।

'आग और पानी' का आख्यान इतिहास और कल्पना के सामंजस्य से निर्मित हुआ है। दूरागत कल्पना ने इतिहास का गला अवश्य दबाया है, पर इतिहास रस के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया है। आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिकन्दर और नन्द आदि भारतीय इतिहास के ज्वलन्त पुरुष हैं। यहाँ के साहित्यकारों की दृष्टि प्रायः इन पुरुषों के ऐतिहासिक आख्यानों की ओर सदैव से जाती रही है। इन आख्यानों के ज्ञात तथ्यों को इतिहास और अज्ञात बातों को कल्पना के आधार पर मूर्त रूप देकर साहित्य की गंगा-यमुनी धारा बहाने का प्रयास होता रहा है। संस्कृत में विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', बँगला में द्विजेन्द्रलालराय का 'चन्द्रगुप्त', हिन्दी में प्रसाद तथा राधेश्याम कथावाचक का 'चन्द्रगुप्त', सेठ गोविन्ददास का 'शशिगुप्त', डा० रामकुमार वर्मा का 'कौमुदी महोत्सव', आदि नाटक एवं एकांकी और मराठी में हरिनारायण आप्टे का 'चाणक्य और चन्द्रगुप्त', गुजराती में कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का 'भगवान कौटिल्य', हिन्दी में डा० सत्यकेतु विद्यालंकार का 'आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य', रणवीर वीर का 'महामन्त्री चाणक्य' आदि उपन्यास मगध के ऐतिहासिक आख्यान को लेकर लिखे गए हैं। रघुवीरशरण मित्र का 'आग और पानी' इसी साहित्यिक परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण श्रृङ्खला है।

इस परम्परा की अधिकांश कृतियों में चन्द्रगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चरित्र उभरने नहीं पाया है। वह चाणक्य के हाथ का खिलौना मात्र है। शक्ति और तलवार से आचार्य की सैद्धान्तिक नीतियों को साकार रूप देने वाला व्यक्ति निजी व्यक्तित्व भी तो रखता होगा? 'आग और पानी' नामक रचना, आचार्य चाणक्य के गौरव और महत्ता की रक्षा करते हुए चन्द्रगुप्त के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत करती है। अन्य अधिकांश रचनाएँ भारत से ग्रीक आक्रान्ताओं के निष्कासन, देश में संघीय शक्ति के स्थापन शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में मगध के प्रतिष्ठापन, सम्राट के रूप में चन्द्रगुप्त के अभिषेक और भौतिक जगत से पराङ्मुख चाणक्य के आध्यात्मिक जगत में प्रवेश तक के आख्यान को ही महत्व देती हैं। चन्द्रगुप्त, चाणक्य और सुवासिनी के प्रौढ़ और परिपक्व जीवन की झाँकियां ही अधिकाँश रचनाओं में मिलती हैं। 'आग और पानी' इसका अपवाद है। मित्रजी ने कल्पना की कलम से इतिहास के फलक पर इन चित्रों में पूरे रंग भर दिये हैं। चन्द्रगुप्त, चाणक्य और सुवासिनी का बाल्यकाल पाठक के सम्मुख जाग्रत हो उठा है। यह इस रचना की एक विशेषता है। इसके अतिरिक्त आलोच्य रचना का चाणक्य अन्यों की अपेक्षा इस बात में भी भिन्न है कि वह आध्यात्मिक जगत की उपलब्धि का महत्व भौतिक जगत के प्राणिमात्र के कल्याण के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता। उसकी समस्त साधना का महत्व मानवीय समता और प्राणिमात्र की समृद्धि है। अस्तु वह अपनी परम्परा का सबसे अधिक प्रगतिशील और क्रान्तिकारी पात्र है। रूढ़िवादी पाठक तथा समीक्षक दोनों के लिए यह एक ऐतिहासिक विछलन है, पर यही रचना का प्रधान गुण है। जो आधुनिकता-बोध के नाम पर लिखे गए, कुण्ठित व्यक्तियों का मूल्याङ्कन करने वाले, आज के अनेक उपन्यासों से इसको ऊँचा उठाता है।

'आग और पानी' ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आख्यान के माध्यम से आधुनिक समस्याओं का कुशलतापूर्वक चित्रण करता है। धर्म, जाति, भाषा और प्रदेश-से राष्ट्रीय एकता महत्वपूर्ण एवं वरेण्य है; समस्त जनता को भोजन, वसन और निवास सुलभ न करने करने वाला राज्य एक षड़यंत्र है; अछूत और शूद्र के के नाम पर, मानवता को, मानवीय कृत्य-सम्पादन से रोकना घोर अपराध है; दस्यु-भय सुशासन के नाम पर कलंक है, अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय वैवाहिक सम्बन्ध युगीन आवश्यकता है, भौतिकजगत का उत्कर्ष हेय नहीं है और न आध्यात्मिक विकास जीवन का चरम लक्ष्य, वरन् इसकी उपलब्धि का महत् उद्देश्य भौतिक जीवन को स्वर्गिक बनाना है और साथ ही देवलोक तथा मृत्युलोक के कृत्रिम अन्तर का उन्मूलन करना है। आज के युग के, ये ही गुम्फित प्रश्न हैं, जिनका विवेचन प्रस्तुत उपन्यास करता है। प्रस्तुत रचना का यही आधुनिकता-बोध है, जिसका स्वर समाज सापेक्ष्य है, निरपेक्ष नहीं।

चाणक्य, चन्द्रगुप्त और हेलन के समस्त कार्य धर्म, जाति और प्रदेशगत सीमाओं की अवहेलना करने वाले तथा मानव-हित सम्पादक हैं। चाणक्य का उद्देश्य मगध को ऐसा राज्य बनाना है, जिसमें कोई व्यक्ति अभाव एवं अभियोग युक्त न रहे। चन्द्रगुप्त के राज्य में, ब्राह्मणों द्वारा पीटे गए शूद्र को महत्व देकर चाणक्य ने यथार्थ में अछूतोद्धार का कार्य किया है। निश्चय ही यह आधुनिकता-बोध है, जिस पर गान्धीजी का प्रभाव है। द्विरागमन से आई हुई दस्यु-प्रताड़ित नारी द्वारा उनका विनाश कराना वर्तमान की दस्यु-समस्या का विवेचन है, जिसके मूल में, विनोबाजी की प्रेरणा है। हेलन और चन्द्रगुप्त के विवाह का उल्लेख प्रेम-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह की प्रेरणा देता है और ब्राह्मण वर्ग द्वारा किए गए विरोध का ऋषियों द्वारा किया गया समाधान मानव एकता तथा समता का प्रश्न और समाधान, प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यह रचना प्राचीनता के कलेवर में नवीनता का उद्घाटन करती है। अतः कुछ समीक्षकों को यह रचना अनैतिहासिक या ऐतिहासिक वातावरणविहीन भी प्रतीत हो सकती है।

औपन्यासिक तत्वों के सफल संयोजन तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वाह की दृष्टि से, प्रस्तुत रचना सामान्यत: दोष-रहित है। शास्त्रीय समीक्षा पद्धति के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि 'आग और पानी' का देश-काल सम्बन्धी तत्व कमजोर है।

प्रस्तुत रचना का कथानक चणक और शकटार की नन्द-विरोधी विफल योजना से प्रारम्भ होता है और चन्द्रगुप्त को मगध का निष्कंटक राज्य, भारत की जनता को जनप्रिय सम्राट, शारंगरव को राज्य के गुप्तचर विभाग का दायित्व, भागुरायण को अनेक विद्याओं की सिद्धि और भासुरक को मन-चाहे मोदक देकर, चाणक्य के विदा होने पर समाप्त हो जाता है। मध्य की कथा चन्द्रगुप्त, और राक्षस की राजनीतिक चालों से भरी है। चाणक्य द्वारा, चन्द्रगुप्त की, मगध के निष्कंटक सिंहासन पर, समासीन करने वाली कथा ही आधिकारिक कथा है। शकटार और चणक का नन्द के विरुद्ध असफल षड्यंत्र, शकटार का बन्दी होना, चणक का कौटिल्य के साथ पलायन, उसका बन्दी होना, मृत्युदण्ड पाना, कौटिल्य द्वारा नाम और वेष परिवर्तन, राक्षस के पराभव, सिकन्दर-सिल्यूकस, आख्यान और पर्वतक आदि से सम्बन्धित समस्त आख्यान आधिकारिक कथा के ही अङ्ग हैं। सुवासिनी और राक्षस, छाया और चन्द्रगुप्त, हेलन और चन्द्रगुप्त, दस्यु-समाज द्वारा प्रताड़ित तथा चाणक्य समाज द्वारा शत्रु को दण्डित करना आदि पताका और प्रकरी का काम करने वाली कथाएँ हैं। इन सबका अस्तित्व, चाणक्य के महत्व का प्रतिपादन और चन्द्रगुप्त चाणक्य विषयक आख्यान को पुष्ट बनाना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास का कथा-संयोजन जटिल और गुम्फित पर सन्तुलित और सुसंघटित है। दूरागत कल्पना के समावेश के कारण, कथानक में कहीं-कहीं अविश्वसनीयता का समावेश भी हो गया है। स्वर्ग के ऋषियों का पृथ्वी पर उतरना और पल में समस्त संघर्षों का अन्त कर देना, यथार्थ से पलायन है। ऐसे अयथार्थ कल्पनाओं के समावेश से, प्रस्तुत उपन्यास में ऐयारी उपन्यासों का सा रँग आ गया है।

चाणक्य, चन्द्रगुप्त और राक्षस उपन्यास के प्रमुख पुरुष हैं और कात्यायन, चणक, विराध, नन्द, भासुरक, शारंगरव, सिकन्दर, सिल्यूकस, पुरु, मलय, आम्भी, पर्वतक, जीवधर्म, सेनापति मौर्य, मोहनस्वामी आचार्य पुण्डरीकाक्ष, और भागुरायण आदि अप्रधान। सुवासिनी, हेलन, छाया, मुरा, विचक्षणा, माधवी, सुनन्दा और उमा आदि विवेच्य रचना के स्त्री-पात्र हैं। इनमें से, केवल सुवासिनी का चरित्र उभर पाया है, शेष का नहीं। शास्त्रीय आधार पर हेलन को उपन्यास की नायिका मानना चाहिए, पर उसके चरित्र का उतना विकास नहीं हो पाया जितना कि सेठजी के नाटक 'शशिगुप्त' में हुआ है। अस्तु, वह उपन्यास की नायिका नहीं मानी जा सकती। दूसरी ओर, शास्त्रीय दृष्टि से, सुवासिनी को उपनायिका माना जाना चाहिए। मगध साम्राज्य के मन्त्रित्व को, उसका पति, राक्षस प्राप्त करता है। अत: उसको भी फल की प्राप्ति होती है।

शास्त्रीय कसौटी पर सुवासिनी भले ही उपनायिका है, पर यथार्थ नायिका का गौरव उसको ही उपलब्ध है। प्रारम्भ से ही वह उपन्यास की कथा का अंग है। चाणक्य के मन में उसका उच्च स्थान है और साथ ही राक्षस के आकर्षण का भी वह केन्द्र है। कथा-विकास में उसका अपना स्थान है। उसके फल की उपलब्धि भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसके अतिरिक्त नारी पात्र के रूप में वह समस्त कथा पर छाई हुई है, अत: नायिका का गौरव उसे ही मिलना चाहिए।

'आग और पानी' में केवल चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सुवासिनी के चरित्रों का सम्यक् विकास हुआ है, अन्य स्त्री तथा पुरुष पात्रों का अपेक्षत: कम। चाणक्य बाल्यकाल से शतरंज का खिलाड़ी, क्रोधी और साहसिक है। विवशता में केश नोंच डालता है। और रक्तरंजित उँगलियों से भूमि पर चित्र बनाता है। मेधावी, उत्पाती और निर्भीक है। बड़ी-बड़ी पोथियों को खेल-कूद में याद कर लेता है। राक्षस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नन्द की गाड़ी के पीछे लटक कर पिता के विरुद्ध भावी षड़यन्त्र का पता लगाता है और पिता को लेकर सुरक्षित निकल जाता है। वह भविष्य-द्रष्टा और युग-स्रष्टा है ! पिता की मृत्यु के उपरान्त रूप-परिवर्तन और विद्याध्यन इसके प्रमाण हैं। वह महान कूट-नीतिज्ञ, संघटन-कर्त्ता और युग-निर्माता है। देश के अन्त: तथा बाह्य शत्रुओं के आक्रमणों और आन्तरिक कूटनीतिक षड़यन्त्रों को व्यर्थ कर देना, इसके प्रमाण हैं। एक ओर तो वह देश की बिखरी हुई शक्तियों को सूत्रता-बद्ध करता है और दूसरी ओर मगध तथा चन्द्रगुप्त विरोधी ताकतों को धराशायी। वह जनप्रिय राज्य और राजा का समर्थक है। समता, एकता, शोषण-विहीनता और विश्वबन्धुत्व उसके विशेष गुण हैं। वह भारतीय संस्कृति का महान् आख्याता और संयोजक है। उसमें योगिक और आध्यात्मिक शक्तियों का योग है। वह भागते हुए शत्रुओं को योगबल से मूर्छित कर देता है और शूद्र का पक्ष लेने पर आक्रमण कर देने वाले ब्राह्मण-वर्ग को स्तम्भित कर देता है। इन बातों से उसके मानवीय चरित्र में अस्वाभाविकता तथा अतिमानवीयता का समावेश हो गया है। उसके कठोर हृदय में सुवासिनी के प्रति आकर्षण की भावना उसको मानव बनाती है। वह प्रेम को केवल कर्तव्य और जीवन की प्रेरणा मानता है।

चन्द्रगुप्त बचपन से ही साहसी, वीर, होनहार और निर्भीक है। वृक्षों से आवद्ध, लौह-शृङ्खलाओं को तलवार के प्रहार से काटने का निरन्तर अभ्यास उसकी वीर भावना, दृढ़ निश्चय और उसके असाधारणत्व के परिचायक हैं। इन्हीं के बल पर वह सेनापति मौर्य का संरक्षण पाता है और चाणक्य का आशीर्वाद। दस्यु-प्रताड़ित और जंगल में मार्गभ्रष्ट चाणक्य का माँ की कुटी में आतिथ्य करना उसकी विशेषता है। उसमें वीरता और बुद्धि का अद्‌भुत सामञ्जस्य है। दीपोत्सव पर, पिंजड़े से मोम के शेर को बाहर निकाल कर वह अनन्द की कृपा और प्रशंसा का पात्र बनता है। चाणक्य की नीतियों को मूर्त रूप देने वाला वह सुयोग्य पुरुष है। फिलिप, मलय, गोनस और सिंहाक्ष के साथ सेल्यूकस के विरुद्ध षड़यन्त्र करना, राक्षस की चालों को सफलतापूर्वक विफल कर देना और महान् साम्राज्य की स्थापना में योग देना, उसके गौरवान्वित कार्य हैं। कौटिल्य की दृष्टि में वह आग से खेलने वाला और छाया के शब्दों में सौन्दर्य की साकार प्रतिमा है। इस प्रकार वह वीरता और शृङ्गार का समन्वित रूप है। प्रेम को जय का दूसरा रूप मानता है। वह रूप और यौवन के विषाक्त प्रभाव से भी मुक्त है। हेलन के प्रेम से राष्ट्र-हित को प्राथमिकता देता है। प्रेम उसे मदान्ध नहीं, सजग और सक्रिय बनाता है। छल, प्रपंच और षड़यन्त्र को राजनीति में महत्व नहीं देता। सिकन्दर के शोक से दुखी सिल्यूकस पर आक्रमण नहीं करता। चाणक्य का वह सहायक, पूरक और अंग है, हाथ का खिलौना नहीं।

राक्षस नन्द भक्त है, पर कुछ सीमा तक उसको मार्ग पर लाने का प्रयास भी करता है। उसे मदिरा, कंचन और कामिनी से बचने का परामर्श भी देता, है, मुरा के महल में जाने से उसे रोकता है। नन्द से स्पष्ट बात करने की क्षमता उसमें है, पर उसकी प्रत्येक आज्ञा का दाह है। राजनीतिक सफलता के लिए प्रत्येक उपाय को उचित मानता है। अन्तिम समय तक नन्द की रक्षा का प्रयास करता है। सुवासिनी से प्रेम करता है। उसे न स्वर्ग की कामना है और न सन्यास की, केवल मनुष्य बना रहना-चाहता है, पर आचरण इसके विपरीत करता है। अपने दम्भ का शिकार है। राजनीति में स्वयं को कृष्ण और वचन-पालन में भीष्म समझता है।

सुवासिनी कवि और कला-प्रेमी है। अल्पायु में इतिहास तथा दर्शन का ज्ञान अर्जित कर चुकी है। वार्तालाप कुशल है। शकटार की योजना में उसका योग रहता है। निर्भीकता, वाक्‌पटुता, प्रेमानुराग, गुण के प्रति श्रद्धाभाव उसकी विशिष्टताएँ हैं। राक्षस द्वारा चरणक का बध, उसकी अन्ध भक्ति का विरोध, नारी के बल तथा चरित्र का समर्थन, प्रेम के माध्यम से देश के उत्कर्ष की कामना, जन-सेवा को सच्ची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक मानना आदि अन्य विशेषताएँ हैं।

शकटार चरणक का मित्र, क्रूर राजा नन्द का शत्रु, जनःप्रिय राजा के लिये संघर्षरत, केन्द्रीय-सत्ता का समर्थक और देशभक्त है। चरणक सच्चा देशभक्त, त्यागी, स्पष्टतावादी, राक्षस तक की भर्त्सना करने वाला, कभी क्षमा न करने वाला, मृत्यु से निडर, महानन्द के शोषण से मगध को मुक्त करने के लिए चिन्तित और शत्रु से जीवन की भिक्षा न माँग कर जनप्रिय शासन माँगने वाला है। 'मलय' पुरु का पुत्र है। प्रारम्भ में, सिकन्दर के विरुद्ध चन्द्रगुप्त को समर्थन देता और बाद में विरोध करता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ रचना है। उपन्यासकार का अभिप्रेत चाणक्य, चन्द्रगुप्त तथा सुवासिनी के चरित्रों के अङ्कन है और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता मिली है। दोनों महापुरुषों के विस्मृत जीवन के आख्यान को, कल्पना द्वारा प्रस्तुत करने का श्रेय मित्रजी को अवश्य मिलता है। यथार्थ में यह एक चरित्र प्रधान सफल उपन्यास है, भले ही लेखक ने चाणक्य को अतिमानव बना डाला है।

प्रस्तुत रचना का मूल उद्देश्य ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक आख्यान के माध्यम से देशभक्ति की भावना का उत्कर्ष करना है। उपन्यासकार की मान्यता है कि रचना में देश-प्रेम प्रेरक तत्वों का समावेश तथा शाश्वत मूल्यों की व्याख्या होनी चाहिए। प्रस्तुत रचना देशभक्ति-प्रेरक तत्वों से आद्योपान्त भरी हुई है। शाश्वत मूल्यों का प्रश्न विवादास्पद है। मित्रजी जिन बातों को शाश्वत सत्य मानते हैं, उनके सामने सहज ही प्रश्न लगाया जा सकता है। किसी विशेष युग के विधि-निषेधों तथा सैद्धान्तिक मान्यताओं को शाश्वत सत्य मान लेना न युक्ति संगत है और न बुद्धिगम्य। मानव-जीवन गतिमय और स्वयं शाश्वत है। विकासशील जीवन के लिए वे ही तत्व उपादेय हो सकते हैं, जो स्वयं विकासशील हैं। किन्हीं सिद्धान्तों तथा विश्वासों को, जो किसी विशेष युग में उपादेय होने के कारण, सत्य मान लिया गया था, न चिरन्तन माना जा सकता है और न शाश्वत। अतः विवेच्य रचना शाश्वत मूल्यों के सत्यों का उद्घाटन करती है, ऐसा मानने को मैं तैयार नहीं हूँ। गुप्त-काल की अनेक मान्यताएँ न तो आज के व्यक्ति के लिए उपादेय हैं और न समाज-सापेक्ष्य हैं। अस्तु, उन्हें शाश्वत मानना एक भ्रान्ति है।

आधुनिक जीवन की समस्याएँ तथा समाधान की समझ का अभाव, जो लेखक का अपना अभाव होगा, उपन्यास का अन्धकारमय पहलू माना जा सकता है। मित्रजी ने कुछ सीमा तक आधुनिक समाज की समस्याओं को उभारा है, यद्यपि ऐतिहासिक आख्यान में इसके लिए अवसर भी न था, उसके लिए मित्रजी बधाई के पात्र हैं, किन्तु प्रस्तुत रचना में, समस्याओं का समाधान अयथार्थ, अविश्वसनीय और कोरा आदर्शवादी है, जो पाठक को अतिशय कल्पना के रंगों में भटकाता है। कल्पना के मोहजाल में फाँसता है। यह यथार्थ से पलायन और भटकाव है।

इस अभाव के होने पर भी राष्ट्रीय उन्मेष का अङ्कन तथा भारतीय चरित्र का उद्घाटन करने वाला यह एक प्रमुख उपन्यास है।

भाषा-शैली की दृष्टि से उपन्यास में कोई दोष नहीं। यदि उपन्यास में प्रयुक्त समस्त मुहावरों तथा सूक्तियों को सङ्कलित कर लिया जाय, तो एक छोटा सा कोष तैयार हो सकता है। कुछ अत्याधुनिक शब्दों के प्रयोग से, कालगत वातावरण अङ्कन में बाधा का आरोप लगाया जा सकता है, किन्तु इसका कोई विशेष महत्व नहीं। महत्व इस बात का है कि अपने भावों, विचारों और सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करने में मित्रजी को पूर्ण सफलता मिली है।

—जनता वैदिक कालेज, बड़ौत (मेरठ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● हरिवंश प्रसाद शुक्ल 'मधुकर'

गुरु गोविन्दसिंह कृत :

राष्ट्रीय चेतना का राम काव्य गोविन्द रामायण

भारतीय इतिहास में गुरु गोविन्दसिंहजी की चर्चा धार्मिक गुरू अथवा राजनैतिक प्रतिद्वन्दी के रूप में या फिर एक महान सेनानी और समाज रक्षक के रूप में यत्र-तत्र विस्तृत रूप से की गई है किन्तु उनकी साहित्यिक प्रतिभा और सफल कवि रूप को अब तक भली प्रकार से नहीं परखा गया और न उस पर विस्तृत चर्चा ही की गई है। एकाध शोध विद्यार्थियों को छोड़कर उनके काव्य का अध्ययन अभी तक हिन्दी के विद्वानों के द्वारा नहीं प्रस्तुत किया गया यद्यपि हिन्दी साहित्य में उनकी प्रचुर रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत प्रयास उनके कवि रूप को तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में देखने का है और उसके लिए उनके राम काव्य को ही आलोच्य विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गुरु गोविन्दसिंहजी का युग एक विकट संघर्ष का युग था। मुगल सम्राट औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता असहिष्णुता से तत्कालीन हिन्दू जीवन त्रस्त हो गया था। बलात् धर्म परिवर्तन या फिर मृत्यु इसके अतिरिक्त अन्य विकल्प उस समय हिन्दुओं के सम्मुख न था। समस्त सामाजिक जीवन बिखर सा गया था और चारों ओर निराशा, अनास्था भर गई थी। जीवन के प्रति आस्था टूट रही थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में जब धर्म का ह्रास हो रहा था, अनाचार बढ़ रहा था और मानवीय अत्याचारों से समस्त समाज भय ग्रस्त था, कतिपय प्रयास उससे जूझने और संघर्ष के लिए भी किये गये जिनमें राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध कर जन जागरण का मुख्य स्वर, छत्रपति शिवाजी, छत्रशाल, दुर्गादास, राजसिंह और गुरू गोविन्दसिंह के द्वारा उद्घोषित हुआ। इन महापुरुषों के चारों ओर ही एक नवीन चेतना का विकास हुआ और इन शक्ति पुंजों से ही जन जागरण की चिनगारियों राष्ट्रीय भावना के रूप में यत्र तत्र बिखरने लगी जिनके प्रकाश में अन्याय के विरुद्ध सङ्घर्ष करने धर्म, जाति की रक्षा के सर्वस्व का बलिदान करने, तथा आततायियों के विनाश के लिए अदम्य साहसिक भावना का उदय हुआ। क्रान्ति की यह भावना उस युग की राष्ट्रीय चेतना के रूप में ही उदय हुई थी और उसे इसी रूप में देखने का प्रयास भी करना चाहिए।

एक ओर भारत का समाजिक और राजनैतिक जीवन औरङ्गजेबी शासन के निर्मम, क्रूर हिंसक प्रवृत्तियों के चंगुल में छटपटा रहा था और जन जीवन क्षुब्ध हो रहा था तो दूसरी ओर अधिकांश राजपूत हिन्दू राजा मुगल साम्राज्य की सेवा में अपने को समर्पित कर सामन्तशाही जीवन स्वीकार कर, सङ्घर्ष से दूर हटकर विलासिता की ओर बढ़े और सुरा सुन्दरी में इतने निमग्न हुए कि उन्हें अपने जातीय और देश की राष्ट्रीय भावना का भी ज्ञान न रहा। चाटुकारिता बढ़ गई और जन जीवन से दूर हटे हुये इन नरेशों के आसपास की साहित्यिक धारा भी विषाक्त हो गई। कवि, साहित्यकार, शृङ्गार के कर्दम में इतने गहरे फँस गये कि उनके सामने नारी के अतिरिक्त अन्य वर्ण्य विषयक ओझल हो गये। नायिका भेद, नखशिख वर्णन और नारी को केन्द्र मानकर नाना प्रकार की कलाबाजियों के अतिरिक्त उन्हें जीवन के अन्य पक्ष नहीं दिखाई दिये। साहित्य जन जीवन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर समस्त अन्य सम्भावनाओं से शून्य केवल मस्तिष्क का व्यायाम मात्र या फिर शब्दों का जाल मात्र रह गया था। जन जीवन को प्रेरणा देने वाली उसकी कल्याणमयी जीवन्त शक्ति का ह्रास हो गया और भक्ति का जो पवित्र स्वरूप भक्तिकालीन रचनाओं में उभरा था वह शृङ्गार की कामुकता में नष्ट हो गया और राधा-कृष्ण के शृङ्गार वर्णन की ओट में अपवित्र कलुषित भावनाओं का उदय हुआ। विहारी, देव, मतिराम आदि कवियों की नायिकाओं में उस युग की नारी भावना का विकृत रूप प्रकट हो उठा और भक्ति काल की राधा इस युग की अभिसारिका मात्र रह गई और युगावतार कृष्ण, केवल एक छैला मात्र रह गये।

टूटती हुई सामाजिक और राजनैतिक जीवन धारा और विलासिता के इस कलुषित वातावरण में गुरुगोविन्दसिंहजी का कवि रूप हमारे सम्मुख एक नया रूप लेकर आता है। जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने समाज के टूटते हुए मनोबल को सुदृढ़ करने के लिए सिक्खों का संगठन किया उसी प्रकार साहित्यिक जीवन की नष्ट होती हुई जीवनी शक्ति को भी जाग्रत करने का प्रयास किया। युग के कर्दम से हटकर राष्ट्रीय जीवन की उच्चतम भावना को मुखरित करने के लिए उन्होंने जनवाणी में राम के पावन चरित्र को अपना वर्ण्य विषय चुना। उन्होंने उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए ऐसे लोक नायक की भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य सृजन की आवश्यकता को पहिचाना जिसमें हमारे अपनेपन का चित्र, और उसकी विशेषताएँ झलकती हों तथा भावरंगों पर पड़ी हुई धूल को साहसिक वर्णन कौशल और पद रचना द्वारा दूर कर सुप्त राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत किया जा सके। इस युग के राष्ट्रीय पक्ष को उभारने का प्रयास कविवर भूषण ने छत्रपति शिवाजी को अपना चरित्र नायक मान कर किया था किन्तु उनके वर्णन में एकरूपता और तारतम्य नहीं स्थापित हो पाया था जिसकी कमी गुरुजी ने अपने प्रबन्ध-काव्य रामावतार (गोविंद रामायण) के माध्यम से पूर्ण की। महाकवि गो० तुलसीदासजी के युग-बोध से जिस प्रकार रामचरित मानस का जन्म हुआ उसी प्रकार गुरू गोविन्दसिंहजी का युग-बोध रामावतार अथवा गोविन्द रामायण के रूप में हिन्दी साहित्य जगत के सम्मुख आया। दशम ग्रन्थ में रामावतार की कथा अन्य अवतारों के वर्णन के साथ ही संग्रहीत है जिसे सन् १९५३ ई० में प्रथम-बार सन्त शिरोमणि इन्द्रसिंहजी चक्रवर्ती ने गोविन्द रामायण के रूप में हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत किया। दोहा, चौपाई, कवित्त आदि साधारण छन्दों के अतिरिक्त गोविन्द रामायण में अन्य ३७ प्रकार के विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। मुख्य रस वीर है और मुख्य विषय राम के शौर्य तथा विजयी स्वरूप को चित्रित करना है जो राम कथा के इतिहास में एक विशिष्ट कोटि की रचना है।

आदि कवि वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक जिस रामकथा का विकास हुआ है, गोविन्द रामायण उसी की एक कड़ी है। इस प्रसंग में इतना और समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार वाल्मीकि के राम और तुलसी के राम में कालानुसार अन्तर आया है उसी प्रकार तुलसी के परवर्ती कवियों ने नहीं किया। इन परवर्ती कवियों ने तुलसी के राम के ईश्वरत्व को भी ग्रहण किया है और उनके लोक नायकत्व को भी। तुलसी के राम में लोक नायकत्व और ईश्वरत्व का जो अपूर्व समन्वय दिखाई देता है, गुरू गोविन्दसिंहजी के राम में भी वैसा ही अपूर्व समन्वय दिखाई देता है। उनके राम पूर्ण ब्रह्म ईश्वर होते हुए भी सन्तों की रक्षा, दुष्टों का संहार, धर्म की स्थापना और मर्यादा के संरक्षण के लिए नर रूप में अवतरित होते हैं तथा समस्त दैवी शक्तियों का संग्रह कर आसुरी शक्तियों का विनाश कर अपने लोक नायकत्व का परिचय देते हैं। वे अपने भक्तों को नर लीला का चरितामृत पान करा कर आनन्द और शान्ति प्रदान करते हैं। अवतार की यह कल्पना गीता से लेकर महाकवि तुलसी तक और बाद में गुरू गोविन्दसिंह तक एक सी मिलती है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य, तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(गीता अ० ४ श्लोक ७।८)

और महाकवि तुलसी कहते हैं :—

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तराहि विसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥

अवतार की इसी भावना को गुरू गोविन्दसिंहजी ने इस प्रकार प्रकट किया है :—

अथ मैं कहौ राम अवतारा।
जैसा जगत मो किया पसारा ॥
बहुत काल बीतत भयो जबै।
असुरन वंश प्रकट भयो तबै ॥
असुर लोक कहु करै विषदा।
किन्हुन तिन्है तनिक में साधा ॥
सकल देव इकठे तब भये।
छीर सिन्धु जहँ बस तहँ गये।
बहु चिर बसत भये तिहि ठामा।
विष्णु सहित ब्रह्मा जिन्ह नामा ॥
बार बार हा दुखित पुकारत।
कान परी कल सो धुनि आरत ॥
× × ×
विसनादिक देव लखे विसनं।
मृदु हास करी कर काल धुनं ॥
अवतार धरो रघुनाथ हरे।
चिर राज करो सुखसों अवधे ॥
(गोविन्द रामायण पृष्ठ १)

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण उस परम पुरुष ईश्वर के अवतरित होने की प्रार्थना करते हैं और जिसे स्वीकार कर वह परम पुरुष रघुवंश में अवतरित होकर उनके कष्टों को दूर करते हैं। संक्षिप्त होते हुए भी रामकथा के विकास तथा रामावतार के कारणों पर यह पंक्तियाँ पूर्ण प्रकाश डालती हैं और गुरु गोविन्दसिंहजी के राम तुलसी के राम की भांति ही नर रूप में ईश्वर के अंश हैं। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, साक्षात् ईश्वर हैं। सर्वज्ञ हैं जो नर रूप में अवतरित होकर विभिन्न लीला करते हैं। श्री गुरु महाराजजी ने भी राम को सर्वज्ञ, अनादि और अनन्त स्वीकार किया है। वे कहते हैं—

नरदेव देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं।
अगाध हैं अनन्त हैं। अभूत सोमवन्त हैं॥
कृपालु कर्मकारणं। विहाल धातु तारणं॥
अनेक सन्त तारणं। अदेव देव कारणं॥
(गोविन्द रामायण पृष्ठ ५५)

तुलसी के राम शक्ति, शील, सौन्दर्य से समन्वित माता-पिता, भक्त, सन्तरक्षक और कारण रहित कृपालु हैं। गुरूजी के भी राम इन्हीं समस्त गुणों से शोभित दिखाई देते हैं।

गोविन्द रामायण के राम की सर्वज्ञता के लिए मारीच ने स्वर्ण-मृग बन कर आने पर सीता के आग्रह से उसके पीछे जाने वाले राम के लिए श्री गुरुजी का एक पद दृष्टव्य है—

सोय मृगा कहूँ कंचन को,
नहिं कान सुन्यों विधि ने न बनायो।
बीस बिसे छल दानव को,
बन में जिह आन तुम्हें बहकायो॥

अथवा—राम परम पवित्र हैं, रघुवंश के अवतार।
दुष्ट दैत्यन के संहारक, सन्त प्राण आधार॥

इसी प्रकार परशुराम के आग्रह पर पूर्ण नारायण रूप का दर्शन और परम पुरुष के अनन्त बल का प्रदर्शन गुरूजी ने राम के पूर्ण ब्रह्मत्व और ईश्वरत्व के प्रदर्शन के लिए ही किया है।

राम के नर रूप के वर्णन में गुरूजी ने उनके वीर वेश को ही अधिक महत्व दिया है और इसलिए उनका मन राम के शौर्य प्रदर्शन, रण-कुशलता, सैन्य-संचालन और दुष्ट-दलन के वीर रूप के चित्रण में ही अधिक रमा हैं, अन्य स्थलों को उन्होंने कथासूत्र बनाये रखने के लिए, प्रबन्धात्मकता की रक्षा के लिए ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण किया है। प्रबन्ध काव्य के प्रणेता के रूप में गुरु गोविन्दसिंहजी की सन्दर्भकला तथा प्रबन्ध-पटुता में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं आने पाई और 'खीन कथा' के माध्यम से उन्होंने इसकी रक्षा की है। गोविन्द रामायण की रचना उन्होंने विक्रमी संवत् १७५५, आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा को ३२ वर्ष की आयु में पूर्ण कर हिन्दी को एक महाकाव्य ग्रन्थ प्रदान किया। गोविन्दरामायण की रचना सोद्देश्य थी अस्तु गुरुजी के व्यापक युद्ध अनुभवों के सफल चित्र उसमें सर्वत्र दिखाई देते हैं। जीवन भर उन्होंने यवनों से संघर्ष किया। इसमें उनके पुत्रों का बलिदान तथा इससे पूर्व पूज्य पिता का बलिदान उनके जीवन की कठोरता को स्पष्ट प्रकट करती है। अतः यदि यह कहा जाये कि गोविन्द रामायण में वर्णित असुरों से राम का युद्ध गुरुजी की औरंगजेब से प्रत्यक्ष संघर्ष का ही चित्र है तो अतिशयोक्ति न होगी। लोक-संग्रह के रूप में उनका व्यक्तित्व अविवाद रूप से स्वीकृत किया जा चुका है अतः संघर्ष के प्रत्यक्ष अनुभवों को यदि उन्होंने काव्य के माध्यम से जन मानस को व्यक्त करने तथा उसके मनोबल को ऊँचा करने के लिए राम को विजयी रूप को ही स्वीकार किया था तो क्या आश्चर्य? मेरे इस कथन की पुष्टि गोविन्द रामायण की इन पंक्तियों से होती है जो विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के लिए जाने वाले राम का ताड़का, सुबाहु और मारीचि के साथ किये गये युद्ध के अन्त में कही गई है—

भुंवि भार तारयो। ऋषीशं उबारन्यो।
सवै साधु हरषै। भये जीत करषे॥
भयो जग्य पूरं। गये पाप दूरं।
सुरं सर्व हरषे। घनं धार वरसे॥

(गोविन्द रामायण पृष्ठ १९)

गोविन्द रामायण के युद्ध वर्णनों में कवि ने अपने सैनिक ज्ञान तथा बहुज्ञता का परिचय विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रदर्शन, रथों के संचालन घोड़ों के युद्ध नर्तन, तथा अन्य वाहनों के वर्णनों को उपस्थित कर दिया है। चमकौर के युद्ध में गुरूजी के दो वीर पुत्रों ने वीर गति पाई थी। लगता है उनके शौर्य प्रदर्शन और युद्ध की कुशलता का ही चित्र लव-कुश के रूप में उभरा है। युद्ध की विभीषिका, उसकी भीषणता का वर्णन उन्होंने भूत, प्रेत, पिशाचिनी, योगिनियों के नृत्य तथा गीधों एवं अन्य माँसाहारी पक्षियों के मोद नर्तन से किया है। जो परम्परागत वर्णन ही है। किन्तु इन वर्णनों में कुछ ऐसे सजीव चित्र हैं जिन पर गुरूजी के व्यापक युद्ध अनुभवों की गहरी छाप है।

नर रूप में राम के इस वीर वेश के चित्रण का यद्यपि गुरूजी ने विशिष्ट आग्रह प्रदर्शित किया है परन्तु उनके चरित्र के अन्य मार्मिक स्थल भी उन्होंने नहीं छोड़े। सीता स्वयंवर में सीता के रूप का वर्णन राम की बारात का विस्तृत वर्णन, राम परशुराम संवाद, भरत राम भेंट, बनवास काल में तपस्विनी सीता का सौन्दर्य वर्णन, रावण मन्दोदरी संवाद, माता मिलन तथा सीता का वनवास आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनमें कवि की काव्यगत प्रतिभा उनकी गहरी अनुभूतियों के उच्चतम रूप देखे जा सकते हैं। रीति-कालीन कवि होने के कारण यत्र-तत्र उसका प्रभाव भी दिखाई देता है परन्तु ऐसे चित्र गोविन्द रामायण में कम हैं। उन्होंने सदैव अपने सम्मुख असिपाणि या खड्गधारी राम के वीर रूप को ही रक्खा है जैसा कि गोविन्द रामायण के अन्त में उन्होंने कहा है।

श्री असपान कृपा तुमरी करि,
मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यों।

(गोविन्द रामायण पृष्ठ २४२)

गोविन्द रामायण हिन्दी के युद्ध साहित्य के अभाव को पूर्ण करने वाली एक अमूल्य कृति है साथ ही वह इसलिए और भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में सामने आती है क्योंकि हिन्दू धर्म के रक्षण के लिए संगठित किये गये सिक्खों को उसके मूल रूप से अविच्छिन्न रूप से जोड़ती है अस्तु भारतीय एकता की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी उसका महत्त्व है।

—१०९/३०४, रामकृष्ण नगर, कानपुर—१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

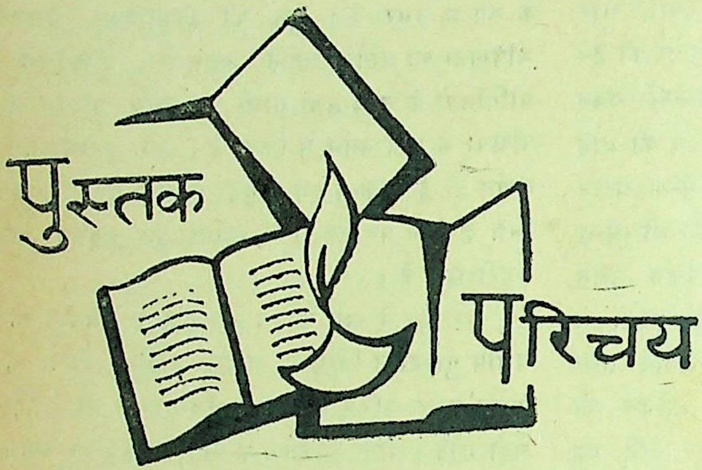

समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक को दो प्रतियां आनी चाहिये

शोधग्रन्थ

गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन– लेखक–डा० न० अ० व्यास, प्रकाशक–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृ० ३३३, मू० १२.००

समीक्ष्य पुस्तक आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है डा० व्यास ने गुजराती साहित्य में हिन्दी की महत्ता को पूर्णरूपेण समझ कर उसका वर्णनात्मक प्रस्तुतीकरण किया है। इस ग्रन्थ में कुल ९ प्रकरण हैं जिसमें लेखक ने प्रथम प्रकरण में गुजरात में हिन्दी की लोकप्रियता का कारण दिखाते हुए उसका स्थान निर्धारित किया है। दूसरे प्रकरण में सम्प्रदायों पर हुए प्रभावों को परखा है। तीसरे से लेकर आठवें प्रकरणों में गुजराती साहित्य के १५वीं शती के कवियों से लेकर २०वीं शती के कवियों का क्रमबद्ध विवेचन है। इसमें लगभग ६०० साल के गुजराती साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी का अपनत्व बड़ा ही गौरवपूर्ण है। लेखक ने इसे खूब ठोंका बजाया है। इसके उपरान्त नवें उपसंहार प्रकरण में परिशिष्ट रखकर गुजरात के सभी कवियों की कविताओं का संकलन दिया है। कविताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन कवियों में हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ रुचि है तथा उनके भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों उच्चकोटि के हैं। गुजराती के इन कवियों ने सभी प्रकार की रचनाएँ की हैं। जिससे आभासित होता है कि हिन्दी प्रदेश में हो रहे हिन्दी साहित्य की परिवर्तनीय धारा को वे सब सचेत हो समझते रहे हैं और उन्हीं के अनुकूल अपना काव्य-सृजन किया है।

गुजराती एवं हिन्दी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पथ-निर्देशक का काम करेगा। इस सुन्दर कृति के लिए डा० व्यास बधाई के पात्र हैं।

काव्य

आधुनिक कवि भाग १३—बालकृष्ण राव

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृ० १५९, मूल्य ५.००

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के देव पुरस्कार ग्रन्थावली के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तक में श्री बालकृष्ण राव की ८४ कविताएँ संग्रहीत हैं। नई कविता के परिप्रेक्ष्य में उनकी यह 'प्रयोगशाला' अच्छी रही। तभी तो कवि कहता है—

पशु तो न आये, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनवासी मानवों ने,
कई बार यत्न किया—व्यर्थ ही : (पृ० १६)

श्री राव की पुरानी कविताओं में छायावाद की भी झलक है। वादों की परिवर्त्तनीय सनक उनमें भी पायी जाती है। प्रस्तुत संग्रह में इसका पूरा परिपाक हुआ है। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि सभी नावों पर चलकर उन्होंने संगम स्नान किया है। भारतीय परिवेश से ऊबकर विदेशी 'हेलन केलर की प्रेस कान्फ्रेन्स' से अंगारा होते हुए 'वेस्ट मिंस्टर के पुल पर' भी पहुँचे हैं। इसी 'वाद-बदलू' नीति से उनके काव्य को किसी भी एक दिशा का प्रतिनिधि कहना उचित न होगा। फिर भी जो कुछ उन्होंने लिखा है सबमें स्थायित्व है।

पर आँखें नहीं भरीं—

लेखक—डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन', प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। पृ० ११३, मू० ४.००

आलोच्य काव्य पुस्तिका में सुमनजी के ४४ काव्य-प्रसून गूँथे गए हैं। यद्यपि इन्हें दो भागों में विभाजित करके विषय वस्तु के पार्थक्य को स्पष्ट किया गया है। प्रथम भाग 'पर आँखें नहीं भरी' पुस्तक के नामकरण के साथ ३८ कविताओं को अपने में समाये हुए है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि प्रथम भाग के लिखने में अधिक देर तक ठहरा है एतदर्थ उसमें असन्तोष है, संत्रास है, वेदना है और नैराश्य है: —'छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ', 'तो बीत जाएँगे ये दिन भी' शीर्षक कविताएँ कवि के भावोर्मियों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुई हैं।

दूसरे भाग 'पर आँखें भरीं भरीं' में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के महाप्रयाण से कवि को गहरा आघात पहुँचा है। उसका अभिव्यक्तीकरण इस भाग की ६ कविताओं में किया गया है। यथार्थतः उसकी ही क्या सभी जन-मानस की आखें अश्रु से भरी थीं। पूज्य बापू का आदर्श एवं प्रेम लेकर कवि अपने काव्य को गतिशील बनाता है। फलतः राष्ट्रवादी विचार धाराओं से उसके काव्य की इतिश्री होती है जो कि एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी कवि की पहचान है।

उपन्यास

मधुर स्वप्न—

लेखक—राहुल सांकृत्यायन, प्रका०—राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। पृ. २५६, मू. ६.००

प्रस्तुत उपन्यास भारतीय वातावरण से दूर ईरान के रेगिस्तानी परिवेश में चक्कर काटता हुआ पाठकों के समक्ष आता है। इसकी कथावस्तु प्राचीन ईरान के शाहंशाहों की सत्ता की कहानी है जिसमें लेखक ने इतिहास का दामन पकड़ कर उसे उपन्यास का रूप देते हुए अपनी बोधात्मक एवं पर्यटन रुचि का प्रस्तुतीकरण किया है। उपन्यास की भाषा सरल होते हुए भी पाठक को विदेशी शासन पद्धति एवं राज-काज से परिचित कराती हुई चलती है। इससे वहाँ के शासकों का समुचित ज्ञान हो जाता है। इसकी प्रामाणिकता में लेखक ने उपन्यास के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत इतिहासानुसार उसका वर्णन कर दिया है।

समग्र रूप से उपन्यास रोचक एवं प्रभावपूर्ण बन पड़ा है।

मेरा जंगल मेरी बस्ती—

लेखक—कृश्नचन्दर, प्रका०—आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरीगेट, दिल्ली—६। पृष्ठ १९४, मूल्य ५.००।

प्रस्तुत उपन्यास में सहयोग एवं नई शिक्षा के आधार पर भारतीय कृषि को एक नया ढंग प्रदान किया गया है। देहात एवं नगर के पारस्परिक परिवेश में प्रेम एवं स्नेह का अच्छा प्रतिरूपण है। समस्यायें एवं उलझनें वैज्ञानिक तरीके से हल की गई हैं जोकि वर्तमान रूप को देखते हुए उचित ही प्रतीत होती हैं। समग्र रूप से उपन्यास रोचक एवं नवीन विचारधारा लिए हुए है। दिलीप का चरित्र इसका प्रमाण है। ग्रामीण सामाजिक रूढ़ियाँ उपन्यास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हुए भी महत्वपूर्ण है।

आलोचना

हिन्दी-कहानी—

लेखक—डा० इन्द्रनाथ मदान, प्रकाशक—राजकमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली–६। पृष्ठ १८७, मूल्य ७.५०।

हिन्दी कहानी को आधुनिक परिवेश में समझने के लिए तथा आधुनिक कहानीकारों के माध्यम से, उसे पाठक को समझाने के लिए प्रस्तुत कृति पूर्ण सफल है। वर्णनात्मक शैली को छोड़ आलोचनात्मक भावधारा में प्रवाहित होना ही इसकी मुख्य विशेषता है। गुलेरी से लेकर आधुनिक कहानीकार कमलेश्वर एवं रवीन्द्र कालिया को अपनी सीमा में खींचना ही इसका लक्ष्य है। प्रस्तुत पुस्तक चिन्तन एवं सृजन दो भागों में विभक्त है जोकि किसी भी वस्तु या सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से इसका विभाजन पूर्ण वैज्ञानिक ठहरता है। समग्र रूप से पुस्तक हिन्दी-कहानी को समझने के लिए उपयोगी है पर मूल्य की अधिकता से हाथ खिच जाता है।

बदलते परिप्रेक्ष्य—

लेखक—नेमिचन्द्र जैन, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली–६। पृष्ठ १६८, मू० ७.००।

प्रस्तुत संग्रह में लेखक के २० विभिन्न विषयक लेख हैं जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें कुछ लेख साहित्यिक गोष्ठियों में भी प्रसारित हो चुके हैं। अब उनको एक साथ एक पुस्तक में रखकर 'बदलते परिप्रेक्ष्य' के नाम से पाठकों के समक्ष रखा गया है। विभिन्न विचार-शृङ्खलाओं के कारण लेखक कहीं भी एकमत की स्थापना नहीं कर पाता। कभी किसी लेख 'उर्वशी' एक भाव विश्लेषण' में समालोचक बनता है, तो कभी 'राष्ट्र संकट और साहित्यकार' लिखकर युग-चेता बनने का प्रयास करता है और मार्कण्डेय की कुछ कहानियाँ, दो कवि और तीन संग्रह, तार सप्तक प्रसंग में प्रचारक का बाना पहनने में भी नहीं हिचकिचाता। इनके अतिरिक्त मूल्याङ्कन के कुछ प्रश्नों को लेकर नई कविता और नई कहानी पर भी उतरता है पर अपने ही विचारों में खोया हुआ चलकर किसी निश्चित अभीष्ट की प्राप्ति उसे नहीं मिल पाती। १९४३ से और विशेषकर १९५० से १९६४ तक के उसके लेख अविकल उसी रूप में पिष्टपेषित करना हैं न कि किसी भी प्रकार का नवीनीकरण अथवा परिपक्वीकरण जो कि समय-बोध की प्रथम माँग है। इन सब के होते हुए भी कई लेख विचार-प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं।

लोक-साहित्य

राजस्थानी लोक गाथाएँ—

लेखक—डा० कृष्णकुमार शर्मा, सम्पादक—महेन्द्र भानावत, प्रकाशक—भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर, पृष्ठ १००, मूल्य ३.००।

प्रस्तुत पुस्तिका डा० कृष्णकुमार शर्मा के शोध-प्रबन्ध का संक्षिप्त रूप है अथवा यों भी कह सकते हैं कि यह उनके प्रबन्ध का 'विज्ञापन' है। विज्ञापन में वस्तु की विशेषता, विषय की रूप रेखा तथा सीमा एवं क्षेत्र तक रहते हैं। उसी प्रकार इस पुस्तक में भी उनके शोध-प्रबन्ध का सारांश तथा उनका मूल्यांकन किया गया है। 'राजस्थानी लोक कथाएँ' विभिन्न रूप में हैं तथा उनका क्षेत्र भी विस्तृत है। इस दृष्टि से लेखक ने उनका संग्रह पूर्णरूपेण न करके मात्र लोक गाथा की स्थूल मान्यताएँ, विचार-धाराएँ एवं मौलिक उद्भावनाओं को ही विशेष महत्व दिया है जिस पर कि लोक-गाथा का प्रसाद निर्मित होता है।

राजस्थानी लोक-जीवन को जानने के लिए पुस्तक बहुत अंशों तक सक्षम है।

काम-शास्त्र

यौन व्यवहार अनुशीलन—

लेखक—दयानन्द वर्मा, प्रका०—नव चिन्तन प्रसार गृह, १६४१ दरीबाकलां, दिल्ली–६। पृ० २३६, मूल्य १५.००

काम-शास्त्र पर आधारित यह पुस्तक आज के मुद्रण काल में अपनी निजी विशेषता लिए हुए है। क्योंकि इसका प्रकाशन 'साइक्लोस्टाइल पद्धति' पर हुआ है। साथ ही पुस्तक की बाइन्डिंग आदि बड़े ही अच्छे ढंग से की गई है। प्रस्तुत पुस्तक काम शास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ब्रीड़ात्मक विषयक होने पर भी बड़े ही संयत एवं शिष्ट भाषा में लिखी गई है। पुस्तक में १२ उप-शीर्षक अध्याय हैं जिनमें यौन सम्बन्धी सभी विचार, धाराएँ मौलिक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। स्थल-स्थल पर उनमें साहित्यिकता का पुट भी मिलता है यही इसकी संयतता का प्रमाण है। लेखक यौन विचारों को प्रस्तुत करने में बडा ही सतर्क रहा है। इसलिए इसका अध्ययन साधारण से लेकर उच्चवर्ग के युवा स्त्री-पुरुष बिना किसी हिचक के कर सकते हैं। अश्लीलता आदि का कहीं प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता। लेखक ने इस कमजोरी को अच्छी तरह परखा है क्योंकि वस्तुतः ऐसा देखा जाता है कि यौन या काम—विषयक कृतियों को लोग लुक-छिप कर पढ़ते हैं पर इस पुस्तक के विषय में ऐसी कोई बात नहीं। आलोचनात्मक ढङ्ग से लिखी गई प्रस्तुत कृति अपने विषय का समुचित प्रतिनिधित्व करती है। एतदर्थ लेखक हमारे साधुवाद का पात्र है।

दर्शन

श्रेय और साधना—

लेखक—श्री योगेश्वर, प्रका०—साहित्य निकेतन, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर—१। पृ० ३७९, मू० ८.५०

समीक्ष्य पुस्तक भारतीय आध्यात्म एवं दर्शन के परिप्रेक्ष्य में स्वयं लेखक की सहजानुभूति की परिचायक है। लेखक ने ऋषियों, मुनियों एवं महात्माओं से साक्षात्कार करके अपना अनुभव इस पुस्तक में लिखा है। यद्यपि इसकी विषय वस्तु लेखक की 'आत्मकथा' से उद्धृत की गई है। फिर भी इसका रोचक संस्मरणात्मक विवेचन दार्शनिक क्रोड़ में बड़ा ही सरस एवं ज्ञानवर्द्धक है।

भारत की दार्शनिक धरोहर बड़ी ही विलक्षण एवं अभूतपूर्व है। इसको जानने के लिए दीर्घ साधना एवं लगन की अपेक्षा है, तभी चरमानन्द की प्राप्ति सम्भव है। इस बात को पुस्तक में अच्छी तरह समझाया गया है जिससे पुस्तक जन-साधारण के लिए भी उपयोगी हो गई है। दर्शन एवं योग ऐसे गूढ़ विषय के प्रस्तुतीकरण के लिए लेखक ने सरल भाषा एवं भाव को अपनी पुस्तक का माध्यम बनाया है। यही इसकी विशेषता है। अपनी संस्कृति एवं धर्म को जानने तथा ईश्वर की सत्ता का आभास पाने के लिए प्रस्तुत पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

विविध

कर्मवीर—

लेखक—गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। पृष्ठ १११, मूल्य ३.००।

प्रस्तुत कृति में स्व० श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के ३० लेखों, सम्पादकीय विचारों को एक साथ नत्थी करके रखा गया है। इनमें से अधिकांश लेख तत्युगीन महापुरुषों के बारे में हैं जो कि उस समय देश एवं समाज के कर्णधार थे। उनके देहावसान पर विद्यार्थी जी के विचार संक्षिप्त रूप में लिखे गए हैं। इन लेखों को देखने से पता चलता है कि विद्यार्थीजी में देश-विदेश के महापुरुषों के प्रति कितनी श्रद्धा एवं सहानुभूति थी जोकि वे समय-समय पर अपने सम्पादकीय विचारों से व्यक्त किया करते थे। इसके साथ ही उनकी साहित्य-सेवा, देश-प्रेम एवं समाज-हित को देखने, समझने एवं परखने के लिए 'कर्मवीर' के ये लेख साधन होंगे।

हमारे ये पशु-पक्षी—

लेखक—श्रीचन्द्र जैन, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। पृष्ठ २९३, मूल्य १२.५०।

समालोच्य पुस्तक भारत के पशु-पक्षियों के ऊपर लिखी गई है। पुस्तक में पशु-पक्षियों का सम्बन्ध मानव-जीवन एवं सृष्टि से है। इस बात का सतर्क एवं सप्रमाण वर्णन है। उनका महत्वांकन करना ही लेखक का अभीष्ट है। काव्य एवं साहित्य के साथ पशु-पक्षियों का सम्बन्ध निर्धारण भी किया गया है। इस क्रोड़ में लेखक का परिश्रम बड़ा ही श्लाघ्य है। पुस्तक सचित्र होने से और भी रुचिकर एवं मनोरजंक बन पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने देश के पशु-पक्षी जगत को समझने, परखने एवं निरखने के लिए प्रस्तुत कृति बड़ी ही उपादेय है। साथ ही प्रकृति के नाना रूपों का मानव-जीवन में स्थान-स्थापना हेतु स्थूल साक्ष्य भी उपस्थित करने में सफल है।

मानव की कहानी—

लेखक—राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक—राज्यपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। पृ ७२, मू. १.५०

सृष्टि के समय के मानव के विकास को समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन हुआ इसकी विशेषता यह है कि वर्णन कथात्मक तथा चित्रात्मक है। इससे पाठक को कहानी सा आनन्द आता है। लेखक ने कथावस्तु के प्रवाह को बनाये रखने के लिए सर्वत्र जिज्ञासा को स्थान दिया है। मानव को अपनी कहानी जानने के लिए प्रस्तुत पुस्तक को देखना चाहिए।

—कामता गुप्त कमलेश

हिन्दी साहित्य—

साहित्यकार संसद, वैद्यनाथ देवघर (सं० प०) का मुख पत्र, दिनकर अंक, १९६७।

राष्ट्रकवि दिनकर की अब तक की हुई साहित्य सेवाओं के मूल्यांकन में प्रस्तुत विशेषांक अच्छा बन पड़ा है। मौलिक चिन्ताओं एवं समतुल्य साहित्य [illegible] में [illegible]खने के लिए इस अंक के सभी लेख उत्कृष्ट [illegible] नहीं वरन् नूतन आयाम प्रदर्शक भी हैं। किसी भी कवि के सर्वांगीण भावों को विभिन्न पाठकों एवं विद्वानों के द्वारा प्रकट करने में इस तरह के अंक निश्चय ही सफलीभूत होते हैं। एतदर्थ हिन्दी साहित्य का यह अंक पठनीय ही नहीं नवीन दिशा बोधक भी है।

बाल-साहित्य

अच्छे बनो—

लेखक—प्राणनाथ वानप्रस्थी, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। पृ० ४८, मूल्य पचहत्तर पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक में छोटे-छोटे से चारित्रिक उन्नयन एवं नैतिक उत्थान के लिए दस छोटी-छोटी बातें बताई गई हैं और उनको जीवन-मंजिल पर चढ़ने की दस सीढ़ियों को मान महत्व दिया गया है।

संसार के सात महान आश्चर्यों की कहानी—

लेखक—जितेन्द्रकुमार मित्तल, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६। पृ०-६०, मूल्य दो रुपये।

आज की प्रगतिशील जगत में प्राचीन समय से बहुत से परिवर्तन हो गए हैं। इसी तरह संसार के आश्चर्यों की भी संख्या बढ़ चुकी है और दिन प्रतिदिन बढ़ने की ओर ही इसकी प्रवृत्ति है। अब तो सीमा का निर्धारण सहज सम्भव भी नहीं। फिर भी इस पुस्तक के सात आश्चर्यों की कहानी पुरानी होते हुए भी किशोरों के लिए पठनीय है।

"मानव जाति ने जो सोचा, समझा और पाया है,
वह पुस्तकों के जादू भरे पृष्ठों में बन्द है;
उन पृष्ठों को खोलिये और संसार
भर का ज्ञान प्राप्त कीजिये"

आज ही अपनी मन पसन्द की पुस्तकें मंगायें—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सबसे अधिक लोकप्रिय उपन्यासकार गुरुदत्त के अब तक सौ से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। नीचे उनके चुने हुए प्रसिद्ध उपन्यासों की सूची दी जा रही है। इनमें से कई गुरुदत्त के एकदम नये उपन्यास हैं और अनेक उनके लोकप्रिय उपन्यासों के सम्पूर्ण पाकेट संस्करण हैं।

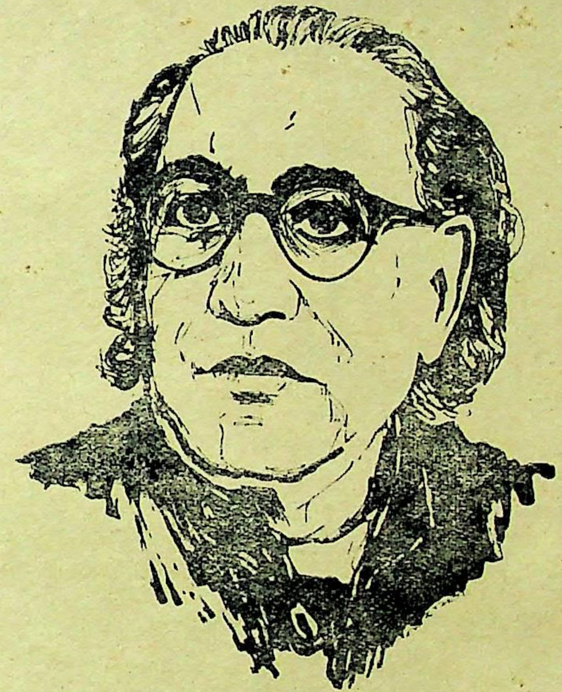

गुरुदत्त

के

लोकप्रिय उपन्यास

प्रत्येक का मूल्य : एक रुपया

- **भूल**
- **वनवासी**
- **ममता**
- **मैं न मानूँ**
- **परिवर्तन**

प्रत्येक का मूल्य : दो रुपया

- **प्रतिशोध**
- **प्रवंचना**
- **तब और अब**
- **जागृति**
- **अपने-पराये**
- **पड़ोसी**

प्रत्येक का मूल्य : तीन रुपये

सागर और सरोवर ● विक्रमादित्य ● वाम मार्ग (प्रेस में)

पूरे सैट का आर्डर आज ही भेजिये और विशेष रियायतों के लिये लिखिये :

हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०,

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल-कालेजों के

पुस्तकालयों के लिए अनिवार्य

साहित्य-सन्देश की पुरानी फाइलें

ज्ञान-वृद्धि का अपूर्व साधन

और

शोध के लिए परम उपयोगी

साहित्य-सन्देश को निकलते हुए ३० वर्ष होने आए। इसके प्रथम १५ वर्ष के कोई अङ्क अब नहीं मिलते। इधर १४-१५ वर्षों की फायलें उपलब्ध हैं, पर वे भी अब समाप्त होती जा रही हैं।

आप अपने पुस्तकालय की शोभा और सम्पन्नता बढ़ाने के लिए इन फायलों को अभी मँगवा लें, वरना 'सरस्वती', 'माधुरी' की तरह 'साहित्य-सन्देश' की फायलें भी मिलना असम्भव हो जायगा।

प्रत्येक फायल में ५०० से ऊपर पृष्ठ हैं, सजिल्द हैं, मूल्य १०) प्रति फायल है।

पुस्तकालयों और 'साहित्य-सन्देश' के ग्राहकों के लिए पौनी कीमत में। रेल से फायलें भेजी जायँगी। अतः आर्डर के साथ कमसे कम ५) पेशगी भेजिए और रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखिए।

साहित्य-सन्देश अपने विशेषाङ्कों के लिए प्रसिद्ध है। हर वर्ष की फायल में एक-दो विशेषाङ्क मिलेंगे।

आर्डर तुरन्त भेजिए। ३० जुलाई तक रेलभाड़ा हम देंगे।

प्रबन्धक : साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग–२९ अङ्क–११

सम्पादक
महेन्द्र

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

मई—१९६८

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	

हमारी विचारधारा

आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास—

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने भारतीय भाषाओं के विकास की योजनाएँ बनाई हैं। भारतीय भाषा समिति द्वारा नियुक्त एक समिति उनकी समीक्षा करेगी। यह निश्चय भारतीय भाषा समिति की नई दिल्ली में दो दिन की बैठक की समाप्ति पर किया गया।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा समिति ने सरकार से भारतीय भाषा संस्थान स्थापित करने और इसकी स्थापना के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। समिति ने यह सिफारिश विभिन्न भाषाओं और शब्दावलियों के अनुसन्धान तथा तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय भाषाओं की बुनियादी एकता को दृढ़ करने के लिए की है।

समिति ने सिफारिश की है कि क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें तैयार करने के कार्य में तेजी लायी जाय। इस कार्य को शीघ्रता से कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों को अपने राज्यों में सङ्गठन स्थापित करने चाहिए। राज्य सरकारों एवं विश्वविद्यालयों से कहा गया है कि वे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विकसित शब्दों को क्षेत्रीय भाषाओं में शीघ्रता से स्वीकार करने के सम्बन्ध में कारगर कदम उठाएं।

समिति ने सन्दर्भ साहित्य के सम्बन्ध में सुझाव दिया है कि समिति के अध्यक्ष साहित्य अकादमी के परामर्श से विभिन्न भाषाओं में कोशों, विश्वकोशों और सन्दर्भ साहित्य के निर्माण कार्य की समीक्षा करने तथा सुझाव देने के लिए एक समिति बनाएँ। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि लगभग २० हजार शब्दों के त्रिभाषा कोशों (अंग्रेजी, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा) की रचना की जाय।

भाषाओं के विकास के लिए केन्द्रीय एवं राज्य संस्थान—

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय का मत है कि क्षेत्रीय भाषाओं को अंग्रेजी का स्थान लेने योग्य बनाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता है और इसे ध्यान में रखकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिए एक केन्द्रीय संस्थान कायम करने पर विचार किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संस्थान शीघ्र ही कायम करने का प्रस्ताव है। इसमें सभी भाषाओं पर अखिल भारतीय पैमाने पर अनुसन्धान कार्य किया जाएगा और इनके साहित्य आदि का तुलनात्मक अध्ययन होगा।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय और आयोजना आयोग ने संयुक्त रूप से एक अध्ययन दल नियुक्त किया है। इस दल ने केन्द्रीय संस्थान और राज्य स्तर पर कार्य के लिए राज्य स्तरीय संस्थान कायम करने की योजना पर विचार किया है।

राज्यों में भाषा संस्थान विश्वविद्यालयों में कायम किए जा सकते हैं या ये संस्थान राज्य सरकारों के भाषा विभाग से सम्बद्ध होकर कार्य कर सकते हैं।

जहाँ तक हिन्दी के विकास का प्रश्न है यह राय व्यक्त की गयी कि हिन्दी किसी एक राज्य विशेष की भाषा नहीं है और उसके विकास के लिए अनेक योजनाओं पर कार्य हो रहा है। इसलिए केन्द्रीय भाषा संस्थान को प्रयत्न करना चाहिए कि हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषाओं में पारस्परिक सम्बन्ध कायम हो सकें और हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के विकास के लिए इस पारस्परिक सम्बन्ध का लाभ उठाया जा सके।

भाषायी संवाद समितियाँ—

आज किसी राष्ट्र के लिए समाचार पत्रों का महत्व उसके जीवन और स्वरूप से बँधा हुआ है। इस दृष्टि से भारत राष्ट्र अभी पराधीन और निर्धन है। हमारे यहाँ का समाचार उद्योग पूर्णतः विदेशी भाषा और विदेशी संवाद एजेन्सियों पर निर्भर है। भारत जैसे लोकतन्त्रीय देश के लिए यह अत्यन्त लज्जा और अपमान की स्थिति है कि उसके अपने लोकतन्त्र को निर्मित करने की मुख्य क्षमता रखने वाले तत्त्व पराये हैं, जिनमें यह कार्य संभव नहीं है। 'हिन्दुस्तान समाचार समिति' की द्विवार्षिक बैठक का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय सूचना-प्रसार मंत्री श्री के० के० शाह ने ठीक ही कहा है कि—'देश भर में जनमत जाग्रत करने के लिए अंग्रेजी समाचार पत्र समर्थ नहीं हैं।" श्री शाह ने यह भी स्वीकार किया कि—"भाषायी समाचार पत्रों को स्वावलम्बी और सशक्त बनाने के लिए भाषायी संवाद समितियों को प्रोत्साहन देना आवश्यक है।" वस्तुतः इस ओर बहुत विलम्ब से ध्यान दिया गया है, और उसका कारण है अंग्रेजी की स्थिति। हमारे अपने भाषायी पत्र, भाषायी संवाद समितियों पर निर्भर हैं। यह समितियाँ जैसे और जिस प्रकार के संवाद देती हैं, हमारे पत्र उन्हीं पर निर्भर करते हैं। एक प्रकार हमारे भाषायी पत्रों की स्थिति अंग्रेजी पत्रों के अनुवाद की हैं। अनुवाद की यह अनिवार्यता भाषायी पत्रों के स्तर को उठाने में जहाँ जबरदस्त बाधक हैं, वहीं इसमें भाषायी पत्रों की मौलिकता तथा उनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण संवादों की प्रतिष्ठा को भी गम्भीर आघात पहुँच रहा है। जब तक हमारे देश की स्वतन्त्र संवाद समितियाँ भाषायी पत्रों को अपनी भाषा में संवाद नहीं देंगी। हमारे देश के पत्र किसी तरह भी आगे नहीं बढ़ पायेंगे। वस्तुतः भाषायी संवाद समितियों के अभाव में भाषायी पत्रों को सारा श्रम विदेशी भाषा में प्राप्त संवाद की स्वभाषा में अनुवादित और संपादित करने में लगाना पड़ता है। भाषायी पत्रकारों का मुख्य कार्य है, अंग्रेजी का अनुवाद करना। यदि यह आरोपित भार जो हमारी परतन्त्रता की देन है, भाषायी पत्रकारों पर से हट जाय तो वे अपने श्रम का उपयोग पत्र के स्तर को ऊँचा उठाने, जनमत को जाग्रत करने और संवादों के संवारने पर लगायें। यह स्थिति आने पर भाषायी समाचार पत्र राष्ट्र के लोकमत का सही प्रतिनिधित्व और निर्माण कर सकते हैं। इस दृष्टि से 'हिन्दुस्तान समाचार समिति' का महत्व बहुत बढ़ जाता है। हमें प्रसन्नता है कि समिति भाषायी समाचार पत्रों के माध्यम से भारत राष्ट्र के मौलिक स्वरूप का प्रचार करने के उद्देश्य पर उत्साहपूर्वक बढ़ रही है। लेकिन समिति के मार्ग में ऐसी अनेक बाधाएँ हैं, जो उसकी प्रगति को अवरुद्ध किए हुए है। सबसे बड़ी बाधा है, 'नागरी दूर मुद्रकों का अभाव।' श्री शाह ने समिति की द्विवार्षिक बैठक का उद्घाटन करते हुए उसे सरकार की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सहयोग देने का आश्वासन दिया है। हमारा निवेदन है कि सरकार 'नागरी दूर मुद्रकों' की समस्या की ओर अविलम्ब ध्यान दें और ऐसी व्यवस्था करें कि इनके अभाव में भाषायी संवाद समितियों का कार्य न रुके। यदि सरकार की ओर से इस दिशा में सहयोगात्मक व्यवहार का रुख अपनाया गया तो निश्चित ही राष्ट्र अपने उद्देश्य में सफल होगा।

अंग्रेजी की कानूनी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद—

लोकसभा की उत्तर प्रदेश सलाहकार समिति ने अपनी पहली बैठक में राज्यपाल से सिफारिश की है कि अंग्रेजी की कानूनी पुस्तकों का हिन्दी में अविलम्ब अनुवाद कराया जाय, ताकि राज्य सरकार हिन्दी के माध्यम से प्रशासन का कार्य सुचारु रूप से चला सके।

समिति की बैठक स्वराष्ट्र मन्त्री श्री यशवन्तराव चव्हाण की अध्यक्षता में हुई। समिति के ४० सदस्यों में से २३ सदस्य उत्तर प्रदेश के हैं। बताया जाता है कि प्रदेश के सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया है कि चूँकि हिन्दी उत्तर प्रदेश की राज-काज की भाषा घोषित है, किन्तु कानून सम्बन्धी पुस्तकों के अँग्रेजी में होने से अदालती मिशाल अँग्रेजी में ही दी जाती है जो युक्ति सङ्गत नहीं है। सदस्यों ने कहा कि प्रशासन कार्य चलाने के लिए पूर्णरूप से उनके हिन्दीकरण की जरूरत है। समिति ने सर्व सम्मति से सदस्यों का सुझाव स्वीकार कर लिया।

त्रिभाषा फार्मूला की स्वीकृति—

एक लम्बे अन्तराल से भाषा नीति पर बहस होती आ रही है। सभी शिक्षाविद्, देश के गणमान्य नेता एवं शिक्षामन्त्री अपने-अपने मतों से इसकी पुष्टि पर बल देते आ रहे हैं कि विद्यार्थियों को तीन भाषा का ज्ञान आवश्यक है, अतएव उसे तीन भाषा का अध्ययन प्रारम्भ से ही करना जाहिए। ये तीन भाषाएँ हैं—मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और एक अन्य भाषा—उसमें प्रमुखता दक्षिण की कोई भी भाषा होनी चाहिए। इस नीति के अनुरूप राष्ट्रभाषा हिन्दी के पढ़ने के लिए देश का एक मात्र प्रदेश मद्रास ही द्विभाषा नीति का समर्थक है। वह किसी भी स्थिति में हिन्दी का पठन-पाठन नहीं चाहता। हाल की घटनाओं एवं विवादों से इसकी पुष्टि सहज ही हो जाती है।

किन्तु अभी पिछले दिनों दिल्ली की एक बैठक में त्रिभाषा फार्मूला को स्वीकृति प्राप्त हो गई है। अब इस सिद्धान्त एवं नियम के लागू होने पर देश और विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह जानना अपेक्षित है। शिक्षामन्त्री डा० त्रिगुणसेन अपने वक्तव्य में इस नीति को लागू करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ से हैं। अतएव देश की एकता एवं भावात्मक समता बनाये रखने के लिए त्रिभाषा फार्मूला उचित ही नहीं अपितु हितकर भी प्रमाणित होगा।

शिक्षा-व्यय—

देश में शिक्षा पर हो रहे वर्तमान व्यय को देखते हुए शिक्षा मंत्री ने उसे और बढ़ाने के लिये सरकार से अपना निवेदन किया है क्योंकि अब तक भारत में शिक्षा पर आय का केवल २·९ प्रतिशत रुपया ही व्यय किया जाता है जिसके कारण ही उसके मार्ग में अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। अतएव इसके खर्च में यदि वृद्धि हो गई तो देश का शिक्षा स्तर काफी बढ़ जाएगा और कठिनाइयाँ भी बहुत अंशों तक दूर हो सकेंगी। शिक्षामन्त्री ने देश पर शिक्षा का खर्च २·९ प्रतिशत से बढ़ाकर ६ प्रतिशत तक करने की माँग की है। यदि इतना खर्च शिक्षा पर होने लगेगा तो अध्यापक, विद्यार्थी एवं प्रकाशकों की बहुत सी कठिनाइयों का निराकरण सम्भव हो सकेगा।

साहित्य और मनोविज्ञान—

बीसवीं सदी में विश्व साहित्य में एक नया मोड़ आया जिससे उसके प्रासाद का एक सुन्दर गवाक्ष खुल पड़ा। फलतः उससे स्वच्छ समीर अन्दर प्रविष्ट होने लगी। साहित्य में मनोविज्ञान का आना इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण है। मनोविज्ञान के आधार पर ही आज के साहित्य की पृथुल धारा प्रवाहित हो रही है। क्या उपन्यास, क्या कहानी, क्या कविता, क्या निबन्ध सभी विधाओं में मनोविज्ञान का प्रवेश हमारे साहित्यकार करते जा रहे हैं। साहित्य के पात्रों में, भावों में, तथा संवेगों में मनोवैज्ञानिक मोड़ आ जाने से उसकी गति बदल गई, दिशा परिवर्तित होगई और पाठक बदल गये। इसीलिए आज का साहित्य आत्म-विश्लेषण एवं स्वतः निर्णय का विषय बनता जा रहा है। अतएव मनोविज्ञान की सही परख के आधार पर उसका सृजन माँ-भारती के प्रासाद को और ही चमत्कृत एवं अलंकृत करने में समर्थ होगा। और लेखकों एवं साहित्यकारों के मनोवैज्ञानिक रुचि एवं अध्ययन से हिन्दी-जगत और ही समृद्ध होकर विश्व-साहित्य की कोटि में अपना स्थान बनाने में सक्षम होगा। पाठकों को भी अपनी सीमा से निकलकर पाश्चात्य जगत की मनोवैज्ञानिक विचार तरंगों में डुबकियाँ लगाना अपेक्षित हो जाएगा। इस दृष्टि से भी मनोविज्ञान का आयातित रूप हमारे साहित्य के लिए महत्व रखता है। साथ ही साहित्य की गतिविधि को गतिमान बनाने में सहयोग भी मिलता है।

साहित्य-सन्देश के पुराने अङ्क—

साहित्य-सन्देश के पुराने अङ्कों और विशेषांकों की बड़ी माँग हैं। इधर प्रारम्भ के १४-१५ वर्ष के कोई भी अंक या उसकी वार्षिक फाइलें अब उपलब्ध नहीं हैं। अतएव उसके लिए कोई महानुभाव लिखने का कष्ट न उठायें। इन विशेषांकों और फाइलों के लिए पाठक हमें लिख सकते हैं। संस्थाओं के संचालकों और प्रधान अध्यापकों तथा पुस्तकालयों के अध्यक्षों से हमारा निवेदन है कि वे अपने कक्ष की पूर्ति के लिए इन फाइलों को जल्द मँगा लें। हिन्दी के जितने श्रेष्ठ पत्र और पत्रिकाएँ अब बन्द हो गए हैं उनकी पुरानी फाइलों की बड़ी माँग है। 'सरस्वती' जैसी श्रेष्ठ पत्रिका के पुराने अंक जो श्रद्धेय द्विवेदीजी के काल में निकलते थे, आज किसी मूल्य पर नहीं मिल पाते हैं। साहित्य-सन्देश की भी कुछ-कुछ वही स्थिति है। स्व० बाबू गुलाबराय के सम्पादन काल के अनेक अंक अब नहीं मिलते। हिन्दी के विश्वविद्यालय, कालेज और पुस्तकालय इसीलिए साहित्य-सन्देश की फाइलें अपने यहाँ रखना चाहते हैं। इसीलिए हमारा निवेदन है कि वे इन फाइलों को जल्दी से जल्दी अपने यहाँ मँगाकर रखने का प्रबन्ध करें। इसीलिए आज इन पंक्तियों द्वारा हम अपने पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहे हैं।

पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का निधन—

हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार और देश के कर्मठ नेता पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का निधन विगत ६-७ जून की मध्य रात्रि में होगया। पालीवालजी हिन्दी पत्रकारिता में अपना विशेष स्थान रखते थे। स्वर्गीय राष्ट्रीय पत्रिका 'प्रभा' के वे सम्पादक रह चुके थे। 'प्रताप' के वे बहुत दिन सम्पादक रहे और सैनिक के वे जन्मदाता और सम्पादक सभी कुछ थे। उनकी लेखनी में बड़ा बल था और उनकी वाणी में बड़ा ओज। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ जब प्रारम्भ हुईं तो उसके प्रारम्भकाल के ही वे साहित्यरत्न थे। आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के वे सभापति रह चुके थे और अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के भी सभापति रहे थे। उनकी लिखी हुई अनेक पुस्तकों में 'सेवाधर्म' और 'सेवामार्ग' ऐसी पुस्तक थी जिनके कई संस्करण हुए। एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद भी उन्होंने किया जो 'अमरपुरी' नाम से बहुत विख्यात हुई। पालीवालजी जन्मजात योद्धा थे। योद्धा ही नहीं वे एक कठोर सेनापति थे और उनकी युद्ध-नीति सदैव विजय देखती थी। वे कई वर्ष तक उत्तर प्रदेश की सरकार में वित्तमन्त्री रहे। उन्हीं के कार्यकाल में उत्तर प्रदेश का बजट पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुआ था। वे हिन्दी के बड़े ही समर्थक और साधक थे। उनके निधन से आगरा ही नहीं उत्तर प्रदेश निर्धन होगया और देश के लिए भी उनके जाने से बड़ी क्षति हुई। दैनिक-सैनिक उनका जीवन्त स्मारक है। हम आशा करते हैं कि उनके सगे और साथी उसके [illegible] कमी न आने देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालीन हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना

• डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'

राष्ट्रीयता का जो भाव ग्राज हमारे हृदय में है, वह पुरातन नहीं है। यद्यपि हम प्राचीन काल से 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कहते हुए जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा से नमन करते चले ग्रा रहे हैं तथा पुराणों में भी भारत-भू की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है—

"गायन्ति देवा: किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भवन्ति
भूय: पुरुषा सुरत्वात ॥"

तथापि राष्ट्रीयता का उन्नयन उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस की राज्यक्रान्ति के ग्रनन्तर माना जाता है। श्री जी० पी० गूच ने लिखा है—"नेशनलिज्म इज दी चाइल्ड ग्रॉव फ्रेंच रिवोलूशन"। हेंस कोहन ने भी ग्रपनी पुस्तक 'ग्राइडिया ग्रॉव नेशनलिज्म' में राष्ट्रीयता की भावना का ग्रारम्भ ग्रठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से स्वीकार किया है।

प्रारम्भ में धर्म की एकता राष्ट्रीयता का ग्राधारभूत सिद्धान्त मानी जाती थी, किन्तु समय के साथ राष्ट्रीयता की भावना में परिवर्तन हुग्रा ग्रौर भूमि, शासन एवं संस्कृति की एकता को भी राष्ट्रीयता का मूल तत्व माना जाने लगा। डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने राष्ट्रीयता के लिए भौगोलिक एकता को प्राधान्य दिया है। वस्तुत: भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता का वाह्य ग्राकार कहा जा सकता है। राजनैतिक एकता उसका प्राण, सांस्कृतिक एकता मानस तथा ग्रार्थिक एकता उसकी शक्ति है। प्रो० मजमूदार ने राष्ट्र के सम्बन्ध में ग्रपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

"वह जन-समूह जो यह ग्रनुभव करता है कि उसका एक निजी सामाजिक व्यक्तित्व है, ग्रपना साहित्य है, अपनी भाषा है, एक ही ध्येय है, एक से रीति-रिवाज हैं ग्रौर जो ग्रन्य राष्ट्रों से इन विशेषताग्रों के कारण भिन्न ग्रस्तित्व रखता है, एक राष्ट्र का निर्माण करता है।" किन्तु भारत में ग्रनेक भाषायें हैं, ग्रनेक धर्म हैं, ग्रनेक साहित्य हैं, फिर भी वह एक राष्ट्र है। ग्रत: राष्ट्र एक समष्टिगत भाव तथा एक ही ग्रन्तश्चेतना से संगठित विशिष्ट भू-भाग में रहने वाले जन-समुदाय को कहा जा सकता है तथा राष्ट्रीय चेतना से तात्पर्य उस चेतना से है, जो समष्टि के ग्रभ्युदय की प्रेरणा देती है।

मध्य युग में इस प्रकार की भावना का उदय नहीं हुग्रा था। भारत अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र प्रभु-सत्ता सम्पन्न राज्यों में विभक्त था, जिनके ग्रधिपति ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित होकर परस्पर लड़ा करते थे, फलत: उनके ग्राश्रित चारण कवि ग्रतिशयोक्तिपूर्ण वाणी में उनकी वीरता का बखान करते हुए एक संकुचित ग्रात्म-गौरव को जगा रहे थे। सामान्य जन का ग्रस्तित्व नगण्य था ग्रौर वह ग्रपने राजा की इच्छा का दास था। ऐसी दशा में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की कल्पना भी सम्भव नहीं थी।

मुहम्मद बिन कासिम ग्रौर महमूद गजनवी जैसे ग्राक्रामक भारत में ग्राये तथा धन-सम्पत्ति लूट कर चले गये। वे केवल धार्मिक चेतना को उद्बुद्ध कर गये। मुहम्मद गौरी ग्रनेक बार ग्राक्रमण कर पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर न केवल ग्रपार सम्पत्ति ले गया, ग्रपितु ग्रपने गुलाम को राज्यासन देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में मुसलमानी राज्य की नींव डाल गया। परिणामस्वरूप तलवार की धार से इस्लाम का प्रचार किया जाने लगा, देवालय ध्वस्त किये जाने लगे, हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया तथा मुसलमानी राज्य की अभिवृद्धि की जाने लगी। परस्पर लड़कर शक्तिहीन बनी हुई जनता निराशा के अन्धकार में डूब गई। उसे पराये राज्य के अत्याचारों से होने वाली व्यथा का अनुभव हुआ, किन्तु वह कराह का स्वर भी नहीं निकाल सकती थी। इस समय सन्तों ने अवतरित होकर आध्यात्मिक काव्य से धार्मिक चेतना को उद्बुद्ध किया तथा निराश जनता में प्राणों का संचार किया। अतएव समाज को जगाने एवं उसमें आशा की ज्योति भरने की दृष्टि से उनका काव्य पूर्णतः ज्ञान-भक्तिमय होते हुए भी राष्ट्रीय कहा जाना चाहिए। आज की राष्ट्रीय भावना के अनुसार हम उसमें राष्ट्रीयता की गन्ध भले ही न पावें, किन्तु तत्कालीन परिवेश की भूमिका में देखने से उसके राष्ट्रीय महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

क्रमशः मुसलमानी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हो गया। इस्लाम के प्रचार स्वरूप मुसलमानों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। गुलाम, सैयद, खिलजी तथा लोदी वंशीय सुलतानों ने भारत में मुसलमानी साम्राज्य की जड़ें जमा दीं तथा मुसलमान भी आक्रामक न रहकर भारत के निवासी बन गये। ऐसी परिस्थिति में समष्टि के अभ्युदय एवं राष्ट्रीय कल्याण के लिए यह आवश्यक था कि हिन्दू और मुसलमान, सवर्ण और अछूत मिलकर रहें। जिस एकता की अनुभूति राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के लिए ब्रिटिश काल में गान्धीजी ने की थी, उसकी अनुभूति उस समय कबीर आदि सन्तों ने कर ली थी। उन्होंने दान धर्म के वाह्याडम्बरों पर कशाघात करके मूलभूत 'ब्रह्म' तत्व का, जो दोनों में समान रूप से था, प्रचार किया। उन्होंने कहा—

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥
तुरक मसीत देहुरा हिन्दू, दुहुठा राम खुदाई।
जहाँ मसीत देहुरा नाहीं, तहँ काकी ठकुराई॥

यदि केवल मन्दिर में ही राम और मस्जिद में ही खुदा है, तो अन्यत्र किसकी सत्ता है? इस विभेद को उत्पन्न करने वाले पण्डितों और मुल्लाओं की अच्छी खबर लेकर इन सन्तों ने एकता के बीज का बपन किया। शूद्रों से घृणा करने वाले पण्डितों से कहा—"एक जोति से सब उत्पन्ना को बाम्हन को सूद्रा।" उनके ज्ञान को चुनौती दी—"तू बाह्मन हौं कासी को जुलाहा बूझी मोर गियाना।" यही नहीं उनकी पवित्रता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा—"जो बाम्हन तू बम्हनी जाया, और राह ह्वै काहे न आया?" इन उक्तियों में कटु सत्य होते हुए भी इनकी राष्ट्रीय उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता।

ये सन्त इतने फक्कड़ थे कि इन्हें शासन का भी कोई भय नहीं था। इन्होंने प्रकारान्तर से उन्हें भी चेतावनी दी—

"एक दिन ऐसा होइगा, सबसूँ पड़े बिछोय।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होय?॥"

इन्होंने दीन-हीन तथा शोषित-पीड़ित जनता के प्रति करुणा व्यक्त की। एक ओर भगवान का ध्यान दिलाकर उसे सान्त्वना और आश्वासन दिया, दूसरी ओर उसको पीड़ित करने वाले को समझाया—

"दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाइ।
मुई खाल की साँस सों, सार भसम होइ जाइ॥"

उनके ये प्रयत्न राष्ट्रीय दृष्टि से कितने महत्वपूर्ण हैं।

निरन्तर के सान्निध्य से दोनों धर्मों की कटुता क्रमशः क्षीण होने लगी थी। सन्तों के प्रयत्न से वे एक-दूसरे के समीप आने लगे थे। तभी लोदी वंश के अन्तिम सुलतान इब्राहीम पर बाबर का आक्रमण हुआ, उस समय भारत के सभी हिन्दू-मुसलमानों का हित एक था, बाबर सभी के लिए विदेशी था, उसके आक्रमण से पीड़ित होकर नानकदेव भगवान को उपालम्भ देते हुए कहते हैं—

"खुरासान खसमान कीआ हिन्दुस्तान डराइआ
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगल चढ़ाइआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एती मार दई कर लाणें तें की दरदु न आइआ ?''

बाबर की सेना ने जिन नारियों की दुर्दशा की थी, उनमें हिन्दू ही नहीं, मुसलमान नारियाँ भी थीं उनकी दयनीय दशा का यह चित्र कितना करुण है—

''इक हिन्दआणी अवर तुरकाणी महिआणी ठकुराणी
इकन्हा पेरणा सिर खुरपाटे इकन्हा वासु मसाणी
जिन्ह के बंके घरी न आइया जिन किठ रेण विहाणी ?

हिन्दू नारियों की चोटियाँ खोली गईं, मुसलमान नारियों के बुरके फाड़ डाले गये तथा जिनके पति घर न मिले, उनकी रातें कैसे व्यतीत हुई, परमात्मा जाने ? तत्कालीन अत्याचारी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करके नानक आदि सन्तों ने राष्ट्रीय चेतना को जगाने का कार्य किया।

धीरे-धीरे मुगल भी भारत के निवासी हो गये, अकबर और जहाँगीर ने शक्तिशाली राज्य की स्थापना करके जनता को दबा दिया, फलतः इतिहास कार ने एक को 'महान्' की उपाधि से विभूषित किया और दूसरे के सम्बन्ध में 'अदले जहाँगीर' की किम्वदन्ती प्रसिद्ध कर दी, किन्तु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है, एक का औदार्य अपने साम्राज्य के विस्तार में केन्द्रित होने से सम्बद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित है और दूसरे का अदल विज्ञापन सा प्रतीत होता है, अन्यथा तुलसी जैसे सन्त को अपना क्षोभ इन शब्दों में व्यक्त करने के लिए बाध्य न होना पड़ता—

''गोंड़ गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल,
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल।''

यवन महिपाल महा या महान् बन कर भी केवल दण्ड-नीति से ही शासन चला रहे थे, साम्राज्य-लिप्सा की भावना इतनी तीव्र थी कि जनता की भूमि को हस्तगत कर लेना साधारण कार्य था, तभी तो तुलसी को कहना पड़ा—''भूमि चोर भूप भये'', राजा तथा उसके अधिकारियों से जनता इतनी त्रस्त और पीड़ित थी ''विनयपत्रिका'' जैसे विशुद्ध भक्ति-ग्रन्थ में भी तुलसी को लिखना पड़ा।

यद्यपि अकबर ने हिन्दू जनता को जजिया कर से मुक्त कर दिया था, तथापि जनता पर करों का पीड़ाकारक बोझ था, इसकी ओर राजा का आदर्श उपस्थित करते हुए तुलसी ने संकेत किया—

''बरसात हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ,
तुलसी प्रजा-सुभाग तें, भूप भानु सो होइ।''

कर तो राज्य की आय के साधन हैं, किन्तु वे जितने अप्रत्यक्ष होते हैं, उतने ही जनता को कम पीड़ित करते हैं, प्रत्यक्ष कर लगाकर जनता के रक्त को चूस कर अर्जित धन को अपने हरमों की सज्जा सुन्दरियों की विलास-क्रीड़ा तथा मदिरा के मद में बहाना कहाँ तक न्याय है ? अकबर का मीना बाजार और जहाँगीर का मदिरा-पान इतिहास प्रसिद्ध है, दूसरी ओर जनता में दरिद्रता का प्रकाण्ड ताण्डव हो रहा था।

इस दारिद्रय और दुष्काल का कारण थी बेकारी की स्थिति, क्योंकि—

''खेती न किसान को भिखारी को न भीख भलि,
बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविकाविहीन लोग सीसमान सोचबस,
कहें एक-एकनि सौं कहाँ जायँ का करी ?''

युग-द्रष्टा तुलसी ने अत्यन्त निर्भयता से तत्कालीन शासकों की दुर्नीति, स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति, निरंकुश शासन एवं तज्जनित जनता की संत्रस्त दशा के चित्र उपस्थित करके भारत की राष्ट्रीय चेतना को झकझोरा है।

दुर्गावती और चाँदबीबी जैसी नारियों पर आक्रमण करने वाले तथा स्वतन्त्रता देवी के आराधक महाराणा प्रताप को चैन की साँस न लेने देने वाले साम्राज्यलिप्सु अकबर के अत्याचारों के प्रति राजस्थान के कवियों ने जनता को विशेष जागरूक किया है। पृथ्वीराज, सूर्यमल, बाँकीदास और दुरसाजी का काव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। पृथ्वीराज प्रताप की वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

''अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फल प्रताप सी।।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर और जहाँगीर की नीतियों से सामन्ती स्तर के लोग विलास में डूब गये थे। वे साहित्यकारों और कलाकारों को प्रश्रय देकर उनकी कृतियों से अपने विलास-वेग को उद्दामता दे रहे थे और कवि-गण उनके संकेतों से शृङ्गार के नग्न चित्र उपस्थित कर रहे थे। फलतः राष्ट्रीय चेतना का ह्रास हो रहा था। किन्तु दबे स्वर में कभी-कभी जनता की पीड़ा मुखरित हो ही उठती थी और 'कली से रली' करने की अपेक्षा कुसुमित रमणी में अनुरक्त होने की प्रेरणा देने वाले बिहारी जैसे कवि भी कह उठते थे—

"दुसह दुराज प्रजानि कौं, क्यों न बढ़े दुख-द्वन्द।
अधिक अँधेरो जग करै, मिलि मावस रवि-चन्द॥"

क्योंकि उस समय प्रजा पर दोहरा शासन था—राजाओं का और मुगल सम्राटों का। इसलिए प्रजा अत्यन्त त्रस्त थी। अन्योक्ति के द्वारा बिहारी ने स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले हिन्दुओं को मुगल सम्राट के आदेश से मारने वाले अपने आश्रयदाता जयशाह को समझाया—

"स्वारथु सुकृत न स्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥"

आश्रय में रहने वाले कवियों की आवरण मण्डित यह राष्ट्रीय भावना भी स्तुत्य है।

इस युग में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र उद्घोष भूषण ने किया। उनके आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल स्वतन्त्रता के पुजारी थे और औरंगजेब जैसे अत्याचारी शासक से लोहा ले रहे थे। ये दोनों इस्लाम धर्म तथा मुसलमानों के विरोधी नहीं थे। अपितु स्वेच्छाचारी औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध क्रान्ति कर रहे थे। भूषण ने इन दोनों की वीरता का गान कर राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध किया। कतिपय आलोचक "मथुरा मसीत होती कासी हू की कला जाती, सिवाजी न होतो तौ सुनति होती सब॰की" तथा 'राखी हिन्दुआनी हिन्दुअन कौ तिलक राख्यौ, स्मृति औ पुरान राखे वेद-विधि सुनी मैं "जैसी पंक्तियों के कारण भूषण ने सामान्य रूप से मुसलमानों के प्रति आक्रोश कहीं भी व्यक्त नहीं किया, उन्होंने तो औरंगजेब के पूर्वजों की प्रशंसा करते हुए लिखा—

"बाबर अकबर हुमाऊँ हद्द बाँधि गये,
हिन्दू औ तुरक की कुरान वेद ढब की।
और पातसाहन में हुती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजाँ साख पूरे तब की॥"

अतएव यह प्रमाणित होता है कि भूषण औरङ्गजेब के अत्याचारी शासन के विरुद्ध हो जन-जागरण का शङ्ख फूँक रहे थे, अतएव वे विशुद्ध राष्ट्रीय कवि हैं औरङ्गजेब के शासन के विरुद्ध साधारण कवि के हृदय में रोष था, मथुरादास नामक एक कवि लिखते हैं—

"काजी मुल्ला की करै बड़ाई,
हिन्दुन कों जजिया लगवाई।
काल रूप पातसाह हो बैठा,
पूजन भाव छुट्यौ घर बैठा।"

इनके अतिरिक्त इस युग में सूदन, लाल और छत्र कवि ने स्वतन्त्रता के सेनानियों की वीरता का गान करके राष्ट्रीय चेतना को जगाया। गुरू गोविन्दसिंह ने जीवन भर स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेते हुए अत्याचारी शासकों को नाकों चने चबवाते हुए अपने काव्य द्वारा वीरता का अजस्र स्रोत प्रवाहित किया, कितने ही वन्दा वैरागियों को उत्पन्न कर दिया।

इस प्रकार हिन्दी कविता का मध्य काल भक्ति और शृङ्गार की भावना से ओत प्रोत होते हुए भी राष्ट्रीय चेतना से शून्य नहीं है, युग के अनुरूप उस काल के कवियों ने राष्ट्रीयता भावों की अभिव्यक्ति की, जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि आज जो राष्ट्रीयता का स्वरूप हमारे समक्ष है, उस समय वह नहीं था, अतएव आज की कसौटी पर हमें उस काव्य को नहीं परखना चाहिए।

—ए १५, यूनीवर्सिटी क्वार्टर्स,
अमरावती रोड, नागपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम का आधुनिक स्वरूप

● डा० परमलाल गुप्त

आदि कवि वाल्मीकि ने राम को महापुरुष के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने उनके गुणों का जो वर्णन किया है, वे अलौकिक हैं—

कदाचिदुपकारेण कृते नैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥
सतुश्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानांपार्थिवात्मजः
बहिश्वरः इव प्राणो वभूव गुणतः प्रिय ॥ आदि

(राम किसी प्रकार के उपकार से थोड़े में सन्तुष्ट हो जाते हैं और सैकड़ों उपकारों पर भी ध्यान नहीं देते; क्योंकि वे आत्मवान हैं। वे श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं, अतः प्रजा के वाह्य प्राण हैं। प्राण के निकलते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है किन्तु ये प्राण होकर भी बाहर रहते हैं। अतएव साधारण प्राणों से उत्कृष्ट हैं) राम के इन्हीं अलौकिक गुणों के कारण परवर्ती काव्यों में वे भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हुए। हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण में कोई भेद न मानते हुए, भक्तों के प्रेम के कारण निर्गुण को सगुण रूप में अवतरित किया है। आधुनिक राम-काव्य में भी उन्हें भगवान मान कर श्रद्धा अर्पित की गई हैं पं० रामचरित उपाध्याय (रामचरित चिन्तामणि, पृष्ट १०), मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, पृष्ठ १८) बलदेवप्रसाद मिश्र (कौशलकिशोर पृष्ठ १६) आदि कवियों ने राम को लीलाधारी परम-ब्रह्म ही माना है, परन्तु उनके चरित्र का अंकन आधुनिक युग की धारणा के अनुरूप मानवीय रूप में किया है। अपने आदर्श के कारण ही वे ईश्वर रूप हो जाते हैं—'आदर्श ही ईश्वर है हमारा'। राम के चरित्र में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ आदर्श एकाकार हो गये हैं, इसीलिए बालकृष्ण शर्मा नवीन कहते हैं।

राम, नहीं नर, एक चिरन्तन
मननपुंज हिन्दू मनका,
राम, एक उत्कर्ष कल्पना,
इक आदर्श आर्य-जन का।
राम, सत्य, शिव, सुन्दर
भावों की कल्याणमयी झाँकी,
राम, सच्चिदानन्द भाव की,
छवि नयनाभिराम बाँकी।
(उर्मिला, पृष्ठ २२५)

राम के चरित्र को मानव रूप में उपस्थित करने के लिए उनकी अनेक दुर्बलताएँ भी प्रदर्शित की गई हैं। पं० रामचरित उपाध्याय ने वाल्मीकि के अनुसार ही राम को राज्य से सर्वथा विरत नहीं दिखाया है। वे धर्म की भावना से ही पिता की आज्ञा का पालन करते हैं, अथवा उन्हें वन जाना अभीष्ट नहीं। इसका उन्हें आन्तरिक खेद भी है। लक्ष्मण के आवेशयुक्त वचन सुनकर, राम अपने भाग्य की विडम्बना करते हैं—

दुर्दैव ने ही राज्य देकर हाथ से फिर ले लिया,
मुझको अकिञ्चन कर दिया, घर भी नहीं रहने दिया।
(रामचरित चिन्तामणि, पृष्ठ ८४)

राम का मन भरत की ओर से भी स्वच्छ नहीं है। सीता को समझाते हुए वे कहते हैं—

'सीते' सदा अनुकूल भरत के तुम आज से,
मैं मुनि बनूँ, दासी बनो तुम, काज क्या है राज से?
(रामचरित चिन्तामणि, पृष्ठ ७५)

चित्रकूट में भरत-मिलन, बालि-बध, सीता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्याग आदि के प्रसंगों में भी राम के चरित्र का दुर्बल पक्ष दिखाई देता है। कुछ कवियों ने राक्षस-परिवार के प्रति अधिक सहानुभूति दिखाने के कारण राम के चरित्र में भीरुता, कापुरुषता आदि का आरोप कर उन्हें अपने वांछित गौरव से स्खलित कर दिया है। बंगला के कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद-वध' और हिन्दी के हरदयालु सिंह कृत 'रावण महाकाव्य' में राम का चरित्र इसी प्रकार उपस्थित किया गया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में सर्वप्रथम परम्परित आदर्श की रक्षा करते हुए राम के चरित्र को मानव रूप में उपस्थित किया। 'मेघनाद-वध' की आलोचना करते हुए योगीन्द्र नाथ वसु ने कहा था-महर्षि (वाल्मीकि) ने एक पहलू दिखाया है, मधुसूदन ने दूसरा। जान पड़ता है, किसी भावी महाकवि के द्वारा इन दोनों का सामञ्जस्य दिखाया जायगा।' क्या हम नहीं कह सकते कि ये महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ही हैं। कन्नड़ के कवि कुवेम्पु ने राम और रावण को एक ही सत्य के दो रूप मानकर दोनों के चारित्रिक आदर्श की रक्षा का प्रयत्न किया है, परन्तु यह लौकिक धरातल में न होकर आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में हैं। गुप्त जी के राम धरती के मानव हैं, जिनका लगाव धरती से ही है और एन्द्रिय राग-विराग से वे सर्वथा अलग नहीं हैं। उनमें हास-परिहास, प्रेम रोमांस, स्नेह श्रद्धा, करुणा क्रोध आदि की सरसता विद्यमान है। उनका सबसे अधिक आकर्षक रूप लोक-सेवक का है। वे लोक सेवा के लिए स्वेच्छा से बन जाने को तैयार होते हैं, केकैयी-वरदान की घटना तो एक निमित्त मात्र है। उनका दृष्टिकोण 'राज्य है प्रिये भोग या भार' में पूर्व ही स्पष्ट हो जाता है। चित्रकूट में वे सीता से अपना लक्ष्य इस प्रकार स्पष्ट करते हैं।

"भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।"
(साकेत, पृ० २३३-३४)

रावण से उनका विरोध सांस्कृतिक आदर्शों का ही विरोध है। उनकी रावण पर विजय धरती की अत्याचारों से मुक्ति है। सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना है। इस रूप में वे आर्य सभ्यता का प्रसार करने वाले नेता हैं।

हरिऔधजी ने राम को लोकरंजनकारी सामनीति का प्रवर्तक बताया है। सीता सम्बन्धी लोकापवाद उठने पर वे वशिष्ठ से कहते हैं—

"...................दमन वांछित नहीं,
सामनीति अवलम्बनीय है अब मुझे।
त्याग करूँ तब बड़े से बड़ा क्यों न मैं,
अंगीकृत है लोकाराधन जब मुझे।।"
(वैदेही-वनवास, पृ० ५८)

राज्य-शक्ति इस लोकापवाद का बड़ी सरलता से दमन कर सकती थी, परन्तु प्रजा में उज्ज्वल आदर्श की स्थापना भय द्वारा नहीं, वरन् त्याग द्वारा ही सम्भव थी। अतः उनके राम साकेत के "हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी" की भाँति व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को महत्व देते हैं। समाज के कुछ तत्व अपनी स्वार्थी मनोवृत्ति से व्यवधान उपस्थित करते हैं, तब भी राम उन्हें सत्पथ पर लाना चाहते हैं। शत्रुघ्न को लवणासुर के विरुद्ध भेजते समय उन्हें रक्तपात न करने का निर्देश देते हैं। (वैदेही-वनवास, पृ० १७८)। नवीनजी के राम को भी इस बात का खेद है कि वे रावण की मनोभावना बदलने में असमर्थ रहे और अन्त में उन्हें दण्डनीति का अवलम्बन करना पड़ा। (उर्मिला, पृ० ५४१)। राम के इस आदर्श में गान्धीवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने राम के चरित्र के इस पहलू का और अधिक विकास किया। उनके राम नवयुग के सन्देशवाहक, नवीन संस्कृति के प्रचारक और नवीन सामाजिक क्रान्ति के प्रवर्त्तक हैं। वन-यात्रा के समय उनकी विचारधारा देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मंगल-प्रभात बेला है, मन ! व्यापकता आने दो
एक क्षेत्र के एक वृत्त में निज को मत बँध जाने दो ।
क्यों मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आबद्ध रहे,
क्यों न विश्व का मानव खग-मृग तक मुझको बंधु कहे।
एक प्राण हो भारत जननी, एक राष्ट्र भारतवासी,
राष्ट्र सूत्र हो मानवता में जो दिव्यता सुखरासी ।
प्रति मानव में प्रभु रहता है, उसे सप्रेम जगायें हम,
भूमा भाव भूमि पर छायें, सुख बाँटें सुख पायें हम ।
(राम-राज्य, पृ० २१–२३)

मिश्रजी के राम विश्व-बंधुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं । उनके जीवन का उद्देश्य लोक-सेवा है । वे चित्रकूट और पंचवटी में जन-सम्पर्क स्थापित कर विकास की शिक्षा देते हैं । उन्हें मानवों में फैले हुए वैषम्य और हिंसा या शोषण पर क्षोभ होता है और वे इनके उन्मूलन के लिए संकल्प हो जाते हैं । वे दण्डक वन को साम्राज्यवादी रावण के आतंक से मुक्त करते हैं । और किष्किधा में राज्य क्रान्ति करके विकास-विरोधी और रावण के मित्र बालि का अन्त कर देते हैं । युद्ध में रावण के पतन से सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता की स्थापना होती है । राम के सिंहासनारूढ़ होने पर राष्ट्र धर्म की घोषणा की जाती है । राष्ट्रीय एकता एवं दृढ़ता के लिए सांस्कृतिक समानता, राष्ट्र भाषा, सामान्य एवं विशेष धर्म की व्यवस्था की जाती है । मिश्रजी के राम का यह रूप वर्तमान भारत के युग पुरुष की धारणा को प्रत्यक्ष करता है ।

इस प्रकार आधुनिक समय में राम के ईश्वरत्व की भक्तिमूलक विचारणा का अन्त हो गया है और इसका स्थान सांस्कृतिक आदर्शों ने ले लिया है । मैथिलीशरण गुप्त के राम त्यागमयी आर्य-संस्कृति के संस्थापक, नवीन जी के राम अध्यात्मोन्मुख जीवन दर्शन के प्रचारक, हरिऔध जी के राम सामनीति के प्रवर्त्तक और बलदेव प्रसाद मिश्र के राम मानवता वादी राष्ट्रीयता के पोषक हैं । अन्य कवियों ने भी युगानुरूप अपने सैद्धान्तिक पिस्टपेषण के लिए राम को प्रतीक रूप में उपस्थित किया है । कहीं नवचेतन वाद के संवाहक महामानव हैं और कहीं वर्ग-संघर्ष में दलित वर्ग के नेता । ('जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' कविता-डा० शिव मंगलसिंह सुमन) राम के स्वरूप में ऐसा नया विचार-बोध आना स्वाभाविक है, क्यों कि जीवन सम्बन्धी मान्यताओं के साथ ही प्राचीन आदर्श भी परिवर्तित हो जाते हैं और राम केवल मनुष्य नहीं हैं, उनके रूप में भारतीय जन-मन का उत्कर्ष समाहित है ।

—कटनी रोड, मैहर (सतना) म० प्र०

"मानव जाति ने जो सोचा, समझा और पाया है,
वह पुस्तकों के जादू भरे पृष्ठों में बन्द है;
उन पृष्ठों को खोलिये और संसार
भर का ज्ञान प्राप्त कीजिये"

आज ही अपनी मन पसन्द की पुस्तकें मंगायें—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयवर्धन उपन्यास में विवाह और प्रेम की समस्या

● बलवीरसिंह भटनागर

'जयवर्धन' उपन्यास के प्रारम्भ में ही जय और इला का प्रेम सम्बन्ध पूर्ण परिपाक अवस्था में पाठकों के सम्मुख आता है। जैनेन्द्रजी के अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास का उद्देश्य भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में विवाह और प्रेम की समस्या का समाधान खोजना है। एक प्रश्न उठ सकता है कि क्या २१ वीं शताब्दी तक हमारा देश विवाह और प्रेम जैसी छोटी सी समस्या को नहीं सुलझा पायेगा ? जो समस्या शताब्दियों से नहीं सुलझ सकी यह जरूरी नहीं कि पचास वर्षों में वह सुलझ सके। सिद्धान्त निरूपण किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। मानव जीवन जटिल से जटिलतम होता जा रहा है। भविष्य में इस समस्या का समाधान या रूप क्या हो सकता है इसकी कल्पना सहज ही नहीं की जा सकती। सिद्धान्तों का निर्माण काल विशेष का आचरण देख कर किया जाता है। समाज का ढाँचा प्रतिपल परिवर्तित होता रहता है और सिद्धान्त पीछे छूट जाते हैं। मनीषियों को फिर नये सिद्धान्तों का नये मूल्यों की स्थापना करनी पड़ती है। हम फ्रायडीय या गेस्टाल्टियन चश्मा चढ़ाकर किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकते। आने वाले युगों में नये सिद्धान्तों का निरूपण निश्चित है और समस्या का मूल शाश्वत हैं। अगर जैनेन्द्रजी की भाषा का प्रयोग कर कहा जाय तो इसे हम यों कहेंगे—हमारे समाज में समस्यायें बनी हुई है क्योंकि वे आवश्यक हैं। अतः रहेंगी समाधान का अर्थ अनावश्यकता की ओर बढ़ता है जब तक विश्व है प्रश्न रहेगा हर उत्तर एक नया प्रश्न पैदा करता चला जायगा।

पुरुष और नारी के सम्बन्धों की एक आदर्श मूर्ति जैनेन्द्रजी के हृदय पटल पर अँकित है। और उसी का प्रयोग वे अपने हर उपन्यास में करते आये हैं। इस्टन इला से प्रश्न करता है कि जय और उसके मध्य क्या है ? तो उसका उत्तर है—"क्या आप सुनने की आशा रखते हैं, बीच में हैं नितान्त शुद्ध ब्रह्म........" जब यही प्रश्न वह जय से करता है—'विवाह तो आपने किया नहीं है तो उसने इस्टन का हाथ अपने हाथ में लिया और धीमे से दबाकर छोड़ दिया।[1] जैसे जय हूस्टन को कह रहा हो प्रेम की व्याख्या नहीं की जा सकती। प्रेम अनुभूति गम्य है; अभिव्यक्तिगम्य नहीं। प्रेम असाधारण होता है इसी से साधारण भाषा में उसकी अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। साधारण भाषा में जितना उसको समझाया जाना है उतना ही समझाये जाने से रह जाता है। इसलिए हे हूस्टन महाराज ! प्रेम क्या है इसको छोड़ दो। बस है यही बहुत है। न होने से तो ठीक है। इसी से हमारा काम चल जायगा।

जैनेन्द्रजी आदर्शोन्मुखी कलाकार हैं। उनका आदर्श एक विशेष साँचे में ढला हुआ है जो अलग उपन्यासों में अपना अलग-अलग भेष बदलकर सामने आता है पर अपने मूल रूप को छिपाने में असफल रह जाता है। जैनेन्द्रजी का आदर्श जड़ बन गया है उसमें नई उद्भावना की गुञ्जाइश नहीं। जयवर्धन में प्रेम की एक निःस्पन्द आंधी चलती है और सारे मानस को हिल्लोलकर, मथकर थम जाती है। एक

[1] जयवर्धन—पृ० २०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वार आता है और शीघ्र पाठक भाटे का अनुभव करने लगता है। यह प्रेम की आँधी जिसमें वासना और प्रेम की आदर्श टक्कर होती है। इसमें जैनेन्द्र जी की मनोविज्ञान के चेतन अवचेतन के संघर्ष का भी सहारा लेते हैं। अन्तिम क्षणों में प्रेम (आदर्श) की विजय होती हैं और वासना इला की पीड़ा बन रह जाता है।[1] जय का संयम (कुण्ठा) और इला द्वारा उसके पिता आचार्य को दिया गया वचन[2] पालन की पराकाष्ठा का इससे अत्युत्तम नमूना शायद पूरे जयवर्धन में दूसरी जगह न मिले।

जैनेन्द्र का आदर्श प्रेम बोल उठता है⋯बात सच है, मैंने बापू को वचन दिया था उन्होंने आस्था से उसे ले लिया और आगे एक शब्द नहीं कहा, मेरे प्रति वह आस्था सदा के लिए मेरी मर्यादा बन गई ⋯⋯⋯कृतज्ञ हूँ कि जय ने कभी इस मर्यादा पर किंचित रेख नहीं आने दी⋯⋯पर पूछता है, वह प्रेम है जिसमें मर्यादा दीखने को रह जाती है ? अंधा नहीं वह प्रेम हैं ?"यह वचन ही इस उपन्यास में जय और इला के प्रेम में बाधा था, कारण उपस्थित करता है।

"मर्यादा रख पाता है, रख पाता है—लांघ नहीं, किसी तरह नहीं पाता, ऐसा असमर्थ वह प्रेम है ?"

"वह मान से उतर कर अवश हो बह न सके⋯ वह आते तो⋯रह न पाते। मैं तब अपने हाथों से उन्हें खत्म कर देती⋯इस मूर्ति जैसी ऊँचाई पर, एकाकी और अद्वितीय, शायद उन्हें मैंने ही रखा है—कि कुछ हो जो टूट न सके, मैं तक तोड़ न सकूँ ⋯ओ⋯लेकिन वह प्रेम नहीं है⋯नहीं, नहीं कुछ और है⋯तड़प रही हूँ जानने के लिए कि क्लीवता है ?'

जैनेन्द्रजी के अधिकाँश उपन्यासों के पात्रों को 'क्लीवता' की उपाधि से विभूषित किया जाता है और इस कमजोरी को जैनेन्द्रजी स्वयं भी जानते हैं। इसीलिए इस क्लीवता को आदर्श में लपेट कर इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

[1] जयवर्धन पृ० १२८

[2] जयवर्धन पृ० १३२

"हमारे यहाँ आदर्श और प्रेम में सदा से संघर्ष होता आया है और आदर्श के लिए प्रेम की बलि चढ़ती आ रही है। जो मनुष्य को शक्ति और आत्म-विश्वास न देकर उसे दुर्बलता और कायरता की दीन भावना दे, देवत्व के उच्चासन से गिराकर पशुत्व दलदली जमीन की ओर ले जाय तो वह प्रेम नहीं मानव विकास की राहों का अन्धकार है। प्रेम तो वही है जिससे मानव की सहज संवेदनाओं को गौरव मिले, व्यक्तित्व विकसित हो, और अन्तस का छिपा हुआ देवत्व पुष्ट होकर सबल हो उठे।[1] जय जो कुछ है वह इला के त्याग का ही परिणाम है। अपना निजत्व, व्यक्तित्व, अस्तित्व सभी कुछ मिटा देने में हिचक नहीं—खुद टूटकर भी जय को जोड़े रखना चाहती है। इसीलिए चिदानन्द के आश्रम में जाने को तत्पर दीखती है, महज इसीलिए कि जय का विरोध समाप्त हो। यह इला के आदर्श प्रेम की कसौटी है।

वर्जना का मनुष्य के मनोवैज्ञानिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास में बहुत महत्व है।⋯यौन वृति की तृप्ति की इच्छा के साथ परित्याग की भी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है यद्यपि इसमें सुख नहीं मिलता पर व्यक्ति स्वयं ही अज्ञात भयों से प्रेरित हो कर उस ओर से हट जाता है। वह विराग और परित्याग कई कारणों से हो सकता है, पर वे प्रायः अज्ञात रहते हैं। जैसे व्यवहारिक कठिनाइयाँ, सुपर इगो का आदेश, सामाजिक दण्ड का भाव।[2]

जय और इला के प्रेम सम्बन्धों की (यौन सम्बन्धों) 'उच्च अहम्' द्वारा निर्मित है अतः सारे उपन्यास में इला को असन्तोषी पाते हैं। इला का एक मन समर्पण चाहता है तो दूसरा अपने वचन के प्रति अडिग रहना चाहता है। यह वर्जना उसके पिता की ओर से है इस कारण इला तड़पती है पर सहती है आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए। यहाँ आकर

[1] हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना—डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १२६।

[2] साहित्य कोष : यौन वर्जना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम शुद्ध मनोविज्ञान का विषय नहीं रहता इसमें आदर्श का पुट मिल जाता है।

जय और इला के प्रेम में राज्य बाधक है जो इला का त्याग है। इला पर इन बाधक तत्वों का समय घुटन का अनुभव करता रहता है जिसके फल-स्वरूप वह दूसरी प्रवृत्तियाँ जैसे प्रार्थना, घूमने जाना अपने शरीर की रक्षा के प्रति अचेष्ट रहना इत्यादि उसके प्रेम की असफलता के द्योतक हैं और अन्त में जय को कहना पड़ता है "प्रेम की शपथ लेकर कहता हूं तुम्हें कि प्रेम से बढ़कर मैं अपने लिए किसी राज्य को कभी न होने दूँगा ?"

रूढ़िगत और सामाजिक बन्धनों के कारण प्रेम व्यापार स्वतन्त्रता पूर्वक नहीं चल सकता। इसी कारण हर नारी प्रेम की परिणति विवाह में चाहता हैं। जैनेन्द्र जी के प्रेम की परिणति विवाह नहीं संघर्ष है। विवाह एक ठहराव है गतिहीन उनका प्रेम सतत प्रवाहमान निर्मल जल धारा का सा प्रेम है न कि किसी सड़ान्धपूर्ण खड्ड सा जैनेन्द्रजी की प्रेम सम्बन्धी कल्पना अन्तिम परिणति की ओर न जाकर रेगिस्तानी नदी के समान अपने मार्ग में ही किनारा कर जाता है। जैनेन्द्रजी इससे परिचित हैं कि मार्ग अनन्त है वहाँ अखण्ड होकर नहीं जाया जाता टूटकर उसमें लय होना पड़ता है। जहाँ जैनेन्द्रजी के अन्य उपन्यासों का आरम्भ होता है वहीं जयवर्धन का अन्त। अर्थात विवाह से दूसरे उपन्यासों का आरम्भ होता है वहाँ जयवर्धन का अन्त विवाह है। वैवाहिक जीवन का एक पहलू सुखमय भी होता है उस पर इस विद्वान की कल्पना ने साथ नहीं दिया, वे उसे छूकर नहीं पाये इसी से पलायन करना पड़ा।

पश्चिम में प्रेम और सेक्स दो अभिन्न बातें समझी जाती है और वहाँ होनी भी चाहिए क्योंकि वह पश्चिम है पूर्व नहीं। वहाँ प्रेम की अनिवार्य शर्त है सेक्स। उनके लिए प्रेम का स्थाई आधार सेक्स है। फिर वहाँ आये दिन तलाक क्यों होते रहते हैं ? एक मर्द और औरत कपड़े बदलने की भाँति अपने साथी बदल लेते हैं। भौतिकता पर आधारित प्रेम की परिणति और हो ही क्या सकती हैं। भारत के लिए तो 'मन नाही दस बीस' अर्थात प्रेम का आधार मन है शारीरिक वासना मात्र की तुष्टि के लिए किये गये प्रेम को यहाँ प्रेम नहीं कहा जाता। पश्चिमी हवा यहाँ भी आने लगी है परन्तु अभी भौतिक प्रेम और भारतीय में प्रेम में सँघर्ष चलता है और विजय होती है आदर्श की। इला में यह अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट दीखता है। इसके परिणाम स्वरूप कुण्ठा का जन्म होता है। जैनेन्द्र जी इस कुण्ठा को शालीनता और आदर्श में लपेट कर जयवर्धन में प्रस्तुत करते हैं। अतः कुण्ठा का विकृत रूप इसमें न होकर आदर्श रूप है। सहज माननीय गुण जिसमें वासना की प्यास और तुष्टि की कामना भी एक है, इला में भी पाया जाता है पर इला के चरित्र पर यह हावी नहीं। यथार्थ के नाम पर नग्नता प्रदर्शित करना जैनेन्द्र जी जैसे आदर्श कलाकार का काम नहीं। हाँ वे आदर्श के नाम पर नपुंशकता प्रदर्शित भले ही कर सकते हैं। इला और जय के प्रेम का आधार शारीरिक नहीं है मानसिक भावलोक की काल्पनिक उच्छृङ्खलतापूर्ण अस्वाभाविक उड़ान भर मात्र है।

कभी-कभी प्रेम में अनिश्चयात्मक स्थिति आ जाती है जब की एक ही नारी के जीवन में दो पुरुष या एक ही पुरुष के जीवन में दो नारियाँ प्रवेश करती है तब उनके सम्मुख समस्या होती है चयन की। किसको प्रमुखता दे और किसको छोड़े। प्राचीन काल में कम से कम यह समस्या नहीं थी। कृष्ण और द्रोपदी इसके उदाहरण हो सकते हैं। आज परिस्थितियाँ ऐसी नहीं। समाज इसकी इजाजत नहीं दे सकता, न कानून और इसलिए एक संघर्षात्मकस्थिति उत्पन्न होती है। त्रिकोणात्मक संघर्ष भी कहते हैं। जयवर्धन में ये संघर्ष तीन चार प्रकार के हैं। इनमें प्रमुख एक है। जय-इला लिजा का। तीन अन्य गौण हैं।

जयवर्द्धन में जय और इला के त्रिकोणात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष की स्थिति निम्न प्रकार की हो सकती है :—

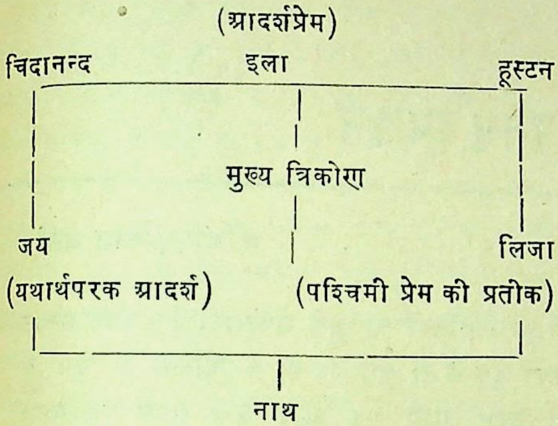

उपरोक्त चित्र देखने से ज्ञात होगा कि प्रेम के त्रिकोणात्मक संघर्ष में आदर्श, आदर्शोन्मुख यथार्थ एवं पश्चिम का भौतिक यथार्थ का भी एक त्रिकोण स्वतः बन जाता है जो जैनेन्द्रजी की सफलता की द्योतक है। इस संघर्ष का केन्द्र है जय। इला और लिजा उसकी दो चहिताएँ हैं। एक विवाहिता है तो दूसरी अविवाहिता। एक भारतीय आदर्श प्रेम की प्रतीक है तो दूसरी पाश्चात्य भौतिकवादी प्रेमिका। पर लिजा को अपनी महत्वाकांक्षा में सफलता नहीं मिलती। विजय होती है भारतीय प्रेम की। चिदानन्द और इला में रागात्मक सम्बन्धों की कल्पना सहज की जा सकती है। हूस्टन की स्थिति तटस्थ द्रष्टा की सी है। जैसा कि त्रिकोणात्मक संघर्ष में होता है किसी एक की सत्ता अनिवार्यतः समाप्त होती है एक तरफ राज्य और लिजा है दूसरी तरफ इला और जय है। प्रेम के सम्मुख राज्य की सत्ता को झुकना पड़ता है और उपन्यास का अन्त होता है पलायन के सहारे जिसे जैनेन्द्रजी आदर्श पलायन कहते हैं।

विवाह के पश्चात् जय मंच से एकदम हट जाता है क्योंकि जैनेन्द्रजी के आदर्श प्रेम का एक बँधा बँधाया ढाँचा है और उसका उपयोग उन्होंने अपने हर उपन्यास की रचना में किया है। उनके किसी भी उपन्यास में वैवाहिक जीवन सुखान्त नहीं दर्शाया गया है। या तो प्रेमी से शादी ही न होगी या होगी तो जय जैसे बुड्ढे के साथ। जहाँ सेक्स का नाम प्रेम का अपमान है। यानी प्रेम और सेक्स दो अलग-अलग हस्तियाँ हैं। प्रेम सुखात्मक अनुभूति है और विवाह दुःखात्मक परिणति। इस फार्मूले के कारण जैनेन्द्र के उपन्यासों में ताजगी नहीं, बासी विचार, प्रेम की विविधता नहीं, कचोटते प्रेम की व्याख्या मिलती है। जैनेन्द्रजी का कलाकार सचेष्ट नहीं हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य राजनीतिक जीवन का चित्रण करना उन्होंने स्वीकर किया है पर राजनैतिक जीवन की समस्या न तो स्पष्ट रूप से उभर पाई है न उसका कोई हल ही वे खोज सकने में समर्थ हैं। विवाह और प्रेम की समस्या चाहे वह जैनेन्द्रजी को कल्पना लोक की उड़ान मात्र हो उभर कर सामने आती है और एक सीमा तक उसका समाधान भी वे अपने ढङ्ग से करते देखे गये हैं। अतः यह निःसंकोच कहना पड़ता है कि जैनेन्द्रजी के अन्य उपन्यासों की भाँति जयवर्द्धन का प्रतिपाद्य प्रमुख रूप से विवाह और प्रेम की समस्या का चित्रण करना है।

—गोगावत वाड़ी, चाँदपोल, उदयपुर, (राज०)

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की समस्या : एक पुनर्मूल्याङ्कन

● ओ३म्प्रकाश शर्मा

'कुरुक्षेत्र' प्रबन्धकाव्य में दिनकरजी ने आधुनिक युग की एक समस्या विशेष, युद्ध की समस्या पर मर्मस्पर्शी भाव और विचार व्यक्त किये हैं। युद्ध की विभीषिका से होने वाले अपने संवेदनशील हृदय के उद्वेलन से प्रेरित होकर युद्ध की समस्या पर कवि की जो लेखनी चली वह 'कलिंग-विजय' नामक कविता से लेकर 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' तक चलती रही। युद्ध की विभीषिका ने सचमुच कवि के हृदय को अभिभूत किया है तभी तो युधिष्ठिर के माध्यम से उसका हृदय चीत्कार कर उठता है—

हाय पितामह, हार किसकी हुई है यह ?
ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन ?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है ?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन ?
(कुरुक्षेत्र, पृ० ९)

इसमें प्रयुक्त होने वाले 'हाय' शब्द की बल्ली भी कवि के हृदय में प्रवाहित युद्ध-जनित शोक-सरिता की थाह बताने में पर्याप्त नहीं है। दिनकरजी ने अपने समय की स्थिति-परिस्थिति से जो अनुभव प्राप्त किये उन्हें ही उन्होंने युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाकर काव्य-धरातल पर ऊर्ध्वपालित कर दिया है।

अन्याय का अन्त युद्ध से, यही सन्देश कुरुक्षेत्र में उच्च स्वर में निनादित हो रहा है। यों बुद्धि-विहीन भावना के आवेग में आकर किया गया कार्य उलझन में ही डालने वाला होता है, फिर भी युद्ध को महत्त्व देने के लिए कवि ने भीष्म द्वारा बुद्धि और भावना की द्विधा में से भावना के आवेग में आकर लड़ने का ही समर्थन कराया है। युद्ध पर इतना बल देना आज की परिस्थितियों की खुली अवहेलना है। आज संसार द्वापर युग से ही नहीं देश की पराधीनता के युग से भी बहुत आगे बढ़ आया है। आज युद्ध महा-विनाश या प्रलय का पर्याय बन गया है।

जब युद्ध प्रलय का पर्याय समझा जाने लगा है फिर भी युद्ध क्यों होता है ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। 'कुरुक्षेत्र' के आधार पर अन्यायी के असत्व्यवहार को रोककर न्याय की स्थापना के लिए युद्ध छेड़ा जाता है। आज दलित समाज या राष्ट्र क्रान्ति कर सकता है, सेना सजाकर युद्ध तो बलवान ही करता है। क्रान्ति एक प्रकार से अपनी माँग पूरी कराने के लिए अपनाया गया साधन है। इतना ही नहीं आज के समस्या-संकुल जीवन में सत्ताधिकारियों का अपनी माँग पर शीघ्र ध्यान आकर्षित कराने की इसे प्रबल साधन माना जाने लगा है जबकि युद्ध के मूल में परस्व हरने की वृत्ति भी रहती है।

आचार्य वाजपेयीजी का कथन है कि "युद्ध से युद्ध का अन्त कभी न होगा। युद्ध से न्याय की प्रतिष्ठा कभी न होगी। अयोग्य साधनों से योग्य साध्य का मिलना असम्भव है। यह गांधीजी की सुप्रसिद्ध नीति भी 'कुरुक्षेत्र' में विचारार्थ नहीं आई है।" (आधु० हि० सा० पृ० ८१)

दिनकर जी ने युद्ध के संदर्भ में बतलाया है कि जब तक संसार में स्वार्थों का अस्तित्त्व बना रहेगा तब तक युद्ध होते रहेंगे। (कुरु० पृ० १७) स्वार्थ युद्ध का जन्म दाता और स्वार्थ का अन्त युद्ध का साध्य या लक्ष्य है, क्योंकि स्वार्थ से समाज में विषमता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न होती है और विषमता कवि के अनुसार युद्ध द्वारा ही दूर की जा सकता है। यहाँ दिनकरजी साम्यवादियों की भाषा में ऐसी बात कह रहे हैं जैसी कॉर्ल मार्क्स ने कही थी। आज समाज से विषमता दूर करने के लिए यदि दलित वर्ग या राष्ट्र द्वारा युद्ध ठाना जाय तो क्या दुर्बल राष्ट्र शोषण कर्त्ता बलवान राष्ट्र से जीत सकेगा, क्या युद्ध चलते रहने तक सद्भावों एवं शान्ति की स्थापना हो सकेगी—ये प्रश्न सहज ही मस्तिष्क में मड़राने लगते हैं। परन्तु यदि दलित वर्ग या राष्ट्र अन्यायी का विरोध न करे तब तो अन्याय कर्त्ता और आसानी से शोषण करता रहेगा। ये कुछ समस्याएँ है जिनका समाधान खोज पाने में हम आज भी असमर्थ है। हाँ यदि कोई दैवी प्रेरणा संसार के व्यक्तियों में विश्व मानवता की भावनाएँ भर दें तब तो समस्या का समाधान आसानी से हो सकता है। कवि ने 'कुरुक्षेत्र' के अन्त में आशा व्यक्त की है कि एक दिन भूमि से रण का भय मिट जायगा, अन्याय बन्द हो जायगा और सभी मनुष्यों में स्नेह एवं बलिदान की भावनाएँ भर जायँगी। (कुरु० पृ० १४६)

यहाँ भी प्रश्न उठाया जा सकता है कि जब युद्ध के द्वारा शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती तो कवि ने शान्ति-स्थापना का अन्य कोई उपाय क्यों नहीं सुझाया? इसके सम्बन्ध में जैसा कि निवेदन किया जा चुका है कि प्रथम तो ऐसा कोई उपाय है ही नहीं जिससे संसार में स्थायी शान्ति स्थापित हो सके दूसरे ईसा कृष्ण, युधिष्ठर और गाँधी जी आदि के सदुपदेशों को भी संसार के देशों के द्वारा व्यवहार में नहीं लाया गया इसलिए उन्हीं के उपदेशों की पुनरावृति करना कवि को कदाचित अभिप्रेत नहीं रहा। तीसरे कुरुक्षेत्र के कवि के समय राजद्रोह धर्म बन गया था। उस समय डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी कहा था राजद्रोह हमारा परम धर्म है—(दिनकर एक पुनर्मूल्याङ्कन पृ० ६८)। दिनकर तिलक 'गीता-रहस्य' से भी जिसमें अन्याय को न सहनकर 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' के सिद्धान्त पर बल दिया गया है, प्रभावित जान पड़ते हैं।

'कुरुक्षेत्र' में दो प्रश्न और उठाये जा सकते हैं एक तो यह कि युद्ध का दायित्व किस पर है दूसरा यह है कि युद्ध नैतिक है या अनैतिक है या पापमय। हमारी दृष्टि में इन दोनों प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर नहीं हो सकते। कवि भीष्म के मुख न्याय चुराने वाले को युद्ध का उत्तरदायित्व ठहराता है—

चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वह है,
युधिष्ठर! स्वत्त्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।

दूसरी ओर भीष्म के मुख से युद्ध की तूफान से तुलना कराता हुआ कवि कहता है कि जिस दूसरी प्रकार तूफान प्रकृति के प्राणों का विस्फोट है; प्रचण्ड निदाघ से प्रकृति में आवेग उत्पन्न हो जाता है और वही तूफान के रूप में फट पड़ता है। उसी प्रकार मनुष्यों के हृदयों में घनीभूत विकार ही युद्ध के रूप में फूट पड़ते हैं। इसका आशय क्या है? यही न कि युद्ध का उत्तरदायी कोई नहीं है। क्योंकि विकारों के उत्पन्न होने का कोई उत्तरदायी नहीं है या यों कहें कि विकारों के उत्तरदायी का कवि ने निर्देश नहीं किया। सप्तम सर्ग में उसने इस सम्बन्ध में जो निर्देश किया है उससे विकार स्वत: उद्भूत सिद्ध होते हैं। पाठक देखें कि कवि की दोनों बातों में कि—युद्ध का कोई उत्तरदायी नहीं है और न्याय चुराने वाला युद्ध के लिए उत्तरदायी है, कितना विरोध है!

तूफान से की गई युद्ध की तुलना के आधार पर यदि हम यह मान लें कि युद्ध का कोई उत्तरदायी नहीं है तब कवि का यह कथन कि ज्वलित प्रतिशोध पर आधारित युद्ध पापमय नहीं हो सकता, कोई अर्थ नहीं रखता। क्योंकि किसी को उत्तरदायी निश्चित किये बिना लड़ने वाले दोनों पक्षों में से किसी भी पक्ष के कार्य के अच्छे या बुरे, पुण्यमय या पापमय होने की घोषणा नहीं की जा सकती। युद्ध के अनैतिक होने का भी प्रश्न नहीं उठता क्योंकि युद्ध अनिवार्य है। कवि ने भीष्म द्वारा युद्ध के अनिवार्य होने की बात कहलवाई है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ,
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।

निष्कर्ष यह है कि युद्ध अनिवार्य है, नैतिक है, उसका कोई उत्तरदायी नहीं है, वह पाप-पुण्य से परे है।

कवि धर्म, तप, करुणा, क्षमा, विनय और त्याग आदि गुणों को व्यक्तिगत धर्म मानता है सामूहिक या सामाजिक नहीं। (कुरुक्षेत्र १।१८)। परन्तु मानव तो सामाजिक प्राणी है। एक-एक व्यक्ति के मेल से ही तो समाज बनता है। सामाजिक धर्म व्यक्तिगत धर्म और व्यक्तिगत धर्म सामाजिक धर्म होते हैं—इसे कैसे नका ा जा सकता है। क्या गांधीजी ने अपने सत्य, अहिंसा के गुणों के बल पर एक बड़े समाज को सत्य, अहिंसा का पालन करना नहीं सिखाया था ?

कवि की एक और बात बड़ी अटपटी-सी लगती है। जब उसने युद्ध के मूल कारण स्वार्थ के प्रतिरोध का कोई उपाय नहीं बताया और युद्ध को अनिवार्य माना है तब उसकी—

कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की,
मानव ऊपर और चलेगा।
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नवधर्म–प्रदीप अवश्य जलेगा॥

× × ×

एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से

× × ×

स्नेह-बलिदान होंगे माप-नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।

इस आस्था का आधार क्या है ? उसने किसी तत्त्वपूर्ण चिन्तन के आधार पर स्थायी शान्ति का निर्देश नहीं किया है।

कहना न होगा कि 'कुरुक्षेत्र' में विवेचित युद्ध सम्बन्धी कई बातें आज के युग के अनुकूल नहीं हैं। कवि ने शान्ति की स्थापना के लिए तात्विक चिन्तन पर आधारित किसी उपाय का निर्देश नहीं किया है। इसका कारण कदाचित् यही है कि कवि पराधीन भारत की विषम परिस्थितियों में अपने देशवासियों को केवल युद्ध करने की प्रेरणा देना चाहता था। 'मारना-मरना' इस सिद्धान्त के अनौचित्व से सम्भवतः कवि भी अवगत था इसीलिए 'रश्मिरथी' में उसने भावुकता को महत्त्व न देकर बुद्धि के खुले वातायनों के प्रकाश में युद्ध की समस्या पर विश्व के सन्दर्भ में विचार किया है। अब तो हमारा कवि अन्तर्राष्ट्रीयता एवं शान्ति की बात का समर्थन करता जान पड़ता है। 'कुरूक्षेत्र' में न केवल प्राचीनता है और न केवल नवीनता वरन् उसमें वह है जो इन दोनों के मेल से उद्भूत हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि के युद्ध सम्बन्धी विचारों का पराधीन भारत की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में किया गया मूल्याङ्कन ही सही मूल्याङ्कन होगा।

—हिन्दी विभाग, शारदा सदन कालेज,
मुकुन्दगढ़ (राजस्थान)

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ सदस्य ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलतः हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अतः सभी सदस्य अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वतः ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी के रेखाचित्रों में उपेक्षित तत्व

● डा० (कुमारी) प्रेमलता वर्मा

महादेवीजी एक सफल कवियित्री होने के साथ-साथ एक कुशल गद्यकार भी हैं। गद्य के अन्तर्गत उन्होंने कुछ सामाजिक और साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त अनेक रेखाचित्रों की भी सृष्टि की है जो 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' में संकलित है। इनमें से 'पथ के साथी' में तो उन्होंने साहित्य-साधना के पथ पर चलते हुए संपर्क में आने वाले कुछ साहित्यकारों के ही रेखाचित्र प्रस्तुत किए हैं अतः किसी भी रूप में सामाजिक समस्याओं का स्पर्श करना वहाँ उनका उद्देश्य नहीं रहा किन्तु उनके प्रथम दो संग्रहों के रेखा-चित्रों को पढ़कर स्पष्टतः यहीं संकेत मिलता है कि वे सब मूलतः समाज-केन्द्रित हैं। उनकी काव्यगत 'स्व' की चेतना यहाँ आकर 'पर' की चेतना बन गई है। काव्य की वह नीर भरी दुःख की बदली गद्य में आकर करुणा और ममता के रूप में बरस कर समाज के दीन दलित वर्ग के दुःखों को भी अपने में आत्मसात् कर लेना चाहती है। काव्यगत एकान्त कल्पना और आदर्श ने यहाँ ठोस वास्तविकता और यथार्थ का रूप धारण कर लिया है—अपने कवि-रूप में वे जनजीवन से जितनी दूर रही हैं, गद्य में उतनी ही समीप हैं। उनकी 'शृंखला की कड़ियाँ' तो नारी-जीवन सम्बन्धी समस्या प्रधान निबन्धों का संग्रह है ही, 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ'—इन दोनों कृतियों में भी लेखिका ने प्रायः समाज के उन दीन दुखियों को ही अपना प्रतिपाद्य बनाया है जिन्हें समाज सदा से ही उपेक्षा और अपमान की दृष्टि से देखता आया है जिन्हें अपनाने में वह हिचकिचाता है और जिन्हें ऊँचा उठाने के स्थान पर ठुकरा कर गिरा देने में ही अपनी शान समझता है अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मानता है। रामा, घीसा, अलोपी, बदलू, चीनी भाई, जंगिया, धनिया आदि कुछ पुरुष-पात्रों के प्रति भी यद्यपि वे बहुत संवेदनशील रही हैं—रामा की सेवा-परायणता, घीसा की गुरू के प्रति निश्छल अन्धभक्ति, नेत्रहीन अलोपी की कर्मठता, बदलू की परिश्रमशीलता, मातृ-पितृ हीन चीनी भाई के बहन व देश के प्रति अनन्य प्रेम-भाव, पर्वतीय पुत्र जंगिया और धनिया की कठोर जीवन-गति भी उनकी वेदना और सहानु-भूति का आधार बनी है और वे उन सबको अपने स्नेहस्निग्ध आँचल की छाया देने के लिए सदा प्रस्तुत भी रही हैं परन्तु फिर भी इस पुरुष-वर्ग की अपेक्षा निर्धन और उपेक्षित वर्ग की नारी के दयनीय जीवन ने उन्हें अधिक प्रभावित किया है। वह उनकी ममता और करुणा की विशेष अधिकारिणी रही है। उसके विभिन्न रूपों में मिथ्या दंभ से भरे पुरुष द्वारा उस किए जाने वाले अत्याचारों के विषय में महादेवी जी ने बड़े मार्मिक ढंग से लिखा है। यही कारण है कि सबिया, बिन्दा मारवाड़ी वधू, रधिया, लछमा, भक्तिन, मुन्नू की माँ, बिबिया और गुंगिया आदि अनेक नारी पात्र हमारी स्मृति में सदा के लिए दुःख-दैन्य के साकार रूप में अंकित हो गए हैं। उन्होंने सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही दृष्टियों से नारी-जीवन की गहराइयों का स्पर्श पाकर, उनके सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त उनकी समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसमें कहीं-कहीं समाधानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संकेत भी मिल जाता है।

नारी-जीवन के विस्तृत किन्तु सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि वास्तव में ही नारी की सामाजिक स्थिति बहुत उपेक्षित, अपमानित और प्रताड़ित है। पुरुष की अर्द्धांगिनी होने के नाते उसे पुरुष के समान ही समाज में अधिकारों की प्राप्ति होनी चाहिए जबकि स्थिति इससे बिल्कुल विपरीत है। आज के समाज में पुरुष स्त्री को अपने पैरों की जूती समझता है उसे कष्ट देना वह अपना कर्त्तव्य और उसका प्राप्तव्य मानता है। सबिया के रेखचित्र में, सबिया के होते हुए भी किसी अन्य स्त्री से अपना सम्बन्ध जोड़ लेने वाले पति के प्रति लेखिका झुँझला उठती है और कहती है—

"पुरुष भी विचित्र है! वह अपने छोटे-छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़े से बड़ा दुःख दे डालता है और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य दे रहा है।" सबिया के अतिरिक्त रधिया, बिबिया और गुंगिया भी अभागिनियों की इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं। बिबिया कारुणिक दिनचर्या, कुम्हार-पत्नी रधिया की निर्धनता, कथावाचक की पुत्री बूटा की कठोर जीवन-यात्रा और वाक्हीन गुंगिया की निरीहता आदि के भी लेखिका ने बड़े करुण और हृदय-द्रावक चित्र प्रस्तुत किए हैं।

नारी-जीवन की विविध समस्याओं से पाठक को अवगत कराना ही उनका लक्ष्य है। अतः इन समस्त रेखचित्रों में उन्हीं का विस्तृत विवेचन और विश्लेषण मिलता है। 'शृंखला की कड़ियां' में जहाँ उनकी मान्यताओं की सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति हुई है वहाँ इन रेखाचित्रों में व्यावहारिक धरातल पर उन्हीं समस्याओं के विविध-पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इन समस्याओं में सर्वप्रमुख है—विधवाओं की समस्या। हिन्दू समाज में विधवाओं का जीवन कितना कारुणिक होता है उसका अनुमान विधवा मारवाड़ी वधू के जीवन की इस एक झलक से किया जा सकता है—

'···वह अनाथिनी भी है और अभागिनी भी। ××× न इसे कहीं जाने देते हैं, न किसी को अपने घर आने। केवल अमावस, पूनो एक ब्राह्मणी आती है, जिसे वे अपने आप खड़े रहकर, सीधा दिलवाकर विदा कर देते हैं।' यहाँ तक कि भर-पेट भोजन कर लेना भी उसके असंयम का द्योतक है। अपनी इच्छा के अनुकूल रङ्गबिरंगे आकर्षक कपड़े पहनने के लिए भी उस पर प्रतिबन्ध है। कठोर नियन्त्रण की बेड़ियों में जकड़े विधवाओं के इस जीवन से दयार्द्र होकर समाज उनके जीवन को आनन्दमय और सफल बनाने के लिए वृद्ध-विवाह कर लेने का मार्ग सुझाता है और बेचारे वृद्ध तो सदा ही इस पुण्य कार्य के लिए तैयार रहते है। किन्तु क्या उनके पुर्नविवाह का कारण किशोरी विधवाओं की सहायता कर धर्म का पालन ही है अथवा अपनी वासना-पूर्ति की लालसा? इसके प्रति बड़े व्यंग्य पूर्ण ढंग से लेखिका ने दो बार विवाह कर लेने के बाद भी वृद्ध पति के मरणासन्न होने पर पुनः विधवा हो जाने की आशंका से युक्त बिट्टो के लिए कहा है—

'····मनु महाराज जो कह गए हैं उसे असत्य प्रमाणित कर कुंभीपाक में विहार करने की इच्छा न हो, तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी निभृत कोने में छिपाए हुए है, और उसके उद्धार के लिए निरन्तर कटिबद्ध वृद्ध परोपकारियों की इस पुण्य भूमि में और विशेषकर इस जागृत युग में भी कमी नहीं हो सकती।' इस प्रकार प्राचीन धर्मग्रन्थों का आधार लेकर नारी-जीवन को शापमय बनाने में आज के समाज का पुरुष-वर्ग बहुत कुशल है।

इस विधवा-समस्या के अन्तर्गत ही लेखिका ने एक अन्य समस्या को भी लिया है कि बाल-विधवाओं को यह पुरुष किस प्रकार अपनी दुराचारी प्रवृति से भ्रष्ट करके स्वयं तो दूर हट जाता है और निरीह, अबोध बालिका को 'मातृत्व के पुण्य पद' पर प्रतिष्ठित होने पर समाज द्वारा प्रताड़ना और लांछना की प्राप्ति के लिए छोड़ देता है। ऐसी ही समस्या में उलझी हुई वृद्ध की पोती के लिए लेखिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

के हृदय में बहुत सहानुभूति है—

'अपने अकाल वैधव्य के लिए दोषी नहीं ठहराई जा सकती। उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता; पर उसकी आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खण्ड उसके सामने है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे उसको कोई परिचयात्मक विश्लेषण न मिला हो परन्तु अपने बालक के निकट तो वह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी!'

इस प्रकार लेखिका की दृष्टि में समाज द्वारा लांछित वह अबोध बाल-विधवा निष्पाप है, निष्कलंक है और इसलिए उसके प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है और वे उसे अपने स्नेह-स्निग्ध आँचल के आश्रय-प्राप्ति का भी अधिकारी मानती हैं। इस अबोध माँ के साथ-साथ पुरुष के छल-कपट पूर्ण व्यभिचार से उत्पन्न अवैध सन्तान के प्रति भी समाज की अवमानना देखकर उनका हृदय करुणा से भर उठता है—

'छोटी लालकली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था, और उस पर एक विचित्र सी मुस्कराहट थी, मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गए, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गई और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका उसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि अपने सम्बन्ध में भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागत में मेवे नहीं बँटे, बधाई नहीं गाई गई....पिता ने इसमें आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा।

नारी जीवन की इस समस्या का उन्होंने समाधान भी दिया है। यद्यपि स्वभाव से ही घृणा और विद्रोह की अपेक्षा करुणा और ममता में ही अधिक विश्वास करता है परन्तु फिर भी नारी के अत्याचार-पीड़ित जीवन को देखकर उनका विद्रोह-भाव प्रबल हो उठता है और अनायास ही बड़े विक्षोभ-भरे शब्दों में वे कह उठती हैं—

'स्त्री अपने बालक को हृदय से लगाकर जितनी निर्भर है, उतनी किसी और अवस्था में नहीं।....इसी से कदाचित् लोलुप संसार उसे अपने चक्रव्यूह में घेर कर वाणों से चलनी करने के लिए पहले इसी कवच को छीनने का विधान कर देता है। स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'वर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया; पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।

वेश्याओं के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बहुत संवेदनशील है क्योंकि उनके उस जीवन का उत्तरदायित्व भी वे उस व्यक्ति विशेष पर न मानकर समाज पर ही मानती हैं। समाज ही अपनी संकीर्णता और कठोरता के कारण उन्हें ऐसे जीवन-यापन के लिए विवश करता है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि यदि कोई वेश्या यह चाहे कि उसकी सन्तान इस कुत्सित व्यवसाय को न अपनाए और सम्मान पूर्ण ढंग से अपना जीवन व्यतीत करे तो समाज उसके लिए भी स्वीकृति नहीं देता। अतीत के चलचित्र के आठवें रेखाचित्र में दी गई वेश्या-पुत्री की कथा इसका एक सजीव प्रमाण प्रस्तुत करती है। सब ओर से ठोकरें खाने के बाद आजीविका प्राप्ति के उद्देश्य से महादेवीजी के पास आने पर उसकी करुण कथा सुनकर लेखिका के हृदय में उत्पन्न प्रतिक्रिया देखिए—

"इतनी टीका के उपरान्त मैंने मूल तत्व का सूत्र पकड़ पाया। वह पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेश-पत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती है। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बार कुलवधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्म-जन्मान्तर तक अपनी

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर पड़े रहने को ही जीवन का सबसे बड़ा वरदान समझना चाहिए।··· अपनी इच्छानुसार ही जीवन को बदलकर यह समाज में जो एक अव्यवस्था उत्पन्न कर रही हैं, उसे रोकने के लिए इन्हें दण्ड देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो उठता है।······यदि यह अपने गुरु कर्त्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दें ?"

इस उद्धरण से यही संकेत मिलता है कि नारी की वेश्या-समस्या का भी सारा उत्तरदायित्व समाज पर ही है। समाज के कठोर नियम और नियन्त्रण ही उसे इस लांछित जीवन को अपनाने के लिए बाध्य करते हैं। कुछ सीमा तक स्वयं नारी भी अपनी जाति की इस दुर्दशा के लिए दोषी कही जा सकती है क्योंकि किसी एक नारी के प्रति अत्याचार देख कर भी, वह एक होकर पुरुष-वर्ग के विरुद्ध संघर्ष के लिए तत्पर होने के स्थान पर नारी की स्थिति को और भी दयनीय बनाने के लिए प्रगतिशील हो उठती है—

"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ अन्याय का प्रभाव पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।"

स्त्री को जरा भी स्वावलम्बी होता देख पुरुष झुँझला उठता है और उस पर मिथ्या अभियोग लगा कर ही अपने मन की सन्तुष्टि करता है—

"इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है। वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुँझलाता है और प्रायः यह झुँझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है।···"

पुरुष अपनी इस चाल में सफल हो जाता है और अपनी स्वाभाविक दुर्बलता के कारण नारी अपने पराभव की इस मिथ्या घोषणा से ही निराशा को प्राप्त हो, अपने सभी प्रयासों की इतिश्री कर लेती है। अतः उसकी स्थिति-सुधार के लिए उसका शक्तिशालिनी होना अनिवार्य है—

"···जब तक स्त्री स्वभाव से इतनी शक्तिशालिनी नहीं होती कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचिलित न हो, तब तक उसकी स्थिति अनिश्चित ही रहती है।"

और सम्भवतः स्त्री-जाति के 'पराजित मनोभाव' को दूर करने के लिए ही लेखिका पुरुषों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को सदियों से चुपचाप सहती चली आने वाली नारी जाति को अब भी पराजित नहीं मानती। उन्हें उसके परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ दिखाई देती है। एक वृद्ध के साथ बिट्टो का अनमेल विवाह होने पर वे कहती हैं—

"स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है, तब पुरुष उसके लिए न महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण, इस सत्य को सत्य मान लेना पुरुष के लिए कभी सम्भव नहीं हो सका। अपनी पराजय को बलात् जय का नाम देने के लिए ही सम्भवतः वह अनेक विषम परिस्थितियों और संकीर्ण सामाजिक, धार्मिक बन्धनों में उसे बाँधने का प्रयास करता रहता है। साधारण रूप से वैभव के साधन ही नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है। फिर भी स्त्री का हारा हुआ मन कब तक स्वीकार करे, जब तक उसकी परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक गम्भीर समाजशास्त्री के रूप में नारी-जीवन की विविध समस्याओं के विविध पक्षों का विश्लेषण करके महादेवीजी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि नारी-जाति की सभी समस्याओं के लिए समाज का पुरुष-वर्ग ही उत्तरदायी है और सम्भवतः यही कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि नारी-जाति के लिए वे जितनी संवेदनशील हैं, पुरुष-वर्ग के प्रति उतनी ही आक्रोशपूर्ण। कुछ विद्वानों ने महादेवीजी पर यह आक्षेप किया है कि दाम्पत्य जीवन की असफलता के कारण ही नारी के प्रति उनकी भावनाएँ बहुत पक्षपातपूर्ण हैं और पुरुष के प्रति वे सदा आक्रोश और विद्रोह से भरी रहती हैं। इन रचनाओं का गम्भीरता से अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि लेखिका पर यह आक्षेप लगाना उसके प्रति अन्याय करना है क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो रामा, अलोपी, बदलू, चीनी भाई, जंगिया, धनिया आदि के प्रति भी उनकी दृष्टि वैसी ही होती पर इनका चित्रण तो बहुत सहानुभूतिपूर्ण ढंग से किया गया है और दूसरे, स्त्रियों की वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि उनका चित्रण करने वाले किसी भी सच्चे कलाकार में उनके प्रति सहानुभूति का उदय हो जाना स्वाभाविक है।

जहाँ तक इन समस्याओं के समाधान का प्रश्न है, यह निश्चित है कि यद्यपि कहीं-कहीं अपने व्यावहारिक जीवन के आधार पर कुछ सुन्दर समाधान भी प्रस्तुत किए हैं पर सर्वत्र वे ऐसा नहीं कर पाईं पर तब भी इतना ही क्या कम है कि वे बीच-बीच में अपने आक्रोशपूर्ण शब्दों से नारी को यह प्रेरणा देने का प्रयत्न करती हैं कि वह अपने दैन्य को छोड़ कर शक्ति प्राप्त करे क्योंकि उसकी सब समस्याओं का यही एक समाधान है। जब तक वह समर्थ होकर पुरुष के इन अत्याचारों का विरोध करते हुए स्वावलम्बी नहीं बनती तब तक उसकी स्थिति में सुधार की कोई सम्भावना नहीं।

—प्राध्यापिका, जानकीदेवी कॉलेज, नई दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकगीतों में नारी-अन्तर्वेदना

● डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित

लोकगीत मानव जीवन से अत्यधिक निकट का साहित्य है। जन जीवन या ग्रामीण सौंदर्य के नयनाभिराम दृश्य इन गीतों में अभिव्यक्त मिलते हैं। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध एवं व्यापक है। इन लोकगीतों की उत्पत्ति सम्भवतः मानव-सृष्टि के साथ हुई होगी और सृष्टि के आदि से लेकर आज तक वह परम्परा अबाधगति से चली आ रही है। भारतीय साहित्य में इनकी उत्पत्ति एवं विकास की कहानी बड़ी रोचक है। मानव इस संसार में अवतरित होकर अनेक प्रकार के उपभोगों एवं आनन्दों का रसास्वादन करता है। वह अनेक प्रकार के उत्सवों को सम्पादित करता है। इन्हीं उत्सवों के आधार पर वह आनन्द, हर्ष, उल्लास से उन्मत्त होकर स्त्रियों द्वारा मिलकर जो गीत गाये जाते हैं, उन्हीं गीतों को लोकगीत के नाम से पुकारा जाता है। ये लोकगीत विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। विभिन्न अवसरों एवं संस्कारों के समय गाने वाले गीतों को विभिन्न प्रकार की संज्ञाएं प्रदान की जाती हैं। लोकगीतों का वर्ण्य विषय अत्यन्त मनोहर होता है। उनमें कहीं माता मुण्डन के अवसर पर इन्द्र भगवान से वर्षा न करने के लिए प्रार्थना करती है, कहीं मुण्डन में बाल बटोरने के लिए बालक की बुआ आती है, कहीं पुत्र जन्मोत्सव पर ननद भाभी से मँहगा नेग माँगती है। तात्पर्य यह है कि लोकगीतों में सोलहों संस्कारों का हृदयस्पर्शी शैली में वर्णन हुआ है। लोकगीतों का विषय अत्यन्त रोचक तथा दुःखपूर्ण होता है। इन्हीं गीतों के अन्तर्गत नारी जीवन के अवसादपूर्ण दृश्य देखने को मिलते हैं। भारतीय नारी का जीवन और व्यक्तित्व बड़ा करुण तथा विषाद पूर्ण है। पुत्री, बहन, पत्नी तथा माता के रूप में उसका जीवन त्याग और आत्मा या व्यक्तित्व की निःसारता से युक्त है। उसका जीवन अभिशिप्त और पीड़ित है। उसका आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन परवशता पूर्ण है। देहात हो या जनपद, कस्बा हो या शहर सर्वत्र वह शोषित है। संस्कृत साहित्य में कहा गया है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
तथा पूजनीया महाभागः पुण्याश्च गृहदीप्तयः॥
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्माद्रक्ष्या विशेषतः॥

अर्थात् स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी हैं, वे पूज्य हैं, भाग्यशालिनी, पुण्यशालिनी, पुण्यशीला और घर की दीप्ति हैं। वे विशेष यत्न के साथ रक्षणीय हैं। परिवर्तनशील भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ नारी विषयक ये आदर्श आज विलीन हो गये हैं। आज समाज नारी के व्यक्तित्व की पवित्रता भूलकर उसे दूसरी ही दृष्टि से देखने लगा है। लोकगीत में नारी का उदात्त स्वरूप तो अंकित हुआ है पर उसकी विवशताएँ भी कम नहीं हैं। वह कठिनाइयों से ग्रस्त है। कभी वह पिता के दुःख से पीड़ित है कभी भाई के दुःख से दुखी, कभी सौत से अनाहत, कभी पति वियोग से कातर, कभी बाँझ होने के कारण उपहास की पात्रा बनी हुई है। पुत्री के बिना पिता का गृह सूना है, बहन के बिना भाई का 'द्वार' सूना है, पत्नी के बिना पति का घर भूत का डेरा है। इतना महत्व होते हुए भी नारी भार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीय समाज में अभिशिप्त है। इसका दायित्व किस पर है? एक लोक गीत में नारी की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

हँसि हँसि पूँछइं राजा त रानी के राजा हो।
मोरी रानी कहाँ लगाई इती बेर,
बिरस मन होइ गया रे ॥

× × ×

डेहरी तो सूनी मेहरी बिन मेहरी मरद बिन हो।
जैसे वैसे मोरी सूनी फुलवरिया अकेले भँवरा बिन ॥

भारतीय नारी बड़ी क्षमाशीला तथा व्यवहार में रही है, जैसा निम्नलिखित माता-बेटी के वार्तालाप से ज्ञात होता है—

बेटी कहती है—

नाहीं सिखेन मैया गुन अवगुनवाँ,
नाहीं सिखेन राम रसोइं।
सासु ननद मोरी मैया गरियावें,
मोर बूते सहि नहिं जाइ ॥

माँ का कथन—

सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवाँ,
सिखि लेउ राम रसोइं।
सासु ननद तोरी मैया गरियावें,
लै लिहो अँचरा पसारि ॥

इन पंक्तियों में माँ बेटीं को उपदेश देती हैं कि हे बेटी! यदि सास और ननद गाली दें तो आंचल पसार कर स्वीकार कर लेना। यह है भारतीय नारी का वास्तविक रूप। परन्तु समाज ने उसे कभी नहीं क्षमा किया।

नारी की विशेषताओं, कष्टों या दुःखों का प्रारम्भ उस समय से होता है जब वह कन्या के रूप में पिता के घर में जन्म ग्रहण करती है। प्रसव के समय सब लोग नवागत की प्रतीक्षा करते हैं। पुत्र उत्पन्न होने का समाचार सुनकर थाली बजती है, दीपक जलाये जाते हैं, आनन्द मनाए जाते हैं और पुत्री उत्पन्न होने पर सबकी वेदना करुणा और दुःख की धारा उमड़ पड़ती है। यदि भाई-बहन जुड़वा के रूप में एक साथ उत्पन्न हुए तो पुत्र को सत्कार और पुत्री को उपेक्षा प्राप्त होती है। निम्नलिखित लोक गीत में एक माँ अपनी पुत्री से कहती है कि बेटी! दही भात खा लो। कल प्रातः तुम्हारी बिदा है। पुत्री कहती है—माँ! हम दोनों, भाई बहन एक साथ उत्पन्न हुए, साथ ही खेले खाये, पर तुम भाई को हँसी खुशी कलेवा देती थीं और मुझे नाराज होकर देती थीं। पिता ने भाई को राज लिख दिया है और मुझे माँ! बड़ी दूर ब्याह दिया है। बेटी ने माता-पिता के इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार का उल्लेख करके एक बड़े भारी सत्य को उद्घाटित कर दिया है :—

खाइ लेउ खाइ रे लेउ दहिया से रे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बड़े भिनु रे सार ॥
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हंसी खुशी रे देइ।
हमरा कलेउवा रे अम्मा दिहेउ रिसाइ ॥
हम औ बिरना रे अम्मा जन्म एक रे संग।
संग-संग खेलेऊं रे अम्मा खायउं एक रे संग।
भइया के लिखेउ ऐ अम्मा बाबा कह रे राज।
हमरा लिखेउ रे अम्मा अति बड़ी दूरि ॥

भारतीय नारी लज्जा की प्रतीक मानी गई है। जीवन के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न विवाह और पति-निर्वाचन के सम्बन्ध में भी उसकी कोई अपनी सम्मति नहीं रहती है। कारण परम्पराएं लज्जा की शृङ्खलाओं से बद्ध हैं। पिता, पितृव्य, भाई या अन्य सम्बन्धियों ने जिसके साथ जीवन की धारा का गठ-बन्धन कर दिया है, वह हर प्रकार से स्वीकार है। इस सब व्यवस्था में कभी-कभी बड़े अनमेल विवाह हो जाते हैं। प्रकृति से ही नहीं अवस्था और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी दोनों का जीवन बड़ा विषम हो जाता है। लोक गीतों में नारी की इस विवशता का चित्रण भी कहीं अविधा में और कहीं व्यञ्जना में हुआ है। जैसे—

(१) नाहक गौन दिहे मोर बाबा बालक कंत
हमार रे।
चीलर अस दुई देवर हमरे बलमा मुसे
अनुहार रे ॥

(२) बनवारी हो, हमरा ले लरिका भतार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लरिका भतार लेवे सुतली ग्रोसरवां।
बनवारी हो, रहरी बोलेला सियार ॥
खोले क तो चोली बन्द खोले ला केवार।
बनवारी हो जरि गेले एड़ी से कपार ॥

इन उद्धरणों में ग्रनमेल विवाह के कारण नारी की मनोवेदना का चित्रण किया गया है। ऐसे बेमेल विवाहों से धर्मशास्त्र धर्म की रक्षा कहाँ तक कर पाएगा ?

विवाह हो जाने पर नारी-जीवन विषमताओं के ग्रन्य ग्रभिशापों से सन्तप्त हो उठता है। निःसन्तान होना नारी के लिए सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। सास-ससुर, ननद उसे ग्रपने व्यंग्य बाणों से ग्राहत करने लगते हैं। निम्नलिखित लोकगीत में एक निःसन्तान नारी गंगा में डूब कर दुःख का भार कम करने के लिए जाती है। गंगा पूछती है कि तू किस दुःख से डूबने ग्राई है ? उत्तर में नारी कहती है—कोख का दुःख है—

गंगा जमुनवाँ के बिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गंगा ग्रपनी लहर हमें देतिउ में मँझधार डूबित हो॥
की तोंहि सास-ससुर दुःख कि नैहरि दूरि बसे।
तेवइ ! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबउ हो॥
ना मोरे सास-ससुर दुख नाही नैहर दूरि बसे।
गंगा ! ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबब हो॥

बाँझ स्त्री के दुःख का एक चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए। उसे सास ने व्यंग्यों से ग्राहत किया है, ननद ने लांछित किया है ग्रौर पति ने घर से निकाल दिया है। वह जंगल में खड़ी हुई बाघिन एवं नागिन से निवेदन करती है तुम मुझे मार डालो पर कोई नहीं निकट ग्राता। इसलिए कि वे भी बाँझ हो जायेंगी। यहाँ तक कि माता इसलिए उसे ग्रपने घर में ग्राश्रय नहीं देती कि उसकी बहू बाँझ हो जायगी।

पुत्रहीन दम्पति की ग्रन्तर्पीड़ा के ग्रनेक कारुणिक दृश्यों के चित्रण लोकगीतों में मिलते हैं। यह स्वतः एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है। एक पुत्रहीन दम्पति की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण निम्नलिखित लोकगीत में हुग्रा है—

खिड़की ही बैठलि रानी त राजा पुकारइँ हो।
रानी ! एक सन्तति बिना कुलहीन, हम जोगी होवै हो
जो तुहुँ ए राजा जोगी होब हमहुँ जोगिन होबै हो।
राजा नगर पइठि भीख मँगवें दुनऊँ जने खावइ हो॥

राजा दशरथ तथा उनकी निःसन्तान (पुत्रों के उत्पन्न होने से पूर्व) रानियों के दुःख ग्रौर व्यथा का भी चित्रण लोकगीतों में हुग्रा है। (द्रष्टव्य कविता कौमुदी—ग्रामगीत पृ० १८३ तथा पृ० १८६) एक लोकगीत के ग्रन्तर्गत राजा दशरथ के निरवंशी होने के कारण मेहतरानी द्वारा ग्रपमानित होने की बात का उल्लेख किया गया है। मेहतर ग्रौर मेहतरानी के वार्तालाप में यह निःसन्तान होने का भाव ग्रौर रोष व्यक्त हो जाता है—

भोर भये भिनुसार चिरइया एक बोलइ।
राजा झपटि के खोलइँ केवरिया हेलिनि डीठि परिगे।
परिगइ हेलिनिया क डीठि राजे के मुख ऊपर॥
हेलिन बिनवे हेलवा संग ग्रपने पुरुख सँग।
हेलवा ग्राजु देखेउँ निरबंसी गुसइयाँ कैसे पुरवै॥
चुप रहु हेलिनि छिनारि तें जतिया क पातरि।
तीनि भुवन कर राजा कहेंउ निरबंसी॥
चुप रहु हेलवा दहिजार ते जतिया क पातर।
हेलवा तीनि उन्हा करि रानी तीनों जनि बाँझिनि॥

नारी की विवशता का एक ग्रौर प्रमुख कारण है 'सौत''। लोक प्रचलित मान्यता है कि सौत लकड़ी की भी बुरी होती है। नारी के लिये सबसे बड़ी व्यथा है 'सौत'। लोक-गीतों में सौत का चित्रण दुःखदायी व्यक्तित्व के रूप में हुग्रा है। वह दाम्पत्य जीवन के लिए विषम विष के समान है। वह प्रियतम के स्नेहपद से पदच्युत करने वाली है। वह शूल के समान दुःखदायी ग्रौर ग्रभिशाप के समान दाह समुत्पन्न करने वाली है। नारी के लिए मृत्यु शीतल है पर सौत ग्रत्यधिक दुःखदायी। निम्नलिखित लोक-गीत में कहा गया है कि स्वामी ! मैं पीपल की झार सह लूंगी, पर सौत नहीं सही जायगी :—

पिया बइठन के मचिया गढ़ावहु हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिया पौढ़न के रंगपलंग से देह भरुआइल हो ।। १ ।।
पियया हुन हुन आवैले पी रत केहिके जगाइब हो ।
सासु त सूतैं अटरिया ननद पटसरिया हो,
सइयां आप सुतैं रंगमहलिया में केहि के जगाइब हो ।। २ ।।
सासु उठैं त दियना लेवैं हंसिया हो ,
प्रभु आपु चले घगरिन बोलावन से होरिला जनम लेहले हो ।। ३ ।।
सासू पिपरक झार अकसाइन अरु भकसाइन हो ।
सासू हम न पिअब पिपरिया, पिपरिया भकसावैं हो ।। ४ ।।
इतना बचन राजा सुनलैं सुनहु न पवलैं हो ।
राजा धाइ भइले घोड़े असवार सवति हम आनब
सइयां पिपरक झार हम सहबैं सवति नाहीं सहबैं हो ।
सइयां जनि लावहु सवति छाती ऊपर पीपरि पीअब हो ।। ६ ।।

सौत के समान ही सास और ननद भी नारी के लिए दुःखदायी है । लोक गीतों में सास-बहू तथा ननद-भाभी के मतभेद तथा संघर्ष का चित्रण अनेक प्रकार से हुआ है । माँ-बेटी मिलकर वधू के विरुद्ध अनेक प्रकार की शिकायतें करती हैं और पति अपनी प्रियतमा से वियुक्त भाँति-भाँति की यातना देता है । भारतीय नारी की विवशताओं को बढ़ाने वाली शक्तियों में सास और ननद का विशेष स्थान है । जाने कितनी वहुएं सासों के अत्याचार से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेती हैं । प्राय: सभी प्रदेशों के लोक गीतों में इसी प्रकार नारी की विवशता के चित्र अंकित किए गए हैं । विवाह के बाद लड़की को उदास देखकर पिता पूछता है कि हे बेटी :—

"की तेरो बेटी रे दान दहेज थीर की रे सुघरबर छोट ।
की तेरो रे सोना खराब भये, काहे तेरो मनदलगीर ।।

बेटी उत्तर देती है कि दान दहेज तो कम नहीं है पर सुना हैं कि सास कर्कशा है इसी से दुखी हूँ ।

"नाहीं मोर बाबा रे दान दहेज थोर,
नाहीं सुधर बर छोट ।
सुनत ही बाबा मोर सास दारुनियां ।
एही से मन दलगीर ।"

यह सुनकर विचलित पुत्री को धैर्य दिलाने के लिए पिता नीति की बात कहकर सान्त्वना देता है—

"चारि दिना बेटी राजा के रजई,
चारि दिना फौजदारि ।
चारि दिना बेटी सास है दारुनि,
आखिर राज तुम्हार ।।"

एक लोकगीत में सास बहू के भाई भतीजों के नाश हो जाने का शुभ आशिष देती हुई कहती है—खाउं बहुअरि तोरा भैया भतिजवा रे कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम ।। उत्तर में बहू कहती है—काहे खावू सासू भैया भतिजवा रे, हमरे विदेसिया बेनिया भेजें हो राम ।। भाई-भतीजों के मर जाने के मंगल आशिष को सुनकर कौन नारी दुःखी न होगी पर विवशता मनुष्य में बड़ी सहनशीलता समुत्पन्न कर देती है । ऐसी गालियां और अभिशाप ब्राह्मणों (विशेष कर बीस बिसुआ वाले कान्यकुब्जों) में बहुत प्रचलित हैं । कविता कौमुदी ग्रामगीत के पृष्ठ पर ५ पृष्ठों का एक सुन्दर लोकगीत दिया हुआ है । जिसमें बहू की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन हुआ है । यह लोकगीत पठनीय है । बहू की दुर्दशा या विवशता आज की नहीं है । इसका इतिहास बड़ा प्राचीन है । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के यहाँ तो यह सम्बन्ध विषमता चरम सीमा पर परिलक्षित होता है । कहीं-कहीं तो ईर्ष्यावश सास बहू को अग्नि में जला-जला कर इस आशा में समाप्त कर देती है कि देने वाला विधाता उन्हें कोई नई बहू देगा जो साथ में प्रचुर दान-दक्षिणा या धन लायेगी ।

लोकगीतों में नारी अत्यधिक परवश चित्रित की गई है । शैशवावस्था में भाई खाए रहते हैं, युवावस्था में पहले माता-पिता का प्रतिबन्ध, फिर सास ससुर की यातनाएँ, तदनन्तर पति की उपेक्षा और अन्ततोगत्वा आर्थिक परवशता उसके लिए विवशता पूर्ण स्थिति का सर्जन किया करती है । अगर कहीं दूर विवाह होता है तो वह किसके आगे रोकर अपना जी हलका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगी, कौन उसकी विपत्ति बटाएगा ? निम्नलिखित लोकगीत में यही निवेदन व्यक्त किया गया है कि हे पिता ! मेरी शादी दूर प्रदेश में न करना। क्योंकि—नैहर लोग दुलभ ह्वै है बाबा रहबै बिसूरि। बेटी का यह निवेदन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सत्य होने के कारण प्रभावशाली तथा मार्मिक है। पिता पूछता है—

की तोर बेटी रे दायज थोरा की रे भैया बोले
रिसियाय रे।
की तोरे बेटी रे सेवा से चुकल्यूं काहे तोरा
मुहवां उदास ।।

बेटी कहती है—

ना मोरे बाबा रे दायज थोरा नाही भैया बोले
रिसियाय रे।
ना मोरे बाबा हो सेवा में चुकल्यूं यहि गुन मुंहवा
उदास ।।
तब तो कह्यो बाबा नियरे बिग्रहबै बिग्रह्यो देसवा
के ओर रे।
नैहर लोग दुलभ ह्वै हैं बाबा रहिबै बिसूरि-बिसूरि ।।

इसी प्रकार माता-पिता की शीतल छाया और आश्रम छोड़कर विवशता पूर्वक, सास-ससुर की दारुण यातनाएँ सहन करने के लिए जाने को उद्यत लड़की अपने पिता से कहती है—हे पिता ! जब तुम जानते थे कि मैं पराये घर की थाती हूँ तब फिर मेरा इतना दुलार क्यों किया ? तुमने इतना दूध क्यों पिलाया ? क्यों इतनी साढ़ीवाला दही खिलाया था।

खोरवन खोरवन बेटी दुधवा पिअवली हो दहिआ
खिअवली साढ़ीआर रे।
दुधवा के नीख नाही दीहेलु ये बेटी चललु सुनर
बर साथ रे ।।
काहेक मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो दहिआ खिअ-
वला साढ़ीआर रे।
जनित रहला बेटी पर घर जइसे नाहक कइला मोर
दुलार रे ।।

इन दोनों पंक्तियों में व्यक्त पिता और पुत्री की व्यथा से पाठकों का व्यथित हो जाना स्वाभाविक है हम सभी भी बहनों और बेटियों को विदा करते समय इसी प्रकार सोचने लगते हैं।

युग-युग से नारी आभूषण प्रिय रही है। वह माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पति और बन्धु-बान्धवों से भी अधिक आभूषणों को प्रेम करती है। उसे अपने प्राणों से भी अधिक आभूषण प्रिय हैं। यह आभूषण-प्रियता कान्यकुब्जों में बहुत है जहाँ बहुएँ इसलिए मार डाली जाती हैं कि उनके आभूषण अपनी पुत्री के विवाह के लिए उपयुक्त होंगे। सभी के लिए आभूषण समस्त अभावों की पूर्ति कर देता है। बेचारी भारतीय नारी के पास वह भी नहीं रहने पाता है। निम्नलिखित लोक गीत में ससुर और पति द्वारा बहू से जबरदस्ती कंगन उतरवाकर ननद को दिलाए जा रहे हैं। पति जुआ खेलता है, शराब पीता है, समस्त दुर्गुणों से सुशोभित है पर पत्नी के लिए वह भी शेर है :—

कचहरी बैठे ससुरे वह आंगन में ठाढ़े पुकारै।
बहुवल दे दो हाथों के कंगनवां धीयल परदेसन ये ।।
जूआ खिलन्ते राजा आंगन में ठाढ़े।
धना दे दो हाथों ने कंगनवां बहन परदेसन ये ।।
कहाँ तुमने हाथों गढ़ाये कहाँ मोल लिवाये।
परदेसी वीरन के कंगनवां मैं कैसे दे देऊंगी ।।
ला मेरे मैले से कपड़े मैले से कपड़े।
अजुध्या में मागूंगा भीख, कंगनवां गड़वाय दऊंगा ।।
ला मेरी सोने की सिराई, मेरी सोने की सिराई।
काढूँगी कंगनवां की कील फेर न बुलाऊंगी ।।

निकम्मा पति केवल अयोध्या जाकर भीख मांगने की धमकी देकर पत्नी से कंगन ही नहीं छीन लेता वरन् वह सपत्नियों तथा स्त्रियों में झगड़ा भी लगवाता है। कलह के दृश्यों को देखकर उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है। अशिक्षित, संस्कार-विहीन, अनुदार दृष्टिकोण से सम्पन्न नारी आपस में जूझ मरती है। शोषक दोनों ओर प्रिय बना रहता है। कृष्ण ने रुक्मिणी और राधा के मध्य जो कलह समुत्पन्न कर दिया है उसका थोड़ा सा आभास यहाँ दिया जाता है। सभा में श्री कृष्ण बैठे हैं। दूती आकर कहती है कि आप के महल में रुक्मिणी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा दो नारियाँ हैं पर झगड़ा कभी नहीं होता है। बस इतना कृष्ण के लिए पर्याप्त है। वे जाकर दोनों के मध्य में कलह का बीज बो देते हैं :—

सभवाँ बईठल सीरी कृष्ण दूतीअ लईया लावेले हो।
राजा, रउरे महल दुई नारी झगरा नाहीं सुनीले हो॥
सभवाँ से उठे सीरी कृष्ण त राधा के महल गइल हो।
रानी कवन करेल तकसीर रुकुमीनी गारी आवेली हो॥

अब कलह पूर्ण स्थिति के दर्शन कीजिए—

रुक्मिणी ने कहा —

'अही केरे किटिया, त बछरु चरावेल हो।
राधा कृष्ण करे भंडुवइया त बोलेलु बराबर हो॥

राधा का उत्तर —

भीखम केरी बीटिया, त बोलेलु बराबर हो।
बारे कुँवारे ले अइले सिरी कृष्ण त बोलेलु बरावर॥

बारी की दिनचर्या स्वतः उसको विवशता का परिचायक है। उसके चौबीस घंटे के जीवन में कर्तव्य के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। दिन भर लज्जा-वश पति के दर्शन नहीं कर पाती। रात्रि में चूल्हा, चौका देर तक करती है और भोर होने के पहले ही वह जाँत पर जूझने लगती है। निम्नलिखित गीत में नारी की विवशतापूर्ण दिनचर्या का चित्रण है—

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा।
साँझ भई दिया बाती की बेरिया,
राजा दुहावें लागे गइया, मैं जेवना बनावउँ मोरे राजा॥
आधी रात चपरसिया का फेरा,
राजा विछाववँ सुख सेजा, मैं जंतवा बहारों मोरे राजा॥
भोर भये चुहचुहिया जो बोले, राजा संवारे
सिर पागा में जाते पर जूझन लागउँ मोरे राजा॥

नारी की विवशता के चित्र लोकगीतों में पग-पग पर चित्रित हुए हैं। जेठ की गरमी से तपती हुई पत्नी ने पति से कहा कि मैं गरमी से व्याकुल हो जाती हूँ। मेरे स्वामी! बाहर एक बँगला छवा दो। उत्तर में पति ने कहा न हम बँगला छवाएँगे, न घर रहेंगे। मैं परदेश जाऊँगा तुम नैहर जाओ। बेचारी पत्नी का उत्तर है न मेरी माता है, न बाप, न कोई सगा भाई है। भावज कड़ी बातें कहती है। मैं यहीं रहूँगी। सास ननद के पैर धोऊँगी। इस वर्णन में भी भारतीय नारी के नम्रता तथा विवशता का भाव विद्यमान है—

जेठ बैसखवा के गरमी पसिनवां से व्याकुल।
मोरे साहब बाहर बंगला छववउतेउ दूनो जन सोइल हो॥
ना हम बंगला छववउबइ न हम घर रहबइ हो।
मोरी रानी! हम तो जाइब परदेस नइहर चली जाववउ॥
ना मोरे माई न बाप न मोरे सग भैया हो।
स्वामी! भौजी बोलइ विष बोल करेजवा में साल॥
सासु के चरन पखरबै ननद क दुलरबइ।
साहब! देवरा क धोतिया पछरवइ यहीं हम रहबइ॥

जेठ-बैशाख की दोपहर में बंगले की छाया में सोना तो दुर्लभ है ही उसे रात में सोते देखकर सास-ननद का रोष कितना व्यापक हो जाता है यह निम्न-लिखित लोकगीत से स्पष्ट हो जाता है—

सासु जे बोलेलीं अड़पी ननद तड़पी बोलैं हो।
बहुअरि काहे क भरलिउ गुमान सो ऐलू सुख निद्रा॥
बाबा केहै हम निनरुई त भैया के दुलरुई हो।
ऐ अपने हरीजी के प्राण अधारी सोईले सुख निद्रा॥
एतता बचन राजा सुनलेनि सुनहु न पवलेनि हो।
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहु न बोलहिं।

नारी सब कुछ सहन कर लेती है, पर पति का वियोग नहीं सहन कर पाती है। पति का वियोग उसके जीवन की सबसे मार्मिक घटना, अवस्था या भाव है। ऊपर उल्लेख हुआ है कि राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहु न बोलही। इस वियोग से बचने के लिए नारी भूख, प्यास सब कुछ सहने के लिए प्रस्तुत रहती है। निम्नांकित लोकगीत में यही भाव व्यक्त है—

भूखेन मरिहो पिआसेन मरिहौं पान बिना होंठ कुंभिलाय
कुसकी साथरी डासन पैहो, अंग छुलिय छुलि जांय।

पत्नी उत्तर देती है—

भूख मैं सहिहौं पिआस मैं सहिहौं पाह डारौं बिसराय।
तुम्हरे साथ पिया जोगिनि होइहौं ना संग माई न बाप।

दार्शनिकों का कथन है कि मानव जन्म बड़े पुण्य के अनन्तर प्राप्त होता है। परन्तु एक भारतीय नारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछली के गर्भ में जन्म न लेने के लिए पश्चाताप करती है। यह सब आकांक्षा इसलिए है कि यदि वह मछली होती तो जलाशय में स्नानार्थ आए हुए प्रियतम के चरण स्पर्श कर लेती और मानव जन्म लेने से वह इस पुण्य से भी वंचित है—

होइतों में जल के मछरिया जलही बीचे रही जइतों हो राम।
अहो रामा, मोरा हरि अइतें असननवां चरन चूमि लेइती हो राम॥
सठिया कुटीय भात रन्हितों मुंगीय दरी दलिया हो राम।
अहो रामा, मोरा प्रभू अइतें जेवनवां नजर भरी देखि लेतो हो राम॥

"चरन चूमि लेइती" तथा "नजर भरी देखि लेतो" में कितनी वेदना तथा व्यथा साकार हो उठी है। प्रियतम को देखने के लिए एक नारी ने भंगिन का रूप धारण किए हुए एक लोक गीत में चित्रित की गई है। (देखिये ग्रामगीत पृ० ४७०-४७१)।

वास्तव में विरह से विवश एक नारी की भावनाओं का चित्रण निम्नलिखित लोक गीत में हुआ है, मेरी झोंपड़ी टूटी हुई है। बूँद-बूँद टपक रही है। मेरी सुध कौन लेगा। जेठ अपना बंगला छवा रहे हैं, देवर अपनी चौपाल बनवा रहे हैं। हाँ! मेरा घर कौन छवायेगा। मेरा प्रियतम तो परदेश में है :—

टुटही मड़इया बुनिया टपकई रे,
के सुधि लेवै हमार॥
जेठा छवावइं आपन बंगला रे,
देवरा छवावइ चउपारि।
हमरा मंदिलवा केउ न छवावइ रे,
जेकर पियवा बिदेश॥

इस तरह लोकगीतों में नारी-विवशता का जो चित्रण हुआ है उससे भारतीय समाज का अच्छा दिग्दर्शन होता है।

—६ सोजा रोड, लखनऊ।

सुन्दर, आकर्षक एवं कलापूर्ण
मुद्रण के लिए
सदैव स्मरण रखिए—
साहित्य प्रेस,
साहित्य कुञ्ज, आगरा-२ दूरभाष : ७२२६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकगीतों में 'लंगुरा' कौन ?

● डा० शालिग्राम गुप्त

हिन्दी लोकगीत-साहित्य के कुछ विद्वान् लगुडीश या लगुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के प्रवर्तक लगुलीश को केवल नाम साम्य के आधार पर ब्रज और बुन्देलखण्ड में चैत्र और आश्विन मास की नवरात्र में माता अथवा देवी नवदुर्गा के गीतों में आने वाले 'लंगुरा' से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। देवी के गीतों से अथवा स्वतन्त्र 'लांगुर' या 'लंगुरया' गीतों से लंगुरा का जो रसिक और हँसोड़ा व्यक्तित्व उभरता है उसको देखते हुए भगवान शंकर के अवतार एवं लगुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के प्रवर्तक 'लगुलीश' से उसका सम्बन्ध स्थापित करना उस सिद्ध पुरुष के महान चरित्र को कलंकित करना होगा।

यहाँ ब्रज और बुन्देली के देवी के गीतों में लंगुरा जो वस्तुतः देवी के अखाड़े का एक वीर था, का जो रूप मिलता है एवं लोक में उसके प्रति जो लोक-विश्वास एवं लोककथा प्रचलित है उस पर सविस्तार विचार करने के पश्चात् ही हम अपने मत की पुष्टि करेंगे कि 'लगुलीश' या 'लंगुरा' नितान्त दो भिन्न व्यक्तित्व हैं एक नहीं। लंगड़ होने के कारण ही लंगुरा की लांगुरता को स्पष्ट करने वाली कथा इस प्रकार है—

कहते हैं पट्टण नरेश सिद्धराज जयसिंह की रानी वाड़ेजी मृगनयनी पद्मिनी के समान रूपवती थी जिस पर एक बार चामुण्डा माता के अखाड़े का वीर काला भैरव आसक्त हो गया और नित्य आकर रानी में आविष्ट होने लगा। जब सिद्धराज को काला भैरव की बात मालूम हुई तो उसे बहुत दुःख हुआ और वह इसी चिन्ता में नित्य सूखने लगा। वह अब किसी भी प्रकार के राग-रंग व राज्य-कार्य में भाग न लेता था और न उसका चित्त ही लगता था।

इस प्रकार पाँच महीने बीत गए। एक दिन मालव देश की धारा नगरी के राजा उदयादित्य के पुत्र वीर जगदेव परमार ने जो उस समय जयसिंह की सेवा में था इसका कारण जानने का निश्चय किया। अतः एक रात जब सभी दरबारी लोग राजा की आज्ञा से अपने-अपने डेरे पर चले गए, जगदेव न गया। राजा ने उसे भी जाने के लिये कहा तो उसने निवेदन किया, "महाराज ! आपके चित्त में कोई गहरी चिन्ता है—आप उसे मुझसे कहिए।" तब सिद्धराज ने कहा—"कुँवरजी ! मेरे मन के दुःख को मेरा मन ही जानता है या फिर काला जानता है। यह बात कहने की नहीं है, परन्तु कहे बिना रहा भी नहीं जाता क्योंकि आप मेरे घर के हैं। आप आज रनिवास की ड्योढ़ी में रहकर रानी की दशा को देखें तो मेरे मन की सारी वेदना आपकी समझ में आ जायेगी।"

इसके पश्चात् सिद्धराज सो गए। जगदेव ढाल तलवार से सुसज्जित होकर पास की फूलों की बाड़ी में छुपकर बैठ रहा। आधीरात बीतते-बीतते काला भैरव ने आकर राजा को नीचे पटक दिया पलङ्ग का पाया उसके सीने पर रख दिया और रानी में प्रवेश कर के उसको तरह-तरह की यातना देने लगा। यह देखकर उसने समझ लिया कि उसके स्वामी के दुःख का कारण यही हो सकता है और वह इस दुःख को किसके आगे कहे। इसके बाद तलवार हाथ में लेकर वह काल-भैरव पर टूट पड़ा और उससे कहने लगा—"पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काया में प्रवेश करने वाले चोर ! सावधान !! बहुत दिनों से तू बच बच कर निकल जाता था – आज जगदेव से तेरा पाला पड़ा है। अब तेरी खैर नहीं।" फिर भैरव ने अपना बहुत सा चमत्कार दिखलाया परन्तु जगदेव ने उसकी एक भी न चलने दी और उसको इतना तङ्ग किया कि वह बहुत ही निर्बल पड़ गया। अब वह कहने लगा—"मुझे छोड़ दो। आज से मैं कभी इस शरीर में नहीं आऊँगा।" इसके बाद उसका आवेश उतारने के लिए रानी जाड़ेजी को एक तहखाने में उतारा गया और काला भैरव को कैद करके रानी को बाहर निकाल लिया।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है काला भैरव और गोरा खेतरपाल ये दोनों चामुण्डा माता के अखाड़े के वीर थे। एक बार खेतरपाल को अकेला देखकर माता ने उससे पूछा—"काला कहाँ हैं ?" खेतरपाल ने उत्तर दिया—"माँ ! आपसे क्या छुपा है ?" माता चामुण्डा ने ज्ञान दृष्टि से देखा तो सब बात मालूम हो गई। वह बोलीं—"मैंने काला को पहले ही मना कर दिया था कि जहाँ जयदेव परमार हो वहाँ मत जाना परन्तु वह नहीं माना।" ऐसा कह कर उसको छुड़ाने के लिए उन्होंने कङ्काली भाटणी का रूप धारण किया। हाथ में त्रिशूल लेकर वह पाटण नरेश सिद्धराज के दरबार में आईं और जगदेव से दानस्वरूप काला भैरव को छोड़ देने की प्रार्थना की। जगदेव ने काला भैरव को जिसका एक पैर उसने पहले ही खण्डित कर दिया था, तहखाने से मुक्त कर दिया। एक पैर से खण्डित होने के कारण ही देवी चामुण्डा के अखाड़े का वीर काला भैरव लंगड़ा कहा जाने लगा। यही लंगड़ा लंगरा, लंगुरा, अथवा लंगरवा, लंगुरवा कहलाया।

'रासमाला' की उपर्युक्त कथा में लंगुरा का जो रूप दिखायी पड़ता है उसका वही रूप प्रायः ब्रज और बुन्देली के देवी के गीतों में भी देखा जाता है। अतः स्पष्ट है कि देवी के अखाड़े का लंगड़ा वीर काला भैरव ही लोकगीतों में लंगरा / लंगुरा के नाम से याद किया जाने लगा न कि भगवान शंकर के अवतार एवं लगुलीश पाशुपति सम्प्रदाय के प्रवर्तक लगुल गुरु लोकगीतों में लंगुरा बन गए।

— शान्ति निकेतन, प० बंगाल।

———

इकत्तीसवाँ संस्करण प्रकाशित हो गया

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

लेखक—बाबू गुलाबराय, डो० लिट्

सामान्यतः हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन दुरूह समझा जाता है किन्तु इस पुस्तक ने छात्रों में इतिहास के अध्ययन की रुचि को जागृत किया है। परिणामस्वरूप इण्टर, बी० ए०, विशारद, प्रभाकर आदि के सहस्रों छात्र प्रतिवर्ष इससे लाभ उठाते हैं और परीक्षा में शानदार सफलता प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का सुबोध ढंग से परिचय देने में जितनी सफलता इस पुस्तक को मिली है, उतनी किसी और को नहीं। इसकी अपूर्व लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अबतक इसके तीस संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत इकत्तीसवाँ संस्करण सम्पूर्ण रूपेण संशोधित एवं संवर्द्धित है। मूल्य—३.५० मात्र

प्राप्ति स्थान—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

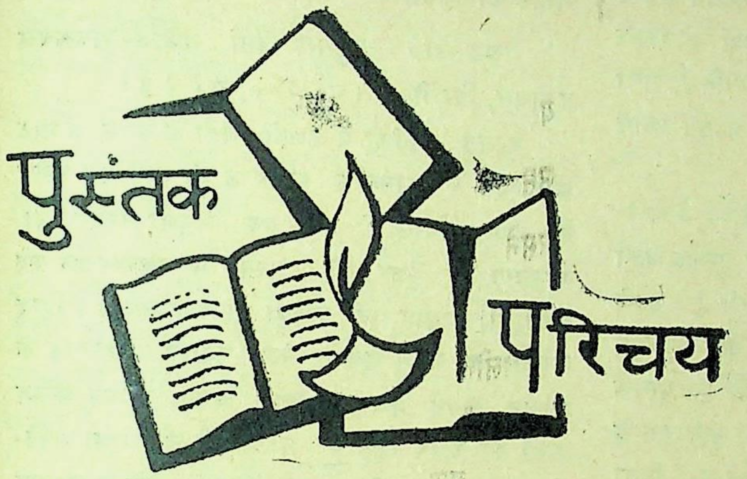

समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक को दो प्रतियाँ ग्रानी चाहिये

शोध-ग्रन्थ

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में भारतीय संस्कृति—

लेखक—डा० मदनगोपाल गुप्त, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहरनगर, दिल्ली-७। पृ० ५७२, मूल्य ३५.००

समीक्ष्य ग्रन्थ लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। लेखक ने इसे ८ अध्याय में विभक्त कर मध्यकाल के सभी रूपों को रखा है। प्रथम अध्याय में, संस्कृति के स्वरूप पर विशद विवेचन किया गया है। इसमें संस्कृति का पाश्चात्य सम्बन्ध भी स्थापित कर उसमें भारतीय संस्कृति का प्रतिष्ठापन भी हुआ है जो कि बहुत ही उपयुक्त बन पड़ा है। संस्कृति का क्षेत्र समस्त विश्व एवं समस्त प्राणियों के मध्य होता है। अतः इसके अध्ययन के हेतु लेखक को बहुत ही विशाल क्षेत्र को अपनाना पड़ा। दूसरे अध्याय में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर उसका विश्लेषण है जोकि उनकी मान्यता को स्थिर करता है। इसमें उस काल के नरेशों से लेकर जन-साधारण के क्रिया-कलापों के साथ दैनिक व्यवहार की बातों को भी समाहित किया गया है। फलतः संस्कृति का सम्यक् विवेचन अपने में पूर्ण हो जाता है। एतदर्थ धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के मध्य संस्कृति-स्थापन लेखक की कुशल प्रज्ञा का प्रतीक है।

तीसरे अध्याय में सांस्कृतिक परिस्थिति को लेकर हिन्दी काव्येतर स्रोतों को अपना कर उसकी समानता एवं अपमानता का निराकरण किया जाना पूर्ण मनोचेतना का प्रमाण है। सभी साम्प्रदायिक तत्वों एवं वर्गों को लेकर एक-एक का विवेचन करना ही इसका अभीष्ट है। तत्कालीन सम्प्रदायों को भी इसमें विषय की पुष्टता के लिए अपनाया गया है। चौथे अध्याय में सन्त काव्य को लेकर विषयवस्तु को गति-मान किया गया है। वस्तुतः सन्त काव्य अधिकतर भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रमाण एवं समर्थ उदा-हरण प्रस्तुत करता है। लेखक ने उसमें सभी कलाओं को लेकर स्थापत्य कला तक को सीमांकन किया है जोकि उसके विस्तृत अध्ययन एवं गहन अध्यवसाय का प्रस्तुतीकरण है। पाँचवे अध्याय में प्रेमाख्यानक काव्यों को लेकर सभी धर्मों एवं मतों को विवेचित कर इस्लाम एवं सूफी धर्म साधना, से जीवन के मूल्यों को आकलित कर उसका सम्बन्ध निर्धारित किया गया है। छठे अध्याय में रामकाव्य और कृष्णकाव्य की भार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीय संस्कृति को परखा गया है। इसमें उस काल के समाज एवं जीवन का भी दिग्दर्शन विशेष रूप से पठनीय है। आठवें अध्याय में इतर काव्यों को लेकर उनका वर्णन है तथा सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक त्रिकोण में उसका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

समग्र रूप से मध्यकाल के हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति को समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक बहुत उत्कृष्ट एवं क्रमगत अध्ययन प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति को समझने के लिए अन्य बहुत सी पुस्तकों की सूची तथा सन्दर्भ भी इस पुस्तक में प्राप्त होने के कारण 'संस्कृति' को पूर्ण रूप से अनुशीलन करने के लिए एक उचित तथा सही दिशा निर्देश भी होता है। इस गहन अध्ययन एवं महत्व-पूर्ण ग्रन्थ के लिए डा० गुप्त हमारे साधुवाद के पात्र हैं और उनकी यह पुस्तक भारतीय संस्कृति का 'ध्रुवतारा' के समक्ष है।

आलोचना

रामचन्द्रिका : परम्परा, परिवेश और काव्य—

लेखक—डा० जगदीशप्रसाद शर्मा, प्रकाशक—भारतीय शोध-संस्थान, गांधी शिक्षण-समिति, गुलाबपुरा, राज०। पृ० १४६, मू० ८.००

केशव की रामचन्द्रिका पर आलोचनात्मक परीक्षण करना ही इस कृति का लक्ष्य है। लेखक क्रमिक सोपान के माध्यम से उत्तरोत्तर आगे बढ़ा है। इस परिप्रेक्ष्य में उसका मार्ग शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल ठहरता है। किन्तु इसे शोध-कृति कहना अथवा मानना उचित नहीं। विश्लेषणात्मक ढङ्ग से लिखी गई प्रस्तुत कृति रामचन्द्रिका पर पर्याप्त प्रकाश डालने के साथ उसके अनुमोदन अथवा पुष्टीकरण के लिए कोई नवीन मार्ग अथवा विषय का प्रतिपादन उपेक्षित सा होगया है। एक दिशा में कार्य करना विषय के सूक्ष्म विवेचन का परिचायक तो है पर परिवेश एवं पोषक तत्वों की अवहेलना स्वीकार नहीं। फिर भी रामचन्द्रिका को अर्थ एवं विषय के अतिरिक्त समझने के लिए कृति अच्छी बन पड़ी है।

एकाङ्की

जौहर की ज्योति—

लेखक—डा० रामकुमार वर्मा, प्रका०—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—६। पृ० १००, मू० ३.५०

प्रस्तुत एकांकी में १७वीं शती के यवन सम्राट औरंगजेब के शासन में मारवाड़ की दशा का वर्णन है। वीर दुर्गादास जो कि एक मामूली सरदार था, मारवाड़ की रक्षा की। नाटक में स्थल-स्थल पर जिज्ञासा, उत्साह एवं प्रतिष्ठा का आधिक्य है। हिन्दू संस्कृति को इसमें खुलकर लाया गया है। मारवाड़ के शासक अपने वंश के रक्षार्थ अपना सर्वस्व अर्पित करने को तत्पर रहते थे। नाटक की एक पात्रा सफीयत-उन्नीसा-बानू हिन्दू माँ से जन्म लेने के कारण उसमें हिन्दू संस्कृति के भाव जन्म से ही विद्यमान थे। उसने वीर दुर्गादास की अतिशय सहायता की।

नाटक का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी तत्कालीन समाज एवं संस्कृति पर भी अच्छा प्रभाव डालता है। अभिनय एवं रङ्गमंच की दृष्टि से भी यह एक सफल एकाङ्की है।

गीति-नाट्य

तमसा—

लेखक—जानकीवल्लभ शास्त्री, प्रका०—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमि०, ८ फैजबाजार, दिल्ली-६। पृ० ११८, मू० ४.००

समीक्ष्य कृति में ५ गीतिनाट्य सगुम्फित हैं। ये पाँचों धार्मिक परिवेश से दोहन रूप में प्राप्त किए गए हैं। भाव, भाषा एवं शैली के त्रिकोणात्मक संघर्ष में साहित्य की नई विधा का प्रणयन इसकी अपनी विशेषता है। यद्यपि इसे संगीतिकाएँ भी कहा गया है किन्तु उसका अनुमोदन सहज सम्भव नहीं। गीतों के आधिक्य एवं गद्य की कमी से इसके रंगमंच की सफलता में तनिक सन्देह सा होता है क्योंकि गीति-नाट्य पर पारसी कम्पनियों का प्रभाव अब समाज से एकदम उठ चुका है। मानव जहाँ अत्यधिक प्रज्ञात्मक हो गया है वहाँ वह गद्य की सीधी एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपी तुली भाषा का पक्षपाती भी होगया है।

इस कृति में मदन-दहन, तमसा, मुक्ति पुरुष, पाञ्चाली और गोपा ये पाँच नाटिकाएँ हैं। लेखक अपने कवि-हृदय की भावोर्मियों को छिपाने के बजाय उसे अत्यधिक प्रदर्शित करने में सफल हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में उसका स्वतन्त्र परिलेखन ही अधिक उभरा है कवि नाट्य-शास्त्र के नियमों के अन्तर्गत अपनी कृति का संचयन नहीं।

विषय वस्तु धार्मिक होने के कारण उसका तारतम्य सहज ही चलता रहता है। अतएव इसमें मौलिकता का ढिंढोरा पीटना मान्य नहीं। फिर भी काव्यानन्द प्राप्त करने की दृष्टि से कृति पूर्णतया सफल है।

उपन्यास

बेगम—

मूल लेखक—ताराशङ्कर वन्द्योपाध्याय, अनु०—हंसकुमार तिवारी, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६। पृ० २२३, मूल्य ५.००

प्रस्तुत उपन्यास बंगला के प्रमुख उपन्यासकार श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय की 'गन्ना बेगम' का हिन्दी अनुवाद है। यह उपन्यास ऐतिहासिक होने के कारण यवन संस्कृति एवं उसके विलासपूर्ण जीवन का दिग्दर्शन करता है। बेगम खूबसूरती में अद्वितीय होने के साथ शेर और शायरी का बेहद शौक रखती थी। उसका सारा जीवन इसी लालसा में कटा। महलों की चहार दीवारियों में बन्द बेगम स्वच्छन्द विचरण से विमुख रही अतः उसकी आन्तरिक वेदना घुल-घुलकर उसे कष्ट देती रही। उपन्यासकार अपने उपन्यास में इन भावों को अच्छी तरह परख कर रखने में सफल हुआ है।

उपन्यास के अनुवाद की भाषा भी सरल एवं प्रवाहमयी है जिससे मूल सा आनन्द आता है।

काँटों के फूल—

लेखिका—श्रीमती निर्मला वाजपेयी, प्रका०—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली। पृ० ११८, मू० २.५०

समीक्ष्य उपन्यास आधुनिक युग के भौतिकवादी वातावरण से घिरा हुआ है। अर्थ एवं धन की लोलुपता में घर में कुहराम मचवा देना साधारण सी बात है। फिर भी उपन्यास की कथावस्तु उसके निराकरण एवं समाधान के लिए प्रयत्नशील रहती है। लेखिका के पात्र शिक्षित एवं सभ्य हैं तभी वे क्रोध में आकर अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं।

इस उपन्यास के आरती और शेवन्ती पात्रों का चरित्र खूब निखरा है, वे कष्टों एवं यातनाओं के मध्य भी सदैव मुस्कराते रहे तथा अपने पथ से विचलित नहीं हुए। समग्र रूप से उपन्यास पठनीय एवं संघर्षों के समय साहस देने वाला है।

सागर और सरोवर—

लेखक—गुरुदत्त, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली—६। पृ० २७६, मू० ६.००

प्रस्तुत उपन्यास एक सामाजिक समस्या लेकर पाठकों के समक्ष आता है। धन और अर्थ के उचित उपमानीकरण के लिए मानव समाज के भावों में परिवर्तन लाना ही इसका प्रमुख लक्ष्य है। बुद्धि एवं आवश्यकता के अनुसार उसका निरूपण सम्भव होता है। उपन्यासकार ने अपने मौलिक विचारों से आज के अर्थवादी समाज को अच्छा लताड़ा है। उसकी दृष्टि में किसी भी वस्तु की उपयोगिता उसके प्रयोग एवं महत्त्वांकन में है। समग्र रूप से उपन्यास पठनीय एवं प्रेरक है।

आस्तीन के साँप—

लेखक—मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—राजपाज एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। पृ० १२४, मू० २.५०

समीक्ष्य उपन्यास भारत और पाकिस्तान के परिवेश में लिखा गया है। पारस्परिक विश्वासघात से समाज की नींव हिल जाती है और उस समय देशद्रोही तत्वों का सितारा बुलन्द हो जाता है। लेखक ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं को अपने इस उपन्यास में बड़े ही मौलिक ढंग से उठाया है। विघटनकारी तत्वों को समाज में किस प्रकार प्रश्रय मिलता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर वे किस तरह अपने ही देश एवं समाज का अहित करके अपना अबौद्धिक कुकृत्य करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इसी का सफल चित्रण हुआ है।

स्वप्न और सत्य—

लेखक–बालशौरि रेड्डी, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली-६। पृ० ३४८, मू० ७.००

प्रस्तुत उपन्यास सामाजिक पहलुओं को अपने में लपेटता हुआ पाठकों के समक्ष आता है। दक्षिण भारत के सांस्कृतिक एवं सामाजिक आधार पर इसका प्रणयन हुआ है। भारत एक विशाल देश है इसमें कई प्रकार के समाज, कई प्रकार की सांस्कृतिक परम्पराएँ प्रचलित है। इसलिए उनके सदस्यों की भी मनोभावनाएँ विभिन्न हैं। लेखक ने इसी को अपने उपन्यास का मूल लक्ष्य मानकर कृति को आगे बढ़ाया है।

दक्षिण भारत के समाज को जानने एवं औपन्यासिक माध्यम से परिचित होने के लिए स्वप्न और सत्य एक अच्छा माध्यम है। सभी के जीवन में स्वप्न आते है पर उनमें कितने सत्य होते है ? और कितने असत्य ? यह कहना कठिन है फिर भी उनमें बहुत अंशों तक यथार्थता होती है। इसलिए वे प्रिय भी होते हैं। घटनाओं के साथ कथावस्तु अग्रसरित होती है पर पात्राधिक्य के कारण पाठकों को कहीं-कहीं उलझन भी हो सकती है। अतएव इस दृष्टि से इस उपन्यास की मौलिक चेतना बहुत स्पृहणीय नहीं है। एक अहिन्दी भाषी लेखक द्वारा ऐसी सुन्दर कृति के लिए हमारी बधाई एवं शुभकामनाएँ।

कहानी

रहस्यपूर्ण कहानियाँ—

मूल लेखक–एडलर एलन पो, अनु०–रामनाथ 'सुमन', प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली–६। पृ० ३७२, मूल्य ५.००

श्री एडलर एलन पो विश्व के जाने-माने कथाकार हैं। कहानी साहित्य को उनकी अतुल देन है। प्रस्तुत संग्रह में उनकी २५ कहानियाँ संग्रहीत हैं। पो की कहानी की यह विशेषता है कि वे समाज के इर्द-गिर्द फैले कलुषित एवं कदाख्य वातावरण को अपना विषय बनाते हैं। जिससे उनके मनोभावों को परखने का अच्छा अवसर मिलता है। रहस्यात्मकता तो उनकी कहानियों की जान है पर ये डिडेक्टिव अथवा जासूसी शृङ्खला से नहीं बाँधी जा सकती हैं। इनकी रहस्यात्मकता का अलग अर्थ तथा परिवेश है। समाज में, साहित्य में और अपने में कुछ विशेष रहस्य होता है जिसका प्रस्फुटीकरण ही पो का लक्ष्य है।

कहानी की कथावस्तु समाज की समस्यायें अपने में समेटे हुए है। इसीलिए पो समाज के कथाकार हैं तथा उसके चतुर पारखी। प्रस्तुत संग्रह की सभी कहानियाँ पठनीय एवं शिक्षाप्रद हैं तथा अनुवाद की भाषा भी ग्राह्य तथा सरल है जो कि सभी पाठकों को सहज ही मूलानन्द देता है।

जीवन-चरित्र

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय—

खण्ड २१, २२, २३, प्रकाशक–प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई-दिल्ली। पृ० ६३२, ५७५, ६४४, मू० ७.५० प्रति खण्ड।

गांधी साहित्य के क्रियान्वयन की शृङ्खला अविरल रूप से चल रही है। गांधीजी के जीवन की घटनाओं और क्रिया-कलापों आदि की जानकारी के लिए ये खण्ड बहुत ही उपयोगी हैं। स्थल-स्थल पर गांधीजी के आवश्यक एवं दुर्लभ चित्रों की झाँकी पाठकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। भारत सरकार ने पूज्य बापू के साहित्य को प्रकाशित कर एक बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है। इन खण्डों में गांधीजी के साधारण से साधारण कार्यों को लेकर उच्च से उच्च कार्यों का वर्णन किया गया है। दैनिक पत्रों से लेकर राजकीय पत्रों का भी समावेश है। इस कार्य में प्रकाशक को कितना परिश्रम करना पड़ा है, सहज ही उसका आकलन सम्भव नहीं।

गांधीजी के सिद्धान्तों एवं आदर्शों को समझने के साथ उनके जीवन से निकट परिचय प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत खण्ड बहुत ही उपयोगी तथा संग्रहणीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रिय लेखकों की चुनी हुई प्रसिद्ध पुस्तकें

४५१ वाम मार्ग — गुरुदत्त ३.००

विख्यात उपन्यास के अत्यन्त लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यास का सम्पूर्ण पाकेट संस्करण। शुरू से अन्त तक बहुत रोचक।

४५२ जलावतन — अमृता प्रीतम २.००

लोकप्रिय लेखिका का नई शैली में लिखा एकदम नया उपन्यास। बेहद रोचक। साथ में लेखिका की चुनी हुई प्रसिद्ध कहानियां।

४५३ डाक बंगला — ए० हमीद २.००

उर्दू के मशहूर उपन्यासकार का प्रसिद्ध रोमांटिक उपन्यास। प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष की एक अमर कहानी। पढ़िये और पढ़ते चले जाइये।

४५४ फरार — चन्दर २.००

रोमांचकारी थ्रिलर उपन्यासों के प्रसिद्ध लेखक का नया विस्फोटक उपन्यास। गति, सनसनी, रहस्य और रोमांचक का क्लासिक।

४५५ वह कौन था — कर्नल रंजीत २.००

उच्चकोटि के जासूसी उपन्यासों की श्रृङ्खला में एक नई और अनोखी वृद्धि। रातों की नींद उडा देने वाला अद्वितीय जासूसी उपन्यास।

४५६ उल्टी सीधी — हरिशंकर परसाई २.००

हिन्दी के आज के सबसे सशक्त और लोकप्रिय व्यंग्य-लेखक की चुनी हुई प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य कहानियों का अनूठा संग्रह।

४५७ काका कोला — काका हाथरसी १.००

काका की नई हास्य-व्यंग्य कविताओं का फड़कता हुआ संग्रह। काका कोला की इस अनूठी बोतल में विनोद, परिहास, हास्य और व्यंग्य का सागर बन्द है।

४५८ आत्म-कथा — खान अब्दुल गफ्फार खाँ २.००

सामांत गांधी बादशाहखाँ की यह संसार की किसी भी भाषा में पहली बार प्रकाशित आत्म-कथा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है।

शीघ्र बिकने वाली श्रेष्ठ पुस्तकों की पहचान

अपने नगर के पुस्तक-विक्रेता, रेलवे बुकस्टाल या रोडवेज बुकस्टाल से खरीदिए

विस्तृत सूचीपत्र के लिए हमें लिखिए

हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Licensed to post without prepayment

साहित्य-सन्देश

(आलोचना प्रधान मासिक)

'साहित्य-सन्देश' आलोचना का एक मात्र मासिक-पत्र है जो गत २९ वर्षों से लगातार निकल रहा है। इसका प्रचार भारत एवं विदेशों में है। वार्षिक मूल्य केवल ६.०० रुपया है।

उपयोगिता—(१) हिन्दी के अध्ययन के लिए साहित्य-सन्देश अनूठा साधन है। हजारों विद्यार्थी 'साहित्य-सन्देश' पढ़कर बी. ए., एम. ए., पी-एच. डी. आदि पदवीधारी बनकर आज बड़े-बड़े कालेजों में अध्यापन कर रहे हैं।

(२) साहित्य-सन्देश के निरन्तर अध्ययन से सैकड़ों व्यक्ति लेखक बन गए। आज के अनेक सम्मान्य लेखकों ने लिखने का आरम्भ साहित्य-सन्देश के माध्यम से ही किया है। आज भी उसे सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

(३) अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रचारकों के लिए तो साहित्य-सन्देश एक सम्बल है जिसके सहारे वे हिन्दी का ज्ञान बराबर बढ़ा रहे हैं। इसीलिए इन प्रान्तों में भी उसकी हजारों प्रतियाँ जाती हैं।

मान्यता—(१) भारत के प्रदेशों की सरकारों ने अपने स्कूल, कालेजों के लिए खरीदने की मान्यता 'साहित्य-सन्देश' को दे रखी है।

(२) भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालय, अधिकांश कालेज और स्कूल तथा अध्यापकगण अपने पुस्तकालयों के लिए 'साहित्य-सन्देश' खरीदते हैं।

आप भी छः रुपये धनादेश अथवा पोस्टल आर्डर कार्ड भेजकर ग्राहक बनिए।

'साहित्य-सन्देश' की

गत १५ वर्षों की फ़ाइलें

३१ जो० ६८ तक मँगाने पर पौने मूल्य में

साहित्य-सन्देश को निकलते २९ वर्ष हो गए। प्रारम्भ की १४ वर्षों की फाइलें क्या एक अङ्क भी उपलब्ध नहीं है। इधर १५ वर्ष की कुछ फाइलें उपलब्ध हैं। प्रत्येक फाइल में हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखित ५०० पृष्ठों (पुस्तकाकार में १०० पृष्ठ की सामग्री है। ऐसी प्रत्येक सजिल्द फाइल का मूल्य केवल १०) है। पोस्टेज एक फाइल पर करीब २) पड़ेगा। किन्तु कम से कम पाँच वर्ष की फाइलें मँगाने पर रेल द्वारा बिना खर्च भेजी जायेंगी। किस वर्ष की फाइल में कौन विशेषाङ्क है—यह नीचे देखिए। चिन्हित विशेषाङ्क अलग से भी मिल सकते हैं। तुरन्त आर्डर भेजिए।

सन्	वर्ष के विशेषांक	विशेषांक का मूल्य
१९५२-५३	कहानी अङ्क	२)
१९५३-५४	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५४ ५५		
१९५५-५६	अन्त:प्रान्तीय नाटकाङ्क	२)
१९५६-५७	आधुनिक उपन्यास अङ्क*	२)५०
१९५७-५८	(१) भाषा विज्ञान अङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क	१)
१९५८-५९	(१) सन्त साहित्य अङ्क*	२)५०
	ऐतिहासिक उपन्यासाङ्क	२)
१९५९-६०	(१) रीतिकाव्यालोचनाङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति अङ्क १९६०*	२)
१९६०-६१	(१) शोध विशेषाङ्क	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क १९६१	२)
१९६१-६२	(१) निबन्ध विशेषाङ्क अप्राप्य	२)५०
	(२) निराला विशेषाङ्क ,	२)
१९६२-६३	(१) साहित्य-शास्त्र अङ्क	२)५०
	(२) रांगेय राघव अङ्क	२)
	(३) शिवपूजनसहाय अङ्क	१)
१९६३-६४	(१) बाबू गुलाबराय अङ्क*	२)५०
	(२) वीर काव्य विशेषाङ्क	२)५०
१९६४-६५	(१) द्विवेदी अङ्क*	२)
	(२) राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक*	२)
१९६५-६६	(१) हरिऔध विशेषाङ्क*	२)
	(२) विद्यापति विशेषाङ्क*	२)
१९६६-६७	(१) रत्नाकर विशेषाङ्क*	१)५०
	(२) नव वर्षाङ्क*	१)५०
१९६७-६८	(१) बचन विशेषांक	१)५०

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६, अङ्क १२] जून, १९६८ [मूल्य साठ पैसे

इस अङ्क में—

१—हमारी विचारधारा	सम्पादकीय	४३३
२—एको रसः करुण एव....	अर्जुनदास केसरी	४३७
३—हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में संकरता	कु० सरन मुकर्जी	४४१
४—गीति-काव्य का तात्विक विवेचन	कु० मंजु	४४४
५—जैनेन्द्र के उपन्यासों की फ्रायडीय नारी	विजय कुलश्रेष्ठ	४५१
६—राम की शक्ति-पूजा का पौराणिक एवं मनोवैज्ञानिक निकष	विष्णुचन्द्र पाठक	४५६
७—रामचन्द्रिका का प्रबन्धत्व	सुश्री सन्तोषकुमारी	४५९
८—नई कविता और सौन्दर्य-बोध	कु० आराधना सक्सेना	४६३
९—रीति-मुक्त काव्य का अभिव्यंजना-शिल्प	जगदीश्वर प्रसाद	४६५
१०—पुस्तक-परिचय		४६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम. ए. स्तर के समीक्षात्मक ग्रन्थ

- **ग्रीक साहित्य-शास्त्र**—ले० हरीश 'करुण', प्लेटो, अरस्तू, लोंजाइनस आदि के आधारभूत ग्रन्थों का प्रामाणिक अनुवाद; मूल्य ५.५० ।
- **रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा**—डा० कृष्णदेव भारी; आधुनिक साहित्य की दृष्टि से रस-सिद्धान्त की सर्वाङ्गीण विवेचना; मूल्य ६.०० ।
- **साहित्य की आत्मा**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि से काव्य की आत्मा एवं आकर्षण शक्ति सिद्धान्त की विवेचना; मूल्य ५.५० ।
- **साहित्य के तत्त्व**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; भाव, विचार और कल्पना की साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक एवं सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से मीमांसा; मू० ५.५० ।
- **साहित्य की शैली**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; शैली और रीति सम्बन्धी सभी प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धान्तों के आधार पर शैली के भेदों, तत्त्वों, गुणों तथा शैली और व्यक्तित्व के सम्बन्धों की सूक्ष्म मीमांसा; मू० ७.५० ।
- **प्रेमचन्द और गोदान : नव मूल्यांकन**—डा० कृष्णदेव भारी; 'गोदान' के नामकरण, कथानक, चरित्र चित्रण, समाज-दर्शन, नारी-समस्या, आदर्शवाद, यथार्थवाद, गांधीवाद-समाजवाद, उद्देश्य, शिल्प-विधान आदि का गम्भीर विवेचन; मू० ६.५० ।
- **बिहारी सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; महाकवि बिहारी के जीवन-चरित, व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन, काव्यादर्श, प्रेरणा-स्रोत, शृंगार-निरूपण, भक्ति-भाव, हास्य-व्यंग्य, मुक्तक-रूप, काव्य-शैली आदि का प्रामाणिक व गम्भीर विवेचन; मू० ५.५० ।
- **आधुनिक साहित्य और साहित्यकार**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; भारतेन्दु, प्रसाद, पंत, महादेवी, रामचन्द्र शुक्ल व कामायनी, आँसू, गोदान, मृगनयनी, सन्यासी आदि के विभिन्न पक्षों का प्रौढ़ विवेचन; मू० ७.५० ।
- **संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण**—(शोध प्रबन्ध) डा० मनमोहन सहगल, विशेषत: कबीर एवं गुरु नानक के दर्शन का विवेचन; मू० १२.५० ।
- **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं साहित्य**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; आचार्य द्विवेदी के निबन्ध-साहित्य, अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्मकथा, आदि पर विद्वानों के तीस लेख, मू० ७.००
- **हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास**—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त; आदिकाल से लेकर सन् १९६५ तक के सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक विवेचन; उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा २५००) रु० से पुरस्कृत; मू० २२.५० साधारण संस्करण १५.०० ।

सभी पुस्तकों पर विक्रेताओं को पर्याप्त कमीशन; पुस्तकालयों, अध्यापकों व विद्यार्थियों को 12½% F. O. R; पूरे विवरण के लिये लिखें—

भारतेन्दु-भवन, १०६ लोअर बाजार, शिमला--१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

[आलोचना मासिक]

भाग—२९ अङ्क—१२

सम्पादक
महेन्द्र

सहायक
कामतागुप्त 'कमलेश'

प्रबन्ध सम्पादक
कमलेन्दु जैन

जून—१९६८

मूल्य

आजीवन	१००.००
एक वर्ष का	६.००
दो वर्ष का	११.००
तीन वर्ष का	१५.००
एक अंक का	.६०

हमारी विचारधारा

लोक-साहित्य की ओर—

सभी भाषाओं में लोक-साहित्य है पर उसका बहुत महत्व होते हुए भी साहित्य महारथियों का ध्यान उसकी ओर बहुत कम जाता है। यही कारण है कि साहित्य की यह विधा बहुत उपेक्षित रही है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर जिस प्रकार पहली बार लिखने का प्रयास यूरोपीय विद्वानों ने किया उसी प्रकार लोक-साहित्य की ओर भी उनकी लेखनी ने ही हिन्दी वालों का ध्यान आकर्षित किया। आज तो हिन्दी की सभी बोलियों के लोक-साहित्य पर पुस्तकें निकल चुकी हैं और उसके शोध की ओर भी लोगों का बहुत ध्यान गया है पर इसका प्रारम्भ ब्रज के लोक-साहित्य से हुआ है जिसका सूत्रपात डा० सत्येन्द्र ने किया था। उनका ग्रन्थ 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' इस मार्ग में अग्रणी माना जाता है। अब तो राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली आदि सभी बोलियों में महत्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ निकल चुके हैं।

हमें प्रसन्नता है कि गुजराती साहित्यकारों और गुजरात सरकार का भी ध्यान इस ओर गया है। हाल ही में गुजरात सरकार ने गुजराती के दिग्गज विद्वानों की एक कमेटी का गठन किया है जो गुजराती के लोक-साहित्य का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन का प्रयत्न और प्रबन्ध करेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि गुजराती में दूहा, गर्बा आदि का इतना प्रचुर और सम्पन्न साहित्य है कि जब वह सब प्रकाश में आएगा तो पाठकों को आश्चर्यचकित रहना होगा। गुजरात सरकार ने लोक-साहित्य के इस कार्य को बल देने के लिए एक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया है जिसमें केवल लोक-साहित्य प्रकाशित होता है। इस पत्रिका का नाम 'लोक गुर्जरी' है। हम गुजरात सरकार का इस सबके लिए अभिनन्दन करते हैं और 'लोक-गुर्जरी' का स्वागत!

भाषा-विज्ञान की एक नई शोध संस्था—

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध वैयाकरण और भाषाशास्त्री स्व० पं० कामताप्रसाद गुरु की स्मृति चिरस्थायी करने के लिए जबलपुर में एक 'भाषा शोध प्रतिष्ठान' की स्थापना की गई है जिसको जबलपुर विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त हुई है। 'कामताप्रसाद गुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा भारती' इस संस्थान का नाम है और इसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं और प्रमुख विदेशी भाषाओं के शोधकों को सहायता प्रदान की जायगी। अभी तक ऐसी संस्था पूना में थी जो अपनी श्रेष्ठता के लिए सभी से प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिन्दी क्षेत्र में ऐसी ही एक संस्था माननीय क० मा० मुन्शी द्वारा आगरा विश्वविद्यालय के आधीन आगरा में खोली गई थी जिसमें स्व० श्री विश्वनाथप्रसादजी ने ध्वनिशास्त्र और भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए लाखों रुपये के यन्त्रादि संग्रह किये थे। ये यन्त्र आज भी विद्यमान हैं पर खेद है कि उनका सम्यक् उपयोग नहीं हो रहा है। जो संस्था देश के सभी अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार करने और वहां के विद्यार्थियों को हिन्दी की ऊँची से ऊँची शिक्षा देने के लिए खोली गई थी, जिसका विकास भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए किया गया, आज वहां न पहली बात का पता है न दूसरे काम पर जोर। ध्वनिशास्त्र के वे यन्त्र भी ज्यादातर सन्दूकों और आलमारियों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यह संस्था अब पाठ-शोधन का कार्य अधिक कर रही है या हिन्दी के एम० ए० निकाल रही है जो दूसरे कालेजों से ही बहुत काफी निकल रहे हैं। आगरा विश्वविद्यालय के अधिकारी और इस विद्यापीठ के डायरेक्टर आदरणीय डा० माताप्रसादजी गुप्त संस्था के पुनर्संगठन या उसके कार्यकलाप में आवश्यक संशोधन करके उसे अधिक उपयोगी संस्था बना सकें तो हिन्दी का बड़ा हित साधन होगा। अभी तो यह संस्था हिन्दी के नाम पर एक व्यर्थ का बोझ मात्र है।

साहित्य की खोज—

हिन्दी साहित्य में शोध कार्य जिस स्तर पर हो रहा है, वह परिमाण की दृष्टि से चाहे बहुत हो पर प्रामाणिकता की दृष्टि से ऊँचा नहीं कहा जा सकता। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आदि प्रदेशों में अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य में शोध का कार्य हो रहा है, पर जितना अच्छा कार्य राजस्थान में हो रहा है, उतना कहीं नहीं। जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर और जयपुर इस शोध के केन्द्र स्थल हैं। जोधपुर में राजस्थानी शोध संस्थान का कार्य तो बहुत ही उच्च कोटि का है। यहाँ से निकलने वाली शोध पत्रिका "परम्परा" के जो त्रैमासिक अङ्क निकलते हैं वे सब एक ग्रन्थ के ही रूप में होते हैं। हाल ही में परम्परा का जो नया अङ्क आया है वह राजस्थान में राजस्थानी साहित्य की खोज विषयक है। १७० सुमुद्रित पृष्ठों में इस अङ्क में इस गम्भीर विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। २० पृष्ठ की प्रस्तावना के बाद १०० पृष्ठों में श्री हरप्रसादजी शास्त्री ने इस विषय पर लिखा है। परिशिष्ट में नामानुक्रमणिका और शोध-कर्त्ताओं की सूची के अतिरिक्त ३० पृष्ठों में राजस्थानी में प्रकाशित पुस्तकों की सूची दी गई है। यह सूची बड़ी उपयोगी है और बड़े परिश्रम से तैयार की गई है। सूची पूर्ण है और उसमें कोई कमी नहीं है यह तो हम नहीं कह सकते, पर सूची को यथासंभव पूर्ण बनाने की पूरी चेष्टा की गई है। इस सूची में कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी कृत 'मेवाड़ का इतिहास' का नाम न देखकर आश्चर्य हुआ, कारण कुँवर साहब का यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध रह चुका है और आज भी उसका महत्त्व है। हिन्दी में इसके ७-८ संस्करण तो रघुवंशीजी के सामने ही निकल चुके थे। जयपुर से प्रकाशित हस्तलिखित जैन ग्रंथों की सूची जिसके मोटे-मोटे ४-५ भाग निकल चुके हैं, उसका नाम भी इस सूची में नहीं है। फिर भी इस सूची का बड़ा महत्त्व है। हम शोध-संस्थान के संचालकों को उनकी इस कृति के लिए बधाई देते हैं।

डा० सुमन कुलपति नियुक्त—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि तथा साहित्यकार डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन' विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति नियुक्त हुए हैं। यह पद स्वर्गीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निधन से रिक्त हुआ था। डा० सुमन उज्जैन के माधव कालेज में सर्व प्रथम हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए थे, कुछ वर्षों तक आप नेपाल में भारत के सांस्कृतिक प्रतिनिधि भी थे। तत्पश्चात् आप माधव कालेज के प्राचार्य नियुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। प्राचार्य पद सफलता से निवाहने के बाद अब आपने कुलपति पद ग्रहण किया है। आप ने इसके पूर्व कई देशों का भ्रमण भी किया है, मारीशिस आदि द्वीपों में हिन्दी प्रचार के लिए आपका कार्य बड़ा स्तुत्य है। अफ्रीका के कई देशों की सफल यात्रा के उपरान्त पुन: अपने देश में हिन्दी के उत्थान का कार्य करते हुए कुलपति पद पर बने रहना गौरव की बात है। मध्य प्रदेश सरकार ने हिन्दी के साहित्यकारों को विश्वविद्यालयों में कुलपति नियुक्त करने की जो परम्परा डाली है, वह एक प्रशंसनीय ही नहीं अपितु मार्ग प्रदर्शक भी है। इसको देखते हुए यह आशा की जाती है कि अन्य हिन्दी भाषी प्रदेश भी अपने विश्वविद्यालयों में हिन्दी के विद्वानों एवं साहित्यकारों को कुलपति सा उच्च पद देने की उदारता बरतेंगे। जिस दिन ऐसा होगा उस दिन हिन्दी की गति में एक नवीन मोड़ आने के साथ इतिहास का नवीन पृष्ठ भी खुल जाएगा।

डा० राजबली पाण्डेय कुलपति नियुक्त—

प्रसिद्ध भाषाविद् एवं शिक्षाशास्त्री तथा हिन्दी विद्वान् डा० राजबली पाण्डेय जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए हैं। यह स्थान भाषाविज्ञान मर्मज्ञ डा० धीरेन्द्र वर्मा के सेवा-मुक्त होने से रिक्त हुआ था। मध्यप्रदेश सरकार की यह परम्परा कि हिन्दी के विद्वानों को भी उच्च पद मिले, बड़ा ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है। हमारा निवेदन है कि अन्य राज्य सरकारें एवं केन्द्रीय सरकार भी हिन्दी विद्वानों की उपेक्षा न कर उनका समुचित समादर करें।

डा० पाण्डेय के कुलपति पद मिलने पर हमारी उनके लिए हार्दिक बधाई एवं शुभ कामनाएँ हैं तथा आशा और विश्वास है कि वे इस पद पर रह कर हिन्दी की उत्कृष्ट सेवा कर सकेंगे।

शिक्षा मनोवृत्ति एवं उसके परिणाम—

गत वर्ष जब से विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त की गई तब से इन विश्वविद्यालयों का परीक्षा परिणाम पिछले वर्षों की अपेक्षा अधिक ही नहीं सन्तोषजनक रहा। इन विश्वविद्यालयों में परीक्षाफल में उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या में २५ से ४० प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा विद्यार्थियों के मुरझाए चेहरे खिल उठे। गत अनेक वर्षों से अंग्रेजी क्या हमारे युवकों के लिए निराशा, असन्तोष, कुण्ठा और संत्रास का कारण नहीं बनी हुई थी? अपने परिवेश से भिन्न उन्हें ऐसे भाषा-परिवेश में जाने के लिए बाध्य किया जा रहा था, जो उनके विकास को अवरुद्ध करता जा रहा था। यह तो उसी प्रकार का प्रयास रहा, जैसे ओक का वृक्ष सारे भारत में लगाने की हठवादिता की जाए। यदि प्रकृति में आमूल परिवर्तन कर सकना सम्भव नहीं तो किसी देश के संस्कारों को बदल सकना भी क्या सम्भव होगा?

लोगों की धारणा है कि अंग्रेजी के बिना उत्तीर्ण छात्र का ज्ञान परिपक्व नहीं होता। इस प्रकार विभ्रम ही युवकों में हीनता, असन्तोष और विद्रोह की भावनाओं का सृजन करते हैं। न हम उन्हें २१ वर्ष की आजादी में अंग्रेजी का ज्ञान करा सके और न हमने उन्हें अपनी भाषा में ही पारंगत होने दिया। अपितु विद्यार्थियों में यह थोथा अहंकार अवश्य भर दिया जाता है कि उन्होंने अंग्रेजी माध्यम से अध्ययन किया है और अंग्रेजी पढ़ी है, अत: वे हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों से अधिक योग्य हैं। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि न तो उन्हें अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान होता है और न अन्य विषयों का और हिन्दी का ज्ञान तो होता ही नहीं। इस प्रकार उनका ज्ञान उनके समक्ष एक प्रश्न चिन्ह बना खड़ा रहता है। अपनी भाषा में दिया जाने वाला ज्ञान मात्रा में थोड़ा और स्तर में तनिक हल्का क्यों न हो, वह उनके जीवन का अंग बन जाता है।

वस्तुत: यह भ्रम है और कहा भी जाता है कि विषयों की सक्षम पुस्तकें हिन्दी में नहीं हैं, पर यह आरोप उन लोगों द्वारा लगाया जाता है जो हिन्दी की प्रगति से अनभिज्ञ हैं, जिन्होंने हिन्दी की पुस्तकें देखने का कभी प्रयास नहीं किया। यदि उन्हें हिन्दी की पुस्तकें दिखाई भी जायें तो वे यही कहेंगे कि हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ऐसे विषय पर लिखा ही नहीं जा सकता। ऐसे अज्ञानियों से आज देश की ज्ञान-जिज्ञासु पीढ़ी को बचाना है।

आज यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी में स्नातक स्तर की लगभग सभी विषयों की पुस्तकें उपलब्ध हैं। मानविकी के सभी विषयों में एक विषय पर एक नहीं अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। विज्ञान के विषयों पर भी पुस्तकें हैं किन्तु उनमें इतनी विविधता नहीं है क्योंकि अभी तक विज्ञान का अध्यापन स्नातक स्तर पर हिन्दी में नहीं हो रहा है। जब तक हिन्दी में विज्ञान का अध्यापन नहीं होगा, हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकें अनेक सरकारी प्रयासों के बावजूद भी निकल न सकेंगी, वे स्तरानुकूल नहीं बन सकेंगी क्योंकि बिना अध्यापन-अभ्यास के हिन्दी में विज्ञान के विषयों पर सफल लेखन न हो सकेगा और अपनी भाषा मे अपनी मिट्टी की गन्ध से ओत-प्रोत ज्ञान ही युवकों में अपने देश के प्रति कर्तव्य और निष्ठा की भावना जागृत कर सकता है।

शिक्षा के गिरते हुए स्तर के कारणों पर विचार किया जाए तो एक बहुत बड़ा कारण सामने आता है, वह है भाषा का अल्पज्ञान। भाषा वह पात्र है जिसमें उँडेला हुआ ज्ञान आकार ग्रहण करता है। अंग्रेजी को माध्यम बनाये रखने के लिए विश्वविद्यालयीय शिक्षा के आरम्भ से ही सामान्य अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती रही है। और अब जब हिन्दी को माध्यम बना दिया गया है, इस बात की आवश्यकता है कि सभी विद्यार्थियों के लिए सामान्य हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाए, इसके लिए पाठ्य-क्रम बनाया जाय ताकि विद्यार्थियों का भाषा-स्तर उन्नत हो और वे हिन्दी में लिखी गई विविध विषयों की पुस्तकें पढ़ तथा समझ सकें। जब तक हमारे शिक्षाविदों की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होगा तब तक हमारे देश की शिक्षा अपने लक्ष्य तक न पहुँच सकेगी।

साहित्य-सन्देश के विशेषाङ्क

जो अब अप्राप्य होते जा रहे हैं

१९५२	आलोचना अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५३	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५५	उपन्यास अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५६	नाटक अङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९५७	भाषा विज्ञान अङ्क (पुस्तक रूप में)	२॥)
१९५८	प्रगति विशेषाङ्क (विगत १० वर्ष का)	२)
१९५९	सन्त साहित्य अङ्क	२)
१९५९	ऐतिहासिक उपन्यास अङ्क	२)
१९६०	प्रगति अङ्क	२)
१९६०	रीति काव्यालोचनाङ्क	२)
१९६१	शोध विशेषाङ्क (अप्राप्य)	—
१९६१	निराला विशेषाङ्क ,,	—
१९६२	निबन्ध विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
१९६२	साहित्य शास्त्र विशेषाङ्क	२)
१९६३	रांगेय राघव अङ्क	२)
१९६३	शिवपूजन सहाय अङ्क	१)
१९६४	बाबू गुलाबराय अङ्क	२)
१९६४	वीर काव्य विशेषांक (अप्राप्य)	—
१९६५	द्विवेदी अङ्क	२)
१९६५	राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक	२)
१९६६	हरिऔध अङ्क	२)
१९६६	विद्यापति विशेषाङ्क	२)
१९६७	रत्नाकर विशेषाङ्क	२)
१९६७	बच्चन विशेषाङ्क	२)
	प्रसाद विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)
	कहानी विशेषाङ्क (पुस्तक रूप में)	५)

कम से कम २०) के आर्डर पर २५% कमीशन।

डाक व्यय पृथक्।

रेल से मँगाने पर व्यय कम होगा।

आर्डर के साथ ५) रुपया पेशगी भेजिए।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एको रसः करुण एव·····

● अर्जुनदास केसरी

काव्य में रस, काव्य का प्राण है। काव्य का, जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है अतः साहित्य में चित्त की वह वृत्ति जो आनन्द देती है, अथवा वह आनन्दात्मक चित्त-वृत्ति जो संचारी भावों को प्रकट करती है, रस है। काव्य में इनकी संख्या नौ मानी गई है—शृङ्गार, हास्य, वीर, रौद्र, करुण, शान्त, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत। अधिकतर आचार्य शृङ्गार को रसराज मानते हैं। कतिपय आचार्यों ने करुण को ही एक मात्र रस स्वीकारा है। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता तीनों को उपजीवी काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है। रामायण को आदि-काव्य तथा रामायण के रचयिता वाल्मीकि को आदि कवि माना गया है। कहा जाता है, वाल्मीकि का हृदय करुण से अत्यन्त स्निग्ध था। क्रौंच के द्वन्द्व को देखकर एकाएक उनके मुख से शाप के रूप में निम्नलिखित श्लोक निकल पड़ा था।

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती सभाः।
मत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

महर्षि वाल्मीकि के इस करुणामय हृदय को देखकर ब्रह्मा ने उन्हें रामायण लिखने के लिए कहा—

"ऋषे प्रवुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मानि। तदब्रूहि रामचरितं। अव्याहृत ज्योतिरषि ते चक्षुः प्रतिमाति माद्यःकविरसि।"

करुण का स्थायी भाव शोक है। यह शोक पहले ही से वाल्मीकि के हृदय में विद्यमान था। जिसके परिणामस्वरूप वह श्लोक निर्गत हुआ। कालिदास ने भी एक स्थान पर लिखा है—'श्लोकत्वं आगच्छत् यस्यशोकः।' आनन्दवर्द्धन ने इसीलिए करुण को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है—

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा यदि कवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगात्थः शोकःश्लोकत्वं आगमत् ॥

अन्य आचार्यों ने भी करुण के विषय में लिखा है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में करुण की उत्पत्ति रौद्र से मानी है—'रौद्रान्तु करुणो रसः'। धनंजय तथा विश्वनाथ ने इष्टनाश तथा अनिष्ट-प्राप्ति को ही इसका कारण माना है। विभवनाशः बध, बन्धन, इष्टजन-विप्रयोग तथा आपत्ति आदि विभावों के संयोग से इसकी उत्पत्ति होती है। अश्रु-पात, विलाप, वैवर्ण्य, निःश्वास, स्मृतिनाश आदि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, आवेग, मोह, श्रम, भय, व्याधि, जड़ता, उन्माद, आदि—इसके संचारी भाव हैं। ये लक्षण शृङ्गार में भी पाये जाते हैं। शृङ्गार का स्थायीभाव रति है। करुण के मूल में "राग या रति, किसी न किसी रूप में विद्यमान मिलता है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने शृङ्गार को करुण के ही अन्तर्गत माना है। विप्रलम्भशृंगार करुण के सबसे अधिक निकट है। दोनों में प्रियजन-विप्रयोग के कारण उत्पन्न आत्मिक क्लेश अथवा दुःखात्मक अनुभूति होती है। भरत ने करुण को निरपेक्ष और विप्रलम्भ को सापेक्ष कहकर दोनों में अन्तर बतलाया है—

करुणस्तु—निरपेक्ष-भाव औत्सुक्यचिन्ता समुत्थः।
सापेक्षभावों विप्रलम्भकृतः।
एवं अन्यः करुणः अन्यश्च विप्रलम्भः। ६:४५

आचार्यों ने अन्य रसों का सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप में करुण से ही माना है। करुण की अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूति मानवेतर प्राणी भी करते हैं। पशु-पक्षी भी प्रियजन का वियोग होने पर दुःखी होते हैं। शकुन्तला की विदाई के समय मृग-शावक ने उसका आँचल पकड़ लिया था। कृष्ण के मथुरा जाते समय शोक के कारण गायों ने अपने बछड़ों को दूध पिलाना बन्द कर दिया था। लता-कुञ्ज, यमुना-तरंग प्रभाहीन हो गई थीं, राम का विलाप सुनकर पत्थर अथवा वज्र का हृदय भी रोने लगा था। इसका कारण करुण ही तो है।

भारतीय परम्परा में करुण के महत्व को तो स्वीकारा ही गया है, पाश्चात्य काव्य-परम्परा में भी करुण को महत्त्व दिया गया है। पाश्चात्य नाटक दुःखान्त होते हैं। दुःख करुण का मूल है। शेक्सपियर के नाटकों में करुण की प्रधानता है। पाश्चात्य विद्वान बूचर ने कारुणिक स्थलों को भावात्मकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है।

रस का प्रतिपाद्य आनन्द होता है इसकी अनुभूति कवि को प्रथमतः होती है, जिसे वह काव्य के माध्यम से पाठकों या दर्शकों तक पहुँचाने में समर्थ होता है। पाठक कोई भी रचना तभी पढ़ता है जब उसमें उसे रस मिलता है। यह रस क्या है—एक प्रकार का अव्यक्त आनन्द। इसीलिए इसे ब्रह्मानन्द सहोदर—'काव्यानन्द रसास्वाद ब्रह्मानन्द सहोदरः' कहा गया है। यह रस वही ब्रह्म है—'रसो वै सः' सहृदय पाठक भी इसका आनन्द ले पाता है। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है—

करुणादावपि रंस जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्रं केवलम्॥

वाल्मीकि रामायण के राम-वन-गमन, सीता-हरण लक्ष्मण-शक्ति आदि स्थलों को पढ़ते ही पाठक द्रवित हो उठता है। लक्ष्मण शक्ति के समय राम दुःखी होने और कहते हैं—'हर देश में स्त्री, बन्धु बान्धव मिल सकते हैं किन्तु मैं उस देश को नहीं देखता जहाँ अपना सहोदर भ्राता मिल जाय।'

देशे-देशे कलत्राणि, देशे-देशे च बान्धवाः।
तत्र देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

हर कविता का जन्म वेदना से होता है। इस तथ्य को भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकारा है। कीट्स ने स्पष्टतः लिखा—'हमारे सबसे मधुर संगीत वे ही हैं जो सबसे अधिक दुखात्मक अनुभूतियों को जन्म देते हैं। कवि पंत ने भी लिखा—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥

संस्कृत काव्य परम्परा में करुण का सर्वश्रेष्ठ कवि भवभूति को माना जाता है। उत्तर रामचरितम्, उनका प्रसिद्ध नाटक है, जिसमें राम के वियोग को देख कर और सुनकर बज्र का हृदय भी विदीर्ण हो उठता है। सारा वातावरण करुणार्द्र हो जाता है। प्रकृति के कण-कण में विरह-वेदना छाई हुई दिखलाई पड़ती है। जानकी पर जनापवाद की बात सुनते ही लगता है, बज्र-पात हो गया—आहअतिब्रोय वाग्वज्रः।

लोक मर्यादा के लिए राम जानकी का त्याग कर देते हैं, लगता है बलि दी जा रही हो। राम इतने दुखी हैं कि जब वे मूर्छित हो जाते हैं तो सीता उन्हें संज्ञायुक्त करती हैं। उनका हृदय विरह-ताप से फट जाना चाहता है, पर दो टुकड़े नहीं हो पाता। मूर्छित होने पर भी संज्ञा बनी रहती है, सन्ताप शरीर को जलाता तो है, पर भस्म नहीं कर पाता, क्रूर विधाता मर्मस्थल पर प्रहार कर भी जीवन का अन्त नहीं कर देता—

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधानन्तु भिद्यते
बहति विकलःकामो मोहं न मुञ्चति चेतषाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दहिः करोति न भस्मसात्
प्रहरतिविधिमंमच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥ ३:३१

काव्य जगत में करुण की स्थापना का सर्वप्रथम श्रेय भवभूति को ही है। अपने-काव्य में इनका प्रतिपादन कर उन्होंने व्यावहारिक रूप से यह दर्शा दिया कि करुण ही रसों का राजा है। उनके नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक किसी न किसी रूप में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। प्रायः सभी पात्र विषाद, दुःख, करुणा में ही निमग्न दिखलाई पड़ते हैं। प्रायः सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य मर्मज्ञों ने भवभूति के करुणरस की प्रशंसा की है। किसी ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—

"कारुण्यं भवभूतिवेव तनुते।"

गोवर्धनाचार्य ने भी भवभूति के करुण रस की प्रशंसा की है—

भवभूतेः सम्बन्धात् मधुरमुखे भारती भाति।
एतत्कृत कारुण्ये किमन्यथा रोदितिग्रवा ।। १:३६

नाटक का आरम्भ राम द्वारा सीता को आश्वासन करुण द्वारा किया गया है। चित्र दर्शन कवि की एक नवीन सूझ-बूझ एवं अद्वितीय कल्पना शक्ति का परिणाम है जो करुणा की भावना से ओत-प्रोत है। दण्डकारण्य एवं पञ्चवटी का वर्णन द्वितीय अङ्क में किया गया है। राम को सीता के साथ विहार की स्मृति हो आती है जिससे उनका शोक द्विगुणित हो उठता है। असह्य वेदना में कहते हैं—"बहुत समय के पश्चात् वेग के साथ आरम्भ होने वाले और शरीर में फैलते हुए अति उग्र विषरस के समान किसी भी कारण से, जोर से हिले हुए वाणाग्र भाग के खण्ड के समान तथा उगे हुए ग्रन्थि वाले (अर्थात भरे हुए) किन्तु फिर फूटे हृदय के फोड़े के समान, प्रगाढ़ शोक मुझे विह्वल बना रहा है। मुझे चेतना शून्य कर रहा है।

चिराद्वेगारम्भी प्रसृतइव तीव्रां विषरसः
कुतश्चित् संवेगात्प्रचलतइवशल्यान्यशकलः।
प्रणो रूढ़ग्रन्थी स्फुटित इव छन्मर्मणि पुनः
घनी भूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयतिच ।।२:२६

तीसरा अंक तो करुण के लिए प्रसिद्ध है ही। जैसे हृदय में तिरछा घुसा हुआ, जलता हुआ कोई काष्ठखण्ड अथवा विषैला दाँत दुःखद होता है, उसी तरह हृदय को विदीर्ण करने वाला यह शोक सन्ताप राम के लिए दुःसह हो गया है। (३ : ३५) इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में जनक का विलाप हृदय विदारक है। पाँचवें में भाई-भाई में युद्ध भी कारुणिक ही है। षष्ठ में पुनः राम को जानकी की स्मृति कष्टकारक हो जाती है। सातवें अङ्क में, राम-सीता का मिलन होता है तथापि करुणोत्पादक ही है। राम बारबार मूर्छित हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि प्रारम्भ से अन्त तक उत्तर रामचरित करुण रस से ही आप्लावित है। पाठक भाव-विभोर होता तथा उसकी अनुभूति में अश्रुमोचन के लिए बाध्य हो जाता है। डा० गंगासागर राय ने लिखा है—महाकवि ने ऐसे उदात्त चरित्र का इसमें चित्रण किया है कि उसकी करुणा में दर्शक की रागात्मिका वृत्ति का तादात्म्य सदा बना रहता है। इसकी करुणा एक स्थायी छाप छोड़ती है, जिसमें कवि, पात्र, दर्शक, पाठक और श्रोता सभी समभावेन निमग्न हो जाते हैं। यह कवि का परम साफल्य है। प्रथम अङ्क के चित्रदर्शक प्रसंग में लक्ष्मण चित्र में सीताहरण के वृतान्त को देखकर राम से कहते हैं कि – वह कितना कष्टकर एवं करुणाजनक था कि रावण से बदला लिए जाने पर भी इतना कष्टप्रद हो रहा है। इसे देख कर वज्र सा कठोर हृदय भी रोने लगता है—

अथेदं रक्षोमिः कनक हरिणच्छद्म विधिना
तथा वृतं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकल करणैरार्य चरितै—
रपिग्रावा रोदित्यापि दलति वज्रस्य हृदयम् ।।
१ : २६

करुण का काव्य के हृदय पक्ष से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भौतिक जगत का प्राणी शृङ्गार प्रधान काव्य की ओर आकृष्ट होता है, वीरोचित भावना का व्यक्ति काव्य में वीर रस ढूढ़ता है, इसी प्रकार अन्य रसों के पाठक भी भिन्न-भिन्न रुचि के होते हैं, तथापि करुण सर्वव्याप्त है। सामाजिक प्राणियों के अतिरिक्त ऋषियों महर्षियों, योगियों, सन्यासियों में भी करुण की अजस्रधारा प्रवाहित होती हुई दिखलाई पड़ती है। कारुणिक हृदय हृदयहीन व्यक्तियों में भी रस का संचार कर तन्मय बना देता है, मनुष्य संवेदनशील हो जाता है। राम को देख कर सीता के मूर्च्छित होने पर तमसा आश्वासन देती हुई कहती है—"एक ही करुण रस बिभावादि निमित्तों के भेदों से भिन्न होता हुआ मानो (शृङ्गारादि के रूप में प्रतीत होने वाले) अलग-अलग अवास्तविक परिणामों (विवर्तों) का आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, जैसे एक (अभिन्न) जल ही (वायु क्षोभादि के निमित्तभेद से) भँवर, बुदबुद तथा तरंग रूप विकारों (परिवर्तनों) का आश्रय होता है, परन्तु वह सब वास्तव में जल ही है—

एको रसः करुण एव निमित्तिभेदा—
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रते विवर्तान् ।
आवर्तबुदबुद गरंगमयान्विकारा—
नम्भोयथा सलिल मेवतु तत्समग्रम् ॥ ३ : ४७

भवभूति का यही कथ्य एवं प्रतिपाद्य है। इसी सत्य की स्थापना काव्य-रचना का चरम उद्देश्य है तथा इसमें कवि को पूरी-पूरी सफलता भी मिली है। इसीलिए भवभूति कालिदास की पंक्ति में खड़े होने के अधिकारी घोषित किये गये हैं।

तात्पर्य यह कि रामायण, महाभारत, भगद्वगीता से लेकर अब तक जो भी साहित्य लिखा गया है, करुणारहित नहीं है। महाभारत में युद्धोपरान्त, स्थिति अत्यन्त कारुणिक है। गीता में अर्जुन की युद्ध से अनिच्छा तथा कृष्ण का उपदेश भी करुणा से शून्य नहीं कहा जा सकता। संस्कृत के अन्य कवियों में भी करुण रस विद्यमान है। यही परम्परा हिन्दी में भी आई। हिन्दी साहित्याकाश के तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी, पद्माकर तथा आधुनिक काल के गुप्त, हरिऔध, रत्नाकर, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि कवियों की रचनाएँ करुण प्रधान हैं। मानस तो वाल्मीकि से प्रभावित है ही। सूर का गोपी-विरह मार्मिक है जिसमें करुणा की ऐसी धारा प्रवाहित होती है कि सम्पूर्ण व्रज उसमें बह जाना चाहता है। प्रसाद का आँसू करुणा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, पीड़ा की बरसास हुई जाती है।

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥

महादेवी तो जीवन को विरह का जलजात मानती हैं—

जीवन विरह का जलजात
वेदना में जन्म, करुणा में भरा आवास।

'अरिऔध' का प्रियप्रवास तो करुणा से ही आरम्भ होता है और करुणा में ही उसका अवसान हो जाता है। कवि कहता है—कष्ट की भी एक सीमा होती है, प्राणी उसे कब तक सहता रहेगा।

कोई प्राणी कब तक भला खिन्न होता रहेगा।
ढालेगा अश्रु कब तक, क्यों थाम टूटा कलेजा॥

आज के युग में तो करुणा को और भी अधिक महत्व प्राप्त होता जा रहा है। समाज में व्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, कलह, असमानता आदि दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए तदनुकूल काव्य-सृजन की अतीव आवश्यकता है। सच्ची मानवता की स्थापना बिना करुणा के कैसे सम्भव है? अतः साहित्यकार को अपना दायित्व निभाना ही होगा। बिना करुणा के सारा सृजन चेतना-हीन तथा निष्प्राण है। अतः करुण ही काव्य की आत्मा है।

—राबर्टसगंज, मिर्जापुर (उ० प्र०)

"मानव जाति ने जो सोचा, समझा और पाया है,
वह पुस्तकों के जादू भरे पृष्ठों में बन्द है;
उन पृष्ठों को खोलिये और संसार
भर का ज्ञान प्राप्त कीजिये"

आज ही अपनी मन पसन्द की पुस्तकें मंगायें—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में संकरता

◈ कु० [illegible]रन मुकर्जी

जातीय मिश्रण के साथ भाषायी मिश्रण भी एक स्वाभाविक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। अतः जब दो भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति आपस में विचार विनिमय करते हैं तो एक दूसरे की भाषा से भी अवश्य प्रभावित होते हैं। फल यह होता है कि कोई भी भाषा अपने आदि विशुद्ध रूप में नहीं रह पाती। इस प्रकार जब एक भाषा दूसरी को प्रभावित करके दोनों एक दूसरे के तत्वों को अपने में कुछ अंशों तक समाहित कर लेती हैं तब यह प्रक्रिया भाषायी मिश्रण या भाषायी संकरता कहलाती है। भाषायी मिश्रण के प्रमुख कारणों में राजनैतिक विजय, व्यवसायिक घनिष्ठता, विशिष्ट भाषा-भाषी की सांस्कृतिक उच्चता, किसी भाषा में उच्च साहित्य का अस्तित्व आदि को लिया जा सकता है। भाषा की प्रकृति ही ग्रहणशील है इसी कारण विश्व की सभी भाषाओं में कुछ अंश तक विदेशी तत्व रहते हैं। यहाँ तक कि प्राचीन श्रेण्य भाषाओं में भी विदेशी तत्व मिल जाते हैं। आधुनिक भाषाओं में तो विदेशी तत्वों का पाया जाना पूर्णतः स्वाभाविक ही है। यहाँ विदेशी शब्द के तात्पर्य को स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा। भाषाशास्त्र की दृष्टि से विदेशी भाषा से तात्पर्य देश के बाहर की भाषा ही नहीं वरन किसी भाषा-क्षेत्र के बाहर की भाषा से भी है। कोई भाषा जिसको कि हम अध्ययन का आधार बनाते हैं उससे इतर भाषा ही विदेशी कहलायेगी। अंग्रेजी के लिए जर्मन, फ्रेंच और हिन्दी के लिए गुजराती, बंगला, मराठी, आदि भाषायें विदेशी ही हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक का स्वतन्त्र अस्तित्व है, व्याकरण मूलाधार आदि भिन्न हैं।

किसी भाषा में संकर शब्द के अस्तित्व का सबसे बड़ा कारण यह भाषायी मिश्रण ही होता है। "शब्द समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आदि विशुद्ध रूप में आज तक चली आ रही है। भाषा के माध्यम की सहायता से दो व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं अतः भाषा का मिश्रित होना उसका स्वभाव ही समझना चाहिए।"[1] कभी-कभी किसी भाषा के शब्द-भण्डार में कुछ ऐसे शब्द भी मिल जाते हैं जिनकी रचना में आधा तत्व विदेशी रहता है और आधा तत्व अपनी भाषा का। ऐसे शब्दों को हम किसी एक निश्चित भाषा का नहीं कह सकते। इनमें दो भाषाओं के तत्व मिले होते हैं। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में ऐसे शब्दों का अस्तित्व है। जब दो भिन्न भाषाओं के कुछ ऐसे तत्व मिला कर एक नवीन शब्द की रचना की जाती है तो ऐसे शब्दों को संकर शब्द कहा जाता है। संकर शब्द दो भिन्न भाषा के शब्दों से मिला होता है और प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है अतः संकर शब्द विभिन्न संस्कृतियों से मिले हुए होते हैं। शब्द रचना में संकरता का महत्वपूर्ण योगदान है। इससे न जाने कितने नवीन शब्दों की रचना की जा सकती है। अंग्रेजी में संकर शब्द को hybrid words कहा जाता है। अंग्रेजी शब्द भण्डार में भी अनेक संकर शब्द हैं। प्रसिद्ध यूरोपीय भाषाशास्त्री

[1] हिन्दी भाषा और लिपि—डा० धीरेन्द्र वर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरियोपाई ने संकर शब्द की परिभाषा करते हुए कहा है—"वह शब्द जो दो या अधिक भाषा तत्व से मिलकर बना हो, संकर शब्द है। उदाहरणस्वरूप oûtomobile शब्द जो कि ग्रीक outos से और लैटिन mobilis से मिलकर बना है।"[१]

निष्कर्ष यही निकलता है कि जब दो या अधिक भाषा तत्व मिलकर किसी एक शब्द की रचना करते हैं तो शब्द संकर कहलाता है। इस प्रकार की रचना प्रक्रिया या प्रविधि को शब्द रचना में संकरता का नाम दिया जा सकता है।

आजकल हिन्दी पारिभाषिक शब्दों की रचना में संकरता का महत्व सबसे अधिक है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक, तकनीकी, कृषिशास्त्रीय, पारिभाषिक शब्दकोषों में शब्दों की रचना संकर शब्दों के द्वारा बहुत अधिक मात्रा में होती है।

पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हिन्दी के लिए एक बृहत् समस्या है। चूँकि हिन्दी अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की भाँति वियोगात्मक अधिक है, संश्लिष्टात्मक कम, अतः इसमें प्रायः पारिभाषिक शब्दों की कमी है। किन्तु इस क्षेत्र में आज शब्दों की सबसे अधिक आवश्यकता है। हिन्दी आज राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने के साथ ही साथ उत्तर भारत में समस्त शिक्षा का माध्यम भी है अतः हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों को प्रायः गढ़ लिया गया है। पारिभाषिक शब्द प्रायः भाषाओं से शब्द उधार लेकर निर्मित किये जाते हैं। अंग्रेजी में ग्रीक लैटिन से शब्द लेकर पारिभाषिक शब्द बनाये गये हैं। विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में ऐसे असंख्य शब्द होते हैं जो या तो श्रेण्य भाषाओं से व्युत्पन्न होते हैं या उनके आधार पर बने होते हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक शब्दावली में व्यक्तियों और स्थानों के नाम पर आधारित अनेक शब्द भी होते हैं। अतः वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए प्रायः संस्कृत, ग्रीक लैटिन या अंग्रेजी जैसी भाषाओं से एक तत्व लेकर एक हिन्दी तत्व के सम्मिश्रण से, वर्तमान समय में हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की रचना हो रही है। फलतः हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में संकरता सबसे अधिक होती है। यह एक स्वाभाविक और साधारण सी बात है कि जब आधुनिक विज्ञान का विकास मूलतः भारत में ही नहीं वरन् पश्चिमी देशों में हुआ है अतः उन देशों में प्रचलित भाषाओं के शब्द ही वैज्ञानिक शब्दावली के लिये अधिक प्रचलित होंगे। किन्तु हिन्दी में जब इसकी आवश्यकता अनुभव हुई तो प्रायः अधिकांश पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण संकर शब्दों में ही किया गया। यद्यपि डा० रघुवीर आदि विशुद्धतावादियों ने संस्कृत को आधार बना कर पारिभाषिक शब्दावली बनाई है जिसमें संकरता लगभग नहीं है परन्तु वनस्पति-विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगोल, भू विज्ञान, गणित, नैतिक, प्राणिविज्ञान आदि की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण प्रायः संकर शब्दों में ही होता है। केन्द्रीय निदेशालय, शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा निर्मित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत विज्ञान शब्दावली कोश में इसी बात को स्पष्टतः स्वीकार किया गया है।[१] उदाहरण के लिए कुछ कोटि के पारिभाषिक शब्दों को लिया जा सकता है जिसमें संकरता है यह शब्द उपर्युक्त विज्ञान शब्दावली से गृहीत हैं। साथ ही उनका अंग्रेजी पर्याय भी दे दिया जा रहा है—

१ A dictionary of linguistics, mario A Pei, Frank Gaynor.

१ Hybrid from in scientific terminologies e. g. अमनीयकरण for ionization वोलटता for Voltage वत्य स्टैंड for ringstand साबुनीकारक for saponifierete are normal and natural linguistic phenomena and that such forms may be adopted in practice keeping in view the reqirements of the scientific Terminology, viz simplicity, utility and precision.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक शब्द	भाषा	अंग्रेजी रूप	शास्त्र
एब्ड्यूसेन्स तंत्रिका	अंग्रेजी + संस्कृत	Abducentnerve	Med.
फसर ऋण	फारसी + संस्कृत	Absent debtor	Law
अन्तर्बयी बैंकिंग कम्पनी	संस्कृत + अंग्रेजी	Absorbing Banking Company	Bank.
सैनिक एकेडेमी	संस्कृत + अंग्रेजी	Academy Military	
विनाइट्रीकरण	हिन्दी + अंग्रेजी + संस्कृत	Denitration	Chem.
ब्राउनीगति	अंग्रेजी + हिन्दी	Brownian motion	,,
दीर्घ क्रिस्टलाणु	संस्कृत + अंग्रेजी + संस्कृत	Longulite	
आक्सीकरण	अंग्रेजी + संस्कृत	Oxidation	
आक्सीकारक	अंग्रेजी + संस्कृत	Oxidant	
जन्मदर	हिन्दी + फारसी	Birth-rate	
समय दर	हिन्दी + फारसी	Time-rate	

इस प्रकार हिन्दी में अनेक पारिभाषिक शब्द पाये जाते हैं जो कि विभिन्न भाषाओं से मिलकर बने होते हैं इस प्रकार के शब्दों में संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द अधिक मात्रा में होते हैं और हिन्दी के साथ उनका सम्मिश्रण कर हिन्दीकरण कर लिया जाता है और नवीन शब्द की सृष्टि की जाती है। हिन्दी में यद्यपि पारिभाषिक शब्द समूह का अभाव था इसमें भी संस्कृत का पर्याप्त आश्रय लिया गया है किन्तु अब हिन्दी में अंग्रेजी + हिन्दी, फारसी + हिन्दी, फारसी, अंग्रेजी आदि संकर शब्दों के द्वारा पारिभाषिक शब्द रचना की जा रही है जो कि हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है।

तितली बम (Butterfly bomb), खरीदार हड़ताल (Byer's strike) आदि शब्दों में अंग्रेजी + हिन्दी, फारसी + गुजराती शब्दों का सम्मिश्रण है। इसी प्रकार Cabin man के लिए केबिनवाला, Call officc के लिए टेलीफोन घर, Jodination के लिए आयोडिनीकरण जैसे शब्द हिन्दी में बहुत अधिक प्रचलित हो गये हैं और हिन्दी की पारिभाषिक शब्द-कोष के शब्दों की संख्या में दिन प्रतिदिन समृद्धि कर रहे हैं।

इस प्रकार पारिभाषिक शब्द रचना की समस्या को सुलझाने में हिन्दी में संकर शब्दों का स्थान पर्याप्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि कभी-कभी सुबोधता की दृष्टि से संकर पारिभाषिक शब्द कठिन ठहरते हैं, किन्तु जब यह अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने लगेंगे तो प्रयोगकर्ता को यह भी सरल प्रतीत होने लगेंगे। हिन्दी के परिभाषिक शब्दों को कई भागों में बाँटा जा सकता है। बोमिनीकरण शब्द में प्रकृति अंग्रेजी की है प्रत्यय संस्कृत का। इसी प्रकार अतिक्लोरीनीकरण शब्द में भी हिन्दी का प्रत्यय अंग्रेजी की प्रकृति और संस्कृत का प्रत्यय मिश्रित है अत: ऐसे शब्द यौगिक शब्द रचना के अन्तर्गत आते हैं। 'शाखा डाकघर' शब्द में भी अंग्रेजी-हिन्दी और हिन्दी के तीन स्वतन्त्र शब्द हैं। 'वायलर रक्षा वाल्व' इस शब्द में भी अंग्रेजी-हिन्दी और अंग्रेजी के तीन स्वतन्त्र शब्द मिले हुए हैं अत: यह दोनों शब्द सामासिक कहे जा सकते हैं। प्रयोग की दृष्टि से कृषि-पारिभाषिक शब्द, विज्ञान-पारिभाषिक शब्द हिन्दी में पाये जाते हैं। अत: हिन्दी में पारिभाषिक शब्द रचना के क्षेत्र में संकरता का चमत्कार दृष्टव्य है।

—द्वारा श्री जी० सी मुकर्जी,
स्वामीबाग, आगरा-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीति-काव्य का तात्विक विवेचन

• कु० मंजु

संगीत की स्वरलहरियों के आरोह-अवरोह पर कविता के कमनीय चरण जब नृत्य करने लगते हैं तब 'गीत' का उद्‌भव होता है, कवि की भावानुभूतियों की सौन्दर्य-भागीरथी में जब संगीत की मधुर कालिन्दी आ मिलती है तब 'गीत' का उदय होता है एवं संगीत और कविता का कवि के अन्तस्तल की पुनीत वेदी पर जब परिणय होता है तब 'गीत' का जन्म होता है। "उस गीति मुक्तक का जो काव्य की ऊंची-ऊँची हिमालय श्रेणियों के बीच में एक सजल कोमल मेघखण्ड है जो न उनसे दबकर टूटता है और न बँधकर रुकता है, प्रत्युत हर किरण से रंगस्नात होकर उन्नत चोटियों का शृंगार कर आता है और हर झोके पर उड़-उड़कर उस विशालता के कोने-कोने में अपने स्पन्दन पहुँचाता है।" संसार के भावों को व्यक्त करने वाले कवि की वाणी जब उसके अपने हृदय की अभिव्यक्ति करने लगती है, कवि जब अपने हृदयस्थ सागर मन्थन को भावाकुल स्वरों में बाँध पाता है तभी उसकी कविता 'गीत' संज्ञा को धारण कर गीति-काव्य बन जाती है।

आधुनिक गीतों के लिए 'गीतिकाव्य' शब्द का प्रयोग नितान्त नवीन है। 'गीतिकाव्य' 'लिरिक' (lyric) के तत्त्वबोध के लिये निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूत आधार 'गीत' अथवा 'गीतकाव्य' है।···पाश्चात्य साहित्य की 'लिरिक पोइट्री' के लिए हिन्दी में गीति-काव्य शब्द रूढ़ हो चला है, यद्यपि अब भी कुछ लोग इसके लिए 'गीत-काव्य', 'प्रगीत मुक्तक' और 'प्रगीतकाव्य' शब्दों का भी व्यवहार करते हैं। परन्तु गीत (song) शब्द 'लिरिक' के पूर्व रूप और उसके एक भेद के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि उसका यही अर्थ हमारी भाषाओं में प्राचीन काल से चला आया है, अतः गीतकाव्य नाम भ्रामक है। 'लिरिक' का एक बाह्य लक्षण उसकी पूर्वापर प्रसंग निरपेक्षता अवश्य है और इस कारण वह मुक्तक के अन्तर्गत आ जाता है, परन्तु मुक्तक नाम से हम जिस काव्यरूप को जानने के अभ्यस्त हो गये हैं, उसकी प्रकृति और रूपरचना दोनों लिरिक से भिन्न हैं, अतः उसे मुक्तक के एक भेद के रूप में मानना उसकी महत्ता को घटाना है। प्रगीत भी गीति की तरह नव निर्मित शब्द है, परन्तु उसकी अपेक्षा गीति शब्द में अधिक [illegible]करता जान पड़ती है।······कहीं-कहीं लिरिक का शाब्दिक अनुवाद 'वैणिक' भी देखने में आता है, परन्तु 'लायर' से व्युत्पन्न लिरिक ने जाने कब का उस वाद्ययन्त्र से अपना नाता सदा के लिये छोड़कर कहीं अधिक व्यापक अर्थ में रूढ़ हो गया है। तब वीणा पर लायर के अर्थ का आरोप करके उससे वैणिक शब्द गढ़ना हास्यास्पद सा है। अतः लिरिक के लिये गीति शब्द सबसे अधिक उपयुक्त है। इसी कारण उसका चलन भी अधिक व्यापक हो रहा है।[1] रामखेलावन पाण्डेय एवं डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उपर्युक्त मत के विपरीत डा० गणेश खरे, कमलाकान्त पाठक, लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' आदि 'लिरिक' के पर्याय रूप में गीति शब्द की अपेक्षा 'प्रगीत' शब्द को ही अधिक

[1] हिन्दी साहित्य कोश (भाग १), पृष्ठ २८८-२९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त मानते हैं।[१]

'गीति' का प्रयोग अति प्राचीन है और नाट्य-शास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं—'गीत शब्दितगानयोः' (हेमचन्द्र) और 'गीतं गानमिये समे[२]।' गीतिकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'कविता-कुसुम-माला' (प्रथम संस्करण, जून १९०९) की भूमिका में किया और 'पाठकों से निवेदन' के अन्तर्गत लिखा कि काव्य के तीन प्रकार हैं—गीति-काव्य, श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य। गीतिकाव्य गीत शैली का नव्यतम विकास है। गीत और गीतिकाव्य का विकास लोकगीतों से हुआ है[३]। भारतीय गीति धारा के क्रमिक एवं तात्विक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि संगीत तत्त्व गीतों से सदैव अविच्छिन्न रहा किन्तु वह क्रमशः गौण अवश्य होता गया और काव्यत्व की मात्रा उसी अनुपात में बढ़ती गयी, अतः गीत गीतिकाव्य होते गये। गेयपदों में संगीत तत्त्व प्रधान है, गीत में संगीत और काव्यत्व की शास्त्रीयता का संतुलन तथा गीतिकाव्य में संगीत तत्त्व से काव्योत्कर्ष को अधिक प्रधानता मिलने लगती है।

यद्यपि गीतों की समृद्ध परम्परा का प्रवर्तन हमारे यहाँ ऋग्वेद से ही मिलता है तथापि आधुनिक गीति-काव्य पाश्चात्य काव्य विधान 'लिरिक' (Lyric) का उपजीवी है; पश्चिम में काव्य का विभाजन करते हुए जिस अन्तर्वृत्ति निरूपक अथवा स्वानुभूति निरूपक काव्य का एक और संकेत किया गया उसीके अन्तर्गत अंग्रेजी का 'लिरिक' जिसे हम गीतिकाव्य का पर्याय देते हैं, परिगणित हुआ[१]। पश्चिमी विचारकों के अनुसार गीतिकाव्य कवि के अन्तर्जगत् के नाना व्यापारों को बाहर प्रकट करने का सफल माध्यम है। इसके निर्माण की प्रेरणा कवि को अपने अन्तर्मन से मिलती है अतः उसमें भावात्मकता अपेक्षाकृत अधिक निहित रहती है। कवि हृदय की उर्वरा भावभूमि से उत्पन्न होने के कारण स्वभावतः उसका सम्बन्ध मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय से अधिक होता है। इसी भाव प्रधानता के कारण गीतिकाव्य, काव्य के अन्त-र्वृत्ति निरूपक वर्ग में परिगणित किया जाता है। इसलिए नहीं कि गीतिकार का बाह्य जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार जब महाकाव्य को बाह्यार्थ निरूपिणी कविता के अन्तर्गत रखते हैं तो उसका आशय यह कदापि नहीं होता कि कवि उसमें स्वानुभूति का निरूपण नहीं करता। दोनों प्रकारों में स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना प्रायः सभी विद्वानों को

[१] 'छायावादी गीतिकाव्य को भक्तिकाल के पद-साहित्य से पृथक करने के लिये प्रधानतः गीत को 'प्र' (विशेष) उपसर्ग से संयुक्त किया गया।

—आधुनिक हिन्दी काव्य (भाग २) : कमलाकांत पाठक, परिशिष्ट पृ० १, खड़ी बोली को अपनाने के पश्चात् हमारे कवि सूर, तुलसी और मीरा की गीति पद्धति से विरक्त हो गये। अब जो गीतियां लिखी जाने लगीं उन्हें प्रगीतियाँ (lyrics) कहना ही समुचित होगा।

—'गीतिकाव्य का विकास' : लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', पृष्ठ ४५२।

[२] अमरकोश, १-६-२६।

[३] "किसी राष्ट्र अथवा जाति के इतिहास में लोक-गीतों का एक सांस्कृतिक महत्त्व है जिसमें मानवता के पंख विकसित होते हैं। इन गीतों के बारे में साधा-रण जन की चेतना की झंकार की झाँकी मिलती है। लोकगीत जनपदीय होते हैं, जन जीवन को आधार और जब कभी हमारी कविताएँ जड़, पंकिल और बोझिल हो जाती हैं, उस समय युगस्रष्टा साहित्यकार जनपदीय लोकगीतों की स्फूर्तिदायक औषधि दे कर कविता से नव चेतना का संचार कर संजीवन देता है। अतः लोकगीत जन-जीवन के प्राण हैं और साहित्यिक गीतों की शक्ति हैं।

—हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना : प्रो० राजाराम रस्तोगी, पृ० १५९।

[१] 'An Introduction to the study of Literature'. —W. H. Hudson, P. 126.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिन प्रतीत हुआ है[१]। वस्तुतः स्वानुभूतिपरक कविता में हम यह देखते हैं कि कवि ने अपनी अनुभूति की व्यञ्जना किस शैली में की है। गीति काव्य में कवि जब अपना अन्तःस्थल खोलकर रखता है तब भावनाएँ केवल उसी की होकर व्यक्त होती हैं, यहाँ उसका अहं प्रमुख होता है। अन्तर्जगत् को ही प्रेरणा का प्रमुख केन्द्र बनाया जाता है। इसी स्वानुभूति की प्रधानता के कारण गीतिकाव्य को हम काव्य के अन्तर्वृत्ति निरूपक वर्ग में रखते हैं।

दूसरा कारण गीतिकाव्य को इस वर्ग में वर्गीकृत करने का यह है कि उसमें मनोवेगों की अभिव्यक्ति होती है, जिनका सम्बन्ध हृदय से है, बुद्धि से नहीं। कवि के आत्मप्रकाशन के साथ ही इसकी शैली भी बड़ी व्यक्तित्व प्रधान होती है। अस्तु निर्विवाद रूप से उसका परिगणन अन्तर्वृत्ति निरूपक वर्ग में होता है।

कवि के अन्तःप्रदेश से निकटतम सम्बन्ध रखने वाले इस काव्यरूप की परिभाषा देने से पूर्व उसकी व्युत्पत्ति बताना भी आवश्यक है क्योंकि गीतिकाव्य पश्चिम से आया हुआ है, जिसकी वहाँ संज्ञा थी 'लिरिक'। 'लिरिक' शब्द की व्युत्पत्ति लायर (Lyer) नामक वाद्ययन्त्र से हुई और इसी वाद्ययन्त्र के सहारे जिन गीतों का गान हुआ उन्हें 'लिरिक' की संज्ञा दी गई। यदि हम इस शब्द के भी मूल की छानबीन करें तो हम देखेंगे कि जिसे अंग्रेजी में 'लायर' कहते हैं वह ग्रीक शब्द 'लूरा' (Lura) से बनाया गया है।[२] यह एक प्रकार का अति प्राचीन ग्रीक तन्त्रीवाद्य था जिसके सहारे गीत गाये जाते थे। इन गीतों को वहाँ 'लुरिकोस' कहते थे और अंग्रेजी में आकर वही 'लिरिक' हो गया। ग्रीक विद्वानों ने जब काव्य का विभाजन किया तब एक ओर ऐसे गीतों को रखा जिनका गान समूह द्वारा होता था। इसे वे 'कोरिक' (Choric) कहते थे और दूसरी ओर इसी 'लायर' नामक वाद्ययन्त्र पर अकेले गायी जाने वाली कविता रखी गयी जिसे 'मेलिक' या 'लूरा' के नाम पर 'लुरिकोस' (Luricos) कहा गया। 'कोरिक' या सामूहिक काव्य का गान समूह को उत्तेजित करने के लिए होता था किन्तु 'मेलिक' या 'लिरिक' का गान केवल एक ही कवि द्वारा होता था। क्रमशः वैयक्तिकता के उत्थान के साथ काव्य का यह स्वरूप अत्यधिक आत्माभिव्यंजक होता गया और इसी आत्मनिष्ठता में उसकी विशेषता समझी जाने लगी। अँग्रेजी में भी आदिकालीन गीतों में लायर की आवश्यकता समझी गई किन्तु 'रोमांटिक रिवाइवल' तक पहुँचते-पहुँचते यहाँ तक कहा जाने लगा कि गीतिकाव्य में संगीत की अनिवार्यता नहीं।

गीतिकाव्य सम्बन्धी पाश्चात्य धारणा की निर्मिति में सहयोग देने वाला प्रथम सौन्दर्यशास्त्री था 'जाफ्राय क्रम्प', जिसने सर्वप्रथम यह यह प्रतिपादित किया कि गीतिकाव्य और काव्य पर्यायवाची शब्द हैं और उसमें उन सभी तत्व का अन्तर्भाव है जो वैयक्तिक और आह्लादजनक हैं तथा जिनमें प्राणों का स्पन्दन विद्यमान है। अतः बाह्य आकार के कठोर नियमों को लेकर उनकी आलोचना करना व्यर्थ है[१]।

'हीगल' ने अपने 'सौन्दर्यशास्त्र' में गीतिकाव्य को स्वानुभूति निरूपक वर्ग में वर्गीकृत कर उसकी परिभाषा करते हुए कहा है कि गीतिकाव्य की आधारभूमि में ऐसे कार्य का विस्तार कदापि नहीं जिसमें बाह्य संसार अपने समस्त ऐश्वर्य के साथ झलकता हो, प्रत्युत उसमें एक ही अवस्था में पड़ी हुई कवि की आत्मा व्यक्तिगत रूप में ही प्रतिबिम्बित होती है। उसका एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक ढंग द्वारा आन्तरिक जीवन के रहस्यों, उसकी आशाओं, उसके तरंगायित आह्लाद, उसकी वेदना एवं उसके प्रलाप

१ The boundary lines between these two divisions cannot of course be drawn with absolute precision and in such poetry especially impersonal elements continually Combine. Ibid, p. 126.

२ Encyclopaedia Britannica, Vol. XVII, . 177.

१ Ibid, P. 181.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या उन्माद को उद्घाटित करना होता है।[1] अस्तु हीगल की धारणानुसार गीतिकाव्य, काव्यात्मक एवं व्यक्तिगत शैली में जीवन के आन्तरिक संघर्ष, उसकी आशा, निराशा, हर्ष, शोक तथा सुख-दुखमयी अनुभूतियों की बाह्य अभिव्यंजना है।

उपर्युक्त सौन्दर्य तत्वज्ञों के अतिरिक्त अर्वाचीन आंग्ल आलोचकों में अर्नेस्ट रीस, जान ड्रिंकवाटर, प्रो० गमर, जी० वेन, पाल्ग्रव, और हडसन आदि ने गीतिकाव्य की पर्याप्त विवेचना की है। हिन्दी में भी गीतिकाव्य की परिभाषा करने वाले अनेक आलोचकों ने अपनी विवेचना का आधार पश्चिम के इन्हीं आलोचकों को बनाया है।

अर्नेस्ट रीस के अनुसार गीतिकाव्य उन शब्दों में एक संगीतमय अभिव्यक्ति है जिन पर प्रभविष्णु भाव का अनुशासन रहता है और जो शक्तिशाली संवादी लय के द्वारा सर्व उन्मुक्त रहते हैं।[2] इस प्रकार अर्नेस्ट रीस के अनुसार गीतिकाव्य उत्तेजनापूर्ण मनोविकारों की संगीतात्मक रूप में बाह्य अभिव्यंजना है। अतः संगीत और मनोवेगों की अभिव्यंजना उसके प्रमुख तत्व निर्धारित किये जाते है।

जौन ड्रिंकवाटर के मतानुसार गीतिकाव्य शुद्ध काव्यात्मक शक्ति द्वारा उद्भूत ऐसी अभिव्यंजना है जिसमें अन्य कोई भी शक्ति सहकारी नहीं होती, एवं गीतिकाव्य और काव्य पर्यायवाची शब्द हैं।[3] ड्रिंकवाटर ने गीतिकाव्य को कविता का पर्यायवाची शब्द कह कर उसकी समस्त विशेषताओं को एक ही पंक्ति में यों निहित कर दिया कि गीतिकाव्य ही सच्ची कविता है अथवा कविता का स्वरूप ही गीतिकाव्यात्मक होता है। ड्रिंकवाटर की धारणा में गीतिकाव्य कवि के अन्तर्जगत में उद्वेलित होते हुए ऐसे प्रभावात्मक, क्षणिक किन्तु पूर्ण भावों की, श्रेष्ठतम शब्दों के माध्यम द्वारा श्रेष्ठतम क्रम से सँजोयी हुई एक ऐसी अभिव्यंजना है जिसमें छन्दों अथवा छन्दों के हल्के से परिवर्त्तन से सौन्दर्य में कमी आ जाती है।

'प्रो० गमर' ने गीतिकाव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि वह अन्तर्वृत्ति निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूति से आगे बढ़ती है, घटनाओं से जिसका सम्बन्ध नहीं प्रत्युत भावनाओं से ही जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह परिष्कृत अवस्था को प्राप्त हुए समाज का काव्यरूप है। विकासशील मानव की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है, जहाँ इच्छा, आकांक्षा, भय आदि मनोभाव उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्त करना गीतिकाव्य का एकमात्र उद्देश्य होता है।[1]

'हडसन' ने गीतिकाव्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि वैयक्तिकता की छाप गीतिकाव्य की अन्यतम कसौटी है, किन्तु वह व्यक्तिवैचित्र्य में सीमित न होकर व्यापक मानव भावनाओं तक विस्तृत है, जिससे प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यञ्जित अनुभूतियों एवं भावनाओं के साथ हाथ बटाने लगता है[2]। अस्तु गीतिकाव्य में भावों का ऐक्य, हार्दिकता एवं अभिव्यञ्जना का वैशिष्टय, ये तीन तत्व अत्यधिक आवश्यक हो जाते हैं।

उपरोक्त विद्वानों के अतिरिक्त 'गोल्डन ट्रैजरी' के संकलनकर्ता 'एफ० टी० पाल्ग्रेव' द्वारा प्रदत्त गीतिकाव्य की परिभाषा भी विचारणीय है। इन्होंने

[1] Encyclopaedia Britannica, Vol. XVII, p. 181.

[2] "Lyrical" it may be said, implies a form of Musical utterance in words governed by over mastering emotion and set free by a powerfully concordant rhythm.
—Lyric–Poetry N. Ernest Rhys, Fore-word, p 6.

[3] But since it is most commonly found by iteself in short poems which we call lyrics, we may say that the characteristic of the lyric is that it is the product of pure poetic energy unassociated with other energises and that lyric and poetry are synonymous terms.
—The Lyric - John DrinkWater, p. 64.

[1] Hand Book of Poetic : F. B. Gummere, Chap II, p. 40.

[2] An Introduction to the study of Literature : W. H. Hudson, Chap. III, p. 127.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी कविता को गीतिकाव्य माना जिसमें एक ही विचार, एक ही भाव या अवस्था का चित्रण किया गया हो[१]। अर्थात् गीतिकाव्य मानव हृदय की एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो मनोवेगों से रंजित होती है, और भाव, विचार तथा अवस्था की अखण्ड एकता उसकी सबसे बड़ी विशेषता होती है। यही अन्वति उसे अन्य काव्यरूपों से भिन्न करती है।

'जी० बेन' के अनुसार प्रगीत कवि का आत्मालाप है। इसमें कवि के लिए पाठक या श्रोता की अपेक्षा नहीं रहती। कवि को अपने हृदय के आवेशजन्य भावों को व्यक्त करने के लिए वाणी खोजनी पड़ता है किन्तु अपनी शाब्दिक उपलब्धि की उसे कोई पूर्व धारणा नहीं रहती। वह उपयुक्ततम शब्दों को एक आदर्श व्यवस्था में प्रस्तुत करता है। भाव और भाषा का यह निकटतम, अन्तरंग और वर्त्तमान प्रयोग ही प्रगीत काव्य निर्माण करता है। प्रगीत की प्रक्रिया बाह्य नहीं आन्तरिक होती है[२]।

प्रगीत काव्य सम्बन्धी भारतीय विवेचना का अध्ययन भी गीतिकाव्य का स्वरूप समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अपनी प्रगीतात्मकता के कारण सामवेद आदि को गान कहा जाता है। वैदिक साहित्य में गाने के अर्थ में गा, गातु: गातृ:, गीत, गीतम्, गीतिकम्, गीति, गीतिन्, प्रगीता: आदि शब्दों का बार-बार उल्लेख मिलता है किन्तु प्राचीन संस्कृत भाषा या साहित्य में गीतिकाव्य नामक कोई शब्द विद्यमान नहीं है। उस समय तो गीतिकाव्य की कल्पना ही असम्भव थी क्योंकि काव्य का गीति से वियोग विचार गोचर ही न था[३]। इस युग के काव्य का प्रमुख उपादान संगीत था।

[१] "Lyrical has been here held essentially to imply that each poem shall turn on some single thought, feeling and situation." —"Golden Treasury of Songs and Lyrics." F. T. Palgrave, Preface p. IX.

[२] 'Problem Lyric : Gotteried Benn, quoted by T. S. Eliot in "On Poetry and Poets." p. 97–98.

[३] गीत गोविन्द : रूपान्तरकार—डा० विनयमोहन शर्मा प्रस्तावना।

संस्कृत साहित्य में मुक्तक, खण्डकाव्य, महाकाव्य आदि विभिन्न काव्यरूपों की सृष्टि हुई और आचार्यों ने इनके लक्षण निर्देश भी किए किन्तु उन्होंने गीतिकाव्य तो स्वतन्त्र काव्यरूप न मानकर उसकी समाहित मुक्तक के अन्तर्गत की। काव्यशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने इसकी चर्चा आनुषगिक रूप से की है[१]। आचार्य विश्वनाथ ने गेयपद का उल्लेख रूपक प्रकरण के अन्तर्गत करते हुए उसे स्थित पाठ्य कहा है[२] इस युग के संगीत शास्त्र के ग्रन्थों में स्वतन्त्र रूप से अवश्य ही गीत के तत्वों का निर्देशन और विभाजन मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' में गीत की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है—स्वरों का वह गठन जो मनोरंजक हो, गीत है[३]। किन्तु गीत का यह विवेचन संगीत की दृष्टि से है, काव्य दृष्टि से नहीं।

प्राकृत साहित्य में मुक्तक काव्य परम्परा से भिन्न थेर-थेरी गाथाओं में सुन्दर गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं। इन रचनाओं को सर्वप्रथम गीतिकाव्य के नाम से अभिहित भी किया गया, पर तात्विक रूप से उसके स्वरूप निर्धारण की ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

हिन्दी काव्य में, विशेषकर मध्ययुगीन काव्य में विपुल मात्रा में गीतिकाव्य की रचना हुई पर उसके मूल स्वरूप, तत्वादि निर्धारण की ओर भी विद्वानों की दृष्टि बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक नहीं गई। सन् १९०९ में श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय के गीतिकाव्यगत विवेचन के उपरान्त हिन्दी साहित्य के प्राय: सभी समीक्षकों ने गीतिकाव्य को काव्य की एक स्वतन्त्र विधा मानकर उसके लक्षणों का स्पष्ट रूप से निर्देशन किया है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार काव्य के दो स्वरूप हमें देखने को मिलते हैं—अनुकृत या प्रकृत (इमीटेटिव

[१] नाट्यशास्त्र : सप्तविंशोध्याय, ४८।

[२] शुद्धं गानं गेयपदं स्थित पाठ्यं तदुच्यते'। साहित्य दर्पण ६।२१५।

[३] संगीत रत्नाकर, टीका : कलिनाथ, खण्ड १, पृ० ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर रियिलिस्टिक) और अतिरंजित या प्रगीत (एक्जेरेटिव आर लीरिकल)। कवि की भावुकता की सच्ची झलक वास्तव में प्रथम रूप में मिलती है। काव्य का दूसरा स्वरूप अतिरंजित या प्रगीत वस्तु वर्णन तथा भाव व्यञ्जना दोनों में पाया जाता है[१]। अपनी आदर्शवादी दृष्टि के कारण शुक्लजी प्रगीत काव्य को वास्तविक महत्व नहीं दे सके परन्तु आचार्यप्रवर नन्ददुलारे वाजपेयीजी ने हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रगीत काव्य का तात्विक विश्लेषण कर उसकी वास्तविक महत्ता उद्घाटित की। उनके शब्दों में प्रगीत काव्य में ही कवि का व्यक्तित्व पूर्णरूप से अभिव्यंजित होता है। कथानक काव्यों में जीवन के भावात्मक संघर्ष तथा चरित्रों की रूपरेखा रहा करती है परन्तु प्रगीत रचना में कविता इन समस्त उपचारों से विरत होकर केवल कविता या भाव प्रतिमा बन कर आती है। संगीत के स्वरों की भाँति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना इकाइयों से कविता का निर्माण करते हैं। उनमें शब्द और अर्थ, लय और छन्द अथवा रूप और निरुप्य की अभिन्नता स्थापित हो जाती है[२]।

बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार प्रगीत काव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करके वाह्य जगत् को अपने अन्त:करण में ले जाकर अपने अनुभवों और भावनाओं से प्रेरित होता है तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूँढ़ निकालता है[३]।

छायावादी गीति कोकिला महादेवी वर्मा के मत से—'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है[४]। डा० रामखेलावन पाण्डेय 'आत्म-चेतना की जागृति' को गीतिकाव्य की अन्तरात्मा मानते हैं[५]। श्री सच्चिदानन्द तिवारी के अनुसार—

[१] गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७५-७६।
[२] आधुनिक साहित्य, भूमिका, पृ० २४।
[३] साहित्यालोचन, पृ० ११३।
[४] महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, सं० गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० १४९।
[५] गीतिकाव्य, डा० रामखेलावन पाण्डेय, पृ० ५९।

पद्य रचना जब सङ्गीतमय हो जाती है तो गीतों की उत्पत्ति हो जाती है जहाँ भावों का रागमय विकास होता है। अतः गीतिकाव्य को संगीत की चरमसीमा मानते हैं[१]। मनमोहन गौतम के विचार से—"शब्द और अर्थ की साधना कविता है। पर जहाँ शब्द और अर्थ स्वतः मूक हो जाते हैं वहाँ उनका दूसरा रूप आरम्भ होने लगता है जिसे हम गान कहते हैं। गान का संस्कृत रूप संगीत है। संगीत का विशिष्ट रूप गीत है।"

गीतिकाव्य के पूर्व विवेचित सम्पूर्ण तत्वों को समाहित करते हुए डा० गणेश खरे ने गीतिकाव्य की समन्वित परिभाषा इस प्रकार दी है—"संगीत वह विशुद्ध काव्यरूप है जिसमें मानवीय जीवन की गहरी निश्छल, सहज स्फुरित आत्मानुभूति की तीव्रता स्वर साधना के अनुकूल रूप धारण करती है। उसमें मार्मिकता, संवेद्यता, स्वच्छन्दता, प्रभविष्णुता, कल्पना का उद्दाम वेग तथा बुद्धि और अनुभूति का सुन्दर समन्वित रूप अभिव्यक्त होता है। उसकी प्रकृति कोमल मधुर भावों से सम्पन्न तथा सुमधुर प्रसाद गुणों से सम्पन्न होती है। उसमें भावावेगों के अपूर्व प्रवाह के कारण संक्षिप्तता, कसावट, अन्विति, प्रभावात्मकता तथा संगीतात्मकता के कारण सरसता और श्रुतिमधुरता का समावेश होता है। अनुभूति तथा अभिव्यंजना में अभिन्नता होने के कारण उसकी शैली में तरलता, स्वाभाविकता, प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता, भाषा में सौकुमार्य तथा भावानुरूपता और चित्रात्मकता स्वाभाविक रूप से सन्निविष्ट हो जाती है। ये रचनाएँ सभ्य और सुसंस्कृत कवियों की स्वातन्त्र्य चेतना से निष्ठ व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यञ्जना होती है।[२]

बाबू गुलाबराय ने काव्य के रूपों का विवेचन करते हुए गीतिकाव्य के जिन तत्वों का उल्लेख किया है, उनमें संगीतात्मकता, कोमलकान्त पदावली, निजी रागात्मकता, संक्षिप्तता और भाव की एकता को

[१] आधुनिक गीतिकाव्य : सच्चिदानन्द तिवारी, पृ० १।२
[२] आधुनिक प्रगीत काव्य : डा० गणेश खरे, पृ० ३७।३८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक माना है। काव्यदर्पणकार के अनुसार वह गीति कविता प्रशंसनीय है जिसमें शब्दों की सुन्दर ध्वनि, सुकुमार सन्दर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द, कोमल कल्पना, संगीतात्मक छन्द, अनुभूति की विभूति, भावानुकूल भाषा और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हो। महादेवी वर्मा की दृष्टि से "साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।[1]" डा० उमा मिश्र के अनुसार गीतिकाव्य के आवश्यक तत्व हैं—अन्तर्जगत की निर्लेप और साधारणीकृत तीव्र अभिव्यक्ति, लघु आकार, एक ही भाव की अभिव्यक्ति तथा उसका घनीभूत प्रभाव, भाषा की सरलता, भावों की आद्यन्त तरलता और संगीतात्मकता। डा० कमलाकान्त पाठक के शब्दों में प्रगीत के अन्तर्भूत तत्व हैं—आत्माभिव्यंजना, भाव की एकतानता और तीव्रता, प्रभावान्विति, लालित्यपूर्ण पदयोजना, तथा संगीतात्मकता का विनियोग।[2]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार अन्तर्निहित संगीतात्मकता और तीव्र अनुभूतिपूर्ण स्वानुभूतिमूलकता, ये ही दो गीतिकाव्य के तात्विक लक्षण हैं, जो उसकी आत्मा कहे जा सकते हैं। उन्हीं के परिणाम स्वरूप गीति में सहज उद्रेक, नवोन्मेष, सद्य:स्फूर्ति,

[1] महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४७।

[2] आधुनिक हिन्दी काव्य (भाग २) डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० १४-१५।

स्वच्छन्दता, अनाडम्बर आदि विशेषताएँ आ जाती हैं। गीति के इन्हीं आन्तरिक प्रकृतिगत गुणों पर उसकी रूपगत अर्थात आंगिक रचना विधान सम्बन्धी विशेषताएँ आधारित हैं।[1] 'रस्किन' के शब्दों में "गीतिकाव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता है। सहज शुद्ध भाव, स्वच्छन्द कल्पना, तर्कवाद और न्यायमूलकता से मुक्त विचार, ये ही गीतिकाव्य की वास्तविक विशेषताएँ हैं।"

गीतिकाव्य की पाश्चात्य एवं भारतीय धारणाओं का विशद विवेचन करने के उपरान्त डा० शकुन्तला दुबे इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि गीतिकाव्य कवि के अन्तर्जगत् की वह स्वत: प्रेरित, तीव्रतम, भावात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें विशिष्ट पदावली का सौन्दर्य, अनुभूति के ऐक्य एवं संगीतात्मकता के योग से द्विगुणित होता है।······अत: उसकी विशेषताएँ क्रम से हो जाती हैं—आत्माभिव्यंजना, संगीतात्मकता, अनुभूति की पूर्णता और भावों का ऐक्य।[2]···अस्तु गीतिकाव्य कवि के जीवन के उन तीव्रतम क्षणों की बाह्य अभिव्यंजना है जिसमें अनुभूति का वैशिष्ट्य, भावों की पूर्णता एवं प्रभाव की इकाई, संगीतात्मक रूप में अभिव्यंजित होती है।

—'पारिजात' ७५, साकेत, मेरठ।

[1] हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २९०।

[2] काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास: डा० शकुन्तला दुबे, पृ० २८६।

साहित्य-सन्देश का मूल्य

साहित्य सन्देश का वार्षिक मूल्य आजकल ६) रुपए है। परन्तु अब भी कुछ सदस्य ५) रुपए का मनीआर्डर भेज देते हैं। फलत: हमें पत्राचार करना पड़ता है और ग्राहक को १) रुपया भेजने में व्यर्थ खर्च होता है। अत: सभी सदस्य अब ६) भेजने की कृपा करें। तथा जिन्होंने ५) भेजे हैं वे स्वत: ही १) भेज दें जिससे उन्हें पूरे वर्ष का ग्राहक बना लिया जाय।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनेन्द्र के उपन्यासों की फ्रायडीय नारी

● विजय कुलश्रेष्ठ

जैनेन्द्र आधुनिक कथा-साहित्य के अनगढ़ शिल्पी हैं। वे प्रेमचन्द के समकालीन होते हुए भी प्रेमचन्द संस्थान से बँधे नहीं और अपनी कुशल वक्तृता और विचारवेत्ता की भाँति कथा-शिल्प में भी नयी धारा का अवगाहन किया। उनके उपन्यास उनकी नवीनतम तकनीक पर आधारित हैं जिनमें फ्रायडीय मनोविज्ञान का पुट है। अन्तर्विरोधों से परिचालित सेक्स चेतना है तथा जैनेन्द्र निजी दर्शन के पोषक हैं। ये उपन्यास जीवन के इतने निकट नहीं जितने कि दर्शन और सिद्धान्त के निकट हैं। उनके पात्रों की शरीरी व्याख्या नहीं। कल्पना प्रसूत दर्शन विचारणा और चिन्तना का सम्मिश्रण है जो 'मनगढ़न्त आदर्श त्रिकोण प्रेम था। द्वन्द्व और कृत्रिम खींचतान आकांक्षा और अनुभूति, आवेग-संवेग, आत्मापरक और अतिवादी चिन्तनाओं के कारण न तो निभ पाती हैं और न उतनी तल्लीनता के साथ ही पुष्टिकर होते हैं कि जिनकी ध्वनि और प्रतिध्वनि जीवनपर्यन्त गूँजती रहे।[1] प्रेमचन्दीय संस्थान के उपन्यासों में पात्र 'टाइप' बनकर सामने आता है और समाज का चित्र देता है जबकि परवर्ती उपन्यासों में—जिन्हें आगे आधुनिक उपन्यास कहा जाता है—समाज या 'टाइप' गौण होता गया है और 'व्यक्ति' उभरा है, उसका विश्लेषण हुआ है। प्रसिद्ध आलोचक गुलाबराय के कथनानुसार "मनुष्य के वैयक्तिक इतिहास के आधार पर उसके अवचेतन मन की कुन्जी से उसके चारित्रिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। व्यक्ति की दुर्बलताएँ सामयिक और मानसिक कारणों के आलोक में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय बन गई हैं।[1] जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी पात्रों में यही विश्लेषण मूलरूपेण व्यक्त हुआ है।

[1] शचीरानी गुर्टू : विचारिकी—जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद, पृ० २०६।

प्रारम्भिक उपन्यास के रूप में, जिनमें चित्रित नारियाँ साधारण नैतिक मापदण्ड के बाहर की वस्तु बन गई हैं,[2] जैनेन्द्र में फ्रायड का प्रभाव कम नहीं पाते। उनके नारी पात्रों में कुण्ठा है, दमन है, असाधारणता है, कुछ मनोविकृति है, काम भाव दमनोत्पन्न अनेक विशेषताएँ हैं।[3]

प्रेमचन्द के नारी पात्र नारी जाति के आदर्शोन्मुख यथार्थ को चित्रित करते चले हैं जबकि जैनेन्द्र के नारी पात्रों में समाज नहीं व्यक्ति की उरेहना की गई है। व्यक्तिपरक चिन्तना से इन नारी पात्रों में 'अहं' जागृत है और अहं के दायरों में जूझती हुई नारी अपने पतित्व से अधिक निजत्व में अपनी अभीप्सितता खोजती है। जैनेन्द्र ने फ्रायडीय यौनपाद का आश्रय लेकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि का अन्वेषण हिन्दी-उपन्यास साहित्य में किया है। इस प्रकार जैनेन्द्र एक गैस्टाल्टवादी (जिसको हमने सम्पूर्णतावादी कहा है) औपन्यासिक के रूप में हमारे सामने आते हैं[4] और

[1] स्व० गुलाबराय के विचार : डा० दशरथ ओझा—समीक्षाशास्त्र, पृ० १७६।

[2] डा० दशरथ ओझा : समीक्षाशास्त्र, पृ० १७६।

[3] डा० देवराज उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० १९७।

[4] डा० देवराज उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह औपन्यासिक दृष्टि पुरुष की अपेक्षा नारी मन की अन्तरावस्थाओं का चित्रण करती हैं। इसीलिये जैनेन्द्र के नारीपात्र परम्पराओं से विरोध कर आगे आये हैं। इस प्रकार जैनेन्द्र की नारियाँ विद्रोही नारियों के रूप में प्रगट हुई हैं।

जैनेन्द्र की नारियों में कट्टो, सुनीता, मृणाल, कल्याणी, सुखदा, भुवनमोहिनी, अनिता, इला और लिजा आदि हैं। इनकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए—हम उन्हें दो खण्डों में विभाजित कर सकते हैं—एक वह नारी समुदाय जो पूर्ण प्रेमिका है और विवाहिता होने पर भी अपने प्रेमी के प्रति आस्थावान हैं। दूसरे समुदाय में वे नारियाँ हैं जो विवाहित हैं और विवाहोपरान्त कोई दूसरा व्यक्ति पति के अतिरिक्त उनके जीवन में प्रवेश करता है और वह नारी पति की अपेक्षा उसकी ही अनुगत्या और अनुरक्ता हो जाती है। इसके अतिरिक्त तीसरे प्रकार की नारी का चित्रण जैनेन्द्रजी ने और किया है—वह नारी है जिसमें महत्वाकांक्षाएँ भरी हैं तथा जिसके सामने पति नहीं, प्रेमी नहीं—अपितु महत्वाकांक्षाएँ हैं और उनकी पूर्ति के लिए वे अपने 'अहं' के 'प्रभाव' से ही संचालित होती है। यह संचालन प्रक्रिया उनके व्यक्तित्व को उभारती हैं। और उसके चारित्रिक आख्यान को मनोविज्ञान का आधार भी देती है। यही नहीं ये नारियाँ अपनी कुण्ठाग्रस्त एवं परिस्थितिजन्य केन्द्रीयता की प्रतीक हैं जो बौद्धिकता से बोझिल तथा दुराग्रहों से परिपूर्ण भी हैं। सभी नारी पात्रों की उपस्थिति के अवलोकन से यह भी विदित होता है कि 'सभी पति स्त्रैण हैं जिनके लिए पत्नी का 'सैकिण्ड हैण्ड' प्रेम जरा भी तिरस्करणीय नहीं।'[1] ये नारियाँ उद्दाम-वासना से परिपूर्ण हैं और उसकी सम्पूर्ति वे पति से ही नहीं पर-पुरुष की आकृष्टता से ही कर पाती हैं तथापि इन पत्नियों के प्रेमी भी किसी व्यावहारिक आचरण के नियंत्रण में नहीं हैं यद्यपि वे महान हैं, क्रान्तिकारी हैं—लेकिन उनमें नैतिक आचरण की कोई सीमा निर्दिष्ट नहीं, क्रान्तिकारी किस लिये हैं—वह भी अस्पष्ट है। इस प्रकार नारी पात्रों का जीवन प्रेमी और पति, पति और प्रेमी के मध्य अपने सम्बन्धों की मान्यताओं, स्थापनाओं के लिये सङ्घर्ष करता रहता है तथा त्रिकोणात्मक प्रेम को जन्म देता है। यह त्रिकोणात्मक स्थिति ऐसी नारी से प्रारम्भ होती है जिसमें दुर्निवार आकांक्षाएँ तथा सेक्स विकृतियां हैं। वे महज पति को जीवन सर्वस्व नहीं मान बैठतीं और इस त्रिकोणात्मक चिन्तन की समाप्ति उस पर पुरुष पर जाकर समाप्त होती हैं। उसे पर पुरुष भोग्या पत्नी को (सैकेण्ड हैण्ड वाइफ) को स्वीकार कर लेने में सकुचाता नहीं। कट्टो, सुनीता, कल्याणी इत्यादि ऐसी ही नारियाँ । कट्टो (परख) अपने प्रेमी सत्यधन अध्यापक से अनुरक्त है परन्तु परिस्थितिवश विवाह होता है सत्यधन के मित्र बिहारी से। इस प्रकार मुख्य रूप से नारी-पुरुष के सन्दर्भों में प्रेम की त्रिकोणात्मकता निम्न प्रकार उभरती है—

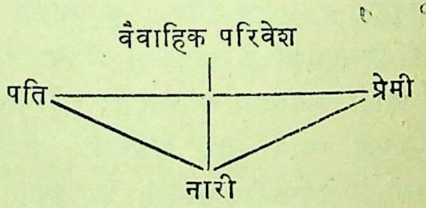

उक्त त्रिकोणात्मक स्थिति में कट्टो ही नहीं सुनीता, कल्याणी, सुखदा मृणाल, भुवनमोहिनी, अनिता, लिजा इत्यादि सभी जाती हैं और इनकी स्थिति में किंचित परिवर्तन प्रत्येक की स्थिति के साथ होता है। प्रेम त्रिकोण वही है, पति का प्रथम स्थान है। एक स्थिति में तो दूसरे उपन्यास में प्रेमी का प्रथम हो जाता है। कट्टो—बाल विधवा है। पूर्व प्रेमिका है। बिहारी की विवाहिता है फिर भी सत्यधन के लिए अनुरक्त है। सुनीता पूर्व विवाहिता है, पति मित्र की प्रेमिका है। कल्याणी भी विवाह से पूर्व प्रेमिका रहती है और अपने विवाहित जीवन

[1] शचीरानी गुर्टू : जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अति-वाद—२१०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की निस्सारता इसीलिए सोचती रहती है क्योंकि वह पूर्व प्रणयिनी है। सुखदा विवाहिता है पर क्रान्तिकारी की विमोहिता है। मृणाल पूर्व प्रेमिका है, भुवनमोहिनी भी और विवाहित जीवन को स्वीकारने पर मृणाल को उसके परिवेश से हटकर वेश्या बनने को बाध्य होना पड़ता है तथा भुवनमोहिनी प्रेमजन्यकुण्ठा पर विजय प्राप्त कर लेती है।

इस त्रिकोणात्मक स्थिति में जो भी हो प्रेमी पूर्व में, बाद में अथवा निरन्तर पति का कुछ नहीं कहना। यही इन नारी पात्रों का जैनेन्द्रीय नैतिक पक्ष है। पत्नी का सबका प्रेम मिले[1]। कट्टो से भुवनमोहिनी तक सुनीता से कल्याणी, मृणाल से सुखदा तक दाम्पत्य एक दर्शन पर ही आधारित रहा है। विवाह संस्था न रहकर जीवन साधना बन गया है। और यह साधना नारी के पतित आचरण से उभर कर आती हुई दीख पड़ती है।

जैनेन्द्र की नारी करुणा, पीड़ा और यातना की मूर्ति है। मृणाल ऐसी ही नारी पात्र है। मृणाल अपने भतीजे से कहती है—सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे कि कोई मुझे कुचले तो भी मैं कुचली न जाऊँ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ। प्रतिष्ठा मुझे क्यों चाहिए, मुझे तो जो मिलता है, उसी के भीतर सांत्वना पाने की शक्ति चाहिए।

चरित्र विकास मृणाल में यहाँ पर द्रष्टव्य है— "फिर जिनको साथ लेकर पति को छोड़ आयी हूँ। उनको मैं छोड़ दूँ? उन्होंने मेरे लिये क्या नहीं त्यागा? उनकी करुणा पर मैं बची हूँ...मैं नहीं छोड़ सकती, पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या अकृतज्ञ भी बनूँ?"

नायिकाएँ अपने सामान्य धर्म से असामान्य हो गई हैं, पतित हो गई हैं—सब कुछ सहकर भी दुग्ध धुली नारी की सी प्रांजलता विद्यमान है फिर भी मृणाल के प्रति पाठक की समस्त संवेदना का कारण भी यही है।

उच्च शिक्षा प्राप्त कल्याणी पारिवारिक शान्ति और सुरक्षा की कामना करती है लेकिन अपने 'केरियर' से छुटकारा उसे कहाँ है? सभी यह कहती हैं। "इस सभ्यता में स्त्रियाँ अपने को चाहती हैं, मर्द अपने को चाहते हैं और दोनों अपने लिये दूसरे को स्तैमाल करना चाहते हैं...यह छीना झपटी और नोंच खसोट है।"

वह पति को व्यक्ति नहीं प्रतीक मानती है। पत्नीत्व को साधना और धर्म,—'पति देवता है—स्त्रियाँ यह कहकर कि शास्त्र पुरुषों के बनाये हुए हैं, अपने को स्वधर्म पालन से बचा नहीं सकतीं।

व्यतीतकी में चन्द्री का उग्र रूप जहाँ मन को छूता है, वहाँ अनिता का त्याग भले ही दिलासा न देता हो पर—"पुरुष के भाग्य की तरह स्त्री के चरित्र को अतवर्य मान लिया जाता है। तर्क उसमें है पर स्त्री का सतीत्व इसी से तर्कहीन सा लगता है, कहकर जैनेन्द्र प्रेम की पवित्रता और प्रेम से पुरुष के बँध जाने की सीमा को स्पष्ट कर देते हैं।

जैनेन्द्र की नारियाँ व्यक्तिवादी हैं। समान या परिवेशगत परिस्थितियों से उन्हें कोई लेना-देना नहीं। मध्य वर्ग की नारियों में भी यही भाव है तो घरेलू और साधारण पढ़ी-लिखी नारी में भी इतना सब होते हुए स्वप्निल कामना उनमें निहित है। कल्पना में जीने का सायास प्रयास उनमें है। लेकिन उन्हें परिवार का बन्धन अभिप्रेत नहीं। बच्चों का बन्धन पति का खौफ और पारिवारिक परिवेश उन्हें जरा भी त्रस्त नहीं करता।[1] बाह्य संगत उन्हें और भी बलिष्ट, सामर्थ्यवान एवं गतिशील बनाते हैं तथा 'ऐसी सामाजिक सापेक्षता की वे कायल नहीं जो विवशता या नियंत्रण बनकर उन पर हावी हो जाए।[2]

[1] उपन्यासकार जैनेन्द्र : पुनर्मूल्यांकन—डा० रामरतन भटनागर, पृष्ठ १७०।

[1] शचीरानी गुर्टू : विचारिकी—जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद—२१४।
[2] वही, पृष्ठ २१५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनीता की तेजस्विता के सामने मोह चूर-चूर हो जाता है। सुनीता घर लौट कर पूर्ववत् अपनी गृहस्थी में रम जाती है—यहा सुनीता की परिणति है—हरि प्रसन्न को सीधी राह लाने के लिए सुनीता का पति उसे (सुनीता को) प्रयोग करता है और पत्नी को साधन बनाने पर भी उसे अशुचि नहीं है।

सुखदा विवर्त और व्यतीत उपन्यासों की नायिकायें भी अपनी भूमिकाओं में अज्ञात सी हैं। सुखदा हरीश के लिये भुवनमोहिनी जितेन के लिये—किन स्थितियों में जीती है—एक मनोवैज्ञानिक धरातल की भावभूमि पर ही अंकित हुआ है। व्यतीत एक नई भूमि लेकर चला है। व्यतीत की अनिता व्यर्थ नहीं है—व्यर्थ और व्यतीत पुरुष है। अनिता प्रेमी के जीवन से हट जाती है। अपने घर को बनाए रखने के लिए प्रिय के प्रेमदाह को अपनी देह ताप से खण्डित रखना चाहती है। जयवर्धन की इला अविवाहिता है, प्रेमिका है पर प्रणयानुगत नहीं हो सकती है। अभोग्या और कुण्ठिता है। इसके विपरीत लिजा भोग्या है, विवाहिता है, महत्वाकांक्षिणी है। वह उनको नहीं उनके पद, महिमा के सहित उसे पाने के लिये यत्नशील है जबकि इला निस्पृह रूप से जय को पाना चाहती है और यह पाना चाहने की—पति रूप में पाने की चाह उसके यौवन के उदास क्षणों को वृद्धता की खाई में ले जाते हैं और अन्त में विवाह की स्वीकृति मिल जाने पर भी कोई पारस्परिक संयोग का संकेत नहीं मिलता जबकि दूसरी ओर लिजा तो तलाक देकर जय को पाने के लिए हूस्टन को भी समर्पित हो सकने में शायद कोई बाधा नहीं मानती और उसे केवल पाश्चात्य संस्कृत का प्रभाव कहकर भले ही टाल दिया जाय लेकिन हूस्टन के साथ प्रेमालाप - अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कैसे भी साधनों का उपयोग किये जाने वाली वृत्ति का ही परिचायक है।

प्रेमचन्द में सैक्स का एकांगीपन उभर कर नहीं आ सका था। क्योंकि उनके उपन्यासों की परिणति में समाज था और इसके विपरीत जैनेन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति। इसलिये उसमें सैक्स, प्रेम और साहचर्य की विविधताएँ भी द्रष्टव्य हैं—जैनेन्द्र के अनुसार व्यक्ति अहं का नग्नतम वस्तुवादी रूप सैक्स क्षेत्र में ही प्रगट होता है और वही सारे जीवन तथा सारे विश्व को प्रभावित करता है। जैनेन्द्र में अहंवादी उपन्यासकार के गुण हैं। यह अहंवादिता नारी में ही प्रमुख हो आई है। पुरुष नगण्य हो गया है। वे स्त्री संयोग से पुरुष अहं में द्रवणशीलता के पोषक हैं। यही कारण है स्त्री-पुरुष के मध्य अन्तस्थ कामनाओं के घात-प्रतिघातों का सूक्ष्म विवेचन उन्होंने उपन्यास विधा में किया है। प्रेमिका प्रिय के अहं को पहचान कर प्रिय की हितकामना ही उनका लक्ष्य है। तभी कल्याणी उसे बचाकर साथ लेने वाले को कैसे छोड़ दे।

शरीर सम्भोग तृप्ति का अनुभव करता है। इसीलिए न तो नारी ने ही इसे हेय माना है और न पुरुष ने ही तिरस्कृत और इसी कारण पति के साथ सहधर्म निर्वाह करती हुई नारी प्रेमी के लिए समर्पित भी होती है। इसीलिए नारीत्व में जैनेन्द्रजी स्त्री के आदर्श के साथ रूप का कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं। रूप को वे प्रकृति का छल, मातृत्व को दायित्व मानते हैं। नारी के दो स्वरूप ही मोटे तौर पर जैनेन्द्र विचार करते हैं—सतीत्व और मातृत्व। सतीत्व पुरुष के योग और सहयोग से माना है पर 'कैरिरिज्म' सतीत्व के प्रति उदासीनता और भाव उजागर करती है। इसके दूसरी ओर मृणाल जैसी पारिवारिक परिस्थितियों में कोयले वाले के साथ चले जाने वाली नारी अक्षम्य नारी है—जो जैनेन्द्र की कल्पना रूप की अधिकारिणी है।

जैनेन्द्र की नारियों का द्वन्द्व विवाह रेखा की सीमा का द्वन्द्व है। एक अपौरुषेय पति और अभावशील गृहस्थी—उनके जीवन की ट्रेजेडी है। सुखदा उसी का प्रतीक है। विवाह की सीमा रेखा से हटकर विवाह निभाना उसके लिए लाचारी नहीं है फिर भी वह अनिर्दिष्ट शक्ति से पति से स्वाधीन होती जाती है और वह अत्यन्त व्यक्ति हो आती है—मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या सोचती विचारती हूँ यही बात मेरे लिए अत्यन्त प्रमुख थी। इस प्रकार की विरोधी भावनाएँ दाम्पत्य जीवन के सन्तुलन को डिगा देती हैं।

यौन कुण्ठाएँ नारी पात्रों का एक और अहम् प्रश्न है। जैनेन्द्र ने इस प्रकार का अंकन बहुत ही व्यवस्थित ढङ्ग से किया है। जयवर्धन में लिजा कहती है—जानते हैं अब जो है मेरी ओर से किंचित अनुग्रह है, फिर भी खीझ सकते हैं, लेकिन मेरे प्रति अपने लोभ को जीत नहीं सकते विवाहित हूँ। तब तक अपनी पर्यंकशायिनी के प्रति मैं उन्हें तनिक भी असन्तोष का अवसर नहीं देती क्या यह पति नामक व्यक्ति के प्रति अन्याय न होगा—' स्त्री पुरुष के कुत्सित सम्बन्ध की प्रचण्ड आवेशपूर्ण परिस्थितियों के चित्रण के माध्यम से अहंकार पूर्ण दायित्वहीनता ही परिलक्षित होती है।

यौन कुण्ठाओं की एक झलक सुनीता के निर्वस्त्र होने में है 'मुझे चाहते हो न? मैं इन्कार नहीं करती! यह लो···" और व्यतीत की अनिता जब कहती है—"कहती हूँ मैं यह सामने हूँ, मुझे तुम ले सकते हो समूची को, जिस विधि चाहे ले सकते हो, अथवा इला का जय से सम्बन्धों का परिचय—मेरे समूचेपन में से बोल उठा—लो लो लो मुझे लो—" वर्जन करती ही मैं अपेक्षा में रही कि कोई होगा जो मेरी नहीं सुनेगा और मुझे ले ही लेगा।"

जैनेन्द्रजी भोग को सुभीता बतलाते हैं। अनिता जयन्त से कहती है—सब एक दूसरे के सुभीते के लिए हैं। क्या अपने में रहना नहीं है,·· होगा तो वही पाप होगा, दूसरा पाप मैंने बहुत ढूंढा, मुझे नहीं मिला, तुम स्त्री नहीं हो इसलिए न तुम्हें पुरुषत्व का मान है पर अपने स्त्रीत्व पुरुषत्व को अखण्ड रखने के लिए हम सिरजे गये हैं। हमें एक दूसरे में विलय खोजना होगा···

नारी की वेदना पति की अपौरुषेयता, सीमा से अधिक स्वेच्छा चाहिए। देने की पहल—उपन्यासों में कहीं-कहीं परिलक्षित होती है—व्याहता हूँ, पति की भक्ति करती हूँ। फिर भी हूँ, कहती हूँ किनारा लेकर तुम कहीं न जा सकोगे (अनिता—व्यतीत)।

विवाह—जैनेन्द्र की दृष्टि में—एक प्रतिज्ञा है। "प्रेम तो उसमें साथ देता नहीं। प्रेम मुक्त है, विवाह आबद्ध है" विवाह की यह आबद्धता नारी को निभाने के लिए टिकाए रखती है, और नारी पर पुरुष के समुचित भोग की उपादा[illegible] बदले में इस विवाह को नकाब के रूप में प्रयुक्त कर लेती है—"नैतिक आदर्शों को जैनेन्द्र के उपन्यासों में कोई स्थिर मान्यता प्राप्त नहीं है।" इसका कारण भी शायद जैनेन्द्र के शब्दों में यह है—नियति के बहाव में बहते चलना है, धर्म, अधर्म बिसार देना है। (सुनीता) होनहार कभी टला है।" (व्यतीत—भुवनमोहिनी) जो हो गया, हो गया, उसे मिटाना अब बश से बाहर की बात है (परख—कट्टो)।

लोकोपवाद जैनेन्द्र की नारियों के लिए नगण्य है, न उन्हें चिन्ता है क्योंकि समाज-बोध के स्थान पर व्यक्ति-बोध ही अधिक उभरा है। बाहरी संघर्ष के प्रति उदासीन रहकर भी जैनेन्द्र की नारियाँ भीतरी संघर्ष से बच नहीं पाती हैं। प्रेम होने पर विवाह नहीं हो सकता। जिससे विवाह हो गया है उससे प्रेम न हो सका पर पति स्वयं ही अपनी पत्नी से हटकर प्रेमी के और पत्नी के मध्य रास्ता साफ कर देता है तो भी पत्नी मुक्त नहीं है—भुवनमोहिनी तभी तो कहती है—मैं सब कुछ तुम्हारी हूँ और पति की केवल पत्नी!

इस सारे विवरण के अतिरिक्त जैनेन्द्र की नारी पात्रों की स्थिति और है कि वे पति और प्रेमी दोनों से ही कटी-कटी रहती हैं अपने में सिमट कर वे अपने को शून्य बना लेती हैं और वह शून्य उन्हें भीतर ही काटता रहता है। प्रेमी के लिए अन्ततः समर्पण की मजबूरी आती है और इस समर्पण में उनका अहं टूट जाता है।

वस्तुतः जैनेन्द्रजी का 'आब्जर्वेशन' बहुमुखी है। तभी वे नारी मन की अन्तर्प्रेरणाओं को विवेचित एवं विश्लेषित कर सके हैं तथा व्यक्ति-बोधी चारित्रिक, सामाजिकता का प्रतिपादन करते हैं और नारियाँ ही उनकी इस सामाजिकता को सापेक्ष बनाती हैं।

— कलालोक, ९३ अशोकनगर, उदयपुर (राज.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम की शक्ति-पूजा का पौराणिक एवं मनोवैज्ञानिक निकष

● विष्णुचन्द्र पाठक

'राम की शक्ति पूजा' एक अद्वितीय काव्य है। कवि चूड़ामणि निराला की प्रतिभा का प्रखर रूप जहाँ एक ओर इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है वहाँ दूसरी ओर चिन्तन की दृष्टि से भी कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इसके क्षितिजों पर प्रस्फुटित हो सका है। देवी भागवत तथा शिव महिम्न स्तोत्र के आधार पर इस काव्य की कथा को वाणी प्राप्त हो सकी है। चिंतन की दृष्टि से इस काव्य की हमको सबसे बड़ी विशेषता पौराणिक सत्य तथा मनोवैज्ञानिक सत्य का मंजुल समाहार प्रतीत होती है। कवि आधुनिक युग का स्रष्टा है। अतः पौराणिक सत्य को हृदयंगम करते हुए उसने मनोवैज्ञानिक सत्य को भी परम्परित राम के अलौकिक चरित्र को सामान्य मानवीय भूमि पर उतार कर साकार करके दिखलाया है। अस्तु, बाह्य दृष्टि से 'शक्ति पूजा' का दार्शनिक निरूपण स्पष्ट रूप से दो धाराओं में परिवर्तित दृष्टिगोचर होता है। सामान्य मानवीय दुर्बलताएँ राम के चरित्र में है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है तथा दूसरी ओर शक्ति की आराधना के रूप में पौराणिक सत्य को स्थान प्राप्त हुआ है।

निराला का काफी समय रामकृष्ण आश्रम में व्यतीत हुआ था। अतः पौराणिक सत्य की अभिव्यक्ति के रूप में रामकृष्ण का सबसे अधिक प्रभाव कवि पर प्रतिबिम्बित होता है। 'रामकृष्ण वचनामृतः' के तीन भागों को भी निरालाजी ने बंगला से हिन्दी में अनूदित किया था, जिसमें रामकृष्ण के चिंतन का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उपस्थित है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि परमहंसजी का चिंतन कोरा चिंतन ही नहीं था, अपितु उनके जीवन में साकार था जिसको आगे चलकर उनके विवेकानन्द आदि प्रभृति शिष्यों ने विश्व प्रांगण में सम्पूर्ण मानव जाति के हेतु सुगम बनाया।

पौराणिक परिवेश में शक्ति-पूजा की प्रकल्पना बंगाल की शक्ति पूजा से गृहीत है। बंगाल में जिस वैभव से काली माता की उपासना की जाती है, करीब-करीब वहीं उपासना पद्धति 'शक्ति-पूजा' के क्षितिजों पर उभर कर आई है। बंगाल की काली प्रचण्डता, करालता एवं असुर विनाशिनी शक्ति के उग्रतम रूप में प्रदर्शित की गई है। स्वामी विवेकानन्द के 'अम्बा स्तोत्र' तथा 'काली दी मदर' नामक उनकी अंग्रेजी कविता में शक्ति की कल्पना विकराल एवं जगतव्यापी रूप में की गई है। इस तथ्य को धनञ्जय वर्मा ने भी अपने ग्रन्थ में स्वीकार किया है। विवेकानन्द ने शक्ति को आन्तक माना है और उसकी श्वास में मृत्यु की कल्पना की है। वह सर्व संहारिणी है। विवेकानन्दजी को परमहंसजी के अत्यधिक निकट रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। रामकृष्णजी के जीवन में भक्ति तथा वेदान्त का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भक्ति और वेदान्त सैद्धान्तिक दृष्टि से एक दूसरे के विरोधी हैं। 'रामकृष्ण लीलामृत' के आधार पर तो इन्होंने मुस्लिम तथा ईसाई साधना पद्धति मे भी दक्षता प्राप्त की थी। वेदान्त में जगत की प्रकल्पना सर्प रज्जु से की जाती है, जिसका आधार भ्रम या माया है। विवेक के आविर्भाव से माया की मरीचिका का तिरोधान हो जाता है। परिणाम स्वरूप भ्रम या माया से उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और जीव तथा ब्रह्म का तादात्म्य हो जाता है। परन्तु दूसरी भक्ति में साधक का अपने साध्य में वेदान्त के समान तादात्म्य नहीं होता, अपितु वह तो अपने इष्ट की छवि की ललक को निहारता हुआ, आनन्द में डूबा रहता है। परमहंसजी का जीवन इन दोनों धाराओं का समन्वय ही है। वे एक ओर काली माँ के मन्दिर में बालक के समान बिलखते थे, वहाँ दूसरी ओर बाबा तोतापुरी से दीक्षा लेकर असम्प्रज्ञात समाधि का आनन्द भी अनुभव किया था एवं ब्राह्मणी के माध्यम से तान्त्रिक और हठयोगिक साधना को भी अपनाया था।

स्वामी विवेकानन्दजी ने परमहंस के इस साकार दर्शन को ही विश्व के चारों ओर फैलाया था। अमरीका में अपनी एक भाषणमाला में जो कि आगे चलकर 'राजयोग' के नाम से आज भी उपलब्ध है, इसमें शक्ति की साधना ठीक इसी रूप में की गई है, जैसी कि 'शक्ति पूजा' में है। स्वामीजी ने हठयोग तथा राजयोग का समन्वय किया है। हठयोग को राजयोग का साधन माना है। इसके मूल में शक्ति की प्रकल्पना की है। उनका स्पष्ट मत है कि जब तक साधक शक्ति की उपासना में सफल न हो जायेगा तब तक शक्ति के अधम रूप—लौकिक माया से साधक को छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकता तथा अद्वैत साधना का अधिकारी भी नहीं हो सकता। इस शक्ति को स्वामीजी ने प्रत्येक जीव में समान माना है, जो इस शक्ति को अपने अन्तस में जागृत कर लेता है वह समाधि की निर्विकल्प या असम्प्रज्ञात अवस्था में पहुँचकर विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता बन जाता है। अतः 'शक्ति पूजा' में राम से इसी शक्ति को हृदय में जागृत करवाया गया।

उनके विचार की दूसरा पक्ष इस शक्ति पर विवेक रखना है। यह शक्ति प्रकृति का लक्षण है। शैव दर्शन में शिव को 'चिन्मय' तथा शक्ति को 'विमर्श रूपणी' माना गया है। 'शिव' बिना 'शक्ति' के 'शव' है तथा बिना 'शिव' के 'शक्ति' विनाशक है। शक्ति का आराधना से स्वामीजी के विचारानुसार वेदान्त की 'माया' का प्रभाव समाप्त हो जाता है तथा साक्षात् ब्रह्म का जीव साक्षात्कार करता है। इस शक्ति की उपासना में विवेक की अत्यन्त आवश्यकता है।

अस्तु, रामकृष्ण परमहंस के जीवन तथा स्वामी विवेकानन्दजी के इन विचारों को ही निरालाजी ने 'राम की शक्ति पूजा' में साकार रूप में राम के जीवन में उतार कर दिखलाया है। राम सत् के लिए लड़ रहे हैं, परन्तु शक्ति सहयोग असत् प्रवृत्तियों के प्रतीक रावण की ओर है। राम का समस्त रण-कौशल विफल हो जाता है। जामवन्त के उद्बोधन पर राम शक्ति की उपासना करते हैं। यह शक्ति की उपासना ठीक स्वामी विवेकानन्द के राजयोग में दिये गये भाषण के अनुरूप है, जिसमें हठयोग की साधना को उन्होंने साध्य रूप में न मानकर साधन के रूप में माना है। हठयोग का साध्य सुन्दर स्वास्थ्य है। इस शक्ति की साधना में आवश्यकता है कि लौकिक जीवन से पूर्ण रूप से अनासक्ति हो। जबकि राम शक्ति पूजा में जगत के प्रति आसक्ति रखते हैं तब तक शक्ति की कृपा उन पर नहीं होती। नारी के आसक्ति उनके हृदय में है, तभी तो उनके नेत्रों से सीता के स्मरण पर अश्रुधारा बह निकलती है। हनुमान शुद्ध रूप से निरासक्त हैं, वे राम की अवस्था को देखकर शक्ति को ही नष्ट करने के लिए आकाश की ओर गमन करते हैं, जहाँ अंजना के रूप में शक्ति हनुमान को शान्त करती है। राम जगत का उद्धार करने के लिए निकले हैं, वे जब तक शक्ति के प्रशंसक नहीं बनते तब तक उनके द्वारा जगत का उद्धार संभव नहीं। जामवन्त के कथन के बाद राम निरासक्त होकर युद्ध का सेनापति लक्ष्मण को बनाकर शक्ति की आराधना करते हैं। इस साधना में वे अपने हृदय की सुषुप्त शक्ति को जिसकी गति जगत के प्रति आसक्ति के कारण बहिर्गत हो रही थी, आन्तरिक करते हैं। शक्ति एक बार फिर राम की परीक्षा लेती है। राम असफल से प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनके मन में फिर जगत के प्रति आसक्ति का आविर्भाव हो जाता है। उनको सीता की स्मृति फिर हो उठती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु तत्काल विवेक जागृत हो जाता है और पुन्डरीकाक्ष होने के कारण अपना नेत्र साधना के होमकुन्ड में विसर्जित करने को उद्यत हो जाते हैं। इसी समय शक्ति प्रकट होती है। तथा राम के शरीर में प्रवेश कर जाती है। राम के शरीर में इस शक्ति के विलीन होने से तात्पर्य है कि शक्ति जिसकी गति बहिर्गत थी, आन्तरिक हो जाती है। यहाँ पर निरालाजी ने विवेकानन्द के इस कथन को साकार करके दिखलाया है कि मानव मात्र में समान ही शक्ति है। अन्तर केवल उसकी बाहरी गति को आन्तरिक करने का है। इस नीचे से तात्पर्य इन्द्रिय पक्ष से है। राम की सीता के प्रति आसक्ति इसका प्रमाण है।

दूसरे पक्ष में रावण को भी प्रथम राम की साधना से पूर्व शक्ति का सहयोग प्राप्त है। राम के पास शक्ति होते हुए भी विवेक नहीं है। अतः यहां शक्ति जो पहले उसकी सहायक थी, रावण में विवेक समाप्त होते ही उसके विनाश का कारण बन जाती है। राम साधना के द्वारा जहाँ एक ओर अपने मन के 'शिव' को जागृत करते हैं वहाँ वे 'सत्' के लिये लड़ रहे होने के कारण 'सामाजिक शिव' को भी चरितार्थ करने में प्रयत्नशील है। रावण में 'शिव' तत्व नहीं है। अतः वही 'शक्ति' जो रावण का सहयोग कर रही थी, रावण में 'शिव' की अनुपस्थिति के कारण राम को अपना वरद हस्त प्रदान कर रावण को नष्ट कर देती है।

मनोवैज्ञानिक सत्य के परिप्रेक्ष्य में राम का चरित्र प्रथम बार 'शक्ति पूजा' में लौकिक धरातल पर अभिव्यक्त किया गया है। निराला ने राम को एक सामान्य व्यक्ति के समान रोता हुआ बतलाया है। राम रावण पर सीताजी की प्राप्ति के लिये आक्रमण करते हैं। प्रातः से सायं तक अनवरत कठिन युद्ध के पश्चात लौटती हुई वानर सेना के साथ दुःखी तथा मुरझाये मन युक्त राम का वर्णन कवि ने इस काव्य के प्रारम्भ में ही किया है। राम एक शिला पर आकर बैठते हैं। चारों ओर स्तब्ध सन्नाटा है। इस एकान्त वातावरण में राम को अपने मन के अन्तर्दर्शन का अवसर प्राप्त होता है। मनोविज्ञान का यही सिद्धान्त है कि एकान्त में ही मनुष्य की चिन्तन शक्ति अधिक जागरूक रहती है। इस एकान्त चिन्तन में राम की वेदना यहाँ तक पहुँच जाती है कि वे कुछ क्षण के लिये इतने खो से जाते हैं कि भूल जाते हैं कि सभा में बैठे हुए हैं तथा उनके नेत्रों से सीता की पूर्व स्मृति के कारण वर्तमान के संघर्ष को देखते हुए अश्रु की धारा बह निकलती है। यहाँ पर पूर्व दीप्ति के द्वारा राम के हृदय के मनोवैज्ञानिक सत्य को ही उभारा है। पहले ही धनुभंग करके एक 'संघर्ष' के द्वारा ही सीता को प्राप्त किया था, आज उसी की प्राप्ति के लिये फिर संघर्ष करना पड़ रहा है। सम्प्रति की विफलता तथा भूतकाल की सफलता के कारण उनके नेत्र से आँसू बहने का यही रहस्य है कि राम थोड़े समय के लिये भूल से जाते हैं कि अब सीता प्राप्त न होगी। जामवन्त के उद्बोधन के बाद वे फिर शक्ति की साधना करते हैं। परन्तु साधना में विघ्न आ जाने से राम फिर एक बार और निराश हो जाते हैं। एक क्षण के लिए तो राम यह समझ बैठते हैं कि अब सीता की प्राप्ति नहीं होगी। मनोविज्ञान की दृष्टि से राम के से मन की सी स्थिति वाले व्यक्ति आत्महत्या करते हैं। राम की भी आत्महत्या करने की सी स्थिति आ जाती है। नेत्र की आहुति देने को उद्यत होने मात्र से आत्महत्या के कठोर हृदय को राम में देखा जा सकता है। जीवन के पग-पग पर आज संघर्ष हो रहा है। इस संघर्ष में आशा-निराशा की विद्युत मानव-जीवन के आकाश में चमकती तथा बुझती रहती है। कवि चाहता तो राम को संघर्षरत दिखाता हुआ भी अन्त में केवल दो पंक्तियाँ कह सकता था कि राम तो ईश्वर हैं, वे लीला करने के लिये सामान्य मानव की तरह कर्म कर रहे हैं। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। गोस्वामी तुलसीदास बीच-बीच में राम के ईश्वरत्व का स्मरण करते चलते हैं परन्तु निराला के राम तो बीसवीं शताब्दी के राम हैं।

(शेष पृष्ठ ४६२ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्रिका का प्रबन्धत्व

● सुश्री सन्तोषकुमारी

रीतिकालीन प्रबन्धकारों में केशव का नाम सर्वोपरि है। 'वीरसिंहदेव चरित', 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' तथा 'रामचन्द्रिका' उनके प्रबन्ध काव्य हैं। शेष कृतियाँ प्राय: काव्यांग-विवेचन से सम्बन्धित हैं। इन तीन प्रबन्ध काव्यों में से भी 'रामचन्द्रिका' ही उनकी कीर्ति का मूलाधार है। वह प्रबन्ध-शैली पर रचित रामाख्यान है जो प्रथमत: दो खण्डों में, तदुपरांत ३६ प्रकाशों में विभक्त है। यद्यपि हिन्दी के महाकाव्यों की गणना करते समय 'रामचन्द्रिका' को भी उसी कोटि में रखा जाता है परन्तु कतिपय विद्वानों को इसकी प्रबन्धात्मकता में सन्देह है।

भारतीय काव्यशास्त्र में बन्ध की दृष्टि से काव्य के दो मूल भेद स्वीकार किए गए हैं—प्रबन्ध काव्य व मुक्तक काव्य। इस भेद का आधार काव्य का बाह्याकार ही है अतएव किसी भी काव्य के काव्य-रूप के निर्धारण के लिए हमारे पास यही एकमात्र आधार है। प्रबन्ध-काव्य मुक्तक की अपेक्षा उच्च माना जाता है क्योंकि यह एक उदात्त और व्यापक रचना होती है जबकि मुक्तक काव्य मात्र एक छन्द का भी हो सकता है।

प्रबन्ध काव्य की सर्वप्रमुख अनिवार्यता है कथा का अविच्छिन्न प्रवाह तथा उसका व्यवस्थित व क्रम-बद्ध नियोजन। कथा के अभाव में उसके छन्दों को मुक्तक काव्य की श्रेणी में रख दिया जाएगा। मुक्तक की ही भाँति प्रबन्ध के छन्द भी चमत्कार व सौन्दर्य से युक्त रहते हैं परन्तु जहाँ मुक्तक के छन्द स्वत:पूर्ण व आत्मनिष्ठ होते हैं वहीं प्रबन्ध के छन्दों में परस्पर सापेक्ष सम्बन्ध रहता है। कथासूत्र की उपस्थिति के कारण, अपना स्वतन्त्र अर्थ रखते हुए भी, इन छन्दों का महत्व पूर्ववर्ती छन्दों की पृष्ठभूमि में ही अधिक स्पष्ट होता है। प्रबन्ध के छन्दों की स्थिति भी विशिष्ट होती है, वे क्रमानुसार ही शृङ्खलाबद्ध होते हैं, अतएव उन्हें अपने स्थान से हिलाया नहीं जा सकता अन्यथा काव्य का सौन्दर्य खण्डित हो जाता है।

काव्य के इन दोनों प्रकारों में व्यावर्तक तत्व तो कथा की स्थिति ही है किन्तु इसके अतिरिक्त उनके अन्य तत्वों में भी पर्याप्त अन्तर है कथासूत्र बनाने के लिए प्रबन्धकार को पात्रों की कल्पना करनी पड़ती है और चूँकि प्रबन्ध विस्तृत रचना होती है अत: उसमें उन पात्रों के सम्पूर्ण जीवन अथवा उसके एक पक्ष का पूर्ण चित्रण होता है। पात्रों की अवस्थिति के कारण उनका व्यवस्थित चरित्र-चित्रण और तदर्थ उनकी कर्म-परम्परा का क्रमबद्ध वर्णन भी प्रबन्ध में वांछनीय है। परन्तु मुक्तक-रचना का विषय तो कोई मनोभाव की अभिव्यक्ति करना भी हो सकता है—अतएव संक्षिप्त विषयों के कारण उसमें पात्रों की अवस्थिति अनिवार्य नहीं। इसी कारण उसमें प्राय: घटनाओं का अभाव रहता है। प्रबन्ध काव्य में जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण होता है अत: कुछ प्रसंग ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम मार्मिक या भावपूर्ण कह सकते हैं। प्रबन्धकार में कथा के इन मार्मिक स्थलों को पहचानने तथा उन प्रसङ्गों की भावना को सुरक्षित रखते हुए तदनुकूल भाषा से उनकी व्यञ्जना करने की क्षमता होनी चाहिए। प्रबन्ध काव्य की उदात्तता के अनुकूल ही उसकी भाषा भी गौरवमयी तथा गंभीर होनी चाहिए। नाना प्रकार के वर्णनों की अभिव्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सक्षम भाषा ही इसके महत् उद्देश्य का भार वहन कर सकती है परन्तु इन वर्णनों के चक्कर में मूल कथा की कहीं भी उपेक्षा नहीं की जाती।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबन्ध काव्य के लिए तीन ही मुख्य लक्षण माने हैं—सम्बन्ध निर्वाह, कथा के गम्भीर और मार्मिक स्थलों की पहचान तथा दृश्यों की स्थानगत विशेषता। यहाँ सम्बन्ध-निर्वाह से शुक्ल जी का अभिप्राय कथाक्रम से ही है। उन्हें केशव की रामचन्द्रिका में कहीं भी प्रबन्धात्मकता लक्षित नहीं होती। उन्होंने लिखा है— "सम्बन्ध-निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है। कथा का चलता प्रवाह न रख सकने के कारण ही उन्हें बोलने वाले पात्रों के नाम नाटक के अनुकरण पर पद्यों से अलग सूचित करने पड़े हैं।' इस प्रकार शुक्लजी को इस काव्य में कथा-क्रम की शृङ्खला का अभाव दृष्टिगत होता है। प्रबन्ध काव्य की प्रधान विशेषता—कथा का अविच्छिन्न प्रवाह ही इस काव्य में दृष्टिगत नहीं होता। ग्रन्थ के आरम्भ में ही रामादि भाइयों के जन्म अथवा बाल-लीला का कोई वर्णन नहीं है, मात्र एक ही छन्द में दशरथ तथा उनके चारों पुत्रों का परिचय दे दिया गया है। इसके उपरान्त विषय से काफी दूर लाकर सरयू, वाटिका, अयोध्या नगरी तथा राजसभा आदि के वर्णन में कई छन्द लिख दिए हैं। इसी प्रकार विश्वामित्र तो दशरथ से केवल राम की ही याचना करते हैं परन्तु तभी राम और लक्ष्मण दोनों भाई जाते दिखाई देते हैं। इसके उपरान्त अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों को केवल एक ही छन्द में वर्णित किया है। कैकेयी द्वारा राम के लिए वनवास का वर माँग लेने पर जब राम को यह सूचना मिलती है तो वे तुरन्त तैयार हो जाते हैं और उधर सीता तथा लक्ष्मण को साथ न जाने के लिए समझाते दिखाई पड़ते हैं पर तभी तीनों मार्ग में चलते हुए प्रदर्शित किए गए हैं। धनुष-यज्ञ प्रसंग में यद्यपि केशव की मौलिकता है परन्तु इस प्रसंग में जितनी नाटकीयता है उतनी मनोरमता नहीं। केशव ने कुछ प्रसंगों को तो अति विस्तार से प्रस्तुत किया है और कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों को बहुत कम स्थान दिया है या केवल सूचना मात्र दी है। इसके साथ ही इस काव्य में छन्द-परिवर्तन इतना अधिक और तीव्र है कि कथा की गति का अभाव सा दिखाई पड़ता है। डा० किरणचन्द्र वर्मा को रामचन्द्रिका में क्रम, गीत व अनुपात तीनों का ही अभाव दिखाई पड़ता है। डा० हीरालाल दीक्षित भी इस अभाव को स्वीकार करते हैं। शुक्लजी की ही भाँति आलोचक प्रवर गुलाबरायजी का भी यही कथन है कि—'केशव की रामचन्द्रिका यद्यपि प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई थी तथापि उसमें मुक्तक की सी स्फुटता विद्यमान है। कथा में तारतम्य की अपेक्षा अलंकार एवं पाण्डित्य-प्रदर्शन की ओर कवि की रुचि अधिक थी। कथाओं में न तारतम्य है न अनुपात।"

डा० विजयपालसिंह ने यद्यपि यह स्वीकार किया है कि रामचन्द्रिका में कई स्थलों पर व्याघात उपस्थित होते हैं पर साथ ही वे केशव का पक्ष लेते हुए यह भी कहते हैं कि रामचन्द्रिका एक महाकाव्य है, इतिहास नहीं – अतः प्रत्येक लघु घटना का वर्णन उसमें अनिवार्य नहीं। उनका एक तर्क यह भी है कि राम कथा, जो भारतीय जन-जीवन में इतनी रम चुकी है, के कतिपय प्रसंग यदि कवि ने स्वयं वर्णित नहीं किए तो कथा की एकसूत्रता खण्डित नहीं होती। संवादों की बहुलता को जहाँ कई विद्वानों ने काव्य की त्रुटि माना है वही डा० सिंह का मत यह है कि स्रोतस्विनी के किनारे अवस्थित मनोहर पादप-राशि से उसके पथ की पूर्णता में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आती। परन्तु कोई भी पाठक, जो रामकथा से अपरिचित हो, केशव की रामचन्द्रिका पढ़कर रसानुभूति नहीं कर सकता। यदि पाठक को उसमें कथा-क्रम का आभास मिलता है तो उसका कारण पाठक के अवचेतन मन में विद्यमान रामकथा की धारणा है न कि इस काव्य की प्रबन्धात्मकता। यहाँ तो कथा कहीं लंगड़ाती हुई चलती है, कहीं उछलती हुई और कहीं कूदती हुई; तो केवल कुछ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थलों पर वह सहज गति से अग्रसर होती है।

रामचन्द्रिका के छन्दों में परस्पर सापेक्ष सम्बन्ध नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य है कि एक छन्द द्रुत गति का है तो दूसरा मंद गति का। इस द्रुत परिवर्तन से कथा में गति की अपेक्षा व्याघात उत्पन्न होता है। प्रायः महाकाव्यों में एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया जाता है परन्तु रामचन्द्रिका तो छन्दों का अजायबघर है। छन्दों का पारस्परिक सम्बन्ध संवादों में तो अवश्य है पर कई स्थलों पर इसका अभाव भी है। नायक, प्रतिनायक, नायिका आदि पात्रों की स्थिति तो है और उनके क्रिया-कलाप का वर्णन भी है परन्तु पात्रों के चरित्रों का जो रूप केशव ने प्रस्तुत किया है वह कदापि सराहनीय नहीं। राम को कथारम्भ में केशव ने 'अवतारी अवतारमणि' कहा है पर उनके क्रिया-कलाप उन्हें एक स्त्रैण पुरुष तथा मुगल सम्राटों के समान विलासी शासक ही सिद्ध करते हैं। सीता, कैकेयी, कौशल्या, भरत आदि के चरित्रों में भी कोई प्रशंसनीय वैशिष्ट्य नहीं दिखाया गया। केशव अपने पात्रों को वह स्तर नहीं दे सके जो वाल्मीकि व तुलसी ने दिया था। इस प्रकार इस काव्य में प्रायः प्रबन्धात्मकता नहीं है।

कथा में मार्मिक स्थलों की पहचान तथा उनकी भावपूर्ण व्यंजना भी एक प्रबन्ध में अति अपेक्षित रहती है पर केशव की लेखनी रामकथा के मार्मिक प्रसंगों पर टिकती नहीं, उनका कवित्व मार्मिक स्थलों पर मुखरित नहीं हुआ है। राम को ऋषि के हाथों में समर्पित कर क्या दशरथ को वेदना नहीं हुई? परन्तु केशव कहते हैं कि वे उठकर महल में चले गये और अपने अश्रुओं को छिपा लेते हैं। इसी प्रकार कैकेयी द्वारा वर माँगने पर केवल यही कहा गया है—'यह बात लगी उर वज्र तूल,

हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल।'

तथा सहसा राम उठकर वन को चल देते हैं परन्तु जाते-जाते वे कौशल्या को पतिव्रत तथा विधवा धर्म का उपदेश देना नहीं भूलते। ऐसे मार्मिक स्थलों पर ऐसे अशोभनीय प्रसंग को पढ़कर गुलाबरायजी को यह कहना पड़ा कि—'केशव ने मार्मिक स्थलों का भी ध्यान नहीं रक्खा। वन-गमन के समय वे रामचन्द्रजी द्वारा कौशल्या को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिलाते हैं जो सर्वथा अनुपयुक्त स्थल था। रामचन्द्रजी भगवान होते हुए भी कौशल्या के पुत्र थे। वे क्या अपनी माता को वैधव्य का आचार बताते? यदि इसी का वर्णन करना था तो वशिष्ठजी के मुख से अधिक उपयुक्त होता, वह भी दशरथ के देहावसान के पश्चात्।' —आचार्य शुक्ल ने तो यहाँ तक कहा है कि केवल एक बड़ा प्रबन्ध लिखने की इच्छा होने के कारण केशव ने रामकथा ले ली है पर उस कथा में जो मार्मिक प्रसंग हैं उनकी ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। ऐसे प्रसंग या तो छोड़ दिये हैं या संकेत-मात्र दे दिये हैं। मार्ग में श्रम-हरण, भरत का अयोध्या प्रत्यागमन तथा चित्रकूट को प्रस्थान, सीता-हरण तथा रामविलाप जैसे भावपूर्ण प्रसंगों की अभिव्यक्ति केशव सहृदयता से नहीं कर पाए। परन्तु डा० विजयपालसिंह ने यहाँ भी कवि का ही पक्ष लिया है। उनके अनुसार 'भिन्न रुचिहि लोकः' होने के कारण यह आवश्यक नहीं था कि वही प्रसंग उन्हें भी मार्मिक लगते जो तुलसी को मार्मिक प्रतीत हुए; उन्हें राज-दरबार, युद्ध, नगर, वाटिका, सेना की सज्जा आदि प्रसंग भावपूर्ण लगे जिनकी अभिव्यक्ति में वे सफल हैं पर इस तर्क के उत्तर में यही कहा जायगा कि कथा से मार्मिक प्रसंग विभिन्न वर्णनों में नहीं अपितु घटनाओं के चित्रण में होते हैं। स्पष्ट यही होता है कि केशव की रुचि नाना वर्णनों में अधिक रमी है, कथा में नहीं। ये वर्णन भी चमत्कारवादी कवि की लेखनी से प्रसूत होने के कारण आलंकारिक चमत्कारों से युक्त हैं जिसके परिणामस्वरूप न तो भावों की प्रकृत व्यंजना हो सकी है न हृदयग्राही वस्तु-वर्णन ही। कहीं-कहीं तो औचित्य अनौचित्य की भी परवाह नहीं की गई जैसे राम द्वारा कौशल्या को उपदेश तथा भरत की चित्रकूट यात्रा के प्रसंग में सेना की तड़क-भड़क का वर्णन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होने के कारण प्रायः प्रकृति चित्रण भी होता है पर इस काव्य में केवल परम्परा-निर्वाह के लिए कुछ वर्णन हैं जो श्लिष्ट भाषा में हैं। इनके केवल पांडित्य प्रदर्शित होता है, सौन्दर्य नहीं। भाषा भी प्रबन्धानुकूल उदात्त है अवश्य पर छन्दों की असामान्य योजना के कारण विशेष प्रभावोत्पादक नहीं रही। स्तुति वन्दना के प्रारम्भिक छन्दों से ही भाषा की क्लिष्टता का बोध होता है। इस कारण रामचन्द्रिका में अलंकार-सौन्दर्य चाहे हो पर वस्तु सौन्दर्य नहीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध काव्य के मूल लक्षणों की कसौटी पर केशव का यह प्रसिद्ध ग्रन्थ पूरी तरह खरा नहीं उतरता। यहाँ केशव के पक्षपाती आलोचक यह तर्क देते हैं कि रामचन्द्रिका का महत्व इसलिए कम लगता है क्योंकि उसे रामचरितमानस की तुलना में रखकर देखा जाता है परन्तु यदि रामचरितमानस न होता तो संभवतः रामचन्द्रिका की रचना भी न हुई होती। रामचरितमानस की तुलना में निश्चय ही रामचन्द्रिका का महत्त्व कम है पर उसका अपना सौन्दर्य है। चन्द्रिका तो मानस की पूरक सी प्रतीत होती है। दोनों कवियों के दृष्टिकोण तथा रचनोद्देश्य में अन्तर था अतः दोनों काव्य भिन्न प्रकार के हैं। रामचन्द्रिका में प्रबन्धात्मकता की अपेक्षा नाटकीयता अधिक है। अतः शुक्लजी का यह विचार उचित ही है—"रामचन्द्रिका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है पर यह समझ रखना चाहिए कि केशव केवल उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर उनकी दृष्टि नहीं थी। अतः वे मुक्तक रचना के ही उपयुक्त थे। प्रबन्ध-रचना के नहीं। प्रबन्ध पटुता उनमें कुछ भी नहीं थी। × × सारांश यह कि प्रबन्ध-काव्य-रचना के योग्य न तो केशव में अनुभूति ही थी और न शक्ति।"

ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने काव्य-रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए यही कहा है कि वाल्मीकिजी ने स्वप्न में उन्हें भक्ति का उपदेश देकर रामकथा रचने की प्रेरणा दी थी पर उस भक्ति-भावना को कवि आद्योपान्त बनाए नहीं रख सका। गुलाबरायजी के अनुसार वास्तव में यह काव्य विषय के अनुसार तो भक्तिकाव्य है और शैली के अनुसार रीतिकाव्य। केशव कवि से पहले आचार्य थे और पाण्डित्य प्रदर्शन में उनकी रुचि भी थी। अतएव वे अपने काव्य को अपने पाण्डित्य से तो मण्डित कर सके हैं, उसमें प्रबन्धोपयुक्त सरलता, प्रवाह व औदात्य नहीं ला सके।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामचन्द्रिका को प्रबन्ध की दृष्टि से असफल कहते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह मुक्तक काव्य है। वास्तव में उसमें कथा तो है किन्तु वह व्यवस्था नहीं जो प्रबन्ध के लिए अपेक्षित होती है। रामचन्द्रिका की रचना तो प्रबन्ध-रचना के उद्देश्य से ही हुई है किन्तु केशव उसका निर्वाह नहीं कर पाए। अतः इसका रूप प्रबन्ध का होते हुए भी शैली वैसी नहीं है।

—३१८६, कूँचा ताराचन्द, दरियागंज, दिल्ली-६

[पृष्ठ ४५८ का शेषांश]

इस प्रकार निराला ने रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा शैव-दर्शन के चिन्तन को अपनी शक्ति पूजा में दर्शाया है। इसके साथ-साथ कवि आज के संघर्षमय जीवन का लेखा-जोखा भी राम जैसे अलौकिक चरित्र के माध्यम से प्रकट करते हैं।

—अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
श्री लालबहादुर शास्त्री कालेज, जयपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता और सौन्दर्य-बोध

● कु० आराधना सक्सेना

सौन्दर्य बोध अपने आप में विवादास्पद विषय है। सौन्दर्य को परिभाषा के बन्धनों में नहीं बाँधा जा सकता। यद्यपि समय-समय पर सौन्दर्य की परिभाषा दी गई हैं, लेकिन समग्र रूप से सौन्दर्य क्या है? यह नहीं कहा जा सकता। महाकवि बिहारी ने उचित ही कहा है--

"समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
जो जैती जाकी रुचि, तित तेतो सुन्दर होय॥"

सौन्दर्य-बोध भी गतिशील है। कविवर माघ के शब्दों में 'दिने दिने यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयताम:' अर्थात् नित्यप्रति नवीनता धारण करने वाली वस्तु ही सौन्दर्य का रूप है। सौन्दर्य का बोध देश, काल, विचार और भावों के अनुरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है। विभिन्न कालों में साहित्यकारों के सौन्दर्य-बोध पर यदि दृष्टिपात करें तो प्रत्येक युग में उसे परिवर्तित पायेंगे।

रघुवंश में कालिदास ने राजा दिलीप के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—राजा दिलीप चौड़ी छाती, बैलों जैसे शक्तिशाली कन्धे और शालवृक्ष की भाँति लम्बी भुजाओं वाले थे। किन्तु मध्यकाल तक आते-आते तुलसी के राम का सौन्दर्य देखिए—

"नव कंज लोचन कज पद कर कंज पद कंजारुणम्।"

इसी प्रकार रीतिकाल और छायावाद काल में नारी ही कवियों का लक्ष्य रही किन्तु दोनों युगों के नारी सौन्दर्य चित्रण में महान अन्तर है। स्पष्ट है कि सौन्दर्य के मान निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं।

नयी कविता का सौन्दर्य निरूपण बिलकुल नया है और इसीलिए विवादास्पद है। कुछ लोग तो नयी कविता में सौन्दर्य निरूपण पाते ही नहीं। नयी कविता की मुख्य प्रवृत्ति जीवन के समस्त यथार्थ का अविकल चित्रण है। बाह्य जीवन की समस्त अशोभन कर स्थितियों का विश्लेषण करन कवि का ध्येय है।

आज के जीवन में अनगढ़ और भदेस हमारे अधिक निकट है। यही कारण है कि आज नये कवि का सौन्दर्य-बोध बदल गया है। नये कवियों ने उन कवियों को ललकारा है, जो काल्पनिक चित्रण करते हैं—

"चाँदनी चन्दन सदृश्य हम क्यों लिखें?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें?
हम कहेंगे—चाँदनी उस रुपये सी है,
जिसमें चमक तो है पर खनक गायब है।
हम कहेंगे—मुँह घर अजायब है।
जिसमें बेतुके बेमेल जिन्दा और मुर्दा भाव रहते हैं।"

नये कवियों के विचार से सौन्दर्य को केवल मधुर और कोमलता की परिधि में बाँधना अनुचित है, जिस प्रकार शरीर का ऊपरी सौन्दर्य आकर्षक है उसी भाँति अन्दर का ढाँचा भी सुन्दर और आकर्षक है। 'इनसे मिलिए' कविता में नये कवि का नखशिख सौन्दर्य देखिए—

"पाँवों से सिर तक एक जनून बेतरतीब से
बढ़े हुए नाखून
टखने ज्यों मिले हुए रखे हों बाँस।"

आज के वैज्ञानिक युग में नये कवि भी वैज्ञानिक उपमानों को चुन रहे हैं। श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाजी ने वैज्ञानिक उपमानों की सृष्टि की है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम जिसके बालों में बनावटी कर्ल्स नहीं

× × ×

थर्मामीटर के पारे सी जिसमें भावनाएँ
चढ़ती उतरती हैं।"

कामायनीकार प्रसाद का गर्भवती श्रद्धा का सौन्दर्य निरूपण बहुत ही सुन्दर है—

"केतकी गर्भ सा पीला मुंह
कुछ लज्जा नई नवेली थी।"

लेकिन नया कवि गर्भवती नारी का चित्रण करते समय नया ही उपमान ढूंढ़ लाया है—

"त्वचा तनती गई····
गर्भस्थ शिशु फूलता गया बैलून सा।"

नई कविता के सौन्दर्य-बोध के लिए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है—

"असुन्दर को या विरूप को मात्र उसकी असुन्दरता और विरूपता के आधार पर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि विरूपता और असुन्दरता भी सौन्दर्य-बोध के लिए विशेष महत्व और मूल्य की वस्तु है।"

आगे वर्माजी ने लिखा है—"नई कविता का सौन्दर्यबोध छोटे परिवेशों में छोटे आदमी की मानवीय संवेदना को स्वीकार करता है।"

कहीं-कहीं नयी कविता में पांचों इन्द्रियों से सम्बन्धित सौन्दर्य का भी वर्णन है। श्री भारती की कविता में इस प्रकार के सुन्दर उपमान की छटा मिलती है—

"जिस दिन तुमने फूल बिखेरे माथे पर
अपनी तुलसी-दल जैसे पावन होठों से
मैं सहजश: तुम्हारे गर्म वक्ष में शीश छुपा
चिड़ियों के सहमें बच्चों सा हो गया मूक।"

नयी कविता में क्षणवादिता के कारण भी सौन्दर्य-निरूपण में भदेसपन आ गया है।

नयी कविता में छन्दगत सौन्दर्य भी अपने ढंग का अनूठा ही है। नया कवि तोड़ा-मरोड़ी में विश्वास करता है, इसीलिए कहीं-कहीं चिन्हों द्वारा भी भाषाभिव्यक्ति की गई है। प्रेम की 'ट्रेजडी' का एक चित्र देखिए—

(हाय !)
← △ →
नहीं चैन
जागते ही कट गई रैन
→ ←
प्रेम यानी इश्क यानी लव
'!'
'!!'
△+△
…………………
?

सौन्दर्य के निरन्तर बदलते मानों के कारण नई कविता गद्य के अधिक निकट आती जा रही है।

अन्त में कहा जा सकता है कि नयी कविता का सौन्दर्य वास्तविकता की भावभूमि पर स्थित है, वह बौद्धिक है। नये कवियों के सौन्दर्यबोध में कल्पना के लिए गुञ्जायश नहीं है। नयी कविता ने यद्यपि परम्परा और प्राचीन काव्यगत रूढ़ियों से विद्रोह किया है, तथापि नवीन भाव, नवीन भाषा, नवीन छन्द-योजना और नये उपयोगी प्रतीकों के माध्यम से सौन्दर्य के नवीनतम मान स्थापित किये है।

—डी०-५२, ज्योति मार्ग, बापूनगर, जयपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति-मुक्त काव्य का अभिव्यंजना-शिल्प

• जगदीश्वर प्रसाद

कविता प्रतिभा की अनुवर्तिनी होती है। इसका सम्बन्ध नियम अथवा विधान से नहीं, हृदय की अनुभूतियों से होता है। अनुभूति जितनी तीव्र होगी उसकी अभिव्यक्ति में वैसी ही तीव्रता आ जाती है। बोध की इस तीव्रता की स्थिति में अलंकरण के कृत्रिम साधनों की अपेक्षा नहीं होती। भाव को चमकाने वाले अलंकार इत्यादि बाह्य उपकरण भाव के साथ स्वयं उमड़े चले आते हैं। उन्हें लाने के लिए कवि को श्रम नहीं करना पड़ता।

कवियों द्वारा नियम अथवा रूढ़िबद्धता के विरोध का सुन्दर परिचय हमें रीतियुग के उन कवियों में मिलता है जो एक युग विशेष के प्रभाव में रह कर भी उससे भिन्न दिशा में चलते रहे। इन्हें हम रीति-मुक्त भावधारा के कवि कहते हैं। आलम, ठाकुर, घनानन्द और बोधा इस भावधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्य युगों की अपेक्षा शास्त्रीयता पर सबसे अधिक बल इस युग की रचनाओं में दिया गया। दरबारी वातावरण में पलने के कारण कृत्रिमता की छाप इस युग के काव्य पर विशेष रूप में दिखलाई पड़ती है। इस युग की काव्यरचना कुछ तो अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के उद्देश्य से और कुछ काव्य-रचना की रीति के उदाहरण देने के उद्देश्य से हुई। अतः कविता व्यक्ति की स्वाभाविक अनुभूति से प्रेरित नहीं थी। इस युग में कुछ ऐसे भी कवि थे जिन्होंने काव्य की समस्त कृत्रिम वृत्तियों का विरोध किया। इन्हें हम युग के अपवाद कवि कह सकते हैं। इनके लिए कविता का उद्देश्य न तो रीतिग्रन्थों के लिए शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत करना था, न उसकी छाया ग्रहण कर अलंकार-निरूपण अथवा नायिका-भेद पर आधारित काव्य की रचना करनी थी। ये अपनी कविता को जग की कविताई से भिन्न मानते थे—"जग की कविताई के धोखे रहें ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी।" 'जग की कविताई' से यह भिन्नता इन कवियों के भाव और अभिव्यञ्जना दोनों दिशाओं में प्रतिफलित होती है।

इनमें से अधिकांश को प्रेम की व्यक्तिगत अनुभूति भी थी। प्रेम के तिरस्कृत होने पर भी ये उसकी एकान्त साधना में लीन रहे। इसकी आराधना में उन्होंने जाति, कुल, मर्यादा की परवाह नहीं की। आलम ब्राह्मण होते हुए भी शेख नामक रंगरेजिन से प्रेम करके मुसलमान बन गए। घनानन्द ने सुजान नामक वेश्या से प्रेम किया और तिरस्कृत होते हुए भी उसके प्रेम को अपने काव्य में अमर कर दिया। ब्राह्मण होते हुए भी बोधा सुभान नामक वेश्या से प्रेम करते रहे और उसके वियोग में 'विरह बारीश' की रचना की। प्रेम की ऐसी एकान्त साधना अन्य कवियों में दुर्लभ है। यही उनकी कविता का मूल प्रेरणा-स्रोत है और इसका प्रभाव उनके अभिव्यंजना-शिल्प पर भी पड़ा है। अलंकार-निर्वाह अथवा बाह्य चमत्कार-विधान से अलग हट कर उन्होंने हृदय पर साक्षात् प्रभाव डालने का यत्न किया है। उक्ति अपनी सरलता और अकृत्रिमता के कारण सहज ही मर्म-स्पर्शी हो उठी है। अकृत्रिम अभिव्यञ्जना प्रणाली का चरम रूप उनकी रचनाओं में उपलब्ध होता है। उनका शिल्प इस तथ्य का भी प्रमाण है कि स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति के लिए बाह्य अलङ्करण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधानों की अपेक्षा नहीं होती। उद्गार स्वतः निःसृत होते चलते हैं, अलङ्कार स्वयं बनते चलते हैं।

इस सहज उन्मुक्तता के अतिरिक्त उनके अभिव्यंजना शिल्प का दूसरा प्रमुख तत्व है स्वच्छन्दता। यह उनके व्यक्तित्व की समाज निरपेक्ष स्वच्छन्द, निर्भीक एवं निर्द्वन्द्व प्रकृति से प्रभावित है। इसी प्रकृति के कारण वे अपने आश्रयदाता राजाओं की स्वेच्छाचारिता के आगे झुके नहीं। दण्डित होकर भी वे अपनी टेक पर अटल रहे। उनके निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व का परिचय उस घटना में मिलता है जिसमें ठाकुर कवि ने राजा हिम्मत बहादुर के कटु शब्द कहने पर म्यान से तलवार निकाल कर अपना परिचय दिया था— नीति देनवारे है मही के महिपालन को,

हिए के विसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के।

काव्य में वे स्वच्छन्दता—रूढ़िमुक्तता—को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। यह स्वच्छन्दता विषय और अभिव्यक्ति दोनों क्षेत्रों में आवश्यक है। विषय के क्षेत्र में यह प्रेम की उन्मुक्तता के रूप में परिलक्षित होती है और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नूतन एवं स्वच्छन्द प्रयोगों के रूप में।

इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर इन कवियों ने चमत्कार उत्पन्न करने के लिए प्रायः वक्रोक्ति अथवा वाग्वैदग्ध्य का सहारा लिया है। कविता को आत्माभिव्यक्ति मानते हुए भी वे इसकी सार्थकता जन समुदाय में समुचित प्रभावोत्पादकता में मानते हैं। इसीलिए भाव तत्त्व को महत्त्व देते हुए भी इन्होंने कलातत्त्व की उपेक्षा नहीं की है। अलंकार को काव्य का कृत्रिम उपादान मानने के कारण इन्होंने प्रभावोत्पादकता का मुख्य आधार वाग्विदग्धता को बनाया। घनानन्द में यह वाग्वैदग्ध्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। संयोग की स्थिति में जो हार पहाड़-सा लगता था, वियोग की स्थिति में उन्हीं के बीच पहाड़ पड़ गये हैं।[1] नायक ने मन तो ले लिया है किन्तु छटाक भी नहीं देता।[1] श्लिष्ट प्रयोग से इसका दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि नायक ने उसका मन तो ले लिया है किन्तु एक कटाक्ष भी नहीं देता। आँखें प्रिय दर्शन की भूखी हैं। उन्हें भस्मक रोग हो गया है। कितना भी खाएँ भूख नहीं मिटती। ऐसी स्थिति में उन्हें उपवास करना पड़ रहा है। प्रिय का साक्षात्कार नहीं हो रहा है। पर्जन्य ने पर काज के लिए ही शरीर धारण किया है। वह जीवन दायक है। अतः वह नायिका की आँखों का नीर लेकर उस विश्वासघाती के आँगन मे बरसाये।

अलङ्कारों के ऐसे प्रयोग भाव की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं, अतः उपादेय हैं। अनुप्रास, यमक इत्यादि शब्दालङ्कारों का प्रयोग मात्र शब्दालङ्कार जन्य चमत्कार प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नहीं हुआ है, वे भाव की सरस अभिव्यक्ति में सहायक भी हुए हैं। कवित्त और सवैयों में भाव की नादात्मक योजना के लिए अनुप्रास का प्रयोग आवश्यक होता है।

अलंकृत शैली की उपेक्षा करने और चमत्कार विधान का प्रमुख आधार शब्द प्रयोग को बनाने के कारण इन कवियों ने मुहावरों और लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है। परिणामस्वरूप कला यहाँ लोक जीवन के निकट आ गई है। बोधा और ठाकुर में ऐसे अनेक प्रयोग मिलते हैं।

अभिव्यंजना सौष्ठव की दिशा में इन कवियों की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है—शब्द-शक्तियों पर आश्रित शिल्प विधान। हिन्दी में लक्षणाश्रित शिल्प का प्रयोग यहाँ प्रथम बार हुआ। ऐसे शिल्प में जहाँ चमत्कार लाने के लिए अलंकरण के बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती, शब्दों का उनके वाच्येतर अर्थ में प्रयोग आवश्यक हो जाता है। मूर्त्तिमत्ता लाने के लिए भी शब्दों का लाक्षणिक प्रयोग किया जाता है। छायावादी काव्य में जिस प्रकार के लाक्षणिक शिल्प का प्रयोग अंग्रेजी शिल्प के कारण हुआ उसी से मिलते शिल्प का प्रयोग घनानन्द में पहले ही हो चुका था।

---

[1] तब हार पहार से लागत हे
अब आनि के बीच पहाड़ परे।

[1] तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ कहौ
मन लेहु पै देहु छटाक नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके शिल्प की प्रशंसा करते हुए शुक्लजी ने अपने इतिहास में लिखा है—"लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में, अर्थात् वर्तमानकाल की नूतन काव्यधारा में ही, अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रगट हुई।"[1]

लक्षणा का आधार है शब्द का वाच्येतर अर्थ में प्रयोग। ऐसे प्रयोग में निहित असंगति को दूर करने के लिए कल्पना का जो विशेष प्रयोग करना पड़ता है उससे वर्ण्य विषय में विशेष मूर्तिमत्ता आ जाती है जहाँ अन्य वस्तु पर अन्य की क्रिया का किसी प्रकार का आरोप होता है। वहाँ उसकी संगति बिठाने के लिए लक्षणा का ही सहारा लिया जाता है।

ऐसे लक्षणान्वित चमत्कार के अनेक उदाहरण घनानन्द की रचनाओं में मिलते हैं। ऐसे प्रयोगों से भाषा में एक अपूर्व व्यञ्जकता आ गई है। शुक्लजी के अनुसार--"भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चला कर इन्होंने उसे अपनी ओर से शक्ति प्रदान की है। घनानन्दजी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यञ्जकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप रंग की व्यञ्जना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में

[1] इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३३६।

दूसरा नहीं हुआ। भाषा के ललक और व्यञ्जक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।"[1]

घनानन्द के अतिरिक्त ठाकुर, बोधा और आलम ने स्वाभाविक एवं लोक संवेद्य अभिव्यञ्जना के विकास की दिशा में योग दिया है। प्रेम की आराधना और व्यक्तित्व की स्वच्छन्दता के कारण ये रीतियुगीन भावधारा की संकुचित सीमा में बँधकर नहीं चले। भावाभिव्यक्ति की दिशा में स्वच्छन्दता अपना कर भी ये कविता की सफलता की कसौटी जनसमुदाय द्वारा उसकी प्रशंसा मानते रहे—"पंडित लोक प्रवीनन को, जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै।" कवि की कसौटी चित्त हरण मानने के कारण काव्य में अलंकरण के साधनों की इन्होंने उपेक्षा नहीं की। प्रभाव (चित्तहरण) के लिए चमत्कार को काव्य का आवश्यक तत्व माना और इसका आधार बनी वचन विदग्धता। यही कारण है कि शब्द-प्रयोग में इन्होंने सर्वाधिक कौशल बरता है।

कुल मिलाकर रीतिमुक्त भावधारा के कवियों में स्वाभाविक अभिव्यञ्जना की मर्मस्पर्शिता भी है और कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रभावशालिता भी। यह अभिव्यञ्जना की स्वस्थ प्रणाली है जिसमें अनुभूति की तीव्रता के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता हृदय को सहज ही प्रभावित कर लेती है।

—अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जी० एल० ए० कालेज़,
डालटनगंज।

[1] इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३३६।

सुन्दर, आकर्षक एवं कलापूर्ण
मुद्रण के लिए
सदैव स्मरण रखिए—
साहित्य प्रेस,
साहित्य कुञ्ज, आगरा-२ दूरभाष : ७२२६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

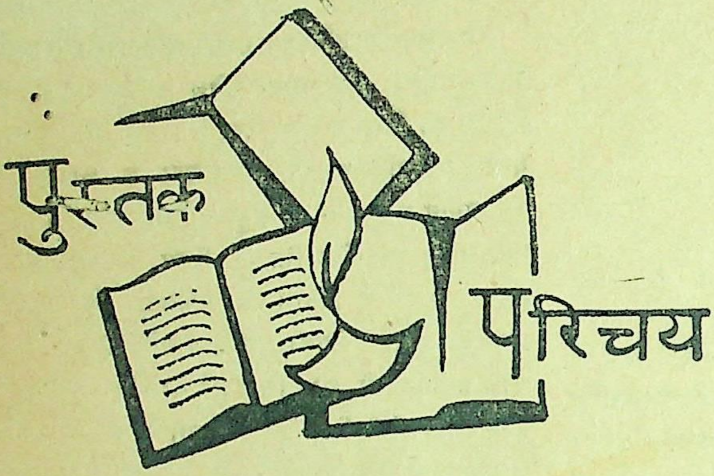

समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक को दो प्रतियां आनी चाहिये

शोध-ग्रन्थ

सन्त काव्य में परोक्षसत्ता का स्वरूप—

ले०—डा० बाबूराव जोशी, प्रका०—कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर—१। पृष्ठ ४०८, मूल्य सजिल्द २०.००।

समालोच्य पुस्तक विक्रम-विश्वविद्यालय, उज्जैन की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। इसमें संवत् १५०० से १७०० वि० तक के भक्तिकाल के सन्त साहित्य का निरूपण है। २०० वर्षों का यह लम्बा समय हिन्दी साहित्य के दर्शन, चिन्तन एवं मनन का त्रिकोण उपस्थित कर शीर्षस्थ होता है। लेखक ने इस ग्रन्थ में सन्त काव्य की मनोचेतना के माध्यम से उसके अलौकिक स्वरूप का विश्लेषण किया है। इस मन्थन में लेखक ने जीव, जगत, ब्रह्म, सत्-असत्, निर्गुण-सगुण माया-प्रपंच आदि प्रतिमानों को भी खूब ठोका बजाया है। नाथ पंथ, कबीर मत, निरंजन मत और नानक मत के साथ परोक्ष सत्ता का एकान्तिक भाव भी दिखाया गया है। साथ ही उसके पारस्परिक वैभिन्न एवं साधनों को भी अध्ययन का लक्ष्य बनाया है। इस आधार पर सन्त साहित्य के दर्शन एवं सिद्धान्तों का बड़ा ही सटीक पिष्ठपेषण हुआ है।

सगुण एवं निर्गुण सन्तों की परोक्षसत्ता विषयक मान्यताओं में लेखक ने दोनों की स्थापनाओं का वर्णन किया है और अन्त में उसके निराकरण का भी हामी हुआ है। एतदर्थ परोक्षसत्ता न तो मन, बुद्धि द्वारा ग्राह्य है न वाणी द्वारा प्रकाश्य। कोरे तर्क, वाद-विवाद अथवा कर्मकाण्ड के आडम्बर से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि उसके स्वरूप की कोई कल्पना, व्याख्या या विवेचना नहीं की जा सकती तथापि वह एक ऐसा तत्त्व है जिसे भक्त की अन्तरात्मा अनुभव करती है। फलतः वह अनुभव मात्र है। अन्ततः कहा जा सकता है कि वह सत्ता अन्तर्जामी है न कि बहिर्जामी।

सूफी और इस्लाम मतों को भी इसमें आकलित कर फारस, ईरान एवं अरब के सम्प्रदायों के साथ ईश्वर के तत्त्वों का विश्लेषण एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सन्त साहित्य के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए यह पुस्तक उपयोगी ही नहीं उसके दर्शन को समझने में भी सक्षम है।

खड़ी बोली का लोक-साहित्य—

लेखिका—डा० सत्या गुप्ता, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। पृष्ठ ४६४, मूल्य १५.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्ष्य ग्रन्थ प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। लोक-साहित्य मानव-जीवन का इतिहास है साथ ही उसकी संस्कृति और संस्कारों का परिचायक भी। लेखिका ने अपने अध्ययन को इसी रूप में ग्रहित किया है। सर्वप्रथम उसने खड़ीबोली के लोक साहित्य का परिचय और पृष्ठभूमि दी है। तत्पश्चात् उसका अध्ययन तथा लोकगीतों में समाज का खाका खींचा है। इसमें उसने ऐतिहासिक से लेकर सामाजिक और आनुष्ठानिक गीत से लेकर श्रम-गीत एवं बाल-गीत तक अपनी लेखनी दौड़ाई है।

इसके अनन्तर खड़ीबोली के लोकगीतों के भेद-प्रभेद भी किए हैं; इसमें लोक-कथा, लोक-गाथा, लोक-नाट्य आदि आते हैं। प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ आदि आती हैं। इनका सम्यक् विवेचन करने के साथ ही उसका दार्शनिक पक्ष दिखलाना ही लेखिका का अभीष्ट है। इस परिवेश में उसका मौलिक चिन्तन सराहनीय है। लोक-साहित्य की सभी विधाएँ एवं उनमें प्राप्त सामग्री आज के स्वस्थ साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इसके साथ ही कोई भी भाषा अपने पूर्व की लोक-भाषा का परिष्कृत रूप है तथा उसकी साहित्य-सामग्री उस लोक-भाषा से दोहन रूप में प्राप्त होती है। ठीक इसी आधार पर प्रस्तुत कृति का संचयन हुआ है। पुस्तक को पाठकों के निकट लाने के लिए त्यौहार एवं व्रत-विवाह आदि से सम्बन्धित लौकिक चित्रों को भी इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। इन चित्रों के कारण विषय वस्तु को समझने में अधिक सहायता मिलती है। साथ ही खड़ीबोली एवं हिन्दी-प्रदेश को भौगोलिक आधार पर भी मानचित्रों में दिखाया गया है। इनमें उसकी सीमा एवं क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपनी संस्कृति, व्यवहार, लोकाचार तथा धार्मिक बातों को जानने के लिए प्रस्तुत कृति बहुत ही उपयोगी एवं मूल्यवान् है।

—कामता गुप्त 'कमलेश'

काव्य

चकाचक—

ले०—हास्य-इन्स्पेक्टर 'डण्ठल', प्रकाशक—राकेश प्रकाशन, रावजी रोड, बिजनौर। पृष्ठ ११३, मू० १.००।

चकाचक हास्य इन्स्पेक्टर 'डण्ठल' की प्रथम काव्य-कृति है। इसमें आद्यन्त हास्य एवं व्यंग्य के छींटे बिखरे हुए हैं। कवि ने अपना उपनाम 'डण्ठल' रखा है। इसका रहस्य कवि के शब्दों में ही—

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है।
रोने वालों का यहाँ क्या काम है॥
सुनके डण्ठलियाँ सभी मुस्कराएँगे।
इसलिए डण्ठल धरा उपनाम है॥

आँचल में दूध और आँखों में पानी का डण्ठली नवीनीकरण देखिए—

बचपन से सुनता आया हूँ यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥
किन्तु नवीनीकरण हुआ है जब से इसका।
डिब्बों में है दूध और बोतल में पानी॥

संसार में मौज की छानने के लिए कवि का उपदेश है—

डण्ठल इस संसार में हैं छह नातेदार।
सास ससुर साढ़ू तथा सरहज सारी सार॥
सरहज सारी सार अगर हों हमजोली के।
बन जाओ तुम हर प्रकार उनकी टोली के॥
कह डण्ठल कविराय सास से बैर न कीजे।
साढ़ू ससुर लड़ाय ताव मोंछन पर दीजे॥

पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल एवं नित्यप्रति के व्यवहार की है, जिसे जन-सामान्य भी सरलतापूर्वक समझ सकता है। आशा है डण्ठलजी की प्रस्तुत कृति शिष्ट-हास्य के क्षेत्र में समादृत होगी।

—डा० रामस्वरूप आर्य।

निशा निमन्त्रण—

लेखक—बच्चन, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० ११२, मू० १.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रिय कवि बच्चन के सर्वप्रिय कविता संग्रह निशा निमंत्रण का यह पाकेट संस्करण है। इसका पहला संस्करण १९३८ में निकला था तब से इसके नौ संस्करण हो चुके हैं।

प्रस्तुत संस्करण पाठकों के और अधिक लाभ के लिए ही लिखा गया है।

तुम्हारी याद के बादल—

ले०-शरद, प्रकाशक-अनुराग प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ ९९. मूल्य ६)

शरदजी की यह काव्य पुस्तक शृङ्गार प्रेमी पाठकों के लिए रुचिकर होगी और प्रकाशकों के लिए भी उसका बड़ा महत्त्व है। किन्तु मूल्य अधिक होना अखरता है।

हुस्न और इश्क—

लेखक-सं० प्रकाश पण्डित, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, देहली। पृष्ठ १७४, मूल्य २.००।

सौन्दर्य और प्रेम पर उर्दू साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। प्रकाश पंडित ने प्रस्तुत संकलन में ग्यारह सौ के लगभग बेहतरीन शेर बहुत मेहनत करने के बाद पाठकों के सामने रखे हैं।

उपन्यास

भयंकर मूर्ति—

लेखक-कर्नल रंजीत, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० १७२, मू० २.००

कर्नल रंजीत का नाम अब हिन्द पाकेट बुक्स के पाठकों के लिए नया नहीं रह गया है। कर्नल रंजीत जासूसी उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त हो चुके हैं। प्रस्तुत उपन्यास भी काफी रोचक है। कर्नल रंजीत का यह छठा जासूसी उपन्यास है।

उपन्यास आदि से अन्त तक रहस्य बनाये रखता है।

कटी पतंग—

लेखक-गुलशन नन्दा, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० २२०, मू० २.००

कटी पतङ्ग लोकप्रिय उपन्यासकार गुलशन नन्दा का नवीनतम उपन्यास है। बड़ी ही विचित्र और नाजुक परिस्थितियों में घिरी एक सुन्दर युवती की मार्मिक कहानी है जिसको पढ़कर आप आर्द्र हुए बिना न रहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक का गुलशन नन्दा के प्रेमी पाठकों द्वारा अतीव स्वागत होगा, ऐसी आशा है।

विक्रमादित्य—

लेखक-गुरुदत्त, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० ४४९, मू० ३.००

विख्यात उपन्यासकार गुरुदत्त के लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यासों में सबसे अधिक रोचक उपन्यास 'विक्रमादित्य साहसांक' का यह सम्पूर्ण पाकेट संस्करण है।

विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के जीवन की इस कहानी में ऐसी गजब की पकड़ है कि पाठक आरम्भ करके समाप्त किये बिना नहीं छोड़ेगा। इस उपन्यास का कथानक इसके अद्भुत चरित्र और प्रवाह पूर्ण भाषा एवं कलात्मक शैली सभी कुछ तो अद्वितीय है। यह उपन्यास गुरुदत्त की ओजस्वी लेखनी का प्रतिनिधित्व करता है।

नीले फीते का जहर—

लेखक-चन्दर, प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, देहली। पृष्ठ १७६, मूल्य २.००।

समालोच्य पुस्तक में अत्यन्त ही रोमांचकारी एवं रहस्यमयी कहानी है। थ्रिलर उपन्यास के पढ़ने वाले शौकीन पाठकों को इसमें विशेष आनन्द आयेगा।

इस पुस्तक में भयानक षड्यन्त्र रचने वाले अन्तर्राष्ट्रीय गुण्डों के खूँख्वार गिरोह के चंगुल में फंसी एक खूबसूरत युवती की कहानी है।

सात समुन्दर पार—

लेखक-मुल्कराज आनन्द प्रकाशक-हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, देहली। पृष्ठ १८०, मूल्य २.००।

प्रस्तुत उपन्यास प्रथम विश्व युद्ध में फ्रांस के मोर्चे पर भारतीय सेना के जवानों के अद्भुत साहस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वीरता की कहानी है। डा० मुल्कराज आनन्द अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार हैं। उनकी पुस्तकें विदेश में भी उतने ही चाव से पढ़ी जाती हैं जितना कि देश में।

कहानी इतनी सशक्त और जोरदार है कि एक बार शुरू करने पर पूरा करके ही छोड़ा जायगा।

बेगम—

लेखक—ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, अनुवादक—हंसकुमार तिवारी, प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० १६२, मू० २.००

जब से भारतीय ज्ञानपीठ ने ताराशंकर बंद्योपाध्याय को उनके उपन्यास गणदेवता पर एक लाख का पुरस्कार दिया है तब से उनके नाम का ही प्रचार अधिक हो रहा है। तारा बाबू को एक लाख का पुरस्कार मिलते ही 'बेगम' बाजार में आ गई। समझ में नहीं आता कि ताराबाबू के पुरस्कृत उपन्यास गणदेवता को अभी तक पाकेट बुक संस्करण में प्रस्तुत क्यों नहीं किया गया? गणदेवता के पाकेट संस्करण में न आने से वे लोग वंचित हैं जो अधिक दाम वाला संस्करण खरीदकर पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं।

एक बहुत ही खूबसूरत और मासूम दिल वाली एवं शेर और शायरी में दिलचस्पी रखने वाली बेगम की कहानी बड़ी रोचक और प्रभावपूर्ण ढंग से कही गई है। लेकिन पुस्तक के आवरण पर ऐतिहासिक उपन्यास न लिखकर रोमांटिक शब्द पर जोर दिया गया है।

बासी फूल—

लेखक - बलवन्तसिंह प्रका०—हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली। पृ० १८८, मू० २.००

पुस्तक के आवरण पर लिखा गया है कि यह उपन्यास एक सच्ची घटना पर आधारित है एवं हृदय स्पर्शी है।

समीर नामक एक नवयुवक अपनी जीवन संगिनी ढूंढ़ने के लिए एक नया तरीका सोचता है। वह अखबारों में विज्ञापन देता है कि उसे एक महिला सेक्रेटरी चाहिए। समीर का एक दोस्त है भूषण। उसकी कोठी दार्जिलिंग में खाली पड़ी है। कोठी की देखभाल के लिए एक नौकर है जो उसी कोठी में एक हिस्से में रहता है। समीर उसी कोठी में जाकर ठहरता है। सेक्रेटरी के रूप में रश्मि नाम की एक लड़की का चुनाव हो जाता है। रश्मि को माँ के साथ उसी कोठी का एक आलीशान हिस्सा रहने के लिए दे दिया जाता है। रश्मि का काम केवल इतना है कि वह समीर के साथ रहे। रश्मि को और माँ को केवल यही बताया जाता है कि वह एक लेखक है और "जब मुझे सूझेगा तो रश्मि को लिखवा दूंगा। वे दोनों इस पर विश्वास कर लेती हैं जबकि सारी दुनिया जानती है कि लेखक की भारत में क्या हालत है। रश्मि को आकर्षित करने के लिए समीर खूब मेहनत करता है किन्तु रश्मि की शादी किसी और से हो जाती है। समझ में नहीं आता कि भारत में पढ़ी लिखी युवती और उसकी माँ कैसे इस कहानी के नायक का विश्वास कर लेती हैं।

चरित्र

ऋषभ चरित्र—

लेखक—मुनि श्री ज्ञानसागरजी, प्रका०—दि० जैन समाज, मदनगंज, किशनगढ़ (राज०)

जैन धर्म के आदि प्रवर्त्तक प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव का जीवन चरित्र मुनिजी ने कविता में लिखा। कविता सरल और भक्तों के सुपाठ्य है। पुस्तक का मूल्य मनन मात्र है।

गांधी कथा—

ले०—एस० डी० सावंत, प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना मंत्रालय भारत सरकार दिल्ली। पृष्ठ ४८, मूल्य २.५०।

बड़े आकार की इस सजिल्द पुस्तक में चित्रों के द्वारा गांधीजी की कथा लिखी और दिखाई गई है। पुस्तक सुन्दर और बच्चों के लिए बड़ी उपयोगी है।

कहानी

एक लड़की एक शाम—

लेखिका—अमृता प्रीतम, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ १२६ मूल्य ४.००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11302द

प्रस्तुत कहानी संग्रह में अमृताजी की सामाजिक कहानियाँ संग्रहित है। पुस्तक का शीर्षक इसी संग्रह की एक कहानी के नाम पर रखा गया है जिसमें कथा-तत्त्व के सभी गुण रोचकता, जिज्ञासा, कौतूहल विषय, वस्तु का अच्छा निरूपण हुआ है।

अध्यात्म

श्री हरिदेव महाराज की वाणी—

सं०—श्री भगवद्दास शास्त्री, प्रकाशक—संत साहित्य संगम, सींथल, बीकानेर। पृष्ठ २६०, मू० ५.००

भारतीय साहित्य में संतों की अनेक परम्पराएँ चली आई हैं जिन्होंने अनेक धार्मिक ग्रन्थ रचकर अपने-अपने पंथ की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। इन सम्प्रदायों में रामसनेही सम्प्रदाय भी एक सम्प्रदाय है जिसकी स्थापना सेठ श्री हरिरामदासजी महाराज ने की थी। प्रस्तुत पुस्तक की वाणी उन्हीं श्री हरिरामदासजी के पौत्र और शिष्य सेठ हरिदेवदासजी महाराज की रचना है जो सं० १८३५ में १० वर्ष की आयु में सिंह स्थल तीर्थ की गद्दी पर आचार्य रूप में विराजे थे। सन्तों की अन्य रचनाओं के समान इस बाणी में भी अनेक आध्यात्मिक तत्त्व मिलते हैं। भगवद्दासजी ने इसका सम्पादन कर आध्यात्मिक जगत की बड़ी सेवा की है। सन्त साहित्य के विशेषज्ञ पं० परशुरामजी चतुर्वेदी ने १० पृष्ठ की भूमिका लिखकर पुस्तक का महत्त्व बढ़ा दिया है।

संस्मरण

सौम्य सन्त—

लेखिका—डा० राज बुद्धिराजा, प्रकाशक—महात्मा प्रभु आश्रित धर्मार्थ ट्रस्ट, ३१, यू० बी० प्रयाग निकेतन, जवाहरनगर, दिल्ली-७। पृ० ७२, मूल्य सेवाभाव।

प्रस्तुत पुस्तिका में स्व० महात्मा प्रभु आश्रितजी महाराज का संस्मरणात्मक जीवन-चरित्र दिया गया है। लेखिका बचपन से ही महात्मा प्रभु के सानिध्य में रही है। स्वर्गस्थ होने के उपरान्त गुरु के प्रति जो भी संस्मरण याद आए, भाव जाग्रत हुए, वेदनाएँ हुईं, उन्हीं सब का इस संक्षिप्त पुस्तिका में बड़े ही सीधे-सादे शब्दों में रखा गया है। महात्माजी के दो-एक चित्र भी उनके आश्रम तथा साधना के प्रतीक हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम एवं भक्ति के प्रकोण में लेखिका की मनोभावनाएँ सराहनीय हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

शाकम्भरी—(मासिकी)—

अङ्क—जुलाई, ६८, अर्ध-वार्षिक विशेषांक, प्रधान सम्पादक—डा० ओमप्रकाश दीक्षित, संचालक—श्री अमृतलाल सचदेव, प्रकाशक—एस्प्रिट प्रकाशन केन्द्र, गुरुद्वारा रोड, सहारनपुर। पृ० ८०, मूल्य ६० पैसे प्रति अङ्क।

प्रस्तुत पत्रिका का यह छठा अंक है। ६ महीने की इस दुधमुँही पत्रिका को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इसका भविष्य उज्ज्वल एवं प्रकाशवान है। अच्छे पूत के पाँव पालने में ही नजर आते हैं। इसमें साहित्य की सभी विधाओं—निबन्ध एवं लेख, गीत और कविता, कहानी एवं संस्मरण, बालजगत, पुस्तक परिचय, राजनीति के मंच से, आपके पत्रों से, तथा सम्पादकीय आदि सभी को स्थान दिये गये हैं। इससे पाठक का मन पत्रिका पढ़ने में खूब रमता है।

—कमलेन्दु जैन

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य अकादमी पुरस्कार

विजेता

पंजाब कोकिला

अमृता प्रीतम

असफल प्रेम की सफल चितेरी हैं। हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा अब तक उनकी ११ पुस्तकें प्रकाशित होकर अत्यत लोकप्रिय हो चुकी हैं।

● उपन्यास

जलावतन	२.००	एक सवाल	१.००
डाक्टर देव	१.००		
नोना	१.००	बन्द दरवाज़ा	१.००
हीरे की कनी	१.००		
नागमणि	१.००	धरती सागर और सीपियाँ	१.००
एक थी अनीता	१.००		
दिल्ली की गलियाँ	१.००	एरियल	१.००

पूरे सैट का आर्डर आज ही भेजिये और विशेष रियायतों के लिए लिखिये :

हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड,

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं० एल० 263 साहित्य सन्देश जून 1968 लाइसेंस नं 16.
Licensed to post without prepayment.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

(आलोचना प्रधान मासिक)

'साहित्य-सन्देश' आलोचना का एक मात्र मासिक-पत्र है जो गत २९ वर्षों से लगातार निकल रहा है। इसका प्रचार भारत एवं विदेशों में है। वार्षिक मूल्य केवल ६.०० रुपया है।

उपयोगिता—(१) हिन्दी के अध्ययन के लिए साहित्य-सन्देश अनूठा साधन है। हजारों विद्यार्थी **'साहित्य-सन्देश'** पढ़कर बी. ए., एम. ए., पी-एच. डी. आदि पदवीधारी बनकर आज बड़े-बड़े कालेजों में अध्यापन कर रहे हैं।

(२) साहित्य-सन्देश के निरन्तर अध्ययन से सैकड़ों व्यक्ति लेखक बन गए। आज के अनेक सम्मान्य लेखकों ने लिखने का आरम्भ साहित्य-सन्देश के माध्यम से ही किया है। आज भी उसे सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

(३) अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रचारकों के लिए तो साहित्य-सन्देश एक सम्बल है जिसके सहारे वे हिन्दी का ज्ञान बराबर बढ़ा रहे हैं। इसीलिए इन प्रान्तों में भी उसकी हजारों प्रतियाँ जाती हैं।

मान्यता—(१) भारत के प्रदेशों की सरकारों ने अपने स्कूल, कालेजों के लिए खरीदने की मान्यता 'साहित्य-सन्देश' को दे रखी है।

(२) भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालय, अधिकांश कालेज और स्कूल तथा अध्यापकगण अपने पुस्तकालयों के लिए 'साहित्य-सन्देश' खरीदते हैं।

आप भी छः रुपये धनादेश अथवा पोस्टल आर्डर भेजकर ग्राहक बनिए।

'साहित्य-सन्देश' की

गत १५ वर्षों की फाइलें

साहित्य-सन्देश को निकलते २९ वर्ष हो गए प्रारम्भ की १४ वर्षों की फाइलें क्या एक अङ्क उपलब्ध नहीं है। इधर १५ वर्ष की कुछ फाइलें उ लब्ध हैं। प्रत्येक फाइल में हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों द्वा लिखित ५०० पृष्ठों (पुस्तकाकार में १००० पृष्ठ) सामग्री है। ऐसी प्रत्येक सजिल्द फाइल का मूल्य केव १०) है। पोस्टेज एक फाइल पर करीब २) पड़ेगा किन्तु कम से कम पाँच वर्ष की फाइलें मँगाने प रेल द्वारा बिना खर्च भेजी जायेंगी। किस वर्ष फाइल में कौन विशेषाङ्क है—यह नीचे देखिए चिन्हित विशेषाङ्क अलग से भी मिल सकते हैं। तुर आर्डर भेजिए।

सन्	वर्ष के विशेषांक	विशेषांक का मूल
१९५२-५३	कहानी अङ्क	२)
१९५३-५४	आधुनिक काव्याङ्क	२)
१९५४ ५५		
१९५५-५६	अन्तःप्रान्तीय नाटकाङ्क	२)
१९५६-५७	आधुनिक उपन्यास अङ्क*	२)५
१९५७-५८	(१) भाषा विज्ञान अङ्क*	२)५
	(२) प्रगति विशेषाङ्क	१)
१९५८-५९	(१) सन्त साहित्य अङ्क*	२)५
	ऐतिहासिक उपन्यासाङ्क	२)
१९५९-६०	(१) रीतिकाव्यालोचनाङ्क*	२)५०
	(२) प्रगति अङ्क १९६०*	२)
१९६०-६१	(१) शोध विशेषाङ्क	२)५०
	(२) प्रगति विशेषाङ्क १९६१	२)
१९६१-६२	(१) निबन्ध विशेषाङ्क अप्राप्य	२)५०
	(२) निराला विशेषाङ्क ,,	२)
१९६२-६३	(१) साहित्य-शास्त्र अङ्क	२)५०
	(२) रांगेय राघव अङ्क	२)
	(३) शिवपूजनसहाय अङ्क	१)
१९६३-६४	(१) बाबू गुलाबराय अङ्क*	२)५०
	(२) वीर काव्य विशेषाङ्क	२)५०
१९६४-६५	(१) द्विवेदी अङ्क*	२)
	(२) राष्ट्रकवि गुप्त विशेषांक*	२)
१९६५-६६	(१) हरिऔध विशेषाङ्क*	२)
	(२) विद्यापति विशेषाङ्क*	१)५०
१९६६-६७	(१) रत्नाकर विशेषाङ्क*	१)५०
	(२) नव वर्षाङ्क*	१)५०
१९६७-६८	(१) वचन विशेषांक	

साहित्य-सन्देश कार्यालय,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Checked
1999-2000

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar